अरीठा
आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक
धन्वन्तरि
वनौषधि
विशेषाङ्क
अर्जुन

ग्राहक संख्या नोट करें

इस वर्ष कतिपय ग्राहकों की ग्राहक संख्या बदल गई है, अतएव ग्राहकों से निवेदन है कि विशेषांक के ऊपर पते के साथ लिखी ग्राहक संख्या को नोट करलें तथा धन्वन्तरि के सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार करते समय एवं वार्षिक मूल्य भेजते समय यह ग्राहक संख्या अवश्य लिख दिया करें । इसे अत्यावश्यक समझें । ग्राहक संख्या न लिखने पर आपके पत्र का उत्तर देने तथा आज्ञा-पालन में कठिनता एवं विलम्ब होगा ।

ग्राहक संख्या यहां लिखलीजिये

ग्राहक संख्या

रेपर पर लिखे पते को एक बार पढ़ लीजियेगा, यदि उसमें भूल हो तो उसे सुधारने के लिये शीघ्र ही पत्र दीजियेगा ।

निवेदक—व्यवस्थापक ।

नोट—कोई भी अङ्क मिलने पर देख लिया करें कि उससे पहिला अंक मिला है या नहीं, यदि न मिला हो तो उसी समय पत्र लिखकर मंगालें । वर्ष के अन्त में एक साथ कई अंक न मिलने की शिकायत करना अनुचित है, तब पूर्ति करना हमारे लिये सम्भव नहीं होगा ।

प्रकाशक
वैद्य देवीशरण गर्ग
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़

बनौषधि विशेषांक-चतुर्थ भाग
फरवरी—मार्च
१६६०

मुद्रक
वैद्य देवीशरण गर्ग
धन्वन्तरि प्रेस
विजयगढ़

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

धन्वन्तरि

वनौषधि विशेषाङ्क

(चतुर्थ भाग)

राजसंस्करण

'न' 'प' तथा 'फ' की सम्पूर्ण तथा 'ब' अक्षरों से प्रारम्भ
होने वाली कुछ वनस्पतियों का सचित्र विस्तृत
वर्णन एवं विभिन्न रोगों पर हजारों
सफल-सरल प्रयोगों का उपयोगी संग्रह

●

विशेष सम्पादक

आयुर्वेदसूरिः श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी. ए. आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक

वैद्य देवीशरण गर्ग आयुर्वेदोपाध्याय
ज्वालाप्रसाद अग्रवाल बी. एस्-सी.
दाऊदयाल गर्ग ए., एम. बी. एस.

वर्ष ४१
अङ्क २

फरवरी
१९६५

वार्षिक मूल्य ७.५०
इस अङ्क का ८.५०

आवश्यक

१—इस वर्ष कुछ ग्राहकों के ग्राहक नम्बर बदल गये हैं इस कारण सभी ग्राहकों से निवेदन है कि विशेषांक के ऊपर के रेपर को संभाल कर रखें या उस पर लिखा ग्राहक नम्बर तथा पोस्ट आफिस का नम्बर इस विशेषांक के टाइटिल के पृष्ठ २ पर नोट करलें।

२—भविष्य में पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर पत्र में अवश्य लिख दिया करें।

३—कोई भी अङ्क मिलने पर देख लिया करें कि उससे पहिले मास का अङ्क मिला है या नहीं। न मिला हो पोस्ट आफिस में तलाश करें और उसके उत्तर के साथ हमको लिखें।

४—धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाने का अवश्य प्रयत्न करें।

विशेष सम्पादक

Scanned with CamScanner

वनौषधि-विशेषांक के चित्र प्रबन्धक

वैद्याचार्य डा० उदयलाल जी महात्मा H. M. D. S.

रस एवं वनौषधि अन्वेषक

श्री महावीर चिकित्सालय, देवगढ़ (राजस्थान)

Scanned with CamScanner

प्रकाशकीय निवेदन

●

धन्वन्तरि के पाठक बनौषधि-विशेषांक के तीन भाग पहले प्राप्त कर चुके हैं उसी का यह चौथा भाग आपके हाथों में समर्पित करते हुए हमको प्रसन्नता है। इस महान कार्य का दो तिहाई भाग इसके प्रकाशन से सम्पन्न हो जाता है। आगामी दो भागों में शेष बनस्पतियों का विवरण प्रकाशित किया जा सकेगा ऐसी हमको आशा है। सम्पूर्ण कार्य हो जाने पर धन्वन्तरि के पाठकों के पास बनस्पतियों का सर्वाङ्गपूर्ण विश्वकोष हो जायगा तथा वे इससे समय-समय पर लाभ उठाते रहेंगे। इसका प्रारम्भ वर्ष १९६१ में किया गया था, उस समय हमको विश्वास नहीं था कि यह महान कार्य पूरा होजायगा, लेकिन अब आशा होती है कि भगवान धन्वन्तरि की कृपा से यह पूर्ण होकर ही रहेगा।

इस वर्ष हमारा संकल्प था कि विशेषांक १५ फरवरी से ही पाठकों को भेजना प्रारम्भ कर दिया जाय, उसी के अनुकूल हमने इसे १५ नवम्बर से ही छपाना प्रारम्भ कर दिया था लेकिन दुर्भाग्य कि २ दिसम्बर को हमारी सिलंडर मशीन का एक प्रमुख भाग टूट गया। उसे बनवाने व फिट कराने में लगभग १५००) व्यय हुआ और १५ दिन कार्य रुका रहा। इसके बाद प्रथम फरवरी से बिजली ने परेशान करना प्रारम्भ कर दिया। प्रायः पूरे महीने बिजली की परेशानी रही है। दिन में तो शायद ही किसी दिन बिजली मिली हो, रात्रि में बड़े अनियमित रूप से बिजली मिली, इस कारण भी इस विशेषांक के छपने में लगभग १५ दिन का बिलम्ब हुआ, प्रेस कर्मचारियों को दुहरा वेतन देना पड़ा वह अलग।

बनौषधि-विशेषांक के प्रथम-द्वितीय-तृतीय भाग हमारे पास हैं—जिन ग्राहकों के पास न हों वे तुरन्त मंगालें। इस उपयोगी साहित्य के पूरे भाग अपने पास रखने से ही समुचित लाभ उठाया जा सकता है। इस उद्देश्य से हमने प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय भाग धन्वन्तरि के ग्राहकों को ३० जून १९६७ तक रियायती मूल्य से देना स्वीकार किया है। रियायती मूल्य का विवरण नीचे दिया जारहा है। ३० जून के पहले ही मंगा लीजियेगा।

श्री त्रिवेदी जी पर्याप्त वृद्ध हैं तथा अब अस्वस्थ रहते हैं। प्रतीत होता है कि शेष कार्य पूरा करने की सामर्थ्य उनको न रहे, ऐसी दशा में अन्य अनुभवी लेखकों से सहयोग लेना आवश्यक जान पड़ता है। जो विद्वान श्री त्रिवेदी जी की शैली पर यह साहित्य लिख सकें वे कृपया पत्र व्यवहार करें।

धन्वन्तरि गत ४१ वर्षों से नियमित प्रकाशित हो रहा है। इसने आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति की जो सेवा की है वह सभी जानते और मानते हैं। धन्वन्तरि के विशाल उपयोगी विशेषांकों ने आयुर्वेद समाज, आयुर्वेद के तथा भारतीय-संस्कृति के प्रेमियों के हृदय में एक विशिष्ट स्थान बना लिया है

Scanned with CamScanner

साधारण मासिक अंकों में भी हम चिकित्सकों के लिये महान उपयोगी साहित्य देने का सतत प्रयत्न करते रहे हैं और करते रहेंगे। विद्वान लेखकों, पाठकों तथा आयुर्वेद प्रेमियों से निवेदन है कि वे हमको इस कार्य में अधिकाधिक सहयोग प्रदान करें।

पाठकों से अपील

भारतीय मुद्रा के अवमूलन के कारण अखबारी कागज जो विदेशों से आता है बहुत मंहगा हो गया है। जो रिम पहले १२) की मिलती थी वह अब १६) की मिलती है इस कारण इस वर्ष धन्वन्तरि के प्रकाशन में हमको बहुत अधिक घाटा रहेगा यह निश्चित है। कतिपय शुभ चिन्तकों ने हमको परामर्श दिया था कि धन्वन्तरि का मूल्य और बढ़ा दिया जाय, लेकिन २ वर्ष पहले ही हमने मूल्य बढ़ाया था, पुनः इस वर्ष हमको मूल्य में वृद्धि करना उचित प्रतीत नहीं हुआ। हमारा विश्वास है कि धन्वन्तरि के कृपालु ग्राहक इस घाटे से मुक्ति दिलाने के लिए हमारा एक निवेदन अवश्य स्वीकार करेंगे। वह निवेदन है कि सभी ग्राहक थोड़ा प्रयत्न करके १-१ नवीन ग्राहक बनादें। यह किसी के लिये भी कठिन नहीं है। धन्वन्तरि महान उपयोगी एवं सस्ता मासिक पत्र है। आप थोड़ा प्रयत्न करेंगे तो यह कभी सम्भव नहीं कि आप धन्वन्तरि के ग्राहक न बना सकें। आपके हृदय में हमारे निवेदन को स्वीकार करने की भावना होने पर आप इसे पूरा करने में अवश्य-अवश्य सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

लेखकों से निवेदन

'धन्वन्तरि' को अधिकाधिक आकर्षक एवं उपयोगी बनाने के लिए विद्वान लेखकों के सहयोग की हम सदैव कामना करते हैं। अनुभवी चिकित्सकों तथा लेखकों से निवेदन है कि वे 'धन्वन्तरि' को उपयोगी बनाने के लिये अपने सुझाव देते रहें तथा अपने अनुभवपूर्ण लेखों से हमारी सहायता करते रहें। जो लेखक अपने उपयोगी एवं अनुभवपूर्ण लेख पारिश्रमिक लेकर प्रकाशनार्थ देना चाहें वे अपना एक लेख भेजते हुए पारिश्रमिक के विषय में पत्र व्यवहार करें।

अन्त में पाठकों से पुनः निवेदन है कि वे नवीन ग्राहक बनाकर हमारी सहायता करें।

—वैद्य देवीशरण गर्ग।

वनौषधि-विशेषांक

(प्रथम-द्वितीय-तृतीय भाग) का

रियायती-मूल्य

प्रथम भाग—पृष्ठ संख्या ५५२, चित्र-संख्या ९२, वनस्पति संख्या १४७ 'अ' से 'औ' तक की सम्पूर्ण वनस्पतियों का विस्तृत सचित्र वर्णन दिया गया है। प्रथम संस्करण समाप्त हो जाने पर इसका द्वितीय संस्करण उत्तम ग्लेज कागज पर छापा गया है। मूल्य १० रु०, वर्ष १९६७ के नवीन ग्राहकों को ३० जून १९६७ तक रियायती मूल्य ६ रु०, पोस्टेज १)१० प्रथक।

द्वितीय भाग—पृष्ठ संख्या ५२८, चित्रसंख्या १७२, वनस्पति संख्या २३१, इसमें 'क' वर्ग की सम्पूर्ण वनस्पतियों का विस्तृत सचित्र विवरण दिया गया है। मूल्य ८,५०, वर्ष १९६७ के नवीन ग्राहकों को ३० जून १९६७ तक रियायती मूल्य ५.२५, पोस्ट व्यय १.१० प्रथक्।

तृतीय भाग—पृष्ठसंख्या ५४४, चित्र संख्या १९५, वनस्पति संख्या २१४, इसमें 'च' से 'ध' अक्षरों की सभी वनस्पतियों का विस्तृत वर्णन दिया गया है। मूल्य ८.५०। वर्ष १९६७ के नवीन ग्राहकों को ३० जून १९६७ तक रियायती मूल्य ५.२५, पोस्ट व्यय प्रथक।

तीनों भागों का रियायती मूल्य १६)५०+पोस्ट व्यय २)२५=१८)७५

Scanned with CamScanner

वर्ष १९६८ में

'धन्वन्तरि' मुफ्त मगावें

धन्वन्तरि के जो भी ग्राहक

(१) १ मार्च १९६७ से ३० नवम्बर १९६७ तक
(२) धन्वन्तरि कार्यालय द्वारा निर्मित औषधियां
(३) धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़) से
(४) १ बार में १०१) की
या २ बार में १४१) की
या ३ बार में १७१) की

मंगा लेंगे, उनको वर्ष १९६८ में धन्वन्तरि मुफ्त दिया जायगा।

● नियमों को भली प्रकार समझ लीजियेगा।

१—वर्ष १९६६ में जो 'धन्वन्तरि' के ग्राहक हैं वही सज्जन उपर्युक्त विज्ञप्ति के अनुसार औषधियां मंगाकर वर्ष १९६८ में धन्वन्तरि मुफ्त प्राप्त कर सकेंगे।

२—जो सज्जन "धन्वन्तरि" के ग्राहक नहीं बन सके हैं और १ मार्च १९६७ के बाद औषधियां मंगा कर उपर्युक्त नियम की पूर्ति करदी है तो वे ३० नवम्बर १९६७ से पहिले ही वर्ष १९६७ के लिये धन्वन्तरि ग्राहक बनकर वर्ष १९६८ में धन्वन्तरि मुफ्त प्राप्त कर सकेंगे।

३—इसकी पृष्ठ पर एक तालिका छपी है उसे भर कर १५ दिसम्बर १९६७ से पहिले-पहिले जब भी नियमों की पूर्ति हो जाय कार्यालय को भेजना आवश्यक होगा। तालिका मिलने पर उसकी जांच करके नियमों की पूर्ति होगई है तो आपका पता वर्ष १९६८ के निःशुल्क ग्राहकों में लिख कर आपको सूचना दी जायगी।

४—१ मार्च १९६७ से पहिले के या ३० नवम्बर १९६७ के बाद के बिलों पर यह रियायत कदापि नहीं दी जायगी।

५—जो सज्जन इसके पृष्ठ पर छपी तालिका भर कर १५ दिसम्बर १९६७ से पहिले पहिले भेज देंगे उनको ही [उक्त नियमों की पूर्ति होने पर] वर्ष १९६८ में धन्वन्तरि मुफ्त दिया जा सकेगा। अस्तु तालिका [फार्म] भर कर भेजना न भूलें।

Scanned with CamScanner

ता लि का

जो १५ दिसम्बर १९६७ से पहिले-पहिले भेजनी होगी

●

श्री व्यवस्थापक—
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़ जिला अलीगढ़

●

आपकी विज्ञप्ति के अनुसार मैं—

- ● १ बार में १०१.०० की
- ● २ बार में १४१.०० की
- ● ३ बार में १७१.०० की

● तीनों में से जो दो अनावश्यक हो उनको काट दीजियेगा।

औषधियां मंगा चुका हूं जिसका विवरण नीचे लिखा है। अपने यहां जांच करके मेरा पता वर्ष १९६८ के निःशुल्क ग्राहक रजिष्टर में लिख लें और ग्राहक संख्या की सूचना दें।

वर्ष १९६७ के लिए मेरी ग्राहक संख्या................है।

	बिल	दिनांक बिल	औषधियों का मूल्य	वी० पी० छुटाने की तारीख	विवरण
प्रथम बार					
द्वितीय बार					
तृतीय बार					
		जोड			

मेरा पूरा पता..

....

....

ग्रा० संख्या..................

Scanned with CamScanner

भारत सरकार द्वारा "रजिस्टर्ड"

सफेद-दाग

दवा का मूल्य ७.००, डाक व्यय १.५०, विवरण मुफ्त मंगाइयें।

एक्जिमा गुणकारी दवा का मूल्य ७.०० डाक व्यय १.५०

बवासीर पेट में लेने और मस्सों पर लगाने की दवा मूल्य १०.००

दमा श्वास गुणकारी औषधि की कीमत ७.०० डाक खर्च १.५०

रोगियों को मुफ्त सलाह दी जाती है

वैद्य के० आर० बोरकर

'आयुर्वेद भवन' (धन्व)

पो० मंगरूलपीर,

जिला अकोला, (महाराष्ट्र)

आयुर्वेद की खोई प्रतिष्ठा की पुनः प्राप्ति के लिये उपचार साधनों में प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाइये

प्राकृतिक चिकित्सा

व

योगासन

से संबन्धित सभी विषयों की चुनी हुई श्रेष्ठ हिन्दी-अंग्रेजी की देशी-विदेशी पुस्तकों के प्रमुख विक्रेता—

डा० हरकिशनदास श्रीमाली M.Sc., N.D.,

आइडियल हेल्थ स्टूडिओ (D A)

कटरा यहियागंज, लखनऊ-३ (उ० प्र०)

सूचीपत्र मुफ्त मंगायें।

विशेष विवरण के लिये

मूल्य तालिका मंगाइये।

दीर्घ जीवन और उसके गुप्त रहस्य

मूल्य ५.००

डा० प्यारेलाल गुप्ता B. A., M. B. B. S., M. D.

बिरला कालेज पिलानी में शरीर क्रिया विज्ञान के प्रोफेसर द्वारा लिखी गई अपने विषय की नवीनतम पुस्तक है। इसमें स्वास्थ्यवर्धक तरीके, उनका इतिहास तथा उसके सम्बन्ध में नवीनतम वैज्ञानिक शिक्षायें दी गई हैं तथा विभिन्न रोगों से किस प्रकार छुटकारा पाकर दीर्घ जीवन प्राप्त किया जा सकता है यह दिया है। इसमें १२ अध्याय दिये गये हैं जिनमें अत्यन्त उपयोगी सामग्री भरी पड़ी है। प्रत्येक को यह पुस्तक अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिए। पुस्तक आंग्ल भाषा में है।

—पता—

धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

Scanned with CamScanner

१—सर्वरक्षा मंत्रौषधि सार संग्रह

इस पुस्तक में हर प्रकार के झारने के असली कंठस्थ मंत्र हैं तथा अनेक रोगों पर आजमाये हुये औषधियों के पाठ हैं। मंत्र जैसे सर्प, बिच्छू, जहर, बुखार, वाता, चौरा, पेट दर्द, पेट के रोग, घाव, माथा, आंख के दर्द व फुल्ला, दांत के दर्द, घनैला, गाहा आदि झारने के असली मंत्र हैं। विष पर हाथ चलाने, थाली साटने, गांड़ बांधने का मंत्र है और इन रोगों पर आजमाये हुये औषधियों के पाठ हैं और भूत प्रेतादि झारने का मंत्र है। तथा लोटा घुमाने, चोरी गये हुये पर कटोरा चलाने का मंत्र, नोह पर चोरी गये माल का पता लगाने के अनेकों प्रकार के मंत्र हैं। खांड़ बांधने, लाठी बांधने, देह बांधने, अग्निवान शीतल करने, अग्नि बुझाने का मंत्र और हनुमान देव को प्रकट करने के तीन महामंत्र हैं, पीर साहेब को हाजिर करने का मंत्र, फल आदि मंगाने का मंत्र, बथान खूटने खुरहिया, ढरका, कान्ह कीड़ा आदि झारने के मंत्र हैं, सब रोग झारने का असली श्रीराम रक्षा मंत्र भी है। पुस्तक के आदि में यात्रा बनाने और सगुण निकालने का विचार भी है। कहां तक लिखा जाय पुस्तक मंगाकर स्वयं देखिये। मूल्य केवल ६ रुपया ८७ नये पैसे हैं।

२–प्रातःकालीन भजन संग्रह

भोर के समय लोगों को जिन प्रातःकालीन भजन को गाते सुनते हैं वही भजन इस पुस्तक में हैं जैसे प्राण से प्रिय राम जी हमरो। मैं न जिअब बिनु राम जननी। शरण गहो सियाराम के पियाजी। जिलवहुजी हनुमान-लखन को। जागु अब भये भोर वन्दे। जाहुजी वसुदेव गोकुला। द्वारिका तुम जाहु द्विज हो। देखहुजी एक वाला जोगी मेरे द्वार पर आया है। भजन, जैसे—गाढ़े में होहु सहाय पवन सुत नन्दन। विवाह के समय का मंगल–राजा जनक जी कठिन प्रण कैलन अब सिया रहलें कुमार। जबही महादेव व्याहन चलला भूप सब लेले संग साथ है। सोहर–सभवा लगाये राजा दशरथ चेरिया अरज करें जी। समन भदौआ केरि रतिया के निशि अधिरतिया ने हे। आरती–आरती कीजे श्रीरामचन्द्र जी के हरिहर। जसुमति आरती उतारें हे आजु गोकुल गृह पाहूना। इसी प्रकार के अनेकों प्रकार के भजन, मंगल, आरती और भगवान की स्तुतियां हैं। जिनके मानस हृदय में भगवान की भक्ति निवास करती है वे इस पुस्तक को मंगाकर भगवान का गुणानुवाद गावें। मूल्य २ रुपया ५० नये पैसे हैं।

३–बावन जंजीरा

बावन जंजीरा राम रक्षा मंत्र के समान अनेक प्रकार की व्याधियों के झारने के काम में आता है। इसके झारने से बिच्छू, सांप, डकरा, अफीम, आदि के विष उतर जाते हैं तथा उन्माद और मृगी को झारने से आराम हो जाता है। इसके सिद्ध करने की विधि भी लिखी गई है। बावन जंजीरा के अलावे और भी अनेकों प्रकार के जंजीरे हैं जिससे भूत, प्रेत, पिशाच आदि भाग जाते हैं तथा देह बांधने, भूत भगाने, विकट मार्ग में बाघ, हुण्डार, सियार, कुत्ता, भालू, बिलार, चोर, सर्प, बिच्छू आदि से बचने और दाढ़ दर्द, कीड़ा और कुत्ते के विष झारने के जंजीरे हैं तथा विष झारने के बिरहुली मंत्र भी हैं। बवासीर में खून बन्द करने के लिये पानी पढ़ने, थन के घाव झारने तथा और भी अनेकों प्रकार के जंजीरे हैं। इसके आगे सगुण निकालने का 'वंशावली सगुणौती' विचार भी हैं जिससे अपना मनोरथ होने या न होने का शुभाशुभ फल देख सकते हैं। अन्त में अनेकों प्रकार के कबीर साहेब की स्तुतियां हैं। शुरू में कबीर साहेब का सुन्दर चित्र है। अक्षर बहुत सुन्दर साफ छपा हुआ है। मूल्य १ रुपया ५० नया पैसा। डाक खर्च अलग।

Scanned with CamScanner

४—हनुमत्पाठ

इस छोटी सी पुस्तक में हनुमान जी के प्रगट करने के तीन महा मंत्र हैं व श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी के बनाये हनुमान चालीसा, संकट मोचन, बजरंग बान हैं। हरिदास जी का रचा हुआ हनुमत्सन्ध्यावन्दन पाठ है। जैसे—तुम शत्रु संघारन असुर विदारन जनके तारन हारो जी। और हनुमान जी का प्रातःकालीन भजन जैसे—जिलवहुजी हनमान लषण को हनुमान जी की स्तुति और अन्त में हनुमान जी की आरती देकर पुस्तक समाप्त की गई है। (आरती, जैसे—आरती कीजे हनुमान लला के, दुष्ट दलन रघुनाथ लला के हो) मूल्य १ रुपया।

५—ग्रन्थ उतरा गोग

गाय, बैल, भैंस इत्यादि जानवर रखने वाले मनुष्यों के लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है क्योंकि इस ग्रन्थ में जानवरों की होने वाली बीमारियों के झारने का मंत्र व आजमायी हुई औषधियों के पाठ लिखे गये हैं। मंत्र में बयान खूटने, खुरहिया झारने, बिगाड़े हुये गाय भैंस को झारने का मंत्र व सर्प, बिच्छू, घाव, जानवरों के डंगहा बीमारी झारने का मंत्र है व श्रीरामरक्षा मंत्र, शीतलाष्टक स्तुति इत्यादि अनेकों प्रकार के मंत्र हैं। गोशाला में इस ग्रन्थ के मंत्र को एक बार पाठ कर दिया जाय तो खुरहिया रोग जानवर को नहीं पकड़ेगा। बांस के पत्ते पर मंत्र को लिख कर खिला दिया जाय तो खुरहिया रोग नहीं घेरता और घेर लिया हो तो अच्छा हो जायगा। मूल्य सिर्फ १ रुपया ५० नये पैसे।

६—सगुणौती

इस पुस्तक में सगुण निकालने के अनेकों चक्र बने हुये हैं. दूब चक्र में धर दीजिये जो होने वाला होगा निकल आवेगा। कौड़ी का पाशा डालिये चन्दन के चौपहला में अ ब ज द लिख दीजिये और पाढ़िये। जो अक्षर आवे लिखकर सगुण देख लीजिये जो शुभाशुभ फल होने को होगा निकल आवेगा। यात्रा बनाने में योगिनी का विचार चन्द्रमा का विचार है। रास्ता चलने में गीदड़, बिलार, कुत्ता, सर्प इनके किस तरफ चले जाने में यात्रा में हानि नहीं होगी, उसका विचार है। संसार में शुभाशुभ फल होने का भी विचार है। इस प्रकार बहुत से काम का विषय लिखा गया है। पुस्तक मंगाकर पढ़िये और काम लीजिये तब आपको पता लगेगा कि कितनी उपयोगी पुस्तक है। पुस्तक छप रही है।

७—सर्पादि विष मंत्रौषधि सार संग्रह

इस पुस्तक में सर्प विष पर अनेकों मंत्र व औषधि लिखी गई हैं व बिच्छू झारने, छरविन्धा झारने, विरहिनी आदि झारने के अनेकों मंत्र और औषधि भी लिखी गई हैं। मूल्य दरियाफ्त कीजिये।

८—सर्व विष मन्त्रौषधि सार संग्रह

इस पुस्तक में अनेकों प्रकार के विष का मन्त्र व औषधि लिखी गई है। जैसे सर्प, बिच्छू, कुत्ता आदि झारने के अनेकों प्रकार के मन्त्र व औषधि लिखी गई है। डकरा, अफीम, भांग, धतूरा के विष पर भी मन्त्र व औषधि लिखी गई है। पुस्तक मंगाकर देखिये। मूल्य २.००

नोट—जो सज्जन एक साथ सभी पुस्तकें मंगायेंगे उन्हें रुपया में दो आना कमीशन बाद कर भेजी जायगी।

बिना एडवांस के पुस्तकें नहीं भेजी जायेंगी इसलिये उचित है कि आर्डर के साथ दो रुपया एडवांस अवश्य भेज देवें। एक रुपये से कम की वी० पी० नहीं भेजी जायगी। डाक खर्च मंगाने वाले को देना होगा।

पता—पद्म पुस्तकालय, मु० पो०—नोआवां,
वाया अस्थावाँ जिला पटना (बिहार)

Scanned with CamScanner

—ऐलोपैथिक इंजेक्शनों के मुकाबिले में अधिक गुणकारी और दोषरहित—

मार्तण्ड के आयुर्वेदिक इन्जेक्शन

सरकारी लाइसेन्स के अन्तर्गत पूर्णतया एयर कंडिशन्ड लैबोरेट्री में फार्मेस्युटिकल्स टैक्निशियनों द्वारा निर्मित, गत २० वर्षों से लाखों वैद्यों द्वारा प्रशंसित और प्रमाणिक ये आयुर्वेदिक इंजेक्शन निश्चित रूप से तत्काल लाभ करते हैं, ऐलोपैथिक इंजेक्शनों से ये किसी भी तरह कम नहीं हैं। ये निम्नलिखित मार्तण्ड के भारी बिक्री वाले, आशुगुणकारी इंजेक्शन हैं।

[१] शूलान्तक—उदर शूल, सब प्रकार के वातिक शूल, वमन, गर्भाशय, हृदय शूल, पार्श्व शूल, नाड़ी शूल में तुरन्त लाभ करता है। ६×१ मि० लि० का बक्स २ रु० ४८ पैसे।

[२] सोमा:—यह दमा, श्वांस के दौरे को १० मिनट में शांत कर देता है तथा श्वांस को ठीक करता है सूखी खांसी, दिल को ताकत देने के लिए कोलेप्स के वक्त जब रोगी मरणासन्न हो बड़े लाभ के साथ व्यवहार होता है। दमे के दौरे में विश्वासनीय इन्जेक्शन है। ६×१ मि० लि० का बक्स ३ रु० ३० पैसे।

[३] स्मृतिदा:—अपतंत्रक, हिस्टीरिया, आक्षेप आना, बच्चों को कमेड़े आना या आक्षेप में एकमात्र लाभप्रद अनुभूत इन्जेक्शन है। मिर्गी पागलपन में बड़े विश्वास के साथ सफलता देता है। ६×१ मि०लि० ५ रु० ५० पैसे।

[४] कार्डिनोल:—सदमा, हृदय स्तब्धता [हार्टफेल] में दिल और फेफड़ों को तुरन्त ताकत पहुंचाने के लिए अत्यन्त विश्वस्त एकमात्र इंजेक्शन है। ६×१ मि० लि० का बक्स ३ रु० ५० पैसा।

[५] रासोन:—आमवातिक सन्धि वेदना तथा शोथ, सन्धियों के शूल में पूरा पूरा लाभ करता है। वातिक रोगों का नाश करता है, आमवात [गठिया] में पूर्ण विश्वासनीय इंजेक्शन है। ६×२ मि. लि. का बक्स ३ रु०।

[६] तापीकर:—दिल की कमजोरी, निमोनियां, नजला, इन्फलुएन्जा व कफजन्य रोग, बलगमी बुखार, खांसी तथा वातिक विकारों में पूरा पूरा लाभ करता है। ६×१ मि० लि० बक्स ३ रु० ३० पैसे।

[७] दुग्धप्रोटीन:—सन्धि शोथ, जीर्ण शोथ, प्रदर, अर्बुद, संक्रमण, दाद, खाज, फोड़ा फुन्सी, गर्भाशय की सूजन तथा आंख के रोगों में गुणकर है। ६×१ मि. लि. का बक्स १ रु० ६५ पैसे, १२×२ का बक्स ३ रु०।

[८] क्लीबान्तक:—सब प्रकार की नामर्दी, सुस्ती, इन्द्रिय का पतलापन दूर करके लिंग की मांसपेशियों को सबल बनाता है। ६×१ मि. लि. का बक्स ६ रु० ६० पैसे।

[९] हृदयामृत:—दिल को ताकत देता है, ठण्डे शरीर में उष्णता लाता है। ६×१ मि.लि. का बक्स ३रु० ३० पैसे।

[१०] हिरण्य:—यह भी सोमा की तरह दमे में गुणकर है। ६×१ मि. लि. का बक्स २ रु० ७५ पैसे।

[११] प्रदरारी:—औरतों के समस्त प्रकार के रज विकार, रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर, नष्टार्तव, अन्त: गर्भाशय शोथ, डिम्ब ग्रन्थि शोथ, भय से तथा आदतन गर्भस्राव में लाभकारी है। ६×२ मि. लि. बक्स ३ रु० ३० पैसे।

(होली की इनामी रियायत १५ मार्च से १५ अप्रैल तक)

(१) २५) रु० नैट का माल मंगाने पर १० प्रतिशत कमीशन के अलावा २०×३० इन्च साइज में ५ रंगों में छपे, आकर्षक मानव शरीर के २ नक्शे इनाम में भेजे जावेंगे, इनसे आपके चिकित्सालय की शोभा बढ़ेगी।

(२) ५०) रु० नैट का माल मंगाने पर १० प्रतिशत कमीशन के अलावा उपरोक्त प्रकार के ४ नक्शे या एक विलसन पैन अथवा एक रैक्सीन का डाकुमेन्ट्री बैग ६×१२ इन्ची साइज का चैन लगा हुआ उपहार में भेजा जावेगा।

(३) १००) रु० नैट का माल मंगाने पर २० प्रतिशत कमीशन के अलावा निम्न प्रकार के ८ नक्शे या एक विलसन पैन और डाकुमेंट्री बैग या स्टेथस्कोप इनाम में मुफ्त दिये जावेंगे।

(४) हमारे पास पाचन, रक्त वहन, मूत्र, श्वास, श्वास अस्थि, मांसपेशी, नाड़ी और प्रजनन संस्थानों के ८ प्रकार के नक्शे हैं इनमें से आप किन्हीं को मंगा सकते हैं इनसे रोगियों को समझा सकेंगे कि उन्हें रोग कहां और कैसे है?

(५) १००) रु० नैट का माल आपके नजदीक के रेलवे स्टेशन तक मालगाड़ी द्वारा मुफ्त एफ०ओ०आर० भेजा जावेगा, सवारी गाड़ी से माल मंगाने पर आधा किराया माफ रहेगा।

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत S. S. Rly. (उ०प्र०)

Scanned with CamScanner

गृहस्थों के लिये उपयोगी पुस्तकें

लेखक—कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय

अपूर्व चिकित्सा विधान—इस पुस्तक में सिर से पांव तक होने वाले समस्त रोगों के निदान, लक्षण और इलाज हैं। आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से समझाया गया है। गृहस्थ और चिकित्सक दोनों ही इस पुस्तक से समान रूप में लाभ उठा सकते हैं।

पहला अध्याय—ज्वर चिकित्सा २.७५।
दूसरा अध्याय—ग्रन्थि और ग्रन्थि प्रणाली के रोग १.००
तीसरा अध्याय—पाचन प्रणाली के रोग २.२५
प्रथम खण्ड तीनों अध्याय एक साथ ६.००

स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियां—वैद्यक शास्त्र से लेकर आज तक के वैज्ञानिक अनुसन्धानों एवं प्राकृतिक चिकित्सा के अनुभव के आधार पर लिखी गई पुस्तक के चौथे संस्करण का मूल्य २.००

मठा, उसके गुण तथा उपयोग—कमजोर रोगियों को मठा अमृत के समान गुण करता है। बवासीर, कब्ज, भगन्दर, तिल्ली आदि रोगों में मठा किस प्रकार रामबाण औषधि का काम करता है? यह उपयोगी वर्णन इस में पढ़िए। पांचवां संस्करण मूल्य १.००

आंख का अचूक इलाज—आप चश्मा लगाते हों या लगाना चाहते हों अथवा आप की आंख में कोई रोग हो, हर हालत में यह पुस्तक आपकी सहायता करेगी और अचूक इलाज बतायेगी। मूल्य २.२५

जुकाम—इस पुस्तक में जुकाम को उत्पन्न करने वाले कारण तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले सभी रोगों का अचूक इलाज बताया गया है। यह जनता के बड़े काम की चीज है। दूसरा संस्करण मूल्य १.७५

शहद के गुण तथा उपयोग—शहद सामान्य वस्तु नहीं, संसार में पांचवां अमृत है। शहद के सम्बन्ध की सारी जानकारी और इलाज की बात इसमें बताई गई हैं। दूसरा संस्करण मूल्य ०.७५

मधुमेह-निदान और उपचार—मधुमेह के कारण, लक्षण पर विशद रूप से विचार करके, उसका पथ्यापथ्य, भोजन सुधार और चिकित्सा बताने वाली हिन्दी में बेजोड़ पुस्तक। २.००

जीवन तत्व—इसमें जीवन तत्वों—विटामिनों, खनिज लवणों और प्रोटीन, स्टार्च, चीनी, वसा आदि पर लेखक ने विस्तृत अध्ययन के साथ प्रकाश डाला है। मूल्य १.५०

दूध चिकित्सा—दूध में क्या गुण हैं? दूध से जीवन शक्ति किस तरह बढ़ती है? यह तथा अन्य उपयोगी वर्णन इस पुस्तक में पढ़िये। मूल्य ४.००

प्रमेह-विवेचन—सभी तरह के प्रमेह तथा तत्सम्बन्धी रोगों और स्वप्नदोष आदि रोगों का विस्तृत वर्णन है। इलाज सरल और सब के समझने और करने लायक है। मूल्य २.००

कब्ज और मलावरोध—कब्ज को जड़ से दूर करने की विधि बताने वाली अद्वितीय पुस्तक। कब्ज के कारण, लक्षण, चिकित्सा, भोजन और पथ्यापथ्य आदि पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। मूल्य ५.००

रोगी सुश्रूषा—अपने विषय की बेजोड़ पुस्तक है। सभी के घर में लोग बीमार पड़ते हैं, परन्तु बहुतों को यह नहीं मालूम कि बीमार की देख रेख, सेवा सुश्रूषा कैसे की जाय? इस विषय की जानकारी इस पुस्तक से होगी। मूल्य २.५०

धातु रोग और उसका इलाज—यह पुस्तक अपने विषय की हिन्दी में अद्वितीय है। कई परीक्षाओं में भी स्वीकृत है। जो लोग अपने को स्वस्थ रखना चाहते हों उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य १.५०

महिलाओं के रोग निदान और उपचार—इस पुस्तक में महिलाओं के समस्त रोगों का वर्णन एलोपैथी और आयुर्वेद के आधार पर किया गया है। इसमें वर्णित चिकित्सा विधि सरल और सबके समझने योग्य है। अपने विषय की बेजोड़ पुस्तक है। प्रत्येक गृहस्थ के घर में इसका रहना आवश्यक है। मूल्य ४.५०

पुस्तकें मिलने का पता—

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

Scanned with CamScanner

३. एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा नवनीत चार्टस तथा एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा विश्वकोष

सन् १९६६ में दूसरी बार छपे नये संस्करण में पुरानी और बन्द होजाने वाली दवाइयों को निकाल कर नई-नई पेटेण्ट औषधियों को बढ़ा दिया है। पेटेण्ट औषधियों और इंजेक्शनों के मूल्यों को भी बताया है। किस रोग की कौन सी दवा सबसे सस्ती और कौन सी दवा सबसे मंहगी है ? इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

इसके १९६५ में छपे पहले संस्करण में पाँच सौ के लगभग चार्टस थे। अब १९६६ के नये संस्करण में आठ सौ के लगभग चित्र तथा चार्ट हैं। पुस्तक का आकार, लम्बाई-चौड़ाई आदि भी ड्योढ़ी कर दी है। पहले संस्करण में रोगों की केवल पेटेण्ट चिकित्सा दी थी। अब इसमें कई सौ रोगों का पहले परिचय और निदान दिया है, बाद में उनकी चार्टों के रूप में पेटेण्ट चिकित्सा दी है। हिन्दी तो क्या ? संसार की किसी भी भाषा में ऐसी अनोखी पुस्तक नहीं छपी है। आठ सौ के लगभग चित्रों तथा चार्टों से सजी पुस्तक-रत्न का मूल्य केवल आठ रुपये। डाक खर्च अलग।

४. अनुभव के मोती, डाक्टरों के अनुभव तथा अनुभव विश्वकोष

इसमें पहले प्रत्येक रोग का परिचय, कारण-लक्षण और निदान आदि चार्टों के रूप में खूब खुलासा देकर, विश्वविख्यात डाक्टरों के हजारों बार के अनुभूत, सरल से सरल योग (डाक्टरी चुटकुले) दिए गए हैं। ये एलोपैथिक चुटकुले सस्ते हैं, बनाने में बिल्कुल सरल हैं, साथ ही रोगों को दूर करने में भी सफल सिद्ध हुए हैं।

ब्रिटिश फार्माकोपिया लन्दन, पंजाब होस्पीटल फार्माकोपिया, दिल्ली डिस्पैन्सरीज फार्माकोपिया, राजस्थान फार्माकोपिया, उत्तर प्रदेश होस्पीटल फार्माकोपिया, बंगाल फार्माकोपिया तथा पाकिस्तानी फार्माकोपिया आदि के सैकड़ों उपयोगी नुस्खों का पूरा पूरा हाल तथा, एशिया, अफ्रीका और यूरोप की सैकड़ों सरकारी डिस्पैन्सरियों में रात-दिन काम में आने वाले सब प्रकार के कई सौ योगों के नुस्खे, उनके बनाने की विधियाँ, मात्रायें, सेवन विधियाँ तथा विशेष गुणों आदि का बिल्कुल नए ढंग से वर्णन किया गया है।

सैकड़ों चार्टों-चित्रों से सजी, ६७२ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल छः रुपया। डाक खर्च अलग।

५. निदान नवनीत चार्टस तथा निदान विश्वकोष

इस "निदान विश्वकोष" में रोगों के शब्द-कोष, प्रत्येक रोग का सही निदान, रोग का परिचय, रोग के कारण, रोग के लक्षण, रोग की पहचान, रोग-परिणाम, आजकल की निदान करने की नई-नई विधियाँ, निदान सम्बन्धी अब तक के हुए नये-नये आविष्कार, रोगों के सम्बन्ध में आयुर्वेद के ऋषियों, यूनान के हकीमों तथा एलोपैथिक डाक्टरों की अलग अलग अमूल्य रायें, अवैज्ञानिक पुस्तकों की बहुत सी बेबुनियाद तथा गलत बातों का खण्डन निदान-सम्बन्धी सैकड़ों प्रश्नों के चार्टों के रूप में उत्तर और विश्वविख्यात हजारों डाक्टरों के निदान-सम्बन्धी जीवन भर के बहुमूल्य अनुभवों तथा खोजों का विस्तृत वर्णन, बिल्कुल नये ढङ्ग से, चार्टों एवं चित्रों के रूप में किया गया है।

कई सौ चित्रों, चार्टों और कोषों से सजे आठ सौ के लगभग पृष्ठों से भरपूर हिन्दी के सर्वप्रथम इस विशाल निदान विश्वकोष का मूल्य केवल ८.०० आठ रुपया। डाक खर्च अलग।

निवेदन— इन पुस्तकों को मँगाने के बाद आप उन्हें गुप्त नहीं रखें बल्कि इन्हें अपने साथी वैद्यों, हकीमों, हिन्दी जानने वाले डाक्टरों तथा अपने प्रिय शिष्यों आदि को भी दिखाने की कृपा करें ताकि वे भी इन पुस्तकों की सहायता से अपने रोगियों की अच्छी से अच्छी सेवा कर सकें।

पुस्तकों की जो विशेषतायें बताई गई हैं, वे असल में बहुत कम हैं। ये पुस्तकें, ये और इन जैसी बहुत सी विशेषताओं से भरपूर हैं। विशेष जानकारी के लिए, एक कार्ड डालकर ७२ (बहत्तर) पेज वाली पुस्तक–सूची बिल्कुल मुफ्त' मँगाइये। इस ग्रन्थ-सूची में "चिकित्सा विज्ञान" के लगभग तीन दर्जन चार्ट, चित्र और विश्वविख्यात डाक्टरों के एक सौ चालीस अनुभव (अनुभूत योग) भी दिये गये हैं। हमें आपके "कृपापत्र" की प्रतीक्षा बनी रहेगी।

तीन या तीन से अधिक पुस्तकें एक साथ मँगाने पर आधा डाक खर्च माफ और साथ में दो आना रुपया कमीशन भी दिया जायेगा। चार्टों-चित्रों से सजी मुफ्त पुस्तक सूची या वी० पी० द्वारा पुस्तकें मँगाने का पता—

ाधना प्रकाशन [रजिस्टर्ड] १७/१११, रोहतक रोड, नई दिल्ली-५

Scanned with CamScanner

वनौषधि विशेषांक (चतुर्थ भाग)

की

विषयानुक्रमणिका

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वनौषधि विशेषांक (चतुर्थ भाग)

की

चित्र-सूची

Scanned with CamScanner

धत्तेभरं कुसुमपत्र फलावलीनां घर्मव्यथां वहति शीतभयां रुजं च ।
यो देहमर्पयति चान्य सुखस्य हेतोस्तस्मै वन्दान्यगुरुये तरवे नमस्ते ।।

—भवभूति

भाग ४१
अङ्क २

वनौषधि-विशेषांक
(चतुर्थ भाग)

फरवरी
१९६७

वनौषधि-प्रार्थना

या: फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणी: ।
बृहस्पतिप्रसूता स्तानो मुंचन्त्वं हस: ।।

—यजु. १२ । ८९

बृहस्पति द्वारा आविर्भूत फलयुता अथवा फल रहिता पुष्पों सहित अथवा पुष्पों रहित जो ओषधियां हैं वे हमारे रोगजनित दुःखों को दूर करें ।

मुंचन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद् देवकिल्विषात् ।।

—यजु. १२ । ९०

वे ओषधियां मुझको शपथ सम्बन्धी दोष, सज्जन निन्दक-दोष, यमराज के आतंक के भय तथा देवताओं के प्रति किए हुए सम्पूर्ण अपराधों से छुड़ावें ।

अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधियस्परि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ।।

—यजु. १२।९१

[दिवः] स्वर्ग से [अवपतन्ती] उतरती हुई [ओषधयः] ओषधियां [परि] मिलकर [अवदन्] बोली [यं] जिस [जीवम्] जीवको [अश्नवामहै] हम प्राप्त होवें [स] वह [न] नहीं [रिष्याति] दुःखी होगा ।

Scanned with CamScanner

बनौषधि-प्रशस्ति

औषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरोर्वीरुधः पारयिष्णवः ।।

——शतपथ ब्रा० १।३।४

हे ओषधियो ! आप रोगियों पर प्रसन्न हों । आप पुष्पों व फलों वाली हैं । अच्छे अश्व के समान रोगों को जीतते हुए पुरुषों को नीरोग करने वाली हों ।

अश्वथो वटवृक्ष चन्दनतरुः मन्दार कल्पद्रुमो ।
जम्बू निम्ब कदम्ब आम्र सरला वृक्षाश्चयेक्षीरिणा ।।
सर्वे ते फल संयुक्ता प्रतिदिनं विभ्राजनं राजते ।
रम्यं चैत्ररथं सुनन्दन बनं कुर्वन्तो नो मङ्गलम् ।।

— सुभाषित रत्न

पीपल, बरगद, चन्दन, मदार, कल्पवृक्ष, जामुन, नीम, कदम्ब, आम, साल सभी दूध वाले वृक्ष जो प्रतिदिन फलों से लदे हुए इस बन में शोभायमान हैं हमारा कल्याण करें ।

दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा वृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति ।
ज्ञात्वेति सन्देहमपास्य धीरैः संभावनीया विविध प्रभावाः ।।

—शार्ङ्गधर

जैसे देवताओं के अनेक भेद प्रभेद हैं, तैसे ही दिव्यौषधियों की अनेक जाति उपजतियां हैं । इस प्रकार की विविधता को देखकर चिकित्सक संदेह में पड़ जाता है । उसे धैर्य पूर्वक औषधियों के गुण, कर्म, प्रभावादि का ज्ञानकर निःसंदेह होकर चिकित्सा-कार्य का सम्पादन करना चाहिये ।

ओऽम् ! मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो, मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ।।

——अथर्व वेदकाण्ड २०, सूक्त १४३

हमारे लिये औषधियां रसों से परिपूर्ण तथा गुणवती हों । सूर्य चन्द्र एवं नक्षत्र आदि से युक्त द्युलोक तथा जल एवं जलीय पदार्थ मधुमय हों । अन्तरिक्ष और उससे प्राप्त होने वाले पदार्थ हमारे लिये मधुमय हों । हमारा क्षेत्रों का पालक कृषक वर्ग मधुर अन्न आदि पदार्थों से सम्पन्न होकर हमारे लिये सुखदायी हो । हम परस्पर द्वेष और हिंसा भाव से मुक्त होकर सभी शुभ कार्यों में सहयोगी एवं सहायक हों ।

Scanned with CamScanner

न

नकछिंकनी (Centipeda Orbicularis)

गुडूच्यादि वर्ग एवं भृङ्गराजकुल (Compositae) के इस वर्षायु ४-८ इंच लम्बे, छत्ताकार क्षुप के काण्ड-बहु शाखा-प्रशाखा युक्त, रोमश, भूमि पर फैले हुए, पत्र—गाजर के पत्र जैसे किंतु बहुत छोटे, ½-१ इंच लम्बे, दन्तुर, वृन्तरहित, मृदुरोमश, पुष्प—कक्षीय या शाखाओं की संधियों से निकले हुए नन्हें-नन्हें घुण्डीदार गुच्छों में बहुत छोटे छोटे (प्रत्येक गुच्छ में १०-१२) पीत या श्वेत वर्ण के होते हैं। फल छोटे छोटे तथा बीज-जंगली तुलसी के बीज जैसे होते हैं।

ये क्षुप मैदानों, तालावों, नदी नालों की समतल भूमि पर शीत ऋतु के अन्त में प्रायः समस्त भारत में (बंगाल में अधिक) एवं सीलोन में भी पाये जाते हैं।

नोट (नं. १) — एक नकछिकनी अर्ककुल (Asclepiadeae) की होती है। इसे मधुमालती, मरेठी में दोधी, तितकुंगा, व लेटिन में ड्रेजीव्होलोबिलिस (Dregea Volubilis) कहते हैं। इसके क्षुप प्रस्तुत छिकनी के क्षुपों की अपेक्षा बड़े एवं ऊंचे, तथा पुष्पों के घुण्डीदार गुच्छे या डोड़े बड़े होते हैं। यह विशेष तिक्त या तीक्ष्ण नहीं होता। इसे मीठी-नकछिकनी भी कहते हैं। इसमें-ग्लुकोसाईड (फल शर्करा), ड्रेजीन (Dregein) नामक एक तत्व तथा कुछ क्षाराभ् (अल्कोलायड़) पाया जाता है। यह कफ निःसारक है। तथा नेत्रविकारों में और सर्पदंश पर उपयोगी है। —नाडकर्णी।

नं. २—चरक के शिरोविरेचनोपग (एवं शिरो रोग) और कटुस्कन्ध में तथा सुश्रुत के मुस्तादि गणों में इसका उल्लेख है।

नाम—

सं.—क्षवक (छींक लाने वाली), छिक्कनी, छिक्किका, तीक्ष्णा, घ्राणदुःखदा (तीक्ष्णता से नाक में क्षोभकारक) आदि।

हि.—नकछिकनी, छिकनी। म.—नाक शिकणी, भूतकेशी। गु.—नाक छींकणी। बं.—मेचेता, हाचुति, छिकनी। अं.—स्नीझवीड़ (Sneeze weed)। ले.—सेंटीपीड़ा आर्बिक्युलारिस, मायरिओगिनी मिनुटा (Myriogyne Minuta)।

रासायनिक संघठन—

इसमें एक उड़नशील तैल एवं तिक्त तत्व मायरियोगिनिन (Myriogynin) के अतिरिक्त एक क्षाराभ्, अत्यल्प सापोनिन और एक ग्लुकोसाईड पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, बीज तथा पंचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष, कटु, कषाय, कटु-विपाक, उष्ण-

नाकछिंकनी
CENTIPEDA ORBICULARIS LOUR

Scanned with CamScanner
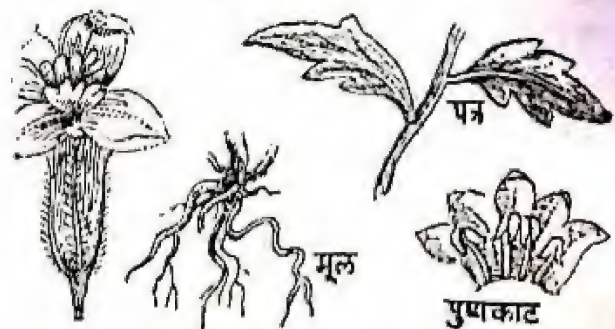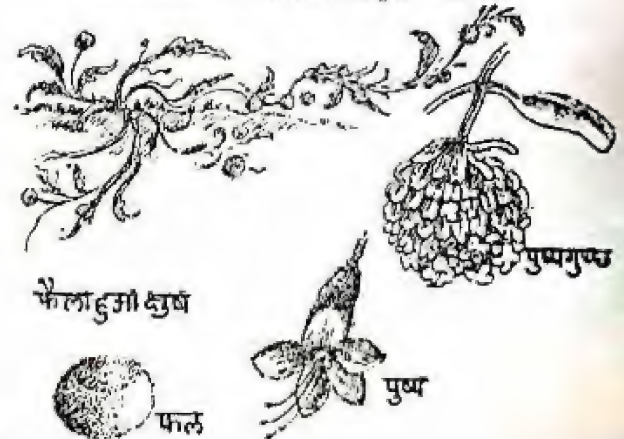
वीर्य, कफ वात शामक, रोचन, दीपन, पित्तकर, उग्र-गन्धी, लेखन, रक्तप्रसादन, वाजीकरण, नाड़ी दौर्बल्य, कास, श्वास, हिक्का, वातरक्त, पक्षाघात, अरुचि, अग्नि-मांद्य, कृमि, प्लीहावृद्धि, रक्तविकार, श्वेतकुष्ठ, ग्रहपीड़ा, भूतबाधा, दृष्टिविकार, नपुंसकता आदि में प्रयुक्त होता है।

पत्र—वामक, कफनिःसारक, विरेचक हैं। पत्र और फूलों को मसलकर सूंघने से छींकें आती हैं, हिक्का बन्द होती है। बीज—कृमिघ्न हैं।

पत्र एवं पंचांग का लेप—कुष्ठघ्न, वेदनास्थापक एवं नस्य शिरोविरेचन है।

१. प्रतिश्याय, पीनस, शिरःशूल, अर्धावभेदक तथा सिर के भारीपन में इसके स्वरस,चूर्ण या फूल की घुण्डी को मसलकर नसवार-नस्य देने से खूब छींकें आकर प्रतिश्याय (जुकाम) खुल जाता है, सर दर्द दूर होता तथा पीनस के कृमि नष्ट हो छींकों के साथ निकल जाते हैं एवं बदबू दूर होती है, गन्दा पानी निकल जाता है। यदि इस नस्य से नासिका में विशेष तीव्र क्षोभ हो तो नासिका में घृत डालना चाहिए।

यदि जुखाम या नजला विशेष तीव्र हो या चिरकारी हो तो इसका चूर्ण २५ माशा, समुद्रफल १२ नग, लौंग २५-नग तथा कस्तूरी १ रत्ती, सबके चूर्ण को अदरख के रस में खरलकर छाया शुष्क कर रक्खें। इसे किंचित दिन में २-३ बार सूंघने से शीघ्र २-४ दिन में ही लाभ होता है।
—(यूनानी)

बंगाल की ओर अहोवा नामक एक नासिका-रोग होता है जिसमें नाक के भीतर एक फुंसी सी निकलती है तथा साथ ही तीव्र ज्वर आता है। यदि शीघ्र चिकित्सा न हो तो रोगी की मृत्यु होती है। इस पर इसके बीज या छायाशुष्क पत्र चूर्ण के साथ समभाग पीपलामूल (प्रत्येक २-२ माशा) और कस्तूरी ½ माशा सबको महीन खरल कर थोड़ा-थोड़ा सूंघने से लाभ होता है।
—व. चं.।

२. अग्निमांद्य पर—विशेषतः शीतकाल में इसके बीजों के चूर्ण की मात्रा प्रथम कुछ दिन ४-४ रत्ती, गुड़ में मिलाकर सेवन करें, फिर १-१ रत्ती बढ़ाते हुए १ मा. तक बढ़ावें। इस प्रकार सेवन से जठराग्नि दीप्त होकर क्षुधावृद्धि होती है। यदि इसके सेवन से उष्णता अधिक प्रतीत हो तो कुलफा के बीज और मिश्री के फाण्ट के साथ इसका सेवन करें। अथवा—

बीज चूर्ण ४ भाग को अदरख रस १० भाग में खरल कर उसे फिर १० भाग घृत में भून कर घृत को छान लें। यह घृत १-२ रत्ती की मात्रा में सेवन करें।

(३) स्त्रियों के असामयिक ऋतु-निरोध (मासिक धर्म बन्द होने) पर इसके पत्र चूर्ण को मिश्री के साथ ७ दिन तक सेवन करावें। तथा पत्रों को तैल में खरलकर लम्बी सी गोली बना ऋतुकाल में ३ दिन तक योनि में धारण करावें। नित्य १-१ गोली बदलते रहें। व. गु.।

(४) प्लीहावृद्धि, गुल्म तथ रूक्षवात (जिसमें वात प्रकोप से शरीर निस्तेज एवं रूखा हो जाता है) पर—पत्रचूर्ण मात्रा १ मा. से धीरे धीरे बढ़ाकर ३ मासा तक ७ से १५ दिन तक सेवन से प्लीहा वृद्धि दूर होती है। पथ्य में दही चावल देवें।

इसके पंचांग के क्वाथ के सेवन से गुल्म और रूक्षवात में लाभ होता है—व. गु.।

नाभी टल गई हो, (धरण चली गई हो) तो इसका चूर्ण १ मासा लेकर गुड़ में मिला प्रातः सायं कुछ दिन लेने से लाभ होता है।

(५) योषापस्मार (हिस्टीरिया) पर तथा गर्भपातार्थ यदि अपस्मार के शीघ्र-शीघ्र, बार बार दौरे होते हों तो इसके छायाशुष्क पंचांग का चूर्ण १-१ रत्ती, २० तोला दूध के साथ १ या २ बार पिलाने से २-३ मात्रा में दौरे रुक जाते हैं।

गर्भपातार्थ—इसे पीसकर शहद मिला गर्भवती की नाभी पर लेप करने से गर्भ गिर जाता है—धन्वन्तरि।

(६) उदर-कृमिनाशार्थ—इसका चूर्ण ४ रत्ती गुड़ में मिलाकर खाने से कीड़े मर जाते हैं फिर २-३ तोला एरंड तैल दूध के साथ पीने से मृत-कृमि निकल जाते हैं।

नाभी टल जाने पर—इसके १ माशा चूर्ण को गुड़ के साथ खाने से नाभी अपने स्थान पर आ जाती है।
—धन्वन्तरि।

Scanned with CamScanner

(७) नेत्रविकार—नेत्राभिष्यन्द पर–इसके पंचांग के क्वाथ से प्रक्षालन करते रहने से विशेष लाभ होता है।

रतौंधी पर—इसके स्वरस में पिप्पली घिसकर नेत्रों में आंजने से १-२ दिन में ही लाभ हो जाता है व.गु.

(८) दाद, खुजली आदि चर्म रोगों पर—इसे पानी के साथ पीस कर लेप करते हैं। अथवा–इसे तैल में जलाकर, तैल को छान कर लगाते हैं। इससे श्वेत कुष्ठ में भी लाभ होता है।

(९) दन्तशूल पर—दांत या दाढ़ में दर्द हो तथा मसूढ़े सूज गये हों तो इसे सोंठ के साथ पीसकर गरमकर कपोल पर मोटा मोटा लेप लगा देने से आराम हो जाता है। —धन्वन्तरि

इसके पत्तों को पीस छोटी गोली बना दांतों के बीच दबा लेने से भी लाभ होता है।

नोट – मात्रा—४ रत्ती से १ मासा या अधिक से अधिक ३ मासा तक। इसके अत्यधिक सेवन से यकृत-पीड़ा तथा फुफ्फुसों को हानि पहुंचती है। अधिक सूंघने से छींकें अत्यधिक आती हैं, घबड़ाहट होती तथा मूर्छा भी आ जाती है। इन विकारों के निवारणार्थ गव्य-घृत तथा कतीरे का सेवन कराते हैं। इसके प्रतिनिधि सन के बीज हैं।

विशिष्ट योग

(१) तैल नकछिकनी—इसे १ सेर लेकर महीन पीस उसमें १ पाव तिल तैल मिला, खरल कर गोलियां बना, पाताल यंत्र द्वारा तैल निकाल लें। इसे ४ रत्ती की मात्रा में, पान में लगाकर खाने से हाजमा बढ़ता है। तथा बाजीकरण है। —धन्वन्तरि।

(२) माजूम नकछिकनी—इसे १ सेर लेकर ५ सेर दूध में पकाकर खोआ बना लें। फिर इसे ½ सेर गोघृत में भून कर १ सेर खांड़ तथा १ सेर शहद की चाशनी में मिला दें। दालचीनी, कवाबचीनी, पान की जड़ या कुलंजन और लौंग ३-३ मासा तथा कस्तूरी १ मासा महीन पीस पाक में मिलावें। मात्रा–६ मासा गोदुग्ध के साथ सेवन करें। यह वीर्यवर्धक, बाजीकर है। प्रमेह व शीघ्रपतन में विशेष लाभकारी है–यूनानी चिकित्सा सागर

(३) ताम्रभस्म—१ तोला शुद्ध ताम्र के छोटे-छोटे टुकड़े कर १ पाव नकछिकनी की लुगदी में रख शराव सम्पुट कर १० सेर उपलों में फूंक दें। इस प्रकार ७ बार फूंकने से काले रंग की भस्म तैयार होती है। मात्रा ½ रत्ती। भूख और बल को बढ़ाती है, शूलघ्न है। सन्निपात, प्रसूत रोगों में अद्वितीय है। यह नेत्र रोगों में भी लाभकारी है। इसे सुरमे की तरह लगाते हैं।

—धन्वन्तरि व सचित्रआयुर्वेद।

(४) तालभस्म – शुद्ध हरताल तबकिया १ तोला को इसके रस में ३ दिन घोटकर टिकिया बनालें। सूख जाने पर इसके पंचांग के १ पाव कल्क में रख (शराव संपुट कर) कपड़मिट्टी कर ५ सेर कण्डों में फूंकदें। श्वेत भस्म होगी। मात्रा–१ रत्ती। यह उत्तम रक्तशुद्धिकारक है।

(५) फौलाद भस्म—शुद्ध फौलाद के बुरादे को चीनी मिट्टी के प्याले में डाल, उसमें इसका रस इतना डालें कि १ अंगुल बुरादे के ऊपर रहे। ४० दिन बाद निकाल कर इसे इसके तथा खट्टे अनारदानों के रस में ७ दिन खरल कर टिकिया बना सम्पुट कर १० सेर कण्डों में फूंक दें। फिर इसके रस में ३ दिन खरल कर गजपुट दें। ऐसी ७ आंच देने पर नसवारी रंग की उत्तम भस्म होगी। मात्रा १ से ४ रत्ती। यह रक्तवर्धक और पांडु-नाशक है —वैद्याचार्य उदयलाल जी महात्मा।

नकुलकन्द देखो—सर्पगन्धा।
रक्तरस देखो सूबकलां।
नगंधबावरी देखो—तुलसी बबई में।
नदी जम्बू देखो—जामुन में।
नयनतारा देखो—मांसाबुंद की बूटी।
नन्दीवृक्ष—पीपल वृक्ष पहाड़ी।

नरकचूर (Zingiber Zerumbet)

हरीतक्यादि वर्ग एवं हरिद्रा कुल (Scitamineae) का इसका पौधा हल्दी जैसा ५-६ फुट ऊंचा व ½ इंच व्यास का गोल; पत्र-१०-१२ इंच लम्बे, २-३ इंच चौड़े, नरसल के पत्र जैसे; किंचित् अण्डाकार अनीदार

Scanned with CamScanner

निम्न भाग सूक्ष्म रोमश; पुष्प-१२-१८ इंच तक लम्बी सीकों पर, फीके हरित वर्ण के, अग्रभाग में किंचित् काले रङ्ग के; फल-१ इंच लम्बे अण्डाकार; बीज-छोटे कुल गोल, काले रङ्ग के होते हैं। इसके मूल के नीचे बहुत कड़ा रेशेदार, कुछ फीके पीले रङ्ग के किंचित् लालिमायुक्त कन्द होते हैं। इसे ही नरकचूर कहते हैं। ये कचूर की अपेक्षा मोटे व लम्बे होते हैं।

उक्त कन्द को निकालकर, टुकड़े कर तथा शुष्ककर बाजार में बेचते हैं। ये टुकड़े गंध में सोंठ की गंध जैसे स्वाद में कुछ कडुवे होते हैं।

नोट—कई लोग कचूर को ही नरकचूर मानते हैं। ध्यान रहे यह कचूर की ही एक बड़ी जाति है। भावप्रकाश कार ने इसे कुलिंजन का एक भेद महाभरीवच माना है। हमें भी इसे महाभरीवच मानने में कोई विशेष आपत्ति नहीं है। यथा-स्थान वच का प्रकरण देखें।

नाम—

सं.—अगंधी, कर्पूर हरिद्रा। हि.—नरकचूर, महाभरीवच, कालीहल्दी। म. काळी हळद, नरकचोरा। गु.—काली हळद, नरकचोरा। बं.—महाभरीवच, नीलकंठ, कालहरिद्रा। ले—जिंजिबर जेरंबेट, कर्क्यूमा सिसिया (Curcuma caesia)

यह भारत के अनेक प्रान्तों में नैसर्गिक पैदा होता है। बंगाल के जंगलों में होता है, तथा बागों में लगाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

सुगंधित, कफ कासनाशक, स्वरशोधक, रोचक, हृद्य, कंठ एवं मुख शुद्धिकारक है। कास, श्वास, कृमि, कुष्ठादि अन्य चर्मरोगों में इसका व्यवहार किया जाता है। इसके गुणधर्म व प्रयोग प्रायः सोंठ, कचूर या हल्दी जैसे ही हैं। वच की अपेक्षा यह हीन गुणवाला है। इसे प्रायः

Scanned with CamScanner

जंगली सोंठ भी कहते हैं। ताजे नरकचूर का उपयोग हल्दी के समान ही किया जाता है। आघात, चोट, कुचलना या भीतरी घाव से होने वाले तैसे ही सन्धिवात-जन्य वेदना पर इसका गरम प्रलेप लाभप्रद होता है। कास, श्वासादि फुफ्फुस सम्बन्धी विकारों पर इसे पानी में उबालकर सेवन कराते हैं। बाल-शोष (सूखा रोग) पर इसका चूर्ण २-३ रत्ती, दूध के साथ प्रातःसायं देते हैं। बालकों को हरे दस्त होते हों तो इसे ॥ से १ रत्ती तक मां के दूध में घिसकर या सुखोष्ण जल के साथ पिलावें।

नरकट नल नं १ (Arundo Donax)[1]

गुडूच्यादि वर्ग एवं यवकुल [Graminaceae] के इस ६ से १२ फुट ऊंचे, बांस जैसे किंतु छोटे पतले पौधों के काण्ड के पर्व पीताभ, भीतर से पोले; पत्र—बांस-पत्र जैसे किंतु छोटे, पतले, पुष्प-व्यूह की छोटी छोटी धूसर वर्ण की सलाकायें होती हैं। इसके बीजकोष और बीज नहीं होते। पौधों की वृद्धि भौमिक काण्डों द्वारा होती, तथा शीघ्र ही बढ़कर ये झाड़दार हो जाते हैं। इसके पोले पर्व भाग से हुक्के एवं वाद्ययन्त्रों की नलिकायें बनाई जाता हैं।

नोट—इसका एक भेद फ्रेग्माइटिस कर्का Phragemites karka] है। यह स्वरूप में उक्त जैसा ही, किंतु इसके पर्व भाग उसकी अपेक्षा छोटे, पत्र-सीधे, कड़े, १-२ फुट लम्बे, व १-१½ इंच तक चौड़े होते हैं। इसके गुणधर्म प्रायः उक्त नरकट के जैसे ही हैं।

प्रस्तुत प्रसंग के नल [नरकट] की गणना सुश्रुत के तृणपंचमूल में[2] तथा वीरतृणादिगण में की गई है।

इसके पौधे जल प्रचुर, दलदली स्थानों में अधिक पाये जाते हैं।

नाम–

सं—नल, पोटगल, शून्यमध्य [पोला होने से] धमन [पोली काण्डों की नलिकायें, फुकनियां बनाते हैं)। हि—नरकट, नरसल। म—नल। गु—नाली, नड़सल। बं—नल। ले—अरुण्डो डोनेक्स, अं—कार्का [Arundokarka]।

प्रयोज्य अंग—मूल।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, स्निग्ध, मधुर, कषाय, तिक्त, मधुर-विपाक, शीतवीर्य, त्रिदोषहर-विशेषतः वातपित्त-शामक, रक्तशोधक, दाहप्रशमन, व्रणरोपण, स्तन्यजनन, वृष्य, मूत्रल है। तथा रक्तपित्त, अन्य रक्तविकार, मूत्रकृच्छ, वस्तिशोथ, दाह आदि में प्रयुक्त होता है।

इसका लेप-दाह, व्रण, विसर्प एवं अन्य चर्मरोगों पर किया जाता है।

स्तन्य वृद्धि के लिए —मूल का क्वाथ सेवन कराते हैं। यह क्वाथ शुक्र दौर्बल्य में भी लाभकारी है।

---

[1] निघण्टु ग्रन्थों में नल विषयक जो संक्षिप्त विवरण है वह भ्रमोत्पादक है। किसी ने इसे शीतवीर्य तो किसी ने उष्णवीर्य माना है। राज निघंटु एवं धन्वन्तरि निघण्टु कारों ने इसके दो भेद किये हैं (१) नल और (२) महानल। इसमें से नल को शीतवीर्य एवं रक्तपित्तहर कहा है। अतः यही चरक सुश्रुतादि के पित्तविकार, विसर्प, मूत्रविकारादि के प्रयोग में आया हुआ नल होना चाहिये। इसके साथ कुश, दर्भ, ईख मूलादि पंचतृणों की योजना भी उन प्रयोगों में कहीं कहीं पाई जाती है। ये द्रव्य पित्तशामक तथा मूत्रल हैं। अतःप्राचीन ग्रन्थोक्त नल उन्हीं के तृण या यवकुल का होना चाहिये। हम प्रथम इसी नल (नरकट) को नल नं० १ के नाम से प्रस्तुत प्रकरण में देकर, पश्चात् डा० म्हसकर आदि कुछ आधुनिक विद्वानों का माना हुआ नल [नरसल] या महानल का विस्तृत वर्णन नं० २ के आगे के प्रकरण में देते हैं। उक्त निघंटुकारों ने महानल को अधिक वीर्यशाली, रसक्रिया में उपयोगी एवं उष्णवीर्य माना है। भावप्रकाशकार ने जिस नल को उष्णवीर्य माना है। यह महानल ही होना सम्भव है।

[2] "कुशकाश नल दर्भ काण्डेक्षुका इति तृणसंज्ञकः"-सु. सू. अ. उ.। चरक के तृणपंचमूल में कुश, नल व काण्डेक्षुक [खागड Saccharum Fuscum] के स्थान में शर, ईक्षु और शाली हैं। 'शरेक्षु दर्भ काशानां शालीनां मूलमेव च'—[च. चि. अ. १]

Scanned with CamScanner

विसर्प पर–जड़ को महीन पीसकर घृत मिला, लेप करने से लाभ होता है –ग. नि.।

ज्वर पर—इसकी जड़, बेत की जड़, मूर्वा और देवदारू का क्वाथ ज्वरनाशक है –ग. नि.

मूत्राघात पर—नल, कुश, कांस और ईख इन चारों की जड़ के क्वाथ को ठण्डा कर, उसमें (क्वाथ का आठवां भाग) मिश्री मिलाकर प्रातः पिलाने से वेदनायुक्त मूत्राघात अवश्य नष्ट हो जाता है। –यो. र.

भैषज्य रत्नावली में इसके मूल पाठ के अन्त में—'इत्युवाच चरकः' (चरक ने ऐसा कहा है) ऐसा लिखकर इस प्रयोग को और भी प्रमाणित कर दिया है।

नोट—मात्रा–क्वाथ–५-१० तोला तक।

इसका जो दूसरा भेद ऊपर दर्शाया गया है उसके मूल का क्वाथ स्नेहन, आर्त्तवजनन तथा स्तन्य को कम करने वाला है। इसमें ग्रेमाइन (Gramine) तथा डोनेक्सेराइन (Donaxarine) नामक दो क्षाराभ (अल्कलाईड) पाये जाते हैं।[१]

नरकट नल (नरसल) नं० २ (Lobelia Nicotianfolia)

इस लुदुत (पंजाबी) कुल[२] या वन तमाखू कुल (Eampaunlaceae) के द्विवर्षायु ५ से १२ फुट ऊंचे क्षुप के काण्ड के अग्र भाग का पोला भाग बहु शाखा युक्त एवं लगभग १ फुट लम्बे श्वेत तुर्रे से युक्त होता है। पत्र– तमाखू के पत्र जैसे संख्या में बहुत। हलके हरे रंग के साधारणतः २-१० इंच लम्बे छोटे वृन्त से युक्त; नीचे के कोई पत्र १॥ फुट तक लम्बे, २ इन्च चौड़े, तथा ऊपर के क्रमशः छोटे, भालाकार तीक्ष्ण नोकदार महीन दांतों से युक्त एवं मृदुरोमश; पुष्प-नीलाभ श्वेतवर्ण के, १ फुट तक लम्बी मंजरियों में आते हैं। पुष्प दंड पर एक गाढ़ा, पीतवर्ण का स्राव जमा हुआ पाया जाता है। इसकी डाली तोड़ने से दूध जैसा स्राव निकलता है।

फल—द्विकोष्ठीय, फूले हुए गोल, छोटे छोटे ५-६ मि. मि. व्यास के सूखने पर तड़क जाने वाले; बीज-अण्डाकार, बहुत छोटे, पीताभ भूरे रंग के स्वाद में

---

[१] नल नामक एक पौधा और होता है, जिसे भाषा में खुभिया, खुब्भी, खुब्भा कहते हैं। यह तृण जाति का अकृष्टपच्य (बिना जोते बोये पैदा होने वाला) पौधा है। यह दूर्वा के समान मुलायम, अंकुरवत, चढ़ाव उतार वाला, पोला एवं हरा होता है। तथा विशेष जल वाले स्थानों में या जिनों खेतों में वर्षा काल में जल रहता तथा जाड़ों में नमी रहती है, तहां उत्पन्न होने वाला स्वयं रुह क्षुप है। इसका पौधा ½ फुट से १½ या २ फुट तक होता है। इसका एक बड़ा भेद महानल है जिसे देवनाल, नलोत्तम, स्थूलनाल आदि कहते हैं, यह ३-४ फुट तक होता है। यह पशुओं के चारे में खिलाया जाता है तथा नल का फलाहार आदि में विशिष्ट व्यवहार किया जाता है।

सुश्रुत के मूत्र दोषहर नलादि क्षीर में इसका उल्लेख है—जिसमें नल, पाषाणभेद, कुश, ईख, ककड़ी, खीरे की जड़ या बीज, मोर बीजक (विजयसार) समभाग मिश्रण २ तोला को १६ तोला दुग्ध व ६४ तोला जल में पकावें। दुग्ध मात्र शेष रहने पर १ तोला गौघृत मिलाकर सर्वमूत्र दोषों में पिलाने का विधान है। (सु. उ. तंत्र अ. ५८)

इसी प्रकारसुश्रुत उ. तंत्र अ. २६ में पित्त एवं रक्त प्रकोप जन्य शिरोरोग पर इसका विधान किया गया है।

नल के बीजों का लावा (लाई) ज्वरी को खिलाते हैं। अतिसार में देने से दस्त रुकता है। अम्लपित्त में इस लावे को देने से लाभ होता है। इसे अरुचि पर नमक व खट्टे अनार या नीबू के रस के साथ खाते हैं। यह फलाहार है, निर्बलता पैदा नहीं करता, स्फूर्ति हल्कापन एवं रक्त शोधन करता है रक्तचाप में विशेष उपयोगी है। (श्री मोहनशरण मिश्र कमलेश कुटीर वासाहांड़ा पोस्ट केपाल गया के लेख का संक्षिप्तसार यहां देते हैं। पूर्ण लेख धन्वन्तरि के अंक में प्रकाशित होगा)।

[२] इस कुल में इस नल के साथ केवल दो और पौधे लुदुन (Condonopis Guata) तथा मुरा (Cyananthus) नाम के पाये जाते हैं। इनका वर्णन यथा प्रसङ्ग आगे देखिये।

Scanned with CamScanner

अति चरपरे होते हैं।

इस क्षुप के ऊपरी भाग को पत्र सहित, अक्टूबर तथा नवम्बर मासों में तोड़ कर छाया शुष्क कर औषधि कर्मार्थ उपयोग में लाते हैं इसके सूखे हुए पौधे पर राल जैसा एक पदार्थ लगा रहता है। जो स्वाद में उष्ण एवं चरपरा होता है। इसकी धूल से तमाखू की तरह नाक तथा गले में क्षोभ होता है। इसकी पोली नली से बंसी बनाई जाती है जिसे कोकण में पावा कहते हैं (श्री गंगा सहाय जी पांडेय के भा. प्र. निघण्टु से साभार)।

इसके क्षुप दक्षिण भारत के पश्चिमी घाट में बम्बई से त्रावणकोर तक २-७ हजार फुट की ऊंचाई पर कोकण, माथेरान, महाराष्ट्र के दक्षिण प्रदेश, नीलगिरी, मलाबार, मैसूर में पाये जाते हैं।

नाम–

हि०--नल, नरसल। म० देवनल, बोकेनल, नल। बं–बड़ानल। गु.--नाली। अंग्रेजी—वाइल्ड टोबको (Wild tobacco), लोबेलिया (lobelia)। ले. लोबोलिया निकोटि आनिफोलिया।

इसमें मुख्यत: लोबेलीन (Lobeine) नामक एक क्षाराभ लगभग 0 8 % पाया जाता है। इसकी क्रिया तमाखू के निकोटीन (Nicotine) सदृश होती है।

गुण धर्म प्रयोग—

मधुर, तिक्त, कसैला, उष्णवीर्य, एवं कफ, रक्त विकार, हृदय, बस्ति, योनि सम्बन्धी पीड़ा, उद्वेष्टन युक्त श्वास नलिका शोथ (ब्रांकाइटिस), तमकश्वास, कास आदि में प्रयुक्त होता है। अधिक मात्रा में यह विषैला है इसके प्रयोग से हृल्लास उत्पन्न होकर कफ निकलता है। तमक श्वास में आवेग के समय तथा बाद में भी इसके टिंचर की मात्रा १० बूंद दिन में ३ बार अन्य औषधियों के साथ दी जाती है। उद्वेष्टनयुक्त कास में भी इससे लाभ होता है।

इसकी फली या पत्रों को थोड़ी देर चबाने से चक्कर कंप, शिरःशूल तथा अन्त में हृल्लास व वमन होता है। पूर्ण मात्रा में देने से शीघ्र ही तीव्र वमन तथा साथ ही हृल्लास, प्रस्वेद तथा शिथिलता उत्पन्न होती है।

वृषण शैथिल्य (अण्डकोष के ढीले हो जाने) पर इसकी जड़ १ तो. तक लेकर नारियल के रस में पीस कर पिलावें तथा कानों में जुवार के कोमल काण्ड के टुकड़ों को १४ दिन तक धारण करावें। —व. गु.

कंठ नलिका शोथ पर—इसके क्षुप के तुर्रों का चूर्ण चिलम में रख, धूम्रपान करते हैं। —व. गु.।

गठिया पर—इसकी जड़ को तिल तैल में पकाकर मालिश करने से लाभ होता है।

नोट—मात्रा—चूर्ण आधी रत्ती से १½ रत्ती तक। टिंचर लोबेलिया इथेरिया-५ से १५ बूंद। अधिक मात्रा में—हृल्लास, वमन, शिरःशूल, कंप आदि लक्षण अत्यन्त तीव्र रूप से होते हैं। तथा गले में जलन, ऐच्छिक क्रियाओं का धीरे धीरे ह्रास, नाड़ी तीव्र तथा कमजोर, शैत्य, मूर्च्छा या संन्यास आदि लक्षण होते हैं। कभी कभी मृत्यु भी श्वसन के रुकने से होती है। ५ से ८ रत्ती पत्र चूर्ण या बीज से तीव्र वमन होता, तथा ४ माशा पत्र चूर्ण से मृत्यु हो सकती है। इसका विषैला परिणाम इसके प्रयोग के बाद कभी कभी वमन द्वारा विष के बाहर न निकलने के कारण होता है।

इसके उक्त कुप्रभाव के निवारणार्थ--यूनानी चिकित्सा में कतीरा दिया जाता है। कतीरा इसका दर्पनाशक माना गया है।

विशिष्ट योग–

नरकटासव—इसके मूल सहित पंचाङ्ग को कुचल कर १० सेर में २० सेर जल मिला १२ घंटे भिगोकर भवके द्वारा १२ सेर अर्क खींच लें। इस अर्क में २½ सेर खांड, ३ पाव नरकट पंचाङ्ग का कल्क, खस, धनियां, नागरमोथा, श्वेतचन्दन का चूर्ण ४-४ तोला, धायपुष्प ३ पाव, बबूल छाल १ पाव इनको जौकुटकर मिला दें। संधान पात्र में भर २० दिन बन्द रखें। छानकर बोतलों में भर लें। मात्रा—५ तोला तक सेवन से नेत्र रोग, पित्तप्रमेह, हाथ पैरों की जलन, श्वेतकुष्ठ, स्वप्नदोष, रक्तपित्त आदि दूर होते हैं—मिश्र बलवंत शर्मा वैद्यराज।

Scanned with CamScanner

नरगिस (Narcissus Tazetta)

तालमूली (मुसली स्याह) कुल (Amaryllidaceae) के इसके क्षुप प्याज के क्षुप जैसे, पत्र, मूल या कन्द, बीज प्याज के ही पत्रादि जैसे, किन्तु पुष्प सुगन्धित, सुन्दर, चमकीले छोटे-छोटे प्याले के समान ५-६ पखुड़ी वाले होते हैं। पत्र—कुछ श्वेत, नीले या पीले रंग के होते। हैं

यह भारत के बाग बगीचों में प्रायः सुगन्धित पुष्पों के लिए बोया जाता है। पुष्पों का इत्र, तैल आदि निकाला जाता है। इसके पुष्प वसंत ऋतु में विकसित होते हैं।

इसके मूल या कन्द को 'प्याजे नरगिस' कहते हैं। तथा औषधि कार्यार्थ प्रायः यही लिया जाता है।

नोट—इसके नर और मादा दो भेद हैं—(१) नर, नरगिस में प्याज के समान ६ पत्तियां होती हैं। बीजकोष नहीं होता, किन्तु पुष्पों की खूब बहार रहती है। (२) मादा में डबल पत्तियां होती हैं। बीजकोष में काले रंग के बीज होते हैं। प्रायः इसी मादा नरगिस की जड़ 'प्याजे नरगिस' कहाती है तथा यही औषधि कार्य में ली जाती है।

नाम—

हि.—नरगिस (यह पंजाबी नाम है) ले.—नारकिसस टॅजेटा।

प्रयोज्याङ्ग—मूल (प्याजे नरगिस)।

गुण धर्म व प्रयोग—

सुगन्धित, उष्ण, रूक्ष, वामक, लेखन, कफशामक, शोथनाशक, द्रवशोषक, रक्तोत्क्लेशक, उदरकृमिनाशक, गर्भनिस्सारक, बाजीकर तथा सिरपीड़ा आदि विकारों पर प्रयुक्त होता है। बीज—कामशक्ति उत्तेजक हैं।

(१) शीतजन्य प्रतिश्याय तथा नजले पर--इसके फूल सुंघाते हैं। या इसके इत्र को सूंघते हैं।

(२) शरीर में कांच, कीलादि कोई शल्य प्रविष्ट होने पर इसकी जड़ के रस को लगाते हैं या जड़ को पीसकर लेप करते हैं। वह शल्य ऊपर को आजाता है। फिर उसे सरलता से निकाल लेते हैं।

(३) अन्य बाजीकर द्रव्यों के साथ इसके कन्द को पीसकर पतला लेप करने से रक्तोत्क्लेश होकर शिश्न की वात नाड़ियों को बल प्राप्त होता एवं वह पुष्ट होता है।

अथवा—कन्द को २४ घन्टे गोदुग्ध में भिगोकर औंटाकर व पीसकर शिश्न पर लेप करते हैं।

(४) शोथयुक्त फोड़े फुंसियों पर इसका लेप करते हैं। सिर दर्द पर भी इसका लेप लाभदायक है। फुफ्फुस शोथ पर इसके तेल को छाती पर मर्दन करते हैं।

(५) वमनार्थ—कन्द को उबाल कर शुद्ध (साफ) कर उचित मात्रा में पीस, उसमें १० से १४ तोला तक जल एवं शहद ४ तोला मिला पिलाते हैं। अथवा इसे ... घण्टे दूध में भिगोकर सुखाकर सेवन कराते हैं। बिना कष्ट के वमन होती है। इससे उदरकृमि भी नष्ट होते...

नरगिस
NARCISSUS TAZETTA LINN.

पुष्प
पत्र
कोमलपत्र
कन्द
शाखा
पुष्प
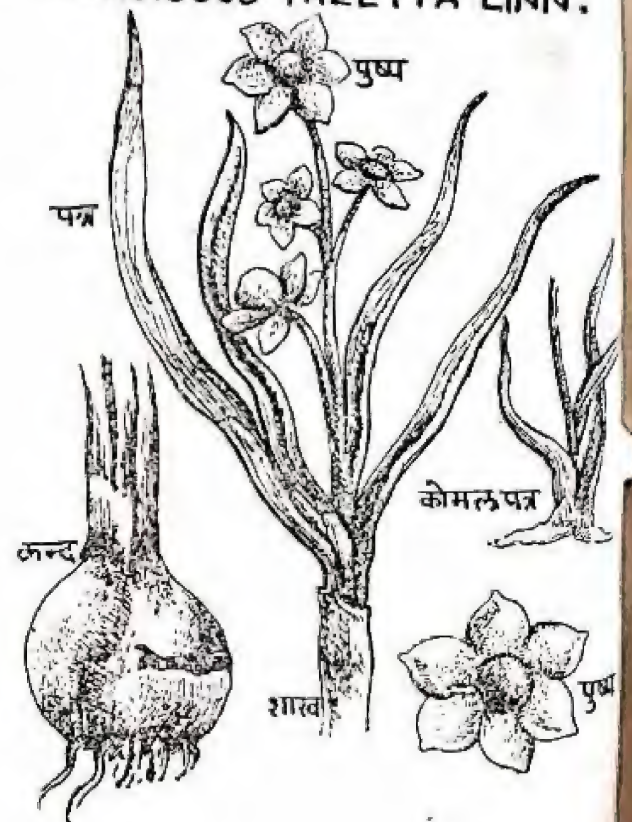
निकल जाते हैं। पूर्ण मात्रा—३ माशे तक है।

(६) गर्भाशय के दोष निवारणार्थ—कन्द का चूर्ण २ माशे तक लेकर शहद और जल के पाक (१ भाग शहद और ४ भाग जल एकत्र पकावें, तृतीयांश रहने पर उतार कर ठंडा करें) के साथ सेवन करावें। (जल के स्थान पर अर्क गुलाब उक्त प्रमाण में मिला, पकाकर शर्बत से भी पतली चाशनी करलें तो और उत्तम होता है)। इसके सेवन से अपरा एवं गर्भाशय के दोष दूर होजाते हैं।

इसके कन्द को पीसकर योनिमार्ग में लेप करने से, या इसकी फलवर्ती बना गर्भाशय में रखने से भी गर्भाशय का मुख खुलकर उसके दोष दूर होते हैं। मूढ़गर्भ या मृत-गर्भ के पातार्थ कन्द ३ मासा की मात्रा मेंपीसकर शहद के साथ चटानेसे गर्भाशय से मृत बालक बाहर निकल आता है। उक्त शहद और जल या अर्कगुलाब के योग (माउल अस्ल) के साथ इसे देने से भी अभीष्ट सिद्ध होता है।

(७) नेत्रविकार पर—अर्म[नाखूना रोग,जो नेत्र कोण के श्वेत भाग पर अर्धचन्द्राकार या त्रिकोणाकार लाल या श्वेत प्रवर्द्धन सा होता है,जिसे अंग्रेजी में टेरीजियम(Tery-gium)कहते हैं]पर कन्द का रस डालनेसे लाभ होता है।

यदि नेत्रकोण में खिचाव या ऐंठन हो, तो इसे पीस कर लेप करते हैं। आराम होता है।

[८] जखम या व्रण के रक्तस्राव पर—कन्द के चूर्ण को बुरकते हैं। रक्तस्राव शीघ्र बन्द होता है।

अग्निदग्ध पर—इसे पीस कर शहद मिला लेप करने से शांति प्राप्त होती है।

[९] मुख या चेहरे की कांति बर्द्धनार्थ—कन्द कोपीस कर आड़ू अरु,सप्तालु[Prunus persica]के रस में मिला कर मलने से चेहरा साफ होता तथा दाग दूर होते हैं।

नोट—मात्रा—१ से ३ मासा तक। अधिक मात्रा में सेवन से या फूलों को अधिक सूंघने से,विशेषतः उष्ण प्रकृति वालों को शिरःशूल या मस्तिष्क विकृति होती है। हानि निवारणार्थ बनफशा, कपूर, नीलोफर का सेवन करावें।

विशिष्ट योग—

[१] चूर्ण नरगिस - इसके कन्द को छीलकर ७ दिन वरगद [बट] के दूध में भिगोकर रखें। फिर शुष्क कर चूर्ण करलें। ३ मासा प्रातः सायं गो दुग्ध के साथ सेवन करने से वीर्य विकार दूर होकर वाजीकरण होता है। २१ दिन सेवन से पूर्ण असर प्रकट होता है। अथवा—

इसके कन्द और फूल दोनों को २१ बार बरगद के दूध की भावनायें देकर चूर्ण बनालें। इसमें समभाग मिश्री मिला शीशी में भर रखें। ३ मासा प्रातः सायं दूध के साथ सेवन करें। यह वीर्य वर्धक एवं रसायन है तैल, खटाई से परहेज करना आवश्यक है।

[२] तैल नरगिस—इसके ताजे कन्द के समभाग मालकांगनी का तैल मिला, मंदाग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर, ठंडा हो जाने पर छान कर रखलें। मात्रा—२ मासा है। यह वात रोग नाशक एवं बलकारक है। इसकी मालिश से वातजन्य शिरःशूल तथा शीतजन्य फुफ्फुस शोथ में लाभ होता है।

(३) नरगिस योग से हिंगुल भस्म—इसका एक बड़ा सा कन्द लेकर उसमें छिद्रकर उत्तम रूमी सिंगरफ की २ माशे की डली डालकर छिद्र को उसी के बुरादे से बन्दकर सराव संपुट करदे शुष्क हो जाने पर २१ बार लघुपुट देकर, खरलकर सुरक्षित रखें। मात्रा ।। रत्ती, मलाई के साथ सेवन से स्तंभन एवं वाजीकरण होता है।

(ऊपर के कई प्रयोग 'अलहकीम' उर्दू के मासिक पत्र से लिये गये हैं।

नरवेल (Viburnum Foetidum)

तिलक (थेल्का) कुल [1] (Caprifoliaceae) के इस वृक्ष की शाखायें,बिल्व वृक्ष की शाखा जैसी कुछ पीता धूसर वर्ण की; पत्र-छोटे लम्बे, दन्तुर होते हैं। इनमें एक प्रकार की उग्र गन्ध आती है।

ये वृक्ष दक्षिण भारत में बम्बई, कोंकण तथा पश्चिम भारत, खासिया पहाड़, आसाम, उत्तर बर्मा में अधिक

[1] इस कुल के गुल्म या वृक्षों के पत्र अभिमुख, उपपत्र रहित, पुष्प बाह्यकोष के दल ३-५; पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ५; पुंकेशर ४ या ५, बीजकोष २-८ कोष्ठयुक्त होता है। इस कुल के कुल ३-४ वृक्षों का पता लगा है।

Scanned with CamScanner

पाये जाते हैं ।

नाम–

नरबेल यह नाम बम्बई, महाराष्ट्र, एवं कोंकण की ओर का है । लेटिन—व्हायवर्नम फिरीड़म । अन्य भाषा के नाम अज्ञात हैं ।

रा० संघठन—इसमें फीटिड़ (Fuetid) नामक एक प्रभावशाली उड़नशील तैल, तथा एक श्वेत चमकीला तीक्ष्ण स्वाद वाला क्षाराभ एवं गोंद, राल व क्षार १२% पायें जाते हैं ।

गुण धर्म व प्रयोग–

तिक्त, कटु, ग्राही, शूल एवं दाहशामक, स्तन्य, रजः स्थापनीय, वातशोथ हारक तथा गर्भाशय विकृतिनाशक हैं ।

गर्भाशय की विकृति—अधिक रजःस्राव, रक्तप्रदर, प्रसव पश्चात् का अधिक रक्तस्राव, कष्टार्त्तव, गर्भपात, प्रसव के पश्चात् की उदर पीड़ा आदि पर—इसका पत्र रस १½ तोले से २½ तोला तक; या इसका अर्क २ से ६ माशा तक; या पत्तों का क्वाथ (१ भाग पत्र और १० भाग पानी मिलाकर अर्धावशिष्ट क्वाथ) २॥ तोला तक दिया जाता है। (नाड़कर्णी)

बालकों के उदरशूल में—पत्र रस ॥ से १ तोला तक देते हैं । इससे कृमि भी नष्ट होकर निकल जाते हैं।

श्वास रोगी को इसके पत्तों की साग का सेवन नित्य करना लाभप्रद है ।

स्तनों में दूध आने के लिये भी पत्तों की साग खिलाई जाती है । व. गु. ।

नरमा–देखो कपास में । नरसल–देखो नरकट ।
नल–देखो नरकट । नलिका–देखो रतनजोत ।
नली–देखो मेस्टापाट (अम्बाड़ी)
नसपाल–जंगली अनार का छिलका ।
नहानी खपाट--देखो कंघी और जैंत में ।
नाई (नाकुली कन्द)--देखो सर्पगन्धा में, और चिरायता छोटा में ।
नाक--देखो नासपाती । नाक छिकनी--नकछिकनी ।
नकुली (नकुल)--देखो सर्पगन्धा में ।

नाखूना (Trigonella uncata)

शिम्बी कुल के अपराजितादि उपकुल (Papilionaceae) के इसके छोटे-छोटे मुलायम क्षुप मेथी के क्षुप जैसे पत्र छोटे छोटे गोलाकार तीन-तीन के गुच्छों में; पुष्प-श्वेत, लम्बे; फली-कड़ी, लम्ब गोल, कटे हुए नाखून जैसी, पीताभश्वेत, अर्धचन्द्राकार, ऊपर की ओर कुछ छत्राकार, बाहर की ओर टेढ़ी, लगभग १ इंच लम्बी, दोनों ओर को गहरी रेखा युक्त, द्विकोष्ठ युक्त प्रत्येक कोष्ठ में पीले रंग के मेथी बीज सदृश बीज १या २ होते हैं । गंध भी मेथी जैसी होती है । इस फली को ही नाखूना कहते हैं । तथा औषधि कार्य में यही ली जाती है ।

इसका उत्पत्ति स्थान पर्शिया है । किन्तु भारत में भी इसका एक भेद पाया जाता है। तथापि इसका आयात पर्शिया से ही यहां होता है, और बाजार में इक्लीलुलमलिक (अरबी) नाम से या नाखूना नाम से भी प्राप्त होता है । यूनानी वैद्यक में इसका औषधि-व्यवहार विशेषतः होता है ।

नोट—हमारे ख्याल से यह एक प्रकार की वन मेंथी होनी चाहिए । वनौषधि विशेषज्ञ डा० डिमक का कथन है कि इसका भेद–Melilotus parviflora (मेलिलोटस-परविफ्लोरा) भारतवर्ष में पाया जाता है । तथा शरद ऋतु में यह बंगाल व वेलगांव में शाकार्थ बोया जाता है, जहां इसे तिरापो कहते हैं ।

यूनानी ग्रन्थ मखजन में भी इसके एक भारतीय भेद का उल्लेख है । आगे यथास्थान बनमेंथी प्रकरण देखें ।

नाम–

हि०—नाखूना (यह फारसी शब्द है) । अं०–टांकिन बीन (Tonkinbean) मेलीलांट (Melilot), किंग्ज क्राऊन (Kings Crown)। ले०–ट्रिगोनेला अंकटा, मेलिलोटस ऑफिसिनेलिस (Melilotus Officinalis)

रासायनिक संघटन–

इसमें एक स्फटिकाभ, अति तीव्र सुगन्धी सत्व कोमे-

Scanned with CamScanner

रीन (Coumarin) नामक पाया जाता है, जो नारकोटिक (Narcotic) तथा हृदयावसादक है। आमाशय में अति क्षोभकारक है। इसे १५ से ३० रत्ती की मात्रा में देने से हृल्लास, भ्रम, वमन एवं निर्बलता प्राप्त होती है। इस सत को प्रायः सुगन्धी के लिये [प्रति औंस, ¼ रत्ती की मात्रा में] मलहम, पोमेड्स, या तैल में मिलाते हैं। आयडोफार्म की दुर्गन्ध दूर करने के लिये—८५ भाग आयडोफार्म में यह सत २ भाग तथा वालसम आफ पेरू ३ भाग मिलाते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—फली।

गुणधर्म व प्रयोग–

उष्ण, रूक्ष, समशीतोष्ण, कुछ ग्राही, संकोचक, बल्य, निद्राजनक, शोथ व शूल हर, वेदना शामक, आमदोषपाचक, स्तन्य, आर्त्तव प्रवर्त्तक है।

[१] इसका क्वाथ आमाशय, यकृत व प्लीहा के शूलों पर तथा पक्षाघात, धनुष्टंकार, अपस्मार आदि वात-व्याधियों पर लाभकारी है। इससे श्वास में भी लाभ होता है।

[२] आंत्र-विकारों पर–इसके क्वाथ की बस्ति देते हैं, इससे आंत्र को शक्ति प्राप्त होती है।

[३] कड़ी, कठोर शोथ पर—इसे बनफशा, अलसी व मेंथी के साथ पीस कर लेप करते हैं।

उष्णताजन्य या पैत्तिक शोथ पर—इसे खसखस और मुर्गी के अंडे की सफेदी के साथ पीस कर लेप करते हैं।

[४] अभिघात या चोट में—इसे केशर के साथ पीस कर लेप करते हैं।

[५] पैत्तिक शिरःशूल पर—इसे गुलरोगन और सिरका के साथ पीस कर प्रलेप करते हैं।

[६] शीत ज्वर पर–ज्वर की हालत में इसे ४½ माशा की मात्रा में पानी के साथ देते हैं। इससे दस्त भी खुलकर होता है।

[७] कर्ण पीड़ा पर—इसके फांट या क्वाथ को छान कर कानों का प्रक्षालन करते हैं। या कान में कुछ बूंदें टपकाते हैं।

[८] गुदा और अंडकोष की वेदना पर—इसका प्रलेप करने से वेदना शांत होती है।

[९] सिर के गंज पर—इसे सिरके में पीस कर लेप करते हैं।

[१०] भ्रम [चक्कर आना], हृत्कम्प, तथा पक्षाघात पर—इसके क्वाथ का बफारा देते हैं, तथा इसे तैल में पकाकर मालिश करते हैं।

इसे ७ माशा तक की मात्रा में शहद के साथ चटाने से तथा रोगी के सिर पर इसके क्वाथ का प्रक्षालन करने से भ्रम में विशेष लाभ होता है। यह प्रयोग नित्य नहीं प्रत्युत ३-३ दिन बाद किया जाता है।

नोट—मात्रा—२ से ७ माशा तक। इसके फाण्ट या रस की मात्रा ५½ तोला तक। यह वृषणों को अहितकर है। इसका हानि निवारक अंजीर तथा शहद है। इसके प्रतिनिधि—मेंथी, लोभान, बाबूना व अलसी हैं।

नागकेशर (पीला) (Mesua Ferrea)

कर्पूरादि वर्ग एवं स्वकुल-नागकेशर कुल [१] (Gutiferae) का सदा हरा भरा, सुन्दर, मध्यप्रमाण के इस वृक्ष का तना गोल, सीधा, चिकना धूसर वर्ण का; शाखायें अति कोमल, साधारण गोल, छाल ½ इंच मोटी चिकनी, चट्टेदार, राख के रंग की, अन्दर की लकड़ी--रक्ताभ पीत वर्ण की; पत्र--अभिमुख, २ से ६ इंच लम्बे, १½–१¾ इंच चौड़े, नुकीले शल्याकार, कुछ झुके हुए, उर्ध्व पृष्ठभाग हरित, चिकना शुभ्रवर्ण का, अधः पृष्ठ भाग श्वेताभ एवं श्वेतरज से आवृत; पत्र वृन्त ¼ से ⅓ इंची, पुष्प-वसंत ऋतु में ऊपर के पत्र कोणों से निकले हुए नियमित, गोल २-४ इंच व्यास के श्वेतवर्ण के, सुगंधित, पुष्प बाह्य दल स्थायी, कठोर एवं भीतर पुंकेशर गुच्छों में भी होते हैं। तथा इन्हीं पुंकेशर के गुच्छों को नागकेशर कहते हैं। यही असली नागकेसर है औषधि कार्य में यही

---

१ इस कुल के वृक्ष बड़े, पत्र अभिमुख, सादे, अखण्ड चर्मसदृश, पुष्प नियमित, द्विबीजपर्णी, विभक्तदल, पुष्पवाह्य एवं अभ्यंतर कोश के दल ४-१२, पुंकेशर अनियत, बीजकोश अधःस्थ; फल मांसल। पुष्प सुन्दर एवं सुगन्धित होते हैं, तथा वृक्ष से प्रायः पीत वर्ण का निर्यास (गोंद) निकलता है।

Scanned with CamScanner

उत्तम कारगर होता है। फल–शरद ऋतु में १--१½ इंची लम्ब गोल, अग्र भाग में कुछ दबा हुआ सा, पकने पर कुछ लाल हो जाता है। इससे एक प्रकार का निर्यास निकलता है। बीज संख्या में १ से ४ तक, कड़े मेंहदी के बीज जैसे, धूसर वर्ण के चमकीले होते हैं। मूल कोमल गहरे लाल वर्ण की अन्तःभाग में हरी होती है।

इसके वृक्ष विशेषतः उत्तर, पूर्व बंगाल, छोटा नागपुर पूर्वी हिमाचल प्रदेश, नेपाल, कूचविहार, आसाम, दक्षिण भारत कोंकण, पूर्व एवं पश्चिमी घाट, मैसूर, बर्मा, अण्डमान आदि प्रदेशों में ५ हजार फीट की ऊंचाई पर पाये जाते हैं। तथा पुष्प एवं फल के सुन्दर सुगन्धित होने के कारण ये उद्यानों में भी रोपण किये जाते हैं।

नोट—(१) बाजारों में जो गोल भूरे लाल वर्ण के गन्धहीन बीज या दानों के रूप में नागकेशर बेचा जाता है, वह असली नागकेशर नहीं है। शायद दालचीनी के फल है जिन्हें काला नागकेशर कहते हैं।

ध्यान रहे, नागकेशर के नाम से प्रायः निम्नाङ्कित तीन नागकेशर प्रचलित हैं--एक तो उपरोक्त दालचीनी के फल हैं, जो काला नागकेशर कहाता है जिसके गुण धर्म प्रायः दालचीनी के समान ही हैं। दूसरा प्रस्तुत प्रसंग में वर्णित नागकेशर है। जिसे प्रायः बंगाल का नागकेशर कहते हैं ये पुष्पों के भीतर के पुंकेशर के गुच्छों के रूप में होता है।

तीसरा इसी कुल के दक्षिण की ओर अधिक होने वाले वृक्षों [Ochrocarpus longilifolio] के पुष्पों की कलिकाएं है। जिन्हें लाल नागकेसर कहा जाता है। इसका वर्णन आगे के प्रकरण में देखें।

इसी कुल के पुन्नाग वृक्ष [Callophyllum Inophyllum] की कलिकाएं भी नागकेशर कही जाती हैं। यह बर्मा या सीलोन का नागकेशर कहाता है। इसका वर्णन यथा स्थान पुन्नाग [सुल्तान चम्पा] के प्रकरण में देखिये।

यहां एक बात विचारणीय है कि यद्यपि चरकसंहिता में तथा व्यवहार में भी नागकेशर का प्रयोग प्राचीनकाल से रक्तार्श पर किया जाता है। तथापि निघण्टु आदि में वर्णित इसके शास्त्रीय गुण-धर्म में अर्श के विकार नाशक गुण का कहीं उल्लेख हमें तो नहीं प्राप्त हुआ। दालचीनी के गुणों में तथा उसके फल काले नागकेशर के गुणधर्म में अर्शनिवारक गुण का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। अस्तु।

नं० २—सुश्रुत में एलादि, प्रियंग्वादि, अंजनादि गणों में इसकी गणना है। तथा छिक्का पर इसका प्रयोग शहद व मिश्री के साथ किया गया है। चरक ने रक्तार्श पर मक्खन व मिश्री के साथ इसका विधान किया है। भाव मिश्र ने इसे चातुर्जात में लिया है।

नं० ३—ध्यान रहे संस्कृत में नागकेशर एवं उसके पर्यायवाची शब्द पुल्लिग में [नागकेशर आदि] हों तो वे उसके वृक्षवाची होते हैं। तथा यदि नपुंसकलिंग में [नागकेशर आदि] हों तो पुष्पवाची समझे जाते है "अयं पुष्पेतु क्लीबे"—भा. प्र.।

इसके पर्यायवाची शब्दों में नागचम्पा नाम आया है। नाग-चम्पा श्वेतचम्पा को भी कहते हैं। किन्तु यह इससे भिन्न है।

नाम–

सं०—नागकेशर, केशर, नागपुष्प, चाम्पेय आदि।

Scanned with CamScanner
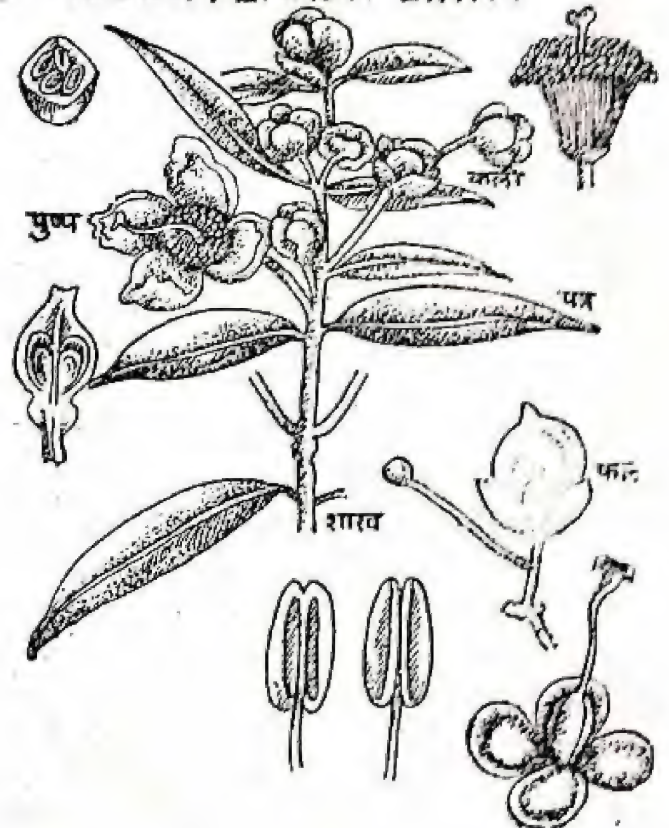
हि०—नागकेशर (पीला) नागेसर, नारेगुष्क, नागचम्पा
। म.—नागकेशर, नागचांफा। गु.—पीलू नागकेशर।
०—नागेश्वर। अं.—कोबराज सफ्रांन (cobrassaffron)
—मेसुआ फेरिया, मे. राक्सबर्गी (M. Roxburghii)
अरोमंडलिना (M. coromandalina)।

१. संघटन—

इसके कच्चे फलों में एक तैलयुक्त राल (Oleoresin) ता है जिसमें एक पीताभ, तारपीन जैसा, सुगंधित उड़नशील तैल पाया जाता है। बीजों में एक स्थायी तैल ३ से ४८ प्रतिशत तक पाया जाता है यह प्रायः साबुन बनाने के काम में आता है। फलावरण में कषायद्रव्य [टैनिन] तथा केशर में दो तिक्त पदार्थ पाये जाते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—पुंकेशर, पुष्प, फल, पत्र, बीज, मूल, ल व तैल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कषाय, तिक्त, कटु-विपाक, किंचित् उष्ण-वीर्य, कफ पित्तशामक, दीपन, पाचन, तृष्णानिग्रहण, हृदय, यकृत, आमाशय एवं मस्तिष्क के लिये बल्य, हृद्य, शोणितस्थापन (रक्तसंग्राहक), गर्भस्थापक, वाजीकरण, ल, बल्य, विषघ्न, दुर्गंधनाशन, स्वेदापनयन, उत्तेजक तथा मस्तिष्कदौर्बल्य, उन्माद, अग्निमांद्य, अजीर्ण, लास, वस्तिविकार, वमन, आध्मान, उदरकृमि, अर्श, प्रवाहिका, हृद्दौर्बल्य, रक्तपित्त, गर्भपात, अतिसार, रक्त-स्राव, कास, श्वास, हिक्का, रक्तप्रदर, मूत्राघात, कुष्ठ, सर्प, ज्वर, दौर्बल्य आदि में प्रयुक्त होता है।

इसका लेप दुर्गन्ध, अतिस्वेद और व्रणों पर करते हैं। नपुंसकता में इसका लेप शिश्न पर किया जाता है। व्रण को सुखाने के लिये इसका शुष्क महीन चूर्ण बुरकते हैं। स्वरभंग में इसके साथ इलायची और मिश्री मुख में रखते हैं। हाथ पैरों की जलन पर इसे शतधौत घृत में मिला मर्दन करते हैं, अथवा इसके चूर्ण के साथ शक्कर और मक्खन मिला लेप करते हैं।

[१] रक्तार्श पर—इसके चूर्ण के साथ मक्खन और गुड़ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करावें [च. चि. अ. १४]। अथवा—इसके साथ समभाग खूनखरावा [हीरादोखी] का महीन चूर्ण कर, मात्रा—२ माशा दिन में ३-४ बार यथा-वश्यक मोसम्बी, मीठा-अनार, दूर्वा या हरी धनियां पत्र इनमें से किसी के रस के साथ या उदुम्बरसार १½-३ माशा तक ठंडे जल ५ तोला में मिला कर उसके साथ देने से अर्श का रक्त बन्द होता है।

—सिद्ध योग संग्रह

अथवा—इसे १३ माशा की मात्रा में रात को भिगो, प्रातः मल छानकर उसमें मिश्री या मधु मिला कुछ दिन [४० दिन तक] पीने से अर्श का रक्तस्राव बन्द होकर मस्से सूख जाते हैं—[यूनानी]

अथवा—इसके चूर्ण के साथ समभाग शक्कर मिला सेवन करें, प्रातःसायं, २-३ अन्जीर पानी में भिगोकर खाया करें। तैल, मिर्च, खटाई से परहेज करें।

[२] प्रदर पर—इसका चूर्ण ४ तोले, श्वेत राल व मुलैठी चूर्ण ३-३ तोले और मिश्री १० तोले एकत्र महीन खरल कर ४ माशे की मात्रा में प्रायःसायं मिश्री मिले हुए सुखोष्ण गोदुग्ध के साथ सेवन करने से सर्व प्रदर दूर होते हैं। [गुप्त-सिद्ध योग]

श्वेत प्रदर, सोमरोग [जलप्रदर] हो, तो इसके ३ माशा चूर्ण को तक्र के साथ, ३ दिन देवें। पथ्य में चावल और तक्र का सेवन करें। [भा० प्र०]

[३] अतिसार, प्रवाहिका या आमातिसार तथा बालकों की रक्त संग्रहणी पर—इसका चूर्ण रात को घृत में भिगो, प्रातः गोली सी बना खिलावें। इसी प्रकार प्रातः घृत में भिगोकर सायं खिलावें। ३ दिन तक। —व. गु.

अतिसार पर—नागकेशरादि चूर्ण विशिष्ट योग देखें।

[४] गर्भ धारणार्थ तथा वीर पुत्र के जन्मार्थ—इसके साथ सुपारी का समभाग मिश्रित चूर्ण [२-३ माशे की मात्रा में गो घृत के साथ, ऋतुकाल से आरंभ कर १४ दिन तक] सेवन कराने से गर्भ धारणा होती है—बं० से०

ऋतु काल में इसके महीन चूर्ण को गोघृत के साथ सेवन करने तथा केवल गाय के दूध पर ही रहने से अवश्य वीर पुत्र की प्राप्ति होती है। —ग० नि०

[५] रक्त प्रमेह पर—इसके साथ समभाग कंकोल [कबाब चीनी] ३-३ माशा लेकर, अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर ठंडा होने पर पिलावें। —व० गु०

[६] हिक्का पर—इसका चूर्ण [६ माशे से १ तोले तक] शक्कर [६ माशा] एवं शहद [३ से ६ माशा तक]

Scanned with CamScanner

एकत्र मिला, ईख का रस तथा महुए का रस [प्रत्येक २ से ४ तोला तक] के साथ पीने से हिक्का नष्ट होती है—

सुश्रुत उ. तंत्र अ. ५० ।

(७) गर्भस्राव या गर्भपात पर—तीसरे मास में या ५ महीने के पूर्व यदि गर्भस्राव का भय हो, गर्भिणी के गर्भाशय में वेदना हो, तो इसके चूर्ण में मिश्री और बंसलोचन का चूर्ण मिला, गाय के कच्चे दूध के साथ सेवन करावें। तथा दस्तावर पदार्थों का पूर्ण परहेज करावें। अ. यो. माला से ।

पुष्प—नागकेसर के फूल उत्तेजक हैं। उदराध्मान, अम्लपित्त, अर्श आदि पर इनका प्रयोग किया जाता है। आध्मान में फूलों को कालीमिर्च के साथ पीसकर लेप करते हैं। सिरके के साथ घोटकर किंचित् मात्रा में पिलाने से अम्लपित्त की शांति होती है। इन्हें जल के साथ पीसकर पैर के तलुवों पर गाढ़ा लेप करने से तलुवों की जलन दूर होती है तथा यह लेप अर्शांकुरों पर करने से अर्श की जलन शांत होती है। अन्य द्रव्यों के क्वाथ को या तैलों को सुगंधित करने के लिये इनका उपयोग किया जाता है। पुष्पों का इत्र नपुंसकतानाशक है। इसे १ रत्ती की मात्रा में पान के साथ खिलाते हैं।

पत्र—उष्ण, शीतजन्य, पीड़ानिवारक, मृदुकर एवं विषघ्न हैं। पत्तों को पीसकर दूध और नारियल तैल के साथ गरम कर पुल्टिस बना शीत या वातजन्य सिर पीड़ा पर बांधते हैं। इससे सिर दर्द और जुकाम पर भी लाभ होता है।

पत्र और पुष्पों का प्रयोग विशेषतः बंगाल की ओर बिच्छू और सर्पदंश पर किया जाता है। इनका लेप करते तथा पानी में घोंटकर पिलाते भी हैं।

छाल और मूल—इसके वृक्ष की छाल और जड़ का क्वाथ या फांट कास, फेफड़ों की सूजन (ब्रांकाइटिस) तथा आमाशय के प्रक्षोभ (Gastritis) पर सेवन कराते हैं। छाल व मूल—तिक्त और सुगंधित होती है। छाल कुछ संग्राही है।

फल—ग्राही तथा पाकस्थली की पीड़ा निवा[illegible] कच्चे फल कटु, विरेचक तथा सुगंधित होते हैं।

तैल—इसके बीजों का तैल वेदनास्थाप[illegible] संधिवात एवं अन्य वातजन्य पीड़ा तथा खुज[illegible] एवं अन्य चर्मविकारों पर इसका मर्दन करते हैं। या पामा (एग्झीमा, उकवत) में इस तैल के सा[illegible] कमीला मिला लिया जाता है।

इस तैल का आभ्यन्तर प्रयोग भी किया जा[illegible] है, यह विषाक्त नहीं है। जननेन्द्रिय, मूत्राशय एव[illegible] स्थान की श्लैष्मिक कला पर इसका बहुत अच्छा [illegible] होता है। यह उत्तम औषधि है, मैंने इस तैल क[illegible] है। —डा. मुहृदीन श[illegible]

निर्यास या गोंद—इसके वृक्ष का गोंद सुगंधित [illegible] मृदुकर है। इसे जल में भिगोने पर कुछ समय [illegible] जो तैल या स्निग्ध तरल द्रव्य ऊपर आ जाता है उ[illegible] व्रणों पर लगाना लाभकारी है।

नोट—मात्रा–चूर्ण ४ से ८ रत्ती। यह उष्ण [illegible] एवं यकृतविकार वालों के लिये कुछ हानिकर है। निवारक–बंसलोचन, शुद्ध शहद, कासनी के बीज औ[illegible] इसके प्रतिनिधि –नागरमोथा, बालछड़ और नारिय[illegible]

विशिष्ट योग—

नागकेशरादि चूर्ण अतिसार पर—इसका चूर्ण [illegible] वेलगिरी, अनीसून[1] सौंफ, २-२ तोला, तथा [illegible] छोटी इलायची, धनिया, मोचरस, खस, श्वेतचंदन, [illegible] के फूल और कपूर कचरी १-१ तोला तथा जल से [illegible] सुखाई हुई भांग व मिश्री ५-५ तोला सबका एकत्र [illegible] चूर्ण बनालें। मात्रा—२-३ मासा जल के साथ [illegible] पित्तातिसार और रक्तातिसार में यह एक उत्तम यो[illegible] इस चूर्ण को अकेला या रसपर्पटी के साथ मिलाकर [illegible]

—सिद्धयोग सं[illegible]

नाग केसर (लाल) (*OCHROCARPUS LONGIFOLIUS*)

उक्त पीले नागकेशर कुल (Guttiferae) के इस सदा हरित, मध्यम ऊंचाई के वृक्ष की शाखायें [illegible]

[1] यह सौंफ की जाति का एक यूनानी द्रव्य है। इसका विशेष वर्णन सौंफ के प्रकरण में देखिये।

Scanned with CamScanner

नागकेशर नकली
OCHROCARPUS LONGIFOLIUS BENTH.
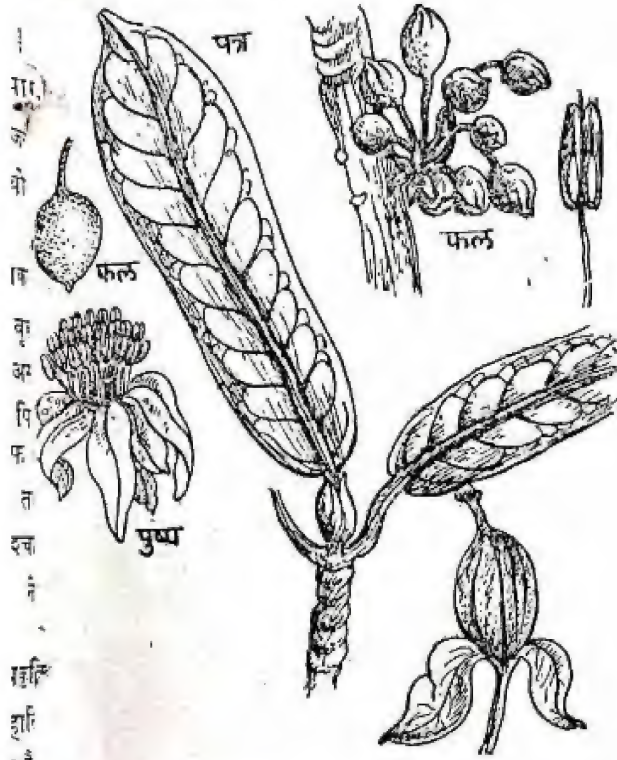
कार, छाल-½ इंच मोटी, रक्ताभ धूसर वर्ण की; लकड़ी-लोह जैसी वजनदार काली या लाल वर्ण की; पत्र—५-६ इंच लम्बे, २-१½ इंच चौड़े, गहरे हरित वर्ण के, वृन्त की ओर गोल, सिरे पर नुकीले; पुष्प—वसन्त ऋतु में, प्रायः उभय लिंगी, सुन्दर, सुगन्धित, ४ अन्तर्दल वाले, लाल रेखाङ्कित श्वेत या पीताभ रक्त वर्ण के, गुच्छों में आते हैं। इन पुष्पों की अविकसित शुष्क कलिकायें नागकेसर के नाम से बिकती हैं। ये कलिकायें गोल, नुकीली, नारङ्गी रङ्ग की, लगभग ½ इंच लम्बी, तथा स्वाद में कुछ अम्ल, तिक्त एवं मधुर होती हैं।

फल—पुष्प के पश्चात् ही वृक्ष में, मौलसिरी (बकुल) के फल जैसे १ इंच लम्बे, गोल, नुकीले एवं एक बीज युक्त फल आते हैं। ये फल पकने पर खाये जाते हैं।

इसके वृक्ष दक्षिण में कोंकण से मलाबार तक समुद्र तटवर्त्ती प्रदेशों में विशेष पाये जाते हैं।

नाम

सं.-सुरपुन्नाग, नमेरू, सुरपर्णिका। हि.-नागकेशर लाल, नकली नागकेशर। म.-सुरङ्गी, तामड़ा नागकेशर, फलको-गोडीडंडी। गु.-रातु नागकेशर। बं.-नागकेशर, सुरिंगी। अं.-अलेक्जेन्ड्रियन लारेल (Alexandrian-Laurel)। ले.-आक्राकार्पस लांगिफोलियस।

गुण धर्म व प्रयोग–

सुगंधी, ग्राही, संकोचक, कटु, तिक्त, मधुर, पीड़ा-नाशक, दीपन है। इसके गुण धर्म एवं प्रयोग पीले नाग-केसर जैसे ही किंतु कुछ न्यून गुण वाले हैं।

अतितृषा में-इसे इलायची और लौंग के साथ घोट-पीसकर पिलाते हैं। इससे उदर शूल में भी लाभ होता है।

कृमि युक्त दंत वेदना पर–इसका चूर्ण दांत की खोखल में रखते हैं।

इसके पुष्पों का अर्क ज्वर रोगी के स्नानार्थ प्रयोग में लाया जाता है। इससे रोगी का पित्तशमन होकर आह्लाद की प्रतीति होती है।

मात्रा-१ से ३ माशा तक।

नागचम्पा देखो नागकेशर।

नागदन्ती देखो घनसर व हस्तिदन्ती में।

नाग दमनी नं० १ [1] [Crinum Asiaticum]

तालमूली कुल (Amaryllidaceae) के इस बहुवर्षायु, कंदयुक्त क्षुप की पत्रसंख्या २० से ३० तक, २ से ६ फुट

[1] खेद है कि अभी तक यह प्रभावशाली बूटी अनिर्णीत है,संदिग्ध है। भिन्न भिन्न बूटिओं को नागदमन या नागदौन माना गया है। कई लोग जिसे नागदमनी मानते हैं,उसका वर्णन यहां प्रथम देकर,पश्चात् नागदमनी नं० २ के प्रकरण में हमारी मानी हुई का वर्णन करेंगे। अन्यों की मानी हुई नागदमनी का संक्षिप्त वर्णन इसी प्रकरण में ऊपर के नोट में देखिये। कुछ लोग सुदर्शन (सुखदर्शन) बूटी को नागदौन मानते हैं, उसका वर्णन यथा स्थान सुदर्शन के प्रकरण में देखिये।

Scanned with CamScanner

लम्बे, ४-६ इंच चौड़े, चामड़, बल्लमाकार, चिपटे सकरे, चमकीले, गहरेहरितवर्ण के, वीच-वीच में श्वेत रेखा या पट्टों से युक्त, छोटी नोकवाले, दीखने में सर्प जैसे (अतः इसे नागपत्रा कहा गया है); पुष्प-प्रायः वर्षाकाल में क्षुप के मूल से निकले हुए १½ से ३ फुट लम्बे, गोल, लगभग १-१½ इंच व्यास के पुष्पदण्ड (शलाका) पर सुन्दर, रात्रिविकसित, सुगंधित श्वेत पुष्प, छोटे गोलाकार, पुष्पपत्र ३-४ इंच लम्बे पु'केशर रक्ताभ (दूर से देखने पर ये पुष्प विशेषतः अविकशित अवस्था में ऐसे दीखते हैं मानों छोटे-छोटे सपैले फन काढ़े हुए लटक रहे हों इसी से इसे नागपुष्पी कहा गया है); फल-इसमें स्वतंत्र रूप से फल नहीं आते, पुष्पों के मध्य में ही, लगभग गोलाकार १-२ इंच व्यास के लहसन की कली जैसे १ या २ वीज होते हैं। कन्द-६-१२ इंच लम्वा, प्याज जैसे छिलकों से आच्छादित तथा अनेक छोटे छोटे मूलयुक्त होता है।

इस नागदमनी के क्षुप भारत के प्रायः सर्वउष्ण प्रदेशों में, वंगाल, चटगांव, सुन्दरवन, दक्षिण में कोंकण

नागदमनी नं. १

CRINUM ASIATICUM LINN.
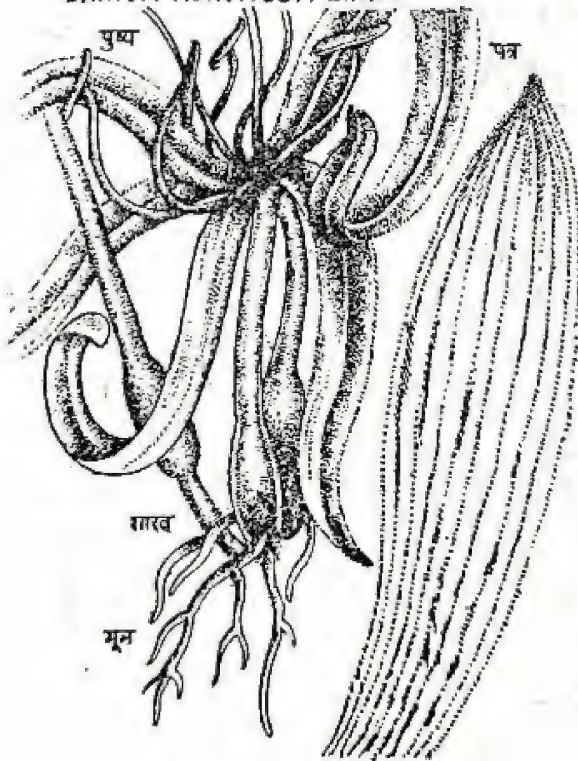
तथा सीलोन में विशेषतः नैसर्गिक एवं बागों में जाते हैं।

नोट-नं० १—उक्त वर्णित नागदमनी का नाम कई लोगों ने आर्टेमिसिया व्हलगेरिस (Ar. Vulgaris) भ्रमवश दे दिया है। वास्तव में यह नाम वाला क्षुप भृंगराज कुल (Compositae) प्रकार का दौना है, नागदौन या नागदमनी इसमें विषनाशक शक्ति का अभाव है। तथापि संतोषार्थ हमने इसका वर्णन आगे नागदमनी के प्रकरण में किया है।

नोट नं० २—कालीनगदी Orthosiphon us (Royle) अजगुर नामसे इसका कुछ वर्णन भाग में दिया जा चुका है।

कुछ लोग इसे नागदमनी कहते हैं। इसमें विष शक्ति है, किंतु यह नागदमनी नहीं है। हम इसका यहां यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान तथा वैद्याचार्य श्री जी महात्मा के लेख के आधार पर करते हैं।

इस तुलसी कूल (Labiatae) के लगभग १ फुट तक ऊंचे क्षुप की शाखायें चपटी, पत्र-पत्र जैसे छोटे-छोटे १ से १½ इंच लम्बे, आरी दंतुर किनारे वाले, काली जीरी के समान गन्ध पुष्प-तुलसी के फूल जैसे मंजरी में, श्वेत, हलके वर्ण के होते हैं। वीज—उक्त मंजरी में ही राई से भी छोटे, मटियाले रङ्ग के, स्वाद में कड़ुवे होते हैं। इसके पोधे प्रायः वन तुलसी के पौधे जैसे हैं। किंतु इसमें उसके जैसी उग्रगन्ध नहीं होती।

इसके क्षुप भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र नदी नालों के किनारे, पहाड़ों एवं कंकरीली भूमि में तथा झाड़ियों में पाये जाते हैं। ये वर्षा के प्रारम्भ में ही होते हैं और श्रावण भाद्रपद में फूलते फलते हैं।

नाम—सं०—देवमंजरी, हि०—काली नगदी, बूटी, निगन्द बावरी, अजगुर हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—उष्ण, रूक्ष, कफ पित्तहर, भेदक, कृमि नाशक, रक्त शोधक, कुष्ठ नाशक, का अगद, श्वयथु विलयन, चातुर्थिक ज्वर नाशक कुष्ठ, पांडु, शोथ, फोड़े, फुंसी, दद्रु, किलास आदि

Scanned with CamScanner

काली नागदी (नाग दौन)

Orthosiphon pallidus Royle.

विकार जन्य रोगों में रक्त प्रसादन के लिए इसका उपयोग किया जाता है। इसका फाण्ट बनाकर, उसके ऊपर का निथरा हुआ पानी लेकर बारीक किए हुए कालीमिर्च के कुछ दानों का प्रक्षेप देकर पिलाते हैं; या कालीमिर्च के कुछ दानों के साथ जल में पीस, सीरा निकाल कर देते हैं। चातुर्थिक ज्वर में इसका चूर्ण बकरी के दूध के साथ देते हैं। किलास और अर्श जन्य शोथ में कालीमिर्च के दानों के साथ पीस कर पिलाते हैं। किलास (श्वेत कुष्ठ) में दीर्घकाल पर्यन्त सेवन से लाभ होता है। कहते हैं कि इसके निरन्तर सेवन से मनुष्य वानस्पतिक एवं प्राणिज विषों से सुरक्षित हो जाता है। मात्रा ७ माशा से १ तोला तक।

श्री उदयलाल जी महात्मा का निजी अनुभव है कि रक्तशुद्धि के लिए यह एक सर्वश्रेष्ठ ओषधि है। इससे रक्त विकार, उपदंशजन्य विकार तथा अनेक प्रकार के चर्म रोग सहज ही दूर हो जाते हैं। इसका चूर्ण १ तोला काली मिर्च ५ दाने इन दोनों को मिट्टी के नूतन पात्र में भिगोकर प्रातः सायं सिल पर भांग की तरह घोंट, ५ तोला पानी में छान कर पिलावें। ७ दिन तक। अधिक बढ़ी हुई व्याधि में २५ दिन तक पिलावें। पथ्य में—लौका अलोणा, गेहूं का फुलका, मूंग की दाल के साथ या गौदुग्ध में थोड़ी शक्कर मिला उसमें खावें। यह बूटी रक्त दूषित व्याधियों को अवश्य साफ कर देती है, अनुभूत है। राजस्थान की जनता रक्त विकृति में इसी बूटी की शरण लेकर रोग निवृत्ति करती है।

नोट नं० ३—कुछ लोग अपामार्ग कुल (Amaranthaceae) के प्युपेलिया लेप्पासिया (Pupalia Lappacea. Mog) को नागदमनी मानते हैं। श्री ठा० बलवन्तसिंह जी ने 'बिहार की वनस्पतियां' नामक पुस्तक में इसका उल्लेख किया है। बिहार में यह मुंगेर, पलामू, संथाल परगना आदि स्थानों में विशेषतः पथरीली भूमि में होती है। इसके गुल्मक रोमश, शाखाएं कमजोर; पत्र-रोमश, अभिमुख, लट्वाकार आयताकार या प्रासवत्, १-४ इंच लम्बे; फल गुच्छ—मुण्डकाकार, ५ इंच व्यास के एवं उस पर टेढ़े सूक्ष्म कांटे होते हैं, जिससे सम्पर्क होने पर ये कपड़ों में चिपट जाते हैं। इसके गुणधर्म में इसे कुछ लोगों ने सर्प विष पर उपयोगी माना है।

नोट नं० ४—श्री ठा० बलवन्तसिंह जी अपनी वनौषधि दर्शिका में चित्रा नामक बूटी को नागदौन तथा लेटिन नाम (Stapyea Emodi. wall) स्टेफिया एमोडी देते हुए लिखते हैं कि इसके बड़े बड़े क्षुप होते हैं। छाल पर श्वेत व भूरी रेखाओं का जाल सा बना होता है। पत्तियां ३-३ पत्रकों की होती हैं। ये क्षुप ५ से ६ हजार फुट की ऊँचाई पर छायादार नालों में होते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इसकी जो छड़ियां रविवार को लाकर निकाली जाती हैं तथा जिनमें लोहा नहीं लगाया जाता, उसके पास सर्प नहीं आते।

नोट नं० ५—कुछ लोग इसरमूल (Aristolochia indica) को जिसके मूल में कन्द नहीं होता तथा केवल क्षुपदार लम्बी-लम्बी लता रूप में होता है। उसी को भ्रमवश नागदमनी मानते हैं। प्रथम भाग में ईसरमूल का प्रकरण देखिये।

Scanned with CamScanner

कोई-कोई बवल बरुआ को नागदमनी कहते हैं। सर्पगन्धा का प्रकरण देखें। अस्तु, अब हम प्रस्तुत प्रसंगों की नागदमनी के नाम, गुणधर्मादि का वर्णन करते हैं।

नाम

सं०—नागदमनी (नागजातीय सर्पों के विष को दमन करने से), विषापहा, नागपुष्पी, नागपत्रा, महायोगेश्वरी (हर समय, ग्रीष्म के प्रचण्ड आतप में भी हरी भरी रहने से), बलामोटा है। हिन्दी—नागदमनी, नागदौन, पिंढ़ार है। मराठी—नागदवन, नागिन या पाता। गुजराती—नागदमन। बंगाली—बड़कानूर, नागदौन। अंग्रेजी – पायसन बल्ब (Poison bulb), लेटिन—क्रिनम एसियाटिकम, क्रि० टाक्सिकेरियम (C, Toxicarium); क्रि० डेफ्लेक्सम [C. Deflexum] क्रि० लेटिफोलियम (C. Latifolium)।

इसमें लायकोरिन [Lycorin] नामक एक तत्व पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—मूल [कन्द] और पत्र।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, तिक्त, कटु, तिक्त कफ शामक, सादक, वामक, मूत्रल तथा व्रण, उदरवात, ज्वर, कृमिरोग, प्रदाह, कास, श्वास, योनिरोग, मूत्ररोग, अर्बुद, रक्तविकार, दन्तशूल, प्लीहा वृद्धि, जालगर्दभ [एक प्रकार का विसर्प रोग], सर्प विष, ग्रहबाधा, राक्षस बाधा आदि में प्रयुक्त होता है।

कन्द की क्रिया जंगली प्याज या इषिकाक के समान होती है। अल्प मात्रा में स्वेदल तथा कफ निस्सारक है। बड़ी मात्रा में यह सौम्य एवं उत्तम वामक है, इससे किसी प्रकार की बेचैनी, उदरपीड़ा या शैथिल्य नहीं होने पाता।

ताजे कन्द के टुकड़े कर औषधि कार्यार्थ शुष्क कर सुरक्षित रखते हैं।

(१) विष निवारणार्थ—सर्व प्रकार के विषों पर तुरन्त ही कन्द का रस पिलाते या इसके शुष्क टुकड़ों को पानी में घिस कर पिलाते हैं। वमन द्वारा विष निकल जाता है। सर्प विष पर—मूल या कन्द १ मासा की मात्रा में ५ दाने कालीमिर्च के साथ पीस छान कर बार बार पिलाते हैं या इसका रस १-३ तो० की मात्रा में १-१ घण्टे से ३-४ बार नलिका डालकर रस को उदर में पहुंचाते हैं। अथवा इसके रस में १ दाना श्वेत गुंजा पीसकर प्रयुक्त करते हैं।

(२) तमक श्वास पर—कन्द का चूर्ण ३ मासा तक शहद के साथ चटावें। अथवा–इसके १ मासा चूर्ण में समभाग गुड़ मिला धूम्रपान करावें। ½ घंटे में तमकश्वास का अवरोध हो जाता है —वैद्य दारोगाप्रसाद जी मिश्र (धन्वन्तरि के गुप्त सिद्ध प्रयोगांक से।)

पत्र—मूत्रकृच्छ्र में—पत्र-रस को मिश्री की चाशनी के साथ सेवन कराते हैं। योनिरोग में--पत्र के क्वाथ से योनिप्रक्षालन करते हैं। दाद पर--पत्र रस में नमक मिला धूप में थोड़ा गरम कर लेप करते हैं। शूल, प्लीहा, उदर रोग, आध्मान पर—पत्र रस में सेंधानमक मिला पिलाते हैं। बालतोड़, विद्रधि, विसर्प तथा अन्य चर्मरोगों पर और नारू पर—पत्तों पर तैल चुपड़ कर, गरम कर बांधते हैं इसके प्रयोग से व्रणों में राध नहीं पड़ने पाती। मच्छरों को भगाने के लिये—पत्तों को जलाकर धुआं करते हैं पत्तों को कुछ कुचल कर पशुशाला में लटका देने से दूषित कीटाणुओं का प्रवेश नहीं होने पाता। कृमि रोग पर—पत्र रस की कुछ बून्दें शक्कर मिलाकर देते हैं।

(३) बालकों के कफ प्रकोप जन्य डिब्बा, पसली चलने आदि विकारों पर—पत्तों को थोड़ा गरम कर रस निचोड़ कर उसमें बहुत थोड़ा शहद मिला पिलाने से सहज ही में वमन द्वारा कफ निकल जाता है तथा तज्जन्य विकार दूर हो जाते हैं।

(४) उंगलीपाक (Whitlow) पर—उंगली में शूल जैसा तीव्र वेदनायुक्त शोथ हो तो पत्तों को पीस कर थोड़ा रेंड़ी तैल मिला गरम कर पोल्टीस की तरह बांधने से वेदना शमन होती है। यदि पकने पर हो, तो शीघ्र ही पक कर फूट जाता है, तथा भीतर का दूषित विकार निकल जाता है। यही प्रयोग क्रोष्टुकशीर्ष (वात एवं रक्तप्रकोपजन्य अति पीड़ायुक्त श्रगाल मस्तक जैसा जानुसंधि में उत्पन्न शोथ (Inflamed knee) पीड़ा, शोथयुक्त अर्श के मस्से तथा नहरुआ पर भी किया

Scanned with CamScanner

जाता है। व्रण को पकाने के लिये पत्तों को पीस, आंबा-हल्दी व नमक मिला कर बाँधते हैं। व्रणपूरणार्थ पत्ररस के साथ तैल मिला पकाकर मोम मिला मलहम बनाकर लगाते हैं।

(५) कटिवेदना पर—पत्तों पर रेंड़ी तैल चुपड़कर गरमकर कमर पर बांधने से कमर का दर्द दूर होता है।

(६) कर्णशूल में—पत्तों को गरम कर रस निचोड़ कर थोड़ा नमक मिला कान में डालने से शीघ्र ही लाभ होता है।

(७) सगर्भा स्त्री की कटि वेदना पर–कभी-कभी गर्भवती स्त्री की कमर में एक प्रकार की वेदना होती है, जिसके कारण उसे एक पैर लचका कर चलना पड़ता है। ऐसी दशा में इसके पत्र में गुड़ लगाकर बांधने से शीघ्र लाभ होता है–श्री राजवैद्य पं. रामगोपाल जी मिश्र [धन्वन्तरि के बूटी चित्रांक से]

(८) पशुरोग पर—पशु के छोटे बच्चों के पेट में पटार [एक प्रकार के लम्बे कृमि] पैदा हो जाने पर इसका पत्र-स्वरस छाछ या दूध के साथ पिलावें। पशु के शरीर में लेड़या [कीड़े] पड़ जाने पर पत्तों का काढ़ा करके लगावें। –श्री पं. रामगोपाल जी मिश्र

नोट–मात्रा--मूल या कन्द का रस ४मासे से १६ मासे या २ तो. तक। वमनार्थ--कन्द का ताजा रस १-२ तोला कन्द का कल्क १-३ माशा. । शर्बत - ८ माशा. तक बालकों के कफ प्रकोप में देते हैं।

शुष्क मूल की मात्रा दो गुनी लेते हैं।

नागदमनी नं० २[1] (Redilanahus Tithimaloi ?)

यह एक प्रकार का थूहर जाति (Euphorbaceae) का क्षुप है। इसके क्षुप ३-४ फुट ऊंचे, ऊपर को ही सीधे गांठदार, बढ़ते हैं। कांड व शाखायें कुछ टेढ़ी मेढ़ी सी, गांठदार गहरे हरितवर्ण की, शाखायें ऊंगली जैसी मोटी अग्रभाग में कुछ पतली, पत्र-प्रायः प्रत्येक गांठ पर, सर्प-फणाकार २½ इंच तक चौड़े, ३ इंच तक लम्बे, गहरे रंग के, मोटे दलदार मांसल, तोड़ने से तड़कने वाले, पत्र-वृन्त--बहुत ही छोटा, पुष्प वर्षाकाल में नन्हा सा सिन्दूर जैसा लाल रंग का, धाय की कली के समान होता है। पुष्प प्रायः विकसित नहीं होता, उसी के अन्दर इसके छोटे छोटे बीज होते हैं। पत्र और डंठल को तोड़ने से दूध निकलता है। सर्प प्रायः इस क्षुप के निकट नहीं आता। कहा जाता है कि सर्प से दंशित नेवला इसी की छाल तथा पत्रों को बार-बार खाकर सर्प को पराजित करता है।

इसके क्षुप कुछ कंकरीली आर्द्र भूमि में नैसर्गिक तथा बाग-बगीचों में लगाये जाते हैं। इसे प्रायः घरों में भी सर्प से बचाव के लिए गमलों में या बाहर के आवार की भूमि में लगाते हैं।

इसे नागदवन, निर्विषी एवं ग्रामीण भाषा में नगहा कहते हैं। इसका लेटिन नाम संदिग्ध है. निश्चित नहीं।

गुणधर्म--

प्रायः उक्त नागदमनी नं० १ के समान हैं।

शोथ पर इसे कुचलकर निचोड़ कर निकाले हुए रस में गेरू और किंचित् अफीम मिला, गरम कर लेप करते हैं।

कर्ण विकार में—इसका स्वरस गरम कर कान में टपकाने से कर्णस्राव, कर्णनाद शीघ्र दूर होता है। दन्त कीट में इसके रस में रुई की फुरेरी भिगोकर दाढ़ में दबाने से कीट नष्ट होकर दर्द दूर होता है।

[१] सर्प विष पर—सर्पदंश के बाद शीघ्र ही इसके ३ पत्र और ५ दाने कालीमिर्च पीसकर पिलाने से विष

---

[1] खेद है कि बहुत कुछ छानबीन करने पर भी इसका उचित लेटिन-नाम हमें नहीं प्राप्त हुआ शास्त्रोक्त लेटिन नाम राजवैद्य ठा० हरदेव बख्श सिंह वर्मा, बरबन, हरदोई निवासी ने अपने लेख बूटीदर्पण में प्रकाशित किया था। इस बूटी का विशेष वर्णन श्री पं० अनन्त देव जी मिश्र वैद्यराज शास्त्री ने धन्वन्तरि के वर्ष १० अङ्क ११ में प्रकाशित किया है। यह बूटी प्रायः सर्वत्र सुलभता से प्राप्त होती है। हमने भी इसका अनुभव किया है। मिश्र जी ने भूल से इसका लेटिन नाम आर्टमेसिया वल्गेरिस (Artemesia Vulgaris) लिख दिया है। इस लेटिन नाम की बूटी का वर्णन आगे नागदमनी नं० ३ में देखिये।

Scanned with CamScanner

नहीं बढ़ने पाता तथा इसी प्रकार ४-५ मात्रायें देने से विष बिल्कुल नष्ट हो जाता है। यदि सर्वांग में विष फैल गया हो तो इसका ३ माशा दूध पिला देने से वमन, रेचन द्वारा विष निकल जाता है तथा इसकी जड़ और पुराना गुड़ १-१ तोला काली कमली (जो भेड़ की ऊन बनी हो) की भस्म ३ माशा तथा काली मिर्च १ माशा इनको पानी के साथ महीन पीस लें (पानी १ ½ तोला से अधिक नहीं होना चाहिये) फिर इसमें ३ तोला घृत मिलाकर पिलावें बैठे हुए दांत और मूर्च्छा १ मात्रा में दूर हो जायगी। किंतु ४-५ मात्रा और पिलावें तो विष बिल्कुल नष्ट हो जाता है ध्यान रहे कि जितना विष घटता जाय, तदनुसार दवा की मात्रा भी कम करते जावें। अथवा—

इसके पत्र ५ नग, तथा कालीमिर्च ३ माशा दोनों को महीन पीस ५ तोले गौ घृत मिला दो मात्रा देने से शीघ्र लाभ होता है।

—श्री पं० अनन्तदेव मिश्र वैद्य शास्त्री

नागदमनी नं-२

[२] श्वान, शृंगाल आदि के विष पर—कुत्ते या सियार के काटे हुये स्थान पर शीघ्र ही इसका दूध लगा कर भर देवें, और नित्य इसकी २ पत्ती ७ काली मिर्च को पीसकर प्रातः निहार मुख, थोड़े जल में घोल छानकर पिलावें। ऊपर से गरम जल पिलावें (उक्त पीने की दवा में यथारुचि शहद भी मिला सकते हैं)। पूर्ण लाभ होता है।

मूषक विष पर—इसकी पत्ती पीस कर लगायें तथा उसीके क्वाथ से प्रक्षालन करते रहें।

बिच्छू, शहद की मक्खी, बर्र आदि कोई भी जह-रीले जंतु के काटने पर इसका दूध लगा देने से तुरन्त लाभ होता है। यदि बिच्छू के ऊपर इसका दूध टपका दिया जाय तो वह शीघ्र ही मर जाता है।

मकड़ी (लूता) के विष पर इसका दूध लगाने और पत्तों को पीस कर लेप करने से शीघ्र आराम होता है—

—श्री पं० अनन्तदेव जी मिश्र वैद्यशास्त्री।

निम्नाङ्कितप्रयोग भी सब उक्त मिश्र जी के ही अनुभूत हैं

(३) व्रणों पर—नये उठते हुए व्रण को दवा देने के लिए, इसके पत्र पर घृत चुपड़ कर, आग पर थोड़ा गरम कर फोड़े पर पांच तहकर के बांध देने से फोड़ा बैठ जावेगा। किंतु ध्यान रहे यह उपचार फोड़े के उठते ही प्रथम या दूसरे दिन करने से ही वह बैठ जाता है। अधिक दिन के बाद व्रण के स्थान का रक्त विशेष दूषित हो जाने पर व्रण नहीं बैठ सकता।

व्रण को पकाने के लिए इसके पत्र या जड़ को पीस कर उसमें रेहु (रेहु मृत्तिका जो धोबी कपड़ों में लगाते हैं) मिला गरम कर दिन में दो बार लेप करें। व्रण शीघ्र पक कर फूट जाता है।

घाव भरने के लिए—इसके पत्र ५ तोला लेकर पीस कर उसमें ५ तो. अलसी का तैल मिला, मंद आंच पर पकावें। दवा जल कर काली हो जाने पर उतार कर घोंट देवें या मोम ४ माशा डाल दें तो मरहम बन जावेगा। प्रथम इसीके पत्र क्वाथ से घाव को धोकर तैल या मलहम को लगावें। शीघ्र आराम होता है, व्रण को शुद्ध कर भर लाता है।

किसी भी प्रकार का घाव हो इसका रस लगाने से

Scanned with CamScanner

या उक्त मलहम को लगाने से घाव शीघ्र पूरित हो जाता है।

घाव के कृमिनाशार्थ—इसके दूध में रुई भिगोकर घाव में भर दें. या दूध ही भर दें, कृमि नष्ट हो जावेंगे।

(४) कृमि रोग पर--इसके २० तोला स्वरस में काला नमक, काला जीरा और बायविडंग २-२ तोला मिला आग पर इतना पकावें कि लपसी के समान गाढ़ा हो जाय, पुनः सिल पर बारीक पीस झरबेर जैसी गोलियां बना लें। १-१ गोली दिन में ३ बार पलाश पापड़ा (ढाक के बीज) के क्वाथ से दें। शर्तिया कृमि नष्ट हो जाते हैं।

अथवा--इसके पत्र और गुड़ ३-३ तोला तथा अजवायन १ तोला सबको एकत्र महीन पीस झरबेर जैसी गोली बना रक्खें। प्रातः सायं १-१ गोली गरम जल से ७ दिन सेवन करें। पेट के कृमि मरकर निकल जावेंगे।

(५) उदर रोग पर--इसके प्रयोग से प्रत्येक उदर व्याधि में कुछ लाभ अवश्य होता है, किंतु अजीर्ण, अफरा, प्लीहा, गुल्म, यकृत,शूल,सर्व प्रकार के कठोदर, कृमि आदि में पूर्ण लाभ होता है--

अजीर्ण में--इसका स्वरस १ तोला, कालानमक, जवाखार १-१ माशा और हींग भुनी हुई ३ रत्ती का मिश्रण (यह १ मात्रा है) दिन में दो बार सेवन से शीघ्र लाभ होता है।

अफरा हो, तो—इसके १ तोला स्वरस में हरीतकी १ नग, हींग भुनी ३ रत्ती का चूर्ण मिला तथा उसमें शहद मिला पीने से लाभ होता है।

प्लीहा में--इसके पत्र १०० नग, पांचों नमक २५ तो. लेकर प्रथम नमक में इसका दूध १५ तोला मिला, एक हांडी में पत्तों की तह लगा-लगा कर उस पर उक्त नमक डाल-डाल कर हांडी बन्द कर गजपुट में फूंक दें। स्वांग शीतल हो जाने पर निकाल कर पीस कर रख लें। मात्रा १ माशा से ३ माशा तक, कुमारी (ग्वारपाठा) के स्वरस और शहद के साथ प्रातःसायं सेवन से प्लीहा रोग शांत होता है तथा अजीर्ण, अफरा, गुल्म, मन्दाग्नि, शूल आदि नष्ट होते हैं।

उदरशूल पर—इसके पत्र १० नग, हींग असली १ माशा, कालीमिर्च चूर्ण २ माशा लेकर पत्तों की तह करें और बीच-बीच में हींग व कालीमिर्च डाल-डाल कर कई पर्त करें। ऊपर से मोटा वस्त्र गीला कर लपेट दें, उसके ऊपर बांबी की मिट्टी (वल्मीक मृतिका) का दो अंगुल मोटा लेप कर गोला सा बनावें। गोला सूख जाने पर अरने कण्डों की निर्धूम आग में डालकर तपावें। ऊपर की मिट्टी लाल हो जाने पर उसे निकाल डालें तथा पत्तों को निचोड़ कर अर्क पिलावें। शूल शीघ्र ही बन्द हो जाता है। यदि यह पुटपाक शीघ्र न बन सके, तो इसके पत्र स्वरस २ तोला में हींग, मिर्च और नमक मिला गरम कर पिलावें, तो भी लाभ होता है।

कठोदर—जिसमें उदर काठ के समान कठोर हो जाता है--इसका स्वरस और ग्वारपाठे का स्वरस ४०-४० तोला और उत्तम मधु २० तोला सबको मिला बोतलों में भर रक्खें। मात्रा—१ तोला दिन में ३ बार देवें तथा पूरे पेट पर इसके पत्तों पर रेंड़ी तैल चुपड़ कर गरम कर बांधने से लाभ होता है।

(६) वातरोग जो बहुत दिन का न हो, उस पर—इसका स्वरस और गोमूत्र दोनों ½-½ सेर लेकर एकत्र कर उसमें सरसों तैल व रेंड़ी तैल २०-२० तोला मिला मन्द आंच पर तैल सिद्ध करलें। इस तैल में कपूर २ माशा मिला मालिश करने से नूतन वात का दर्द नष्ट होता है।

(७) बाल शोष (सूखा रोग) पर—यह उत्तम कृमिनाशक होने से शीघ्र लाभकारी है। बालक की रीढ़ [पृष्ठास्थि] में जो कीड़े हो जाते हैं उन्हें यह शीघ्र नष्ट कर देती है। इसको गरम कर रीढ़ पर मालिश करें तथा पत्तों को गरम कर पूरी रीढ़ पर बांधने से आराम हो जाता है और २-४ बूंदें इसका रस नित्य पिला दिया करें तो और भी अच्छा है।

(८) योनि रोग में—इसका स्वरस, गौदुग्ध और काले तिल का तैल तीनों ½-½ सेर एकत्र कर मन्द आंच पर पका तैल सिद्ध करलें। इस तैल का फाहा योनि में रखने से योनिकन्द, दाह, शूल, शोथ, घाव शीघ्र आराम होते हैं।

(९) पशु रोग पर (अश्व शूल पर)—इसके पत्र १२ नग, कालीमिर्च के १२ दाने और गुड़ पुराना ५ तोला

Scanned with CamScanner

सबको पीस कर पिलाने से घोड़े का शूल तुरन्त नष्ट होता है।

पड़रों के पटेरे पर—भैंस के छोटे बच्चों के पेट में कीड़े [हिरोहे] पड़ गये हों, तो इसका स्वरस १० तोला सनई के बीजों का चूर्ण २ तोला और पुराना गुड़ १½ तोला सबको मिलाकर पिलाने से पटेरे मर कर मलमार्ग से गिर जाते हैं।

पशु के जूयें दूर करने के लिये–इसके पत्र डंठल सहित १ सेर लेकर ५ सेर पानी में क्वाथ करें। ३ सेर शेष रहने पर उतार कर पशु के सर्वांग में मलें। ऐसा २-३ बार करने से जूं नष्ट हो जाते हैं।

पशु खांग [पाद दारिया] में—इसका स्वरस लगाने से घाव पूरित हो जाते हैं। यदि कीड़े पड़े हों तो वे नष्ट हो जाते हैं।

नागदौना (नागदमनी नं. ३)[1] [Artemisia vulgaris]

भृंगराज कुल (Compositae) ; इसके बहुवर्षायु, झाड़ीदार, सुगंधित क्षुप २ से ८ फुट ऊंचे, तना या काण्ड कोमल, किसी का कड़ा रोमयुक्त, अनेक पत्र युक्त एवं दो या अधिक पुष्प वाली शाखाओं से विभाजित होता है। पत्र--निम्न भाग के पत्र २-४ इंच लम्बे, १-२ इंच चौड़े, लट्वाकार, पृष्ठ भाग में रोमश, धूसरवर्ण अधोभाग में श्वेत रोमश तथा कांड के अधोभाग के पत्र छोटे, रेखाकार भालाकार, किनारा अखण्ड या तीन भागों में विभक्त, प्रायः वृन्तरहित होते हैं। पुष्प–लम्बे धूसर या पीले पुष्पखण्ड पर धनिया के पुष्पों जैसे गुच्छों में गुलाबी या श्वेत वर्ण के पुष्प होते हैं। बाहर की ओर स्त्री पुष्प तथा भीतर की ओर उभयलिंग विशिष्ट पुष्प होते हैं। पत्र और पुष्प स्वाद में अति कड़ुवे होते हैं।

भारत के पूर्व एवं पश्चिम हिमालय के पहाड़ी प्रदेशों में तथा मणिपुर, आबू पहाड़, बंगाल, दक्षिण के पश्चिम घाट आदि अनेक प्रान्तों में, एवं सीलोन, एशिया व यूरोप के समशीतोष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों में यह नैसर्गिक होता है। कहीं कहीं बोया भी जाता है।

नाम–

सं.–दमनक, मंचपत्री, सुपर्ण, सुगन्धा, नागिनी। हि.--नागदौना, दौना, चित्रा, नागदवन, सेमरी, मादजरी। म.--सुरवंद। गु.--नागदवण, झीपटो। बं.--नागदमनी, नागदोन। अं ---इंडियनवर्मवुड़ (Indian worm Wood) ले.---अर्टेमीसिया व्हलगेरिस।

प्रयोज्यांग----पत्र और पंचांग।

गुण धर्म और प्रयोग--

तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, कफ पित्तशामक, दीपन पाचन, आनुलोमिक, संकोच विकास-प्रतिबन्धक, रक्तप्रसादन, आर्त्तवजनन, उदर शोधक, तथा शूल, ज्वर, योनिदोष, वमन, कृमिरोग आक्षेप आदि में प्रयुक्त होता है। शेष गुण धर्म प्रायः दवना के समान हैं (देखो तुलसी के

विशिष्ट योग—

[१] बंग भस्म–शुद्ध वंग [रांगा] के कंटकवेधी पत्र बना, १-१ इंच के टुकड़े कर, एक बड़े कंडे पर इस नागदमनी की लुगदी बिछाकर उसपर टुकड़े अलग-अलग धरकर पुनः लुगदी से आच्छादित कर ऊपर अरने कंडे धरकर फूंक दें। अग्नि शीतल होने पर सावधानी से भस्म उठाकर पीसलें। उत्तम भस्म बनेगी। यह कास, श्वास, प्रमेहादि में गुणकारी है।

[२] लोहभस्म–शुद्ध लोह के बारीक कण [चूर्ण] को इसके दुग्ध में सान [लपेट] कर, शराव संपुट में रख गजपुट देवें। ऐसा कई बार करने से सुर्ख रंग की उत्तम लोहभस्म बनती है, जो कमजोरी, श्वास कास, शोथ पांडु, प्लीहा, गुल्म, उदर रोग एवं त्रिदोषनाशक है।

[1] यह नागदमनी नहीं है। इसमें विषनाशक शक्ति नहीं है। किन्तु कई लोगों ने इसे नागदमनी ही नाम दिया है। अतः उनके संतोषार्थ हमने नागदमनी नं. ३ इसे लिख दिया है। वास्तव में दौना की जो कई जातियां भारत में पाई जाती हैं, उसी जाति का यह एक प्रकार का भारतीय अफसंतीन (इसे भाग १ में देखिये) है। इसे सुरपर्ण भी कहते हैं।

Scanned with CamScanner

प्रकरण में दवना) इसके पंचाग या पत्रों का स्वरस या फाण्ट मासिक धर्म के कष्ट एवं रुकावट पर देते हैं। फांट से भूतोन्माद में भी लाभ होता है। यह अपतंत्रक (हिस्टीरिया) में भी लाभकारी है। क्षुद्रश्वास (हांफनी, श्वास भर जाना) सिर दर्द, आध्मान, आंत्रशूल, उदर कृमि और अजीर्ण में इसके स्वरस, फाण्ट या चूर्ण का सेवन कराते हैं। यकृत विकारों पर पत्र रस का लेप करते तथा इसके क्वाथ का बफारा देते हैं। खुजली युक्त चर्म रोगों पर इसका रस तथा इसे तैल में पका कर तैल का मर्दन करते हैं। दूषित व्रणों पर पत्तों की पुल्टिस बना कर बांधते हैं। कर्णशूल में इसके स्वरस को कान में डालते हैं।

बालकों के लिये यह विशेष हितकारी है। बालकों के कृमि विकार, आध्मान, उदर शूल, कास, प्रतिश्याय में इसका पत्र रस शहद के साथ चटाते हैं।

नागदौना (नागदमनी नं. ३)
ARTEMISIA VULGARIS LINN.

इसके पत्र और डंठलों का क्वाथ (या शीत निर्यास) बलकारक है। यह स्नायु मंडल के विकारों के निवारणार्थ; एवं कीटाणुयों के नाशार्थ दिया जाता है। अश्मरी को गलाने के लिये भी इसका शीत निर्यास देते हैं गर्भस्राव प्रतिबन्धक है, तथा प्रसव में सहायक होता है। बालकों के तालुपातन (सिर में तालुस्थान पर गढ़ा पड़ जाना) विकार पर इसके स्वरस को तालु स्थान पर लगाते हैं।

इसके पत्र या कोंपलों का क्वाथ मंदाग्नि नाशक है बालकों की खांसी में यह दिया जाता है। यह क्वाथ निर्बलताजन्य रोगी की ऐंठन या बांयटों पर भी हितकर है। व्रणों पर इस क्वाथ का बफारा देने से लाभ होता है क्वाथ में दालचीनी का चूर्ण मिला सेवन से उदरशूल दूर होता है।

पत्तों का चूर्ण दूषित व्रणों पर लगाते हैं। कई प्रकार के चर्म रोगों में इसे तैल में मिला कर लगाते हैं।

इसके पंचाङ्ग की भस्म को मक्खन में मिला सर्व-प्रकार के घावों पर लगाने से लाभ होता है।

नोट—मात्रा-पत्र पंचाङ्ग या बीजों का चूर्ण १½ से ३ माशा, फाण्ट के लिये चूर्ण ६ माशा तक।

इसका अधिक सेवन मस्तिष्क तथा सन्धियों को हानिकारक है हानि निवारणार्थ शहद देते हैं।

नोटः—नागनबेल-यह एक लता या बेल है। यह इन्दौर, उज्जैन आदि मालवा प्रान्त के पर्वतों पर होती है, तथा वहां यह नागन बेल नाम से प्रसिद्ध है। इसकी जड़ बिलकुल सांप के आकार प्रकार की होती है। कहीं-कहीं इसे ही 'नाग दस' कहते हैं। इसकी जड़ बहुत कड़वी होती है। १ तो० जड़ को १० तो० जल में पीस कर छान कर पिलाने से फनवाले, तीव्र विषैले सर्प का जहर दूर हो जाता है। वमन द्वारा विष निकल जाता है। यदि एक बार के पिलाने से विशेष लाभ न हो तो पुनः ६ मा. जड़ को १० तो. पानी में पीस कर पिलावें वमन होकर सब विष दूर होता है।

—श्री पं० मुर्लीधर शर्मा राजवैद्य

नागफनी—देखो थूहर में। नागबला—देखो गंगेरन। नागरबेल—देखें ताम्बूल।

Scanned with CamScanner

नागरमोथा (Cyperus scariosus)

कर्पूरादि एवं अपने ही मुस्तक कुल [1] [Cyperaceae]के इस प्रधान तृण जातीय बहुवर्षायु,१-३ फुट ऊंचे क्षुप के काण्ड-गोल, चिकने, नलाकार; पत्र–लम्बे पतले, रेखाकार घास के जैसे; पुष्प–क्षुप के अग्रभाग से निकली हुई २-४ फुट ऊंची ऊपर की ओर १०-२० शाखा प्रशाखा युक्त, तिकोनी डंडी पर कुछ श्वेताभ हरे रंग के छोटे छोटे गुच्छों में आते हैं। फूलों के इधर उधर लम्बे लम्बे पत्ते भी होते हैं। फल लम्बे से होते हैं जिनमें गोल अण्डाकार छोटे छोटे बीज होते हैं। मूल ½-१इंच साधारण मोटे टेढे दबे हुए से काले रंग के जिनके निम्न भाग पर कसेरु

जैसी, सुगन्धित ऊपर से काले रंग के भीतर श्वेत ... होते हैं। इन्हीं कन्दों को नागरमोथा कहते हैं। ... का ऊपरी भाग शुष्क हो जाने पर उसे मूल सहित उखाड़ कर के कन्दों को काट लेते हैं।

ये क्षुप प्राय समस्त भारत के विशेषतः बंगाल व दक्षिण भारत के जलीय एवं आर्द्र प्रदेशों में बारहों मास पाये जाते हैं। वर्षाकाल में ये खूब पनपते हैं।

नोट—नं.१—प्रस्तुत प्रसंग का नागरमोथा विशेषतः पानी से भरे हुए स्थानों में पाये जाने वाला प्रशस्त माना जाता है [2]। इसके कई भेदों में से मुख्य दो भेद हैं— [१] भद्रमुस्तक (*C.* Rotundus)—इसका कांड ६ से २४ इंच तक का, पत्र–⅓ इंच तक चौड़े, एक स्थूल शिरा जो आस पास ५-७ सूक्ष्म शिराओं से युक्त एवं पत्राग्र लम्बा होता है। इसके पुष्प दण्ड से ४-१० सलाकाएं निकलती हैं जिनपर रक्ताभ श्वेतमंजरी आती है, जिनपर कुछ रक्ताभ हरितवर्ण के नन्हे-नन्हे पुष्प आते हैं। इसका मूल छोटा, कन्दाकार, १ इंच के व्यास का काला एवं सूक्ष्म तन्तुओं से युक्त होता है। यह कन्द मोटा, कड़ा एवं कुछ गोल एवं अधिक सुगंधित होता है। इसके क्षुप भारत की प्रायः सर्व मैदानी भूमि में पाये जाते हैं। सीलोन में यह बहुत होता है। [२] कैवर्त्तमुस्तक *C.* Tenniflorus यह प्रायः जल में ही होता है। कन्द छोटा, ग्रंथि युक्त होता है। इसे हिन्दी में केवटी मोथा कहते हैं।

प्रस्तुत प्रसंग के नागर मुस्तक तथा उक्त उसके दो भेदों में गुणधर्म रासायनिक संगठन की दृष्टि से विशेष अन्तर नहीं है। औषधिकार्यार्थ ताजा एवं सुगंधित मोथा लेना चाहिये।

चरक के तृप्तिघ्न, तृष्णानिग्रहण, लेखनीय, कण्डूघ्न एवं स्तन्य शोधन गणों में, तथा सुश्रुत के मुस्तादि व

---
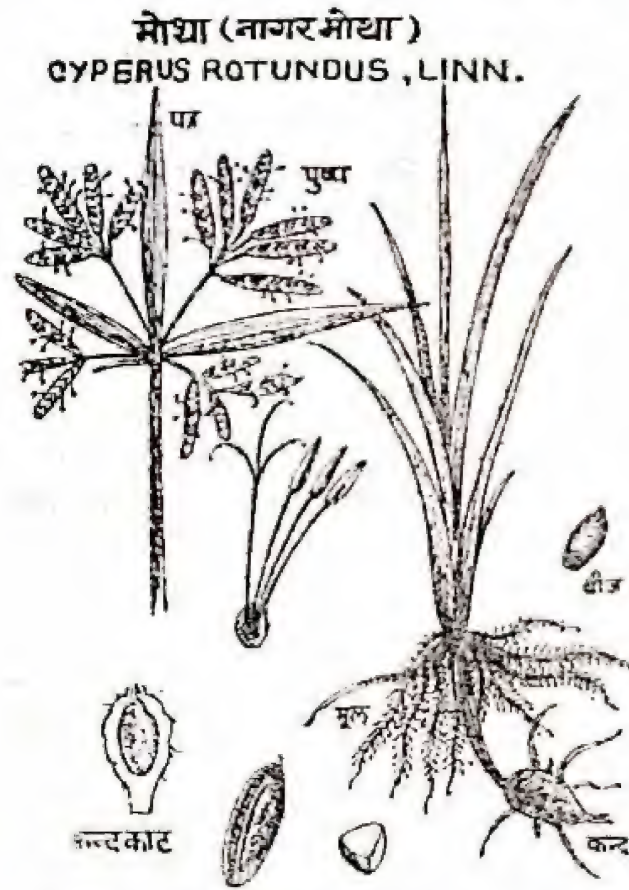
[1] इस कुल क्षुप- तृणसदृश; काण्ड त्रिकोण पर्वरहित पत्र-वृन्त रहित, पुष्प काण्डाग्र पर गुच्छों में छोटे छोटे कुञ्ज हरित वर्ण के होते हैं।

[2] अनूपदेशे यज्जातं मुस्तकं तत् प्रशस्यते। तत्रापि मुनिभिः प्रोक्तं वरं नागरमुस्तकम्। [भा. प्र.]
अनूप देश, मिश्रित देश (आनूप व जांगल मिश्रित) तथा जांगल देश में उत्पन्न हुआ मोथा क्रमशः उत्तम, मध्यम व अधम होता है—भै. र.।

Scanned with CamScanner

वचादि गणों में इसकी गणना है। भावमिश्र ने कपूरादि वर्ग में इसे लिया है।

नोट नं० २--गजचरण बूटी—नागरमोथा जैसी ही यह तृण जाति की वनस्पति उत्तरप्रदेश के अनेक स्थानों में पाई जाती है किन्तु इसका आकार व स्वरूप ठीक गजचरण के चिन्हों जैसा दिखाई देने से देहाती लोग इसे हाथीपांव भी कहते हैं। एक वृद्ध विद्वान वैद्य के कथनानुसार यह रुद्रजटा बूटी[१] है।

इसमें नागरमोथे की भांति पतली डण्डी सी निकलती है, तथा उसमें ठीक नागरमोथे के जैसे क्षुद्रपुष्पसमूह दृष्टिगोचर होते हैं। जड़ खोदने पर ज्ञात होता है कि यह नागरमोथे की जाति है। उसी प्रकार की कन्दस्वरूप जड़ें निकलती हैं। इस कन्दवत् जड़ में सूक्ष्म बाल जैसे रेशे निकलते हैं। खाने में इसकी जड़ सुस्वादु, किंचित कड़वी होती है। खस की तरह सुगन्ध आती है। ऊपर को इसके तृण लम्बे पतले, पनालादार एवं हरे होते हैं। इस तृण जाति के जत्थे का रंग वर्षा ऋतु के पश्चात् लालिमायुक्त हो जाता है।

इस बूटी के चमत्कारिक प्रयोग निम्नांकित हैं—[१] इसके पंचांग को, मिट्टी के पात्र में बन्द कर आग पर रख कर भस्म बना लें। इस भस्म को शतधौत घृत मिलाकर लगाने से विसर्प रोग और जहरवात (बच्चों का सुर्ख बादा सिर की फुन्सियां) और हर प्रकार के घाव शर्तिया अच्छे होते हैं। [२] त्रिफलादि तैल की दवाओं के साथ इस बूटी की जड़ व मेंहदी की पत्ती व फल मिला कर तैल पकाकर लगाने से उपदंश के घाव तथा अन्य चर्म रोग ठीक होते हैं। [३] इसकी जड़ को गोतक्र में पीस कर मोटा लेप करने से बगल में होने वाली कंखवारी (बद) ठीक हो जाती है।

यह बूटी विषैली नहीं है। शीत गुण प्रधान अवश्य है। इसे पानी में पीस छानकर पीते ही तुरन्त सरदी [जुकाम] हो जाती है। इस बूटी का अर्क निकालकर भी रक्त विकार के रोगों में काम में लाया जाता है। तैल में डालने से उसका रंग लाल और सुगंधित हो जाता है।

—वैद्य महावीर प्रसाद शर्मा, एकड़ला, फतेहपुर
[बूटीदर्पण के लेख से साभार]

नोट नं० ३—गोंद पटेर—कोई कोई भ्रमवश गोंद पटेर व एरक [एरका] को ही नागरमोथा या भद्रमोथा मानते हैं, तथा इसे मोथीतृण कहते हैं। भावप्रकाश आदि निघण्टुओं में भद्रमोथा के पर्यायवाची नामों में 'गुन्द्रा' शब्द आया है। इसीसे शायद यह भ्रम हो गया है। गोंदपटेर का वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में 'एरक' के प्रकरण में देखिये।

नाम–

सं–मुस्तक, मुस्त, वारिद [मेघ के सर्व पर्यायवाची नाम इसे दिये जाते हैं], कुरुविन्द भद्रमोथा इ०। हि०—नागरमोथा, मोथा। म०—नागरमोथा, लवाला। गु०—मोथ, नागरमोथा, चीजा। बं०—मुता, मुथा, मुस्ता, नागरमुस्ता। अं०—नटग्रास (Nutgrass), इंडियन सायपरस [Indian cyperus]। ले०—साइपरस स्केरिओसस, सा. रोटंडस [*C.* Rotundus] सा. पर्टेनुइस [C. Pertenuis]।

रासायनिक संगठन–

इसके कन्द या मूल में एक उड़नशील सुगंधित तैल तथा वसा, शर्करा, गोंद, कार्बोहाइड्रेट। अल्ब्युमिन सदृश पदार्थ एवं कुछ क्षार पाया जाता है। इसका सुगंधित तैल केशों के लिए बल्य है तथा कई औषधीय तैलों में यह मिलाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग:—मूल [कन्द]

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, कटु, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, शीतवीर्य, कफ पित्त शामक, दीपन, पाचन, वातानुलोमक, ग्राही, तृष्णानिग्रहण, हृद्य, मेध्य, रक्त प्रसादक, नाड़ियों के लिए बल्य, मूत्रल, व्रणरोपक, गर्भाशय संकोचक [या किंचित् उत्तेजक] केशवर्धक, स्तन्य जनन, स्तन्य-शोधन, आर्त्तव जनन, स्वेदल, त्वग्दोष निवारक, कृमिघ्न, कफघ्न, विषघ्न,

[१] 'रुद्रजटा' ईसरमूल को भी कहते हैं (ईसरमूल का विवरण भाग १ में देखें) किंतु यह ईसरमूल नहीं है। ईसरमूल उष्णवीर्य होता है, यह शीतवीर्य मालूम होती है।

Scanned with CamScanner

और ज्वरघ्न है। तथा अरुचि, वमन, अग्निमांद्य, अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, तृष्णा, कृमिरोग [कृमि में इसे बड़ी मात्रा में देना पड़ता है], रक्तविकार, कास, श्वास मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, सूतिका रोग, स्तन्यविकार, कण्डु पामादि चर्मरोग, दौर्बल्य आदि में तथा अनेक विषों में इसका प्रयोग किया जाता है।

कुपचन, वमन, अतिसारादि आमाशय एवं आंत के विकारों में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। स्वेदल, मूत्रल एवं उत्तेजक होने से यह ज्वर, ज्वरातिसार पित्त-कफ ज्वरों में उपयोगी है। यह अपने स्वेदल आदि गुणों से शारीरिक स्रोतों को दूषित दोषों से शुद्ध कर ज्वर आदि की दशा में लाभ पहुंचाता है, तथा मंदाग्नि, अरुचि आदि को भी दूर कर देता है। एतदर्थ इसका चूर्ण या फांट दिया जाता है। विसूचिका और मदात्यय में तृषा शान्त्यर्थ इसका शीत निर्यास पिलाते हैं। दुग्धवृद्धि के लिये इसे जल के साथ पीसकर स्तनों पर लेप करते हैं। नेत्रव्रण में इसे घृत में भून कर व पीस कर लगाते हैं। नेत्र की फूली तथा रात्र्यान्ध्य [रतौंधी] में इसे बकरे के मूत्र में पीसकर वर्त्ती बना आंखों में आंजते हैं। व्रणों पर—इसकी ताजी जड़ को घिस कर गोघृत मिला कर लगाते हैं। खाज, खुजली में इसका लेप करते हैं। मस्तिष्क दौर्बल्य तथा अपस्मार में इसका कल्क गोदुग्ध के साथ सेवन कराया जाता है। कामला में इसके रस का नस्य देते हैं। गले में जोंक चिपक गई हो तो इसे मुख में रख चाबने से निकल जाती है।

नोट—इसमें इतने गुण होते हुए भी इसका उपयोग स्वतन्त्र रूप से बहुत कम किया जाता है। अन्य सहायक द्रव्यों के साथ ही विकार विशेषों में इसका प्रयोग किया जाता है।

शोधन—यद्यपि इसके शोधन की विशेष आवश्यकता नहीं है तथापि निम्न विधि से शुद्ध किया हुआ मोथा वात व्याधियों में अधिक उपकारक होता है, तथा कंठ के कोई विकार नहीं होने पाते। भैषज्य रत्नावली के वात व्याध्यधिकार में इसकी शुद्धि इस प्रकार दी है—

मोथे के छोटे छोटे टुकड़े कर कांजी में ३ दिन रख पानी से धो पंचपल्लव क्वाथ से स्वेदन कर गुड़ मिश्रित जल से सेचन कर धूप में सुखाकर भाड़ में भून कर चूर्ण कर लें। पश्चात् बकरी के मूत्र एवं सहिजन क्वाथ की भावना देकर अन्त में चमेली आदि फूलों से इसे अधिवासित कर धूपित कर लें। इस शुद्ध चूर्ण की मात्रा ... तोला है।

अथवा—इसे केवल शर्करा (या गुड़) के पानी में भिगोकर सुखा लेने से भी इसकी शुद्धि हो जाती है।

(१) अतिसार पर—मोथा में दीपन, पाचन गुण होने से अतिसार, आमातिसार, रक्तातिसार में इसका उपयोग बिल्वादि चूर्ण, वृद्ध गंगाधर चूर्ण, कर्पूर रस आदि अत्यन्त प्रसिद्ध प्रयोगों में किया गया है।

आमातिसार में—ताजे मोथा को अदरख के साथ पीस कर शहद के साथ सेवन कराते हैं। अथवा मोथा संख्या में २० तक लेकर ३ गुने दूध और जल में पकावें, दूध मात्र शेष रहने पर छानकर पिलाते हैं। सर्व प्रकार के अतिसार में इसका क्वाथ कर ठंडा हो जाने पर मधु मिला कर पिलाने से लाभ होता है।

पित्तातिसार में—मोथा, इन्द्रजौ, चिरायता व रसौत का क्वाथ सेवन करावें—वं.से.। पीड़ा युक्त पित्तातिसार हो तो उक्त क्वाथ में इन्द्रजौ के स्थान में कुड़ा छाल मिला लें, तथा मधु मिला सेवन करावें। अथवा मोथा के चूर्ण को चावल का जल और मधु मिला सेवन करावें।

पित्त-कफज अतिसार में—मोथा, अतीस, मूर्वा, बच व इन्द्रजौ समभाग, क्वाथ कर मधु मिला सेवन करावें।
—भा० प्र०

कफजातिसार में—मोथा और बेल गिरी का कल्क मधु के साथ देवें।

रक्तातिसार में—मोथा और इन्द्रजौ समभाग ४ तोला का कल्क बना, अष्टगुण (३२ तोला) जल के साथ पकावें। ८ तोला शेष रहने पर ठंडा हो जाने पर उसमें मधु १ तोला मिला सेवन से लाभ होता है। इस योग को मुस्तकादि प्रमथ्या कहते हैं। —शार्ङ्गधर

बालकों के सर्वातिसार (विशेषतः आमातिसार)

Scanned with CamScanner

पर—मोथा, अतीस, सोंठ, सुगन्ध वाला, व इन्द्रजौ समभाग लेकर क्वाथ सिद्ध कर बालक को प्रातः पिलावें। यदि बालक स्तन्यपायी हो तो केवल माता को पिलावें। यदि स्तन्य और अन्न दोनों का सेवन करने वाला हो तो माता और बालक दोनों को यह क्वाथ पिलाना चाहिए।

—भै० र०।

(२) बाल रोग पर बाल चातुर्भद्र—मोथा, छोटी पीपल, अतीस और काकड़ासिंगी समभाग महीन चूर्ण कर लें। मात्रा २ से ८ रत्ती तक शहद के साथ दिन में ३-४ बार यथावश्यक देने से बालकों का ज्वर, अतिसार, कास, एवं वमन में विशेष लाभ होता है।

उक्त योग में धमासा (अथवा अडूसा) मिलाकर मधु से चटाने से बालकों की ५ प्रकार की खांसी दूर होती है। बालकों की दाह वमन और ज्वर पर—मोथा, पित्तपापड़ा, खस, सुगन्ध वाला व पद्माक समभाग मिश्रित २ तोला जौकुट कर रात को १२ तोले जल में मिट्टी के पात्र में भिगो, प्रातः छान कर २-३ बार पिलावें।

शोथ पर—मोथा, पेठे के बीज, देवदारु व इन्द्र जौ समभाग मिश्रित चूर्ण को पानी में पीस लेप करें।

—यो० र०।

(३) ग्रहणी विकार पर—विशेषतः मंदाग्नि एवं आमदोष युक्त ग्रहणी में—मोथा, सोंठ, अतीस व गिलोय का क्वाथ सेवन कराते हैं यदि केवल आमदोष पाचन की ही आवश्यकता हो तो उक्त योग में गिलोय न मिलावें। ग्रहणी रोग में हितकारी पाठादि चूर्ण, नागरादि चूर्ण, भूनिम्बादि चूर्ण आदि योगों में मोथा प्रयुक्त होता है। सर्व दोषज ग्रहणी पर-मोथा, अतीस, बेलगिरी व इन्द्रजौ समभाग, महीन चूर्ण कर २ से ४ माशा की मात्रा में शहद से सेवन करें। —वं० से० से

बालकों के ग्रहणी विकार में यह योग अति लाभदायक है।

(४) ज्वरों पर—आमज्वर की दशा में—मोथा और पित्तपापड़ा इनका क्वाथ या शीतकषाय पीने से दोषों का पाचन होकर लाभ होता है। —ग० नि०।

अथवा—मोथा, सोंठ व चिरायता समभाग का क्वाथ कफ, वात, आम तथा ज्वर को दूर करता है, यह पाचन है।

—भै० र०

वात ज्वर में मोथा, गिलोय, व चिरायता का क्वाथ देते हैं।

पित्त ज्वर में पाचनार्थ – मोथा, कुटकी व इन्द्रजौ का क्वाथ मधु मिलाकर देते हैं। तथा ज्वर की शान्ति के लिये मोथा, कायफल, इन्द्रजौ, पाठा व कुटकी का क्वाथ शर्करायुक्त देवें। पित्तजन्य चित्त भ्रम, ज्वर, दाह, वमन एवं मंथर ज्वर में—मोथा, पित्तपापड़ा, मुलैठी व मुनक्का समभाग का अष्टमांश क्वाथ सिद्धकर मधु मिलाकर सेवन करावें।

—यो० र०

कफ ज्वर में---मोथा, धमासा और सौंठ समभाग का क्वाथ बना पीने एवं पथ्य पालन करने से तीव्र कफज्वर नष्ट होता है। वृ. नि. र.। अथवा--मोथा, इन्द्रजौ, त्रिफला, कुटकी व फालसा के फल समभाग का क्वाथ सेवन करावें। --भै. र.

वात पित्त ज्वर में--मोथा, पित्तपापड़ा, नीलोफर, चिरायता, खस व लालचन्दन मिश्रित चूर्ण २ तोला का क्वाथ सिद्ध कर खांड मिला कर सेवन करने से निश्चय ही यह ज्वर नष्ट हो जाता है--भै. र.। अथवा मोथा, अमलतास, खस, हल्दी, देवदारु, पटोल, नीमछाल व मुलेठी का क्वाथ सेवन करावें। --ग. नि.

वातकफज्वर में---प्रारम्भ में आमपाचनार्थ–मोथा, चिरायता व सोंठ के क्वाथ का सेवन करावें। आमपाचन में दुर्लक्ष्य हो जाने से रोगी के इस ज्वर में अरुचि, वमन, मुखशोषादि लक्षणों की प्रबलता हो तो मोथा, पित्तपापड़ा, गिलोय, सोंठ और धमासा के क्वाथ का सेवन करावें--भै. र.। अथवा--मोथा, गिलोय, सोंठ, अडूसा, पित्तपापड़ा, हरड़ व कटेली व धमासा का क्वाथ देवें--हा. सं.। यदि इस ज्वर में कास, श्वास, हिक्कादि विकार हों तो दार्व्यादि क्वाथ (इसमें भी मोथा पड़ता है।) की योजना मधु के साथ करें।

पित्त कफ ज्वर में--यदि कफ प्रबल हो तो मोथा, गिलोय, और चिरायता का क्वाथ देवें। पित्त की अधिकता हो तो उक्त क्वाथ में पाठा नीलोफर व नेत्रवाला

Scanned with CamScanner

मिला लें।

सन्निपात ज्वर में–सामान्य त्रिदोपजज्वर हो तो मोथा, त्रिकुटा, त्रिफला, कुटकी, पटोल, नीमछाल, अडूसा, गिलोय, चिरायता व धमासा का क्वाथ सेवन करावें।

पित्तोल्बण सन्निपात हो तो मुस्तादिगण (सुश्रुत सू. स्थान) लाभदायक है। वा

न्युमोनिया सन्निपात हो तो मोथा, पद्माक, पित्त-पापड़ा, चन्दन, चमेली, सतावर व मुलैठी का क्वाथ सेवन कराने से मुख से आता हुए रक्त व सन्निपात (निमोनिया) में लाभ होता है। –भा. भै. र.

रुग्दाह सन्निपात में--मोथा, लालचन्दन, सोंठ, सुगंधवाला, खस व पित्तपापड़ा समभाग का क्वाथ बना कर ठंडा कर पिलावें। —यो. र.।

नोट—ज्वरों पर पीने के लिये षडंगपानीय योग—विशिष्ट योगों में देखें।

विषमज्वर मेंसामान्य विषमज्वर हो तो मोथा, आमला, गिलोय, सोंठ व छोटी कटेरी का क्वाथ मधु ६ मासा और पिप्पली चूर्ण १ मासा मिलाकर सेवन करावें--भै. र.। सततज्वर हो तो मोथा, आमला, व गिलोय का क्वाथ देवें। चातुर्थिक विषमज्वर हो तो मोथा, पाठा व हरड़ का क्वाथ सेवन करावें। जीर्णज्वर के कई प्रयोगों में मोथा लिया जाता है।

(५) विसर्प पर—मोथा, नीम की छाल और पटोल का क्वाथ सेवन करने से हर प्रकार का विसर्प नष्ट होता है। यो. र.। कुष्ठ पर मुस्तादि चूर्ण का योग चरक चि. अ. ७ में देखें।

(६) कृमि पर–मोथा, मूषाकर्णी (चूहाकानी), त्रिफला, सहँजना की छाल व देवदारु का क्वाथ, पीपली और वायविडंग का चूर्ण मिलाकर पीने से दोनों मार्गों (मुखावगुदा) की ओर जाने वाले कृमि एवं उनसे उत्पन्न विकार दूर हो जाते हैं।

(७) रक्तपित्त पर--मोथा, इन्द्रजौ, मुलैठी व मैनफल के बीज समभाग का क्वाथ सिद्ध कर, ठंडा हो जाने पर उसमें मधु और दूध मिला पीने से वमन होकर, विशेषत: अधोगत रक्तपित्त शमन हो जाता है। —वं. सं.।

अथवा—मोथा, सिंघाड़ा, मुनक्का, धान की खील, खजूर, व गेरू समभाग, चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का चूर्ण कर शेष द्रव्यों को सिलपर पीस, सब एकत्र मिला, शहद के साथ चटाने से एक, दो या तीनों दोषों के रक्तपित्त नष्ट होते हैं। —ग. नि.

(८) वातरक्तपर–मोथा, आमला (वाग्भट में आमला के स्थान में मुनक्का है) और हल्दी का क्वाथ ठंडाकर शहद मिला कुछ दिन सेवन से कफयुक्त वातरक्त दूर होता है। —भा.प्र.

(९) क्षयकास पर–मोथा, पिप्पली मुनक्का और बड़ी कटेरी के सुपक्व फल समभाग (इनका चूर्ण) मिश्रित कर घृत व मधु के साथ चटाने से लाभ होता है।

—भै.र.।

(१०) शूल में आमरस के पाचनार्थ—मोथा, बच, कटुकी, हरड़ और मूर्वामूल का मिश्रित चूर्ण (मात्रा १६ रत्ती तक) गो मूत्र के साथ पिलावें। —भै.र

(११) प्रमेह व मूत्राघात पर—मोथा, त्रिफला, हल्दी देवदारु, मूर्वामूल, इन्द्रायण मूल व लोध का चूर्ण मिलित २ तोला पाकार्थ जल ३२ तोला शेष ७ तोला। यह क्वाथ सर्व प्रकार के प्रमेह एवं मूत्राघात या मूत्रकृच्छ्र रोग में हितकर है। —हा.सं.

(१२) विष (कृत्रिम) पर–मोथा की जड़ को पीस कर थोड़े घृत में मिला, चावलों के जल के साथ पीने से अति दारुण कृत्रिम, विष (गर विष) नष्ट हो जाता है। —भा.भै.र.

(१३) अपस्मार पर— इसके क्षुप की जड़ (उत्तर दिशा को गई हुई) पुष्य नक्षत्र में लाकर, जटामांसी के साथ पीस कर समानवर्ण वाली सवत्सा गौ के दुग्ध में मिला कर पिलाने से लाभ होता है—यो.र.। मुस्ताद्यवर्ति का योग च.चि.अ. ११ में देखें।

(१४) मुखदौर्गन्ध्य पर-मोथा, एलुवा, मुलेठी, कूठ, धनिया व इलायची छोटी समभाग महीन चूर्ण कर पानी के साथ पीस कर गोलियाँ बना लें। गोली मुख में रखने से मुख की स्वाभाविक दुर्गन्ध भी नष्ट हो जाती है फिर मद्य, लहसन आदि की गन्ध की तो बात ही क्या है। —ग. नि.।

Scanned with CamScanner

(१५) दन्तविकार पर—मोथा, हरड़, त्रिकुट तथा वायविडंग का चूर्ण १-१ भाग और नीम पत्र २ भाग सब को गोमूत्र में पीसकर गोलियां बना छायाशुष्क करलें। १-१ गोली मुख में रखकर रात्रि में शयन करें। इससे हिलते हुए दांत दृढ़ हो जाते हैं। हिलते हुए दांतों के लिए इससे उत्तम कोई भी औषधि नहीं है —वं. से.।

(१६) अर्धावभेदक (आधाशीशी) पर पत्र प्रयोग—मोथा के ताजे पत्तों को हाथों में मसलकर दृढ़गुटिका सी बना, रोगी को दीवाल के सहारे बिठाल, मस्तक के जिस ओर पीड़ा हो उस ओर की नासिका के ऊपर की भों में जो बड़ी शिरा है, उस पर उस गुटिका को रख, हाथ के अंगूठे से जोर से दबा दें। पश्चात् उसे दही भात खिलाकर दो घण्टे के लिये सुला दें। इस प्रकार दो दिन करें।

—व. गु.।

(१७) गर्भाशय संकोचार्थ—सद्यःप्रसूता स्त्री को मोथा का चूर्ण या फांट देने से गर्भाशय संकुचित होकर दूषित रक्त बाहर निकल जाता है। गर्भाशय शुद्ध होता है।

(१८) वमन पर—कफ जन्य वमन में मोथा, वायविडंग व सोंठ का चूर्ण-अथवा मोथा और काकड़ासिंगी का चूर्ण मधु के साथ लेने से लाभ होता है।

त्रिदोषज वमन में प्रयुक्त होने वाले एलादिचूर्ण में इसे डालते हैं। अरुचि में—मोथा और आंवला का कवल धारण कराते हैं।

नोट—मात्रा-चूर्ण १ से ३ मासा (या ६ मासा तक) स्वरस १-२ तो.। फाण्ट के लिये ½ से १ तोला तक। क्वाथ ५ से १० तोला तक।

इसकी अत्यधिक मात्रा रक्त विकार पैदा करती है, तथा कंठ और फुफ्फुसों के लिये हानिकर है। हानि निवारणार्थ –शर्करा, सौंफ या अनीसूं देते हैं।

विशिष्ट योग–

(१) मुस्तादिवटी—मोथा ८ तोला तथा पिप्पली, कपूर व हींग ४-४तोला इनके मिश्रित चूर्ण को कपूर के जल से घोटकर १ या २ रत्ती की गोलियां बनालें। इसके प्रयोग से अतीसार, अजीर्ण, उग्रविसूचिका (हैजा), अरुचि अग्निमांद्य, दारुणग्रहणी विकार एवं पांचों प्रकार के कास नष्ट होते हैं भै. र.।

(२) मुस्तादि षडङ्ग पानीयः-मोथा, पित्तपापड़ा, सुगन्धवाला (या नेत्र वाला), लाल चन्दन,खस, और सोंठ (भाव प्रकाश में सोंठ के स्थान पर सौंफ दिया गया है) समभाग, जौ कुट कर इसमें से १ तो० लेकर १२८ तो० जल भरे मिट्टी के पात्र में पकावें। आधा जल शेष रहने पर ठंडा कर छान लें।

ज्वरी को प्यास लगने पर यह जल थोड़ा थोड़ा पीने को दें। इससे प्यास, दाह व ज्वर का वेग कम होता है सर्व प्रकार के ज्वर में इसे दे सकते हैं। यह उत्तम पाचन है। —च. सं. चि. अ० ३।

नोट—वाग्भट में सोंठ के स्थान पर पद्माख है। किन्तु ज्वर प्रायः आमाशय की दुष्टि से उत्पन्न होता है अतः सोंठ विशेष हितकर है।

(३) मुस्तकारिष्ट–मोथा १० सेर जौकुट कर १ मन १२ सेर जल में पकावें। १२ सेर शेष रहने पर, छान कर संधान पात्र में भर उसमें गुड़ १५ सेर, धायपुष्प १३ छटांक, तथा अजवायन, सोंठ, कालीमिर्च, लौंग, मेथी,चित्रक मूल व काला जीरा ७-७ तो. चूर्ण कर मिला १ मास तक सुरक्षित रखें। फिर छान कर शीशियों में भर लें। १ से ४ तो. की मात्रा में सेवन से अजीर्ण, मंदाग्नि, हैजा और भयंकर संग्रहणी दूर होती है-भै. र.

आसवारिष्ट के शेष-प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह में देखें।

(४) मुस्तकादि पाक–(ग्रहणी अतिसारादि नाशक)-मोथा ३२ तो., नया धनिया, त्रिफला, भांगरा, लौंग, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, छार छरीला, त्रिकुट, दोनों जीरा, अजवायन, कायफल, सुगंधवाला, धाय के फूल, कूठ, जावित्री, जायफल, दालचीनी, सौंफ, अजमोद, पान, हाऊबेर, वच, कपूर, जटामांसी, इंद्रजौ और बंसलोचन, १-१ तो. सबका महीन चूर्ण कर सबसे दो गुनी खांड़ की चाशनी में मिला पाक जमा दें या मोदक बना लें।

½ से १ तो. की मात्रा में लेने से अग्नि प्रदीप्त होगी। सरक्तग्रहणी, अतीसार, ज्वर, पांडु, हलीमक, कृमि रक्तपित्त अर्श आदि रोगों का नाश होता है।

Scanned with CamScanner

नोट—पाक व मोदक के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे बृहत्पाक संग्रह, ग्रंथ में देखें।

चर्म रोग नाशक मुस्ताद्युद्वर्तन का प्रयोग वाग्भट में देखें। नोशदारू सादा नामक प्रयोग (दीपक, पाचक, व अतीसार नाशक) यूनानी ग्रन्थों में देखें।

नागार्जुनी—देखो दुद्धि बड़ी।

नागी कपूर— देखो कुकरोंधा में।

नाड़ी शाक (Corchorus Trilocularis)

नोट--हम पीछे द्वितीय भाग में त्रिवृत्त कुल के कलमी शाक (Ipomoea Aquatica)के प्रसंग में कह आये हैं कि कलमी शाक जलाशयों में लतारूप होता है; किन्तु नाड़ी शाक जो भ्रमवश उसका एक भेद माना जाता है, जमीन पर क्षुप रूप पैदा होता है। वास्तव में यह कलमी शाक से भिन्न परुषक-कुल (Tillaceae) का एक प्रकार का जूट है। इसका विस्तृत वर्णन पीछे जूट के प्रकरण में देखिये।

इसके विशेष गुणधर्म व प्रयोग जो उक्त प्रकरण में देने से शेष रह गये हैं, उन्हें यहाँ दिया जाता है

यह शीतवीर्य (मतान्तर से उष्ण, रूक्ष)लघु, कड़ुवा, कसैला, अनुलोमिक तथा कृमि, कुष्ठ, ज्वर, गुल्म, मंदाग्नि आदि पर उपयोगी है।

पत्र गुण-प्रायः कलमी शाकानुसार है। यह शीतल, रेचक, उत्तेजक, पौष्टिक, कामोद्दीपक हैं। शुष्क पत्र-पित्तकफ ज्वर, जलदोष, आमवात आदि पर प्रयुक्त होते हैं।

बीज--कटु, उष्ण, तीक्ष्ण, स्नेहन, आनुलोमिक, शूल-नाशक, ज्वर. उदरविकार एवं यकृत की विकृति में उपयोगी हैं। ज्वर में पत्र या बीजों का फाण्ट या हिम का सेवन कराने से दाह की शांति होती है।

बीजों को लगभग ५ माशा की मात्रा में—चूर्ण कर फाण्ट बनाकर ज्वर, उदरविकार तथा आंत्र पीड़ा पर देते हैं।

बालक की पसली चलने (डिब्बा) रोग पर-इसके पत्र या पंचांग १ तोला लेकर सिल पर पीस, उसमें १ तो. काले तिल मिला फिर खूब घोट कर, थोड़ा जल मिला आग पर गरम करें। लेही जैसी गाढ़ी हो जाने पर नीचे उतार ठंडी कर, बालक की पसलियों पर दोनों ओर जहां गड्ढे पड़ते हैं, गाढ़ा-गाढ़ा लेप कर दें। एक घंटे तक लगा रहने दें, लाभ होगा। यदि आवश्यकता समझें तो दूसरा लेप भी लगा सकते हैं।

—श्री गंभीरचन्द जी जैन वैद्य अलीगंज-एटा (धन्वन्तरि के गुप्तसिद्ध प्रयोगांक से)

व्रण को पकाने के लिए-पत्तों को गरम कर बांधते हैं।

अतिसार में—इसके ३ रत्ती चूर्ण में समभाग हल्दी का चूर्ण मिलाकर देते हैं। आमातिसार से मुक्त रोगी के लिये इसकी शाक बनाकर खिलाना हितकर है। इससे क्षुधा व बल की वृद्धि होती है।

संखिया के विष पर—इसके पत्र ३-४ तोला पीस कर पिलाते हैं।

नोट नं० १—इसके अधिक सेवन से उदर में वात की वृद्धि एवं आध्मान होता है। आमाशय निर्बल होता है। हानि निवारणार्थ — नमक तथा उड़द देते हैं।

हिस्टीरिया (योषापस्मार) में—पंचांगको सुखा और जलाकर पानी में घोलकर, निथार लें फिर पकाकर शुष्क करलें। यह क्षार ४ रत्ती की मात्रा में प्रातः सायं सुखोष्ण जल के साथ पिलावें—व० चं०।

नोट नं० २—पटुआ आक (Corchorus Glitorius) जिसका वर्णन जूट के प्रकरण में बड़ी जूट नाम से किया गया है, वह नाड़ी शाक का ही एक भेद है।

इसके शुष्क पत्र, मूल व कच्चे फल औषधिकार्य में आते हैं इसका क्वाथ अतिसार में लाभकर है। रक्तातिसार में इसके शुष्क पत्रों को भोजन में चावलों के साथ खिलाते हैं। इसका हिम या शीतकषाय आमातिसार,

Scanned with CamScanner

ज्वर एवं अग्निमांद्य में हितकर है। कटुपौष्टिक, क्षुधा-वर्धक है, उत्तेजक नहीं है।

पत्र—तीक्ष्ण, उष्ण, कसैले, संकोचक, दाहनाशक, मूत्रल, बल्य, मृदुकर, ज्वरनाशक, धातुपरिवर्तक तथा अर्बुद, शूल, जलोदर, अर्श एवं उदर विकारों में उपयोगी है।

अतिसार में—पत्र चूर्ण १ रत्ती की मात्रा में सोंठ व शहद के साथ देते हैं।

मूत्रकृच्छ्र तथा जीर्ण-बस्तिशोथ में—पत्तों का फाण्ट देते हैं।

गुल्म रोग में—इसके पंचांग की भस्म शहद के साथ सेवन कराते हैं।

नान्दु (Physochlaina Praealta)—कण्टकारी कुल (Solanaceae) के वर्षजीवी इस सीधे, चिकने, २-४ फुट ऊंचे क्षुप के पत्र १०-२५ से. मी. लम्बे व लगभग ७.५ से. मी. चौड़े, ऊपरी भाग गहरा हरे रंग का पृष्ठ भाग फीका हरा पुष्प हरिताभ पीत वर्ण के फल-छोटे अनेक बीज युक्त होते हैं। इसके क्षुप हिमालय पर १२ से १५ हजार फुट की ऊंचाई पर पाये जाते हैं।

पंजाबी में—नान्दु, तथा पहाड़ी भाषा में बजर बंग, धनदावा, मरदाम आदि कहते हैं।

इसमें जहरीले एवं निद्राकारक गुण हैं। पत्र-व्रणों पर उपयोगी है। पत्र के मुख में स्पर्श मात्र से ही मुख सूज जाता है तथा चबाने से सिर व गले में विकृति आजाती है।

नाड़ी हिंगु—देखिये डीकामाली।
नाय—देखिये चिरायता छोटा।
नारबोट—देखिये शतावरी।
नार मुश्क—देखिये नागकेसर।
नारंग—देखिये नारंगी (संतरा)।

नारङ्गी (संतरा) [Citrus Aurantium]

फलवर्ग एवं जम्बीर कुल (Rutaceae) के अनेक शाखा प्रशाखा युक्त नीबू वृक्ष के आकार जैसे इसके वृक्ष होते हैं। नवीन शाखायें श्वेताभ हरितवर्ण की, पत्र-डिम्बाकृति, चिकने, नीबू-पत्र जैसे, ४-५ इंच लम्बे, अग्रभाग में कुछ मोटे, पक्षयुक्त। पुष्प-प्रायः बसंत ऋतु के मध्यकाल में श्वेत वर्ण के नीबू पुष्प जैसे किंतु सुगन्धित। फल-संतरा से छोटे गोलाकार, २-३ इंच व्यास के कच्ची दशा में फलों के छिलके हरे रंग के परिपक्वावस्था में पीतारुण रंग के होते हैं। इन्हें नारंगी कहते हैं। वे प्रायः ग्रीष्मऋतु के पूर्व ही लगते हैं तथा ग्रीष्म के मध्यकाल तक परिपक्व हो जाते हैं। संतरे के जैसे ही इनके भीतर फांकें होती हैं। तथा फांकों के भीतर गूदे में बीज श्वेत वर्ण के नीबू के बीज जैसे किंतु कुछ बड़े होते हैं। इनका रस चूसा जाता है, तथा शर्बत आदि औषधिकार्य में लिया जाता है। बीज दूर कर दिये जाते हैं। स्वाद में इनका रस खट्टा या खट मीठा या अति मीठा भी नारंगी की जाति-स्वभाव के अनुसार होता है।

यह भारत की खास उपज है, हिमालय में गढ़वाल से पूर्व की ओर, सिक्किम व मनीपुर के पहाड़ी प्रदेशों पर तथा आसाम, सिलहट एवं उत्तर प्रदेश के पहाड़ी स्थानों में विशेष होती है। उक्त पहाड़ी स्थानों के बागेश्वरी नामक स्थान की नारङ्गी बहुत मीठी होती है।

नोट नं० १—नारङ्गी और संतरा—यद्यपि वानस्पतिक दृष्टि से ये दोनों एक ही हैं। दोनों के लेटिन नाम भी शीर्षोक्त एक ही हैं, कहीं कहीं संतरे के लिये Citrus Aurantium proper कहा गया है। गुणधर्म में भी मीठी नारङ्गी संतरे के समान है (अतः बड़ी और मीठी नारङ्गी को संतरा कहा भी जाता है) तथापि फलों के और दोनों के पेड़ों के किंचित् आकार भेद से इन दोनों में अन्तर है। संतरे के पेड़ नारङ्गी जैसे ही किंतु कुछ छोटे; पत्र-अपेक्षाकृत कोमल तथा कम हरे। फूल-अल्प सुगन्धित होता है। नारङ्गी फल अपेक्षाकृत कुछ छोटा तथा प्रायः खट्टा या खटमीठा होता है। इसका छिलका कड़ा तथा अधिक कडुवाहट लिये हुये

Scanned with CamScanner

होता है। संतरा प्रायः मीठा होता है। अरबी भाषा में नारंज प्रायः खट्टी नारङ्गी को कहते हैं। संस्कृत में नागरङ्ग या नारङ्ग शब्द नारङ्गी और संतरा दोनों का वाचक है। नारङ्गी की अपेक्षा संतरा अधिक रक्तवर्द्धक, पौष्टिक, क्रांतिजनक एवं स्वादु रस युक्त होता है। इसे (या मीठी नारङ्गी को) अनेक रोगों में पथ्य रूप से दिया जाता है। यह इन्फ्लुएन्जा की सभी अवस्थाओं में सेवनीय एवं लाभप्रद है। आगे गुणधर्म देखिये।

संतरे के वृक्ष प्रायः समस्त भारतवर्ष के उष्ण एवं आर्द्र प्रदेशों में, विशेषतः मध्यप्रदेश (नागपुरी संतरा प्रसिद्ध है) में, उत्तरी भारत में कहीं-कहीं तथा आसाम में बागों में लगाये जाते हैं।

प्रस्तुत प्रसंग में नारङ्गी और संतरे का वर्णन एक साथ ही किया जाता है।

नोट-२—कमला-नारङ्गी का एक भेद कमला नामक नारङ्गी है। यह एक प्रकार की बड़ी नारङ्गी है। इसका वक्ष नारङ्गी वृक्ष से कुछ छोटा होता है। फूल- अल्प सुगन्धी होते हैं। फल-पकने पर नारङ्गी जैसा ही खटमीठा किंतु नारङ्गी से कम खट्टा होता है। कोई कोई फल विशेष पुष्ट, मीठे, सुस्वादु एवं सुगन्धित होते हैं। फल का छिलका पतला, चिकना, किसी का मोटा होता है। इसमें कडुवाहट भी कम होती तथा सुगन्ध आती है। मोटे छिलके वाले से पतला छिलके वाला कमला उत्तम होता है।

सिलहट की कमला नारङ्गी उत्तम होती है। वहां इसके वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं।

इसे हिन्दी में—कमला लेबू, सरबती लेबू, तथा बंगला में कमला, कौल और लेटिन में वही शीर्षोक्त (C. Aurantium) या सायट्रिस बिगारडिया (C. Bigaradia) कहते हैं।

गुणधर्म में यह संतरे की अपेक्षा न्यून प्रभावशाली है। विसूचिका (हैजा) पर इस की गोलियाँ उत्तम कार्य करती हैं—इसके फल को किसी शुद्ध स्थान पर रख दें। कुछ दिनों बाद सूख जाने पर, जल के साथ पीस कर चने जैसी गोलियां बनावें। जब रोगी वमन और दस्तों से परेशान हो तब ५ से १० गोलियां खिला देने से तुरन्त लाभ होता है (यूनानी प्रयोग)। इसके फल का मुरब्बा स्वादिष्ट, मनः प्रसादकर व हृद्य होता है। इसके बीजों में विषनाशक गुण की विशेषता है।

इस कमला नारंगी का सेवन कास, श्वास के रोगी के लिये तथा कफ प्रकृति वालों के लिये हानिकर है। हानिनिवारक नमक, खांड या शक्कर, कालीमिर्च, गुड़ मधु है।

नोट ३—मोसम्बी नामक सर्वप्रसिद्ध फल नारंगी का ही एक भेद है। मौजांबीक द्वीप से जो नारंगी इधर आई है उसे मौसंबी, मुसुम्बी कहते हैं। यह बहुत स्वादिष्ट और पौष्टिक होती है। इसके पेड़ दक्षिण भारत के बरार देश, नगर, पूना आदि प्रान्तों के बागों में भी विशेष बोये जाते हैं। किंतु यहां की मोसंबी उक्त द्वीप से आने वाली मोसंबी के जैसी बढ़िया नहीं होती। वह बहुत महंगी होने से भारत में यहीं की मोसंबी का उपयोग किया जाता है।

नोट ४—एक अत्यम्ल, कडू नारंगी (Bitter orange or Seville) ले.- सायट्रस (citrus Bigarabia) होती

नारङ्गी (संतरा)
CITRUS AURANTIUM VAR.

Scanned with CamScanner

है। इसका प्रायः मुरब्बा बनाया जाता है। पके फलों का शर्बत भी बनाते हैं।

चरक और सुश्रुत के फलवर्ग में नारंग की गणना एवं गुण वर्णन है।

नाम—

सं.—नारंग, नागरंग, त्वक्सुगन्ध, मुखप्रिय इ.। हि. म. गु.—नारंगी, नौरंगी, संतरा, नारिंग। बं.-नारेंगा-लेबू, कमला लेबू। अं.—चाइनीज ओरेंज (Chinese orange) कामन ओरेंज (common orange) ले.—साइट्रस ओरेंशियम, सा. व्हलगेरिस (C. Vulgaris)

रासायनिक संगठन—

(नारंगी व संतरा का रासायनिक संगठन एक समान है)

फल स्वरस में—शर्करा, म्युसिलेज (Mucilage) अर्थात् लबाब या लुआब, निम्बूकाम्ल (citric acid) पोटाशियम साइट्रेट (Cirate of potash) २.३%। निरिन्द्रिय लवण (Inorganic salts) आदि विशेषरूप से होते हैं। ताजे फल के छिलके में तथा पुष्प में एक पीताभ सुगन्धित, तिक्त उड़नशील तैल निरोली (neroli) नामक होता है। फल के छिलके में एक स्थिर तैल भी होता है। जिसमें सर्पीन, लाइमोनिन (Limonene) हेस्पिरिडिन (Hesperidin), ओरेंशिया मेरिन (Aurantia marin) नामक तत्व होते हैं। इसके अतिरिक्त एक तिक्त स्फटिकीय द्रव्य टेनिन व क्षार ४.५ प्रतिशत होते हैं। पत्र तथा छोटे कच्चे फलों में भी एक उड़नशील तैल पाया जाता है।

प्रयोज्यांग—फलस्वरस, फल का छिलका और पुष्प।

गुण धर्म व प्रयोग—

मीठी नारंगी या सन्तरा स्वरस-लघु, स्निग्ध, मधुर, विपाक, शीतवीर्य, वातपित्तशामक, रोचन, दीपन, वमन-निवारक, तृष्णा निग्रहण, हृद्य, रक्त के लिये पौष्टिक, बल्य, ग्राही, सौमनस्यजनन, तथा अरुचि, हृद्दौर्बल्य, रक्ताल्पता, रक्तपित्त, पित्त की उग्रता, रक्तोद्वेग, दाह, अपचन, थकावट आदि नाशक है। यह भोजन को शीघ्र पचाता है। भोजन पर भोजन कर लेने पर भी यह उसे शीघ्र पचाकर किसी प्रकार का विकार नहीं उत्पन्न होने देता[1]।

ध्यान रहे यदि यह रस मधुर व अम्ल (खटमीठा) हो तो वह गुरु एवं दुष्पाच्य, रोचक, वातशामक होता है।

"अम्लं समधुरं हृद्यं विशदं भक्तरोचनम्।
वातघ्नं दुर्जरं प्रोक्तं नागरंग फलं गुरु॥"

—सु. सू. अ. ४६।

चरक का भी कथन इसी प्रकार का है (देखो च. सू. अ. २७)। खट्टी नारंगी अति गुरु एवं दुष्पाच्य होती है। अपक्व, कच्ची नारंगी-अत्यम्ल कफ, पित्त एवं आम वर्धक, दुर्जर, सारक, अति उष्ण तथा वात हर होती है।

संतरा में हृद्दौर्बल्य, हृत्स्पंदन एवं वात दोष नाशक शक्ति की विशेषता है। क्षय एवं वक्षस्थल के विकारों में संतरा प्रशस्त है। उदर विकार ग्रस्तों को सर्व प्रथम इसका प्रयोग कर अन्य पदार्थ लेना विशेष लाभ कर होता है। हैजा के प्रसार काल में इसका या इसके शर्बत का सेवन हितकारी है। स्त्रियों के योषापस्मार विकार में यह विशेष लाभदायक है। संतरा के विशिष्ट प्रयोग आगे देखिये।

संतरा या मीठी नारंगी के गूदे की ऊपर की श्वेत झिल्ली दुर्जर होती है। इसे निकाल कर ही सेवन करना ठीक होता है। नारंगी या संतरे का सेवन भोजन के बाद करने से विकार दूर होते हैं। भोजन के साथ इसका सेवन पित्त शांतिकर एवं स्कर्वी नामक रक्त विकार नाशक है।

इसके रस में विटामिन 'ए' और 'बी' साधारण मात्रा में तथा 'सी' विशेष प्रमाण में पाया जाता है अतः इसका सेवन शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति (संजीवनी शक्ति को बढ़ाता है। बाह्य दूषित जीवाणुओं की विकारात्मक शक्ति का प्रतिकार करने में यथेष्ट सहायक होता है। इसके सेवन से संक्रामिक रोग सहसा नहीं होने पाता

[1] सुषेण देव कविराज का कथन है—"नारंगस्य फलं बलं च कुरुते सुस्वादु हृद्यं लघु, श्रेष्ठं वह्निकरं विदाहशमनं भुक्तान्नपाक प्रदम्। सर्वारोचकनाशनं श्रमहरं वातापहं पुष्टिदम्, भुक्त्वाऽपि प्रतिभक्षितं न कुरुते किंचिद्विकारं नृणाम्॥

Scanned with CamScanner

रोगवस्था में यह शारीरिक धातुओं के ह्रास की सम्पूर्ति या धातु संतर्पण करता है। इसमें 'सी' विटामिन की विशेषता (इसके २० तो. रसमें लगभग २०० मि. ग्रा. या१।। रत्ती तक यह विटामिन पाया जाता है।) होने से यह अस्थि- धातु को सघन एवं पुष्ट रखता है। रक्त की रक्त कणिकाओं को रंजित या लाल बनाये रखने वाला लोहांश भी इसमें होता है। इन सब कारणों से अस्थि दौर्बल्य, बालकों की अस्थि वक्रता (रिकेट्स) रोग, दन्तपूय (पायरिया), अस्थिक्षय (आस्टोमायलायटिस), आमवात (गठिया, लकवा आदि), रक्तभार की वृद्धि, पाचन संस्थान का क्रिया दौर्बल्य, गर्भावस्थाजन्य उत्क्लेश, उबकाई और वमन, सर्व साधारण वमन, पांडु, कामला, अतिसार, वातरक्त, आदि अनेक विकारों में इसके रस का नियमित रूप से सेवन विशेष लाभदायक है। इसे ज्वर-निमोनियां, उदर शूल में भी दिया जाता है।

(१) ज्वरों पर—पित्त ज्वर हो, तो इसके १ तो. रस में चन्दन का अर्क २ तो. तक मिला कर पिलाते रहने से पिपासा शांति होती है। आंत्रिक ज्वर (मोतीझरा टायफाइड) में ज्वरारंभ से ही इसका रस पिलाते रहने से ज्वर के तृतीय सप्ताह में प्रायः होने वाले अतिसार रक्ततिसार, कास, निमोनिया आदि उपद्रव नहीं होने पाते किन्तु ध्यान रहे यदि कास, निमोनिया आदि कफप्रधान उपद्रव हों तो इसके रस में २ से ४ रत्ती तक छुहारों की खील या सेंधा नमक मिला कर देना चाहिये। अन्यथा कफ के उपद्रव और भी बढ़ सकते हैं।

जीर्ण ज्वर या पुराने मलेरिया में इसके फल का अर्क (या रस) २।। तो. में चिरायता अर्क १ तो. मिला प्रति दिन कुछ दिनों तक पीते रहने से ज्वर दूर होकर शरीर सशक्त होता है।

(२) जुकाम, सरदी एवं खांसी पर—शीतकाल में उष्ण जल के साथ और ग्रीष्म काल में शीत जल के साथ संतरे का रस मिला कर पीने से लाभ होता है। अमेरिका के लोगों का कथन है कि इस प्रकार इसके रस का सेवन जुकाम व खांसी से सुरक्षित रखता है। —फलांक से।

(३) गर्भवती के वमन अतिसार, खट्टी डकार आदि पर इसके रस २।। तो० में मधु अथवा मिश्री मिलाकर दिन में ३-४ बार पिलाने से लाभ होता है। अथवा इस का शर्बत बना कर सेवन करावें। शर्बत विधि आगे विशिष्ट योगों में देखें। अतिसार में इसका रस उक्त प्रकार से देने से, अन्य उपयुक्त औषधियों का प्रभाव सरलता से उत्तम होता है।

पित्तातिसार में शर्बत विशेष लाभदायक होता है।

(४) बाल-रोगों पर—बालकों के उदर विकार तथा अतिसार पर इसका रस और शुद्ध जल समभाग मिश्रण कर थोड़ा-थोड़ा मातृ दुग्ध या गोदुग्ध के साथ ३-३ घंटे से देते रहने से लाभ होता है।

बालक को यदि रक्ताल्पता, नाड़ी दौर्बल्य, शोथादि विकार हों तो इसके रस के साथ अंगूर का ताजा रस मिला सेवन करावें।

दन्तोद्गमावस्था में (जबकि वमन, अतिसार तथा कुछ ज्वरांश भी रहता है) इसका रस थोड़ा गरम कर सुखोष्ण पिलाते रहना विशेष लाभप्रद होता है।

उदर शूल—चाहे बालक हो या बड़ों का-इसके रस २ तोला में आवश्यकतानुसार भुनी हुई हींग मिलाकर पिलाना श्रेयस्कर है। शूल, शोथादि पर 'नारङ्गी कल्प' विशिष्ट योगों में देखें।

(५) अजीर्ण,मन्दाग्नि पर—इसका रस आवश्यकतानुसार लेकर उसमें थोड़ा काला नमक व सोंठ का चूर्ण मिलाकर या सेंधानमक व कालीमिरच मिलाकर कुछ दिन सेवन से पाचनशक्ति की वृद्धि होती है। अथवा फल की फांकों पर नमक छिड़क कर प्रतिदिन खाया करें। विशिष्ट योगों में 'नारंग्यासव' देखिये।

विसूचिका (हैजा) पर देखें विशिष्ट योग में हैजा-वटी।

(६) अम्लपित्त पर-संतरे के रस में थोड़ा जीरा (भुना हुआ) और थोड़ी मात्रा में सेंधा नमक मिलाकर पिलाने से अत्यन्त बढ़ा हुआ अम्लपित्त (जिसमें कुछ खाते ही वमन हो, दूध भी न पचे, छाती व कंठ में विशेष दाह हो, खट्टी डकारें आती हों) भी शांत हो जाता है।
(स्वास्थ्य से)

नेत्र की ज्योति बढ़ाने के लिये—इसके रस में काली-

Scanned with CamScanner

मिर्च चूर्ण मिलाकर लेते रहना चाहिए।

फलों का छिलका तथा वृक्ष की छालउष्ण, रूक्ष, दीपन, लेखन, वर्ण्य, मृदुकर, कटुपौष्टिक, वर्ण विकार (व्यङ्ग, झांई आदि), व्रण तथा चर्म रोगों पर उपयोगी है।

छिलकों का रस या फाण्ट पित्तज अतिसार आदि में लाभप्रद है। शिथिलता प्रधान अजीर्ण, अग्निमांद्य, उदरशूल व निर्बलता में इसे देते हैं।

(७) अजीर्णादि पर–फलों का छिलका १ औंस. ताजे नीबू का छिलका १ ड्राम, लौंग ½ ड्राम और खौलता हुआ पानी १० औंस, सबको एक पात्र में १५ मिनट ढांप कर रखें, पश्चात् छानकर १ औंस की मात्रा में देने से विशेष लाभ होता है। यह फाण्ट विरेचक द्रव्यों के साथ या आमाशय पर विशिष्ट क्रिया करने वाले द्रव्यों के साथ अनुपान रूप में भी दिया जाता है —नाड़कर्णी

(६) उदर कृमि पर—छिलके के क्वाथ में भूनी हुई हींग और थोड़ा नमक मिलाकर पिलाते हैं।

(१०) वमन पर—छिलकों का या वृक्ष की छाल का चूर्ण मधु के साथ थोड़ा-थोड़ा चटाते हैं।

(११) अतिसार पर—वृक्ष का छिलका शुष्ककर उसके साथ समभाग मुनक्का के बीज लेकर दोनों को (जलके साथ) घोटकर पिलावें। रोगी के दस्त बन्द हो जावेंगे। —हकीम मौलवी मुहम्मद अब्दुल्लासाहब

(१२) खुजली, दाद, फुंसी, व्यङ्ग आदि चर्मविकारों पर—खुजली तथा फुंसियों में इसके फल के ताजे छिलकों को रगड़ते रहने से ही लाभ हो जाता है।

दद्रु (दाद) हो, तो छिलकों को पीसकर पुल्टिस बना दाद का वाह्यभाग खुरचकर बांध दें। रोज नई पुल्टिस इसी प्रकार बांधते रहने से लाभ होता है।

व्यङ्ग (झांई) चर्मकील, मुंहासे आदि में—छिलकों का महीन चूर्ण कर रखें। इसे गुलाबजल में मिलाकर लेप लगाया करें। इससे चेचक के काले दाग जो चेहरे पर रह जाते हैं वे भी कुछ दिनों में दूर हो जाते हैं। अथवा ताजे संतरे के छिलके को कपालों पर तथा ललाट पर रगड़ते रहने से भी कुरूपता दूर हो जाती है।

पुष्प—मधुर, सुगंधित, मृदुकर, उत्तेजक, आक्षेपहर हैं। पुष्पस्वरस-अपतंत्रक, आक्षेप आदि वात विकारों पर दिया जाता है। फूलों को सूंघते रहने से सरदी, जुकाम में लाभ होता है।

(१३) योषापस्मार, मृगी आदि आक्षेप युक्त स्नायुविक विकारों पर—पुष्पार्क–इसके ½ सेर ताजे फूलों को, कलईदार पात्र में सायंकाल के समय ४ सेर पानी मिला भिगो दें। प्रातः भबके द्वारा १½ सेर अर्क खींचकर सुरक्षित रक्खें। प्रतिदिन ३ तोला की मात्रा में इसे सेवन करायें। —आगे विशिष्ट योगों में 'अर्क बहार' देखें।

(१४) मन्दाग्नि पर—इसके पुष्प तथा छाल का तैल १-३ बून्द शक्कर के साथ देते हैं।

मात्रा–फल स्वरस २ से ५ तोला तक। ध्यान् रहे बच्चों के लिए तो फलों का रस निकालकर देना किसी प्रकार ठीक ही है। किंतु बड़ों के लिए उतना ठीक नहीं है, क्योंकि इसके गूदे में भी अनेक लाभकारी खनिज तत्व होते हैं। अतः रस सहित गूदे को भी खा लेना ठीक है। किंतु ऊपर की श्वेत झिल्ली निकाल डालना चाहिए, वह दुर्जर होती है।

फल या फलों का रस शीतप्रकृति वालों को तथा वात नाड़ियों के लिए हानिकर है। हानिनिवारक-उत्तम शहद या नमक, काली मिर्च है।

पुष्प—स्वरस मात्रा—१-२ तोला तक।

विशिष्ट योग–

(१) नारंग्यासव (अजीर्णादि नाशक)—नारंगी (संतरे) के छिलके जौकुट कर उसमें चौगुनी मद्य (७० से ६० प्र० श० वाली) मिला, कांच या चीनी मिट्टी के पात्र में भर मजबूती से मुखमुद्रा कर ७ दिन रक्खा रहने दें। बीच-बीच में हिलाते रहें। फिर छानकर शीशियों में भर रखें। मात्रा ½ माशा से ८ माशा तक। यह अग्निमांद्य, अजीर्ण, अरुचि, एवं अम्लपित्तादि उदर रोगों पर लाभदायक है। इसे कटुकासवादि अग्निवर्धक औषधियों के साथ मिलाकर सेवन करने से और भी उत्तम लाभ होता है।

Scanned with CamScanner

नोट—एलोपैथिक टिंक्चुरा ऑरंशियाई (Tinctura Aurantii) भी इसी प्रकार बनाया जाता है—संतरों के शुष्क छिलके का चूर्ण ५ तोला में रेक्टिफाइड स्प्रिट ५० तोला मिला उक्त विधि से ही बना लें। इसकी मात्रा ६० बून्द से १२० बून्द तक है।

शेष आसवारिष्ट के प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह में देखिए।

(२) नारंगी कल्प प्रयोग—प्रथम दिवस केवल १ पाव संतरे का रस केवल ४ रत्ती सेंधा नमक मिला, दुपहरी में पिलावें। दूसरे दिन १½ पाव, तीसरे दिन २ पाव, इस प्रकार प्रतिदिन १/२ पाव रस बढ़ाते हुए ३० दिनों तक सेवन करावें। नमक केवल १-१ रत्ती की मात्रा ही प्रतिदिन बढ़ावें। नमक केवल रस की स्वादिष्टता बढ़ाने के लिए मिलावें। अन्यथा शोथ रोगी के लिए नमक हानिकर है। रोगी को अन्नादि एकदम बन्द करदें। इस प्रकार १ मास के कल्प से—अग्निमांद्य, उदर शूल, चिरकालिक वृक्क शोथ (क्रॉनिक नेफ्राइटिस), सर्वाङ्ग शोथ (प्रधानतः मुख, नेत्र, पलक शोथ) आदि लक्षण युक्त रोग दूर हो जाता है। कल्प समाप्ति के बाद भी संतरे का रस लेते रहना ठीक होता है तथा भोजनारंभ के दिन मूंग की दाल का पानी शुरू करके ७ वें दिन पूर्ण भोजन उपादान (दाल, चावल, रोटी, घी, दूध, शाक, पापड़ आदि) प्रारंभ करें।

(वृक्ष विज्ञान चिकित्सा पुस्तक से साभार)

(३) शर्बत संतरा व नारंगी—संतरा स्वरस ३ पाव में ४½ पाव खांड मिला पाक करें। शर्बत की चाशनी हो जाने पर उतार ठंडा कर शीशियों में भर लें। अथवा—इसके २० तोले रस में शर्करा ६० तोले और पानी ४० तोले मिला शर्बत की चाशनी तैयार करलें। यह ग्रीष्म काल में व्याकुलता को दूर करता है, मस्तिष्क को शांत रखता है। मात्रा—२ तोले तक जल में मिला कर सेवन करें।

अथवा—संतरे का रस १ सेर, मिश्री १ सेर, अर्क बेदमुश्क तथा अर्क केवड़ा २०-२० तोला सबको मिश्रण कर शर्बत की चाशनी तैयार करलें।

मात्रा—२ से ४ तोला के सेवन से पित्त की उग्रता नष्ट होती, तृषा मिटती, हृदय को बल प्राप्त होता है।

अथवा—इसके रस के चौथाई भाग गुलाब जल तथा सब के समभाग चीनी मिलाकर चाशनी तैयार करलें। मात्रा और गुण उपरोक्तानुसार। इससे रक्त की शुद्धि होती है। प्रतिदिन निहार मुंह पिलाया करें। लगभग २१ दिन के व्यवहार से चेहरे पर लालिमा एवं स्वास्थ्य की झलक दीखने लगती है--ह. मौ. मु. साहब। इस शर्बत में चिरायते का अर्क मिलाकर सेवन से उत्तम रक्त शुद्धि होती है।

शर्बत-नारंगी—आवश्यकतानुसार (लगभग ४० तोले बढ़िया) गुड़ लेकर अर्क गाजवां के साथ पकावें तथा झाग दूर कर गाढ़ा अवलेह सा हो जाने पर उसमें १० तोला नारंगी का रस मिला, २-३ उबाल आजाने पर नीचे उतार कर उसमें केसर ७ रत्ती प्रति पौंड़ के हिसाब से गुलाब जल में घोटकर मिला दें। मात्रा २ से ४ तोला तक जल में मिला पिलावें। यह हृदय और आमाशय को शक्तिप्रदान करता है।

—ह. मौ. म. साहब।

अथवा—आधा सेर खांड को अर्क गाजवां १० तोले में पाक करें, फिर नारंगी रस १२ तोला डालकर पुनः पकावें। शर्बत तैयार हो जाने पर उसमें केसर १ माशा गुलाब जल में घोटकर मिला दें। मात्रा—२ तोले लेवें, अर्क गाजवां के साथ। यह भी हृदय तथा पाचक शक्ति को बढ़ाता है।

(४) सिकंजबीन (अम्ल शर्बत) संतरा—संतरा रस १॥ सेर में कासनी मूल की छाल २ तोला, ककड़ी बीज व खीरा बीज प्रत्येक १॥ तोला चूर्ण कर मिला दें। रात भर भिगोये रक्खें। प्रातः पकावें, १ सेर शेष रहने पर छान कर १ सेर खांड और १ पाव सिरका मिला पुनः पाक करें। मात्रा—२ तोला यथायोग्य अनुपान से देवें। यकृत दोष को नष्ट करता है, जलोदर तथा तीव्र ज्वर में उत्तम है। इसे सिकंजबीन बजूरी बारद कहते हैं।

—यू० चि० सा०

(५) अर्क बहार-नारंगी के पुष्प ५ सेर, गुलाब पुष्प १ सेर तथा सौंफ, दाख बीज रहित, किसमिस प्रत्येक

Scanned with CamScanner

१६ तोले और ऊद, बहमन लाल, शकाकल मिश्री १-१ तोला इन सबको २५ सेर जल में रात को भिगो रक्खें। प्रातः भवके द्वारा १२ सेर अर्क खींच लें। अर्क निकालते समय १½ माशा अम्बर की पोटली यंत्र नलिका के अन्त में बांध देनी चाहिए।

मात्रा—६ तोला तक। हृदय का डूबना तथा तृषा में अत्यन्त उपयोगी है। —यू० चि० सा०।

(६) रायता या कढ़ी नारंगी—खट्टी नारंगी का रस लगभग २० तोले में २॥ तोला बूरा या खांड, १ तोले अदरख, २ माशा जीरा, तथा ४ नग बड़ी इलायची के दाने महीन पीस छानकर मिला दें। पश्चात् हींग और दालचीनी की छोंक देवें। एक उबाल आजाने पर उतार लें। यह स्वादिष्ट रायता उत्तम पाचक होता है।

(७) मुरब्बा संतरा—आवश्यकतानुसार संतरों को छीलकर गूदे को निचोड़ कर रस को अलग रक्खो। जो गूदे का छूंछ है उसे उबाल लो कि नर्म हो जावे तब उसमें अलग रखा हुआ रस ⅛ भाग मिश्री मिला इतना पकाओ कि शर्बत की चाशनी सी हो जावे। फिर तुरन्त ही नीचे उतार कर ठंडा कर सुरक्षित रखें। यह मुरब्बा दिल व दिमाग को तर रखता है। —यूनानी प्रयोग

नोट—संतरे की चटनी, सिरका आदि भी बनाये जाते हैं। विस्तार भय से यहां नहीं लिख सकते हैं।

नारियल (Cocos Nucifera)

फल वर्ग एवं अपने ही नारिकेल कुल [१] (Palmae) का प्रधान यह वृक्ष खजूर, ताड़ वृक्ष जैसा सीधा, लगभग ४०-६० फुट ऊंचा शाखा रहित काण्ड—स्थूल, गोलाकार १-२ फुट व्यास का, कृष्ण या धूसर वर्ण का बाह्य भाग में गोल चिन्हों से युक्त पत्र-काण्ड के ऊपरी भाग में खजूर के पत्र जैसे, १२-१६ फुट तक लम्बे पत्रक २-३ फुट लम्बे, हरित वर्ण के अग्रभाग में क्रमशः नुकीले; पुष्प पत्तों के अन्तराल से निकली हुई २ फुट लम्बी लम्बी अनेक सीकों पर पत्रावरण से ढंके हुए सघन गुच्छों में छोटे छोटे फूल सुन्दर पीतवर्ण के बसंत या ग्रीष्म ऋतु में आते हैं। स्त्री पुष्प तथा पुं पुष्प एक ही गुच्छ में पाये जाते हैं। स्त्री-पुष्प पुं पुष्प से आकार में बड़े तथा पुष्प गुच्छ के आधार के समीप ही होते हैं तथा ये ही फल रूप में परिणत हो जाते हैं। पुं पुष्प धान की खील के समान अनेक लगते हैं जो कुछ दिनों में झड़ जाते हैं। औषधि प्रयोग में प्रायः ये ही पुं पुष्प लिए जाते हैं। फल—पेड़ उगने के ७-८ वर्षों बाद पत्रों के बीच में ताड़ फल जैसे इसके फल प्रायः वर्षा काल में आने लगते हैं। ये फल ६-१० इंच लम्बे मनुष्य के सिर के बराबर कुछ तिकोने बाह्य कठोर आवरण हरा या पीला सा होता है। बाहर के तन्तुमय स्तर के भीतर कठोर कवच तथा उस के भीतर श्वेतीय (एल्व्युमिनस) पदार्थ का आस्तरण, बीज एवं हल्के दूधिया रंग का मीठा जल या गिरी विद्यमान होती है। कवच के एक सिरे पर तीन छिद्रों के चिन्ह होते हैं। दो चिन्हों में सुराख से अन्दर का पानी बाहर आ जाता है। एवं छिद्रों के सम्मुख भ्रूण (बीजांकुर) पड़ा रहता है। भीतर का जितना अंश खाने योग्य होता है, वह गरी या खोपरा कहलाता है। कवच फोड़ने पर बड़ा गोला सा निकलता है वह गरी का गोला कहाता है। कवच के सहित पूर्ण फल को नारियल कहते हैं।

फल की बाल्यावस्था (डाभ या दाभ) में केवल मधुर जल ही भरा रहता है मध्यावस्था में उक्त जल का कुछ भाग मृदु गरी के रूप में परिणत होता है। और पक्वावस्था में गरी या मज्जा कठोर हो जाता है। जल बिल्कुल नहीं रहता।

इसके वृक्ष समुद्रतटवर्ती प्रदेशों यथा दक्षिण के बम्बई प्रान्त, कर्णाटक, कालीकट तथा पूर्वी बंगाल, उड़ीसा, बर्मा आदि में बहुतायत से होते हैं।

---

[१] इस कुल के वृक्ष बड़े या मध्यमाकार के अकेले या झुण्डों में, काण्ड सीधे, प्रायः शाखा रहित, पत्र-एकान्तर, काण्ड के अग्रभाग में सम्बद्ध, पुष्प—छोटा, पुंकेशर प्रायः ६, दो कतारों में, बीज कोष १—३ कोष्ठ युक्त; फल कठिन कवच युक्त होते हैं।

Scanned with CamScanner

नोट-नं १—पुराणानुसार यह विश्वामित्र ऋषि की सृष्टि का फल है। इसकी विस्तृत कथा पुराणों में कही गई है। हिन्दु धर्म शास्त्रानुसार मांगलिक कार्यों में इसे अग्रस्थान प्राप्त है। जिस प्रकार देवताओं में श्री गणेश प्रथम प्रतिष्ठित किये गये है,ठीक उसी प्रकार फलों में नारियल का स्थान है। अतः यह श्रीफल कहलाता है।

नोट नं० २ इस वृक्ष का प्रायः सर्वाङ्ग उपयोगी है इसके पौधे बीज से उगाये जाते हैं। फल के भीतर ही बीज का भ्रूण अंकुरित हो जाता है, तथा प्रथम फल के अन्दर के श्वेतीय (एल्बुमिनस) पदार्थ को आत्मसात कर समूचे कवच को भर देता है तब गिरी मृदु पड़ जाती है और जड़ें कवच की दीवारों से बाहर निकल पड़ती हैं। एक वर्ष बाद पौधों को तीनफुट गहरे खोदे हुए गड्ढों में पुनरारोपित कर देते हैं। इसमें एक मास में एक के हिसाब से पत्र निकलते हैं। वृद्धि के तीसरे वर्ष में पत्र गिरने लगते हैं। २५ व ३० वर्ष के बीच में पौधा पूर्ण उन्नत हो जाता है, और पत्तों की संख्या भी बढ़ जाती है। फलों की सामान्यतः १२ शाखायें होती हैं। एक ही समय में कुछ में सूखे एवं कुछ में हरे फल लगे होते हैं। गेंद के आकार तक पहुंच जाने पर इनमें अधिकतर बाल फल गिर पड़ते हैं। कुछही परिपक्वता तक पहुंच पाते हैं। तथापि एक ही पेड़ वर्ष भर में लगभग १०० फल पैदा कर देता है। पुष्प प्रायः मार्च से जुलाई तक निकलते हैं तथा फल प्रायः १ वर्ष बाद पकते हैं।

नोट नं० ३—नारिकेल मणि—नारियल की फलभित्ति में कभी कभी पथरीली मणियां पाई जाती हैं। दो हजार या इनसे भी अधिक नारियलों को तोड़ने पर किसी एक में यह मणि निकलती है। रोगों का उपचार करने तथा भूत प्रेतों को भगाने के उद्देश्य से मलय के आदिवासी इसे बहुत सम्भाल कर रखते हैं। इस मणि सदृश पथरीली रचना की बनावट बांस में होने वाली वंशलोचन के समान होती है।

(श्री रामेश वेदी के लेख का हिन्दुस्तान से साभार सारांश)

नोट नं० ४—चरक सूत्र स्थान अ. २७ में तथा सु. सू. अ० ४६ में इसके गुणधर्म का संक्षिप्त वर्णन पाया जाता है।

नाम

सं.—नारिकेल, नालिकेर, दृढफल, कूर्चशीर्ष ... स्कन्धफल, तृणराज, सदाफल, श्रीफल, आदि।

हि०—नारियल, खोपरा, गोला, खोपा। म.— ... महाद, माड़,। गु०—नालियर। बं०—नारिकेल ... कोल। अं—कोकोनट पाम (Coconut palm) ... ले—कोकस न्युसिफेरा।

रासायनिक संगठन—

इसके ताजे कोमल (डाभ) फल के जल में ... ०.६२ प्रतिशत, ग्लूकोज ५.५ प्रतिशत, इक्षुशर्करा लेश... क्लोराइड्स .५५ प्रतिशत फास्फेट लेशमात्र; ठोस ... ७.६८ प्रतिशत, जल ९२.३२ प्रतिशत, अम्लक्षार भा...

प्रतिशत होता है। मध्यावस्था के फल में प्रोटीन .५६ प्रतिशत, ग्लुकोज ४.८२ प्रतिशत, ईक्षुशर्करा १.११ प्रतिशत क्लोराइड .८६ प्रतिशत, ठोस भाग ८.७२ प्रतिशत, जल ६१.२८ प्रतिशत, अम्ल या क्षार भाग .०८४ प्रतिशत पाया जाता है। इनके अतिरिक्त इसमें ए और बी व्हिटामिन भी होते हैं। पक्व ताजे फल की गिरी में मांसवर्धक पदार्थ, वसा, लिग्निन (Lignin), क्षार, तालशर्करा (Palm sugar), और निरिन्द्रिय (Inorganic) द्रव्य होते हैं। गिरी को पीसने से जो दूध निकलता है उसमें शर्करा, गोंद, अलब्युमिन, टार्टरिक, अम्ल, खनिज और जल पाया जाता है। इसके पत्तों की भस्म में पोटाश अधिक परिमाण में होता है।

इसके पक्व फल से लगभग ६० से ७१ प्रतिशत तैल निकलता है। इस तैल में लारिक (Lauric), मिरिस्टिक (Myristic), पामिटिक (Palmitic) व स्टिअरिक (Stearic) अम्लों के ग्लिसिटायड़ों के अतिरिक्त स्वतंत्र कॅप्रिलिक अम्ल (Caprylic acid)।

मलाबार में जो नारियल का गुड़ बनाया जाता है, उसमें ईक्षुशर्करा ८७$\frac{3}{4}$ प्रतिशत, इनव्हर्ट या परिवर्तित शर्करा ६$\frac{3}{4}$ प्रतिशत और जल १$\frac{3}{4}$ प्रतिशत होता है। सूखे हुए गुड़ में ८१$\frac{3}{4}$ प्रतिशत शर्करा होती है।

प्रयोज्यांग—जल, फल की गिरी, पुष्प, मूल, जटा, तैल, क्षार आदि।

गुण धर्म व प्रयोग –

गुरु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, मधुरविपाक, वातपित्त-शामक, अनुलोमन, संकोचक, हृद्य, बस्तिशोधक, बल्य, पौष्टिक, कफकारक, शूलप्रशमन, तथा शोष, तृषा, दाह, रक्तदोष, क्षत-क्षय, ज्वर आदि में प्रयुक्त होता है।

जल (कच्चे फल या डाभ का पानी)—वर्ण्य, दाह-शामक, रेचन, शीतल, अग्निदीपन, रक्तशोधक, हिक्का-निवारक, तृष्णानिग्रहण, पैत्तिक विकार, मूत्रकृच्छ्र, मूत्र-गतवर्णविकार, वमन, मूर्छा, पित्तज्वर, विषमज्वर आदि में उपयोगी है।

जल से मसूरिका के दानों को धोते हैं, जिससे दाह शांत होती तथा उनका दाग भी मिटता है। आधाशीशी (अर्धावभेदक) में इसका नस्य देते हैं। उदर विकारों पर यह जल बंगाल में बहुत व्यवहृत होता है।

(१) मूत्रकृच्छ्र और रक्तपित्त पर—इसके जल में निर्मली फल, खांड और इलायची चूर्ण मिलाकर पीने से लाभ होता है। –यो. र.

यदि रक्तपित्त भी हो तो इसके जल में गुड़ व धनियां का चूर्ण मिलाकर सेवन से दाहयुक्त मूत्रकृच्छ्र और रक्त-पित्त भी नष्ट होता है —यो. र.।

(२) परिणामशूल तथा यकृतप्लीहा पर—जल युक्त नारियल के भीतर छेदकर जितना आ सके उतना सेंधा-नमक भरकर, उसके ऊपर मिट्टी का एक अंगुल मोटा लेप कर उपलों की आग पर पकावें। ऊपर की मिट्टी लाल हो जाने पर, उसे ठंडा कर भीतर से नमक मिश्रित जल को निकाल (मात्रा १ से ३ माशा तक में) १ या २ मासा तक पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन से वात, पित्त और कफ-जन्य एवं त्रिदोषज परिणामशूल में लाभ होता है-भा. प्र.।

यकृतप्लीहा विकार पर—ऐसा नारियल लेवें, जिसमें गरी पड़ गई हो, किन्तु ५ तोला तक जल अवश्य हो, उसमें छेदकर असली पापड़खार (या सज्जीखार या जवा-खार (Potassium Carbonatre) १$\frac{1}{4}$ तोला डालदो, १२ घंटे बाद नारियल को खूब हिलाकर अन्दर का सब रस निकाल, थोड़ी देर (५ मिनट) आग पर रख, ठंडा होने पर उसमें अर्धभाग ग्वारपाठा का रस मिला कपड़े में छान, शीशियों में भरलें। मात्रा–चाय की एक चम्मच से २ चम्मच तक, ३-३ घंटे से दिन रात में ५ बार या २ से ३ बार। यह दवा ६ माह तक टिकाऊ, गुणकारी रहती है।

(३) अम्लपित्त, उदरशूल और प्लीहा पर–इसका जल १० सेर तक लेकर आग पर पकावें, गाढ़ा अवलेह सा हो जाने पर उसमें जायफल, त्रिकटु व जायपत्री सम-भाग का चूर्ण मिला शीशी में भर रखें। प्रतिदिन प्रातः सायं १ से १॥ तोला तक सेवन करें, १४ दिन तक। व.गु.

(४) मोतियाबिन्दु पर—इसका जल ४ सेर में दारु-हल्दी ५ तोला, त्रिफला १५ तोला, मुलैठी ५ तोला व

Scanned with CamScanner

मोचरस २ मासा का महीन चूर्ण मिला कलईदार कढ़ाई में पकावें। आधा शेष रहने पर छानकर पुनः पकावें। जब उसमें भी आधा शेष रहे, तब पुनः छानकर पकावें। कुछ गाढ़ा सा हो जाने पर पुनः छानकर पकावें, अब और भी कुछ गाढ़ा होजाने पर उसमें सेंधानमक, बरास (भीमसेनी कपूर) १-१ तोला और उत्तम शहद ३/४ सेर तक मिलाकर सुरक्षित रखलें। प्रातः सायं सलाई से लगावें। प्रारंभिक अवस्था में यह जादू का सा काम करती है। बढ़ा हुआ मोतियाबिन्दु भी कुछ काल में इसके उपयोग से दूर हो जावेगा। डा. प्रेमभास्कर सिंह जी राठौर के परीक्षित गुप्त प्रयोगों से साभार।

हम इस प्रयोग में मोचरस के स्थान में पुनर्नवा मूल १० तो. और निर्मली चूर्ण ५ तो. लेते हैं। शेष विधि उपरोक्तानुसार ही है। यह हमारा चिर परीक्षित एवं अनुभूत योग है सम्पादक।

(५) मूर्छा, भ्रम आदि पर—इसके जल में सत्तु तथा सत्तू के समभाग खांड मिलाकर पीने से मूर्छा, भ्रम, पित्त, कफ और तृषा दूर होती है। —वृ. नि. र.।

(६) रक्त प्रमेह पर—एक जल से भरा हुआ कोमल नारियल लेकर, छिद्रकर भीतर २० तोला तक जल शेष रक्खें, अधिक जल को निकाल दें। फिर उसके भीतर फिटकरी चूर्ण ३-४ मासा तक डालकर, छिद्र को बन्द कर रात्रि के समय बाहर ओस में रखें। प्रातः उसे हिलाकर पिलावें — व. गु.।

अर्ध पक्व नारियल का दूध और कोमल गिरी—गुरु, शीतल तथा मलरोधक है। इसका ताजा दूध रोचक, स्निग्ध, बल्य, मधुर विपाक, किंचित उष्ण, तथा वात, कफ, गुल्म, कास में उपयोगी है। क्षय की प्रारंभावस्था तथा धातु विकृति में लाभकारी है। एक बड़े नारियल का दूध व उसकी गरी प्रातः खाली पेट खाने से उदर कृमि (Hookworm)बाहर निकल जाते हैं। यह दूध बड़ी मात्रा में मृदुविरेचक है। इसे शल्यक्रिया करने के पूर्व पिलाया जाय तो रक्तस्राव कम होने पाता है। सुजाक में भी यह या कोमल नारियल का जल हितकर है। हैजे में भी यह लाभकारी है।

हैजे की वमन अन्य किसी भी दवा से बन्द न हो, इसे देने से अवश्य बन्द हो जाती है। शुष्क काम... इसकी गिरी को स्वेदित कर कूट कर रस निकाल... तोले की मात्रा में दिन में ३ बार लेने से लाभ होता है।

अर्धावभेदक (आधा शीशी) में इसके दूध में का... मिलाकर लगाते हैं। तथा इसके जल को नाक में... काते हैं।

इसकी गिरी को मिश्री के साथ खाने से गर्भिणी स्त्री को कोई कष्ट नहीं होता तथा पैदा होने वाली सन्तान गौर वर्ण की, हृष्ट, पुष्ट होती है।

(७) उरोग्रह एवं हृद्रोग पर- इसकी कोमल गिरी को पीस कर वस्त्र में निचोड़ कर जो दूधिया रस निकले वह ५ तोला लेकर उसमें भुनी हुई हल्दी के टुकड़े को मिला कर तथा २ तोला घृत मिला कर पिलावें, अथवा उन... में जलाये हुए भिलावे के तैल की १०-१५ बून्दें टपका कर पिलावें। —व...

(८) सर्व वात विकार—गिरी का रस ७ तोला निकाल कर उसमें त्रिफला चूर्ण ३ माशा और कालीमिर्च चूर्ण २ माशा या केवल कालीमिर्च का चूर्ण ही मिला कर सेवन करावें, दिन में दो बार। —व...

(९) खाज, दाद, खुजली पर गिरी का रस निकाल कर उसमें थोड़ा आमलासार गंधक मिला पकावें। ... रस शुष्क होकर जो तैल सदृश भाग शेष रहे उसे निकाल लें। तथा जो किट्ट भाग तलँटी में रहे उसे थोड़ा खिला... और थोड़ा शरीर पर मर्दन करें। नित्य रात्रि के समय तैल को लगावें। कण्डू, खुजली आदि नष्ट होती है। —व. गु.

(१०) अग्निदग्ध और सिर की गंज —इसके दुग्ध सदृश जल में अर्ध भाग अलसी [तीसी] का तैल मिला कर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर जले हुए स्थान पर लगाने से विशेष लाभ होता है। इस तैल को सिर की गंज पर भी लगाने से वहाँ बाल जम जाते हैं।

(११)लू लगने पर—इसके दूध के साथ काले जीरे को पीस कर शरीर पर लगाने से या लेप करने से शांति प्राप्त...

Scanned with CamScanner

होती है।

(१२) नारू पर—नारियल में छिद्रकर उसमें नवसादर चूर्ण (२ मासा तक) रात्रि के समय डालकर प्रातः अन्दर का जल पिलावें और उसे फोड़कर अन्दर की गिरी खिलावें। रोगी को दिन भर कुछ भी खाने को न दें। सायं स्नान कराकर दही चावल खिलावें —व. गु.।

इस रोग में गिरी के साथ हींग मिलाकर भी खिलाते हैं।

पक्व या परिपक्व फल का गोला या गिरी—पक्व ताजा फल-पित्तज्वर, पित्त विकार, रक्तविकार, तृषा, वमन, दाह, रक्तपित्त आदि पर लाभदायक है। महास्रोत के पैत्तिक विकार-अम्लाधिक्य आदि में अति लाभकारी है। अनुलोमन होने से आध्मानादि वात विकार नाशक है। पुरीषोत्सर्ग में सहायक या कुछ मृदुरेचक होने से पित्त-संशोधक है। पैत्तिक शूल को भी दूर करता है। सामान्य दौर्बल्य एवं कृशता में उपयोगी है। यह बस्तिशोधक, बृंहण और बल्य है।

परिपक्व फल—मधुर, बल्य, वीर्यवर्धक, गुरु, पित्त-जनक, मलरोधक एवं उष्णवीर्य होने से वाजीकरण तथा आर्तवजनन है।

सूखा एवं पुराना फल—दुर्जर, दाहकर, स्निग्ध, रोचक, मलरोधक, बल्य तथा वीर्यवर्धक है।

प्रसव के पश्चात् गर्भाशय की पीड़ा शमनार्थ पक्व या परिपक्व फल की गिरी खिलाते हैं। अथवा गिरी ५ तो० और २॥ तो० तिल का क्वाथ बनाकर पिलाते हैं। चेचक के शमनार्थ, दूध पीने वाले बालक की माता को इसकी गिरी खिलाते रहने से बच्चे को चेचक का प्रकोप विशेष नहीं होने पाता।

(१३) संग्रहणी पर—इसकी गिरी, बेल की गिरी व सोंठ ५-५ तो. लेकर महीन चूर्णकर १५ तो. गुड़ की चाशनी में मिलाकर १-१ तो. के लड्डू बनालें। १-१ लड्डू प्रातःसायं तक्र के साथ एक महीना तक सेवन करने से भयंकर संग्रहणी दूर होती है। — फलांक से

(१४) शिर दर्द पर—इसके गोले में छिद्रकर घृत भर दें और पकती हुई खिचड़ी में छोड़ दें। खिचड़ी पक जाने पर गोले को निकाल, उसके साथ ५ तो. खांड तथा ६ माशा काली मिर्च मिलाकर कूट लें। इसे २॥ तो. की मात्रा में प्रातःसायं दूध के साथ सेवन करने से विविध प्रकार के शिरःशूल शांत होते हैं। —फलांक से

अथवा—इसके गोले के अग्रभाग पर छोटा छिद्र कर उसमें ईसबगोल की भूसी भर, छिद्र का मुख उसके निकाले हुए भाग से बन्दकर आटे से संधिबन्धन कर, घृत में हलकी आंच पर भून लेते हैं। ठंडा होने पर कूट कर अलग रख लेते हैं तथा और आटे को भूनकर उसमें मिला पंजीरी सी बना लेते हैं। इस पंजीरी के सेवन से जीर्णशिरःशूल जो हमेशा बना रहता है, दूर हो जाता है। अथवा पके नारियल की गिरी २० तो. को कद्दू कस से खूब महीन कसलें। फिर १० तो. गुड़ की चाशनी में आनन्दभैरव रस ४ रत्ती मिला, उसी में उक्त गिरी का महीन चूर्ण मिला कर ७ मोदक बनालें।

१-१ मोदक प्रातः बकरी के दूध के साथ सेवन से सिरागत वात विकार, सिरदर्द, नेत्रशूल आदि रोग दूर हो जाते हैं।

—श्री वैद्य परमानन्द जी।

(१५) चोट या मोच पर—पुराने नारियल की गिरी को महीन पीसकर उसमें चौथाई भाग हल्दी का चूर्ण मिला पोटली बांधकर, आग पर गरमकर सेंकते हैं, तथा उसी को चोट या मोच पर बांध देते हैं। शीघ्र लाभ होता है।

(१६) भिलावा की शोथ तथा चूहे के विष पर—गिरी को पीस कर या जलाकर लगाते हैं, तथा गिरी को खिलाते हैं। चूहे के विष नाशार्थ-पुराने खोपरे को मूली के रस में पीसकर लेप करते हैं।

पुष्प—नारियल के पुष्प शीतल, मलरोधक, स्तंभक, रक्तपित्तशामक, प्रमेह, सोमरोग नाशक, अतिसार विशेषतः रक्तातिसार और बहुमूत्रता में प्रयुक्त होता है।

पुष्पस्वरस—गुरु, वीर्यवर्धक, अतिस्निग्ध, कफकारक पित्तजनक, शीघ्र मदकारक, कृमि एवं वात आदि नाशक है।

Scanned with CamScanner

(१७) सूतिका रोग पर—इसका फूल जब कली के रूप में होता है, उसे नारियल का कोका या पोई कहते हैं। ऐसी बिना खिली हुई एक पोई लेकर, ऊपर का छिलका दूर कर अन्दर के दानों को एक लकड़ी के खरल में डाल, बारीक कूट लें। फिर उसमें जायफल, जायपत्री, लौंग, कालीमिर्च व सोंठ २-२ तो. तथा केशर १॥ तो. पीसकर कपड़े में छानकर मिला देवें। और उसी लकड़ी के खरल में डाल कर (थोड़े नारियल के दूध के साथ) घोटकर १४ गोलियां बनालें। यदि पोई ताजी न मिले तो उसमें नारियल का दूध या गाय का दूध मिलाकर घोटकर गोलियां बना लें। जहां तक हो सके ताजी पोई लेना उत्तम होता है।

प्रतिदिन प्रातःसायं १-१ गोली १ पाव गौदुग्ध के साथ देवें। पथ्य में केवल गौदुग्ध देवें। यदि केवल दूध पर न रहा जाय तो साठी चावल का भात दे सकते हैं। रुचि के लिये कुछ अदरख देवें। किंतु जल पीने के लिये बिल्कुल न दें! प्यास लगने पर भी गाय का दूध ही देवें। ध्यान रहे इस प्रयोग के सेवन काल में यदि रोगी भूल से भी पानी पी लेवे तो उसके जीवन की आशा नहीं रहती।

रोगी की स्थिति के अनुसार ७, १४ या २१ दिन तक यह औषधि दी जाती है। तथा औषधि पूरी हो जाने पर भी ४-५ दिन तक पानी पीने को नहीं दिया जाता। स्नान करना, या पानी का स्पर्श भी मना है। इसके पश्चात् धीरे धीरे दूध का परिमाण बढ़ाते हुए, चावल का परिमाण भी बढ़ा दें और फिर धीरे धीरे पानी भी प्रारम्भ करें।

इस प्रयोग से क्षुधा तीव्र होती, दूध पचता है, जिससे शरीर में रक्तवृद्धि होकर नाड़ी भरपूर चलने लगती है। चेहरे पर तेज व लाली दिखने लगती है प्रसन्नता का अनुभव होता है। प्रथम सप्ताह में ही इसका गुण दृष्टिगोचर होने लगता है। यदि भूख खूब लगने लगे, दिन भर में ४-५ सेर दूध हजम हो जाय और रोग के लक्षणों में कमी दिखलाई दे तो समझना चाहिये कि औषधि उत्तम कार्य कर रही है। रोग की प्रारम्भिक स्थिति में ही इस प्रयोग को शुरू करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। सूतिका रोग के अतिरिक्त क्षय, संग्रहणी और मंदाग्नि पर भी यह प्रयोग लाभकारी है।

जहां नारियल के वृक्ष होते हैं वहां इसकी उक्त पोई सुलभता से मिल सकती है।

—वै. बे.।

नोट—सूतिका रोग का ऐसा ही एक प्रयोग प्रसिद्ध रस चण्डांशु ग्रन्थ के स्त्री रोगाधिकार में 'श्रीफल कुसुम वटिका' नाम से इस प्रकार दिया गया है—

नवीन केसर १ तोला तथा रेवन्दचीनी, पीपलामूल पिप्पली व कालीमिर्च २-२ तोला और जावत्री, गाठ लौंग, जायफल, सौंफ, दालचीनी व जीरा ४-४ तोला तथा नारियल की बालकलिकायें उक्त सब द्रव्यों के बराबर लेकर सबका महीन चूर्ण कर (नारियल के दूध या पानी से घोट सुपारी के फल जैसी गोलियां बनालें। १-१ गोली नित्य प्रातः गौदुग्ध के साथ सेवन से १४ दिन में दुःसाध्य सूतिका रोग भी नष्ट हो जाता है। पथ्य में केवल दूध भात लेवें पानी से परहेज करना आवश्यक है।

(१८) अश्मरी पर—इसके सूखे पुष्प (जो झड़कर नीचे गिर जाते हैं) ३ माशा जल के साथ चटनी की तरह पीस उसमें जवाखार (या केले का क्षार) १ माशा मिला शीतल जल २० तोले में घोल छानकर प्रातः पिला देने से वृक्क एवं बस्ति के अश्मरी कण शीघ्र निकल कर तीव्र वेदना और वमन आदि उपद्रव शमन हो जाते हैं। यह अति सफल व निर्भय प्रयोग है—भैं० र०[1] व रसतंत्रसार। यहां २० तोला जल के स्थान में ८ तोला जल से भी लाभ होता है।

(१९) पित्तज्वर—इसके फूलों के गुलकंद में नमक चूर्ण और श्वेत चन्दन का बुरादा मिलाकर पानी के साथ पिलाने से बहुत लाभ होता है। वमन, अतिसार, मुखपाक, तृषा आदि दूर होकर कलेजा शीतल होता है।

[1] यो नारिकेल—कुसुमं सक्षारं वारिणां पिष्ट्वा।
प्रातः पिबति दिनैकान्निपतति घोराश्मरी तस्य॥
—भैं० र०।

Scanned with CamScanner

(२०) गर्भस्राव पर—इसके नवीन पुष्प, गूलर के फल तथा नागरमोथा समभाग का क्वाथ सिद्ध कर पीने से गर्भस्राव रुक जाता है–भा० भैं० र० ।

तैल—नारियल का तैल गुरु, कर्षन, कफघ्न, कृमिघ्न, केश्य (केशों की वृद्धि करने वाला) तथा कास, श्वास, मेदोरोग, मूत्राघात, प्रमेह, खुजली आदि में प्रयुक्त होता है। यह वात, पित्तशामक, वाजीकरण तथा दांतों के विकार नाशक है ।

इसका शुद्ध उत्तम तैल घृत के स्थान में उपयोग करने से वाजीकरण एवं बृंहण होता है। यह तैल मछली के तैल (काड़लिवर आयल) का उत्तम प्रतिनिधि है । क्षयरोग, बालशोष आदि विकारों में कॉड लिवर तैल के स्थान पर यह उत्तम लाभकारी है । पचने में थोड़ा गुरु है मात्रा-२० से ३० बून्द, क्रमशः १ ड्राम तक बढ़ाते हुए दिन में ३ बार इसे देते हैं । यह स्मरणशक्तिवर्धक एवं क्षतपूरक है । किन्तु अधिक काल तक सेवन से अतिसार हो सकता है। इसके गोले का खूब पीड़न करने से या पके ताजे नारियल की गिरी को पीड़न करने से जो दूध निकलता है, उसे उबाल कर जो तैल प्राप्त किया जाता है, उसके प्रयोग से अतिसार या अजीर्ण नहीं होने पाता । (डिमक)

इसका यह तैल चर्बी की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है। मलहम आदि तैयार करने में चर्बी की अपेक्षा यह तैल विशेष उपयोगी है । तथा वातहर है, इसमें कालीमिर्च चूर्ण मिला वात पीड़ित स्थान पर लगाते हैं। लगभग ५ सेर उक्त गिरी के रस को आंच पर पकावें तथा उसमें पकाते समय ४ रत्ती नमक और २ माशा तक हल्दी चूर्ण डाल कर औटावें । खूब औट जाने पर किट्ट भाग नीचे तलैटी में रह कर ऊपर जो उत्तम सुगंधित तैल प्राप्त होता है, उसे शीशी में भर रक्खें। कुछ दिनों बाद इसमें कुछ अम्लता आ जाती है किन्तु गुणों में कमी कभी नहीं आती उपदंश के चट्टों पर रुई का फाया तैल में तर कर लगाते हैं । इससे व्रण रोपण होता है। अग्निदग्ध स्थान पर भी इसे लगाते हैं। मेद रोग में इस तैल के सेवन से शरीर की चर्बी कम होती है ।

इसके शुष्क खोपरों को कोल्हू में पेर कर जो तैल निकाला जाता है, वह शीतल होता है । मस्तिष्क की शांति या तरावट के लिये इसे सिर पर मर्दन करना लाभकारी है । शरीर का कोई भाग पिच गया हो या चोट लगी हो, तो उस स्थान की रक्त शुद्धि करने के लिये तथा व्रण या जखम के रोपणार्थ यह उत्तम उपयोगी है । व. गु. ।

खुजली, फुन्सी, फोड़ा आदि चर्म रोगों पर इस तैल में कपूर मिलाकर लगाते हैं ।

(२१) अपरस● पर—इसके ५ तोला तैल में चौकियासुहागा १ तोला पीसकर, मिलाकर प्रातः सायं हाथ पैरों की हथेलियों एवं तलवों पर खूब मर्दन करे, बेर की लकड़ी की आंच में सेंकने से लाभ होता है । —गृह चिकित्सा ।

(२२) भिलावे के विकार में – इस तैल को लगाने से तथा गिरी को खाने से शांति प्राप्त होती है ।

(२३) ज्वर आदि के कारणों से सिर के बाल झड़ गये हों, तो इसके तैल को लगाते रहने से नूतन बाल उग आते हैं । वैसे भी तैल को लगाने से केशों की वृद्धि होती है ।

नोट—नारियल के कवच या नरेटी के तैल की विधि एवं प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में नारिकेल-लोशन देखें ।

जटा या छिलका [छाल]—

(२४) हिक्का और वमन पर–नारियल फल के ऊपर की जटा को हुक्के में डालकर धूम्रपान कराते हैं या जटा की भस्म को शहद से चटाते हैं । या भस्म को जल में घोलकर व पानी को निथार कर पिलाने से भी हिक्का दूर होती है । जटा की भस्म ३ मासा की मात्रा में, दश-

● शरीर में रस की न्यूनता तथा रक्त में पित्त-प्रवाह विशेष हो जाने से, हाथों एवं पैरों में चिटकन, जलन, खुझलाहट पैदा होती है । हाथों की हथेलियां एवं पगों की तलियां खुरदरी चिटकी सी हो जाया करती हैं। नाखून मोटे पड़ जाते हैं । इसी को भाषा में अपरस रोग कहते हैं । इस विकार में रसीले तथा गरम पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये ।

Scanned with CamScanner

मूल से सिद्ध किये हुए दूध के साथ देने से हिक्का में लाभ होता है।

वमन विशेष होती हो तो जटा को जलाकर श्वेत राख बना लें। तथा सुपारी जलाकर कोयला बनालें। दोनों समभाग मिश्रण कर ४-६ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ २-२ घंटे से ३-४ बार देने से सर्वप्रकार की वमन नष्ट हो जाती है।

(२५) रक्तस्राव पर-शरीर के किसी स्थान से चोट आदि के कारण बहते हुए रक्त पर जटा की भस्म लगाने से खून बन्द हो जाता है।

(२६) श्वास पर-जटा को तवे पर भून कर चूर्ण कर ४ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ मिला चटावें। श्वास के उपद्रवों में शीघ्र लाभ होता है।

(२७) दद्रु हर लेप-नारियल का ऊपर का छिलका जला हुआ, सुहागा भुना हुआ, कपूर, गंधक प्रत्येक समभाग लेकर नीबू के रस में खरल कर शुष्क चूर्ण कर लें। तथा नीम पत्र डालकर उबाले हुए जल से घृत को १०० बार धोकर, इस घृत को उक्त चूर्ण में मिला कर दाद पर लगाने से दाद नष्ट होती है —यू० चि० सा०।

(२८) अर्श पर—जटा को छाल (कवच) सहित भस्म कर महीन चूर्ण करलें। १-१ तोले की मात्रा में इसे ५ दिन तक नित्य फांक कर ऊपर से गौ तक्र (गाय के दूध की छांछ) २० तोले या ४० तोले रुचि के अनुसार पीवें। तैल, खटाई, गुड़, लालमिर्च से परहेज करें। खूनी व वादी बवासीर पर अक्सीर है। —कल्याण।

नोट-इसका क्षार भेदन है, गुल्म, श्लेष्मिक शूल आदि पर देते हैं। विशिष्ट योगों में नारिकेल क्षार देखें।

ताड़ी-नारियल वृक्ष के दुग्ध सदृश निर्यास को ही ताड़ी कहते हैं। यह प्रातः निकाली हुई ताजी ताड़ी गुरु, मधुर, अतिस्निग्ध, शीघ्र मदकारक, वीर्यवर्धक है। दुपहर के बाद इसमें कुछ अम्लता आ जाती है। यह कफ और पित्त को बढ़ाने वाली, दीपन, पाचन, कोष्ठवातनाशक, कृमिनाशक एवं कुछ बाजीकर है। विसूचिका के वमन पर इसे पिलाते हैं, शीघ्र लाभकारी है।

(२९) गर्भस्थ बालक को सुन्दर बनाने के लिये—गर्भवती स्त्री को इसकी ताजी ताड़ी प्रति सप्ताह में १-२ बार पिलाते रहने से गर्भ में बालक का रंग पलट जाता है। काले रंग के मां बाप के बालक का रंग गेहुंआ, गेहुंए रंग के माता-पिता का बालक गोरे रंग का तथा गोरे रंग वाले दम्पति के बालक का रंग यूरोपियनों की तरह हो जाता है। —व० चं०

इसकी ताड़ी से गुड़, सिरका तथा एक प्रकार का मद्य (स्प्रिट) निर्माण किया जाता है।

मूल—नारिकेल वृक्ष की कोमल जड़ मूत्र जनन मूत्र विरेचन तथा सुजाक, यकृत विकार आदि में उपयोगी है।

(३०) मूत्रावरोध में—जड़ को पानी के साथ पीस कर पेड़ू पर गाढ़ा लेप करने से पेशाब खुल कर होने लगता है। तथा इसका क्वाथ भी पिलाते हैं।

(३१) मूत्रकृच्छ्र (सुजाक), फुफ्फुस शोथ (ब्रांकाइटिस) तथा यकृत सम्बन्धी विकारों पर जड़ का फाण्ट या क्वाथ दिया जाता है।

(३२) कण्ठ पाक या गले में छाले होने पर-जड़ के क्वाथ से कुल्ले (गण्डूप) या गरारा कराने से बहुत लाभ होता है।

पत्र —नारियल वृक्ष के कोमल पत्तों को उबालकर स्वादिष्ट शाक बनाते हैं। कोमल पत्र मधुर होने से कच्चे भी खाये जाते हैं। तथा इनका रायता, मुरब्बा आदि भी बनाया जाता है। यह पित्त शामक होता है।

नोट—मात्रा-फल की गरी २-३ तोले। तैल-१० से २० बून्द या अधिक से अधिक १ से ३ तोले तक। क्षार ४ से ८ रत्ती।

इसके चिरपाकी प्रभाव को दूर करने के लिए—शर्करा, मिश्री या गुड़ इसके साथ खिलाते हैं। ध्यान रहे गोला या गरी या कोई भी प्रयोग खाने के बाद जल शीघ्र ही नहीं पीना चाहिये, अन्यथा तीव्र कफ प्रकोप होता है।

विशिष्ट योग—

(१) नारिकेल खण्ड या पाक नं० १—४० तोला नारिकेल की गिरी को पत्थर पर अत्यन्त महीन पीस, १० तोला घृत में भून लें। फिर २ सेर नारियल के दूध

Scanned with CamScanner

(अभाव में गो दुग्ध) में इसे तथा २० तोला खांड मिला मंदाग्नि पर पकावें। गुड़ के समान गाढ़ा हो जाने पर ठंडा कर उसमें धनियां, पिप्पली, नागरमोथा, वंस लोचन, दोनों जीरे, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात व नागकेशर समभाग मिश्रित) का चूर्ण प्रत्येक ४ या ५ माशा मिला देवें।

मात्रा—½ तो. से २ तो. तक, दूध के साथ सेवन से अम्लपित्त, अरुचि, रक्तपित्त, क्षय, दर्द एवं वमन आदि विकार नष्ट होते हैं। यह वीर्यवर्धक है।

—भै० र०

नोट—नारिकेल पाक, खण्ड, नारिकेलामृत आदि के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे बृहत्पाकसंग्रह ग्रन्थ में देखिये। विस्तार भय से यहां नहीं लिखे जा सकते।

(२) नारिकेल क्षार या लवण—(इसका एक प्रयोग पीछे परिणामशूल पर, प्रयोग नं० २ में देखें यहां वह प्रयोग कुछ विस्तार से दिया जाता है।

एक सुपक्व जल या दुग्ध पूर्ण नारियल की ऊपर की जटा को हटाकर चाकू से छिद्र कर उसमें १० तो० सेन्धा नमक का चूर्ण भर (कोई पानी को निकाल कर अन्दर नमक भरते हैं) कटे हुए भाग से पुनः छिद्र को बन्द कर, सारे नारियल पर कपड़ मिट्टी करदें। कपड़ मिट्टी इस प्रकार होशियारी पूर्वक करें कि ऊपर का हिस्सा ऊपर को ही रहे। सूखने पर ५ सेर कण्डों की अग्नि में (गजपुट में) फूंक देवें। स्वाङ्गशीतल होने पर ऊपर की मिट्टी तथा नारियल की कठोर त्वचा को हटाकर भीतर की पानी सहित गिरी (जो कि जल कर कृष्ण वर्ण हो जाती है) निकाल कर अच्छी तरह महीन चूर्ण करलें।

इसे ४ रत्ती से २ माशा तक की मात्रा में पिप्पली चूर्ण और पानी के साथ दिन में २-३ बार सेवन से सर्व प्रकार के दर्द (पेट दर्द) नष्ट होते हैं। अम्लपित्त पर नारियल के पानी के साथ, वृक्क शूल में चन्दनासव के साथ देवें। यदि वृक्क शूल, अश्मरी या शर्करा के कारण हो, तो इसकी मात्रा में २-४ रत्ती यवक्षार का चूर्ण मिलाकर लेवें। वृक्कशूल का तीव्र प्रकोप शमन होने पर यह क्षार दिन में २ या तीन बार चन्दनासव के साथ देते रहने से कुछ दिनों में रक्त के भीतर रहे हुए अश्मरी उत्पादक द्रव्य का निवारण हो जाता है। नवीन उत्पत्ति रुक जाती है। एवं शर्करा व सिकता टूट कर वृक्कशूल की निवृत्ति हो जाती है। यदि पित्ताशय के अन्दर पित्ताश्मरी हो जाय तथा रोगी को असह्यशूल (Biliary colic) हो तो वह भी इसके सेवन से नष्ट होता है। इस अश्मरी के दर्द में इसकी प्रति मात्रा में २ रत्ती नवसादर का चूर्ण मिला दिया जाता है। दौरे के दिनों में ३ या ४ बार उष्ण पानी या क्षार अर्क से देते हैं। फिर कुछ मास तक इसके नवसादर के साथ प्रयोग से पित्ताश्मरी नहीं बनती और न दर्द ही होने पाता है।

परिणाम शूल की यह एक प्रसिद्ध औषधि है। तथा अम्लपित्त रोगों में इसके उपयोग से पित्त की अम्लता एवं उग्रता दूर होकर वमन कम होने लगती है। धीरे धीरे कुछ दिनों में पित्त या आमाशय-रस की विकृति दूर होकर अम्ल पित्त रोग बिल्कुल नष्ट हो जाता है।

गुल्म–त्रिदोषज गुल्म रोग में जिसमें बार बार उदर वेदना होती हो, गोला पत्थर जैसा प्रतीत होता हो, जो दवाने पर चारों ओर सरकता हो, ऊपर से दवाने पर वेदना होती हो, तथा गोले के हेतु से मलावरोध बना रहता हो, कुछ-कुछ दिनों बाद उदर वेदना बढ़ जाती हो, तथा उदर में दाह भी होता हो, ऐसे लक्षण युक्त गुल्म पर यह नारिकेल क्षार उत्तम औषधि है इसके साथ शंख भस्म और हिंग्वाष्टक चूर्ण मिला, नीबू के रस के साथ दिन में ४-६ बार देते रहने से शूल सहित गुल्म निवृत्त हो जाता है। मल शुद्धि के लिये रात्रि समय ३-३ मा. त्रिफला देते रहें। —भै. र. तथा रसतन्त्रसार।

(३) नारिकेलासव–(वाजीकरण, क्षयादि नाशक) नारियल का जल १३ सेर, ईख का रस ६॥ सेर, सेमल की मूसली का रस, दशमूल का क्वाथ तथा दालचीनी, तेज-पात, इलायची व नागकेशर इन चारों (चातुर्जात) का मिश्रित चूर्ण और धाय के फूल प्रत्येक १३-१३ छटांक, केशर, तगर, श्वेत चन्दन व लौंग प्रत्येक का चूर्ण ४-४

Scanned with CamScanner

तो. और कस्तूरी ४ मा. लेकर सबको (कस्तूरी व केशर के अतिरिक्त) एकत्र मिला, घृत से चिकने किये हुए मटके में भर, मुख मुद्राकर ३ मास तक सुरक्षित रक्खें। पश्चात् छानकर कस्तूरी व केशर को मद्य या रेक्टिफाइड स्प्रिट में घोलकर मिला देवें तथा बोतलों में भर रक्खें।

मात्रा—१ से २ तो. तक, अनुपान-दूध और शक्कर अथवा शहद मिलाकर सेवन करें। अत्यन्त बाजीकरण, कामोद्दीपक, नपुंसकता नाशक है। इसके सेवन से शरीर की शिथिलता, झुर्रियां, बालों का श्वेत होना आदि दूर होकर शरीर की कान्ति बढ़ जाती है। —ग. नि.।

नोट—और भी उत्तमोत्तम आसिवारिष्टों के प्रयोग हमारे वृहदासवारिष्ट संग्रह ग्रन्थ में देखिये।

(४) नारिकेल क्षीरी—इसकी गरी के बहुत महीन टुकड़े कर स्वच्छ खांड़ तथा गौघृत के साथ उचित प्रमाणानुसार गौदुग्ध में डालकर मन्द अग्नि से धीरे-धीरे पकावें सिद्ध हो जाने पर उतार लें। इसे नारियल की खीर कहते हैं। यह स्निग्ध, शीतल, अति पुष्टिकारक, गुरु, मधुर, वीर्यवर्धक एवं रक्तपित्त और वातनाशक है। —भा. प्र.

(५) हब्ब जदवार—एक नारियल के गोले में एक पैसा बराबर छिद्रकर उसमें अफीम १ तो. (पुस्तक में ५ तोला कहा है, जो कि बहुत अधिक है), जदवार खताई ४ मा. बारीक कर भर दें। छिद्र बन्दकर उर्द के आटे का १ अंगुल मोटा लेप कर दें, और १० सेर उबलते दूध में जोश दें। दूध का खोया हो जाने पर गोले को इतने घृत में डालकर भूनें, कि वह डूब जाय। ऊपर का आटा लाल हो जाने पर घी से निकाल, आटे को प्रथक करें गोले के भीतर की औषधि समेत अच्छी तरह कूट लें। लेई जैसा हो जाने पर नारियल की गरी महीन की हुई ७॥ तो. अम्बर, रोगन बलसां (Balsam) २-२ मा. जायफल, अजवायन खुरासानी, गोंद बबूल, प्रत्येक २३ मा. जावित्री, बहमन लाल व सफेद, मायाशुत्रअहराबी (यु... युनानी द्रव्य). बादरंजबोया (बिल्ली लोटन), पान ... जड़ प्रत्येक ४॥ मा. खाण्ड श्वेत १ तो. कूट छान कर मिला दें। चने जैसी गोलियां बना. ऊपर चांदी के व... चढ़ा दें।

१ या २ गोली, मधु से मीठे किए हुए दूध के साथ सेवन से शीघ्र वीर्य स्खलन, प्रमेह, खांसी, पुराना जुकाम दूर होता है, बलप्रद व बाजीकरण है। इसके सेवन से अफीम की आदत छूट जाती है। —यू० चि० मा०

(६) नारियल के कवच या नरेटी का तैल—इसके नरेटी (टोकसी जो मंदिरों में या बाजारों में बहुधा मु... ही प्राप्त होती है) के छोटे छोटे टुकड़े कर घड़े में भ... दें। फिर एक गड्ढा इस प्रकार खोदें कि जिसकी चौड़ा... इतनी हो कि घड़ा औंधा रखे जाने पर गड्ढे के ऊपर ही अटका रहे। इस गड्ढे में एक कांच या चीनी मि... का चौड़े मुख वाला बर्तन रख दें। घड़े के मुख को ... के तारों की जाली से बन्द कर बर्तन की सीध में गड्ढे ... औंधा रख दें, तथा ऊपर से २०० उपलों की आंच दें। इस विधि से खड्डे में रखे हुए पात्र में १५-२० मिनि... के बाद एक द्रव पदार्थ बून्द-बून्द टपकेगा। स्वांगशीतल हो जाने पर धीरे से घड़े को निकाल लें। नीचे पात्र में ... तैल जैसा काला द्रव्य प्राप्त होगा उसे अलग शीशी में भर रखें। प्रायः आध सेर नरेटी का यह द्रवार्क ५ तोला तक निकलता है।

यह कुष्ठ, दाद, खुजली, व्रण आदि पर लगाने ... केवल बाह्य प्रयोगों में उपयोगी है। यह एसेटिक एसि... [Acetic acid] या क्रियोझोट [Creosote] का उत्त... प्रतिनिधि है। इसे चर्म-रोग नाशक नारिकेल-लोशन क... सकते हैं।

नारियल दरियाई=दरियाई नारियल। नारेमुष्क = नागकेशर

नासपाती (Pyrus Communis)

फलवर्ग एवं तरुणी कुल (Rosaceae) के इसके वृक्ष छोटे आकार के बहुत कुछ अमरूद वृक्ष जैसे, शाखाएं

Scanned with CamScanner

न्यूनाधिक शुण्डाकार, नूतन वृक्ष की प्रशाखायें काँटे सदृश नोकदार, पत्र-अमरूद पत्र जैसे किंतु कुछ विशेष चौड़े, अण्डाकार, भिन्न-भिन्न आकार के २॥ इंच लम्बे, अखण्ड, साधारण दन्तुल, पत्रवृन्त-कोमल, शीघ्रपतनशील, पुष्प-गोल १ इञ्च व्यास के श्वेत वर्ण के मार्च अप्रैल मास में आते हैं। फल—हल्के रंग के सुराही के आकार सम पुष्प के बाह्यकोष से चिपके हुए जुलाई से सितम्बर तक आते हैं, इन्हें (यथा-स्थान बिही का प्रकरण देखें)। बीज बिहीदाने के समान गुणशाली पौष्टिक होने से प्रतिनिधि रूप में लिये जाते हैं।

यह पूर्व और मध्य यूरोप तथा पश्चिमी एशिया के पहाड़ी प्रांतों का मूल निवासी है। वर्तमान में जो भारत के अनेक शीतल पर्वतीय प्रदेशों में—काश्मीर, पंजाब, सीमा-प्रांत आदि में-पैदा होती है, वह उसकी सुधारी हुई जाति

नासपाती

PYRUS COMMUNIS LINN

है, इसकी कलमें लगाई जाती हैं।

नोट--सेव, बिही और नासपाती ये तीनों एक ही जाति के वृक्षों के फल हैं। (यथास्थान 'सेव' का प्रकरण देखें)

नासपाती—पहाड़ी (कुम्मस्राजबली), बागी (कुम्मस्राबुस्तानी), जंगली (कुम्मस्राबर्री) तथा चीनी (कुम्मस्राहामिज) भेद से ४ प्रकार की होती है। इनमें से पहाड़ी एवं बागी नासपाती विशेषत: काश्मीर व चीन की कोमल मधुर व रसीली होती है। आकृति में सुराही जैसी होती है। इन्हें ही नाख या नाक कहते हैं। शेष नासपाती खट्टी या खटमीठी होती हैं।

इनके अतिरिक्त Pyrus Sinensis नामकी एक और जाति होती है, जिसके पत्र ६ इंच लम्बे व ३॥ इंच चौड़े होते हैं। तथा फल उपरोक्त जातियों से कुछ अधिक कड़े होते हैं।

नोट नं. २—नासपाती से जो एक प्रकार की शराब बनाई जाती है, उसे पेरी [Perry] कहते हैं तथा सेव की शराब (Bider) की अपेक्षा कम मधुर एवं न्यून गुणवाली होती है। यह अतिसार, प्रवाहिका आदि रोगों पर व्यवहृत होती है।

नोट नं. ३—चरक सू. स्था. अ. २७ और सुश्रुत सू. स्था. अ. ४५ में टङ्क नाम से इसके संक्षिप्त गुणधर्मों का उल्लेख पाया जाता है।

नाम—

सं.—अमृतफल, टङ्क। हि. म. गु. बं.—नासपाती, नाक,नख, बटंक। अं.—पियर ट्री [Pear tree],वाईल्ड पियर [Wild Pear]। ले.—पायरस काम्युनिस

रासायनिक संगठन—

वृक्षपक्व नासपाती में प्रतिऔंस प्रोटीन ०.१ ग्राम, कार्बोहाइड्रेट २.७ ग्राम, कैल्सियम २ मि. ग्रा. और लोह ०.१ मि. ग्रा. पाया जाता है। अथवा-½ भाग प्रोटीन, ½ भाग स्निग्धता, ११½ भाग कार्बोज, १½ भाग खनिज पदार्थ और ८४ भाग जल होता है। तथा ए और सी व्हिटामिन अधिक प्रमाण में और बी साधारण मात्रा में पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—फल।

Scanned with CamScanner

गुण धर्म व प्रयोग–

इसका रस लघु ऊपर का छिलका गुरु होता है। अतः छिलके सहित खाने से यह गुरु, स्निग्ध, मधुर, अम्ल, कषाय, मधुर-विपाक, शीतवीर्य (कोई उष्णवीर्य मानते हैं) त्रिदोषशामक, किन्तु कुछ वातकारी, रोचन, विष्टंभी, हृद्य, बल्य, बृंहण, दाहप्रशमन, अधिक खाने से आनाहकारक, कफकारक, हृद्दौर्बल्य, रक्तपित्त, साधारण दौर्बल्य, रक्तार्श, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर आदि में लाभकारी है।

प्रवाहिका, अतिसार, रक्तातिसार में यह सेव की अपेक्षा अधिक गुणकारी है, क्योंकि इसमें गैलिक तथा टार्टरिक एसिड की मात्रा सेव की अपेक्षा अधिक होती है। ज्वर की अवस्था में यह हानिकर है, ज्वर के बाद सेवनीय है।

[१] अग्निमांद्य पर—इसके रस में पिप्पलीचूर्ण मिला पिलाते हैं। जीर्ण अग्निमांद्य [पुराने कब्ज] के रोगी को २-३ दिन केवल इसका ही रस पीकर रहने से लाभ होता है। कभी-कभी इससे आंव आने लगती है, किन्तु घबराने की आवश्यकता नहीं, कारण नासपाती आंव बनाती नहीं है, आंतों में संग्रहीत पुराने आंव को निकालती है। इसका प्रयोग जारी रखने पर आंव आना २-३ दिन में स्वयं बन्द हो जाता है।

रेचनार्थ इसका रस २० या ३० तोला की मात्रा में दिन में ३-४ बार पीवें। उत्तम रेचन होता है। कमजोरी नहीं आती। —फलांक।

[२] रक्तातिसार व रक्तार्श पर–इसका मुरब्बा नागकेशर के चूर्ण के साथ सेवन कराते हैं [मुरब्बा विधि आगे विशिष्ट योग में देखें] अथवा—

इसके शर्बत में बेलगिरी या अतीस का चूर्ण मिला सेवन से रक्तातिसार में लाभ होता है।

रक्तार्श में इसके रस में मक्खन और काले तिल का चूर्ण मिलाकर सेवन कराते हैं।

[३] पक्षाघात पर—इसके तथा सेव और अंगूर के रसों को समभाग मिश्रण कर [मात्रा ५ से १० तोला तक] रोगी को दिन में २ बार पिलावें। —ब्लिट्ज

[४] अरुचि पर–इसके रस में सेंधानमक, कालीमिर्च और भूना हुआ जीरा चूर्ण मिला दिन में कई बार थोड़ा थोड़ा चटाते हैं।

[५] पित्त जन्य सिर पीड़ा और रक्त की वमन पर– इसके रस में शक्कर मिला पिलाने से पैत्तिक शिरःशूल में लाभ होता है।

इसके शर्बत के साथ बेर की मींगी का चूर्ण मिलाकर देने से रक्त की वमन दूर होती है। —ब. नं.

नोट—रोगी के बलाबल के अनुसार इसकी सेवनीय मात्रा निर्धारित की जाती है।

इसके अधिक सेवन से यह कुछ विष्टम्भी होने से शूल पैदा करता है। नमक, कालीमिर्च और नीबू के रस के साथ खाने अथवा इसके खाने के बाद मधु या जुवारिश कमूनी का सेवन करने से शूलोत्पत्ति नहीं होने पाती, हो, तो दूर होती है।

मीठी नाशपाती गुरु, ग्राही, उष्ण और तर होती है। यह फुफ्फुस, हृदय और मस्तिष्क की निर्बलताओं को लाभदायक है। यह उन्मादहर, तृषाशामक, वान्तिहर रक्तप्रसादन, मूत्राशय के प्रदाह एवं जलन को शांत करती है। आमाशय के लिये बल्य है। भ्रम को दूर करती है। इसके रस का सत तैयार कर देने से आमाशय दौर्बल्य और अतिसार दूर होता है। इसके सेवन से कफ के साथ खून जाना रुकता है।

खट्टी नासपाती पहले दर्जे में खुश्क है। यह विशेषतः यकृत के लिये बल्य है, क्षुधावर्धक है। हृल्लास [मिचली या उबाक] का प्रतिकार करती, पित्तप्रकोप एवं रक्त की उष्णता को शांत करती तथा कुछ प्रमाण में रक्तवर्धक है। रक्तातिसार, जीर्णअतिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी, दाह, वमन, मस्तिष्क की उष्णता और अग्निमांद्य पर यह पथ्य रूप से व्यवहृत होती है।

जीर्ण मलावरोध रोगी को नासपाती का सेवन सेव की तरह कराया जाता है। अरुचि और अग्निमांद्य के रोगी को नासपाती को सेंक कर टुकड़े कर उसमें जीरा, कालीमिर्च और सेंधानमक मिलाकर सेवन कराते हैं।

नासपाती के वृक्षों से जो गोंद निकलता है वह शोथ

Scanned with CamScanner

निवारक है, दोषों को पकाता है। फेफड़े के दर्द और जखम के लिये लाभदायक है। प्लीहा रोगी को हानिकारक है। गोंद की मात्रा ६ माशे तक है।

इसके पत्तों व लकड़ी की राख को जखम पर लगाने से वह शीघ्र भर जाता है।

नासपाती शीतप्रकृति के वृद्धों के लिये तथा कफ प्रकृति वालों को आध्मान उदर शूलकारक है। कच्चा खाने से गुर्दे को हानिकर है। हानिनिवारक अनीसून, अगर इत्यादि।

नासपाती के बीज धातुवर्धक, फुफ्फुस शूल नाशक तथा उदर-कृमिनाशक हैं। बीजों की मात्रा २४ माशे।

नासपाती का प्रतिनिधि--बिही या सेव है।

[यूनानी मतानुसार]

विशिष्ट योग--

[१] मुरब्बा नासपाती—उत्तम पक्व १ सेर नासपाती के टुकड़े कर, कांटे से छेदकर १ सेर शक्कर या बूरे में मिला आग पर बफारा देकर पात्र में मुख बन्द कर रखदें। तीसरे दिन उसी बूरे की चाशनी बना, उसमें डालदें, ऊपर से केवड़े का इत्र छिड़क कर सुरक्षित रखलें।

यह मुरब्बा अति स्वादिष्ट होता तथा हृदय और मस्तिष्क को बलप्रद है। इसी प्रकार सेव का भी मुरब्बा बनाया जाता है। (फलों के गुण तथा उपयोग)।

[२] आसव-नासपाती—[संग्रहणी आदि नाशक] नासपाती और काश्मीरी सेव ५-५ सेर लेकर बारीक बारीक कतर लें। फिर उसके साथ मुनक्का बीजरहित ५ सेर और उत्तम सुगंधित श्वेत चन्दन का बुरादा ½ सेर मिला १५ सेर जल चतुर्थावशिष्ट क्वाथ कर, छानकर उसमें सोंठ १ पाव, कालीमिर्च २ पाव, पिप्पली २½ तोला त्रिफला ३ पाव, बबूल की छाल १ सेर, बेर की जड़ की छाल १ सेर, दालचीनी ½ सेर इन सबका जौकुट चूर्ण और मिश्री तथा शहद ५-५ सेर मिला संधान पात्र में मुख बन्द कर १३ दिन सुरक्षित रक्खें। पश्चात् यंत्र से अर्क खीचलें। मात्रा-५ से १० तोले तक। दोनों समय सेवन से संग्रहणी, अतिसार, प्लीहा, गुल्म, आध्मान, जलोदर, श्वास, कास, अरुचि, उदावर्त, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, सिरदर्द आदि रोग दूर होते हैं। तथा क्षुधा व बल की वृद्धि होती है। खटाई, तेल और मसालों का त्याग कर, सादा भोजन करना चाहिये।

(वैद्यराज श्री लक्ष्मणसिंह जी पांडेय-एलिचपुर)

अन्य प्रयोगों के लिये हमारा वृहदासवारिष्ट संग्रह ग्रन्थ देखें।

नासपाल—जंगली अनार के छिलके को कहते हैं।

नाहरूबूटी[1] (Naharu Booti)

यह बूटी पहाड़ी उपत्यकाओं में पैदा होती है। इसके अंगूठे जैसे मोटे लग्गे निकलते हैं, जो सीधे ७ फीट तक बढ़कर नीचे की ओर झुक जाते हैं। ये लग्गे एक स्थान पर संख्या में १०।१५ उगते हैं। इसके पत्र हरी मिर्च जैसे, फूल धत्तूर पुष्प जैसे. किन्तु आकार में उससे छोटे, नाखूनी श्वेत रंग के होते हैं। यह बूटी प्रायः डण्डा थूहर के क्षुपों के आस-पास पैदा होती है। पत्र—फाल्गुन, चैत्र, मास में झड़ जाते हैं। पुनः नूतन पत्र आते हैं। ३-४ वर्ष में पुराने लग्गे गिर कर नवीन लग्गे आते हैं। इस पौधे के बीज नहीं होते। इसके लग्गे ही जड़ सहित उखाड़ कर दूसरी जगह लगाये जाते हैं। इस बूटी को बन चमेली भी कहते हैं।

सेवन विधि—एक आदमी के दोनों पैरों में ७ नारू होगये थे। इसके सेवन से सब गलकर टुकड़े-टुकड़े होकर नष्ट होगये। १०-१२ दिनों में उसे पूर्ण लाभ होगया। दवा का सेवन ३ दिन तक प्रातः भोजन से ४ घंटे पूर्व

[1] यह बूटी थूहर की ही जाति विशेष की मालूम देती है। यद्यपि इसका वैज्ञानिक कुल, नामादि ज्ञान नहीं है, तथापि यह विशेष महत्व की नाहरु [नारू, स्नायुक कृमिरोग विशेष] नाशक होने से लेखक के ही शब्दों में इसका प्रकाशन किया जाता है। —सम्पादक

Scanned with CamScanner

किया जाता है।

इस बूटी के १ तोला पत्र लेकर उनके साथ ४ कालीमिर्च के दाने मिलाकर साफ पत्थर पर पीसकर भांग की गोली (लगभग १ माशा तक) जैसी गोली बनाकर, रात को पानी के मटके पर बाह्य-भाग पर चिपका देवें। प्रातः थोड़े जल में घोलकर या यों ही पानी से निगल जावें। इस प्रकार ३ दिन लेवें तथा नाहरू के स्थान पर आक का पीला पत्ता बांध दिया करें। पथ्य में—५-६ दिन तक मूङ्ग की दाल और गेहूं की रोटी खावें, बाद में ५ दिन तक दूध रोटी खावें।—वैद्य प्रभारी चिरंजीलाल ... राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय, ... पो०—टोड़ारायसिंह, जि. टोंक (राजस्थान)

नाही कन्द—देखिये—कड़वी नायकन्द। निकोचक देखिये-पिस्ता। निगड़–देखिये निर्गुण्डी। निगंदवावरी—देखिये—नागदमनी में काली नगद। निचुल—देखिये—समुद्र फल (हिज्जल) निंबोली = नीम में निनावा (निनाह)—देखिये—समाक दाना। निनुरी—देखिये—पर्णबीज। नियाजबो—देखिये– तुलसी बुबई।

निगुण्डी (Vitex Negundo)

गुडूच्यादि वर्ग एवं (स्वनामख्यात) निर्गुण्डी कुल[1] (Verbenaceae) के प्रमुख इस गुल्म जातीय, झाड़ीदार श्वेताभरोमश वनौषधि के वृक्ष ८-१० फुट ऊंचे काण्ड (तना) साधारण मनुष्य की जांघ सदृश स्थूल पतली, फैली हुई अनेक शाखाओं से युक्त, छाल-पतली, चिकनी, नीलाभ धूसर वर्ण की; पत्र-अरहर के पत्र जैसे, किंतु अधिक लम्बे, चिकने रोमश, खंडित (कतरन या कंगूरेदार) भालाकार लम्बाग्र चिकने रोमश, प्रत्येक वृन्त पर ३ या ५ पत्रक-१-५ इंच लम्बे, ½-१½ इन्च चौड़े, छोटे बड़े आकार के अग्रपत्रक लम्बा, लम्बे वृन्तयुक्त, निम्न भाग के या बगल वाले पत्रक छोटे तथा बिना वृन्त के ऊपर से शिराजाल युक्त नीलाभ हरित एवं नीचे से श्वेताभ वर्ण के होते हैं। पत्रों को मसलने से एक विशिष्ट प्रकार की तीव्र अप्रिय गन्ध आती है। पुष्प-छोटे-छोटे आयताकार २-८ इन्च लम्बी मंजरियों में फीके या श्वेताभ नीलवर्ण के पुंकेशर ४, गर्भाशय २-४ कोष्ठ युक्त, फल—छोटे, गोल ¼ इन्च व्यास के पकने पर काले रंग के हो जाने वाले होते हैं। बीज-प्रायः बायविडंग जैसे होने से कई इन बीजों को ही भ्रमवश विडङ्ग नाम से पुकारते हैं। आगे यथा-स्थान बायविडङ्ग का प्रकरण देखिये।

रेणुका बीज नाम से जिस सम्हालु (निर्गुण्डी) के बीज काम में लिये जाते हैं। वे इस निर्गुण्डी के नहीं हैं प्रत्युत् काबुल या ईरान में होने वाली विदेशी सम्हालु [Vitex agnus castus या Piper auranticum] के हैं। आगे यथास्थान रेणुका का प्रकरण देखें।

निर्गुण्डी के वृक्ष प्रायः समस्त भारतवर्ष में, विशेषत बंगाल, छोटा नागपुर, बिहार, दक्षिण भारत तथा बर्मा में नदी नालों के किनारे ग्रामों के आसपास की परती भूमि पर तथा पहाड़ों की तलैटी पर पाये जाते हैं।

नोट नं० १–वैसे तो श्वेत, नील, कृष्ण आदि भिन्न भिन्न पुष्पों वाली इसके कई भेद या जाति हैं, किन्तु नील और श्वेत ये दो इसके मुख्य भेद हैं। भावप्रकाश में नील पुष्पी को ही निर्गुण्डी कहा है, तथा शेफाली व सुवहा उसके पर्यायवाची नाम हैं ("नीलपुष्पी तु निर्गुण्डी शेफाली सुवहा च सा")। ध्यान रहे शेफाली या शेफालिका ये संस्कृत नाम पारिजात [हारसिंगार] के भी हैं। श्वेतपुष्पी को सिन्दुवार कहते हैं। अन्य निघण्टु ग्रन्थों में सिन्दुवार के श्वेत एवं नील भेद तथा शेफालिका के भी निर्गुण्डी (नीलपुष्पी) एवं शुक्ला ऐसे दो-दो भेदों का उल्लेख पाया जाता है। ये सब गुणधर्म में प्रायः समान हैं। ...

[1] इस कुल के गुल्मजातीय झाड़ीदार वृक्षों के पत्र अभिमुख, संयुक्त या एकाकी, पुष्प-छोटे छोटे, गुच्छों में, पुष्प बाह्यकोश नलिकाकार व स्थायी, पुंकेशर ४ (दो बड़े व दो छोटे), फल-एकबीजी या बहुबीजी तथा मांसल होते हैं।

Scanned with CamScanner

ासाली निर्गुण्डी बूटी

निर्गुण्डी के पत्र सादे या अखण्डित होते हैं, उसकी अपेक्षा कतरनदार या कंगूरेदार [खंडित] पत्रों वाली अधिक प्रभावकारी मानी जाती है।

उत्तर प्रदेश में प्रायः ५ दलों वाली निर्गुण्डी अधिक होती है। पंजाब की ओर तथा समुद्रतटवर्त्ती प्रदेशों में और प्रायः सर्वत्र ही त्रिपत्रक [त्रिदल वाली] निर्गुण्डी पायी जाती है।

नोट नं॰ २–इसका एक भेद जल निर्गुण्डी [नीर निर्गुण्डी] Vitex Irifolia है। इसे हिन्दी में--पानी[1] की सम्भालु. सफेद संभालु, निचन्दा आदि, बंगला में--नील निशिन्दा, सम्भालु, अं॰--इंडियन वाईल्डपेप्पर [I dian wild Pepper] और लेटिन में- व्हायटेक्स ट्रायफोलिया कहते हैं।

यह मध्य व पूर्व बंगाल, तथा कारोमंडल कोस्ट, कोकण आदि दक्षिण भारत में और ब्रह्मदेश में अधिक पाया जाता है। पुराने टूटे फूटे तालावों के एवं पहाड़ी झरनों के किनारे विशेष देखी जाती है।

इस छोटे गुल्म जातीय वृक्ष के काण्ड सूक्ष्म-रोमाच्छादित; पत्र–त्रिपत्र युक्त, छोटे-छोटे १-३ इंच लम्बे, सभी अवृन्त, अभिलट्वाकार-आयताकार, अखण्ड, किंचित् कुंठिताग्र; पुष्प-सबल, श्वेत-लोमाच्छादित १–४ इंच लम्बे पुष्प-दण्डों पर पुष्प फीके नीलवर्ण के; फल–काले रङ्ग के गोल ⅙ इंच व्यास के होते हैं। शीतकाल के अन्त में फूल और फल आते हैं।

निर्गुण्डी
VITEX TRIFOLIA LINN.

[1] इसे नील निर्गुण्डी भी कहते हैं। किंतु कुछ लोग अडूसा [Justicia Gendarussa] को नील निर्गुण्डी कहते हैं। अतः उक्त निर्गुण्डी के भेद को नीर निर्गुण्डी कहना उचित है। यह समुद्रतटवर्ती प्रदेशों में प्रायः जल के समीप ही अधिक होती है।

Scanned with CamScanner

इसमें एक प्रभावशाली तैल और क्षाराभ (alkaloid) पाया जाता है।

इसके गुणधर्म व प्रयोग प्रस्तुत प्रसंग की निर्गुण्डी के जैसे ही हैं। यह मूत्रल, रजनिःसारक स्नायुमण्डल एवं मस्तिष्क वेदना प्रशामक है।

पत्तों का फाण्ट १½ तो. से २½ तो. तक की मात्रा में धातुपरिवर्त्तक, मूत्रकारक, मार्दव एवं वेदना शामक है। तथा परिवर्त्तित ज्वर जिसमें मूत्र बहुत कम उतरता है। संधिवात, प्लीहावृद्धि आदि में सेवन कराया जाता है। बेरी-बेरी (व्हिटामिन 'बी' के अभाव से, विशेषतः मिल के पालिश किये हुए चावलों के खाने से होने वाला रोग विशेष जिसमें स्नायुमण्डल में दाहजनित वेदना, अर्द्धांगवात, स्नायु या मांस धातु का क्षय, जलोदर, मस्तिष्क विकृति आदि होकर अन्त में हृदय क्रिया बन्द हो जाती है) रोग में—इसके पत्तों के क्वाथ या फांट का सेवन कराते हैं। तथा साथ ही साथ क्वाथ से स्नान, सेंक, बफारा आदि कराते हैं। इससे पैर और हाथों की दाह भी दूर होती है।

पत्तों को गरम कर संधिवात वेदना, शोथ, मोच, चोट आदि पर बांधते हैं। पत्तों के कल्क का लेप कपाल पर करने से मस्तिष्क वेदना दूर होती है, शांति प्राप्त होती है। पत्र-चूर्ण का उपयोग ज्वर में किया जाता है।

इसके फल—वात या नाड़ी मण्डल के अवसाद को दूर करने वाले, रजःस्थापनीय एवं कष्टार्त्तव में लाभकर हैं। इसकी जड़—शूल प्रशमन है।

नोट नं० ३-असली निर्गुण्डी—उक्त वर्णित निर्गुण्डी (जो विशेषतः रेतीली भूमि में जलाशय के समीप हो) या नीर-निर्गुण्डी के किसी-किसी वृक्ष के मूल समीपवर्त्ती स्थानों में, किंतु उस वृक्ष की जड़ों से सम्बन्धित, स्वतंत्र रूप से ६ से १२ इन्च तक लम्बे सिन्दूरी वर्ण के क्षुप जो ठीक उसी प्रकार निकलते हैं, जैसे कहीं-कहीं ग्वार-पाठा में वर्षाऋतु में सिन्दूरी मंजरियां निकलती हैं, उसे ही कई विज्ञ वैद्य महानुभाव असली निर्गुण्डी मानते हैं। हाथों से कुरेद कर इसका यह क्षुप, १ इन्च मोटे-कन्द सहित आसानी से निकाला जा सकता है। ये क्षुप वर्षा में पैदा होते तथा कार्तिक मास से चैत्र मास तक भली प्रकार प्राप्त होते हैं।

इस क्षुप की शाखाएँ तथा जमीन के भीतर रहने वाला इसका ४-५ इन्ची भाग हल्दी के समान गहरा पीला या किरमिची रङ्ग का होता है। पुष्प—विषमवर्ण मंजरियों में चारों ओर अविकसित, किरमिची रङ्ग के होते हैं। विकसित पुष्प ५ पंखुड़ीदार, एवं इसके भिन्न भागों में किरमिची रङ्ग के ही छोटे-छोटे चने के पत्र के आकार के पत्र होते हैं।

इसका कन्द गीली या ताजी हल्दी की गांठों के समान गहरा पीतवर्ण का होता है। कन्द के भीतरी भाग में ४ उभार या सिरायें श्वेत तागे की जैसी होती हैं। कन्द पर इसकी पतली-पतली पीली जड़ें महीन डोरे सदृश होती हैं। कन्द में ४-५ भाग जुड़े हुये से होते हैं, तथा प्रत्येक की मंजरियां भी भिन्न भिन्न होती हैं। शुष्क दशा में

जगतमदन (नीली निर्गुण्डी) कालाअडूसा
JUSTCIA GENDARUSA BURM.

[इसका वर्णन पृष्ठ ८४ पर भी देखें।]

Scanned with CamScanner

कन्द ऊपर से काला पड़ जाता है, किंतु अन्दर से पीला ही बना रहता है। स्वाद में इस क्षुप का प्रत्येक भाग अति कड़ुवा होता है।

यह असली निर्गुण्डी एक दिव्य रसायन है। कल्प-चिकित्सा में तथा सूतिका रोगादि में यह विशेष लाभप्रद है। आगे इसके प्रयोग इसी प्रकरण में देखिये।

नोट नं० ४- -काली या नीली निर्गुण्डी का प्रकरण आगे देखिये।

नोट नं० ५—चरक के विषघ्न, कृमिघ्न गणों में तथा सुश्रुत के सुरसादि गण में निर्गुण्डी का उल्लेख है।

निर्गुण्डी
VITEX NEGUNDO LINN.

सं०—निर्गुण्डी (निर्गुड़ति-शरीरं रक्षति रोगेभ्यः -जो रोगों से शरीररक्षा करती है), शैफाली, सिन्दुवार, (सिन्दु शोथं पारयतीति-जो शोथ का निवारण करती है), सुवहा इ०। हि०-निर्गुण्डी, सम्हालु, मेगड़ी, नीलसम्हालु, सिनुआ, निंगोरी, गरबन, मौरा, तना इ। म०—निर्गुण्डी, निगड़, शिवारी। गु०—नगोड़, नगद। बं०—निशिन्दा। अं०-फाईव लीव्हड़ चेस्टट्री (Five leaved cheast tree) इंडियन प्रिव्हेट (Indian privet)। ले०—व्हाइटेक्स नेगुण्डो, व्हाटेक्सपेनिकुलेटा (Vitex Paniculata), व्हा. इनसिसा (V. Incisa)[1]

रासायनिक संगठन—

इसके पत्र में रंगहीन, गंधयुक्त, उड़नशील तैल, तथा एक प्रकार का राल; फल में अम्लराल (Resin acid) कषाय सेन्द्रिय अम्ल, सेवाम्ल (Malic acid) एवं कुछ क्षारीय रंजक द्रव्य पाये जाते हैं।

प्रयोज्याङ्गः—पत्र, मूल, छाल, बीज।

गुण धर्म और प्रयोगः—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु कषाय, कटु विपाक (अथवा मधुर विपाक), उष्णवीर्य कफ वात शामक, दीपन, आम-पाचन, बल्य, रसायन, यकृदुत्तेजक, चक्षुष्य (दृष्टिशक्ति वर्धक), कृमिघ्न, वेदनास्थापन, शोथहर (इसका शोथघ्न, वेदना स्थापन व वातहर गुण विशेष प्रभावशाली है।) केश्य, मेध्य (स्मृतिवर्धक), मूत्रल, कासहर, ज्वर (विशेषतः विषमज्वर प्रतिबन्धक) आर्त्तव जनन कण्डुघ्न कुष्ठघ्न कर्णस्रावहर, एवं कफज्वर आदि नाशक है।

शिरः शूल, गृध्रसी आदि तथा आमवात, संधिशोथ आदि वेदना प्रधान रोगों में और फुफ्फुसशोथ, फुफ्फुसावरण-शोथ मूत्राघात, कष्टार्त्तव, सूतिकारोग आदि में यह विशेष प्रयुक्त होता है। प्रायः सर्व प्रकार के रोगों में शिलाजीत के साथ इसका प्रयोग लाभकारी होता है।

पत्र-शिरःशूल, संधिशोथ, अण्डशोथ, आमवात आदि एवं वेदना प्रधान रोगों में पत्तों को गरम कर बांधते तथा इसके क्वाथ का बफारा देते हैं। कफ ज्वर फुफ्फुसपाक फुफ्फुसावरण शोथ आदि में इसका पत्र स्वरस या क्वाथ छोटी पिप्पली का चूर्ण मिला पिलाते हैं तथा पत्रों को गरम कर सेंकते हैं। कंठशूल व मुख पाक में क्वाथ से कुल्ले

[1] यह श्वेत पुष्पी निर्गुण्डी का लेटिन नाम है।

Scanned with CamScanner

कराते हैं। प्रतिश्याय एवं गले के शोथ में इसके शुष्क पत्तों का धूम्रपान कराते तथा पत्र क्वाथ में छोटी पीपल और घोड़बच का चूर्ण मिला सेवन कराते हैं। कास में पत्र-स्वरस-सिद्ध घृत का उपयोग लाभकारी है। राज-यक्ष्मा में इसके पंचांग के स्वरस से सिद्ध घृत या स्वरस घृत मिला कर प्रयोग करते हैं। आमवात में इसके तथा तुलसी और भांगरा के पत्र स्वरस को एकत्र मिला अज-वायन चूर्ण के साथ देते हैं। अजवायन चूर्ण तीनों से स्वरस का ⅓ भागलेवें तथा पत्तों से सेंकते हैं। गृध्रसीमें पत्र क्वाथ पिलाते तथा सेक करते हैं। अर्धावभेद (आधा शीशी) में सिर के जिस ओर वेदना हो, उसकी दूसरी ओर के नथुने में पत्र रस की ४–५ बूंदे टपकाते हैं प्लीहावृद्धि में इसके २ तो. रस में समभाग गोमूत्र मिला प्रतिदिन प्रातः पिलाते हैं तथा पत्तों को पीस गर्मकर प्लास्टर बनाकर ऊपर से लगाते हैं। नेत्र विकारों में पत्र स्वरस का आश्च्योतन तथा इसके बीजों का अंजन करते हैं। व्रणों में इससे सिद्ध तैल का प्रयोग करते हैं। पालित्यरोग में भी यह तेल उपयोगी है। कर्ण रोग में भी लाभप्रद है। गले की गिल्टियों में पत्तों को पीस टिकिया बनाकर गले पर बांधने से गले की बढ़ी हुई गिल्टियां दूर होती हैं। सिर दर्द की दशा में पत्तों कोभूनकर तकिया में भर सर के नीचे रखने से लाभ होना है तथा शुष्क पत्तों का धूम्रपान करने से प्रतिश्याय, कफ प्रकोप में भी लाभ होता है नासूर और जख्मों में ताजे पत्तों का रस टपकाने से कीटाणु नष्ट होते तथा मवाद बहना बन्द हो जाता है। प्रसूति के दिनों में पत्र क्वाथ से कटि स्नान कराने से गर्भाशय के विकार ठीक हो जाते हैं। पत्तों का चूर्ण बनाकर खाने से उदर कृमि नष्ट होते हैं प्लीहा जाड्य–(प्लीहामोवटी कड़ी पड़ गई हो) इसके पत्तों साथ सिरवारी पत्र तथा हरड़ चूर्ण मिला पीस कर गोमूत्र के साथ सेवन कराते हैं। चावल आदि अनाज कपड़े तथा पुस्तकों की सुरक्षा के लिये पत्रों को उनमें रखते हैं। इससे जन्तु आदि का निवारण होता है। पांव की जलन में पत्रों को बांधतेहैं जीभ में छाले पड़ गये होंतो पत्रों को चबाते हैं।

नोट—हम ऊपर कह आये हैं कि सर्व प्रकार के शोथ वेदना एवं वातप्रधान रोगों की यह एक परमोत्तम औषधि है वैसे तो आयुर्वेद में पुनर्नवा, कटकरंज, नागदमन, वत्स-नाग, अफीम आदि कई द्रव्य शोथ, वेदनादि नाशक प्रसिद्ध हैं, तथापि इन सबमें यह अग्रगण्य, गुणकारी एवं सु-सुलभ है। किन्तु इसमें अनुलोमिक गुण न होने से इसके प्रयोग से दस्त में रुकावट होती है, दस्त साफ नहीं होता इसके इस दोष के निवारणार्थ शोथादि रोगों में प्रथम रोगी को सौम्य विरेचक औषधि देकर कोष्ठशुद्धि करा देना परमावश्यक है। तथा बीच–बीच में जब भी कोष्ठ-बद्धता हो, रेचन देते रहना चाहिये अथवा इसके साथ नाग-दन्ती को मिलाकर इसका प्रयोग करें।

(१) शोथ पर–शोथ किसी भी प्रकार का हो इसके पत्तों को थोड़ा कुचल कर एक मटकी में डाल, ऊपर ढकनी लगाकर, कपड़मिट्टी से ढकनी की सन्धियों को बन्द कर चूल्हे पर हलकी आंच देवें। भीतर के पत्ते अच्छे गरम हो जाने पर, नीचे उतार, ढकनी को खोलने से जो बाष्प निकले उससे शोथ स्थान पर बफारा दें तथा भीतर के पत्तों को निकाल, सूजन पर बांध देवें यदि इसके पत्तों के साथ थोड़े नीम, करंज और धतूरा भी कुचल कर मटकी में डाल दिये जावें तो और भी विशेष लाभ होता है। ४-४ घंटे बाद पत्तों को खोल कर फिर उसी प्रकार उन्हीं पत्तों को गरम कर बांध दिया करें। शोथ दूर हो जाती है। रोगी को पत्र स्वरस १ तो० की मात्रा में दिन में २ बार पिलावें।

मोच या लचक पर भी उक्त विधि से लाभ होता है। कंठमाला में भी उक्त प्रकार से पत्तों का सेंक किया जाता है। तथा पत्र स्वरस की नस्य दी जाती है। गर्भाशय शोथ, पक्वाशय शूल, अण्डशोथ, गुदशोथ आदि में इसके क्वाथ से कटिस्नान एवं पत्तों का उष्ण बफारा तथा प्रलेप दिन में ३-४ बार, जब तक शोथ दूर न हो, करते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

(२) ज्वरों पर—विषमज्वर. एवं सूतिका ज्वर आदि विविध ज्वरों में इसके पत्तों का चूर्ण, फांट, क्वाथ या पंचांग स्वरस का सेवन कराते हैं। तथा इसके क्वाथ से रोगी का शरीर प्रक्षालन करते हैं। इससे शरीर का दाह तथा

Scanned with CamScanner

दुर्गन्धि कम होती एवं पेशाब साफ आता है।

विषम या मलेरिया ज्वर में ज्वर चढ़ने के ४-५ घंटे पूर्व, इसके ५ माशे हरे ताजे पत्तों को, हाथ से खूब मलकर कपड़े में बांध, पोटली बना, रोगी को बार बार सुंघाने तथा उसके रस की ३-४ बून्दें नाक में टपका कर, नस्य देने से इस ज्वर में शीघ्र आश्चर्यजनक लाभ होता है। —आ० मलेरिया चिकित्सा।

विषम ज्वर में यकृत या प्लीहावृद्धि हो, तो इसके पत्र चूर्ण को हरड़ चूर्ण और गोमूत्र के साथ देते हैं; अथवा पत्तों को कुटकी और रसौत के साथ देते हैं।

सूतिका ज्वर में इसके फांट को देने से गर्भाशय का संकोचन होकर भीतर की गन्दगी निकल जाती है, आर्त्तव शुद्धि होती तथा गर्भाशय एवं उसके आसपास के आन्तरिक अंगों का शोथ दूर हो कर वह पूर्व स्थिति पर आ जाता है। इसमें आन्तरिक प्रयोग के साथ ही साथ पत्तों को गरम कर बांधना भी आवश्यक है।

कफ ज्वर में—जबकि जंघाओं का बल क्षीण हो गया हो तथा बाधिर्य हो, तो इसके पत्र क्वाथ की मात्रा में कालीमिर्च (या पिप्पली) का चूर्ण ४ रत्ती मिलाकर सेवन करावें—भै. र.। इस प्रयोग से फुफ्फुस का शोथ भी दूर हो जाता है। कफ का विशेष प्रकोप हो, तो इसके शुष्क पत्तों का फांट दिन में दो बार पिलाते हैं।

डेंगु ज्वर [इसमें ज्वर के साथ तीव्र संधिवेदना तथा त्वचा पर फुन्सियां उठती हैं। यह जहरीले मच्छरों के दंश से होता है] में पत्तों का बफारा दिन में दो बार ५-७ दिन देने से यह ज्वर निःशेष हो जाता है।

कई ज्वरों में अनुपान रूप से इसका पत्र स्वरस दिया जाता है। पत्तों का बफारा तो प्रायः सभी ज्वरों में हितकर होता है। संधिगत ज्वर में इसके पत्तों के साथ समभाग गूगल, सफेद सरसों, नीम पत्र और राल एकत्र कूट कर चूर्ण करलें। रोगी को इसका धूप देने से लाभ होता है। —यो. र.।

(३) दुष्ट व्रण, नाड़ी व्रण, कुष्ठ, विसर्प, नारू, भगंदर आदि पर—मूल व पत्र सहित इसे अथवा केवल पत्तों को कूट कर रस निकाल लें। यदि रस ४ भाग हो तो उसमें १ भाग तिल तैल मिला पकावें। प्रथम तैल को पकाकर निष्फेन हो जाने पर, ठंडा कर स्वरस मिला मंद आंच पर पकाना चाहिये। पकाते समय खूब करछली से चलाते रहें, जिसमें कढ़ाई से लग न जाय। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर बोतल में भर कर रखें। इसे पीने, नस्य लेने एवं लगाने से दुष्टनाड़ीव्रण [नासूर], पामा, अपची [गण्डमाला भेद] और विस्फोटक नष्ट होते हैं। चक्रदत्त। [आगे विशिष्ट योगों में निर्गुंडी तैल देखें] तैल के प्रयोग काल में व्रण को पानी से बचाना चाहिये। निम्न धूप का भी साथ ही साथ प्रयोग करें—इसके शुष्क पत्तों के साथ समभाग नीमपत्र, हरताल, सरसों, देवदारु व खांड़ के मिश्रित चूर्ण को घृत व शहद में मिलाकर धूप देने से पीड़ा युक्त दुष्ट एवं विषम व्रण, भगंदर, अर्श, विसर्प, पामा, पीनस, खांसी और ग्रह दोष नष्ट होते है। —हा. सं.।

गण्डमाला में—इसका स्वरस ४ सेर और सरसों तैल १ सेर लेकर एकत्र कर उसमें कलिहारी [लांगली] की जड़ ५ तोला कल्क कर मिलादें। यथा विधि तैल सिद्ध कर नस्य देने से लाभ होता है। —भै. र.।

नारू [स्नायुक]—प्रथम ३ दिन तक गाय का घृत [यथाशक्ति] पीने के पश्चात् इसका रस ३ दिन तक पीने से कष्ट-साध्य स्नायुक भी अवश्य नष्ट हो जाता है। —वं. से.

कुष्ठ पर—इसके ताजे १ तोला पत्तों को पीसकर २० तोला जल मिला छानकर प्रातः खाली पेट रोगी को लगातार कुछ दिन पिलाते रहने से कुष्ठी के स्रावयुक्त जखम सूख जाते हैं। साथ ही साथ इसके ताजे पत्तों को बिना पानी के पीसकर व्रणों पर नित्य लगाते रहने से वे शीघ्र ही भर जाते हैं। —गुप्तसिद्ध प्रयोगांक [धन्वन्तरि]

कुष्ठ और अपची में वमनार्थ—इसके पत्तों के साथ समभाग चमेली पत्र, देवदारू और विंदाल डिवढ़ा लेकर चूर्ण बनालें। (मात्रा ३ से ६ मा. तक, शहद ४ तोला गरम जल अधिक से अधिक जितना पी सके, और सेंधा नमक जितने से पानी खूब नमकीन हो जाय, एकत्र मिला पिलावें) इससे वमन होकर यथेष्ट लाभ होता है। — ग. नि.

Scanned with CamScanner

विसर्प पर—कफ प्रधान विसर्प रोग हो, तो इसके पत्तों का शाक घृत में बनाकर खाना अत्युत्तम गुण करता है। तथा उसके पत्तों को थोड़े घृत में तलकर उद्वर्तन (उबटन) करने से विसर्प तथा अनेक चर्म रोग दूर होते हैं। घृत-सिक्त इसके पत्तों का शाक रक्तपित्त को भी नष्ट करता है। —स्व. श्री भागीरथ स्वामी जी।

(४) कर्ण विकार और शिरःशूल पर—पूति कर्ण हो (कान में मवाद बहता हो) तो इसका पत्र स्वरस २० तोला तिल तैल १० तोला तथा घर का धुंवां, सेंधानमक, गुड़ ५-५ तो. एकत्र मिला पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रख लें। इसमें शहद मिलाकर कान में डालते रहने से लाभ होता है। —वं. से.।

यदि बधिरता, कर्णनाद, कृमि, कर्णपीड़ा तथा कर्ण-स्राव हो, तो इसके साथ समभाग चमेली, आक, भांगरा, लहसन, केला की जड़, कपास मूल, सहजना की छाल, तुलसी पत्र, अदरक, और करेला इनमें से जिनका स्वरस मिल सके उनका स्वरस और शेष का क्वाथ एकत्र २ सेर लेवें (अथवा सब द्रव्य मिश्रित १ सेर लेकर ७ सेर पानी में पकावें, २ सेर शेष रहने पर छान लें। फिर इसमें ½ सेर तिल तैल और ५ तोला बछनाग का चूर्ण मिला तैल सिद्ध कर लें। इसे कान में डालते रहने से लाभ होता है —यो. र.

अथवा—इसका पत्र-कल्क १० तो. तिल तैल ४० तो. और इसका (निर्गुण्डी का) स्वरस या क्वाथ २ सेर एकत्र मिला मंदाग्नि पर तैल सिद्ध करें। इसके प्रयोग से असाध्य कर्णपाक भी दूर होता है। कान से दुर्गन्धयुक्त पील [illegible]य बहना, जो किसी उपचार से ठीक न हुआ हो, इससे अच्छा हो जाता है। ध्यान रहे—कान को पानी से न धोवें त्रिफला क्वाथ, या कार्बोलिक लोशन में कपड़ा या [illegible] भिगोकर बाहर जहां-जहां पूय लगा हो पोंछ देना चाहि[illegible]। कान के धोने की आवश्यकता नहीं है। —रसतंत्रसार।

सिर में असह्य पीड़ा हो, तो इसके पत्र, कलिहारी और आक के कल्क एवं क्वाथ से सिद्ध तैल की मालिश से समस्त प्रकार की सिर पीड़ा दूर होती है। —राजमार्तण्ड

(५) क्षत क्षीणता, यक्ष्मा, शोथ, कफज कास तथा रक्तचाप वृद्धि पर—मूल पत्र सहित इसे या केवल इसके पत्तों को कूट पीसकर २ सेर रस निकालें। शुष्क हो तो २ सेर मूल सहित पत्र या केवल पत्र को ८ सेर पानी में पका २ सेर तक शेष रहने पर छान लें। फिर इस स्वरस या क्वाथ में ½ सेर घृत मिला कर पकावें घृत मात्र शेष रहने पर छान लें।

½ से १ तो. तक घृत, दुग्ध के साथ सेवन से क्षतक्षीण एवं शोष, यक्ष्मा विकार दूर होता है। शरीर की कान्ति बढ़ती है। —चक्रदत्त

उक्त घृत के सेवन से कफज कास भी दूर होता है। —वं. से

रक्तचाप वृद्धि (High blood pressure) में इसके साथ लहसुन और सोंठ यथोचित प्रमाण में मिला कर क्वाथ सिद्ध कराने से विशेष लाभ होता है।

घृत के शेष लाभ आगे विशेष प्रयोगों में देखें। —नागार्जुन।

[६] वात विकारों पर:—

गृध्रसी में इसके पत्तों का मन्दाग्नि पर बनाया हुआ क्वाथ सेवन कराने से कष्टसाध्य गृध्रसी (लंगड़ी का दर्द, रींगन वायु Sciatica) शीघ्र नष्ट होती है—ग. नि.

उरुस्तम्भ में इसके पत्र क्वाथ में पिप्पली चूर्ण मिला सेवन कराने से लाभ होता है। साथ ही अन्य कफघ्न उपाय भी करने चाहिये। —भा. भै. र.

धनुर्वात हो तो प्रारम्भ में ही इसका स्वरस ३ तो. तक दिन में २-३ बार शहद मिलाकर पिलाने से अवश्य लाभ होता है। —सुश्रुत मासिक

कटिवात में इसके स्वरस में रेंडी तैल मिला कर सेवन करने से लाभ होता है। —वैद्य मनोरमा

गठिया (आमवात) पर—पत्र स्वरस के साथ समभाग भांगरा पत्र स्वरस और तुलसी पत्र स्वरस एकत्र मिला उसमें ¼ भाग अजवायन चूर्ण मिला पिलाते हैं तथा ७ दिन पश्चात शुद्ध घृत ½ तो., काली मिर्च १ मा. एकत्र मिला गरम कर उसमें ½ तो. इसका पत्र स्वरस और २ तो. गो मूत्र मिला रोगी को ७ दिन तक प्रातः पिलाते हैं।

Scanned with CamScanner

शास्त्रोक्त रसोनादिक्वाथ—लहसुन, सोंठ और निर्गुण्डी समभाग मिलित ३ तो चूर्ण में ३२ तो. जल मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर सेवन करना आमवात में अत्यन्त हितकर है। —भै. र.

उदर में वात संचय के कारण उदरशूल, आध्मान आदि हो, तो इसके स्वरस में कालीमिर्च व अजवायन चूर्ण सेवन कराते हैं।

वातव्याधि हर तैल—इसका पत्र रस, भांगरा रस, धतूरा रस और गोमूत्र १-१ सेर एकत्र कर उसमें १ सेर तिल तैल तथा कल्कार्थ बच, कूट धतूर बीज, मालकांगनी और कायफल १-१ तो. तथा बछनाग ५ तो. एकत्र पीस कल्क कर मिलावें। मंदाग्नि पर तैल सिद्ध कर लें। इसकी मालिश से वात रोग दूर होते हैं।

—वैद्यामृत।

(७) सूतिका (प्रसूता) के विकारों पर—निर्गुण्डी (असली) ३ मा. से १ तो. तक लेकर क्वाथ विधि से क्वाथ सिद्ध कर ५ तो. शेष रहने पर छान कर उसमें पिप्पली चूर्ण २ रत्ती मिला पिलावें। दिन में ३ वार सेवन से गर्भाशय का मवाद (दूषित अंश) दूर होकर प्रसूति के समस्त विकार केवल ३ दिन लेने से दूर हो जावेंगे विशेष। विकृति में १० दिन लेवें।

प्रसूतावस्था में श्वेतपाद (सूतिका के पैर की सफेद सूजन (Phlegmasia albadolens) नामक एक व्याधि हो जाती है, उसमें यह सत्वर लाभकर होती है।

—धन्वन्तरि (प्रसूति विज्ञानाङ्क)

असली निर्गुण्डी के अभाव में सर्व साधारण निर्गुण्डी लहसुन, और सोंठ के मन्दोष्ण क्वाथ में पिप्पली चूर्ण मिला कर सेवन से कफवातज कष्टसाध्य सूतिका रोग नष्ट होता है। —यो. र.

(८) कृमि विकार पर—निर्गुण्डी, सहजन की छाल और कायफल के क्वाथ में पिप्पली, वायविडङ्ग तथा मैनफल का कल्क मिलाकर पीने से, शरीर से कृमि निकल कर तज्जन्य विकार नष्ट हो जाते हैं।

—ग० नि०

कृमि युक्त वात विकार में—वैद्यराज उदयलाल जी महात्मा ने लिखा है कि असली निर्गुण्डी से बना हुआ रसोनादि क्वाथ (पीछे प्र० नं० ६ में गठिया-आमवात देखें) तैयार कर उसमें १ तो० एरण्ड तैल मिलाकर सेवन कराने से सब कृमि निकल कर शरीर का वात विकार दूर हो जाता है। —धन्वन्तरि से सारांश।

(९) नेत्रों के रोहे, कुथुआ (पोथकी) पर—इसके पत्तों का बफारा दिन में १ बार (प्रातः अथवा सायंकाल) जहां तक सहन हो सके १० मिनट तक देवें। पश्चात् नेत्रों को शीत जल से धो डालें। —आ० मंदिर

अन्यान्य नेत्र रोगों पर पत्र-स्वरस का आश्च्योतन और इसके बीजों का अञ्जन करते हैं।

(१०) कामेच्छा (संभोग कामना) कम करने के लिए इसका चूर्ण ३५ माशा, सुदाब पत्र, पोदीना पत्र शुष्क, जीरा किरमानी, नागरमोथा, गुलनार, फारसी, धनियां प्रत्येक १ तो० ५ मा० सबको कूट छान कर चूर्ण करें। प्रातः सायं ६-६ मा० जल से लेवें।

—यू० चि० सा०

(११) सुजाक पर—प्रारम्भिक अवस्था में इसका क्वाथ विशेष गुणकारी होता है। रोगी का कभी-कभी पेशाब बन्द हो जाने पर इसके पत्र के उष्ण क्वाथ में रोगी को बिठाने से पेशाब बहुत शीघ्र खुल कर हो जाता है।

नोट—पत्र रस योग आगे विशेष योगों में 'कल्पप्रयोग' देखें।

मूल—मूत्रल, ज्वरघ्न, श्वास कासहर, क्षोभ शामक शक्ति वर्धक, दूषित कफ निःसारक, प्रदर, अर्श, संधिवात, कृमि, ग्रन्थि, कुष्ठ आदि में विशेष लाभकारी है।

इन सब कार्यों के लिये असली निर्गुण्डी (वर्षाकाल में निर्गुण्डी के पुराने पेड़ों के नीचे नूतन अंकुर फूटा करते हैं। वर्षाकाल समाप्त होने पर कार्तिक मार्गशीर्ष मासों में इन नूतन अंकुरों से उत्पन्न पौधों के नीचे हल्दी सदृश जो कन्द निकलते हैं; उन्हें) लेना विशेष हितकर है। पीछे नोट नं० ३ में असली निर्गुण्डी देखें। मूल का चूर्ण अर्श में उपयोगी है। आमातिसार, अग्निमांद्य, उदरशूल आदि में दिया जाता है। जड़ की छाल का मद्यार्क युक्त आसव (टिंचर) १ से २ ड्राम की

Scanned with CamScanner

मात्रा में मूत्राशय के क्षोभ तथा संधिवात में देते हैं।

(१२) मूल को चबाने से उपजिह्वा [जिह्वा मूल के नीचे होने वाला प्रसेक, कण्डू एवं दाह युक्त कफ रक्त जन्य शोथ या जीभ के नीचे होने वाली रसौली], कण्‌ ..तक (कफ जन्य कण्ठ ग्रन्थि जो बड़े बेर की गुठली जैसी, खुरदरी, स्थिर होती है इसे अंग्रेजी में [Adenoides कहते हैं] और नकसीर में लाभ होता है। —राज मार्तण्ड

(१३) बालकों के दंतोद्भेद के समय होने वाले विकारों पर—श्वेत निर्गुण्डी की जड़ जो पूर्व दिशा की ओर गई हो, उसे पवित्रता के साथ लाकर बालक के गले में बांधने से दांत निकलने के समय होने वाली वेदना आदि सर्व व्याधियां अवश्य ही नष्ट हो जाती हैं।

—राजमार्तण्ड।

(१४) कामशक्ति वर्धनार्थ—इसकी जड़ को घिसकर कामेन्द्रिय पर लेप करने से उसकी शिथिलता दूर होती है। तथा इसके ४ तो. चूर्ण के साथ समभाग सोंठ चूर्ण मिला ८ मात्रा बना लें। १-१ मात्रा प्रतिदिन दूध के साथ लेते रहने से संभोग शक्ति तीव्र हो जाती है

—यूनानी मत से।

(१५) शीघ्र प्रसवार्थ—इसकी जड़ को स्त्री की कमर में बांध देने से शीघ्र प्रसव हो जाता है। पश्चात् शीघ्र ही जड़ को खोल देना आवश्यक है।

(१६) आंत्र विकारों पर—जड़ को २४ घण्टे पानी में भिगोकर उस जल को पिलाते हैं।

(१७) अजीर्ण पर—मूल के चूर्ण को जल, दूध या घृत के साथ देते हैं।

नाड़ीव्रण (नासूर) पर—मूल चूर्ण को घृत और शहद के साथ मिलाकर लगाते हैं। तथा गण्डमाला में मूल को जल के साथ पीसकर नस्य देते हैं।

नोट— कुष्ठ पर तथा रसायनार्थ इसका कल्प प्रयोग विशेष योगों में आगे देखिये।

बीज—इसके बीज उष्ण, संग्राही, प्रमाथी, शोथविलयन, वातानुलोमन, वीर्यशोषक, रक्तस्राववर्धक, विस्फोटशमन, मूत्रल, स्तन्यवर्धक, प्लीहावृद्धि, आध्मान, कुष्ठ, चर्मरोगादिनाशक हैं।

(१९) प्लीहावृद्धि आदि की कड़ी शोथ विलयनार्थ इसे सिरके में भिगोकर गरमकर सुखोष्ण सेंक करते, तथा सिकंजबीन के साथ इसे सेवन कराते हैं।

(२०) संभोग की इच्छा कम करने एवं वीर्य को शुष्क करने के लिये इसे सिरके के साथ खिलाते हैं। इसका क्वाथ भी पिलाते हैं।

(२१) कुष्ठ आदि चर्म रोगों पर इसका तैल पिलाते तथा लगाते हैं।

(२२) उदर कृमिनाशार्थ - बीजों का चूर्ण दिया जाता है।

(२३) स्तन्य वृद्धि के लिये—इसका चूर्ण दूध के साथ सेवन कराते हैं।

पुष्प—इसके फूल कटु, तिक्त, उष्ण, तथा कृमि, प्लीहा, गुल्म, वात, शोथ, अरुचि, कंडू आदि नाशक हैं। आधुनिक मत से ये शीतल, पित्तनाशक, हृद्य तथा अतिसार, हैजा, ज्वर, यकृत विकृति नाशक हैं।

ज्वर में होने वाली तृष्णा, वमन, घबराहट की शांति के लिये फूलों को शहद के साथ देते हैं। उदर एवं आन्त्र से होने वाले रक्तस्राव के निवारणार्थ फूलों के चूर्ण का उपयोग करते हैं।

(२४) गर्भाशय शुद्धि के लिये—पुष्प चूर्ण को शहद के साथ देने से प्रसूता के सूतिका ज्वर में होने वाला गर्भाशय का संकोच दूर होकर, अवरुद्ध रक्त निकलने लगता है। समस्त शोथ उतर कर गर्भाशय पूर्व स्थिति पर आ जाता है। शोथ अधिक हो तो जननेन्द्रिय पर इसके पत्तों को गरम कर बांधना चाहिये।

—स्व० श्री भागीरथ स्वामी

नोट-मात्रा-पत्र स्वरस १-२ तो.। पत्र चूर्ण ३ से ६ मा. तक मूल चूर्ण १-३ मा.। बीज चूर्ण ६ से १२ रत्ती या अधिक से अधिक ३ मा. तक।

अत्यधिक मात्रा में यह शिरःशूलकारक तथा वृक्कों के लिये अहितकर है, दाहादि पैत्तिक विकार होते हैं। हानिनिवारणार्थ गोंद बबूल या कतीरा का उपयोग

Scanned with CamScanner

करते हैं।

विशिष्ट योग–

(१) निर्गुण्डी कल्प–इसकी जड़ या कन्द के ३२ तो. चूर्ण में दो गुना शहद मिलावें तथा घृत से चिकनी की हुई मटकी में भरकर मुख पर शराब रख संधि पर कपड़मिट्टी कर अनाज के ढेर में दबा दें। एक मास बाद निकाल कर (१ मा. से ३ मा. या ६ मा. की मात्रा में) १ मास तक सेवन करने से शरीर कांतिमान, तीक्ष्ण दृष्टि युक्त होता तथा सर्व रोग एवं बालपलित रहित हो जाता है। एक वर्ष त. सेवन से दीर्घजीवन तथा प्रबल कामशक्ति प्राप्त होती है। सेवन काल में शाक और अम्ल पदार्थों को छोड़कर यथेष्ट आहार करें। –भैं. र.

नं. २—इसकी जड़ या कन्द के चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन करने से १८ प्रकार के कुष्ठ[1] [ध्यान रहे जिस कुष्ठ की अवस्था में वात नाडियों पर विशेष प्रभाव पड़ता है अर्थात न्यूरल टाइप की लेप्रसी में यह विशेष उपयोगी है। जिस कुष्ठ में त्वचा पर गांठे पड़ जाती हैं (नोडयूलर टाईप) उस पर इसका उतना उपयोगी नहीं होता] पामा, विचर्चिका, नाड़ीव्रण, गुल्म, शूल, प्लीहा एवं उदर रोग नष्ट होते हैं। उक्त चूर्ण को तक्र के साथ सेवन कराने से शरीर समस्त रोग रहित, बलवान, बलिपलित रहित, दिव्यरूपवान हो जाता है। भै. र.

नं. ३–पुष्य नक्षत्र में प्रातः इसकी जड़ की छाल उतार कर उसे छायाशुष्क कर चूर्ण करें। १ तो. की मात्रानुसार ५ तो. बकरी के मूत्र के साथ ६ मास तक पीने से दीर्घायु प्राप्त होती है। अथवा—

इसके पत्तों के रस को बन्द आंच पर पकावें। गुड़ के जैसा गाढ़ा हो जाने पर (३ माशा से ६ माशा तक की मात्रा में प्रथम वमन विरेचन द्वारा शरीर को शुद्ध कर इस अवलेह के ७ दिन सेवन से राजयक्ष्मा, श्वास, कास आदि रोग दूर हो जाते हैं। इसके सेवन से मुख, नाक, कान आदि से रोगोत्पादक जंतु निकल जाते हैं। ३ मास तक सेवन से वृद्धावस्था दूर हो कर दीर्घायु प्राप्त होती है। प्रयोग काल में अन्न जल का त्याग कर केवल दूध पर ही रहना चाहिये। तथा औषधि की मात्रा सेवन से पूर्व "ओऽम् नमोमाय गणपतये भूपतये कुबेराय स्वाहा" इस मंत्र को पढ़ लेवें। —रसरत्नाकर

उक्त अवलेह को गोली के रूप में बनाकर उपयोग में लासकते हैं। यह मलेरिया, निमोनियां एवं यक्ष्मा जन्य ज्वरों पर तथा नासूर, अस्थिक्षय (Bone T. B.) पर भी उत्तम कार्य करता है। इसे दूध और शक्कर के साथ सेवन कर सकते हैं। कैंसर जन्य अस्थिर तीव्र वेदना पर भी यह लाभदायक है।

—राजवैद्य डा० प्रभाकर चटर्जी (नागार्जुन से)

निर्गुण्डी तैल और घृत—इसकी ताजी जड़ तथा ताजे पत्तों को कूट क.र निकाला हुआ स्वरस ३ सेर १६ तो० और तिल तैल ६४ तो० एकत्र मिला मन्दाग्नि पर पकावें। तैल सिद्ध हो जाने पर उतार कर छान रक्खें। यह तैल नाड़ी व्रण, कुष्ठ, वातरोग, पामा तथा अपची में पान, अभ्यङ्ग तथा पूरणार्थ प्रयुक्त होता है।

— च० सं० चि० अ २८

इस तैल के प्रयोग से सर्व प्रकार के स्फोट एवं व्रण ठीक हो जाते हैं। कान के रोग, कान से पूय स्राव, नाड़ी व्रण आदि में इस तैल को १-२ मास तक डालते रहने से लाभ होता है। कान में पानी नहीं जाने देना चाहिए। वात विकार, कम्पवात, आमवात, सन्धिपीड़ा,

---

[1] १२ वर्ष पूर्व मध्यप्रदेश में काश्मीर महाराज नाम से विख्यात एक संन्यासी ने राजनांद गांव तथा नागपूर में कुष्ठाश्रम खोला था। वे रोगी पर निर्गुण्डी कल्प का ही प्रयोग इस प्रकार करते थे—कन्द (असली निर्गुण्डी) की मात्रा प्रातः सायं १-१ तोला तक देकर आध घंटे बाद ५–१० तोला ताजा गोमूत्र पिलाते जिससे ३–४ दिन तक रोगी को विरेचन होता था। रोगी की पूर्णतया कोष्ठ शुद्धि हो जाती थी। विरेचन से रोगी को कोई घबड़ाहट या निर्बलता नहीं आती थी। दस्त ३–४ दिन बाद स्वयं बन्द होजाते थे। उसे बहुत हलका पथ्य ही दिया जाता था। आवश्यकतानुसार कल्प की मात्रा न्यूनाधिक करते हुए रोगमुक्त हो जाने पर भी ३-६ मास तक यह कल्प जारी रखते थे।

—सचित्रायुर्वेद के एक लेख का संक्षेप।

Scanned with CamScanner

शूल आदि में तैल को कुछ गरम कर मालिश करने तथा १-१ माशा दिन में दो बार पिलाते रहने से शीघ्र ही वात व्याधियां दूर हो जाती हैं। सर्व प्रकार के शोथों में इस तैल के बाह्य प्रयोग एवं निर्गुण्डी के पत्तों के क्वाथ के सेवन से लाभ होता है। शीर्ष स्थान में दाह एवं जलन होने पर इसका बाह्यान्तर प्रयोग यशस्वी होता है। गले और जिह्वा के कैंसर की प्रारम्भिक अवस्था में यह तैल तथा निर्गुण्डी घृत का उपयोग लाभकारी है। हृदय स्थान में विशेष पीड़ा हो, जिससे श्वासोच्छ्वास में रुकावट सी हो तो इसकी मालिश लाभप्रद है।

निर्गुण्डी घृत का प्रयोग ऊपर प्रयोग नं० ५ में देखें। यह घृत फुफ्फुस विकृति (फुफ्फुस में होने वाले छिद्र) में लगातार ३ मास तक सेवन करने से आश्चर्यजनक लाभ करता है। यकृत वृद्धि (यकृत काठिन्यता Cirrhosis), यकृत में व्रण, पित्ताशय की विकृति, कामला, पांडु, वृहदान्त्रप्रदाह, हृद्विकार एवं धमनी गत रक्त स्कन्दता पर भी यह लाभदायक सिद्ध हुआ है। इस घृत की मालिश हृदय स्थान सिर, शरीर की विभिन्न सन्धियां तथा खासकर रीढ़ पर और पसलियों के दोनों ओर करने से रक्तपरिभ्रमणमें होने वाले दोष दूर हो जाते हैं। हृद्विकार जन्य श्वास रोग जो किसी उपचार से दूर नहीं होता वह इसके प्रयोग से ठीक हो जाता है।

[नागार्जुन]

(३) निर्गुण्ड्यासव (अशक्ति नाशक)—इसकी जड़ की छाल १ सेर जौकुट कर ८ सेर पानी में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर ठण्डा होने पर, छानकर सन्धान पात्र में भर उसमें २० तो० धाय के फूलों का चूर्ण और ४ सेर शहद मिला पात्र का मुख अच्छी तरह बन्द कर १ मास तक अनाज के ढेर में दबा रहने दें। पश्चात् निकाल व छानकर बोतलों में भर कर रक्खें।

१ से २ तो० तक तक्र (मठा) या गोमूत्र अथवा शुद्ध पानी के साथ सेवन करने से बल, वीर्य, आयु, मेधा अथवा दृष्टि शक्ति की वृद्धि होती है। यह एक उत्तम रसायन है।

शेष प्रयोग वृहदासवारिष्ट संग्रह में देखिये।

निर्गुण्डी नोट—बम्बई की ओर मराठी में जिसे निर्गुण्डी तथा लेटिन में ब्लूमिसा एरियान्था (Biumea eriantha) कहते हैं। उस भृङ्गराज कुल (Compositae) की बनौषधि के पत्र २.५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० तक लम्बे एवं १.३ से ३.८ सें मी० तक चौड़े होते हैं।

यह वनस्पति दक्षिण भारत के कोंकण, मद्रास आदि प्रान्तों में तथा उत्तर की ओर बुन्देलखण्ड में भी विशेष पैदा होती है।

यह दीपन, वातहर, आध्मानहर एवं स्वेदल है। इसके पत्र निर्गुण्डी पत्र और कुम्भी के पत्र एकत्र मिला सेंक करने के काम में लिये जाते हैं।

इसका सुखोष्ण क्वाथ जुकाम व शीत बाधा निवारणार्थ दिया जाता है। इससे पसीना आता है।

इसका हिम या शीत निर्यास मूत्रल एवं ऋतुस्राव नियामक माना जाता है तथा इसका रस एक शांतिदायक पदार्थ की तरह काम में लिया जाता है।

निर्गुण्डी काली या नीली[१] (Justicia Gendarusa)

गुडूच्यादि एवं वासा (अडूसा) कुल (Acanthaceae) के इसके छोटे वर्षायु क्षुप २-४ फुट ऊंचे काण्ड-पतले लम्बेचारों ओरसेलम्बी काली धारियों से युक्त अग्रभाग मेंकुछ बेंगनी रंग के सूक्ष्म रोमश; पत्र अडूसा के पत्र जैसे किंतु वृन्त की ओर एवं अग्रभाग में क्रमशःनोकदार, भालाकार गहरे हरित वर्ण के कुछ कालिमा युक्त कंगूरेदार, मुलायम चिकने सूक्ष्म रोमयुक्त ३-५ इंच लम्बे मध्य भाग में फीके बेंगनी रंग के दागों से युक्त पत्र वृन्त $\frac{1}{4}$ इंच लम्बे होते हैं। पुष्प छोटे छोटे लाल दागों से युक्त श्वेत या लाल वर्ण के भीतरी भाग में जामुनी वर्ण के चिन्हों से

१ इस वनस्पति को निर्गुण्डी कहना एक विचारणीय प्रश्न है। आगे नोट देखिये।

Scanned with CamScanner

युक्त पखुड़ियां ½ इंच लम्बी तलवार के आकारकी, सूक्ष्म रोमयुक्त होती हैं। पुष्प प्रायः अवृन्त, काण्ड में ही क्रम से निकलते हैं। बीज कोप या फली ½ इंच लम्बी गदा के आकार की सूक्ष्म लोमयुक्त होती है। प्रत्येक फली में ४बीज होते हैं। फूल एप्रिल व मई मास में तथा फल वर्षा के प्रारम्भ काल में आते हैं। इसके पत्र और छाल से उत्तम मनोहर सुगन्ध आती है।

इसका मूल स्थान चीन देश है। प्राचीन काल से यह बंगाल, बिहार, गुजरात, आसाम आदि के जंगलों में नैसर्गिक पैदा होता है। दक्षिण में कनारा, ट्रावन्कोर में भी विशेष पाया जाता है। इसके क्षुप बागों में भी रास्तों के किनारे लगाए जाते हैं।

नोट—यद्यपि आयुर्वेदीय निघण्टु के अनुसार यह और निर्गुण्डी एक ही गुडूच्यादि वर्ग के माने गए है; तथापि नूतन वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार दोनों के कुलों में भेद है, तथा वानस्पतिक दृष्टि से केवल पत्तों के किंचित साम्य के अतिरिक्त और कोईसमानता नहीं है। गुणधर्ममें किंचित साम्य है, तथापि यह अत्यन्त वामक और रेचक होने से बालकों एवं वृद्धों पर इसका प्रयोग बहुत सावधानी से करने की आवश्यकता है। इसके प्रयोग काल में घृत युक्त चावल की मांड दी जाती है।

उक्त सब विचारों से इसे निर्गुण्डी न कहते हुए काला अडूसा कहना उचित प्रतीत होता है। सर्व साधारण भाषा में जिसे हाड़ा वांसा कहते हैं उसी का यह एक भेद मालूम होता है इस ग्रन्थ के भाग १ में अडूसा का प्रकरण देखिये।

नाम—

सं.-कृष्ण निर्गुण्डी नील निर्गुण्डी, इ०। हि.-काली या नीली निर्गुण्डी, काला अडूसा, ऊदी संभालु, वांशिव। म.—काला अडूलसा, शानवल्लि, वाकस। गु.- नानी अडूसी। वं.-जगतमदन, मामलक। ले.-जस्टिसिया जेन्डारुसा; जेन्डारुसा व्हल्गेरिस (Gendarussa Vulgaris)

रासायनिक संघटन—

इसमें एक क्षाराभतत्व [alkaloid] पाया जाता है

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण, दाहक, तिक्त, कफनिःसारक, वामक, रेचक, ज्वरघ्न, योनिरोग, प्रदर, अपचन, आध्मान आदि विकारों में प्रयुक्त होता है। इसकी छाल व रस उत्तम वामक है। पत्र-विषमज्वरघ्न, वातुपरिवर्त्तक और कृमिघ्न हैं। फुफ्फुस के विकारों पर इसका प्रयोग होता है।

तीव्र कफ-विकारों में एवं फुफ्फुस विकृति में इसके २-४ पत्तों को पीस कर उसमें अपामार्ग की भस्म आधा तोला मिला शहद के साथ देते हैं।

न्युमोनियामें-३-४ पत्तों का रस, सहजना की छाल का रस और सामुद्र नमक एकत्र मिला, शहद के साथ सेवन कराते हैं।

ज्वर पर—पत्तों का फाण्ट देते हैं। इससे प्रस्वेद आकर ज्वर हलका होता है। तथा पत्तों को पानी में उबाल कर उससे ज्वर के रोगी को तथा संधिवात पीड़ित को स्नान, वफारा, सेंक आदि कराते हैं। संधिपीड़ा, जीर्ण गठिया (आमवात) आदि पर पत्तों और टहनियों को कुचलकर, कुछ नमक मिला, थैलों में भर, सेंक कराते हैं।

ग्रन्थि (विशेषतः गर्दन व गले की ग्रन्थि)शोथ पर-पत्र-रस को तैल में मिलाकर गरम कर लगाते हैं तथा पुल्टिस बनाकर बांधते हैं।

बालकों के कफ प्रकोप तथा शूल में पत्र- रस देते हैं।

वमनार्थ-पत्र रस में सरसों का तैल मिलाकर पिलाते हैं।

छाजन (उकौत) आदि चर्म रोगों पर-इसके पत्र और फलों के कल्क से तैल सिद्ध कर लगाते हैं।

अर्द्धांगवात, शिरःशूल आदि वात प्रकोपज विकारों पर-पत्तों का फाण्ट देते हैं। यह जीर्ण वात रोग में विशेष हितकर है।

श्वास पर—पत्र-रस में, सरसों तैल मिलाकर पिला देने से वमन होकर, संग्रहीत कफ निकलकर रोगी को शांति प्राप्ति होती है।

कर्ण शूल तथा अर्धावभेदक (आधाशीशी)पर—ताजे हरे पत्तों के रस को कुछ गरम कर कान में टपकाते हैं। आधाशीशी हो, तो उक्त रस को विपरीत भाग के नासापुट में डालते हैं तथा कपाल पर लगाते हैं। जंतुओं से सुरक्षा के लिये पत्तों को कपड़ों में रखते हैं।

Scanned with CamScanner

मूल या जड़—इसकी जड़ को दूध में पका कर चिरकालिक अजीर्ण विकार, संधिवात, कामला और ज्वर के शमनार्थ दिया जाता है। तथा इसके पत्र और फलों के ऊपर की शाखा के फाण्ट का उपयोग स्वेदनार्थ किया जाता है, पिलाया भी जाता है।

×

निर्मली [Strychnos Potatorum]

फलादि वर्ग एवं कुपीलु (कुचला) कुल (Loganiaceae) के इसके वृक्ष कुचले के वृक्ष के समान किंतु उससे अधिक ऊंचे ४० फुट तक; छाल–गहरी धूसर वर्ण की; पत्र अण्डाकार, प्रायः २ इंच लम्बे १ इंच चौड़े, पुष्प श्वेत या पीत वर्ण के सुगंधित, फल कुचला के फल जैसे- पकने पर काले, बीज कुचला जैसे, किंतु छोटे, गोल, उन्नतोदर चिमड़े स्वादरहित होते हैं। बीजों को ही निर्मली कहते हैं।

इसके वृक्ष मध्यप्रान्त, बंगाल, बिहार, दक्षिण भारत, मद्रास, सीलोन, और बर्मा में अधिक पाये जाते हैं।

नाम—

सं.–कतक, पयः प्रसादी [जल स्वच्छ करने वाले] चक्षुष्य इ.। हि. निर्मली, पायपसारी। म.–निर्मली, कुवी, राजराह, चिलबिज, चिल्हार, गजरा इ.। ब. निर्मल फल। अं. क्लियरिंगनट [Clearing nut] ले–स्ट्रिकनस पोटेटोरम

रासायनिक संघठन–

इसके बीजों में कुचला सत्व [स्ट्रिकनीन] नहीं होता किंतु कुछ ब्रूसीन [Brucine] और श्वेतसार [Albumin] होता है।

प्रयोज्याङ्ग—बीज फल और मूल।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, विशद, मधुर, तिक्त, कषाय, मधु, विपाक शीत वीर्य, कफ, वात शामक, रोचन, दीपक, लेखक, छेदन, मूत्रल, अधिक मात्रा में वामक तथा जीर्णाभिष्यन्द, शुक्रादिनेत्र रोग, अग्निमांद्यतृषा, दाह, कृमि, प्रमेह, अतिसार गुल्म, मूत्र कृच्छ्र आदि में प्रयुक्त होता है यह मूत्रगत शर्करा कम करता है।

यह अति प्राचीन काल से जल-शोधन कार्य में विशेष व्यवहृत होता है। जल पूर्ण पात्र में इसे थोड़ा घिस कर डाल देने से जल की समस्त गन्दगी नीचे बैठ जाती है जल निर्मल हो जाता है। इसी से इसे निर्मली कहते हैं।

(१) नेत्रगत विकारों पर–बीजों को पीसकर शहद एवं किंचित् कपूर मिला नेत्र में थोड़ा आंजने या नेत्र पर लेप करने से नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं। नेत्रों का जल स्राव बन्द होता है -[शा. सं.]। इसे पीस कर पानी में कुछ सेंधानमक के साथ मिला लेप करने से नेत्र-शुक्र रोग एवं प्रदाह की शांति होती है। अथवा–

सुखावती वर्ति--निर्मली, शंखनाभि, त्रिकटु, सेंधानमक, मिश्री, समुद्रफेन, रसौत, बायबिडंग, मनसिल और मुरगी के अण्ड़े के छिलके इनके समभाग चूर्ण को जल के साथ खरल कर बत्तियां बना लें । इस बत्ति को घिसकर मधु के साथ अंजन करने से तिमिर, पटल, कांच, अर्म, नेत्र शुक्ल, कण्डू क्लेद तथा नेत्रार्बुद प्रभृति नेत्र विकार नष्ट होते हैं। यह नेत्र के मल को दूर करती है--भैं. र. । यह चरक संहिता चि. अ. २६ का प्रयोग है ।

नेत्र में क्षत शुक्र हो, तो निर्मली के साथ शंखनाभी, तेंदु के फल की गुठली और चांदी (चांदी के वर्क या भस्म) इन्हें कांसी के पात्र में (या ताम्रपात्र में) स्त्री के दूध के साथ घिस कर आंख में लगाने से लाभ होता है ।

—बं. से.

निर्मली, हल्दी, आमला, छोटी पिप्पली और श्वेत सरसों इनके चूर्ण को एकत्र, त्रिकटु के क्वाथ में खरल कर बत्तियां बनालें। इसे जल में घिस कर लगाने से समस्त नेत्र रोग दूर होते हैं। --ग. नि.

अथवा—निर्मली १ नग, फिटकरी २ रत्ती, मेथी २१ दाने, लौंग ५ फूल, गौघृत चार आने भर, कडुआ तैल ८ आने भर और थोड़ा बासी जल लेकर एक पीतल की थाली को उलट कर उसके पेंदे पर तैल डालें तथा उसके ऊपर सभी युक्त द्रव्यों को रख अंगूठे के निकट की तलहथियों से घिसना प्रारम्भ करें । कज्जल जैसा हो जानेपर जल के छींटे दे देकर घिसें। बाद में और जल डालते हुए घिसें । इस प्रकार घिसते घिसते जब सुनहले रंग का अंजन हो जाय तब सितए में उठालें । उसमें पड़े हुए लौंग आदि द्रव्य भी उसी सितुए के एक कोने में उठाकर रखलें यह द्रव्य दुबारा अंजन बनाते समय फिर काम में आवेगा । उस समय तैल घी और बासी जल ही नया लेना पड़ेगा क्यों कि तलहथियों की रगड़ से द्रव्य मसाले के समान घिस कर कुछ चिकने हो जाते हैं। तथा दुबारा घिसते समय अंजनशीघ्र तैयार होता है। इसके अतिक्ति कई बारके घिसने योग्य मसाले भी मौजूद ही रहते हैं। अतः उन्हें फेंकना नहीं चाहिए ।

रात्रि के समय इसे नेत्रों में लगावें विशेष कष्ट की दशा में दिन में भी लगाया जा सकता है । नेत्र की धुन्ध, जाला, माड़ा, नाखूना, लीली, आंख आना, दर्द होना आदि नेत्रों के सर्व विकार दूर होते हैं । किंतु मोतियाबिन्दु पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता ।

--अनुभूत योग भा. २ से साभार

अंधत्व दूर करने के लिए लिए इसके बीज व शंख नाभी इन दोनों के महीन चूर्ण में कृष्ण सर्प की वसा (चर्बी) मिला खूब खरल कर सुरक्षित रखें । इसके आंजते रहने से अंधत्व में बहुत कुछ लाभ होता है ।

—व. गु.

(२) सुजाक एवं मूत्रकृच्छ पर--इसके ४ बीजों को पानी में पीस कर मिश्री मिला पिलावें । जलन दूर होती तथा पेशाब खुल कर होता है । ७ दिन सेवन से पूर्ण लाभ होता है । अथवा इसके ४ बीजों को पानी में पीस दही में मिला चीनी मिट्टी के प्याले में रख प्याले के मुख पर कपड़ा बांध कर रात भर ओस में पड़ा रहने दें। प्रातः इसे सेवन करें । इस प्रकार ७ दिन करने तथा पथ्य में दही चावल लेते रहने से पूर्ण लाभ होता है ।

अथवा इसके चूर्ण को दूध के साथ सेवन करें (यूनानी मत)

पुराने अतिसार पर ½ या १ बीज का चूर्ण पत्र में मिला पिलावें । ७ दिन में जीर्ण अतिसार बन्द होजाता है (यूनानी)

(४) प्रमेह पर-बीज १ तो. तक तक्र के साथ पीस कर शहद मिला सेवन करें । सर्व प्रकार के प्रमेह दूर होते हैं— (यूनानी)

(५) रक्तार्श पर बीजों को जला कर थोड़ी शक्कर मिला कर खिलाने से रक्तस्राव बन्द होता है-(यूनानी)

(६) उदर कृमि नाशार्थ बीजों को पानी में पीस नाभी के आस पास लेप करें । —(यूनानी)

(७) विद्रधि पर—बीज चूर्ण को शहद में मिला लेप करने से विद्रधि या व्रणों का शीघ्र परिपाक होता है।

फलों का गूदा--इसके पक्व फलों का गुदा इपीकाकुआना (Ipecacuanha) का उत्तम प्रतिनिधि है। यह अतिसार और फुफ्फुस शोथ (ब्रांकाइटिस) में उपयोगी

Scanned with CamScanner

है। मधमेह में भी यह उपयोगी माना जाता है। नाड़कर्णी।

मूल—इसके वृक्ष की जड़ का प्रयोग कुष्ठ रोग पर करते हैं।

नोट—मात्रा बीज चूर्ण १—२ मा. तक वमनार्थ ३ से ६ मा. तक।

निर्मुली (निराधारी)—देखो-अमरवेल नं. २।

निर्विष[1] (Kyllinga triceps)

मुस्तक [नागरमोथा] कुल (Cyperaeeae) के इसके क्षुपनागर मोथा के क्षुप जैसे; काण्ड १—६ इंच लम्बे; पत्र मालाकार, रोमश पतले पुंपुष्प दण्ड लम्बा प्रायः एकत्र ३ या कभी कभी १ होता है पुंव स्त्री केशर २—२। फल—लम्बाकार पीताम्र धूम्र वर्ण का अति चपटा $\frac{1}{16}$ इंच लम्बा होता है। वर्षाकाल में फूल और पश्चात् फल आते हैं। मूल—नागरमोथा के समान सुगन्धित, स्वाद में कड़ुआ। मूल—जमीन में चारों और फैली हुई ग्रंथि युक्त होती है।

यह भारत के पश्चिम प्रान्तों में, सिन्ध आदि देशों में तथा बंगाल में सर्वत्र पाया जाता है।

नोट—इसका ही एक दूसरा भेद निर्विषा [kyllinga Monocephsla]होता है। यह बंगाल, कुमायूं व सिकिम में बहुत पाया जाता है। इसका काण्ड-२-१२ इंच लम्बा रोमशः; पत्ते काण्ड की अपेक्षा छोटे; पुष्प-दण्ड १-१ या कहीं-कहीं २-३ एकत्र; फल—किंचित् लम्बा, डिम्बाकृति का, फीका लाल एवं धूम्रवर्ण का होता है। इसके क्षुप भी नागरमोथा के क्षुप जैसे ही होते हैं। फूल वर्षाऋतु में तथा फल शरदऋतु के अन्त में आते हैं। मूल—प्रायः जमीन में सीधी जाती है।

गुण धर्म में ये दोनों एक समान हैं।

नाम—

सं—निर्विष, निर्विषा। हि.— निर्विष, निर्विषी। [illegible] मुस्ता। बं.—श्वेत गोखुरी, गोखुरी, निर्विषा घास। [illegible] कायलिंगा ट्रायसेप्स।

प्रयोज्याङ्ग—मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, कफ वात एवं रक्त विकार नाशक है। [illegible] नागरमोथा के जैसे ही इसके गुण धर्म हैं। अधिक मा[त्रा] में यह वमनकारक है। यह सर्प विष प्रतिरोधक मा[नी] जाती है।

ज्वर और मधुमेह में तृषा निवारणार्थ—इसका [illegible] २॥ से ५ तोला की मात्रा में दिया जाता है।

इसके द्वारा सिद्ध किया हुआ तैल खुजली, [illegible] फुंसी आदि पर लगाया जाता है। यह तैल यकृत-[illegible] निवारणार्थ पिलाया भी जाता है।

इसका फांट या क्वाथ दाहनाशक, तृषाशामक, [illegible] कर तथा कुछ पौष्टिक है। इस क्वाथ से व्रण का [illegible]लन करने से यह शीघ्र अच्छा होता है।

बालकों के अपस्मार में इसकी जड़ को माता के [illegible] में घिस कर सुंघाने से लाभ होता है।

नोट—मात्रा-३ माशा तक। गौ दुग्ध के साथ दें।

निर्विषी-देखो जदवार। निलगिरी तैल-देखो यूकेलिप्टस में। निशोत्तर-देखो निसोथ।

निसोथ (Operculina Turpethum)

गुडूच्यादि वर्ग एवं अपने ही त्रिवृत्तकुल[2] (Convolvulaceae) की इस बहुवर्षायु (वर्षाकाल

[1] वास्तव में निर्विषा या निर्विषी जदवार को कहते हैं जिसका वर्णन जदवार के प्रकरण में देखिये यह उससे भिन्न मुस्तक [नागरमोथा] कुल का है।

[2] इस कुल की लता या क्षुप के पत्र एकान्तर, हृदयाकृति, उप पत्र रहित, पुष्प पत्र कोण से निकले हुए, नलिका या घण्टाकार के, पुष्प बाह्य कोष स्थायी, पुंकेसर ५; बीज कोष द्विकोष्ठी और बीज प्रायः ४ होते हैं।

Scanned with CamScanner

अधिक विस्तृत होने वाली) आरोही लता के काण्ड-सरल, त्रिकोणाकार, त्रिपक्षयुक्त (अतः संस्कृत में त्रिवृता[1]) श्वेत, रोमश, बहुत लम्बे, ऐंठे हुए (ताजा तोड़ने से दूध जैसा निर्यास युक्त);

पत्र—भिन्न भिन्न आकृति के कुछ अण्डाकार, कुछ कलमी शाक सदृश; किन्तु सब पत्र प्रायः सूक्ष्माग्र एवं असमभाव से खण्डित, २-४ इन्च लम्बे, ½ से ३ इन्च तक चौड़े तथा दूर दूर पर स्थित, ऊपर के भाग के पत्र लम्बे व पतले, निम्न भाग के प्रायः पान जैसे हृदयाकृति के पत्र वृन्त ¾ से १¾ इन्च लम्बे;

पुष्प—वर्षा ऋतु में, श्वेत या नील वर्ण के घण्टाकार १-२ इन्च लम्बे (श्वेत निवृत्त के पुष्प श्वेताभ या अरुणाभ श्वेत वर्ण के, कृष्ण त्रिवृत्त के नील वर्ण के), पुष्प बाह्यकोष के दल (पङ्खड़ियां) लगभग ½ इन्च लम्बे, मुलायम, चिकने, ५ भागों में विभक्त; आभ्यन्तर कोष श्वेत, दीर्घ, स्त्री केशर के भीतर अवस्थित ५ पुंकेशर; बीजकोष (फल या डोंडी), शीत ऋतु में इसकी डोंडी गोल, अन्डाकार १ से २ इन्च तक बड़ी, ४ चिकने काले बीजयुक्त होती है। यह डोंडी काले दाने की डोंडी से कुछ बड़ी, चिकनी, किंचित पीताभ श्वेत तथा कुछ रोमश होती है। (सूखने पर अन्दर के बीज भूमि में गिरकर वर्षाकाल में अंकुरित हो जाते हैं। जो बेल भूमि में पड़ी रहती है उसकी गांठों से शोरियां निकलकर जमीन में घुसकर लता रूप से वर्षा में बढ़ती हैं। वर्षा के प्रारम्भ में इसकी जड़ को उखाड़ कर यथास्थान रोपण किया जा सकता है।)

मूल—लम्बी, पतली, अरुणाभश्वेत, मांसल, बहुशाखायुक्त, कुछ गिरहदार होती है। इसकी छाल मोटी होती है तथा भीतर पतला काष्ठमय भाग होता है। इसी मूल या जड़ को निसोथ कहते हैं तथा यह औषधि कार्य में ली जाती है। भीतर काष्ठ दूर कर दिया जाता है। (गीली या ताजी अवस्था में तोड़ने पर इसमें से भी श्वेत निर्यास निकलता है)। स्वाद में यह प्रथम मधुर फिर कटु एवं अरुचिकर होती है।

यह लता भारत में प्रायः सर्वत्र जङ्गलों में ३ हजार फीट की ऊंचाई तक, खाई के किनारे, आर्द्र एवं छायादार भूमि में पाई जाती है। सीलोन, मलाया द्वीप, फिलिपाईन, मध्य अफ्रीका, मध्य अमेरिका आदि प्रदेशों में विशेष होती है। बाग-बगीचों में भी यह लगाई जाती है।

नोट नं० १—श्वेत और कृष्ण भेद से यह दो प्रकार की है। श्वेत निसोथ, जिसकी जड़ अरुणाभ श्वेत होती है तथा पत्र, पुष्प, फल आदि उपरोक्त वर्णनानुसार होते हैं। प्रायः अधिक सुलभता से पाई जाती है।

कृष्ण या काली निसोथ की जड़ श्यामवर्ण की, इसकी लता उक्त श्वेत की लता जैसी ही, किन्तु पत्र गोल, नोकदार अपेक्षाकृत छोटे, पुष्प कृष्णाभ बैंगनी रंग के; फल भी उक्त श्वेत निसोथ के फलों से छोटे होते हैं। यह काली निसोथ हीनगुण युक्त, तीव्र विरेचक तथा मूर्च्छा, दाह आदि उपद्रवकारी होती है।

निघण्टु ग्रन्थों में लाल निसोथ का भी उल्लेख है। सबके गुण धर्म आगे देखिये।

नोट नं० २—बाजार में एक और फटे हुये से इसके भूरे, या अरुणाभ भूरे रङ्ग के ½-२ इंच मोटे टुकड़े मिलते हैं। ध्यान रहे, इनमें मूल के टुकड़ों के साथ, काण्ड के भी टुकड़े मिले हुये रहते हैं, जिनमें विरेचक गुण न्यून होता है। कानपुर आदि कई स्थानों में निसोथ के ही काण्डों के टुकड़े विधारा के नाम से बाजार में बिकते हैं। आगे यथास्थान विधारा का प्रकरण देखिये। साथ ही साथ बाजारू निसोथ में दूधिया कलमी, गुलचांदनी (Ipomoea Bonanox तथा नूतन लेटिन नाम Calonyction Bonanox) की जड़ों के टुकड़े मिले हुए रहते हैं। निसोथ व दूधिया कलमी की जड़ें प्रायः एक जैसी ही होती हैं। दोनों की लता भी एक समान होती है। किंतु दूधिया-कलमी के काण्ड गोलाकार तथा निसोथ के धारीदार (त्रिधारा युक्त) होते हैं, इस लक्षण से बहुत कुछ पहिचान हो सकती है। दूधिया कलमी के फूल, फल और

[1] विदेशी नाम टरपेथ और तुर्बुद इसी के अपभ्रंश मालूम देते हैं।

Scanned with CamScanner

निसोत
OPERCULINA TURPETHUM MANSO.

बीज भी अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। इसकी डोंड़ी, बीज, फूल, पत्र और जड़ सर्प दंश में उपयोगी मानी जाती है।

नोट नं० ३–चरक के भेदनीय गण में, तथा सुश्रुत के अधोभाग हर व श्यामादि गणों में इसका प्रमुखता से उल्लेख तथा दोनों संहिताओं के अनेक स्थानों पर इसका प्रयोग पाया जाता है। चरक के कल्प स्थान अ. ७ में इसके कल्पों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

नाम–

सं.—त्रिवृत; त्रिभण्डी, त्रिपुटी, सरला, निशोत्रा, सुबहा, रेचनी इ.। हि.—निसोथ, पितोहरी, चितपऊस, नाकपतर, पनिलर इ.। म.—निसोत्तर, तेड़, फुटकरी, शेतवड़। गु.-नशोत्तर। बं—तेउड़ा, तिउरी, दूधकलमी। अं.—टर्पेथ रूट [Turpeth root], इंडियन जेलप (Indian Jalap)। ले.—ओपक्युलिना टर्पेथम्, आइपोमिया-टर्पेथम (apomvea turpethum)

रासायनिक संगठन–

जड़ की छाल में एक राल ५-१०% पाई जाती है, जिसका कुछ भाग ईथर में घुलनशील रहता है, जिससे दो प्रकार के टर्पेथिन-अल्फा टर्पेथिन (A. Turpethein) और बीटा टर्पेथिन का निर्माण होता है। ईथर में अविलेय राल को टर्पेथिन कहते हैं। यह एक ग्लुकोसाईड है जिसका संगठन जलापा में पाये जाने वाले जेलपीन (Jalapine) और कान्वालव्युलिन (Convolvulin) नामक सत्व के समान है। उक्त राल के अतिरिक्त इसमें कुछ उड़नशील तैल, वसायुक्त द्रव्य, अलब्युमिन, स्टार्च, पीतरंजक द्रव्य, लिगनिन (Lignin) नामक और लोहकान्त (Ferric oxide) पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—मूल की छाल।

संग्रह विधि—जिस दिन इसकी जड़ उखाड़नी हो, उस दिन उपवास रखकर, संयम से रहते हुये, स्वच्छ शुभवस्त्र धारण कर एकाग्रचित्त हो, प्रशस्त गुणयुक्त भूमि में उत्पन्न श्वेत या काली निशोथ की जड़ को शुक्ल पक्ष में उखाड़ें। ध्यान रहे जड़ वह लेनी चाहिये जो गहरी चली गई हो, चिकनी और सरल (सीधी) हो। फिर उसे फाड़ कर मध्य के काष्ठ भाग को दूर कर दें, तथा छाल को छाया शुष्क कर सुरक्षित रक्खें —च. क. अ. ७

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष, मधुर, कटु तिक्त, कषाय, कटु विपाक, उष्णवीर्य, कफ पित्तशामक, वातवर्धक (प्रसंगानुसार वातनाशक), लेखन, भेदन, रेचन [१] (रेचन कर्म में यह जलापा[२] व रेवन्द चीनी से भी उत्तम है। यह

[१] सुख विरेचक द्रव्यों में यह उत्तम है-यथा 'त्रिवृत् सुख विरेचनानाम्'- च. सू. २५। तथा बुद्धिमान चिकित्सकों ने विरेचन द्रव्यों में इसकी जड़ को श्रेष्ठ बतलाया है -यथा-विरेचन त्रिवृन्मूलं श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः —च. क. अ. ७

[२] विरेचनार्थ जिन रोगों में विशेषतः यूरोप में जेलप (जलापा) देने की प्रथा है, उन रोगों में भारतीय वैद्यगण निशोथ का उपयोग सफलतापूर्वक करते हैं। ध्यान रहे जलापा की अपेक्षा यह अल्प तथा कुछ विलम्ब से कार्य करती है। अतः इसकी मात्रा जलोदर आदि विशेष रोगों में अपेक्षाकृत अधिक देनी पड़ती है। कोई दुष्परिणाम इससे नहीं होने पाता।

Scanned with CamScanner

उदर एवं आंत्र में कुछ मरोड़ पैदाकर पीले रंग के दस्त लाता है, दूषित पित्त को निकालता है। मरोड़ न होने के लिये इसके साथ सोंठ, सौंफ आदि सुगन्धित द्रव्य तथा सेंधवनमक या मिश्री की योजना की जाती है। छोटी मात्रा में यह आंत्र एवं आमाशय की पाचनशक्ति को बढ़ाता है) तथा शोथ, प्लीहा, शोफोदर, पांडु, जीर्ण-आनाह, विबन्ध, अर्श, कामला, उदर रोग, उदावर्त्त, वात-रक्त, आमवात, कास, श्वास, अतिस्थूलता, पित्तज्वर, कण्डु, पामा, व्रण आदि नाशक है।

आमवात (गठिया), पक्षाघात, विमर्षात्मक-मनोविकार (Melanchollа) और कुष्ठ रोगों में इसका सेवन हरड़ के साथ हितकर होता है। अर्श में - इसका सेवन त्रिफला के क्वाथ या फांट के साथ किया जाता है। अर्श, उदर और गुल्म में इसकी शाक का उपयोग किया जाता है। अश्मरी में इसके चूर्ण के साथ इन्द्रजव का चूर्ण मिला दूध के साथ देते हैं। विद्रधि में तथा पित्तज गुल्म में इसे त्रिफला क्वाथ के साथ देते हैं। जंगम-विष के प्रतिकारार्थ इसके चूर्ण को गोघृत और चौलाई के रस के साथ सेवन कराते हैं। नेत्रपाक में-इसके ताजे मूल के रस के साथ समभाग उत्तम शहद मिला नेत्रों में २-२ बून्द डालने से नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं। सिर के जूं नाशार्थ इसके चूर्ण को कांजी में पीसकर लगाते हैं।

रेचनार्थ प्रयोग—

[अ] निसोथ, दालचीनी, तेजपात और कालीमिर्च समभाग चूर्ण बनाकर उचित मात्रा में खांड और शहद मिला कर सेवन से सुखपूर्वक विरेचन होता है। यह योग सुकुमार व्यक्तियों के लिये उत्तम है।

—सु. सू. अ. ४४

उक्त प्रयोग में प्रथम खांड और शहद के साथ निसोथ चूर्ण मिला कर उसमें चौथा भाग दालचीनी, तेजपात व मिर्च का चूर्ण मिला कर देना चाहिये। अथवा—

[आ] त्रिकटु, त्रिफला, इलायची, नागरमोथा, वायविडंग, और तेजपात १-१ भाग तथा लौंग सब के बराबर एवं निसोत सब से दुगनी लेकर चूर्ण बना लें। मात्रा—६ मा. तक, उष्ण जल के साथ पीने से रेचन होकर पेट साफ हो जाता है—यो. त.। अथवा-

[इ] इसका चूर्ण ४ तो, हरड़, धनियां या एरण्डमूल का चूर्ण १६-१६ तो. लेकर सब चूर्ण में समभाग गुड़ की चाशनी मिलाकर १० मोदक बना लें। [आधुनिक व्यवहारिक मात्रा के लिये २० मोदक बनाना ठीक है] १-१ मोदक उष्णजल के साथ लेवें। आधुनिक सुकुमार व्यक्तियों के लिये विरेचनार्थ यह उत्तम योग है।

च. कल्पस्थान। अथवा-

[ई] निसोथ २ भाग, पिप्पली ४ भाग, हरड़ ५भाग और गुड़ ११ भाग इन्हें मिश्रित कर [६ मा. से १ तो. तक की] गुटिकायें बना कर सेवन से रेचन होकर मल बन्ध आदि विकार दूर होते हैं। —भै. र.

सर्व साधारण रेचनार्थ निशोथ का चूर्ण बलाबल के अनुसार उष्ण पानी से लेते हैं। यदि प्रकृति में पित्ताधिक्य हो तो मुनक्का के क्वाथ के साथ लेवें। अथवा—

इसकी जड़ की छाल २॥ मा. पानी में पीस उसमें थोड़ी सोंठ और सेंधा नमक मिलाकर या शक्कर व काली मिर्च मिला कर सुखोष्ण पानी में मिला व छान कर देने से सरलता से २–४ दस्त हो जाते हैं। कोई पीड़ा नहीं होती।

आगे विशिष्ट योगों में त्रिवृतादिलेह देखें।

ऋतु के अनुसार—ग्रीष्म काल [ज्येष्ठ आषाढ़ मास] में रेचनार्थ निसोथ व मिश्री समभाग मिलाकर [मात्रा १ तो उष्णोदक से] प्रयुक्त करें।

वर्षा [सावन, भाद्रपद] में इसके साथ समभाग इन्द्रजौ, पिप्पली व सोंठ इनके चूर्ण में मिला शहद मिला द्राक्षारस [अंगूर का रस या मुनक्का के रस या क्वाथ] में आलोड़ित कर सेवन करें।

शरद ऋतु [आश्विन, कार्तिक] में इसके चूर्ण के समभाग धमासा, नागरमोथा, खांड, सुगन्धवाला, रक्तचन्दन व मुलैठी का चूर्ण मिला मुनक्का के शीतकषाय [या अंगूर रस] के साथ देवें।

हेमन्त [मार्गशीर्ष पौष] में निसोथ, चित्रक, पाठा, श्वेत जीरा, चीड़ का बुरादा, बच और सत्यानाशी की जड़ समभागका चूर्ण कर उष्ण जल से सेवन करें।

Scanned with CamScanner

सर्व ऋतुओं में–निसोथ,त्रायमाण, हाऊबेर, सातला, कटुकी, और सत्यानाशी की जड़ का चूर्ण समभाग गोमूत्र से ३ दिन भावित कर प्रयुक्त करें। यह योग सब ऋतुओं में दिया जा सकता है। स्निग्ध देह मनुष्य के मल दोष को दूर करता है।

—च. क. अ. ७

नोट–हेमन्त ऋतु में यद्यपि शीत के अत्यधिक होने से विरेचन अच्छा नहीं, तथापि आवश्यकता हो तो उक्त हेमन्तप्रयोग दिया जा सकता है। वही योग शिशिर ऋतु में भी प्रयुक्त हो सकता है क्योंकि हेमन्त और शिशिर में विशेष भेद नहीं होता अथवा शिशिर में उक्त सर्व ऋतुओं का योग देवें। वसन्त में वमन कर्म करना श्रेष्ठ होता है अतः उस समय विरेचन सामान्य नहीं कराया जाता है। अदि आवश्यकता ही हो तो उक्त सर्वर्तुक योग दे सकते हैं।

दोषानुसार विरेचनीय निसोथ के कल्प—वातदोष या वात रोग से पीड़ित व्यक्ति के लिये अन्य विरेचनीय द्रव्यों के रस या क्वाथ में भावना दिये हुए निसोथ के चूर्ण में सेंधा नमक और सोंठ का चूर्ण मिला अम्लरस के साथ सेवन करावें।

पित्त रोग से पीड़ित हो, तो ईख के पदार्थों के साथ या मधुर रसों के साथ अथवा दूध के साथ उक्त चूर्ण सेवन करें।

अथवा मिश्री या खांड ४ तो. में जल मिला चाशनी बनावें, फिर उसमें निसोथ चूर्ण ५ तो. मिला कर ठंडा हो जाने पर उसमें १६ तो. शहद मिला (उचित मात्रानुसार) सेवन करें। यह पित्तनाशक विरेचन है।

अथवा ईख के टुकड़े को खड़ा चीर कर उसके बीच में निसोथ के कल्क का लेप कर डोरे से बांध कर पुटपाक विधि से उसे ठीक पका कर ठंडा हो जाने पर रस निचोड़ कर पिलाते रहने से पित्त प्रकोपज रोगों की शांति होती है।

कफदोष से ग्रस्त हो तो निसोथ चूर्ण का सेवन गिलोय नीम और त्रिफला के क्वाथ में त्रिकटु और गोमूत्र मिला कर करें। अथवा—

निसोथ, विधारा, यवक्षार, सोंठ और पिप्पली इनका चूर्ण शहद के साथ चाटें। यह लेह सर्व प्रकार के कफ विकारों के लिये श्रेष्ठ विरेचन है।

—सु. सू. अ. ४४

साधारण मलावरोध हो तो निसोथ चूर्ण में समभाग शक्कर मिला, ४–६ मा. की मात्रा में दूध के साथ या सुखोष्ण जल के साथ प्रातः सेवन करना चाहिये।

आगे विशिष्ट योगों में त्रिवृत्तादि चूर्ण देखिए।

(२) ज्वरों पर—निसोथ,इन्द्रायण, कुटकी, त्रिफला और अमलतास के क्वाथ में यवक्षार मिला कर सेवन से विरेचन होकर समस्त ज्वर नष्ट होते हैं। —बं. से.

सन्निपात ज्वर हो तो निसोथ व पिप्पली के चूर्ण को घृत में भून कर समभाग गुड़ की चाशनी में मिला मोदक बना लें। उचित मात्रा में मण्ड के साथ सेवन करावें।

—ग. नि।

जीर्ण विषम ज्वर हो तो निसोथ चूर्ण में थोड़ी मात्रा में सोंठ चूर्ण मिला शहद के साथ सेवन करावें लीन विष जल जाता है, और ज्वर दूर हो जाता है।

—गां. औ. र.

(३) उदर रोगों पर—निसोथ ४-५ तो० तथा पटोलमूल, हल्दी, वायबिडङ्ग हरड़, बहेड़ा, आंवला १–१ तोला, कबीला २ तोला और नील का पञ्चांग ३ तोला सब का चूर्ण (१ से ३ माशा तक की मात्रा में) गोमूत्र के साथ पीने से जलोदर आदि उदर रोग तथा कामला, पांडु और शोथ का नाश होता है। इस योग का नाम पटोलादि चूर्ण है।

इसके सेवन से विरेचन हो जाने पर जांगल पशु-पक्षियों के मांस रस से नरम भोजन करें अथवा मण्ड और पेया पीकर ६ दिन तक त्रिकटु युक्त पकाया हुआ दूध पीवें। तदनन्तर पुनः चूर्ण का प्रयोग करें। इस प्रकार बार-बार तब तक उसका सेवन करें जब तक उदर रोग नष्ट न हो जाय। —च. चि. अ. १३

अथवा—त्रिवृताद्यं घृतम्—निसोथ का कल्क २४

Scanned with CamScanner

तो० घृत ६४ तो० दूध ६ सेर ३२ तो० और थूहर का दूध ४ तो० सबको एकत्र कर घृत सिद्ध कर लें। इसके सेवन से उदर रोग व गुल्म नष्ट होता है।

—वं० से०

उदर में आध्मान (अफरा) हो तो निसोथ, हरड़ और काली निसोथ का चूर्ण समभाग लेकर थूहर के दूध में घोटकर चना जैसी गोलियां बनालें। इसे गोमूत्र के साथ देवें। विरेचन होकर लाभ होता है।

—ग० नि०

पित्तोदर हो तो निसोथ के कल्क को दूध में मिला सेवन से विकृत पित्त निकलकर उदर रोग शांत होता है।

(४) जलोदर, शोथ तथा पांडु पर—निसोथ, गिलोय और त्रिकटु का क्वाथ कराने तथा रोगी को केवल दुग्धाहार पर रखने से जलोदर (विशेषतः पित्तज) में लाभ होता है। वैसे ही केवल पित्तज शोथ हो तो उक्त प्रयोग में त्रिकटु के स्थान में त्रिफला लेकर क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावें।

—वृन्द माधव

पांडु रोग में—निसोथ चूर्ण १० रत्ती और गोखरू चूर्ण ५ रत्ती दोनों को एकत्र खरल कर ३ मात्रा बना दिन में ३ बार गरम पानी से देवें।

(५) उदावर्त व विष्टम्भाजीर्ण आदि पर सुकुमार मोदक निसोथ चूर्ण १६ तो० तथा पिप्पली, पीपरामूल, सोंठ, कालीमिर्च, हरड़, आमला, चित्रक, अभ्रक भस्म, गिलोय, कुटकी का चूर्ण २-२ तो० एवं दन्ती मूल चूर्ण ६ तो० और खांड २४ तो० सबको एकत्र मिला आवश्यकतानुसार शहद के साथ घोंटकर (३ से ६ माशा तक के) मोदक बनालें।

इसके (उष्ण पानी से) सेवन करने से उदावर्त, वातज अजीर्ण (प्रायः सर्व प्रकार के अजीर्ण), आध्मान दूर होता है। विष्टंभाजीर्ण (मलावरोध) की यह उत्कृष्ट औषधि है।

—भै० र०

श्यामादिवर्ति—निसोथ (काली), पिप्पली, दन्ती मूल और नील की जड़ १-१ भाग, सेंधा नमक २ भाग तथा उड़द का आटा १० भाग सब के चूर्ण को एकत्र कर वत्ति बनाने योग्य गुड़ मिला गोमूत्र से पीस कर अंगूठे के बराबर की मोटी वत्ति बनावें।

इनमें से एक बत्ती को घी लगाकर रोगी के मल मार्ग में रखने से उदावर्त रोग नष्ट होता है।

—च० चि० अ० २६

(५) वातरक्त पर—निसोथ, विदारीकन्द और गोखरू समभाग जौकुट कर क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावें

—भै० र०

अथवा धारोष्ण दूध के साथ निसोथ चूर्ण मिलाकर पिलावें।

—भा० नि०

ये दोनों योग विशेषतः पित्त प्रधान वातरक्त में लाभकारी हैं।

(७) हृद्रोग [कफज] पर—निसोथ, कचूर, खिरेंटी मूल, रास्ना, सोंठ, हरड़ व पुष्करमूल इनके मिश्रित चूर्ण का अथवा गोमूत्र से सिद्ध क्वाथ का सेवन करावें। चूर्ण मात्रा १ से ४ माशा तक।

—भै० र०

(८) आमबात तथा विबन्ध युक्त अर्द्धाङ्ग वात पर—निसोथ चूर्ण ३ माशा, सेंधा नमक ४ रत्ती और सोंठ चूर्ण ४ रत्ती इन तीनों के एकत्र चूर्ण को कांजी के साथ पीने से विरेचन होकर आमवात दूर होता है।

—भै० र०

अर्द्धाङ्ग वात पर—निसोथ २ भाग, अमरवेल ३ भाग, सुरिंजान [कडुआ] १ भाग हरड़ ४ भाग, गुलबनफसा ४ भाग, सोंठ ३ भाग और सकमुनिया ३ भाग एकत्र चूर्ण करें।

मात्रा—५ रत्ती से ८ रत्ती तक देने से लाभ होता है।

—नाड़कर्णी

(९) रक्तपित्त पर—निसोथ, विधारा, पिप्पली और त्रिफला इनके समभाग चूर्ण में शक्कर और शहद मिला [शर्करा और मधु चूर्ण से दुगुना या समभाग लेवें]

मोदक बनालें। यह विरेचक मोदक ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त [सन्निपातज रक्तपित्त] और ज्वरनाशक है।

—सु० सू० अ० ४४

नोट—बंगसेन ने विधारा के स्थान में काला निसोथ लिया है। मोदक बनाते समय प्रथम शर्करा की चाशनी कर उसमें सब चूर्ण मिलालें। फिर शहद मिलाकर मोदक या पाक जमा दें।

अथवा केवल निसोथ चूर्ण को उचित मात्रा में खांड और शहद के साथ चटाने से भी रक्तपित्त में लाभ होता है।

(१०) व्रण, विद्रधि आदि पर—निसोथ [काली], त्रिफला, आमाहल्दी और लोध्र समभाग मिश्रित चूर्ण १० तो० का कल्क कर, १ सेर घृत और ४ सेर दूध मिला, घृत सिद्ध करलें। इसे लगाने से कोष्ठगत नाड़ीव्रण भी नष्ट होता है।

—बं० से०

व्रण शुद्धि के लिये निसोथ, दन्तीमूल, कलिहारी की जड़ और सेंधा नमक समभाग का महीन चूर्ण कर शहद मिला उसमें स्वच्छ महीन कपड़े की वत्ती भिगोकर व्रण या घाव के भीतर रखने से सन्धि और मर्म स्थानों के छोटे मुख वाले व्रण शुद्ध हो जाते हैं।

—वृ० मा०

रोगी को कुछ दिनों तक नित्य प्रातः निसोथ का चूर्ण त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन कराने से पुराने दुष्ट व्रण, नाड़ी व्रण, अर्बुद, अन्तर्विद्रधि, पित्तज गुल्म आदि सब दूर हो जाते हैं।

—गां० ओ० र०

नोट—मात्रा—चूर्ण १ से ३ या अधिक से अधिक ५ माशा तक। क्वाथ के लिए ५ माशा से १ तोला तक।

अधिक सेवन से आंत्र के लिए तथा उष्ण प्रकृति वालों को हानिकारक है। हानिनिवारक बादाम तैल, कतीरा, बबूल की छाल है। बादाम तैल के साथ लेने से इसकी रूक्षता दूर होती है। इसका प्रतिनिधि काला दाना, गारीकून है।

यह कफ को पतला कर निकाल देता है। शारीरिक स्थूलता भी इससे दूर होती है। इसे थोड़े थूहर के दूध में भिगो और सुखाकर जलोदर के रोगी को सेवन कराने से बहुत लाभ होता है। किन्तु अशक्त रोगी को इस प्रकार देना ठीक नहीं होता।

श्वेत निसोथ की रेचन शक्ति जलापा के समान और रेवन्दचीनी से अधिक है। इसमें विशेषता यह है कि स्वाद और गन्ध से जी नहीं मिचलाता। इसकी मात्रा जलापा से ५-७ रत्ती अधिक देनी पड़ती है। कालेदाने की अपेक्षा निसोथ में रेचनशक्ति कम है।

काला निसोथ—श्वेत निसोथ की अपेक्षा हीन गुण वाली, तीव्र रेचक, मूर्च्छा, दाह, मद, भ्रान्ति आदि उपद्रवकारी है। यथा सम्भव इसका प्रयोग नहीं करना ही उचित है। सावधानी से इसका उपयोग कफ प्रधान उदर रोग, ज्वर, शोफ, पांडु एवं प्लीहा वृद्धि आदि में किया जाता है।

लाल निसोथ—कसैली, मधुर, अनुरस युक्त, विपाक में चरपरी, बहुरेचनी, कफ पित्तहर, रूक्ष तथा वात कारक है। यह भी कफ प्रधान रोगों में उपयोगी है।

निसोथ के बीजों का तैल शीतल तथा त्रिदोष नाशक है।

विशिष्ट योग—

(१) त्रिवृत्तादि चूर्ण—निसोथ ३ भाग, त्रिफला ३ भाग, यवक्षार, पिप्पली और बायविडङ्ग १-१ भाग इनका चूर्ण शहद और घृत के साथ चाटने से अथवा गुड़ से गुटिका बनाकर सेवन से कफज एवं वातज गुल्म, प्लीहोदर, हलीमक (पांडु रोग का भेद) तथा अन्य रोगों का भी नाश होता है। यह विरेचन किसी प्रकार का उपद्रव नहीं करता।

—सु० सू० अ० ४४

इसकी मात्रा ३ माशा तक लेवें।

चूर्ण नं० २ (बाल हितैषी चूर्ण)—निसोथ, हरड़, छाया शुष्क पोदीने के पत्र १-१ तो० और अतीस ६ माशा इनका चूर्ण। मात्रा–१ रत्ती से १½ माशा तक बलाबल के अनुसार दिन रात में ४ बार तुलसी पत्र स्वरस और माता

Scanned with CamScanner

के दूध के साथ घुटी बनाकर पिलाने से बालकों के समस्त ज्वर, कास, वमन (दूध डालना), श्वास, अतिसार (हरे पीले दस्त होना), संग्रहणी तथा दन्तोद्भव जन्य सर्व विकार दूर होते हैं। —(धन्वन्तरि)

—श्री नत्थाराम गुप्त वैद्य
वरदहा [बहराइच] उ० प्र०

चूर्ण नं० ३—निसोथ चूर्ण ४४ तो०, त्रिकटु, त्रिफला नागरमोथा, विड़ नमक, वायविडङ्ग, छोटी इलायची के दाने, तेजपात का चूर्ण १-१ तो०, लौंग चूर्ण ११ तो० और खांड ६६ तो० इन्हें एकत्र खरल कर (मात्रा १ से ४ या ६ माशा तक भोजन के पूर्व ताजे जल के साथ) लेने से अम्लपित्त, मलबन्ध, मूत्रबन्ध, मूत्राघात, शूल, अर्श, प्रमेह, मूत्राश्मरी तथा मन्दाग्नि जन्य रोग नष्ट होते हैं। (केवल दूध और चावल का भोजन करने से शीघ्र लाभ होता है) । यह शास्त्रोक्त अविपत्तिकर चूर्ण है। इसे ३-४ मास तक निरन्तर सेवन करने से गुल्म रोग भी नष्ट होता है। प्रतिलोम वायु अनुलोम होता है।

—भैं० र०

चूर्ण नं० ४—निसोथ ८ तो० पिप्पली २ तो० दोनों का चूर्ण कर खांड ८ तो० मिलाकर रखें : मात्रा—३ माशा से १ तो० तक। शहद के साथ भोजन के पूर्व सेवन करने से मल विबंध, पित्त कफज रोग तथा उदावर्त दूर होता है। [यह शास्त्रोक्त नाराच चूर्ण है]।

(२) त्रिवृत्तादि गुटिका (श्यामादि वटी)—काली निसोथ की छाल और बड़ी हरड़ समभाग, महीन चूर्ण कर थूहर के दूध में १२ घंटे खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। १-१ गोली थोड़े गरम जल अथवा दूध के साथ प्रातःकाल लेवें। इसमें वायु की विपरीत गति नष्ट होकर अपचन, अफरा (मल व वायु संग्रह) दूर होता है। यह दीपन, पाचन, वातहर, रेचक, निर्भय एवं श्रेष्ठ औषधि है। ८-८ घंटे तीन दिन तक खरल कर ये गोलियां बनालें और उनको सोंठ के २० तो० चूर्ण में डालते जावें। इसके सेवनकाल में तले हुए पदार्थ, गरिष्ठ पदार्थ नहीं खाना चाहिए। —रसतन्त्रसार

गुटिका नं० २—निसोथ ७० माशा तथा केसर, श्वेत चन्दन ७-७ माशा, गोंद बबूल, गोंद सफेद और गुलाब पुष्प प्रत्येक १७½ माशा सबको कूट छानकर जल से टिकिया बना छायाशुष्क करलें। मात्रा ४½ माशा जल से लेवें। यह विबन्ध नाशक, विकृत पित्त को निकालने वाली तथा दिल की घबराहट और तृषा को नष्ट करती है।

—यूनानी चि० सा० (इसे कुरसजाफरान कहते हैं)

(३) त्रिवृत्तादिलेह—शक्कर (या खांड) तथा शहद १६-१६ तो० दोनों को कलईदार पात्र में थोड़ा जल देकर पकावें। अवलेह बनने योग्य चाशनी हो जाने पर उसे नये मिट्टी के बरतन में डालकर उसमें निसोथ चूर्ण १२ तो०, दालचीनी, तेजपात व कालीमिर्च १-१ तो० इनका सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिलाकर लेह बनालें।

—च० क० अ० ७

(नोट—इस योग के मूल पाठ में 'सक्षौद्रं शर्करां पक्त्वा' होने से उक्त विधि के अनुसार खांड के साथ ही मधु का पाक करने से कोई हानि की सम्भावना नहीं। यहां मधु का पाक योग की महिमा से है (चक्रपाणि)। तथापि जिन्हें शंका हो वे एक नवीन मृत्पात्र में प्रथम खांड की चाशनी कर नीचे उतार कर शीतल हो जाने पर निसोथ आदि द्रव्य और मधु मिला लेह बनालें। वास्तव में खांड के चतुर्थांश निसोथ चूर्ण डाला जाता है। उक्त विधि को श्री स्व० यादव जी त्रिकमजी आचार्य के सिद्ध-योग संग्रह से यहां संकलित किया है।)

यह धनीमानी पुरुषों के लिए उत्तम विरेचन है। मात्रा ½ से १ तो० तक प्रातः गरम जल से लेने से २-३ दस्त बिना कष्ट के हो जाते हैं।

(४) त्रिवृतादि घृत--निशोथ, मुलैठी, सुगंधवाला, नागरमोथा, अजवायन, काली निसोथ, विदारीकन्द, सौंफ पिप्पली, और कुड़ाछाल २-२ तोला इनका कल्क तथा घृत, दूध शतावर का रस १-१सेर तथा दही ४सेर सबको एकत्र मिलाकर घृत सिद्ध कर लें। (मात्रा-½ तो. से १ तोला तक) सेवन से समस्त आंत्र रोग (आन्त्रवृद्धि आदि), बीस प्रकार के प्रमेह, श्वास, कुष्ठ, अर्श, कामला, हलीमक-

Scanned with CamScanner

पांडु रोग, गलगण्ड, अर्बुद, विद्रधि, व्रणशोथ आदि रोग नष्ट होते हैं। --भै० र०

घृत नं० २--निसोथ, त्रिफला, दन्ती और दशमूल प्रत्येक ४-४ तोला जौकुट कर सबको चारगुने पानी में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर उसमें उतना ही दूध तथा उससे चौथाई घृत तथा उतना ही रेंडी का तेल मिला पकावें। स्नेह मात्र शेष रहने पर छान लें।

यह त्रिवृतादि मिश्रक स्नेह (मात्रा ½ तोला) में शहद मिला सेवन करने से कफज गुल्म, कफ वात जन्य विबन्ध, कुष्ठ, प्लीहा तथा उदर रोगों में एवं विशेषत: योनिशूलों में प्रयोग करना चाहिये। --च. चि. अ. ५

घृत नं० ३--निशोथ का कल्क २४ तोला, घृत ६४ तोला, दूध ६ सेर ३२ तोला और थूहर का दूध ४ तोला सबको एकत्र मिला घृत सिद्ध कर लें। (मात्रा ½ तो से १ तोला तक) सेवन से उदर रोग एवं गुल्म नष्ट होता है। --वं. से.

(५) त्रिवतादि मोदक (त्रिवदष्टक)--निशोथ ८ भाग, त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पिप्पली) दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोथा, वायविडंग और आमले का चूर्ण १-१ भाग तथा दन्तीमूल चूर्ण २ भाग सबके महीन चूर्ण को ६ भाग मिश्री की चाशनी में मिलावें। ठंडा हो जाने पर उसमें थोड़ा (½ भाग) सेंधा नमक तथा शहद मिलाकर मोदक बनालें।

इसे उचित मात्रानुसार (३ से ६ माशा) शीतल जल के साथ सेवन से बस्ति के रोग, तृषा, ज्वर, वमन, शरीर की कृशता, पांडु रोग और भ्रमादि रोग दूर होते हैं। यह नियन्त्रण (वातातपादि प्रतिषेध नियम रहित) विकार रहित तथा विषनाशक विरेचन है। पित्त के रोगियों को बहुत हितकर है। पित्त-कफज रोगों में इसे दूध के साथ भी दे सकते हैं। --सु. सू. अ. ४४

नोट--(वाग्भट कल्प. अ. २ में यह योग व्योषादि वटी नाम से दिया गया है, उसमें दंतीमूल नहीं है।)

मोदक नं० २--निसोथ, त्रिफला, त्रिकटु और खांड के समभाग चूर्ण को सबसे दोगुने गुड़ की चाशनी में मिला (६ माशा से १ तो. तक) मोदक बना लें। उष्ण जल के साथ सेवन से पार्श्व पीड़ा, अरुचि, कास और [illegible] का नाश होता है।

मोदक नं० ३--(माणिभद्र मोदक)--निशोथ १२ तो. वायविडंग की गिरी, आमला और हरड़ ४-४ तो. सबका महीन चूर्ण कर २४ तो. गुड़ में मिला ३० मोदक बनावें। प्रतिदिन १-१ मोदक (या ½ से ½ मोदक) सेवन करने से कास, क्षय, कुष्ठ, भगंदर, प्लीहा, जलोदर तथा अर्श का नाश होता है। यह वृद्धों के लिये भी हितकर है। इसमें किसी विशेष पथ्य पालन की आवश्यकता नहीं है। --चक्रदत्त।

नोट--विस्तार भय से चरक और भैषज्य रत्नावली के मोदक के प्रयोग यहां नहीं दिये जा सकते। ये प्रयोग बहुत लम्बे हैं।

(६) शर्बत-निशोथादि--निसोथ ३५ माशा, अफसन्तीन रूमी १७½ माशा तथा गुलाब पुष्प १७ मा. सबके जौकुट चूर्ण को २ सेर जल में उबाल कर छानकर १ सेर खांड मिलाकर शर्बत की चाशनी तैयार करलें।

मात्रा--२ से ४ तोला। यह आमाशय तथा यकृत के दोषों को दूर करता है--यू. चि. सा. (इस योग का नाम शरबत अफसनतीन दिया गया है।)

(७) त्रिवृत्तासव और अरिष्ट--निसोथ और जुलाफा १-१ भाग दोनों के चूर्ण को एक बोतल में भर उसमें १२॥ भाग मद्य (७० से ९० प्रतिशत वाली) मिला अच्छी तरह हिला कार्क लगा कर रखें। ७ या १५ दिन के बाद अच्छी तरह निचोड़ कर छान रखें। मात्रा १ से ८ माशा तक। प्रत्येक प्रकार के विष्टब्ध (कोष्ठबद्धता) के लिए यह उत्तम विरेचनीय है जलोदर में भी लाभकारी है। इससे ऐंठन मरोड़ आदि कष्ट जयपाल के सदृश नहीं होते। (मद्यासव)

अरिष्ट--निशोथ ६४ तोला कूट कर १५ सेर जल में पकावें। पौने चार सेर जल शेष रहने पर छानकर, संधान पात्र में भर, उसमें गुड़ २½ सेर और मुलेठी १० तोला चूर्ण कर मिला दें। यथा विधि सन्धान कर २ मास तक सुरक्षित रखें। फिर छानकर काम में लावें। मात्रा १ से ४ तोला तक, प्रातःकाल खाली पेट थोड़े जल

Scanned with CamScanner

साथ, रोगी की प्रकृति का विचार कर सेवन कराने से, उत्तम विवेचन होकर उदर रोग, संग्रहणी, गुल्म, शोथ, पांडु आदि दूर होते हैं। कोठा साफ हो जाता है बृहदासवारिष्ट संग्रह से। शेष आसवारिष्ट के प्रयोग इसी ग्रन्थ में देखिये।

निशोमली—देखो अंजुबार। नीबू-कमला—देखो नारङ्गी में। नीबू करना—देखो चकोतरा।

नीबू (कागजी) (Citrus Medica. Var. Acida)

फलादि वर्ग एवं जम्बीर या निम्बूक कुल [1] (Rutaceae) के इसके वृक्ष मध्यम कद के झाड़ी जैसे; पत्र छोटे गोल, किंचित लम्बे, किसी के छोटे, किसी के बड़े (मीठा या शरबती नीबू के पत्रों से कुछ छोटे); पुष्प-छोटे श्वेत सुगन्धित; फल-गोल, छोटे कच्ची दशा में हरे तथा पकने पर पीले पड़ जाते हैं [2]। फल का छिलका प्रायः कागज की तरह पतला होने से इसे कागजी नीबू कहते हैं। कच्चे फलों की अपेक्षा पके अच्छे पीले फल अधिक गुणकारी होते हैं। वर्षा ऋतु के अंत में पुष्प और फल आते हैं तथा फल प्रायः शीतऋतु के समाप्त होते होते पकने लगते हैं। दूसरे मौसम में ग्रीष्म के अन्त में पुष्प व फल आते तथा वर्षा काल में फल पकने लगते हैं।

इसके वृक्ष समस्त भारत में, विशेषतः हिमाचल प्रदेश, बंगाल, बम्बई, आसाम, वर्मा आदि में अधिक लगाये जाते हैं, तथा कलमें भी लगाई जाती हैं। इटली, अमेरिका, एशिया आदि देशों में इसकी प्रचुरता से उपज की जाती है।

बीज वपन या कलमें लगाने के पश्चात् ३ से ६ वर्ष में फल आने लग जाते हैं।

नोट नं० १—यह वर्षाऋतु का अमृत फल कहा जाता है। वर्षाकालीन विसूचिका आदि प्रायः समस्त विकारों को यह दूर करता है।

चरक आदि प्राचीन संहिता ग्रन्थों में बिजौरा (मातुलुङ्ग) और जम्बीर नीबू का तो वर्णन मिलता है; किंतु इस कागजी और मीठे नीबू का नहीं मिलता। ये बिजौरा के ही उपभेद होने से संभव है इनका स्पष्ट उल्लेख न किया गया हो।

इसके फल छोटे, बड़े तथा कई आकृति के होने पर भी गुणधर्म में प्रायः एक से ही होते हैं।

नोट नं० २—आधुनिक अनेक वैज्ञानिक प्रामाणिक खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि नीबू में जीवन पोषक खटाई के क्षाराभ तत्व (Vitalizing acid) दूसरे फलों की अपेक्षा अधिक प्रमाण में रहते हैं। अन्य फल प्रायः कच्ची दशा में खट्टे (या कसैले) रहते हैं, तथा पकने पर मीठे हो जाते हैं। तथा बहुत अधिक पकने पर उनमें कई प्रकार के एसिड़ जैसे एसिटिक, लेक्टिक, ब्यूटिक, आक्सिलिक आदि शरीर की जीवन क्रियाओं को नुकसान पहुंचाने वाले पैदा हो जाते हैं। नीबू की खटाई इस प्रकार की नहीं होती। नीबू अच्छी तरह पक जाने पर भी अपनी खटाई नहीं छोड़ता। इससे ऐसा मालूम होता है जैसे संसार की प्रयोगशाला में प्रकृति ने इसकी रचना विशेष तत्वों के मेल से की है। इसकी खटाई

---

[1] इस कुल के वृक्ष मध्यम आकार के-पत्र-एकान्तर, विभक्त दल पुष्प-नियमित, शाखाग्रोद्भूत पुष्पबाह्यकोष तथा आभ्यन्तर कोष के दल ४-५, पुंकेशर ८-१० मूल से संयुक्त, बीजकोष ऊर्ध्वस्थ होते हैं।

[2] नीबू की लगभग १०-११ जातियां पाई जाती हैं। इनमें से नीबू कागजी, बिजौरा (मातुलुङ्ग, बीजपूर), जम्बीरी-बृहत्जंबीरी, मीठा या शरबती, वन्य या जंगली तथा चकोतरा या कन्ना (करना) नाम की जातियां प्रसिद्ध हैं। कन्ना (करना) या चकोतरा का वर्णन पीछे चकोतरा के प्रकरण में देखिये।
नारङ्गी के एक भेद को या छोटी नारंगी को ही कमला लेबू कहते हैं। पीछे नारंगी का वर्णन देखिये।
शेष उक्त नीबुओं का वर्णन आगे के प्रकरण में दिया जाता है।
आधुनिकों ने इस कुल के (नीबू की जाति) वृक्षों को नारंगी कुल (Aurantiaceae) में माना है। नारंगी को लेटिन में Aurantium कहते हैं।

Scanned with CamScanner

(अम्लता) दूसरी खटाई से बिलकुल भिन्न प्रकार की होती है[1]।

—व. चं।

नाम–

सं —निम्बूक, निम्बुक। हिन्दी–नीबू-कागजी, लेमू, नेमू। म०—लिंबू, निंबोणी। गु–खांटा गोल, कागदी लींबू। बं.–पाति लेबू। अं.–लाईम (Lime)। ले.–साइट्रस मेडिका-एसिड़ा। साइट्रस बर्गामिया (Citrus-Begamia), लेमोनम एसिडम (Leo noam Acidum)

रासायनिक संघठन–

इस के रसमें ७ से १०%साइट्रिक एसिड, फास्फारिक एसिड, मेलिक एसिड, कार्बोज १०.६, प्रोटीन १.५, बसा १.०, तथा उष्णता उत्पादक शक्ति १७ कैलोरी प्रति औंस तथा विटामिन ए, २६, बी. ०१ और 'सी' ६३ मिलीग्राम प्रति १०० ग्राम के अनुपान से पाया जाता है। इनके अतिरिक्त कैल्शियम, पोटाशियम, मैंटानेसियम, क्लोटीन आदि के साथ साथ अन्य अम्ल-प्रतियोगी खनिज तत्व साइट्रेट्स, मेलेटस्, एवं टारट्रेट्स भी पाये जाते हैं। इसके १ औंस रस में ३२ ग्रेन साइट्रिक एसिड़ होता है।

फल की छाल में एक उड़नशील तैल, हेस्पेरिडिन (He peridin) नामक तिक्त स्फटकीय ग्लुकोसायड ५-८ प्रतिशत तथा क्षार ४ प्रतिशत पाया जाता है।

उक्त तत्वों का प्रमुख कार्य शरीर के विषों को नष्ट कर बाहर निकालना, रक्त को शुद्ध करना तथा त्वचा को नूतन आभा प्रदान करना होता है।

प्रयोज्याङ्ग—फल का रस, छाल [छिलका], बीज, मूल, पत्र और तैल।

गुणधर्म और प्रयोग—

लघु, अम्ल, मधुर विपाक, अनुष्णवीर्य, त्रिदोष शामक [किंचित् पित्तवर्धक], रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन पित्त सारक, तृष्णानिग्रहण, हृद्य, कृमिनाशक रक्त शोधक, कफ निःसारक, रक्तपित्त शामक, मूत्रल [मूत्रगत अम्लता निवारक], स्वेद जनन, ज्वरघ्न, मन्दाग्नि तथा उदर विकार, उदर कृमि, त्रिदोषज-शूल, वमन, पित्त प्रकोप, कंठ-रोग, अग्निमांद्य, अजीर्ण, विबन्ध, व विकार वातरक्त, गुल्म, आमवात [नवीन], कास, त्वग्विकार दाह, विषूचिका आदि पर उपयोगी है। इसमें कीटाणु नाशक एवं सड़ान को दूर करने का उत्तम गुण है।

---

[1] इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में एक ग्रामीण कहावत है—"
खाय-कागजी नीबू को जो तुलसी बिरवा रोपे। वैद्य पंसारी करम को झंखें, घर मां मौत न कोपे।
अर्थात्–कागजी नीबू के प्रतिदिन सेवन करने और तुलसी पौधा घरमें लगाने से वैद्य और पंसारी तो अपने भाग्य को कोसते ही हैं, साथ ही घर में मृत्यु का भी प्रकोप नहीं होता।
नीबूओं में कागजी नीबू सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। इस नीबू की पहिचान है, पतला छिलका, ऊपर बारीक बारीक अगंख्य छेद, उङ्गली गड़ाने से दब जाना तथा अन्य नीबू की अपेक्षा अधिक कोमल होना।

Scanned with CamScanner
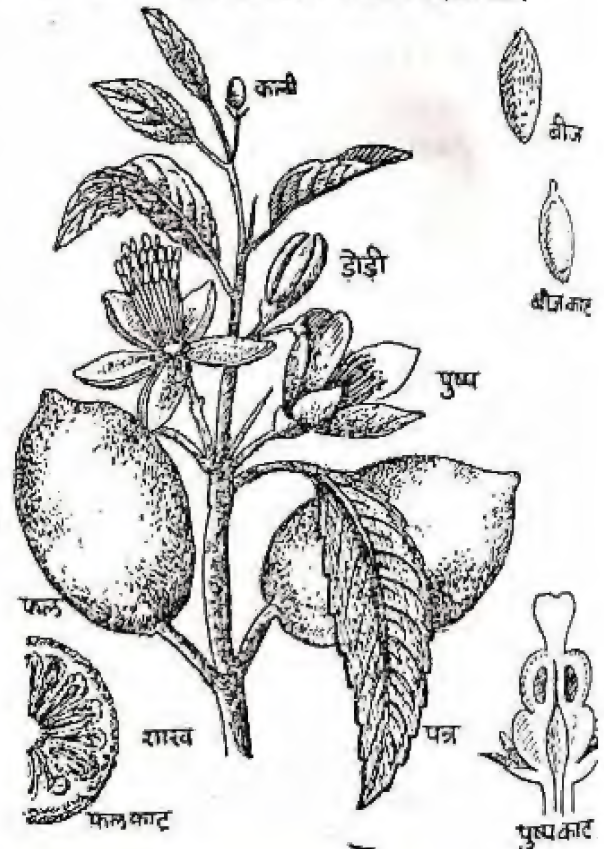
नोट—शारीरिक क्रिया प्रणाली पर इसका प्रभाव—शरीर के अन्दर से विष को निकालने के जितने मार्ग हैं, उन सबके द्वारा यह शरीर के अन्दर एकत्रित दोषों [Waste poisons] को बहुत खूबी के साथ निकाल देता है। मूत्रपिण्ड और चर्म छिद्रों के द्वारा यह अनेक प्रकार के दूषित पदार्थों को बाहर निकालता है। यकृत की शुद्धि के लिए इसके समान उत्तम औषधि आज तक दूसरी कोई भी दृष्टिगोचर नहीं हुई है। अजीर्ण, छाती में जलन, अतिसार, हैजा, खट्टी डकारें आना, कफ, जुकाम, श्वास इत्यादि रोगों में यह लाभप्रद है। किंतु इसे सर्वदा अकेला ही [जल, अन्य फलों के रस आदि के अतिरिक्त] अन्य खाद्य पदार्थों के साथ नहीं लेना चाहिए। तथा खाली पेट ही लेना ठीक होता है।

जब खाली पेट में इसका रस जाता है तब सर्व प्रथम यह उन कृमियों को नष्ट करना शुरू करता है जो आमाशय में बादी या उबाल [Fermentation] पैदा करते हैं। फिर यह यकृत और लिम्फेटिक सिस्टिम [Lymphatic System] तक पहुंच कर वहां एकत्रित दुष्ट पार्थिव द्रव्यों [Earthy types of waste matter] को [जो संधिवात गठिया आदि रोगों को पैदा करते हैं] छिन्न-भिन्न कर डालता है। इस प्रकार इसका रस उदर के कृमियों की दूषित क्रिया को रोककर तथा अवांछित दुष्ट पार्थिव द्रव्यों को नष्ट भ्रष्ट कर रक्त को शुद्ध करता एवं दुष्ट पदार्थों के संसर्ग से रक्षा करता है।

तथा साथ ही साथ पाचन क्रिया को शुद्ध कर रक्तान्तर्गत अम्ल प्रतियोगी लवणों के साथ मिलकर अम्लता-रहित कार्बोनेटस [कारबोनिक एसिड और दूसरे तत्वों का मिश्रण] बनता है। जब रक्त घूमता घूमता फेफड़ों में जाता है तब यह कार्बोनेटस, कारबोनिक एसिड़ को श्वासोच्छ्वास के द्वारा शरीर के बाहर फेंक देता है और शरीर में केवल अम्ल-प्रतियोगी तत्व शेष रह जाते हैं। ये तत्व शरीरान्तर्गत यूरिक एसिड, लेक्टिक एसिड आदि अनेक प्रकार के जहरी एसिडों को [जो दूषित पाचन क्रिया द्वारा उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के विकार पैदा करते रहते हैं] बेकार कर देते हैं।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दूषित एसिडों पर विजय प्राप्त करने के लिये तथा शरीर स्वास्थ्य के लिये रक्त में अम्ल प्रतियोगी तत्वों का होना नितांत आवश्यक है। नीबू का रस रक्त में उन्हीं अम्ल-प्रतियोगी तत्वों को पैदा करता है। [व. च.]

सेवन विधि—नीबू को छिलके समेत ही निचोड़ कर रस निकालना ठीक होता है। हो सके तो फलों के रस निष्कासन मशीन में दबाकर निकाल लेवें। यह मशीन से निकला हुआ रस उत्तम गाढ़ा होता है। उसमें थोड़ा जल व शहद मिला देने से उत्तम पेय तैयार हो जाता है। इसमें छिलके का भी रस आ जाने से वह विशेष कृमिनाशक एवं हृद्य गुण विशिष्ट हो जाता है।

ध्यान रहे औषधि कार्यार्थ सेवनीय रस के लिये उत्तम परिपक्व नीबू ही लेना चाहिये। कच्चे या अर्धपक्व या पाल में डाल कर पकाये हुए नीबू अपायकारक होते हैं। उक्त मशीन के अभाव में नीबू को थोड़ा गरम कर (बफा कर) रस निकाल लेना और भी उत्तम है। गरम करने से नीबू के ऊपर का छिलका तथा भीतर का मावा एकदम मुलायम होकर उनमें रहने वाला सुगन्धित तैल एवं कटु पौष्टिक लवण सरलता से रस के साथ निकल आते हैं।

यदि नीबू को तुरन्त व्यवहार में न लाना हो तो शीत जल में रखने से वह सूखता नहीं तथा बहुत दिनों तक ताजा बना रहता है। रस सेवन करते समय उसके बीजों को दूर कर देवें। यह बीज उदर या आन्त्र में जाकर आन्त्र पुच्छ दाह (अपेंडिसायटिस) का कारणीभूत हो सकता है।

नीबू का रस अन्य फल फलों के रस के साथ लेना और भी उत्तम होता है। इसे नारंगी के रस के साथ लेने से स्वाद व सुगन्ध में उत्तम परिवर्तन हो जाता है। नारंगी आदि अन्य फलों के अभाव में, नीबू के रस को स्वच्छ जल में मिलाकर व्यवहार में लावें। केवल नीबू का रस चूसना दाह कारक हो जाता है।

नीबू रस का सेवन प्रातः खाली पेट या सायंकाल करना ठीक होता है। दोपहर तथा भोजन के बाद इसे लेना हानिकर है।

Scanned with CamScanner

कोई हलका जुलाब लेकर, कोष्ठ शुद्धि होने के बाद इसका सेवन विशेष लाभप्रद है। पाचन प्रणाली की दूषित अवस्था में निराहार ही इसका सेवन लाभकारी है।

साधारण स्वस्थ दशा में जो आहार या भोजन अम्ल प्रतियोगी पाचन क्रिया के ऊपर निर्भर रहता हो उसके साथ कभी भी नीबू नहीं लेना चाहिये। दाल के, साग के साथ तो कुछ ठीक है किंतु चावल, घृत और रोटी के साथ इसका संयोग ठीक नहीं,कफ प्रकोपक होता है। भोजन के पूर्व अदरक औरसेंधानमकके साथ इसका रस मिलाकर लेने से पाचन क्रिया का सुधार, क्षुधा वृद्धि तथा जिह्वा व कंठ की शुद्धि होती है। जहां तक हो सके भोजन के साथ इसका सेवन ठीक नहीं है भोजन के पश्चात लेवें। इसके रस के साथ सम भाग अदरख, मूली और प्याज का रस लेकर आधा किलोग्राम भर लें। तथा एक शीशी में डाल कर ऊपर से ६० ग्राम पांचों नमक और डाल दें, और ७ दिन तक बन्द कर रखें। फिर भोजन के पश्चात ६ ग्राम की मात्रा में समान जल मिला सेवन करें। अनेक गुण और निराला स्वाद इसकी विशेषता है।

—श्री मुन्नी लाल भारद्वाज
(आयु. विकास से साभार)

आगे विशिष्ट योगों में चटनी नं० २ देखें।

ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा शीत ऋतु में इसका सेवन कम मात्रा में करना चाहिए। क्योंकि शीत काल में पसीना अधिक न होने से शरीर के अन्दर से निकलने वाले विषैले पदार्थ पूर्ण रूप से बाहर नहीं आ सकते।

रस के लिये उत्तम परिपक्व ताजे नीबू की प्राप्ति सदैव नहीं होती। अतः रस को सुरक्षित रखने के लिये इसे बोतल में भर कर थोड़ा बादाम का तैल डाल दें तो यह रस चिरकाल तक ठीक रहता है। आवश्यकता पड़े तब बादाम तैल को हटा कर रस को व्यवहार में लावें, और पुनः बादाम तैल ऊपर डाल कर बन्द करके रख छोड़ें। अथवा उत्तम सरसों का तेल १ पाव बोतल में डाल कर उसमें ½ सेर तक नीबू रस भर कर रख दें। वर्षों तक सुरक्षित रहता है। तैल भी खराब नहीं होता यह तैल खुजली आदि चर्म रोगों पर लगाने के काम आ सकता है।

रस का सेवन निम्न प्रकार से विशेष लाभदायक होता है—

१ या १½ पाव सुखोष्ण जल में २ से ४ नग नीबू का रस मिला कर स्वाद से, प्रातः निराहार पीवें। इच्छानुसार शुद्ध मधु भी इसमें मिला सकते हैं। नियमित रूप से कुछ मास तक इसके सेवन से जीर्णातिजीर्ण रक्त विकार समूल नष्ट हो जाते हैं कोष्ठबद्धता, अरुचि, मन्दाग्नि तथा मेदरोगभी दूर होता है। साथ ही बीच बीच में उपवास या लंघन भी करते रहना चाहिए। अम्ल पित्त की दशा में यदि यह विकार नया हो,आमाशय में क्षत,विद्रधि आदि न हो तो दोपहर को भोजन के २०–३० मिनट पूर्व १ नीबू के रस को २० तो. जल में निचोड़ उसमें ४ मा. शक्कर मिला पिलाते रहने से लाभ होता है। ध्यान रहे भूल कर भी भोजन के बाद पिलाने से हानि होती है।

नीबू-चिकित्सा (लेमन क्योर Lemon cure)—

(१) वैज्ञानिकों ने अन्वेषण कर सिद्ध किया है कि इसका रस नियमपूर्वक लेने से संधिवात व आमवात में लाभ होता है। यह बीमारी शरीर की संधिओं में पैदा होने वाले एक प्रकार के जंतुओं से उत्पन्न होती है। ये जंतु जोड़ों में कुछ दिन रहते रहते एक प्रकार का विष पैदा कर कई प्रकार के रोग पैदा करते हैं। नीबू में उन जंतुओं को नष्ट करने की शक्ति है। इन रोगों में नीबू का प्रयोग वर्धमान पिप्पली के समान करना चाहिए प्रथम दिन २ दूसरे दिन ३ इस क्रम से १२ नीबू तक बढ़ावें। नीबू का रस प्रातः निराहार एक गिलास सुखोष्ण जल में मिला पी वें। २-२ दिन के बाद १-१ नीबू बढ़ाते हुए १२ या २० नीबू का सेवन करें। इससे कई प्रकार के चर्म विकार भी दूर हो जाते हैं। पश्चात १—१ नीबू प्रतिदिन घटावें। यदि पूर्ण लाभ न हो तो फिर से इसी प्रयोग को करें। इस तरह कम से कम २०० नीबू पूरे कर देना चाहिए। इस विधि को अंग्रेजी में लेमन क्योर कहते हैं। यदि आमाशय में किसी प्रकार की खराबी न हो तो यह प्रयोग पूर्ण लाभदायक होता है। यदि आमाशय मलादि से दूषित हो तो भोजन बन्द कर सिर्फ नीबू के

Scanned with CamScanner

रस ही लेना चाहिए। किंतु ध्यान रहे नीबू अच्छा पका हुआ हो तथा उसका रस कांच या कलई के पात्र में निकाला जावे। मैंने एक संधि वात के रोगी पर इसका प्रयोग किया था, उसको पूर्ण लाभ हुआ परन्तु नीबू के रस में द्विगुण कुनकुना पानी और थोड़ा सेंधा नमक मिला कर पिलाया था। —श्री सुन्दरलाल जैन वैद्य (आयु. विकास से)

सन्धि वात पर--१ नीबू के रस में थोड़ा लहसुन का रस मिला कर दिन में २-३ बार देने से भी लाभ होता है।

(२) क्षय तथा कैंसर की व्याधि में भी उक्त क्रम से दिया जाता है। प्रथम नीबू को थोड़े ठण्डे जल में रख गरम करते हैं तथा मुलायम हो जाने पर उसे चूस लेते हैं। यदि चूसा न जाय तो रस निकाल कर शहद मिला पीते हैं। प्रथम दिन एक नीबू से प्रारम्भ कर १-१ नीबू रोज बढ़ाते हैं। इस प्रकार १२ नीबू तक बढ़ाकर १-१ घटाते हैं। यदि १२ नीबू तक बढ़ाते हुए कुछ घबराहट हो तो ८ ही नीबू तक बढ़ाकर घटाना शुरू कर देते हैं।

(३) संक्रामक व्याधियों पर—इसके ३ माशा रस में काली मिर्च २ दाने पीस कर मिलायें तथा २½ तो० जल मिला थोड़ा गुनगुना कर प्रातः सेवन करावें। हैजा, टाईफाईड, शीतला, प्लेग आदि भयङ्कर संक्रामक व्याधियों का संक्रमण नहीं होने पाता।

(४) ज्वरों पर–मलेरिया, इन्फ्लुएन्जा आदि ज्वरों पर इसका रस और जल समभाग एक शीशी में भरें। दूसरी शीशी में पोटाशियम बाई कारबोनेट १ ड्राम और जल ३ औंस भरें। फिर एक बड़ी चम्मच भर दोनों में से अलग-अलग लेकर प्याले में डाल तुरन्त पिला देवें। दिन में ३ बार यह प्रयोग करें।

जाड़ा लगकर आने वाले शीत ज्वर में खाने का चूना १० ग्राम और जल २५ ग्राम शीशी में या किसी कांच के पात्र में डाल कर ऊपर से १ नीबू का रस मिलादें। चूना नीचे बैठ जाने पर, ऊपर का जल धीरे से नितार और छानकर ज्वर आने से १ घण्टा पूर्व यह मात्रा रोगी को पिलावें। (आ० विकास)

तृतीयक, चौथिया या प्रतिदिन आने वाले नियतकारी ज्वर पर निम्न प्रयोग भी लाभकारी है —

ज्वर आने से १ या १½ घण्टा पहले एक नीबू चीर कर १ टुकड़े पर काली मिर्च, सेंधा नमक और फिटकिरी का फूला समभाग तीनों का चूर्ण लगभग ४-४ रत्ती बुरक कर (आग पर थोड़ा गरम कर) चुसावें। फिर आध घण्टे बाद दूसरे टुकड़े पर उक्त प्रकार से बुरक कर चुसावें। उसी दिन से ज्वर निकल जाता है। अन्यथा दूसरे दिन फिर उसी प्रकार चुसावें। मौसमी ज्वर के लिये बड़ी ही गुणकारी औषधि है।

प्रत्येक मौसमी ज्वर के लिये लमोनेड–५-६ नीबू लेकर छिलका उतार कर इनकी आड़ी फांकें काटलें। इनको किसी चीनी के पात्र में डाल ऊपर से ३० तो० खूब खौलता हुआ जल छोड़दें। ठण्डा हो जाने पर इसमें आवश्यकतानुसार मिश्री या खांड मिलायें। बस लेमोनेड तैयार है। रोगी जितना चाहे पीवें। मौसमी ज्वर तथा गरमी के ज्वर के लिये भी उत्तम रुचिकर पेय है। इससे वमन, तृषा, व्याकुलता तथा दस्त आदि का निवारण होकर ज्वर भी दूर हो जाता है। —फलांक से

मौसमी ज्वर में इसके २॥ तो० रस में समभाग चिरायता का क्वाथ मिला थोड़ा-थोड़ा पिलाने से भी लाभ होता है।

मलेरिया पर—दुग्ध रहित उग्र काफी बनाकर उसमें इसका रस मिलाकर पिलाते हैं। अथवा—

एक बड़ा कागजी नीबू लेकर ४-५ टुकड़े कर मिट्टी के पात्र में ३ गिलास पानी के साथ इन टुकड़ों को डाल कर मंद आंच पर पकावें। १ गिलास पानी शेष रहने पर उतार कर छान कर ठण्डा कर ज्वर आने के पूर्व पिलावें। यह प्रयोग कुनाइन से भी अधिक लाभकारी है। —धन्वन्तरि से

इन्फ्लुएंजा (वात श्लेष्म ज्वर) में—एक गिलास हलके गरम जल में एक नीबू का रस, थोड़ा सेंधानमक और त्रिकटु चूर्ण मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

ज्वर के अत्यधिक ताप, हृदय की घबड़ाहट, वमन, और तृषा के लिये शक्कर मिश्रित नीबू के रस की शिकंजी निःसंकोच दी जाती है।

Scanned with CamScanner

पैत्तिक ज्वर हो, तो नीबू के टुकड़े कर कालीमिर्च और मिश्री का चूर्ण बुरक कर चुसावें । कफ-वात ज्वर हो, तो मिश्री के स्थान पर सेंधानमक मिलावें ।

(५) अतिसार विसूचिका पर—अपचन जनित अतिसार हो, थोड़े थोड़े दस्त बार-बार होते हों, तो इसका स्वादिष्ट शर्बत (आगे विशिष्ट योगों में देखें) अथवा—इसके रस में प्याज का रस थोड़ा ठंडा जल मिलाकर पिलावें । यदि दस्त के साथ ही वमन भी हो रही हो, तो स्वादिष्ट शर्बत में कपूर मिलाकर १-१ घंटे पर ३-४ या अधिक बार पिलावें ।

अतिसार में इसके रस के साथ पानी मिला बस्ति (एनिमा) भी दी जाती है । नीबू काटकर उस पर थोड़ा नमक और त्रिकटु चूर्ण डालकर आग पर पका चूसते हैं । त्रिकटु चूर्ण के स्थान में हिंग्वाष्टक चूर्ण डालने से और भी लाभ होता है ।

कफोत्पत्तिकारक अवयवों के विकार जन्य अतिसार में इसका रस बहुत उपयोगी है । बिल्कुल निराश हुए रोगी को भी दिन भर में, इसका रस ३० तोला तक की मात्रा में देने से आश्चर्यजनक परिणाम होता है । [नाड़कर्णी] आंव तथा ऐंठन हो, तो ½ नीबू का रस धारोष्ण दूध २० तोला तक में निचोड़ कर सेवन करें । आंव बाहर निकलती, ऐंठन, जलन एवं दस्तों का आना बन्द होता है ।

विसूचिका पर उक्त प्याज का रस मिश्रित प्रयोग या इसके शर्बत में कपूर मिश्रित प्रयोग लाभकारी हैं । अथवा—

इसका रस १ भाग, पोदीना हरा और प्याज का रस ½-½ भाग सबका मिश्रण आध-आध घंटे से देवें । रामबाण है ।

हैजा की प्यास पर—२ तोला सेंधानमक को ४ सेर जल में पकावें । आधा जल शेष रहने पर, उतार कर छान लें । तथा ठंडा हो जाने पर नीबू रस ३ माशा डाल कर मिट्टी के पात्र में भर रखें । इसके पिलाते रहने से तृषा शांत होती है ।

विसूचिका [हैजा के प्रतिकारार्थ]—दो नीबू का रस प्रतिदिन लेते रहने से हैजा होने का भय नहीं रहता ।

[६] अजीर्ण, शूल, वमन और मलावरोध पर—चीनी मिट्टी के बड़े पात्र में नीबू का एक स्तर जमा कर उस पर सेंधा या साधारण नमक का स्तर, उस पर फिर नीबू का स्तर, उस पर नमक, इस प्रकार भरकर, दबा कर पात्र का मुख बन्द कर रख दें । कुछ दिनों में नीबू के गल जाने पर, आधा या एक नीबू का सेवन करने से अजीर्ण एवं तज्जन्य विकार दूर होकर, अग्नि प्रदीप्त होती तथा अरुचि दूर होती है । अथवा—आमवातनाशक शुद्धगन्धक, सेंधानमक व सोंठ समभाग पीसकर नीबू रस की भावना देकर चना जैसी गोलियां बना लें । आवश्यकतानुसार १ से ३ गोली गरम जल से लेवें । अजीर्ण, अफरा, शूल व मंदाग्नि दूर होती है ।

भोजन के पूर्व अदरख के महीन टुकड़े ३ माशा तथा सेंधानमक १ माशा के साथ नीबू का रस भाकर सेवन करते रहने से अग्नि दीप्त होती, अजीर्ण दूर होता, तथा वात, कफ, मलबद्धता, आमवात का नाश होता है ।

वमन—आमाशय के दूषित अन्न विकार से उत्पन्न वमन की शांति के लिये नीबू को चीरकर उस पर शक्कर अथवा कालीमिर्च का चूर्ण डालकर चुसावें । तृषा अधिक लगती हो तो केवल शक्कर ही डालकर चुसावें ।

अथवा—इसका रस और जल १-१ ड्राम के मिश्रण में शक्कर २ ड्राम मिलाकर पिलावें । इससे अजीर्ण मंदाग्नि भी दूर होती है । अथवा—नीबू रस ३ माशा नितरा हुआ साफ चूना-जल व मधु-१-१ तोला मिश्रित कर २०-२० बून्द की मात्रा में, ३ बार देने से अजीर्ण, पेट दर्द व वमन दूर होती है । जो बालक बार-बार दूध वमन करता है उसके लिये यह योग अमृत समान है । बच्चे को १० बूंद की मात्रा में देवें ।

अथवा—एक नीबू के रस में किसमिस के १५ दाने भिगोकर प्रातः उसका रस निचोड़ कर पीवें ।

मलावरोध पर—इसका रस १ तोला जल १० तोला के मिश्रण में १ तोला शक्कर मिला प्रतिदिन रात्रि के समय पिलाते रहने से कुछ दिनों में नियमित शौचशुद्धि

Scanned with CamScanner

होती तथा जीर्ण मलावरोध भी दूर हो जाता है ।

—गां अ. र. ।

विशिष्ट योगों में चटनी का प्रयोग देखें।

(७) रक्तपित्त या स्कर्वी[1] (Scurvy) पर—इसके १ भाग रस में ८ भाग जल और थोड़ी शक्कर मिला दिन में एक बार पिलाते हैं। इस प्रयोग को इस प्रमाण में लेवें।

अच्छे पके ताजे नीबू का रस २॥ तोला में २० तोला जल और १३/४ तोला शक्कर मिला सुबह शाम सेवन करावें। साथ ही साथ इसके रस में समभाग जल मिला कर कुल्ले कराते रहें। [जमालगोटा प्रधान जुलाब की उग्रता में तथा रेंडी तैल के सेवन से उत्पन्न मुख के बेस्वादपन में भी ये कुल्ले लाभकारी हैं]—अथवा—

नीबू का ताजा रस ४ औंस, क्लोरेट आफ पोटास ६० ग्रेन, कुनैन ६ ग्रेन, शक्कर २ औंस और पानी ४ औंस का मिश्रण २ औंस की मात्रा में दिन में ३-४ बार लेने से स्कर्वी रोग में विशेष लाभ होता है। पथ्य में—नीबू, अनार, जामुन, आवला, सन्तरा, टमाटर आदि फल तथा हरी साग सब्जी विशेष मात्रा में सेवन करना चाहिये।

ऊपर प्रयोग नं० ४ के ज्वर प्रयोगों में जो चूने के पानी और इसके रस मिश्रण का प्रयोग है वह भी स्कर्वी में विशेष लाभप्रद है।

सर्वसाधारण रक्तपित्त रोग पर—३ बड़े (कागजी) नीबू के रस में गुड़हर के ७ पुष्प १२ घंटे तक भिगो रखें। फिर उसमें गुलाब और केवड़ा का अर्क १०-१० तोला तथा मिश्री ८ तोला, कांच की बोतल में भर डांट मजबूती से बन्द कर, मुख तक जल में रख दें ३ दिन के बाद निकाल और छानकर शीशियों में भर लें। १-१ तोला की मात्रा में दिन में ३ बार देने से विशेष लाभ होता है। —सिद्ध भेषज मणिमाला।

(८) मेदोवृद्धि पर—२१/२ तोला नीबू के रस में १० तोला गुनगुने जल तथा रस के समभाग या यथास्वाद शहद मिला शर्बत के समान खूब गड्डबड्ड कर लें और प्रातः निराहार लेवें। इस प्रकार लगातार १ मास तक पीवें। तथा भोजन दुपहरी में केवल एक समय ही करें उक्त प्रकार यह प्रयोग रात्रि को सोते समय भी करें। कोष्ठबद्धता विशेष हो तो प्रत्येक बार आरोग्यवर्द्धिनी वटी की २ या ३ गोलियां भी साथ में ले लिया करें। भोजन सर्व प्रकार कीमें चिकनाई, तले पदार्थ, आलू, चावल, चीनी आदि से परहेज रखें। हो सके तो उपवास एवं व्यायाम भी करें। मोटापा तथा शरीर का भार कम होकर शरीर सुडौल हो जावेगा।

(९) यकृत और प्लीहा के विकारों पर—नीबू रस २० तोला में अजवायन और सेंधा नमक ५-५ तोला मिला दें। अजवायन के फूल जाने पर उसे छायाशुष्क कर उसमें २ तोला नौसादर (खपरिया) मिला चूर्ण कर ३-३ माशे शीतलजल से देने से यकृत शुद्ध होकर विकारों की शांति होती है। इसके रस को जल में मिला, उसमें काला नमक व भुने हुए जीरे का चूर्ण आवश्यकतानुसार मिला कर सेवन करते रहने से यकृत की क्रिया में यथेष्ट सुधार हो जाता है।

प्लीहा के विकार पर—पीले रंग की १६ कौड़ियां २ तो० लेकर पीस कर नीबू के रस में खरल करें। लगभग १० नीबू का रस उसमें लीन करदें। फिर छोटी-छोटी गोलियां बनालें। रोगी को प्रातः सायं १-१ गोली पानी के साथ देवें। —हृ० मौ० मो० अब्दुल्ला साहब

(१०) सूखा रोग पर—प्रवाल भस्म १ ग्राम, मुक्ता शुक्ति भस्म २ ग्राम, शंख भस्म ३ ग्राम, कौड़ी भस्म ४ ग्राम, कछुए की पीठ की भस्म ५ ग्राम और हरताल गौदन्ती भस्म ६ ग्राम खरल में एकत्र नीबू के रस की ३ भावनायें देकर सुखालें। फिर महीन चूर्ण कर मात्रा १/४

---

[1] यह रोग प्रायः विटामिन 'सी' की कमी से होता है। इसमें शरीर शैथिल्य, शरीर से थोड़े-थोड़े प्रमाण में रक्तपित्त जैसा रक्त निःसरण, विशेषतः मसूढ़े शिथिल होकर उनसे और दांतों से रक्त निकलता, सिर की त्वचा पर छोटे-छोटे रक्त के धब्बे पैदा होते हैं। छोटे बच्चों की अस्थिकला से कष्टप्रद रक्तस्राव होना आदि लक्षण होते हैं। शरीर में पांडुता व निर्बलता आ जाती है।

Scanned with CamScanner

से १ ग्राम तक। प्रातः सायं दूध के साथ देने से सूखा रोग या चूने के अभाव से होने वाली व्याधियां निश्चित नष्ट हो जाती हैं अथवा—

एक नीबू और एक सन्तरे का रस मिलाकर बालकों को अवस्थानुसार मात्रा में यदि दैनिक पिलाया जाय तो शरीर का सूखना, हड्डियां कोमल व पतली हो जाना आदि में अच्छा लाभ होता है। —आयु० विकास

(११) मूत्रकृच्छ्र, सुजाक तथा आतशक (उपदंश) और मधुमेह पर—इसके रस में यवक्षार मिलाकर देने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता तथा मूत्रगत अम्लताधिक्य कम होता है। मूत्रावरोध हो तो नीबू के दो भाग कर भीतर के बीजों को दूर कर उसमें सोरा (कलमी) भर कर कोयलों की आग पर रखदें। जब उसमें उबाल सा आवे तब गरम-गरम नाभी के आसपास मलदें बन्द हुआ पेशाब खुल जावेगा। —हु० मौ० मो० अब्दुल्ला साहब

अथवा १॥-१॥ माशा यवक्षार की दो पुड़ियां तथा १०-१० तो० कच्चे दूध से भरे हुए दो कांच के गिलास अपने पास रख कर प्रथम आधा नीबू दूध में निचोड़ और यवक्षार की १ पुड़िया मुख में डालकर तत्काल पीवें। पश्चात् दूसरी पुड़िया मुख में डाल और आधा नीबू दूध में निचोड़ कर पीलेवें। इस प्रकार ३ दिन प्रयोग करने से मूत्रकृच्छ्र या सुजाक की बाधा शांत हो जाती है। —स्वास्थ्य सरिता से

आतशक (उपदंश) की व्याधि पर—श्वेत कत्था, काला दाना, बड़ी इलायची का छिलका जला हुआ, जूनी (पुरानी) सुपारी १-१ तो०, मुरदासङ्ग २ तो० सबका महीन चूर्ण कर १०१ नीबू के रस में भावित करे। रस सूखने पर चने जैसी गोलियां बनालें। प्रातः सायं १-१ गोली पानी के साथ प्रयोग करें। मूंग की दाल और लौकी का सेवन न करें। यह प्रयोग आतशक एवं तज्जन्य सन्धि पीड़ा में लाभप्रद है। यूनानी में इसे 'हब्ब लीमू' कहते हैं। —यू० चि० सागर

उपदंश के व्रणों में अत्यधिक पीड़ा रहती हो तो नीबू के रस में काली हरड़ों को रगड़कर लेप करें।

मधुमेह पर— २० तो० नीबू का जितना रस निकले उसमें छोटी कौड़ी (बराटिका) जो ऊपर से पीली हों वे साफकर डालदें। प्रातः छानकर रस पी जावें। इस प्रकार प्रतिदिन ७ दिन तक लेने से मधुमेह सर्वथा ठीक होता है। —श्री वंशीधर जी भिषगाचार्य बीकानेर

[१२] अश्मरी पर—नीबू-रस ६ माशा, कर्पूरांश ४ रत्ती तथा तिल पिसे हुए १ माशा इनका मिश्रण (यह १ मात्रा है) शीतल जल के साथ दिन में १ या २ बार २१ दिन तक सेवन करने से पथरी गल जाती है। पथ्य में केवल कुलथी की दाल का क्वाथ पीना चाहिये।

साधारण मूत्राश्मरी में--प्रतिदिन दो नीबू का रस मिलाकर पिलाते हैं।

[१३] कास, कंठपीड़ा, प्रतिश्याय [जुकाम] और सिर दर्द पर—जिस कास [खांसी] में कफ बहुत जमा हुआ कठिनता से निकलता हो ऐसी पुरानी खांसी की दशा में नीबू को गीले कपड़े में लपेट गोला सा बना आग की गरम गरम भूभल में दबा कर कुछ देर बाद निकाल कर गरम-गरम ही निचोड़ लें तथा उसमें शहद मिला ३-३ माशा की मात्रा में दिन में ३ बार चटाने से कफ सरलता से निकलने लगता है। जिस कास में कफ पतला निकलता हो उसमें नीबू का सेवन किसी प्रकार भी उचित नहीं है।

उक्त प्रयोग अथवा नीबू रस को साधारण सा गरम कर थोड़ा उत्तम शहद मिला, आवश्यकता के समय दिन में ३ बार चटाने से कंठ पीड़ा आदि गले की लगभग समस्त व्याधियों में लाभ होता है। उत्तम शहद के अभाव में नीबू रस १ भाग में ४ भाग गरम पानी मिला कुल्ले [गरारे] करने से भी कंठ की पीड़ा दूर होती है।

--फलांक से।

प्रतिश्याय पर--उक्त प्रकार से आग की भूभल में पकाये हुए नीबू के गरम रस को पिला देने से जुकाम तत्क्षण दूर होता है। नीबू को चीर कर रोगी को सुंघाते रहने से भी लाभ होता है।

शिरःशूल में-- नीबू को दो भागों में काटकर क्रमशः गरम कर मस्तक तथा कनपटियों पर लगावें। हवा न लगने देवें। सिर दर्द दूर होता है।

अथवा चाय पत्ती की खूब गाढ़ी चाय बनाकर उसमें

Scanned with CamScanner

दूध के स्थान में थोड़ा नीबू रस या इसका सत मिलाकर गरम-गरम पीने से भी शीघ्र लाभ होता है।

--ह. मौ. मो. अब्दुल्ला साहब।

[१४] स्त्री रोग पर--अत्यार्तव की दशा में जब खून अधिक आता हो और रुकता न हो तो ७ नीबू के रस में रसौत साफ (पकाई हुई) ५ तोला तथा अफीम साफ [पकाई हुई] १ तोला एकत्र मिला साफ खरल में खरल करें। गाढ़ा हो जाने पर छोटी-छोटी गोलियां बना लें। १-१ गोली ३ या ४ घंटे के बाद चावलों के धोवन अथवा रसौत के पानी [४ रत्ती को १० तोला पानी में मिला लें] के साथ देवें प्रातः और सायं दिन में केवल दो बार ही देवें।

गर्भपात होने से पूर्व जो रक्त स्राव प्रारंभ हो जाता है, उस समय भी उक्त गोलियों के सेवन से कितना भी खून आ रहा हो उसी क्षण बन्द हो जायगा। समयानुसार १५-१५ मिनिट या घंटा या २ घंटे बाद देवें। यदि ग्रीष्म हो तो चंदन के शर्बत या चावलों के धोवन से देवें। शीत ऋतु में ताजे पानी के साथ देवें।

— ह. मौ. मो. अब्दुल्ला साहब।

गर्भाशय के शोथ पर नीबू-रस में लाल तथा श्वेत-चन्दन घिसकर लेप करें।

[१५] चर्मरोगों पर— से ४ तक नीबू के रस को १ या १½ पाव सुखोष्ण पानी में मिला (इच्छानुसार शुद्ध मधु भी मिला सकते हैं) प्रातः निराहार, नियमित रूप से कुछ मास तक पीने से पुराना चर्म एवं रक्त विकार समूल नष्ट हो जाता है।

नीबू रस और चमेली के (फूलों से बने हुए) तैल के मिश्रण को शरीर पर मलने से अनेक प्रकार के चर्म रोग नष्ट होते हैं।

२-३ नीबू का रस गरम पानी और नमक के घोल में मिला स्नान करते रहने से त्वचा का रंग निखरता है।

त्वचा रूखी और कड़ी पड़ गई हो तो तैल की मालिश कराते रहें और पानी में नीबू रस मिलाकर स्नान कराते रहें, शीघ्र ही त्वचा मुलायम हो जाती है। ध्यान रहे यदि कीटाणु एवं किसी विष के प्रकोप से शुष्कता आगई हो तो प्रथम उसका उपचार कर लेना चाहिए। कोष्ठबद्धता हो तो उदर को शुद्ध करना चाहिए। बीड़ी, गांजा आदि का व्यसन हो तो उसे छोड़ देना चाहिए। पित्त की उष्णता से ऐसा होता हो तो भोजन के २०-३० मिनिट पूर्व नीबू का रस जल में निचोड़ कर पीते रहना चाहिए।

शरीर के दाग या धब्बों पर शरीर के किसी भाग में पूय, कृमि, कीटाणु के स्पर्श से धब्बा होकर चारों ओर फैलता हो उसमें खुजली चलती रहती हो तो इसके रस को मसलते रहने से या नीबू की छाल को नीबू के रस में पीस पुल्टिस बना गरम-गरम बांधते रहने से थोड़े ही दिनों में लाभ हो जाता है।

सिर पर कीटाणु होने से छोटी-छोटी फुसियां होजाती हैं, खुजली होती, चमड़ी कठोर हो जाती तथा सिर से भुसा सी निकलती रहती है। इस क्षुद्र रोग को दारुणक कहते हैं। इस पर नीबू-रस और सरसों तैल समभाग मिला कर लगाते रहने और दही से मलकर धोते रहने से थोड़े ही दिनों में लाभ होता है। —गां. औ. र.

सिर पर फोड़े हो गये हों तो नीबू रस और नारियल का तैल १-१ तो. के मिश्रण में कपूर ३ माशा मिलाकर फोड़ों को साफ कर लगाते रहें।

शरीर पर नित्य स्नान के समय साबुन के स्थान पर नीबू रस मलने से कभी चर्म विकार नहीं होते, त्वचा का वर्ण लालिमायुक्त निखरा हुआ रहता है।

चेहरे की भांई, झुर्री आदि पर—नीबू रस और शहद का मिश्रण चेहरे पर लगाते रहें तथा नियमपूर्वक जैतून तैल लगाया करें। अथवा-नीबू रस ५ तोला शुद्ध ग्लीसरीन १० तो. गुलाबजल १५ तो. तथा सुहागे का फूला लगभग १ माशा सबके मिश्रण को शीशी में रखलें। इसे नित्य रात्रि को चेहरे पर मल दिया करें। मुख की फुंसियां, मुंहासे, झाई, रूक्षता आदि दूर होकर मुख सौंदर्य बढ़ता है। यह उतम कीटाणुनाशक एवं वर्ण को निखारने वाला योग है। अथवा –नीबू, तुलसी व काली कसौंदी का रस समभाग एकत्र मिला धूप में रखें, गाढ़ा होजाने पर मुख पर मला करें। अथवा—नीबू रस को दूध और कलौंजी के चूर्ण में मिलाकर रात्रि के समय लेप कर, प्रातः गरम जल से धो डाला करें। अथवा—नीब

Scanned with CamScanner

के दो भाग कर उन पर थोड़ा नौसादर चूर्ण छिड़क कर, उङ्गली से नीबू के अन्दर प्रविष्ट करदें और उन टुकड़ों को चेहरे पर मलें, ७ दिन ऐसा करने से मुख के कुचिन्ह दूर हो जायेंगे। अथवा-नीबू-रस को अण्डे की सफेदी में मिला मुख पर चुपड़ने तथा सुखोष्ण पानी से धोने से चेहरे पर निखार आ जाता है। अथवा- प्रातः मुखप्रक्षालन करते समय नीबू को काटकर टुकड़ों पर साबुन मल दें। फिर चहरे पर मर्दन कर गरम पानी से धो डाला करें। थोड़े ही दिनों में मुख के दाग-धब्बे दूर होकर मुख सुन्दर हो जाता है। अथवा हल्दी और लोध्र का चूर्ण नीबू रस में मिला उबटन करते रहने से ७ दिन में मुख की भाई नष्ट हो जाती हैं। चेचक के चिन्ह हों तो नीबू-रस में मुर्दाशंख को महीन पीस कर लेप किया करें, चिह्न मिट जावेंगे।

खाज, खुजली, दाद तथा श्वेत कुष्ठ पर--

नीबू रस में हल्दी और सरसों पीसकर उबटन कर चमेली तैल लगाते रहने से खुजली दूर होती है।

अथवा—नीबू रस २ तो० चमेली तैल ५ तो० दोनों को चीनी मिट्टी के प्याले में खूब मर्दन करलें। श्वेत रंग की मरहम सी बन जाने पर रात्रि को शरीर पर मलकर प्रातः नीबू रस में गेहूं की भुसी मिला उबटन जैसा शरीर पर मर्दन कर गरम पानी से स्नान करलेवें। शुष्क खुजली नष्ट हो जाती है अथवा—नीबू रस में थोड़ी मुलतानी मिट्टी और काली मिर्च का चूर्ण मिला शरीर पर मल कर धूप में बैठ जावें। १ या १॥ घण्टा बाद ताजे पानी से नहा लेवें अथवा - सरसों तैल या तिल तैल में समभाग नीबू रस मिला मालिश कर सुखोष्ण जल से स्नान करते रहें। कपड़ों को रोज गरम पानी और साबुन से धुलवाते रहें।

सूचना - कब्ज रहती हो तो सनाय पत्र युक्त मृदु-रेचन चूर्ण रात्रि में लिया करें। खुजली का रोग अधिक पुराना हो तो शुद्ध आमलासार गन्धक १॥ माशा की मात्रा में समभाग शक्कर मिला प्रातः सायं दूध के साथ लिया करें।

—गां० औ० र०

दाद पर—

नीबू रस और तिल तैल १ -१० तो० एकत्र मि[illegible] मन्द आग पर रख उसमें श्वेत चन्दन का महीन बुरादा [illegible] तो०, छोटी इलायची चूर्ण ६ माशा, श्वेत मोम १ तो तथा देशी कपूर, केशर २-२ माशा मिलादेवें। तैल मा[illegible] शेष रहने पर उतार कर गर्म-गर्म ही कपड़े में छानलें ठण्डा हो जाने पर उसमें क्राईसोफानिक एसिड ३ मा[illegible] मिला खूब घोंटकर शीशी में भरलें। दाद के स्थान प[illegible] खुजलाकर इसे लगा कर मललें। शीघ्र लाभ होता है।

अथवा—नीबू रस में बारूद मिलाकर दाद स्था[illegible] पर लेप करने से, या रस में नौसादर को महीन पीस क[illegible] लेप करने से या रस में गन्धक, सुहागा और कत्थ[illegible] महीन पीसकर लगाने से या दिन में २-३ बार खुज[illegible] कर उस पर नीबू का टुकड़ा मल दिया करने से भी ला[illegible] हो जाता है।

श्वेत कुष्ठ पर

नीबू रस में पीली संखिया, लौंग और बड़ी इलायच[illegible] समभाग घोटकर लगावें। विषैला पदार्थ बाहर निक[illegible] जाने के पश्चात् इसे लगाना बन्द कर देवें तथा त्रिफल[illegible] का तैल लगाते रहें। श्वेत कुष्ठ में अच्छा लाभका[illegible] योग है।

—चर्म रोगांक (स्वा० सरिता

[१६] नेत्र के विकारों पर--

अभिष्यन्द (आंखें आना) विकार में नेत्र अति ला[illegible] हो गये हों, अतिवेदना हो तो नीबू को चीर कर उ[illegible] पर थोड़ी अफीम और फिटकरी के फूले का चूर्ण डा[illegible] कर नेत्रों पर बांधने से शीघ्र लाभ होता है। साथ [illegible] नीबू को गरम कर रस निचोड़ कर उसमें सेंधा नम[illegible] व मिश्री मिलाकर पिलाते भी हैं। इससे पित्त प्रकोप [illegible] नेत्र पीड़ा दूर होती है अथवा—फिटकरी १० तो[illegible] को लोह पात्र में भून कर उसमें अफीम ३॥ तो[illegible] मिलावें और ४० तोला नीबू का रस थोड़ा-थोड़ा डाल[illegible] हुए दस्ते से घोलें। सब रस के लीन हो जाने पर गोलि[illegible] बनालें। इसे जल में घिस थोड़ा उष्ण कर नेत्र के चा[illegible] ओर लगावें तथा भीतर भी डालें। नेत्र पीड़ा, ढलक[illegible] व सुर्खी में अत्यन्त उत्तम है।

--यू० चि० सा[illegible]

Scanned with CamScanner

नीबू रस को लोह पात्र में लोह मुसली से रगड़ कर नेत्रों पर गाढ़ा प्रलेप करने से भी पीड़ा की शांति होती है जलन, पीड़ा, लालिमा दूर होती है।

सुर्मा —चाक्सू १ तो. कांसी के पात्र में डाल कर जस्ता (यशद) लगे हुए डंडे से, नीबू रस डालते हुए खरल करें। लगभग ७ नीबू का रस उसमें मिल जाय, इतना खरल करना चाहिये। शुष्क हो जाने पर खूब खरल कर शीशी में रख लें।

रात्रि के समय ईश स्मरणपूर्वक इसकी तीन तीन सलाई नेत्रों में फिरालें। इससे पीड़ा, कुकरे आदि नेत्र विकार नष्ट हो जाते हैं। अथवा—

ऊपर नं० १४ के स्त्री रोग के प्रयोग में जो रसौत अफीम की गोलियों का प्रयोग है उन गोलियों को गुलाब अर्क में मिला नेत्रों में केवल २-३ बार डालने से ही परम शांति प्राप्त होती है। आंखों का दुखना (अभिष्यन्द) दूर होता है।

फूला या जाला पर—छोटी कौड़ियां (प्रत्येक का वजन १ माशे हो) १ तो. लेकर चीनी या कांच के पात्र में डाल, उन पर नीबू रस इतना डालें कि कौडियों से ३ अंगुल ऊपर आ जाय। फिर इस पात्र को कपड़े से ढक कर रख दें जिसमें मिट्टी, धूल आदि न पड़े। रस सूख जाने पर और डाल दें ऐसा ३ बार करें। पश्चात् कौड़ियों को खरल में डाल कर उसमें मुर्गी के अण्डे के छिलकों की भस्म समभाग मिला, नीबू रस डालते जायें और खरल करते जावें। ७ दिन तक इस प्रकार खरल कर शुष्क हो हो जाने पर उत्तम मधु मिला ४ घंटे और खरल कर लम्बी बत्तियां बना लें।

आवश्यकतानुसार बत्ती को पानी में घिस कर रात्रि समय नेत्रों में लगाते रहने से प्राचीन से प्राचीन फूला ईश कृपा से कट जाता है (चेचक या चोट से पड़ा हुआ फूला नहीं कटता)। इसके अतिरिक्त गुबार, कुकरे, सुर्खी, रतोंध में भी यह लाभप्रद है। अथवा—

बारहसिंगा (मृग) के सींग के बुरादे को नीबू रस में इतना खरल करें कि सुर्मा जैसा महीन हो जावे। फिर गोलियां बना लें। गुलाब अर्क या जल में घिस कर सलाई से लगाते रहने से पुराना जाला, धुन्ध आदि दूर हो जाता है।

मोतिया बिन्दु की प्रारंभिक अवस्था में—गाय के दूध का मक्खन ४ तो. को दो नीबू के रस के साथ खरल करें। जब भली प्रकार मिल जाय तो उसमें जल डाल कर रख दें फिर और जल डाल कर रख दे। ऐसा २५ बार चीनी मिट्टी के डिब्बे में बन्द कर रखें। रात्रि को सोते समय किंचित नेत्र में लगा देने से मोतिया बिन्दु का उतरता हुआ पानी वहां का वहीं रुक जावेगा। अथवा—

सिरस के २ तो. बीजों को खरल में डाल कर महीन चूर्ण कर उसमें नीबू रस डालते डालते इतना खरल करें कि १- नीबुओं का रस उसी में लीन हो जाये। इसे सलाई से लगा दिया करें। यह योग मोतियाबिन्दु के लिये और भी उपयुक्त है। रोगी को त्रिफला चूर्ण का सेवन रात्रि में कराते रहें।

धुन्ध, जाला आदि पर ममीरे का प्रतिनिधि—

हल्दी की एक डली चीनी की प्याली में डाल उस पर एक नीबू निचोड़ अङ्गारों (कोयलों) की आग पर रख पकावें। इस प्रकार ७ नीबू का रस उसमें लीन हो जाने पर उसे महीन पीस उसमें समभाग सुर्मा मिलालें। रात्रि के समय इसकी २-३ सलाई लगाते रहने से लाभ हो जाता है।

नोट—ऊपर के सुर्मा आदि के योग ह मा. मो. अब्दुल्ला साहब की पुस्तक से साभार लिये गए हैं।

मोतिया बिन्दु की प्रारंभिकावस्था में (जो कि प्रायः वृद्धों की ७० वर्ष की अवस्था के लगभग नेत्र में प्रारंभ होता है) ताजे नीबू के रस की कुछ बून्दें नित्य प्रातः (सूर्योदय के समय) नेत्र में डालते रहने से शनैः शनैः उसे विलीन कर देता है, तथा दृष्टि शक्ति को बढ़ाता है।
—नाड़कर्णी।

नेत्र रोग हर पोटली—एक नीबू के दो टुकड़े कर प्रत्येक पर थोड़ा हल्दी चूर्ण तथा फिटकरी का फूला पीस कर थोड़ा बुरक कर प्रत्येक टुकड़े को नेत्रों पर रखकर ऊपर से कपड़े की पट्टी बांध देवें (टुकड़ों पर उक्त द्रव्यों के साथ कोई-कोई थोड़ी शक्कर और अफीम

Scanned with CamScanner

भी डालते हैं) दो घण्टे बाद पट्टी खोलकर पोटली उतार देवें। पुनः सायं इसी प्रकार बांधने से आई हुई आंख, सूजन, लालिमा, पीड़ा, ढरका आदि में लाभ होता है।

[१७] मुख, दन्त और कण्ठ रोग पर—ताजा नीबू रस २ तो० में १० तो० जल मिला गरारे (कुल्ला) करने से मुख के भीतर के छालों, मसूढ़ों का शोथ दूर होता है ध्यान रहे वास्तव में मुख के छाले प्रायः आमाशय की खराबी, मन्दाग्नि आदि से होते हैं। अतः प्रथम आमाशय शुद्धि करना आवश्यक है। इसके लिए प्रातः निराहार नीबू रस १-२ तो० की मात्रा में गरम जल मिलाकर पी लेना चाहिए। इससे आमाशय का सुधार होकर मुख के छाले स्वयमेव मिट जावेंगे।

प्रतिदिन मसूढ़ों और दाँतों पर नीबू रस या नीबू की फांक को धीरे-धीरे मर्दन करते रहने से स्कर्वी (मसूढ़ों से रक्त आना), पायोरिया, कीड़े लगना, मसूढ़ों की सूजन आदि में लाभ होता है।

मुख से तीव्र दुर्गन्ध आती हो तो नीबू रस ताजा १ भाग और अर्क गुलाब दो भाग एकत्र मिला प्रातः सायं कुल्ले करें। इससे मसूढ़ों के क्षत और पायोरिया की प्रारंभिकावस्था भी दूर होती है। दांत स्वच्छ हो जाते हैं।

कंठ में पीड़ा हो तो नीबू-रस को कुछ गरम कर उसमें थोड़ा उत्तम शहद मिलाकर दिन में ३ बार चाटा करें। गले लगभग समस्त विकारों पर लाभ होता है। उत्तम शहद के अभाव में रस १ भाग और उष्णोदक ४ भाग एकत्र मिला गरारे करने से भी कंठ पीड़ा, शोथ आदि दूर हो जाते हैं।

ओष्ठ फटने पर—शीत काल में होठ प्रायः फट जाते हैं। रस में थोड़ा ग्लिसरीन मिलाकर लगाते रहें।

[१८] शक्ति वर्धनार्थ—नित्य रात्रि को २० ग्राम उत्तम किशमिश स्वच्छ कर एक गिलास जल में भिगो ऊपर से १ नीबू का रस डालकर बाहर एक तिपाई पर रख दें। प्रातः शौचादि निवृत्त हो किशमिश भली प्रकार चबाकर खावें, ऊपर से उसी गिलास का जल पीलें। पुराना कब्ज, अर्श, अनेक प्रकार के उदर रोग, वायु-विकार नष्ट हो, शरीर में प्रचुर शक्ति बढ़ेगी। यह प्रात-काल का एक उत्तम टानिक है। बढ़ने वाले बालकों का सन्तोषपूर्ण विकास होगा। —आयु. विकास

अथवा—एक परिपक्व नीबू के ४ टुकड़े कर लें और चीनी मिट्टी के ४ प्यालों में गाय का दूध डाल रखें। एक प्याले में १ टुकड़े को निचोड़ तुरन्त ही पीवें। ७-८ मिनट बाद दूसरे टुकड़े को दूसरे प्याले दूध में निचोड़ तुरन्त ही पीवें। इसी प्रकार ७-८ मिनट के अन्तर से शेष दोनों प्याले भी पीजावें। नित्य १ मास तक इस क्रिया को करें। शरीर में नवीन रुधिर उत्पन्न होकर क्षुधा वृद्धि होगी, जीर्ण कब्ज दूर होगा और शक्ति की वृद्धि होगी।

इस प्रयोग से—रस कपूर, दारचिकना एवं कच्चे भस्मों के सेवन से उत्पन्न विषाक्त-आमवात (गठिया) शरीर शोथ आदि विकार भी दूर हो जाते हैं— —फलांडू

इच्छानुसार अजवायन लेकर उसके ऊपर नीबू रस इतना भर दें कि १ अंगुल तक ऊपर आजावे। फिर मलमल के कपड़ा से ढांककर धूप में रखदें। खुश्क होजाने पर इतना ही रस और डालें। इस प्रकार ७ बार भिगो कर सुखा लें। और सुरक्षित रखें। १०॥ माशा तक नित्य खाने से शक्ति बढ़ती है।

— ह. मौ. अब्दुल्ला साहब

[१९] केश घने, चमकीले और लम्बे होने के लिए नीबू-रस में सूखे आमलों का चूर्ण या अरहर की दाल महीन पीस कर लेप करने या बालों की जड़ों में रगड़ने से वे काले व चमकीले होते हैं, केशों की सर्व व्याधियां दूर होती हैं। उनका झड़ना बन्द होता है। या नीबू का टुकड़ा सिर पर घिसने से बालों का गिरना रुक जाता है। रस में चीनी मिलाकर सिर पर लगाने तथा ५-६ घंटे बाद धोने से सिर की रूसी-भूसी नष्ट हो जाती है। रस में बड़ की जटा पीसकर, केशों पर लगावें तथा थोड़ी देर बाद नीबू रस मिले जल से धोकर नारियल तेल लगाया करें। शीघ्र केशों का टूटना बन्द होता है। बाल लम्बे होते हैं। अथवा

३-३ नीबू का रस आधा सेर नारियल के तेल में मिला आग पर उबाल कर शीशी में रख लें। इसे लगा

रहने से बाल काले, घने होते हैं, झड़ना बन्द होता तथा जूं, लीख आदि कीटाणु नष्ट होते हैं।

[२०] अन्यान्य योग—हृद्विकार पर—रस १½ तोले की मात्रा में लेते रहने से हृदय की धड़कन नष्ट होती है। आधे नीबू का रस थोड़े जल में मिलाकर लेने से हृदय की जलन नष्ट होती है। वात पीड़ा में रस में यवक्षार और और शहद मिला सेवन से संधि पीड़ा नष्ट होती है।

दाह एवं पित्त की शांति के लिए—१ गिलास भर जल में नीबू रस निचोड़ कर थोड़ी शक्कर मिला पिलाते हैं।

रक्तार्श हो तो नीबू को काट कर सेंधानमक लगा कर चूसते हैं, रक्तस्राव बन्द होता है।

कर्ण पीड़ा, स्राव आदि में—समुद्रफेन या पीली कौड़ियों की भस्म का महीन चूर्ण १ रत्ती कान में डालकर ऊपर से २-४ बूंद रस टपका दें। कान में झाग उठकर अन्दर व्रणादि स्वच्छ हो जाता है। रूई से कान को साफ करदें। रस को कुछ गरम कर किंचित् सोडाबाईकार्ब डालने से कर्णस्राव बन्द हो जाता है।

उन्माद में—मस्तिष्क पर रस को मलने से पागलपन का जोश शांत होता है।

कामला में—रस को आंखों में लगाते हैं।

सामुद्रिक बीमारियों के निवारणार्थ—नीबू-रस और चूने का पानी अव्यर्थ औषधि है। प्रत्येक जहाज या स्टीमर अपने साथ नीबू तथा नीबू रस सदैव रखता है। इसमें अलकोहल मिलाने से रस बिगड़ता नहीं।

नकसीर (नाक से रक्तस्राव) होता हो तो रस की पिचकारी एक ही बार लगाने से लाभ होता है।

यकृत-विकृति में—नीबू का गूदा २ तोले तथा संचर नमक आध तोले का मिश्रण प्रातः तथा रात्रि में खिलाते हैं।

कास पर—रस और शहद १-१ तोले, नमक आधा तोले और पानी १० तोले का मिश्रण, उबाल कर प्रातः व रात्रि में गरम गरम पीने से कास का कष्ट दूर होता है।

जमालगोटा के उपद्रवों पर—रस २॥ से ५ तोले तक लेकर उसमें कुछ अधिक जल मिलाते हैं, मिठास के लिए मिश्री मिलाते हैं।

पांडु रोग पर—रस १ तो., खांड २ तो., खाने का सोडा ४ रत्ती और नौसादर २ रत्ती मिश्रण कर १ तो. पानी में मिला प्रातःसायं पिलावें।

अफीम के विष पर—१०-१२ नीबुओं का रस, थोड़ी शक्कर मिला पिलाते हैं।

अन्य विषों के प्रकोपजन्य अतिसार, वमन आदि भयंकर लक्षणों के निवारणार्थ—१० से १२॥ तोले तक नीबू रस को कांजी या शुद्ध जल में मिला (यह १ मात्रा है) पिलावें। यह एक उत्तम सरल अगद है। विष उपचार में इसका प्रथम प्रयोग करना चाहिए। इससे कुछ न कुछ अवश्य ही लाभ होता है इसके बाद रेंडी तैल को पिलावें। —नाडकर्णी।

भांग के नशे पर—रस में थोड़ा खाने का सोडा और थोड़ी शक्कर मिला पिलाते हैं।

शराब के नशे पर—नीबू का गूदा और अनारदाना पीस कर खिलाते हैं।

बर्रे, मधुमक्खी आदि के काटने पर—नीबू को चीर कर दंश स्थान पर लगावें।

मकड़ी (लूता) के विष पर रस में चूना मिला कर लगावें।

दाढ़ी, मूंछ के बाल साफ करने के लिए—विशेषतः किसी स्त्री के ऐसे बाल उगते हों तो खांड १० चम्मच लेकर थोड़ा पानी मिला पकावें। चासनी आने पर उतार कर उसमें आधे नीबू का रस मिला, ठंडा हो जाने पर इसे लगाकर थोड़ी देर बाद कपड़े से घिसते हुए साफ कर दें। इस क्रिया से त्वचा थोड़ी झुलस सी जाती है किंतु बालों को नष्ट करने के लिए यह सरल व निर्दोष उपाय है। —सुश्रुत (मासिक पत्र)

रत्नों के तथा अन्य धातुओं के शोधन, मारण में रस की भावना दी जाती है।

विशिष्ट योग—

(१) शर्बत नीबू— नीबू रस १ सेर, अदरख का रस आधा सेर, सेंधा और काला नमक २-२ तोले, हींग ६ मा.

Scanned with CamScanner

तथा मिश्री १ सेर लेकर सबको शीतल की कलई की हुई कड़ाही में पकावें। ३ उफान आने पर नीचे उतार तुरंत छान लें। ठण्डा होने पर ऊपर के भाग को अलग निथार लें। नीचे के गाढ़े भाग का उपयोग पहले जल्दी करलें। मात्रा--६ मा. से २ तोला तक में आधी रत्ती कपूर तथा २-४ तोला जल मिलाकर पीवें। अपचन, अतिसार, विसूचिका (हैजा), उदर कृमि, अरुचि, मंदाग्नि, मलावरोध, उदर शूल, वमन आदि दूर होकर क्षुधा की उत्पत्ति होती है। गा. औ. र.।

शर्बत नं० २--नीबू, पोदीना, अदरख, और पान का रस २ -२० तोले एकत्र कर उसमें श्वेत जीरा (भुना हुआ), दालचीनी व छोटी इलायची के दाने १-१ तोले महीन पीसकर मिला दें। फिर २ सेर चीनी की चाशनी मिला, ठंडा होने पर बोतल में भर लें। मात्रा--६ माशे से १ तोले तक, थोड़े जल में मिला पीने से हृदय की शक्ति बढ़ती, यकृत दोष दूर होता, भोजन का पाचन होता तथा मन प्रसन्न रहता है।

शर्बत नं. ३—नीबू रस १ सेर, खांड, मिश्री या शक्कर १॥ सेर लेकर प्रथम खांड में थोड़ा पानी मिला चाशनी बना लें। चाशनी गाढ़ी हो जाने पर उसमें रस मिला, एक उफान आने पर उतार कर शीघ्र ही छान लें। ठंडा हो जाने पर बोतल में भर लें। मात्रा--१¼ से २॥ तोला तक, जल मिला सेवन करें। इससे ग्रीष्मकाल की व्याकुलता, अपचन (जिसमें दुर्गन्ध युक्त डकारें आती हों), उबाक, वमन, अरुचि, तृषा और रक्तविकार दूर होता है। यह पाचन शक्ति को बढ़ाता, सिर दर्द में तथा मौसमी बुखार में लाभदायक है।

शर्बत नं० ४--लेमनेड या सिरप--नीबुओं के बीज दूर कर छिलके सहित कूट या मशीन के द्वारा सब रस निकाल लें। कुछ देर बाद नीचे जमे हुए गन्दे अंश को न हिलाते हुए ऊपर के रस को धीरे से निथार कर मोटे कपड़े से छान कर (रस १ पौंड हो तो जल आधा पौंड और शक्कर १॥ पौंड मिला) मंद आँच पर रखदें। शक्कर के घुल मिल जाने पर तुरन्त बोतल में भर, बोतल को फौरन बन्द कर शीतल एवं अंधेरी जगह पर सुरक्षित रखें। इसके सेवन से घबराहट, तृषा, वमन, वर्षाकालीन शीत ज्वर तथा ग्रीष्म के अनेक विकार नष्ट होते हैं।

तुरन्त ही नीबू का शर्बत ग्रीष्म काल में बना कर पीना या पिलाना हो तो एक पात्र में चीनी, खांड, या मिश्री कोई भी मीठा पदार्थ शीतल जल में घोलकर उसमें नीबू निचोड़ कर शर्बत तैयार कर लेवें। एवरेस्ट विजय के विवरण में कहा गया है कि इस अभियान में मुख्य रूप से जिस पेय का प्रयोग किया गया वह था नीबू का शर्बत। अतः पर्वतारोही कहा करते हैं कि मध्य युग में आल्टम पर्वत को नेपोलियन ने जीता तथा इस युग में विश्व की सबसे ऊंची पर्वत चोटी एवरेस्ट को नीबू ने जीता।

नीबू के रस को सुरक्षित रखने की जो विधि पहले कह आये हैं तदनुसार रखे हुए रस का शर्बत जब चाहें तब बना कर व्यवहार में ला सकते हैं।

(२) पानक (पना) नीबू—नीबू और अदरख का रस ½-½ सेर तथा शक्कर १ सेर पका कर एक तार की चाशनी बना लें। यह ग्रीष्म काल का एक उत्तम पेय है। मात्रा-१ से ४ तो. तक लेकर जल मिला सेवन से बेचैनी और तृषा शांत होती है। अथवा—

नीबू रस १ भाग में ६ भाग चीनी या शक्कर का शर्बत मिला लें, तथा लौंग व काली मिर्च का चूर्ण मिला कर सेवन से अग्नि दीप्त होती, आहार का उत्तम पाचन होता है अरुचि दूर होती है। अथवा—

नीबू रस१०० ग्राम, अदरख का रस २०० ग्राम सेंधानमक १० ग्राम, उत्तम कलईदार पात्र में पकावें। उबाल आजाने पर शीघ्र ही नीचे उतार छान लें और थोड़ी देर बाद निथार कर बोतल में भरलें। इसके सेवन से आमातिसार, अरुचि, मंदाग्नि, अजीर्ण,वमन, शूल आदि दूर होते हैं। क्षुधा वृद्धि होती है।

वाष्प जल १ बोतल में लेकर उसमें नीबू रस, शक्कर ५-५ तो तथा गंधकाम्ल ५१ बून्द मिला कर रखें। इसे थोड़ी थोड़ी मात्रा में जल मिला पीने से भी उक्त लाभ होता है।

Scanned with CamScanner

(३) सिकंजबीन लिमोनी—नीबू दो सेर के चार-चार टुकड़े कर ३ सेर खांड और १ सेर पानी में जोश दें। शर्बत जैसा पाक हो जाने पर, छान कर बोतलों में भर लें। मात्रा २ से ४ तो तक।

अथवा नीबू रस, गुलाब और सिरका प्रत्येक ६ तो. खांड ३ पाव सब को मिलाकर पाक करें। मात्रा २ तो लेने से आमाशय व यकृत को बल प्राप्त होता, पित्तज, वमन, मतली तृषा दूर होती है। ये दोनों योग दीपक पाचक हैं। —यू. चि. सागर।

(४) फ्रूट-साल्ट का प्रतिनिधि योग—नीबू सत्व (सायट्रिक एसिड) २½ तो., खाने का सोड़ा ४ तो., सामुद्र लवण १ तो, तथा सोंठ का महीन चूर्ण १ तो। इन सबका बारीक चूर्ण स्वच्छ मिट्टी के पात्र में भर आग पर गरम करें। जब दाने से पड़ जावें, तब उतार कर शीशियों में भर लें। ठंडी व वर्षा की हवा से बचावें। मात्रा-१ छोटा चम्मच ५ तो. पानी में डाल कर पीवें। उदर वात, कब्ज, उल्टी व मंदाग्नि दूर होती है। उत्तम पाचक है।

(५) सायट्रिक एसिड का प्रतिनिधि योग–नीबू स्व-रस ८० तो को कांच के पात्र में छान कर मिट्टी के पात्र में डाल कर आग पर पकावें। ४० तो. शेष रहने पर नीचे उतार उसमें उत्तम कली का चूना [५ तो. तक] थोड़ा थोड़ा करके भाप निकलने तक डाले,फिर गंधकाम्ल १ तो. डाल कर रखा रहने देवें। जब ऊपर स्वच्छ जल नितर आवे, उसे धीरे से पात्र में निथार कर आग पर चढ़ावें। जलांश के सूख जाने पर यह श्वेत सायट्रिक बनेगा। इसे भिन्न-भिन्न प्रयोगों में उपयोग करें।

भा० नूतन योग संचय से साभार।

[६] चूर्ण नीबू—नीबुओं के २-२ टुकड़े कर उसमें सामुद्र नमक भर कर सुखा लें। फिर कूट कर चूर्ण करलें इसे कई लोग नीबू सत्व भी कहते हैं। यह वातरक्त खाज, खुजली में लाभप्रद है। —स्वास्थ्य से।

अथवा नीबू चीर कर धूप में लटका कर सुखावें। फिर चूर्ण कर उसमें ४ भाग खांड़ मिला रख लें। ३ मा. तक पानी के साथ लेने से वमन पर विशेष लाभकारी है इसमें खांड़ के स्थान पर नमक या खांड और नमक दोनों पिलाये जा सकते हैं।

—ह. मौ. मो. अब्दुल्ला साहब।

[७] चटनी या अवलेह नीबू–नीबू रस १० तो. को कलई दार पात्र में लेकर उसमें अमलतास का गुदा ६ तो. मिला ४ घण्टे रखें। फिर अच्छी तरह मसल कर उसमें शक्कर ६ तो मिला मंद आंच पर गाढ़ा अवलेह सा बना नीचे उतार कर उसमें सेंधा नमक ३ तो. तथा दाल-चीनी, लौंग, इलायची, छोटी पिप्पली, काली मिर्च, सोंठ व भुनी हींग ३-३ मासे और भुना हुआ जीरा ६ मा. इनका महीन चूर्ण मिला चटनी जैसा बना रखें। १-१ तो. तक प्रातः सायं लेने से क्षुधा वृद्धि होती, अजीर्ण दूर होता, अजीर्ण जन्य अतिसार उदर वात, शूल आदि नष्ट होते हैं। बालक वृद्धा रोगी निरोगी सबके लिये यह अति स्वादिष्ट एवं लाभप्रद है।

चटनी योग नं० २--अजवायन, लौंग, भुने हुए दोनों जीरे, भुनी हींग, अकरकरा और त्रिकटु १-१ भाग, सेंधा नमक, काला नमक तथा मिश्री ६-६ भाग लेकर चूर्ण कर कांच के पात्र में डाल उसमें किशमिश, छुहारा एवं अद-रक के टुकड़े ६-६ भाग डाल कर पात्र में इतना नीबू रस भर दें कि सब चीजें डूब जावें। पात्र का मुख बन्द कर रख दें। १४ दिन बाद चटनी तैयार हो जावेगी। भोजन के बाद सेवन से भोजन अच्छी तरह यथा समय पच जाता है। —भा. भै. र।

अचार नीबू--यह अचार कई प्रकार से बनाया जाता है। एक विधि ऐसी है—उत्तम पके हुए नीबू साफ कर उनमें चाकू से चीरा कर अन्दर जीरा, इलायची, काली-मिर्च, लौंग, पिप्पली, दाल चीनी, धनियां और सेंधानमक का चूर्ण भर कर चीनी मिट्टी की बरणी में भर उसमें नीबू का रस कुछ गरम कर इतना भर दें कि सब मसाले दार नीबू डूब जावे। इस पात्र को बन्द कर धूप में रख दिया करें। १ मास बाद उत्तम अचार तैयार हो जाता है। यह जितना ही पुराना होता है, उतना ही गुणकारी होता है। भयंकर उदर शूल इसकी एक फांक के खाने से

Scanned with CamScanner

दूर होता है यह उत्तम पाचन शक्ति वर्धक है ।

—आरोग्य-सिन्धु ।

(९) आसव–निम्बुकासव के कई उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे वृहदासवारिष्ट संग्रह में ग्रन्थित किये गये हैं । विस्तार भय से उनमें से केवल १ प्रयोग (प्लीहा विकार नाशक) यहां दिया जाता है—

३०० नीबूओं का रस शुद्ध कोरी मटकी में भर उसमें काला नमक ३५ तो. और पीली कौड़ियां लगभग ५० पीस कर मिला दें । मटकी का मुख अच्छी तरह बन्द कर ऊंचे स्थान में या छीके पर लटका दें । १४ दिन बाद छान कर बोतलों में भर दें । अग्निबलानुसार १ से २½ मा. तक प्रातः सायं सेवन से बढ़ी हुई प्लीहा (तिल्ली) १४ दिन में अवश्य कम हो जाती है ।

—श्री वैद्यवर अचलानन्द जी

(१०) नीबू रस भावित हड़, जीरा, कालीमिर्च आदि – नीबू रस में छोटी हरड़ (बाल हर्र) या श्वेत जीरा, सौंफ, मुनक्का, कालीमिर्च आदि कोई भी अपने पसन्द की वस्तु डालकर सुखा लें । इसमें नमक भी डाला जाता है । इच्छानुसार रस की भावना एक बार से अधिक दे सकते हैं । एक उतम पाचक एवं स्वादिष्ट वस्तु तैयार हो जाती है ।

इसी प्रकार सौंफ भी तैयार की जाती है, जो भोजन के बाद थोड़ी खा लेने से उदर का भारीपन, आभ्यन्तरिक शोथ आदि को नष्ट करती है ।

कालीमिर्चों को इस प्रकार तैयार करें २० तोले कालीमिर्च किसी चीनीमिट्टी के पात्र में डालकर उस पर ५ तोले सेंधानमक महीन पीसकर डालें । फिर गन्धक का तेजाब ५ तोले और नीबू रस १ पाव डालकर पात्र को दूसरे चीनी मिट्टी के पात्र से ढककर रखदें । अच्छी तरह शुष्क होजाने पर मिर्चों को शीशी में भरकर रखदें । भोजन के बाद ५-७ मिर्च चबा लेने से भोजन का पूर्णतया परिपाक होता है । तथा शूल, वमन, हृल्लास (मितली) आदि नष्ट होते हैं । —ह० मौ० मो० अब्दुल्ला साहब ।

(११) नीबू वटी -कागजी या जम्बीरी नीबू-रस १२० तोले, सेंधानमक १२ तोले तथा सौंठ, अजवायन, सज्जीखार, छोटी पिप्पली, घी में सेकी हुई हींग, करंज (कंटक करंज) के सेंके हुए फलों की गिरी, कालीमिर्च, छिला हुआ लहसुन, श्वेत पुनर्नवा की जड़, पीली सरसों, सेका हुआ श्वेत जीरा, अतीस और सामुद्रनमक प्रत्येक २।। तोले चूर्ण करलें । प्रथम-रस को छानकर अमृतबान या कांच के बर्तन में भर उसमें उक्त नमक को मिला, पात्र के मुख पर स्वच्छ श्वेत कपड़ा बांधकर, ४ दिन तक दिन में कड़ी धूप व रात को घर में रखें । ५ वें दिन रस को मजबूत मिट्टी के पात्र में डालकर मंदाग्नि पर पकावें। लकड़ी के डंडे से चलाते रहें । गाढ़ा होजाने पर उक्त शेष १३ द्रव्यों का महीन चूर्ण मिला, नीचे उतार कर शीतल होने पर ३-३ रत्ती की गोलियां बना शुष्क करलें । भोजन के बाद २ गोली शीतल जल से या यथावश्यक दिन में ३-४ बार मुंह में रखकर चूसें । ये उत्तम दीपन पाचन है । मंदाग्नि, अरुचि, उदरशूल, अजीर्ण तथा आध्मान में उत्तम लाभकारी हैं । —सिद्ध योग संग्रह।

यह हमारा कई बार का अनुभूत सिद्ध प्रयोग है।

- सम्पादक।

(१२) दुग्धोपचार में नीबू—अमेरिका के विख्यात प्राकृतिक चिकित्सक श्री बनरिमेक फेडन अपने दुग्ध चिकित्सा ग्रंथ में लिखते हैं कि जिन्हें दूध अनुकूल नहीं पड़ता तथा दूध से घृणा हो जाती है उनका दूध बन्द कर कुछ दिन तक –

एक मीठी नारंगी का थोड़ा सा मुंह खोलकर उसमें नीबू का रस भर कर उस नारंगी को कपड़े में दबाकर दोनों का रस निचोड़ कर पिलाने से नारंगी की मिठास से नीबू की अम्लता सहज ही कम हो जाती है । इस प्रकार पिलाते रहने से उनकी पाचन क्रिया में बहुत कुछ सुधार हो जाता है तथा बहुत सरलता से दूध पचने लगता है घृणा दूर होजाती है ।

नोट—नीबू तैल का योग नीचे छाल के प्रकरण में देखें ।

छिलका—नीबू की छाल दीपक एवं कोष्ठवात प्रशामक है । ताजे छिलकों के निष्पीड़न से एक उड़नशील तैल निकाला जाता है । इसे अंग्रेजी में बरगेमॉट आईल

Scanned with CamScanner

(Bergamot Oil) कहते हैं। यह रंग में हलका पीला या हरा-नीला स्वाद में कुछ कटु होता है। इसका उपयोग एलोपैथी में आमाशय पौष्टिक रूप से एवं बेस्वादु औषधियों को स्वादुदार बनाने के लिए किया जाता है। अफरा, अपचन, दुर्गन्धयुक्त डकारें आना, उदर वेदना, वमन, थोड़े थोड़े दस्त लगना आदि पर शक्कर के साथ १ से ३ बूंद मिला कर दिया जाता है। इससे अर्क और शर्बत भी बनाते हैं, उनका उपयोग रक्तपित्त पर किया जाता है। बाजार के इस नीबू के तैल में ही। गुण एवं अल्प मूल्यों के तैलों की मिलावट की जाती है। यह असली तैल खुला पड़ा रहने से इसका अधिकांश भाग उड़ जाता है। प्रकाश में यह खराब हो जाता है। अतः इसे अच्छी तरह बन्द कर प्रकाश से बचाकर ठंडे स्थान में सुरक्षित रखना चाहिए।

यह तैल (Volatilooil lemonpeel) उत्तेजक, एवं वात नाशक है, आध्मान निवारक, दीपक पाचक, शिरोरोग, विषूचिका, अतिसार, आमवात, गुल्म, कृमि नाशक है। केशों को सुन्दर बनाता है। नेत्रों के लिए अहितकर है। मात्रा ५ से १० बूंद। यह तथा सन्तरे के छिलके का तैल औषधियों को रुचिकारक बनाने के लिए प्रायः प्रयुक्त होते हैं।

इसकी छालका सबसे महत्वपूर्ण चमत्कार प्रमाणित हुआ है कि उससे एक्सरे के विकारों से रक्षा की जासकती है। फ्लोरिडा के वैज्ञानिकों ने छाल का प्रयोग अणुविकरण से पीड़ित चूहों पर किया और आशातीत सफलता प्राप्त की। अब तो अमेरिका में सर्वत्र नीबू की छाल को सुखाकर उसका प्रयोग भोज्य पदार्थों के साथ किया जाता है। इसमें कारबोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा तथा कई खनिज तत्व भी पाये जाते हैं।

उक्त नीबू के तैल १ भाग में १० भाग अल्कोहल मिलाने से जो घोल बनता है उसे नीबू सार, नीबू सत (Essence of Lemon) कहते हैं। इसी रूप में यह तैल अतिस्वल्प मात्रा में भोज्य पदार्थों में मिलाया जाता है। ५०-६० गेलन पानी में इसकी १-२ बूंद ही मिलाने से पानी में इसकी सुरुचि और सुरभि आ जाती है।

छिलकों का शर्बत—ताजे नीबू के छिलकों के बारीक टुकड़ कर २॥ तो. टुकड़ों को २॥ तो. अलकोहल ९०% वाली में मिला ७ दिन पड़ा रहने दें। फिर निचोड़कर छानकर उसमें पुनः अलकोहल मिला ५ से १० तो. तक द्रव बना इसमें सायट्रिक एसिड १३ मा. घोल कर तथा शक्कर की गाढ़ी चाशनी मिला ५० तो. आयतन बनालें। इसे ३० से १२० बूंद तक पाचन सम्बन्धी विकारों में थोड़े से जल में घोलकर देते हैं।

गर्भवती स्त्री के वमन पर—शुष्क छिलकों की भस्म ४ से ८ रत्ती तक शहद या ताजे जल के साथ २-२ घंटे से देते हैं। यह योग बालक तथा वृद्धों के वमन पर भी उपयोगी है।

पाचक क्षार—छिलकों की भस्म को एक कलईदार पात्र में २० गुने पानी में मिला खूब हिलोड़ कर रखदें। थोड़ी देर बाद स्वच्छ पानी ऊपर निथर आने पर, पानी को निथार छान कर मंदाग्नि पर क्षार बनालें। इसे नीबू क्षार कहते हैं। इसे पाचक चूर्णों में मिलाकर सेवन से क्षुधा वृद्धि, उदर शूल, उदर वात, गुल्म आदि दूर होते हैं।

उन्माद पर—छाया शुष्क छिलकों का चूर्ण ६ मा. रात भर ४० तो. पानी में भिगो कर प्रातः उसमें मिश्री मिला पिलावें। इससे उन्माद तथा भ्रमादि में भी लाभ होता है।

सिर पीड़ा—छिलकों को थोड़े पानी में पीस लेप करने से आधे सिर का दर्द भी नष्ट होता है।

वायु शुद्धि के लिए—छिलकों को आग पर रख जलावें। धूम्र से वायु शुद्ध होती है।

छिलका और नमक मिलाकर गरम किये हुए पानी में स्नान करने से शरीर हलका व फुर्तीला होता तथा शरीर शैथिल्य और पीड़ा नष्ट होती है।

छिलके को जीभ पर घिसने से जीभ स्वच्छ होकर रुचि वृद्धि होती है। जीभ के छाले नष्ट होते हैं, नीबू का रस पिलावें।

बीज—विबन्धकारक होने से कई रोगों के उत्पादक हैं तथा भूल से बीज उदर में चले जाने पर वह क्षुद्रान्त्र से सम्बन्धित 'आंत्रपुच्छ' में व्रण पैदा कर देता है, जिसे शल्य

Scanned with CamScanner

क्रिया द्वारा ही यहां से निकाला जा सकता है।

प्रयोग—पित्तज वमन पर—नीबू के बीज ६ माशा पानी में पीस छानकर, युवा को ६ माशे तक की मात्रा में पिलाने से फायदा होता है। —भागीरथ स्वामी।

विसूचिका पर—२-३ बीजों की गिरी का चूर्ण मधुरो देवें। तथा तृषाधिक्य दूर करने के लिए १ तो. सेंधानमक ४ सेर पानी में पकावें, आधा शेष रहने पर नीबू रस ३ मा. मिला मिट्टी के कोरे पात्र में रखें। इसके थोड़ा-थोड़ा पिलाने से प्यास शीघ्र रुक जाती है।

गंज पर—बीज आवश्यकतानुसार लेकर पानी में पीस कर प्रतिदिन लेप करते रहने से केश पुनः उगते हैं, कुरूपता दूर होती है।

बालकों के मूत्रावरोध पर—बीजों का चूर्ण, नाभि में भर ऊपर से शीतल पानी की धारा डालने से तुरन्त पेशाब साफ आजाता है। —गां. औ. र.।

बिच्छू के विष पर—बीजों की मींगी ६ से ८ माशा तक सेंधानमक मिलाकर फंकी लेने से बिच्छू का जहर उतर जाता है। —सचित्रायुर्वेद से।

दाद पर—बीजों को नीबू रस में पीसकर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

उदर कृमि नाशार्थ—बीजों के चूर्ण को देते हैं।

पत्र-प्रयोग—स्तन शैथिल्य पर—नीबू के पत्तों का ५ ग्राम तथा वच, असगंध और पिप्पली प्रत्येक २० ग्रा लेकर पीसकर, भैंस के मक्खन में घोंटकर लेप करें। इसका नियमित प्रयोग करने से कुछ दिन में शिथिलता नष्ट हो जाती है। —आ. विज्ञान

मोटर के धुयें आदि से जी घबड़ाता हो तो पत्रों को मसलकर सूंघने से ठीक हो जाता है।

मूल (जड़) प्रयोग—संतानोत्पत्ति के लिए—इसकी जड़, शिवलिंगी के बीज, असगंध, नागकेशर, मोरशिखा की जड़ तथा पलाश पत्र समभाग महीन चूर्ण कर ६ ग्रा. की मात्रा में प्रातः सायं गौ दुग्ध के अनुपान से सेवन करावें। —आ. विज्ञान

बालकों के वमन पर—बालक दूध पीकर उलट देता हो तो जड़ को दूध में घिसकर पिलावें।

अतिसार पर—इसकी जड़ को अनार की जड़ केशर के साथ घोटकर देने से शीघ्र लाभ होता है।

— धन्वन्तरि

नीबू बिजौरा (Citrus medica-var-Typica)

इस मध्यम कद के झाड़ीनुमा वृक्ष के पत्र, पुष्प, केशर आदि कागजी नीबू के समान ही होते हैं। किन्तु पत्र कुछ बड़े चौड़े और लम्बे; पुष्प—प्रायः बहु संख्यक, श्वेत, सुगन्धित; फल—लम्बोत्तरे, माता के स्तन के समान, अग्र भाग में स्तन के चूचुक जैसे उभार युक्त होने से ही शायद इसे संस्कृत में मातुलुङ्ग तथा कागजी नीबू की अपेक्षा कुछ बड़े, लम्बे से, अधिक बीजों से युक्त होने से बीजपूर (बिजौरा) कहते हैं। फल वजन में २० से ४० तो० तक छोटे, बड़े अनियमित आकृति के भी होते हैं। छोटे फल मौसम्बी जैसे होते हैं। फल की छाल प्रायः छोटे-छोटे उभार युक्त, मोटी, मृदु, सुगन्धित, स्वाद में अम्लयुक्त कुछ तिक्त सी होती है। फल पकने पर पीला, सुन्दर रङ्गदार हो जाता है।

फलों के रस भेद से मधुर और अम्ल ऐसी इसकी दो जातियां है।

इसके वृक्ष प्रायः समस्त भारतवर्ष में बाग बगीचों में लगाये जाते हैं। दार्जिलिंग, काश्मीर, शिमला, मंसूरी आदि उच्च पर्वतीय स्थानों की ४-५ हजार फीट की ऊंचाई पर भी इसकी खेती की जाती है। बंगाल, आसाम और दक्षिण भारत में भी यह खूब होता है।

नोट नं० १—अमलवेत जिसका वर्णन भाग १ में दिया गया है वह बिजौरा नीबू की ही एक जाति विशेष है वह अत्यधिक अम्ल होता है।

नोट नं० २—चरक के हृद्य एवं छर्दि निग्रहण गण में इसकी गणना है तथा सुश्रुत के सूत्र स्थान अ० में इसका गुणधर्म का वर्णन है।

नाम—

संस्कृत—मातुलुङ्ग, बीजपूर, रुचक, सुकेसर इत्यादि

Scanned with CamScanner

हिन्दी—नीबू, बिजौरा, बड़ा नीबू, तुरञ्ज। मराठी—महालुङ्ग, मोटा लिंबू। गुजराती—बिजोरूं। बंगला—छोलंग नीबू, बेगपूरा, टोपा नेबू। अंग्रेजी—सिट्रान (Citron); एडम्स एपल (Adams app'e) सेड्राट (Cedrat), मेलान लाईम (Melon Lime)। लेटिन—साइट्रस मेडिका टिपिका।

रासायनिक संगठन—

कागजी नीबू में पाये जाने वाले प्राय: सभी द्रव्य निम्बुकाम्ल, गन्धकाम्ल तथा शर्करा आदि इसमें पाये जाते हैं। इसके रस का साधारण नियमित रूप से प्राय: कम उपयोग होता है। आंत्र की श्लष्मिक कला पर इसके रस का प्रक्षोभक प्रभाव पड़ता है। रस से निर्मित साइट्रिक एसिड (Citric acid) जो कि दानेदार रवे के रूप में प्राप्त होता है उसी का विशेष उपयोग प्राय: किया जाता है। फलत्वक् में एक उड़नशील सुगन्धित तैल होता है जिसमें साइट्रीन (itrene) ७६%, साइट्रौल (Citrol) ७-८%, साइमीन (Cymene) तथा साइट्रोनेलल (Citronellal) तत्व होते हैं।

निम्बू बिजोरा
CITRUS MEDICA. LINN.

प्रयोज्यांग फल की फांक, रस, छिलका, पुष्प-केशर, बीज, मूल, पत्र।

गुणधर्म व प्रयोग—

मधुर फल-लघु, स्निग्ध, हृद्य, रक्तपित्त शामक, अम्लफल-तीक्ष्ण, हृदयोत्तेजक, रूक्ष होता है। तथा दोनों फल प्राय: शोधक, दीपन एवं अरुचि, वमन, अग्निमांद्य, अजीर्ण, यकृद्विकार, श्वास, कास, हिक्का, पिपासा, शूल, गुल्म, अर्श आदि में प्रयुक्त होते हैं। मधुर का विपाक मधुर होता है, तथा वात पित्तशामक है। अम्ल का विपाक अम्ल एवं कफ वातशामक है। वीर्य में दोनों प्राय: अनुष्ण हैं।

वृक्ष से तोड़े हुए कच्चे फलों की अपेक्षा, वृक्ष पर ही पके हुए फल उत्तम गुणदायक होते हैं। कच्चे फल त्रिदोषवर्धक एवं रक्त दूषित होते हैं। पके फल मीठे, कुछ कसैले, वर्णकर, हृद्य, बल्य, पौष्टिक, पाचक तथा शूल, अजीर्ण, विबन्ध, वात, कफ, श्वास, कास, अग्निमांद्य, अरुचि आदि नाशक हैं।

फलों का छिलका—दुष्पाच्य, तिक्त रस प्रधान एवं स्निग्ध, गुरु, उष्ण, तथा कृमि व वात कफ नाशक है। छिलकों का रस-अत्यन्त शीत स्निग्ध, स्वादु, गुरु, धातुवर्धक, कफकारक एवं वातपित्त हारक है। छिलके का भीतरी भाग मधुर रस प्रधान तथा वात, शूल, कफ, वमन, अरुचि नाशक है।

पुष्प—दीपन, ग्राही, लघु, शीतल तथा रक्तपित्त नाशक है।

केसर—पुष्पों की केसर दीपन, बुद्धिवर्धक, लघु, ग्राही, रुचिप्रद, तथा गुल्म, उदर, श्वास, कास, हिक्का, वात, शोष, मदात्यय, विवन्ध, अर्श, वमन आदि नाशक है।

केसर से निकाला गया रस—पार्श्वशूल, बस्तिशूल, कफ, अरुचि, वात, श्वास, कास, वमनादि नाशक है।

मूल—दीपन, ग्राही, लघु, शीत, संकोचक, वेदनाशामक

Scanned with CamScanner

तथा वात, रक्तपित्त, अर्श, कृमि, विसूचि, विबन्ध, शूल आदि नाशक है।

गूदा—फल का गूदा शीतल, रूक्ष है।

रस और गूदे के प्रयोग-ऋतु अनुसार सेवन विधि—वर्षा में सेंधानमक के साथ, शरद में मिश्री या चीनी, हेमन्त में नमक, अदरख, हींग, कालीमिर्च द्वारा छौंके हुए तैल सम्मिश्रित बिजौरा नीबू के रस का सेवन करें। तथा इसी प्रकार शिशिर और वसंत में भी यह सेवनीय है। ग्रीष्म में गुड़ के साथ इसका उपयोग अति लाभप्रद है।
—(राज निघंटु)।

(१) दाह, वमन आदि पर —पित्ताशय में रहने वाला पित्त, यदि आमाशय आदि स्थानों में आकर इन विकारों को करे तो इसका रस आधा तो. शहद और जल मिला शर्बत बनाकर आवश्यकतानुसार सौंठ, मिर्च व पिप्पली का चूर्ण मिला सेवन करने से पित्त का शमन होकर वह पुनः पित्ताशय में आजाता है। —च. चि. अ. २१।

अथवा—इसके रस में मिश्री मिला पकाकर शर्बत की चाशनी बना रखें। तथा इसमें जल मिला पीवें।

अथवा - रस में लाजा (खील), शक्कर, शहद तथा पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन करने से वमन विकार शांत होता है। (बंगसेन)।

यदि वमन वातज हो तो रस में इलायची, अदरख यह सौंठ का चूर्ण मिलाकर उसमें शहद और खांड डालकर अवलेह सा बनाकर चाटने से लाभ होता है —ग. नि.

(२) हिक्का तथा कास - रस (२-३ तो.) में थोड़ा काला नमक और शहद मिलाकर पीवें। अथवा रस में सौंठ, आमला, पिप्पली चूर्ण तथा शहद मिला चटावें।
— भा. प्र. तथा वृ. मा.।

कास—रस में भुनी हुई हींग, त्रिफला, मुलैठी व मिश्री समभाग का महीन चूर्ण मिलावें तथा सबको घृत व शहद में मिला चटाते रहने से पित्तज खांसी नष्ट होती है।
—वृ नि. र.।

(३) गुल्म, यकृद्विकार तथा कामला पर—हींग, अनारदाना, बिड लवण और सेंधा नमक के चूर्ण मे इसका रस (४ गुना) मिला सुरा मण्ड के साथ सेवन से वात गुल्म में लाभ होता है। —भा. भै. र.

यकृद्विकार में इसका गूदा २ तो. कालानमक ६ मा. के साथ दिन में दो बार सेवन कराते हैं। यही प्रयोग कामला को भी नष्ट करता है।

(४) हृदय, पसली तथा बस्ति (मूत्राशय एवं वृक्क) के शूल पर--रस में जवाखार और शहद मिलाकर सेवन से शूल नष्ट होते हैं। इससे कोष्ठगत दुस्साध्य वायु का नाश होता है। --शा. सं. तथा यो. र.

रस के अभाव में निम्बुकाम्ल (सायट्रिक एसिड) २ रत्ती की मात्रा के साथ शहद एवं यथावश्यक जल मिलाकर पिलावें।

यदि क्षय का भी विकार हो, तो रस में पिप्पली चूर्ण और मक्खन मिला सेवन करावें।

यदि कफज शूल या यकृत्क्षय जन्य शूल हो तो इसका, आमले का और संहजने की जड़ की छाल का रस समभाग (१-१ तो.) एकत्र मिला उसमें सेंधानमक, कालीमिर्च और जवाखार तथा शहद मिलाकर सेवन करावें-हा. सं.

(५) सन्निपात पर—इसके तथा अदरख के मन्दोष्ण रस में त्रिलवण (सेंधा, काला और बिड़लवण) का चूर्ण मिलाकर नस्य देने से कफ ढीला होकर निकल जाता है तथा शिर पीड़ा, हृदय शूल, कंठ एवं मुख का दर्द, पार्श्व पीड़ा आदि नष्ट हो जाती है। तथा सन्निपात रोगी को शांति प्राप्त होती है। —वृ. नि.

ज्वर की अवस्था में रोगी को तालुशोष और [illegible] विशेष हो तो इसके रस में समभाग शहद और [illegible] तथा थोड़ा सेंधा नमक का चूर्ण मिला सिर पर [illegible] करें। —वं०

(६) अश्मरी, अपस्मार तथा अन्यान्य विकारों [illegible] अश्मरी में —इसके रस में सेंधा नमक मिलाकर [illegible] फल की फांकों पर सेंधा नमक बुरक कर दिन में [illegible] चुसावें। —व०

अपस्मार में—इसके रस में नीम पत्र रस [illegible] निर्गुण्डी (संभालू) पत्र रस मिला कर ३ दिन तक [illegible] देवें। व० गु०। अथवा रस में नकछिकनी चूर्ण [illegible] कर नस्य देते हैं।

Scanned with CamScanner

कर्णस्राव पर—रस में सज्जीखार का चूर्ण मिला कान में टपकावें। —ब० गु०

नोट—गूदे के मुरब्बा का योग विशेष योगों में देखिए।

नोट—रस के द्वारा निर्मित साइट्रिक-एसिड पाचक संस्थान सम्बन्धी अनेक विकारों के निवारणार्थ अनेक पाचक चूर्णों में तथा ऐलोपथिक मिक्श्चरों में मिलाया जाता है।

छिलका—फलों के छिलकों का गुणधर्म ऊपर दिया गया है। यहां कुछ प्रयोग दिये जाते हैं—

मुख दुर्गन्ध नाशार्थ—छिलके को एक बार भी चबा लिया जाय तो मुख की दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है तथा अपानवायु शुद्ध हो जाती है। —भावप्रकाश

कृमि रोग पर छिलकों का क्वाथ पिलाते हैं। छिलकों के चूर्ण को तिल तैल में मिलाकर सिद्ध किया हुआ तैल उत्तेजक रूप में प्रयुक्त होता है।

कहा जाता है कि शराब के भरे पात्र में छिलकों को भिगोकर रख देने से वह सिरके के रूप में बदल जाता है।

छिलकों का मुरब्बा उत्तम बनता है। खांड व मधु में सुरक्षित किया हुआ यह मुरब्बा प्रवाहिका आदि रोगों में प्रयुक्त होता है। आगे विशिष्ट योगों में मुरब्बा देखें।

पुष्प केशर—गुणधर्म ऊपर देखिये।

(७) वात कफज मुख रोग, मुखशोष, मुख की जड़ता, अरुचि पर—पुष्प केशर के साथ सेंधा नमक और काली मिर्च के चूर्ण को मुख में रखने से लाभ होता है। —वङ्गसेन

उक्त ३ द्रव्यों को एक साथ पीसकर गोली बना मुख में रख चूसना चाहिए।

ज्वर मुक्ति के बाद मुख में जो विरसता बनी रहती है उस पर भी उक्त योग लाभकारी है। अथवा—

पुष्प केशर को पीसकर उसमें सेंधा नमक और शहद मिला कल्क को मुख में कवल रूप में धारण करें। —सु० उ० अ० ४०।

इस कल्क को तालु पर लेप करने से शीघ्र ही पित्तज तृषा शांत होती है। —हा० सं०।

अथवा पुष्प केसर २-३ माशा तक लेकर १ सेर जल में डाल खूब गरम कर अथवा चाय के समान फाण्ट बनाकर कुल्ले करवाने से किसी भी कारण हुई अरुचि नष्ट होकर, मुख शोधन हो जाता है। भोजन में रुचि बढ़ती है। गर्भवती स्त्रियों की अरुचि, हृल्लास (जी मिचलाना) आदि कष्टों का निवारण भी इस योग से हो जाता है। —हा० सं०

(८) मसूरिका वा चेचक पर—पुष्प केसर (लगभग ४ रत्ती) को सौवीरक कांजी[1] (१० तो०) में पीस कर लेप करने से चेचक के दाने शीघ्र ही पककर निकल आते हैं, दाह शान्त होती तथा जो दाने निकल चुके हैं वे शीघ्र ही मुरझाने लगते हैं।

प्रवाहिका अर्श पर भी पुष्पकेसर का प्रयोग होता है।

मूल—गुणधर्म ऊपर देखिये। इसका क्वाथ संकोचक तथा यकृत-विकृति को दूर करता है। इससे पित्तज वमन एवं पैत्तिक ज्वर में भी लाभ होता है। यह क्वाथ बच्चों के दूध उगलने में विशेष लाभदायक है। इसके वृक्ष की जड़ जो उत्तर की ओर गई हो, उसका ४ अंगुल का टुकड़ा मङ्गलवार के दिन काटकर, कच्चे सूत में पिरोकर, गूगल की धूप दे, बालक के गले में बांधते हैं; इससे उसके दूध उगलने का विकार दूर होता है।

(९) वमन पर—इसकी जड़ की छाल को पुटपाक

---

[1] सौवीरक कांजी—गेहूं अथवा जौ भिगोकर छिलका निकले हुए जौ को कूट कर ८ गुने पानी में पका, सन्धान विधि से बन्द कर रखदें। शरद व उष्ण काल में ६ दिनों में, बसन्त व वर्षा में ८ दिनों में तथा हेमन्त व शिशिर में १० दिनों में सन्धान सिद्ध होकर जो कांजी तैयार होती है उसे सौवीरक कांजी कहते हैं। वह ग्रहणी, अर्श एवं कफ विकारों में लाभकर है। भेदक, दीपक तथा उदावर्त, अङ्गमर्द, अस्थिशूल, आनाह, शिरोरोग व शिथिलता नाशक है। केशों को हितकर, बल्य एवं सन्तर्पण है।

कोई-कोई इस कांजी के स्थान में, इस योग के लिए शाली धान्य के विपिटा, चौरा, चिवड़ा (पृथुक) २ तो० को रात्रि में १० तो० जल में भिगो, प्रातः उसमें पुष्प केसर मिला कर पीसकर लेप करते हैं। यह भी उत्तम है।

Scanned with CamScanner

विधि से पकाकर रस निकाल शहद मिलाकर पीने से सर्व दोषज भयङ्कर वमन भी नष्ट होती है। —योग र०

अथवा जड़ को जल में घिसकर शहद मिलाकर भी पिलाते हैं।

(१०) ज्वर पर—जड़ की छाल, आमला, हरड़, सोंठ और पीपलामूल के क्वाथ में जवाखार मिला कर कफ ज्वर में १२ वें दिन पीने से ज्वर का उत्तम पाचन हो जाता है— शा.ध. [भै. र. में आमला व हरड़ के स्थान में ब्राह्मी पत्र हैं]।

शीतांग सन्निपात में इसकी जड़, चिरायता, पीपलामूल देवदारू, दशमूल की प्रत्येक औषधि, अजमोद व सौंठ समभाग लेकर क्वाथ बना कर पिलाने से लाभ होता है।
—वृ. नि. र.।

अभिन्यास सन्निपात हो तो जड़, पाषाण भेद, बेल की छाल, कटेरी, पाठा, व अरण्डमूल समभाग का क्वाथ सिद्ध कर उसमें सेंधानमक और गोमूत्र मिलाकर पिलावें। इससे आध्मान व शूल भी नष्ट होता है। —वं. से.।

(११) रक्त पित्त, रक्तातिसार, रक्तार्श आदि पर जड़ की छाल और फूलों को लेकर चावल के धोवन के साथ पीस कर थोड़ा जल व शहद मिला पिलावें।
—सु. उ अ. ४७

नाक से रक्त स्राव (नकसीर) हो तो उक्त योग में शहद मिलाने की आवश्यकता नहीं है।

(१२) शूल पर—जड़ चूर्ण को (४ से १२ रत्ती या १ तो. तक) घृत के साथ मिश्रित कर सेवन कराने से वातज शूल नष्ट होता है। —भै. र.।

जड़ (अथवा फल) के रस को शहद और जवाखार मिला कर सेवन से कुक्षिशूल, हृदयशूल तथा बस्तिशूल दूर होता है।

मक्कल शूल (प्रसवोत्तर गर्भाशयगत शूल विशेष) में होने वाली शिर पीड़ा पर इसकी जड़ के साथ मल्लिका (बेला या मोगरा की जाति विशेष जिसमें मोती जैसे छोटे फूल आते हैं इसे अतिमुक्ता या मोतिया कहते है) का जड़, बेल की छाल, और नागरमोथे को महीन पीस कर सिर पर लेप करने से यह शिरोरोग दूर होता है।
—वं. से.।

दंत शूल पर—जड़ के साथ समभाग वायबी[illegible] लेकर थोड़े पानी के साथ पीस कर बत्ती बनावें, [illegible] दांतों के कृमिदन्त के खोखले स्थान में भर देने से [illegible] पीड़ा नष्ट होती है। —[illegible]

नोट—त्रिदोषज शूल आदि पर आगे विशिष्ट [illegible] में "घृत बीज-पूरादि" देखें।

(१३) कृमिरोग पर—इसकी जड़ के साथ [illegible] बायबिडंग, निसोत, अजमोद और नीम पत्र समभाग [illegible] (मात्रा १ तो. तक) मिला गोमूत्र के साथ (या [illegible] पानी के साथ) पीस कर पीवें। तथा रोगी को ज्वर [illegible] समान पथ्य देवें। —हा. सं.।

(१४) शोथ पर—जड़ के साथ अरनी मूल, देवदारू, सौंठ, कटेरी और रास्ना समभाग मिश्रित चूर्ण कर ([illegible] में या ग्वारपाठा के रस में) पीस कर लेप करने से [illegible] की वातज शोथ नष्ट होती है। —[illegible]

यदि गल-शोथ हो (जो विशेषतः ज्वर की अवस्था [illegible] होती है) तो जड़ के साथ उक्त द्रव्यों में से कटेरी [illegible] स्थान में चव्य तथा रास्ना के स्थान में लाल चित्र[illegible] (अन्य ग्रंथों के अनुसार जटामांसी) लेकर लेप करें।
—भै. र.

(१५) बल तथा कान्ति वर्धनार्थ--जड़ के साथ कचूर, रास्ना, त्रिकटु, हरड़, सज्जीखार, जवाखार और पांचों नमक (सेंधा, सामुद्र, बिड, संचल, व कांच लवण कचलोना) समभाग चूर्ण कर (१½ से ३ मा. तक) मन्दोष्ण पानी के साथ सेवन से बल, वर्ण व अग्नि की वृद्धि होती है। —वा. भ. अ. १० ग्रहणी अधिकार

मुख की कान्ति के लिये—जड़ के साथ मनसिल चूर्ण घृत तथा गाय के गोबर का रस समभाग एकत्र मिला कर लेप करने से पिडिका, व्यङ्ग तथा कलौंछ आदि दूर होकर कान्ति वृद्धि होती है। —शा. [illegible]

(१६) गर्भधारणार्थ तथा सुख प्रसवार्थ-इसकी जड़ (या बीजों के साथ नागकेशर) का चूर्ण स्त्री को मासिक धर्म होने के बाद दूध के साथ पिलाने से वह गर्भ धारण कर लेती है। —ग. नि.

Scanned with CamScanner

इसकी जड़ और मुलेठी समभाग का चूर्ण [१-३ मा.] घृत के साथ (या समभाग मधु के साथ) पिलाने से सुख पूर्वक प्रसव होता है। सुख प्रसवार्थ जड़ को कमर में बांधते हैं। —यो. र.।

(१७) शर्करा (अश्मरी कण) पर —जड़ को शीतल पानी में घिस कर पीने से शीघ्र ही शर्करा मूत्र के साथ निकल जाती है। —ग. नि.।

बीज – गुरु, दुर्जर, तिक्त रस प्रधान, उष्ण वीर्य, दीपन, उत्तेजक, बल्य, आर्त्तवजनन, लेखन, शोथहर, विषघ्न, गर्भप्रद तथा अर्श, पित्त विकार, दाह तथा कफ नाशक हैं।

शोथ तथा चर्म विकारों पर एवं बिच्छू के दंश पर– बीजों का लेप करते हैं। गर्भधारणार्थ—बीजों को दूध के साथ पीसकर ऋतुवती स्त्री को पिलाते हैं। गर्भाशय शुद्धि के लिये बीजों को सेमल कन्द के साथ दूध में पीस छान कर रजस्वला होने पर ४ दिन तक सेवन कराते हैं। सन्तति निरोधार्थ इसके १ बीज के साथ १ एरण्ड बीज, दोनों के चूर्ण को घृत के साथ देते हैं।

पत्र––स्वेदल तथा वेदनाशामक हैं। वेदनायुक्त स्थान में पत्तों को गरम कर-बांधते हैं। ज्वर में पत्तों का फाण्ट देते हैं। आमवात आदि रोगों में होने वाली शरीर की जकड़न पर पत्तों का बफारा देते हैं।

(१८) पञ्चांग गुल्म पर— इसके पंचांग को छाया शुष्क कर चूर्ण करें तथा इसी नीबू के रस की भावना देकर छोटी अंगुली के एक पोर के बराबर वर्ति बनालें तथा कुछ (भावित द्रव्य की) छोटे बेर की जैसी गोलियाँ बनाकर, वात गुल्म तथा आध्मान रोग में गुदा द्वारा वर्ति का प्रयोग करें तथा गोली का मुख द्वारा सेवन करावें। इस आयोजना से आंत्र स्थित दूषित वायु का उत्सर्जन एवं समस्त पाचक संस्थान का वायु शमन होकर वायु-गोला अफरा रोग की शांति होती है।[१]

— च० चि० अ० ५

अर्क—भबके द्वारा निकाला हुआ इसका अर्क उप-शामक द्रव्य के समान काम में लिया जाता है।

नोट—मात्रा--फल-स्वरस ½-१ तो., पुष्प केशर चूर्ण ५-१० रत्ती। बीज चूर्ण १-२ मा.। मूल-त्वक-क्वाथ ४-८ तो.। फल-त्वक् तैल आधा-तीन बूंद।

विशिष्ट योग–

(१) वटी-बीजपूरादि—चित्रक कालीमिर्च, सेंधा-नमक, हरड़, अकरकरा, आमला, अजवायन व सोंठ १-१ भाग का चूर्ण कर बिजोरा नीबू का गूदा १० भाग में एकत्र खूब खरल कर (खरल करते समय इसी नीबू के रस को उसमें डालते जावें) बेर जैसी गोलियां बना लें। १ या २ गोली खाने से उदर शूल, आध्मान आदि उदर विकार नष्ट होते हैं।

यदि कफ प्रकोप की विशेषता हो तो—त्रिकटु, हींग, सेंधानमक, संचलनमक, बिडनमक, श्वेत जीरा व कालाजीरा इनके समभाग मिश्रित चूर्ण को इसी नीबू के रस की भावना देकर गोलियां बनालें। ये गोलियां कफ रूपी हाथी के लिए सिंह के समान हैं। —भा. भै र.।

(२) घृत-बीजपूरादि–बिजौरे का रस, दही, शुष्क मूली व खट्टे बेर का क्वाथ, अनार का रस और घृत २-२ सेर। कल्कार्थ-वायविडंग, सेंधानमक, यवक्षार, पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चित्रक मूल, सौंठ, अजवायन, पाठा और मूली इन सबका कल्क २० तो. लेकर सबको एकत्र मिला घृत सिद्ध करलें। इसके सेवन से हृदय व पसली का शूल, स्वरभंग, हिक्का, श्वास, भगन्दर, बध्म, प्रमेह, अर्श तथा वातव्याधि नष्ट होती हैं। –ग. नि.।

---

[१] चरक के उक्त वर्ति व गुडिका प्रयोग के प्रसंग में जो (चूर्णानि मातुलुङ्गस्य भावितानिरसेन वा…) पाठ है, उसमें इस नीबू के रस की भावना देने के लिए वास्तव में उसी प्रसंग के ऊपर दिए हुए घृतों के साधनार्थ जो औषधि-गण कहे गये हैं, उनमें से किसी एक गण (हमारे अनुभव से हपुषाद्य घृत की औषधियों) का चूर्ण लेना उचित है।

हमने तो प्रसिद्ध प्रोफेसर आयुर्वेदाचार्य राधाकृष्ण पाराशर कृत 'वृक्ष विज्ञान चिकित्सा' नामक पुस्तक के आधार पर उक्त पंचाङ्ग चूर्ण की बात लिखी है। –सम्पादक।

Scanned with CamScanner

घृत-बीजपूर मूलादि-क्वाथार्थ-बिजौरे की जड़, अरंड-मूल, रास्ना, गोखरू, तथा खरेंटी मूल प्रत्येक २० तोले और जौ ६४ तोले सबको कूटकर १२ सेर ६४ तोले जल में पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें। कल्कार्थ—धनियां, हरड़, त्रिकटु, हींग, कालानमक, बिड़नमक, सेंधा, जवाखार, सज्जीखार, अम्लवेत, पोखरमूल, अनारदाना, तिन्तडिक (वृक्षाम्ल, विषंबिल), श्वेतजीरा, व काला-जीरा प्रत्येक १-१ तोले सबको पानी के साथ पीसलें। फिर घृत ६४ तो. मस्तु (दही का तोड़) और उक्त क्वाथ तथा कल्क एकत्र मिला मंदाग्नि पर घृत सिद्ध करलें।

इस घृत (मात्रा ½ तो.) के सेवन से त्रिदोषज शूल, वातशूल, यकृच्छूल, गुल्म, प्लीहा, हृच्छूल, पार्श्वशूल, तथा किसी विशेष अङ्ग में उत्पन्न हुआ शूल नष्ट होता है। यह हृद्य, अग्निप्रदीपक एवं बल, वर्ण को बढ़ाने वाला है। —भै. र.।

(३) मुरब्बा-बिजौरा—इस नीबू के अन्दर की फांकों को निकाल कर उन्हें जल की बाष्प पर स्वेदित कर, शक्कर की गाढ़ी चाशनी में डालकर रखदें। उत्तम मुरब्बा तैयार होता है, यह भ्रम एवं पित्त विकार नाशक है। इसमें इलायची, जावित्री आदि सुगन्धित मसालों को डाल कर कई वर्षों तक रखा जाता है।

फल-त्वक का भी उत्तम मुरब्बा बनाया जाता है—फल के छिलके पानी में उबाल लें, मृदु होने पर निकाल कर पानी निचोड़ दें तथा खांड की चाशनी में डाल दें। इसे यूनानी में 'मुरब्बा-तरंज' कहते हैं। मात्रा-२ से ४ तो. यह दीपक, पाचक तथा हृदय व आमाशय को बलप्रद है।

(४) पाक-बिजौरा—बाष्प-स्वेदित इसकी फांकों को छाया शुष्क कर घृत में तल लेवें तथा वंशलोचन ८ भाग, इलायची ४ भाग, दालचीनी २ भाग, पिप्पली १ भाग, एवं लौंग, जायफल, केशर, जायपत्री आदि सब मसाले ½-½ भाग एकत्र चूर्ण कर सबको मिश्री की गाढ़ी चाशनी में डालकर, थोड़ी देर पकाकर किसी कलईदार थाली में निकाल लें। इसे नित्य प्रातःसायं १ या २ तोले तक सेवन करें। उत्तम गुणदायक है। —व. गु.।

नोट – अन्यान्य उत्तमोत्तम पाकों को हमारे 'बृहत्पाक संग्रह' ग्रन्थ में देखिये।

नीबू जम्बीरी (Citrus Medica var Limonium)

इसके वृक्ष कागजी या बिजौरा नीबू के वृक्ष जैसे ही होते हैं। पत्र-अण्डाकार तथा वृन्त की ओर पक्षयुक्त, पुष्प-बिजौरा के पुष्प जैसे, फल-लम्बगोल, विशेषतः नारङ्गी जैसे, अधिक गूदेदार, अति अम्ल, फल की छाल खुरदरी, उभारयुक्त होती है।

यह प्रायः समस्त भारत में बगीचों में लगाया जाता है। मध्यप्रदेश, कुमायुं तथा उत्तर भारत में अधिक होता है।

नोट—इसकी वृहत् और लघु आकृति भेद से दो जातियां हैं। वृहत का फल कुछ बड़ा तथा छाल जाड़ी (मोटी) होती है, इसे जम्बीर कहते हैं। लघु के फल अपेक्षाकृत छोटे एवं छाल पतली होती है। इसे स्वल्प जम्बीर या जम्बीरिका कहते हैं।

नोट नं० २—पाश्चात्य देशों में कागजी नीबू की अपेक्षा इसका अत्यधिक व्यवहार होता है तथा इसकी उपज भी वहां खूब की जाती है। गुणधर्म की दृष्टि से कागजी तथा जम्बीरी नीबू में कोई विशेष अन्तर नहीं है। किंतु कागजी नीबू अधिक दिनों तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता तथा यह नीबू ठंडे स्थानों में रखने पर ६ मास से भी अधिक दिनों तक ताजा रह सकता है।

नाम—

सं.—जम्बीर, जम्भ, दन्तशठ (अत्यम्ल होने से यह खाते समय दन्तहर्ष पैदा करता है)। हिं.—नीबू जंबीरी, बड़ा नीबू, पहाड़ी नीबू, गुलगुल, खट्टा। म.—ईड लिंबु। गु.—गोदड़िया लिंबु, मोटु लिंबु। बं.—जामीर लेंबू, कर्न नेबू। अं.—दि लेमन ऑफ इंडिया (The Lemon of India)। ले.—साइट्रस मेडिका-लाईमोनम।

Scanned with CamScanner

रासायनिक संगठन—

फल के रस में १०० सी. सी. रस में लगभग ३.७ प्रतिशत साइट्रिक एसिड (निम्बुकाम्ल) ग्लाकोसाइड्स और हेस्प्रेरिडीन (Hesspreridine) पाये जाते हैं। फल के छिलकों के बारीक चूर्ण से तिर्यक पातन यंत्र द्वारा या सामान्य विधि द्वारा एक हलके पीतवर्ण का उड़नशील तैल प्राप्त किया जाता है, इसे जम्बीर तैल, साइट्रोनिला आयल (Citronila oil) कहते हैं। इसके वृक्ष के तने की छाल में तथा विशेषतः जड़ की छाल में जेरेनिओल (Geraniol) लियू आलूल (Liualool) आदि पाये जाते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—फल रस, छिलका, पत्र, तैल।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, तीक्ष्ण, अम्ल, अम्ल-विपाक, उष्णवीर्य, कफवात शामक, रोचन, दीपन पाचन, अनुलोमन, पित्तसारक, हृद्य, कफनिःसारक तथा अरुचि, तृष्णा, वमन, अग्निमांद्य, अजीर्ण, विबन्ध, यकृद्विकार, हृदयशूल, आम-दोष, मुख-विरसता, कास, श्वास, उत्क्लेश (उबकाई) कृमि रोगों में प्रयुक्त होता है। चरक ने इसे रक्तपित्त कर कहा है (दन्तशठमम्ल रक्तपित्त करम्)। —च. सू. अ. २७

पका फल यदि मधुर रस प्रधान हो तो कफज विकार शामक, रक्त पित्त दोष नाशक, वर्ण्य, रुचिवर्धक, बल्य एवं धातु संतर्पक होता है।

यदि अम्ल, तुवर एवं तीक्ष्ण हो तो मल सारक, उष्ण, पित्तकफ शामक तथा पाचक है।

(१) पित्तज ज्वर में पिपासा शांति के लिए—इसके रस ६ माशा में शक्कर और जल मिलाकर पिलाते हैं।

विषम ज्वर में—जल ३० तो. में १ या आधे नीबू का रस मिला पकावें। १० तो. शेष रहने पर उसे रात भर खुली हवा में सुरक्षित रखें। प्रातः निराहार इसे पिलावें। तीव्र आमवात एवं गठिया में तथा तीव्र उष्ण प्रदेश-जात प्रवाहिका एवं अतिसार आदि में भी यह लाभ कारी है। --नाड़कर्णी।

(२) आमातिसार में रस को पिलाने से, दस्तों के साथ आंव निकल कर २-३ दिनों में आंत्र का परिशोधन होकर अतिसार बन्द होता है।

(३) स्कर्वी रोग में रस में पानी मिला बार-बार कुल्ले कराते हैं।

(४) अम्लपित्त में—ताजे जंबीरी रस को सायं काल पिलावें। अजीर्ण, वमन एवं पैत्तिक सिर दर्द में भी इसी प्रकार देते हैं। —(चक्रदत्त)

(५) चेचक या मसूरिका की प्रारम्भिक अवस्था में इसके रस में गुड़ मिला सेवन कराने से दाने शीघ्र ही निकल आते हैं। ज्वर उग्र रूप नहीं धारण करता। —वैद्य-मनोरमा।

(६) कर्णशूल में—इसके रस में थोड़ा घृत मिलाकर तथा आग पर पकाकर कान में डालने से शूल नष्ट होता है। —वै. म.।

(७) नीला थोथा (तूतिया) के विष में--रस में शक्कर मिला पिलाते हैं। कुछ मादक विषों पर यह एक

बड़ा निम्बू (जम्बीरि)
CITRUS MEDICA LINN.VAR LIMONUM.

Scanned with CamScanner

प्रतिविष है ।

(८) गीली खुजली या पामा में--रस को बाल्द के साथ मिलाकर लगाते हैं ।
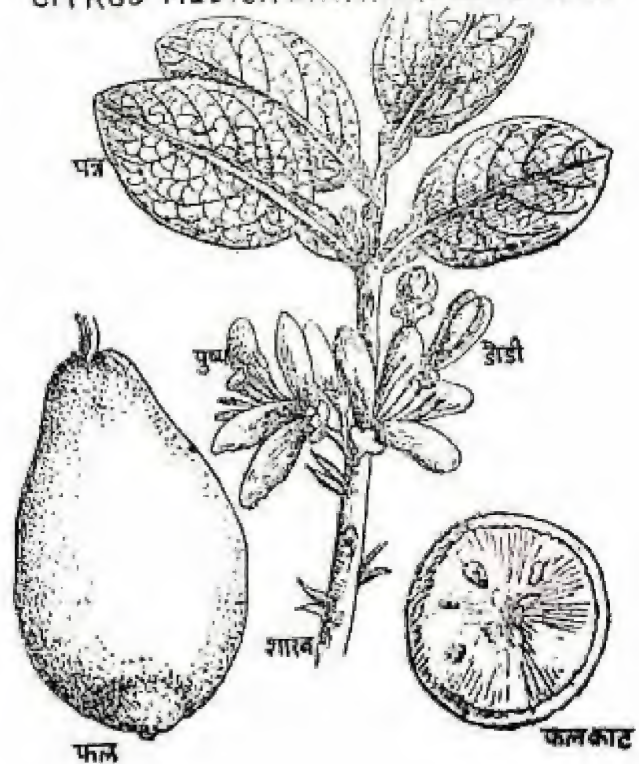
(६) आमवातिक विकार जैसे पार्श्वशूल, गृध्रसी, कटिशूल, नितम्बसन्धि की वेदना आदि में रस के साथ यवक्षार और शहद मिलाकर सेवन करावें । —शा. ध. ।

नोट--शेष प्रयोग कागजी नीबू के समान ही हैं ।

छिलका--उष्ण, कषाय, तीक्ष्ण तथा कृमिनाशक है ।

पके फलका छिलका--दीपन, शांतिदायक तथा आध्मान नाशक है ।

तैल छिलका--तैलके विषय में ऊपर रासायनिक संगठन में देखिए । यह तैल २ से ४ बून्द की मात्रा में पाचक है । किन्तु इस गुण के लिए इसका प्रयोग बहुत कम किया जाता है । यह स्पिरिट्स अमोनिया एरोमेटिकस आदि में तथा कई प्रकार के लिनिमेन्टों (मलहमों) में डाला जाता है । कुछ प्रकार के नेत्र शोथ (अभिष्यन्द) में इसका स्थानिक प्रयोग होता है, किंतु परिणाम सन्देहास्पद है ।

(१०) कुष्ठादि त्वग्रोगों पर--यह तैल १ भाग तथा तुवरक तैल (चालमोगरा तैल) १ भाग और शुद्ध कपूर (१०० में १ भाग) एकत्र मिला ५ से १० बून्द की मात्रा में पिलाना लाभकारी है ।

(११) यौवन पिटिका (मुंहासे), भग एवं अण्डकोष की खुजली, सूर्य-दाह आदि पर इस तैल में ग्लिसरीन (या जैतून-तैल) मिलाकर लगाया जाता है शरीर की सूखी खुजली में लाभकर है ।

(१२) प्रसवोत्तर कालीन रक्तस्राव रोकने के लिए यह तैल लगाया जाता है । —(नाड़कर्णी)

पत्र—इसके पत्रों के प्रयोग कागजी या बिजौरा नीबू के पत्र जैसे ही है ।

नोट—मात्रा – फल का रस ½ से १ तो. । छाल का क्वाथ ४ से ८ तो. ।

रस के संग्रह एवं सुरक्षा की विधि—कागजी नीबू के रस जैसी है ।

विशिष्ट योग–

(१) जम्बीर द्राव—फल का रस ५ सेर, हींग ... सेंधानमक, वायविडंग, सोंठ, मिर्च, पिप्पली ... कालानमक १६ तो. अजवायन ४ तो. तथा सज्जी ... लेकर, कूटने योग्य चीजों को कूटकर सबको चिकने ... में भर मुख बन्द कर घोड़े की लीद में २१ दिन तक ... कर रखें । पश्चात् निकाल व छानकर बोतलों में ... सुदृढ़ कार्क लगाकर रख दें । (६ मा. की मात्रा में ... मिला) शुभ दिन तथा वैद्य और गुरु की पूजा कर ... सेवन से यकृद्विकार, प्लीहा, गुल्म, आम, विद्रधि, अ... और विशेषत: वात गुल्म तथा शूल, अतिसार, पार्श्वशू... हृच्छूल, नाभिशूल, विबन्ध (कब्ज), आध्मान, अन्य ... विकार एवं वातज और कफज रोग नष्ट होते हैं ।

—योग चिन्तामणि

(२) मधु-शुक्त योग- -फल का रस ६४ तो., श... १६ तो. और पिप्पली चूर्ण ४ तो. सबको एकत्र मि... कर, घृत के पात्र में भर मुख बन्द कर अनाज के ढेर ... १ मास तक दबा कर रखें । फिर निकाल कर छान ले... इसे मधु शुक्त कहते हैं (यह क्षार तैल में डाला जाता है ...

—वं. से.

क्षार तैल- कच्ची मूलियों का क्षार, जवाखार, सज्जीख... पांचों नमक, हींग, सहजने की छाल, सोंठ, देवदारु, ... कूठ, सोया, रसौत, पीपलामूल और नागरमोथा १-१ ... लेकर कल्क बनावें । पश्चात् ६४ तो. तैल में यह क... तथा बिजौरे नीबू का रस, और उपरोक्त मधु शुक्त प्र... तैल से चौगुना मिला कर तैल सिद्ध कर लें । यह ... कान में डालने से पूयस्राव, कर्ण-नाद, कर्ण शूल, कर्णग... बधिरता आदि समस्त कर्ण विकार नष्ट होते हैं । यह मुख के रोगों को भी दूर करता है । शार्ङ्गध...

नोट—'जम्बीर लवण वटी' का योग कागजी नी... विशिष्ट योगों में नीबू वटी देखिये ।

नीबू मीठा [Citrus medica var limetta]

इसके भी वृक्ष, पत्र, पुष्पादि प्रायः कागजी नीबू के सदृश, कहीं कहीं वृक्षों में कांटे भी होते हैं ; पत्र-साथ...

Scanned with CamScanner

कागजी नीबू के पत्तों से कुछ बड़े पुष्प—एप्रिल मास में श्वेतवर्ण के किंचित् लाल दागों से युक्त सुगंधित, फल—जून मास में कागजी नीबू से बड़े दोनों ओर से कुछ दबे हुए गोल लगभग ३-५ इंच व्यास के पक्व होने पर कुछ रक्ताभ पीतवर्ण के, कच्ची दशा में रस मधुराम्ल तथा पक्व का रस मीठा और प्रचुर मात्रा में होता है। फल का छिलका बहुत पतला, चिकना तथा गूदे के साथ लगा हुआ होता है।

भारत के अनेक स्थानों में विशेषतः दक्षिण भारत में बाग-बगीचों में लगाया जाता है।

नोट—कई लोग इसे ही नारंगी या कमला लेंबू कहते हैं किंतु ध्यान रहे नारंगी के और इसके पत्र व फलों में बहुत अन्तर है। गुणधर्म एवं रासायनिक संगठन में भी अन्तर है। कई लोग मोसम्बी इसे ही कहते हैं। किंतु मोसम्बी नारंगी का ही एक भेद है, देखो नारंगी का प्रकरण।

नाम—

सं.—मिष्ट निम्बूक, मधु जम्मल, मधुजम्बीर, मधुकर्कटिका, शर्करक इ.। हि.—नीबू मीठा, मिट्ठा, शर्बती नीबू। म.—साखर लिंबु, गोड़ लिंबु। गु.—मीठा लिंबू। बं.—मीठा लेबू, मीठा छामीर, कमला लेंबू। अं.—स्वीट लेमन [Sweet lemon]। ले.—साइट्रस मेडिका लाइमेटा।

रासायनिक संगठन—फलों में ग्लुकोसाइड (शर्करामय पदार्थ) तथा सायट्रिक एसिड और छिलकों में तैलांश होता है।

प्रयोज्याङ्ग—फल रस व छिलका।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, स्वादिष्ट, मधुराम्ल, मधुर विपाक, शीतवीर्य तथा पित्त शामक, तृष्णा निग्रहण, रोचन, वमननिवारक, हृद्य, शोणित स्थापन, कफ सम्बन्धी रोगोत्पादक मूत्रल, वृष्य, दाह प्रशमन, बल्य, बृंहण, एवं अरुचि, उबकाई, कामला, गलरोग, हृद्रोग, रक्तपित्त, रक्ताल्पता, रक्त विकार, मूत्र कृच्छ्र, शुक्रदौर्बल्य, शोथ, शैथिल्य, ज्वर विष-विकार आदि में प्रयुक्त होता है।

निम्बू मीठा

CITRUS MEDICA VAR, LIMETTA.W.& A
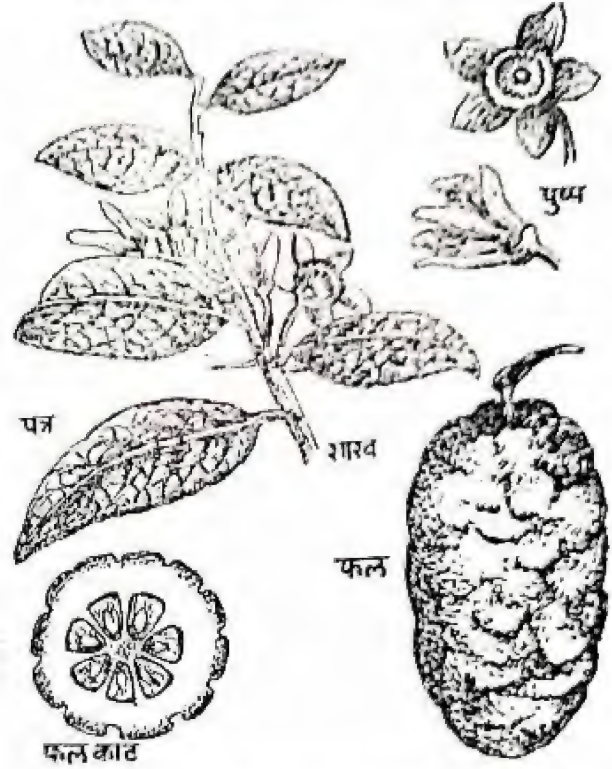
ज्वर और कामला में तृषाहर रूप में यह अधिक प्रयुक्त होता है। यकृत शोथ को दूर करता है।

(१) इसके रस को नियमित रूप से बच्चों को सेवन कराने से सूखा रोग में लाभ होता है।

(२) डिफ्थीरिया नामक गले के रोग तथा उपजिह्विका शोथ (टांसिलाइटिस) पर रस में रुई की फुरेरी डुबोकर २-२ घंटे से लगाते हैं।

(३) हैजे पर—इसके ½ सेर रस में लाल मिर्च के बीज २ तो॰ घोटकर, जब घोटते-घोटते गोली बनाने योग्य हो जाय तो ½ रत्ती की गोलियां बनालें। १ से ३ गोली तक देने से अवश्य लाभ होता है। —वृ. वि.

(४) वमन पर—इसके शुष्क फलों को भूनकर इसकी भस्म को शहद के साथ देते हैं। हैजे की वमन पर भी इसे देते हैं।

(५) छिलकों को पीस कर मक्खन में मिला चेहरे पर मालिश करने से मुंहासे तथा काले दाग दूर होते हैं।

Scanned with CamScanner

विशिष्ट योग–

(१) वटिका मिष्ट निम्बुक एक सेर रस में ५ तो० चनों को कांच के पात्र में ५-६ दिनों तक भिगो रखें। पात्र पर ढक्कन लगादें। फिर पत्थर के खरल में चनों को रस समेत घोटें। इसमें अजवायन चूर्ण ५ तो० तथा कपूर ६ माशा डालकर खूब रगड़ें और ३—३ रत्ती की गोलियां बना शुष्क कर सुरक्षित रखें।

पाचन सम्बन्धी विकारों में अफरा [आध्मान] में, के दस्त आदि रोगों में १ से ३-४ गोलियां खिलाने से लाभ होता है। —बृ० वि०

(२) अचार—नीबुओं की ४—४ फांकें कर, १ सेर नीबू में २० तो० गुड़ तथा १० तो० नमक मिला मर्तबान में भर नित्य धूप में रखें तथा नित्य १-२ बार हिला दिया करें। १ मास में उत्तम अचार पाचक, रोचक तैयार हो जाता है।

अथवा ५० नीबुओं का रस निकाल और छान कर उसमें १½ सेर बूरा या शक्कर, २० तो० सांभर नमक १० तो० काली मिर्च, ५ तो० इलायची कूट पीस कर मिला देवें। १ मास बाद यह उत्तम पाचक रायता हो जाता है।

(३) मुरब्बा—१ सेर नीबू को भावे से रगड़ कर चूने के पानी में डालदें। दो दिन बाद निकाल कर ... डालें। फिर आग पर रख जोश देवें। नरम पड़ ... पर उन्हें ४ सेर शक्कर की चाशनी में डाल देवें। ... मुरब्बा पित्त प्रकोप नाशक बन जाता है। यह स्वादिष्ट मुरब्बा दिल की कमजोरी को दूर करता है। हृद्य है।

नोट—मात्रा रस की २-५ तो०।

इसका सेवन शीत प्रकृति वालों के लिए तथा जुकाम या नजला विकारों में कफ को और भी बढ़ाता है।

नीबू जङ्गली (Atalantia Monophylla)

नीबू के ही कुल के इसके कंटकयुक्त, झाड़ीनुमा छोटे-छोटे वृक्ष होते हैं। पत्र—१ से ३ इन्च लम्बे, बल्लमाकार, अग्र भाग में मोटे, द्विदल युक्त, नीबू पत्र जैसे ही सुगन्धित, पुष्प—श्वेत रङ्ग के, कागजी नीबू के पुष्प जैसे। फल-गोल, भीतर ४ कोष्ठयुक्त, प्रत्येक कोष्ठ में १-१ बीज, पकने पर कागजी नीबू जैसे पीत वर्ण के हो जाते हैं। इसके ताजे बीज विशेष सुगन्धित होते हैं। फूल-अक्टूबर-नवम्बर मास में तथा फल फरवरी मास में आते हैं।

यह भारत के दक्षिण की ओर कोंकण, मद्रास, कर्नाटक, पश्चिमी समुद्रीतट तथा उड़ीसा, सीलोन, सिलहट आदि में पाया जाता है।

नोट—एक वन नीबू और होता है। इसका वर्णन नोट रूप में इसी प्रकरण के अन्त में देखिए।

नाम–

सं.–अटवी जम्बीरी। हि.–नीबू-जंगली। म.–रान लिम्बू, माकड़ लिंबू। गु.–डोंडी लिंबु। बं.–आटवी-जाम्बीर। अं.–वाईल्ड लाईम (Wild lime) ले.–अटलेंटिया-मोनोफिला।

गुण धर्म व प्रयोग

उष्ण, अम्ल, चरपरा, रोचक, आमदोषप्रद, कृमि ... कफ, श्वास नाशक है।

फलों का उत्तम अचार बनाया जाता है, जिसकी कढ़ी बनाकर ज्वरी को पथ्यरूप में देते हैं। तथा ... अरुचि एवं क्षुधानाश जन्य विकारों में उपयोगी है।

पत्र-रस का लेप अर्द्धांगवात में उपयोगी माना जाता है। पत्रों का स्वरस मलहम के लिए एक उपादान है। ... अर्द्धांगवात, विशेषतः अर्दित में मालिश के काम आता है।

पत्रों का घन-क्वाथ–खुजली तथा अन्य चर्म-विकारों पर लगाया जाता है।

बीज–ताजे-बीजों का चूर्ण मीठे तैल में डालने से तैल गहरे पीले रंग का एवं सुगंधित हो जाता है। इस तैल की मालिश करने से त्वचा में उष्णता पैदा होती है तथा ... जीर्ण वात रोगों में लाभकारी है।

Scanned with CamScanner

इसी प्रकार इसके पुष्पों से भी एक प्रकार का तैल बनाया जाता है, जो उष्णता उत्पादक है एवं गठिया और पक्षाघात में बाह्य उपचारार्थ बहुत उपयोगी माना जाता है।

जड़–इसकी जड़ आक्षेप निवारक एवं उत्तेजक है सर्पदंश में यह काम आती है।

नोट—बन नीबू (Glycosmis Pentaphylla) एक जंगली या वन नीबू और होता है। इसके भी छोटे छोटे झाड़ीदार वृक्ष होते हैं। पत्र–काण्ड से एकान्तर रूप में निकलते हैं, जिसमें १ से ५ तक डिम्बाकृति, चिकने पत्रांश होते हैं। पुष्प गहरे पीताभ हरे रंग के पुष्प-दल ४-५; पुंकेसर १० जो फूल के निम्नभाग में होते हैं। ये पुष्प सूक्ष्म, कोमल, रोमयुक्त, श्वेत भी होते हैं। फल छोटे झरबेर जैसे किंतु निरस १ से ३ तक लम्बाकार बीजयुक्त होते हैं। फूल-नवम्बर मास में और फल-मार्च में लगते हैं।

इसके वृक्ष हिमालय प्रदेश, बंगाल में प्रायः सर्वत्र, आसाम, सिक्किम, ट्रावनकोर आदि स्थानों के जंगलों में पाये जाते हैं।

नाम–

सं.–शाखोट। हि.– बन नीबू गिरगिट्टी, पोटाली। बं.—आश शेउड़ा, वन नेबु। म.- किरमिरा। ले.--ग्लाय-कोसमिस पेंटाफायला, Glycosmis Cochinchinensis (ग्ला. कोचिन चायनेन्सिस)।

प्रयोग–

गलशोथ, गले के व्रणों पर—इसके पक्व फलों के रस में सममाग कालीमिर्च चूर्ण को पीसकर कुछ गोघृत मिला सिगरेट बनाने के कागजों पर लेप कर सुखा लें, फिर उसी पर और भी फल के गूदे को लेपकर शुष्क करलें। इसको मोड़कर सिगरेट जैसा बना, धूम्रपान कराने से गले के घाव शोथ आदि नष्ट होते हैं। डिपथेरिया रोगी को २-३ यह सिगरेट पिलाने से उत्तम लाभ होता है। (भा. वनौषधि)

अशुद्ध पारद के सेवन से उत्पन्न होने वाले व्रणादि विकारों पर-पत्र-रस से सिद्ध किये हुए घृत का प्रयोग करते हैं।

प्रसूता स्त्री की पुष्टि के लिए पत्रों का निर्यास पिलाया जाता है।

मन्द या हल्के ज्वर पर–इसकी जड़ का चूर्ण शक्कर के साथ सेवन कराते हैं।

सर्प दंश पर–जड़ को पानी के साथ घोट पीस छानकर पिलाया जाता है।

नीम (Azadirachta Indica)

गुडूच्यादि वर्ग एवं अपने ही निम्बकुल[1] (Meliaceae) का प्रधान इसका वृक्ष २५-३० फुट ऊंचा; काण्ड सरल, चारों ओर शाखाप्रशाखायुक्त; छाल-कुछ मोटी, खुरदरी, स्थूल बाहर से भूरी धूसरवर्ण की फटी हुई सी अन्दर से पीताभ, परतदार तथा मोटे रेशों से युक्त होती है। छाल के भीतर से चमकीला अम्बर के वर्ण का गोंद निकलता है। पत्र— ९ से १६ इंची लम्बी सलाका या सींक पर पत्र-एकान्तर संयुक्त। १-३ इंच लम्बे, आधा से डेढ़ इन्च चौड़े, दंतुर, तीक्ष्ण-नोकदार, दोनों ओर चिकने, सलाका के दोनों ओर प्रायः ६-१४ जोड़ों में पत्र आते हैं। शिशिरऋतु में पतझड़ होकर वसन्त में ताम्र लोहित कोमल पत्र निकलते हैं। पुष्प वसन्त में ही पत्रकोणों से निकले हुए गुच्छों में छोटे श्वेत वर्ण के सुगंधित होते हैं। फल–ग्रीष्म के अन्त एवं वर्षा के प्रारंभ में; गोल-लम्ब आधा इन्च व्यास के खिरनी जैसे फल फूलों के भीतर से ही गुच्छों में आते हैं। ये कच्ची दशा में हरे पकने पर पीले होकर हवा के झोंके से नीचे गिर पड़ते हैं। भीतर से गाढ़ा चेंपदार रस निकलता है। प्रत्येक फल में एक मोटा सा बीज होता है जिसके भीतर हरे रंग की दो दालें निकलती हैं। इनसे ही तैल निकाला जाता है।

[1] इस कुल के वृक्ष साधारण बड़े, पत्र-एकान्तर संयुक्त, पत्र धारा प्रायः दंतुर पुष्पाभ्यंतर एवं बाह्य कोश के दल ३-६ पुंकेशर ८-१०, फल प्रायः मांसल ऊर्ध्वस्थ-गर्भाशय, बीज बड़े होते हैं।

Scanned with CamScanner

फलों को निमोली' (निबोली) कहते हैं। नीम के प्रायः नर वृक्ष से एक प्रकार का स्वादु द्रव निकलता है, जिसे नीम का मद या नीम की ताड़ी कहते हैं।

इसके वृक्ष भारत में प्रायः सर्वत्र नैसर्गिक होते हैं तथा लगाये भी जाते हैं। पञ्जाब में कम पाये जाते हैं।

नोट नं० १—नीम को मृत्युलोक का कल्पवृक्ष माना जाता है। यह सर्व रोगों को हरने वाला है। "सर्व रोग हरो निम्बः" ऐसा शास्त्रों में इसके विषय में कहा गया गया है और इसीसे इसके नाम निम्ब (निम्बर्निसिचति स्वास्थ्यम्) अर्थात् जो रोगों को दूर कर स्वास्थ्य को बढ़ाता है) रक्खा गया है। पिचुमर्द (पिचुं कुष्ठं मर्दयति नाशयति) जो कुष्ठादि रक्त विकारों को नष्ट करता है। आदि रखे गये हैं।

और वृक्ष तो रात्रि के समय दूषित वायु (नायट्रोजन) अधिक परिमाण में छोड़ते हैं; किन्तु निम्ब-वृक्ष रोगनाशक शुद्ध वायु ही विशेष छोड़ता है। एक दंत कथा है कि एक बुद्धिमान वैद्यराज ने अपना नूतन औषधालय किसी नगर में स्थापित किया था। एक अन्य वृद्ध वैद्य जो दूर के ग्राम में रहते थे, उन्होंने उनकी परीक्षा लेने के निमित्त से एक निरोगी ग्रामीण मनुष्य को एक पत्र देकर भेजा। पत्र में लिखा कि इस मनुष्य को जो रोग हो उसे बिना किसी औषधि के शीघ्र ही अच्छा कर भेजने की कृपा करें। उस मनुष्य को कह दिया था कि रास्ते में रात्रि के समय इमली के वृक्ष के नीचे शयन करते हुए नगर में जाना। उसने वैसा ही किया। नगर में पहुंचने पर उससे उक्त वैद्यराज के समीप जाकर प्रणाम कर वह उन्हें पत्र दिया। उसके शरीर पर कुछ शोथ सा हो गया था। उससे पूछने पर उसने कह दिया कि रास्ते में इमली वृक्ष के नीचे शयन किया था। तुरन्त ही वैद्यराज ने उसे पत्रोत्तर देकर वापस भेजा और कह दिया कि रात्रि में नीम वृक्ष के नीचे शयन करना। उसने वैसा ही किया। ग्राम में पहुंच कर वृद्ध वैद्य को पत्रोत्तर दे दिया। उसमें उत्तर था कि आपके मनुष्य को बिना दवा के ठीक कर दिया है। उस मनुष्य का शोथ दूर हो गया था। अस्तु **'नक्तं न सेवेद् द्रुमम्'** [रात्रि में किसी वृक्ष के नीचे शयन न करे] यह शास्त्रीय नियम] नीम वृक्ष के लिए लागू नहीं होता।

अन्यान्य पेड़ आदि पर चढ़ी हुई गिलोय [गुर्च] की अपेक्षा नीम वृक्ष की गिलोय विशेष लाभकारी होती है।

नोट नं० २—चरक के कण्डूघ्न, वमन तथा निरूह स्कन्ध गणों में एवं ज्वर, अर्श, कुष्ठ, व्रण, पांडु, नेत्र रोग, लूताविष आदि में इसकी योजना की गई है; शोथ और उरुस्तम्भ में इसके पत्र-शाक का विधान तथा शिरोविरेचन में इसके पुष्प का उपयोग किया है। सुश्रुत के आरग्वधादि, गुडूच्यादि, लाक्षादि गणों में तथा ऊर्ध्वभागहर संशोधन द्रव्यों की सूची में एवं मूत्राघात, कुष्ठ, सुरामेह, अरुंपिका, पद्मनी कण्टक, दाह-ज्वर, कफज तृषा आदि में इसकी योजना की है। अनेक अंजनों में नीम पत्र मिलाया है; सूत्र स्थान में इसके तैल का गुण दर्शाया है।

नीम
AZADIRACHTA INDICA.

नाम—
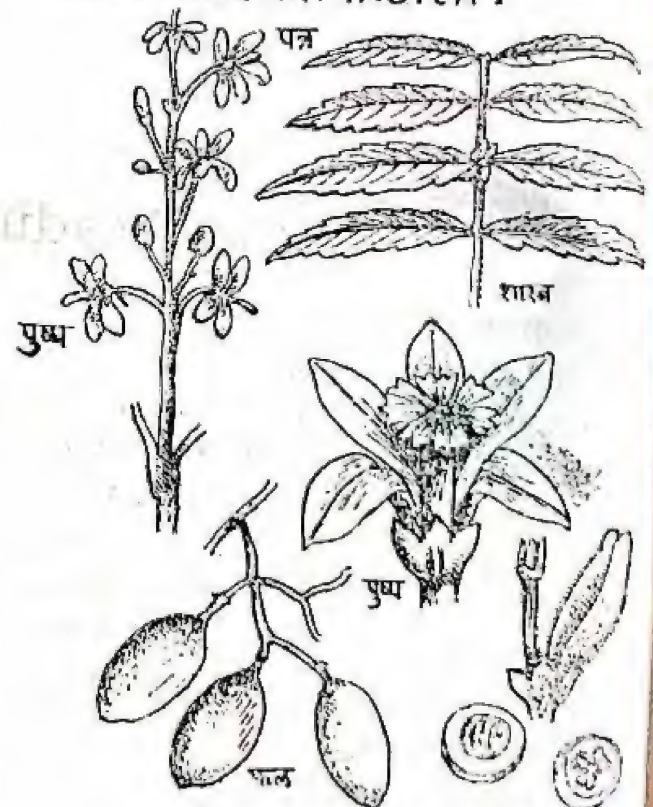
सं०—निम्ब, पिचुमर्द, तिक्तक [तिक्त रस वाला], अरिष्ट [न रिष्टम् शुभमस्यात्, जिससे शरीर को कोई हानि नहीं होती] पारिभद्र [परितोभद्रं यस्मात्, जिससे सर्व प्रकार का कल्याण होता है], हिंगु निर्यास [हींग जैसा गोंद जिससे निकले] इ० ।

हि०—नीम । म०—कडू निंब । गु०—लीमड़ो । वं०—निम । अं०—नीम ट्री, मार्गोसा ट्री, इण्डियन लिलेक [Neem tree, Margosa tree, Indian lilac) ।

ले०—अभाडिरेक्टा इण्डिका;

रासायनिक संगठन—

काण्ड की छाल में एक तिक्त रालमय निम्बाम्ल मार्गोसीन या मार्गोसिक एसिड [Margosine] नामक पाया जाता है तथा पुष्पों में पाये जाने वाले उड़नशील तैल सदृश एक तैल, गोंद, श्वेतसार एवं टेनिन [कषायामम] भी होता है । बाह्यत्वक् में यह टेनिन तथा अन्तस्त्वक् में तिक्त द्रव्य [मार्गोसीन] अधिक होता है जिससे मार्गोसिक एसिड बनाया जाता है जो प्रबल कीटाणु नाशक होता है। इसीलिए औषधि कार्य में अन्तर छाल का क्वाथार्थ प्रयोग किया जाता है ।

पत्र में उक्त तिक्त द्रव्य न्यून मात्रा में होता है । किन्तु वह त्वक्स्थित इस द्रव्य की अपेक्षा जल में अधिक सरलता से एवं अधिक मात्रा में सुविलेय है । अतः छाल या पत्ते विषम ज्वर, फिरङ्ग, कुष्ठादि रोगों के कीटाणु नाशक होते हैं । पत्र में विटामिन 'ए' पर्याप्त मात्रा में तथा प्रोटीन, कैलसियम एवं लोह द्रव्य भी होने से चौलाई, पालक, धनियां आदि अनेक पत्र शाकों की अपेक्षा यह श्रेष्ठ है । उक्त विटामिन के होने से पत्र सेवन से कीटाणुओं के आक्रमण से रक्षा, रतौंधी आदि नेत्र रोग, रक्त रोग, गुद तथा मूत्राशय के विकार आदि नष्ट होते हैं ।

बीजों में ३१ से ४०% एक गहरे पीत वर्ण का, तिक्त, कटु एवं दुर्गन्ध युक्त स्थिर तैल होता है, जिसमें ओलिक एसिड [Oleic acid] आदि कई एसिड रहते हैं । इसमें गन्धक का भी अंश होता है । इस तैल से अत्यन्त कड़वा एवं जल में घुलने वाला सोडियम मार्गोसेट [Sodium margosate B.C.O.W.] नामक एक लवण बताया गया है ।

इसके मद या ताड़ी में–उक्त तिक्त द्रव्य ६०%, ईक्षुशर्करा, द्राक्षशर्करा, निर्यास, रंजक द्रव्य, प्रोटोड्स और क्षार जिसमें पोटाशियम, लौह, कैलसियम आदि होते हैं ।

प्रयोज्याङ्गः—पत्र, त्वक, बीज, पुष्प, गोंद, मद, पंचाङ्ग तथा तैल ।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, तिक्त (प्रायः तिक्त रस वाले द्रव्य अरुचिकर होते हैं, किंतु इसमें यह एक खास विशेषता है कि यह स्वयं अरुचिकर होते हुये भी अरुचि नाशक है । इसके सेवन से अरुचि दूर होती है) कषाय, कटु विपाक[1], शीत वीर्य-उष्ण परिणामी (इसे कई निघंटुकारों ने शीत वीर्य माना है किंतु सुश्रुत ने इसे उष्ण कहा है । इससे तथा अनुभव द्वारा भी सिद्ध होता है कि यद्यपि प्रारंभ में यह शीत है तथापि परिणाम इसका उष्ण ही है । यदि ऐसा न होता तो इसका प्रयोग मंदाग्नि पर अनिष्टकारी होता यह कदापि आमपाचक न होता),रोचन, ग्राही (किन्तु इसका फल निमोली भेदक है), आमपाचक, कफपित्त शामक, यकृदुत्तेजक, रक्त शोधक, कृमिघ्न, अहृद्य, रक्त विकार जन्य शोथ नाशक बच्चों के लिये हितकर, कटुपौष्टिक, बल्य, ज्वरघ्न

[1] कटु विपाक वाले द्रव्य लघु होने से प्रायः उनका वीर्य धातु पर बुरा असर होता है । वे वातवर्धक एवं विबन्धकारी होते हैं । भावप्रकाशकार नीम को वात शामक मानते हैं; किंतु यह उचित प्रतीत नहीं होता । कहा है-"कटुविपाकः शुक्रघ्नो बद्ध विट् वातलो लघुः"(द्रव्यगुण) । ध्यान रहे, नीम का कई दिनों तक लगातार सेवन करते रहने से ही, इसका वीर्य पर बुरे असर की संभावना है । बीच बीच में औषधि रूप से इसके सेवन से वीर्य पर अनिष्ट परिणाम नहीं होता । प्रत्युत यह अपने प्रभाव से शुक्र गत पुंजीवाणुनाशक विष एवं रक्तादिधातु के अपद्रव्यांश को नष्ट कर उसे शुद्ध करता है । यह एकदम से शुद्ध शुक्र का शोषण नहीं करता और न कामवासना को ही नष्ट करता या नपुंसकता लाता है ।

Scanned with CamScanner

(मलावरोध युक्त ज्वर पर इसके ग्राही गुण के नाशार्थ ही कुटकी, चिरायता, सनाय, कालीमिर्च आदि का मिश्रण इसके साथ करना पड़ता है; अथवा इसके प्रयोग के पूर्व सौम्य रेचक द्रव्यों से मलावरोध दूर कर देना आवश्यक है अन्यथा इसका उचित परिणाम नहीं होता), नियत कालिक ज्वर प्रतिबंधक, तथा विविध रक्त विकार, उपदंश शोथ, कुष्ठ, प्रमेह, दाह, वमन (सामान्य मात्रा में वांतिहर, किंतु अधिक मात्रा में वमनकारी है), व्रण (दुष्ट व्रण, नाड़ी व्रण आदि जो शीघ्र ठीक नहीं होती, तथा मधुमेह जन्य व्रण जो शीघ्र नहीं भरता, ऐसे व्रणों पर यह पूतिहर, शोधन एवं रोपण कार्य करता है) आदि पर इसका उपयोग किया जाता है।

नीम तथा कुष्ठादि रक्त विकार एवं चेचक–वैसे तो नीम का सफल प्रयोग ज्वर, नेत्र विकार, प्रमेहादि कतिपय विकारो पर किया जाता है किन्तु कुष्ठादि रक्त विकारों के तथा चेचक के रोगियों के लिये तो नीम मानो एक प्रकृति प्रदत्त वरदान रूप महौषधि ही है। अर्थ विहीन गरीबों के लिये इससे बढ़कर अन्य सरल सुलभ एवं अव्यर्थ औषधि नहीं है। महान कुष्ठ ग्रस्त रोगी भी इसके प्रयत्न पूर्वक नियमित सेवन से लाभान्वित होते हैं। भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से कुष्ठ पर इसका उपयोग होता आ रहा है।

चरक के समय में कुष्ठ की प्रारंभिक अवस्था में नीम पंचाङ्ग का क्वाथ पिलाया जाता था। चरक ने कुष्ठ नाशक ६ कषायों में नीम और पटोल (कड़ू परवल) का क्वाथ देने के लिये कहा है। यह क्वाथ बाह्य उपयोगार्थ भी काम में लिया जाता था। रोगी को इसी से स्नानादि कराया जाता था। नीम से युक्त अन्न घृतादि का सेवन कराया जाता था। शरीर के ऊर्ध्व भाग स्थित कुष्ठों में विकृत कफ के उत्क्लेद शमनार्थ नीम के रस में मैनफल, इन्द्रजौ, मुलैठी और पटोल पत्र मिला कर वमन के लिये पिलाया जाता था। स्पर्शज्ञान से सर्वथा रहित कुष्ठों में नीम पत्रों का लेप एवं कुष्ठ कृमि नाशार्थ एवं अनुवासन के लिये नीम को अन्य द्रव्यों के साथ स्नान, पान, लेप-सिद्ध-स्नेह आदि विभिन्न रूपों में सेवन कराया जाता था। इस प्रकार चरक ने कुष्ठ चिकित्सा प्रकरण में नीम का अन्तः तथा बाह्य प्रयोगों का वर्णन विस्तार रूप से किया गया है।

शोढ़ल ने लिखा है कि नीम के १०० पत्तों को पीस कर छः दिन तक प्रतिदिन लिया जाय तो पुराने पक्व विकृत कुष्ठ भी अच्छे हो जाते हैं तथा एक मास तक नित्य नीम का सेवन हरड़ के साथ करने से सर्व प्रकार के कुष्ठ दूर होते हैं। यह एक रसायन है। इसके सेवन काल में गौदुग्ध पर ही रोगी को रहना आवश्यक है।

—गद निग्रह

कुष्ठ रोगी को सदैव नीम वृक्ष के नीचे रहना, नीम की दातून से नित्य मुंह धोना, नीम की लकड़ी जलाकर बनाया हुआ भोजन करना, प्रातः नित्य ५ तो० तक नीम पत्र स्वरस पीना अथवा नीम तैल १ तो० पीना, सारे शरीर में नीम पत्र स्वरस या नीम पत्र के कल्क का उबटन लगाना, नीम तैल की मालिश करना, भोजन के बाद दो बार ५-५ तो० तक नीम की ताड़ी पीना तथा बिस्तर पर नित्य नीम की ताजी पत्तियां बिछाना चाहिए। नीम पत्र रस मिश्रित पानी से स्नान करना चाहिए।

रोगी को बार-बार एरण्ड तैल का विरेचन तथा नीम पत्र के रस से वमन करावे तथा इस प्रकार वमन विरेचन द्वारा शोधन हो जाने पर पंचतिक्त घृत (आगे विशिष्ट योगों में देखें) का सेवन लगभग २ वर्ष तक कराने से महाकुष्ठ भी दूर हो जाता है।

कुष्ठ व्रणों पर नीम के तैल में नीम पत्र की राख मिलाकर लगाते हैं।

श्वेत कुष्ठ, त्वचा पर जहां तहां सफेद दाग होना या लाल-लाल ददोरे होना, उकवत (छाजन), दाद, पामा ये सब कुष्ठ के ही प्रकार हैं। इन पर पंच निम्ब चूर्ण (विशिष्ट योग में देखें) का सेवन लगभग २ मास तक कराने से लाभ होता है।

श्वेत कुष्ठ की दशा में रोगी को नीम के पत्र, पुष्प और फल समभाग खूब महीन पीस कर २ माशा मात्रा में जल में घोल छानकर सेवन करना प्रारम्भ कर धीरे धीरे मात्रा ६ माशा तक बढ़ाते हुए ४० दिनों तक

Scanned with CamScanner

सेवन करने से लाभ हो जाता है। श्वेत कुष्ठ पर आगे नीम पत्र का प्रयोग देखें।

ध्यान रहे, रोगी को कच्चा दूध, तीक्ष्ण खटाई, मांस, शराब आदि एवं प्रकृति के प्रतिकूल अन्नपानादि तथा बद्धताकारक पदार्थों से बचते रहना तथा आवश्यकतानुसार सारक औषधि लेते रहना चाहिए।

शून्य कुष्ठ [Nervous Leprosy] होने पर जिस स्थान में स्पर्श का बोध न होता हो, उस स्थान को नीम की पुल्टिस से सेंकते रहने तथा नीम पत्र की निर्धूम राख मसलते रहने से वात नाड़ियों में संवेदना ग्रहण की शक्ति पुनः आ जाती है। —गां. औ. र.

चेचक और नीम—

कुष्ठ के अनुसार चेचक (शीतला या मसूरिका, लघु मसूरिका-मोतिया, रोमान्तिका-खसरा तथा जर्मन-रोमान्तिका —(German measles or Rubella) के प्रतिकारार्थ एवं उपचारार्थ नीम ही एक सर्व सुलभ अव्यर्थ औषधि है। इस विकार में व्यवहृत अन्यान्य तिक्त गण की औषधियों की अपेक्षा नीम अधिक लाभदायक है।

चेचक के दिनों में विशेषतः बसन्तऋतु में यह 'बसन्त-रोग' प्रायः दूध पीने वाले बच्चों की माताओं को तथा दांत निकल आये हुए बालकों को होने की अधिक सम्भावना रहती है। अतः इन दिनों में तैल, घृत, मिष्ठान्न एवं मांस आदि गरिष्ठ एवं कफकारक आहार से परहेज रखना, रक्त शोधक औषधि का सेवन करना आवश्यक है। इस ऋतु में, तिक्त रसों में सबसे अधिक नीम का व्यवहार लाभकारी होता है। नीम की दातून करना, प्रातः नीम पीसकर शरबत की तरह पीना, भोजन के साथ घृत में भूनी हुई नीम की पत्तियां खाना तथा अधिकतर नीम वृक्ष के नीचे बैठना हितकर है[1]। नीम के बीज और हल्दी को शीत जल के साथ पीस कर सेवन करने से शरीर में कदापि दुखदाई शीतला विकार नहीं होने पाता (भावप्रकाश)। अथवा नीम बीज के साथ सम-भाग बहेड़ा बीज और हल्दी शीतल जल में पीस छानकर कुछ दिन पीने से शीतला प्रकोप का भय नहीं रहता। अथवा नीम के कोमल पत्र ७ नग और काली मिर्च ७ दाने इन्हें नियमपूर्वक प्रातः १ मास तक खाने से या जल में पीस कर पीने से एक वर्ष तक चेचक नहीं होती अथवा ३ माशा नीम की कोंपल १५ दिनों तक नियमित खाने से ६ महीने तक चेचक नहीं होती। यदि हुई भी तो आंखें खराब नहीं होतीं। —नीम के उपयोग

नीम की दो सींकें १ तो० जल में पीस छान कर बच्चे को ३ दिन तक पिलाने से चेचक नहीं निकलती, यदि निकले तो जोर नहीं करती अथवा १ तो० नीम पत्र तथा कपूर व हींग प्रत्येक २ ग्रेन पीस कर सोने से पूर्व खजूर ३ ड्राम के साथ लेने से छूत के रोग नहीं होने पाते। इसी प्रयोजनार्थ २१ पत्र डालकर गोघृत में बनाई रोटियां गोघृत व मूंग की दाल के साथ २१ दिन तक खाई जाती हैं। इस काल में नमक नहीं खावें।

शरीर पर चेचक निकल आवे तो बड़ी सावधानी, धैर्य और पवित्रता रखनी चाहिए। इस अवस्था में किसी प्रकार का उपद्रव न हो तो कोई भी औषधि प्रयोग नहीं करना चाहिए। उपद्रवरहित चेचक स्वयं यथासमय ठीक हो जाती है। यदि कोई उपद्रव हो तो तदनुसार तत्परता के साथ उपचार करना आवश्यक है। वह भी केवल नीम के ही द्वारा किया जाय तो उत्तम होता है। जैसे नीम की छाल का फांट पिलाते रहना (इससे उसका प्रकोप कम होता है) आदि, आगे यथास्थान पत्र, छाल आदि के प्रयोगों में देखें। चेचक के दानों में असहनीय खुजली या जलन हो तो नीम का लेप लगाना हितकारी है। ताजे कोमल नीम पत्र व मुलैठी चूर्ण की बनाई ५ ग्रेन की गोलियां प्रतिदिन सेवन से विशेषलाभ होता है। नीम के सेवन से ज्वर नहीं बढ़ता, तृषा कम लगती है, चेचक का विष गहराई तक नहीं जाने पाता, तथा रोग शमन के पश्चात् रहने वाली पित्ताधिकता दूर होती है।

---

[1] रसो निम्बस्य मंजर्य्या पीतश्चैत्रे हितावहः। हन्ति रक्त विकारांश्चवातपित्तं कफं तथा। यो. चि. म.। अर्थात् चैत्र मास में नीम पत्र रस और उसकी मंजरी का रस पीना हितकर है। त्रिदोष तथा रक्त विकार नष्ट होता है।

Scanned with CamScanner

निर्बलता नहीं आती है। रोगी के बिछौने के पास चारों ओर तथा खिड़की (जंगला) व दरवाजे पर नीम की टहनियां लटका देने से रोगी को नीम की वायु मिलती रहती है वह भी रोग के दमन में सहायक होती है। इसीलिए कहा है —"वल्मीग्रान्निम्ब पत्राणि परितो भवनान्तरे" (भा. प्र.)। चेचक के व्रणों पर मक्खियां न बैठने पावें, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। नीम पत्र के चंवर से रोगी के शरीर पर हवा करते हुए मक्खियों को उड़ाते रहना चाहिये, कहा है—निम्ब शलत्र शाखाभिर्मक्षिका-मपसारयेत्। —भा. प्र.

यदि रोगी को अत्यधिक दाह एवं जलन हो तो उनके बिस्तरे पर कोमल नीम बिछा देवें। पत्तियों के मुरझा जाने पर उन्हें बदल दें तथा उनके शरीर पर नीम पत्रों का मण्डल सा बना देवें। नीमपत्र पीस जल में घोल मथनी से खूब मथकर उसका फेन शरीर पर लगावें, कोमल नीम पत्र पीसकर शरीर पर लेप करें। ध्यान रहे, यह लेप पतला होवे गाढ़ा या मोटा लेप कष्टदायक होता है। अधिक तृषा की शांति के लिए नीम छाल को जलाकर उसके अंगारे को जल में बुझा और छानकर पिलावें। यदि इससे तृषा शांति न हो तो १ सेर पानी में १ तो. कोमल नीम पत्तों को पका कर अर्धावशिष्ट जल रहने पर छानकर थोड़ा-थोड़ा पिलावें। इससे तृषा शांति के साथ ही साथ चेचक का विष एवं ज्वर वेग भी शांत होता है, तथा चेचक के दाने भी शीघ्र सूख जाते हैं।

कभी-कभी ये दाने ठीक प्रकार से न निकलने के कारण चेचक का विष तथा उसकी गरमी अन्दर ही रह जाती है जिससे रोगी छटपटाने लगता है, ज्वर वेग बढ़ जाता तथा रोगी प्रलाप करने लगता है। ऐसी अवस्था में नीम की ताजी पत्तियों का रस १-१ तो. की मात्रा में दिन में ३ बार पिलावें। दाने खूब खुलकर निकल आते हैं।

रोगी अच्छा हो जाने तथा दाने सूख जाने पर नीम पत्र डालकर पकाये हुए और ठंडा किये हुए पानी से स्नान करावें। स्नान के बाद नीम तैल की समस्त शरीर पर मालिश करावें। चेचक के दागों पर कुछ दिनों तक नीम तैल अथवा चाजों की गिरी को पानी में पीस कर लगाते रहने से चेचक के गड्ढे भर जाते और दाग दूर हो जाते। जिस रोगी के बाल झड़ गये हों उसे कुछ दिनों तक [illegible] तैल की मालिश करनी चाहिये।

पशुओं को चेचक निकलने पर—उन्हें नीम वृक्ष नीचे रखना तथा नीम पत्र रस या नीम तैल दानों [illegible] लगाना हितकर है तथा दिन में दो बार नीम पत्र [illegible] २ तो. बांस की नली द्वारा पिलाना चाहिए।

—नीम के प्रयोग

व्रण आदि त्वचा के विकार और नीम—व्रण, ना[illegible] व्रण, फोड़े, फुंसियों की चिकित्सा में नीम का विवि[illegible] प्रकार से प्रयोग किया जाता है। पत्र, छाल, बीज, तैल का विशेष सफल उपयोग, पुल्टिस, मरहम, लेपादि [illegible] में होता है। पत्तों का फांट या क्वाथ लोशन के रू[illegible] हलका, कृमिहर एवं रोपण कार्य करता है। लोशन-पत्र ४० ग्राम, फिटकरी १० ग्राम, जल १ कि[illegible] एकत्र पकावें। ½ शेष रहने पर बोतल में भरलें। [illegible] व्रणों को धोने से शीघ्र लाभ होता है। पत्र क्वाथ [illegible] घावों को प्रतिदिन धोने से तथा पत्तों के कल्क को बांध[illegible] से वे शीघ्र शुद्ध होकर भर जाते हैं। (शा. सं.)। नीम पत्रों को पीस कर शहद मिला लेप करने से घा[illegible] शुद्ध हो जाते हैं। (हा. सं.) अथवा नीम पत्रों [illegible] हल्दी, आमाहल्दी, तिल, सेंधा नमक, मुलहठी व निशो[illegible] के साथ मिल पर पीसकर उसमें घृत मिला लेप करने व्रणों की शुद्धि एवं रोपण होता है। (का. सं.) अथवा पत्तों को तिल, दन्ती, निशोथ व सेंधा नम[illegible] के साथ पीस कर शहद मिला लेप करने से उत्तम शोध[illegible] होता है। इससे दुष्ट व्रण ठीक हो जाते हैं। (भै. र.) अथवा पत्र, दारुहल्दी व मुलहठी के कल्क में घृत शहद मिला, वस्त्रखण्ड पर लिप्त कर वर्ति बनाकर व्र[illegible] मुख में देने से रोपण एवं शोधण कार्य होता है। (भै. र.)। नीम पत्र, वच, हींग, घृत, सेंधा नमक व सरसों इनकी धूप देने से व्रण की रूक्षता, कृमि, कण्डू तथा वेदना दूर होती है। (भै. र.)

जिन व्रणों में खराब हवा लगने से दूषित होने का भय हो उनमें नीम पत्र की पुल्टिस बांधना चाहिए। य[illegible]

Scanned with CamScanner

पुल्टिस पत्र कल्क में तिल तैल मिलाकर बनाई जाती है। अथवा मलहम—पत्र २० ग्राम और हल्दी १० ग्राम को २० ग्राम घृत में भून लें। जलने से पहले ही उतार कर खरल में महीन पीस उसमें फिटकरी १० ग्राम मिला रखें। घाव पर लगावें अथवा नीम पत्र २ तो० को सरसों तैल में जलाकर उसमें ३½ तो० सफेदा काशगरी मिला नीम के डण्डे से रगड़ें। गाढ़ा होने पर लगावें। सर्व व्रणों के लिये अति उत्तम है। —यू. चि. शा.

अथवा ताजे पत्तों को गरम पानी में पीस कर कपड़े पर फैलाकर व्रणों पर बांधते हैं। इस लेप या पुल्टिस से यदि वेदना विशेष हो तो इसमें समभाग चावलों का आटा मिला लिया जाता है। वेदना युक्त एवं दूषित व्रण, विशेषतः दीर्घकालीन व्रण इस लेप या पुल्टिस से शीघ्र रोपण होते हैं। जिस कमरे में दूषित व्रण वाला रोगी हो उसके दरवाजे पर नीम की टहनियां टांगना श्रेयस्कर होता है। विषैले व्रणों पर पत्र रस में सरसों तैल व पानी मिला, पकाकर लगाते हैं। जिन व्रणों से राध या मवाद अत्यधिक निकलता हो उन पर नीम की छाल की राख लगाते हैं। फोड़ों की जलन शांति के लिये उक्त नीम पत्र की पुल्टिस तथा पत्तों को औंटाकर बफारा देते हैं और पत्र क्वाथ से धोते हैं। नीम छाल के क्वाथ से व्रणों को धोने से किसी प्रकार के संसर्ग या छूत का असर नहीं होने पाता। मवाद निकलने के लिये पिसी हुई नीम पत्तों की टिकिया बना बीच में छिद्र कर घाव पर बांधते हैं। मवाद निकल कर व्रण अच्छा हो जाता है। फूटे हुए फोड़ों पर नीमपत्र रस में शहद मिला लगाते हैं। घोड़े आदि पशुओं के जख्मों पर नीम पत्र को पीसकर नीबू के रस में मिलाकर लगाते हैं।

नीम पत्र का सेवन आंवला और घृत के साथ करते रहने से फोड़े, फुंसी आदि विस्फोटक विकार नहीं होने पाते, यदि हुए हों तो ठीक हो जाते हैं। —च. द.।

नाड़ी व्रण (नासूर) पर दिन में कई बार नीम पत्र रस लगाते रहने से लाभ होता है अथवा नीम तैल में भिगोई हुई बत्ती रखते हैं।

ध्यान रहे, व्रण चिकित्सा में प्रायः नीम तैल विशेष उपयोगी होता है। तैल उपलब्ध न हो तो नीम के बीजों की गिरी को पीसकर भी लगाते हैं। किंतु बीज भी सर्वत्र प्राप्त नहीं होते तथा उन्हें पीसकर अन्य तिल तैलादि में मिलाकर पकाना आदि कष्टों से बचने के लिए बीजों का शुद्ध तैल ही संग्रह करना श्रेयस्कर है।

व्रण की ऊपरी त्वचा एवं भीतर का मांस शिथिल होगया हो एवं अन्य किसी दवा का कोई असर न होता हो, तो इसके शुद्ध तैल को लगाते रहने से लाभ होता है तथा इसको कुछ दिनों तक लगाते रहने से व्रण शीघ्र ही रोपण हो जाता है।

शरीर के किसी अङ्ग में रगड़ लगने से घाव हो गया हो तो इस तैल के लगाने से अच्छा हो जाता है। कच्चे घावों को नीम पत्र के क्वाथ से धोकर यह तैल लगाने से लाभ होता है। अग्निदग्ध स्थान पर रुई को नीम-तैल में तर कर रखने से जलन शांत होती है तथा घाव शीघ्र ही ठीक हो जाता है। बालकों के व्रण जो भीतर से गीले तथा ऊपर सूखे हुये से हों उन पर नीम-तैल लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

कण्डू (खाज) आदि अन्यान्य त्वग्विकारों पर भी नीम बहुत लाभदायक है। इसीलिये चरक ने चन्दन, जटामांसी, अमलतास आदि कण्डूघ्न १० औषधियों में नीम की गणना की है (च. सू. अ. ४)। खाज, खुजली आदि विकारों पर नीम पत्र रस का पान तथा बाह्य लेपादि भी किया जाता है। अजीर्ण विकारों में यह विशेष लाभकारी होता है। पामा (छाजन, उकवत) आदि त्वचा के पुराने विकारों में इसे हरड़ के साथ दिया जाता है। जिन विकारों में त्वचा के ऊपर कोठ, उदर्द (उभार) या चकत्ते पड़ जाते हैं, उनमें नीम पत्र चूर्ण या कल्क को आंवलों के साथ या घृत के साथ सेवन से विशेष लाभ होता है—च. द.। तथा नीम पत्र के ताजे रस की मालिश करना भी लाभप्रद है।

नीम-तैल की मालिश से प्रायः समस्त त्वग्विकार दूर होते हैं। इससे त्वचा के विकारोत्पादक सूक्ष्म कृमि नष्ट होकर सर्व प्रकार की खुजली दूर होजाती है। नीम के २ तो. कोमल पत्तों को पानी के साथ पीस छानकर पीने से १५ दिन में खुजली आदि दूर होजाती है। खुजली

पर नीम पत्र की राख को नीम तैल में मिला लेप भी किया जाता है। पामा पर नीम पत्र स्वरस ४ सेर, सरसों तैल १ सेर, अर्क दुग्ध, लाल कनेर मूल, दंतीमूल व कालीमिर्च १-१ तोला का कल्क मिला तैल सिद्ध करें। इस तैल के लगाने से पामा नष्ट होती है। —भा. भै. र.

शीत पित्त पर उक्त चक्रदत्त का आंवला घृत के साथ नीम पत्र का योग उत्तम है। इसे इस प्रकार भी सेवन कराते हैं—यथोचित मात्रा में नीम पत्र के साथ आंवलों को पीस चटनी सी बना घी के साथ सेवन करावें। इससे व्रण, रक्तपित्त में भी लाभ होता है। शीत पित्त में नीम तैल की मालिश भी कराना लाभकारी है।

अरुंषिका (शिर की कंडु एवं स्राव युक्त पिड़कायें या शिर या चेहरे की छाजन) पर रक्त मोक्षण के बाद नीम के क्वाथ से प्रक्षालन करें (सु. चि. अ. २०) अथवा नीम पत्र रस, सेंधा नमक व घोड़े की लीद का रस मिलाकर लेप करने से अरुंषिका नष्ट होती है। —वं. से.

पद्मिनी कंटक (त्वचा का सौम्य अर्बुद, इसमें कमलिनी के कांटों के सदृश अंकुरों से व्याप्त उभरा हुआ, कण्डु युक्त श्वेतवर्ण का कफ वात जन्य मंडल सा होता है, Papilloma of the skin) पर नीम के क्वाथ से वमन कराना, तथा उसी क्वाथ से सिद्ध घृत को शहद मिलाकर पिलाना और नीम एवं अमलतास के कल्क का उबटन लगाना हितकर होता है। —सु. चि. अ. २०।

यौवन पिटिका (मुंहासे) पर—नीम वृक्ष की जड़ को पानी के साथ घिस कर लगाते हैं। ७ दिन में पूर्ण-लाभ होता है। गरमी से होने वाली फुन्सियां, जलन तथा सर्व प्रकार के पित्त विकार भी शांत होते हैं। अथवा—नीम पत्र, अनार का छिलका, लोध्र, व हरड़ समभाग दूध के साथ पीसकर नित्य मुख पर उबटन की भांति लगाने से उनके चर्म रोग नष्ट होते हैं, मुख का सौंदर्य निखरता है।

दाद (दद्रु) पर—नीम पत्र के रस में कत्था, गंधक, सुहागा, पित्तपापड़ा, नीलाथोथा, व कलौंजी समभाग खूब घोट पीसकर गोली बना दाद पर पानी में घिसकर [लगाते] हैं। अथवा—नीम पत्र को दही में पीस लेप करने [से] भी दाद दूर होती है। छाजन (खूजी, पामा) गीली हो या शुष्क नीम पत्र-रस की पट्टी बार-बार [रखते] हैं या पत्तों की राख भुरकाते हैं। गीली छाजन [विचर्]चिका) में पत्र पीसकर बांध दें, जब तक स्वयं न [छूटे] तब तक रहने दें तो अति शीघ्र लाभ होता है।

पत्र, सींक और डंठल—नीम के पत्ते नेत्र [हितकर], दाह प्रशमन, पाक में कटु, वात कारक, कृमि [नाशक], विष नाशक, सर्व प्रकार की अरुचि व कुष्ठ [नाशक], शोथघ्न, त्वचा के लिये उत्तेजक, त्वग्दोषहर, व्रण [रोपक], रोपक, यकृदुत्तेजक तथा अधिक मात्रा में वामक हैं। पत्तों में व्रण नाशक गुण अधिक होता है।

वैद्यक ग्रन्थों में वसन्तऋतु के विशेषतः चैत्र [मास में] नीम के कोमल पत्तों के सेवन की विशेष प्रशंसा [की] जाती है। इससे रक्त शुद्ध होता तथा चेचक आदि भयंकर व्याधियां नहीं होने पातीं। इससे केवल रक्त ही नहीं प्रत्युत् कोई भी विषैले जन्तु के काटने पर की कोई बाधा नहीं होती। कहा है—जो मेष के [सूर्य में] मसूर की दाल को नीम पत्र की साग के साथ खाता [है उसे] १ वर्ष तक विष से कोई भय नहीं रहता[1]। बंगाल मिथिला प्रान्त में चैत्र मास में नीम पत्र को बैंगन [की] तरकारी में डालकर खाते हैं।

कोमल पत्तों को घृत में भूनकर भी खाते हैं व चने के बेसन में मिला पकौड़ियां बनाकर खाते हैं।

नीम पत्र का क्वाथ व्रणों के प्रक्षालनार्थ का[र्बोलिक] साबुन से भी अधिक उपयोगी है। प्रसव के पश्चा[त् सूतिका] स्थानों में स्त्री को पत्र क्वाथ पिलाते हैं। इससे उ[से व] बच्चे को भी कोई विकार नहीं होने पाते।

विद्रधि, ग्रन्थि एवं व्रणों में पत्तों का लेप करते [हैं]। इसके पत्तों को पीसकर टिकड़ी बना, पुल्टिस की [भांति] विस्फोटक, बालतोड़, एवं फोड़े फुंसियों पर ल[गाने से] उत्तेजक तथा कृमि नाशक असर होकर शीघ्र लाभ [होता है]।

---

[1] मसूर निम्ब पत्राभ्यां खादेन्मेषगते रवौ। अब्दमेकं न भीतिःस्याद्विषात्तस्य न संशयः। —[illegible]

है। व्रण शोथ पर नीम की ताजी पत्ती के साथ हल्दी, घृत, मधु, तिल व जौ का आटा यथावश्यक लेकर, जल में पीस, मन्द आंच पर पका, कपड़े पर फैला, ऊपर से दूसरा कपड़ा रखकर यह पुल्टिस बांधते हैं। ३-३ घण्टे से बदल कर दूसरी बांधते हैं। इससे पाक प्रारम्भ न हुआ हो तो शोथ बैठ जाता है। अन्यथा शीघ्र पककर फूट जाता है।
—सि. यो. सं.

नारू जन्य शोथ पर—नीम पत्र की पुल्टिस बांधने तथा बार-बार बदलते रहने से १-२ दिन में शोथ फूट-कर नारू बाहर निकल आता है।

चोट लगने से आई हुई मोच एवं गिल्टियों के शोथ पर नीम पत्तों का बफारा देने से बड़ा लाभ होता है।

५ या ६ तो० ताजे पत्तों को ४३ तो. (१ पिंट) खौलते हुए पानी में डालकर कुछ ठण्डा होने पर ५ तो० की मात्रा में पिलाने से यह कटुपौष्टिक होता है। इसका प्रधान असर यकृत पर होता है तथा दस्त का रंग गहरा पीला हो जाता है। इसका यह फांट प्राचीन मलेरिया ज्वर में भी बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है किंतु नीम तैल जैसा प्रभावशाली नहीं है। उपदंश के पुराने रोगियों के लिये भी यह एक शक्तिशाली धातु परिवर्तक वस्तु है। इत्यादि ·····
मेजर डी. बी. स्पेन्सर।

कोमल पत्र (कोंपल)—संकोचक, वातकारक, अरुचि, रक्तपित्त, नेत्र विकार तथा कुष्ठादि नाशक है। कोमल पत्तों को घृत में भूनकर खाने से तीव्र अरुचि शीघ्र दूर होती है। चेचक के प्रतिकारार्थ इसके प्रयोग पीछे चेचक और नीम के प्रकरण में देखिये। फोड़ा या गांठ कच्चा हो और उसमें पाक हो रहा हो तो उसे शीघ्र पकाने के लिये नीम पत्रों को उबाल, गुड़ मिला पीसकर लेप करते हैं एवं लगभग पाक हो गया हो तो केवल नीम पत्रों को उबाल पुल्टिस बना बांधते हैं। वह खिचाव करके फोड़े को फोड़ देती है (ध्यान रहे गुड़ मिलाने से पकाने की शक्ति बढ़ती है। किंतु खिचाव कर फोड़ने की शक्ति कम हो जाती है)
—गां. औ. र.

(१) ज्वर पर—विषमज्वर (मलेरिया आदि)—नीम पत्र १० तो. सोंठ, मिर्च, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आमला, कालानमक, बिड़नमक, गंधक १-१ तो., जौ क्षार २ तोले तथा अजवायन ५ तो. इन सबका महीन चूर्ण करें। १ माशे से ३ माशे तक जलादि के अनुपान से लेने से त्रिदोषज सन्निपातिक ज्वर तथा प्रतिदिन आने वाले एवं इकतरा, तिजारी, चौथिया आदि सर्व प्रकार के ज्वर समूल नष्ट होते हैं। प्रतिदिन शरदऋतु में (मलेरिया के दिनों में) क्विनाईन की तरह इसकी १ मात्रा पानी के साथ लेने से ज्वर का निरोध होता है। ज्वर बाधा की संभावना नहीं रहती। यह योग भावप्रकाश का है। इस चूर्ण में समभाग शंख भस्म मिला लेने से यह अधिक प्रभावशाली होता है।
—अ. योग-चर्चा से।

अथवा—नीम पत्र व कचनार की छाल समभाग महीन चूर्ण कर ज्वर आने के पूर्व १ या २ मा. ताजे जल से लेवें। ज्वर रुक जावेगा या उसकी कम्पन तो अवश्य दूर होगी। २-३ बार के प्रयोग से यह योग मलेरिया एवं मौसमी ज्वरों पर परम लाभदायक है।
—नी. चि. वि.।

नीम-पत्र चूर्ण (३ मा. से ६ मा. तक) शहद में मिला चाटने से शरत्कालीन (मलेरियादि) ज्वर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।
—भा. भै. र.।

नीम के कोमल पत्रों के साथ अर्ध भाग फिटकरी भस्म मिला खरल कर ४-४ रत्ती की गोलियां बना रखें। १-१ गोली मिश्री के शर्बत के साथ लेने से सर्व प्रकार के ज्वरों पर विशेषतः मलेरिया ज्वर पर अति लाभ होता है—(स्वानुभूत) ज्वरावस्था में समस्त देह में दाह और जलन होती हो तो नीम पत्र-स्वरस ३ तो. में १ तो. मधु मिला पिलाने से वमन होकर शांति प्राप्त होती है। यदि वमन नहीं हो तो और भी स्थायी लाभ होता है (सु. उ. अ. ३६)। नीम की मुलायम कोमल पत्तियों को नीबू के रस में पीस कर शरीर पर लेप करने से जलन और ज्वर भी कम हो जाता है। हृदय, उदर तथा पिंडलियों में जलन होती हो तो नीम के ताजे पत्रों पर ठंडा पानी छिड़क कर उस स्थान पर रखने से दाह (जलन) की शांति होती है।

तृषा की विशेषता हो तो नीम पत्रों को साफ मिट्टी में मिला गोला सा बना आग में तपा कर लाल कर पानी में

Scanned with CamScanner

डालकर बुझा लें। उस बुझे हुए पानी को छानकर थोड़ा-थोड़ा पिलाने से भयंकर प्यास भी शीघ्र शांति होती है।

ज्वरों में धूपार्थ नीम पत्र प्रयोग -नीम पत्र, आक पत्र, अगर, देवदार, राल, बच, रोहिष तृण और गूगल समभाग एकत्र कूटकर आग पर डालकर धूप देने से सर्व प्रकार के ज्वर एवं मलेरिया ज्वर आराम होते हैं। शास्त्र में इसे 'अपराजित' धूप कहते हैं। अथवा—

नीम पत्र, बच, कूट, हर्र, श्वेत सरसों, जौ और गूगल समभाग कूट पीसकर, घृत मिला धूनी देने से सर्व विषम ज्वरों में लाभ होता है। अथवा—

नीम पत्र, आंवला, बच, इंद्रजौ, घृत, लाख और श्वेत सरसों को समभाग लेकर धूप देने से विषम ज्वरों की शांति होती है। सन्धिगत ज्वरों में—नीम पत्र, राल, श्वेत सरसों, संभालू पत्र और गूगल के चूर्ण की धूप देवें। —यो. र.।

बालकों के अत्यन्त तीव्र ज्वर में नीम पत्र चूर्ण को समभाग घृत और मधु में मिला धूप देने से ज्वर वेग शीघ्र शांत होता है—(बं. से.) यह धूप केवल बालकों के ही नहीं किसी के भी ज्वर की तेजी को दूर करता है। आगे वशिष्ट योगों में एक नीम के धूप का प्रयोग देखें।

इन्फ्लुएन्जा ज्वर पर—नीम पत्र, गिलोय, तुलसी पत्र हुरहुर के पत्र २-२ तो. तथा कालीमिर्च ६ मा. महीन पीस जल के साथ खरल कर ३-३ रत्ती की गोलियां बना लें। ३-३ घंटे से १-१ गोली उष्ण जल से देवें।

(२) नेत्र-विकार पर—नीम पत्र और लोध के समभाग मिश्रित चूर्ण को पोटली में बांध कर उस पोटली को जल में भिगोये हुए रखें। इस पानी को आंखों में डालने से नेत्र शोथ आदि नेत्र रोग नष्ट होते हैं। —बं. से.।

यदि आंखों के ऊपर शोथ के साथ ही साथ वेदना हो और भीतर खुजली चलती हो तो नीम पत्र तथा सोंठ को पीस थोड़ा सेंधानमक मिला कुछ गरम कर रात के समय एक वस्त्र की पट्टी पर रखकर बांधते रहने से २-३ दिन में नेत्र का यह विकार दूर होजाता है। ध्यान रहे ठंडे पानी एवं शीत वायु से नेत्रों को बचाना चाहिये।

आंखों में खुजली के साथ जलन हो तो नीम पत्रों को दो मिट्टी के सरावलों के मध्य में रख कपड़ मिट्टी से संपुटित कर कण्डों की आग में फूंक देवें। स्वांग शीतल होने पर अन्दर की भस्म को नींबू रस में खरलकर सुखा लें। इसका अंजन करने से लाभ होता है तथा नेत्रों के विकार नष्ट होते हैं।

अथवा—नीम पत्रों को जल के साथ महीन पीस टिकिया बना सरसों तैल में पकावें। जब यह जलकर काली हो जाय तब उसी तैल में उसे घोट दें, फिर दसवां हिस्सा शुद्ध कपूर तथा १० वां हिस्सा कलमीशोरा भी उसी में खूब घोट दें और कांच की डिब्बी में भरलें। इसे रात में आंजने से तथा प्रातः त्रिफला के पानी से प्रक्षालन करने से खुजली, जलन, लालिमा, माड़ा, जाला, धुन्ध आदि दूर होकर ज्योति बढ़ती है। यह अंजन प्रथम थोड़ी देर लगता है, पानी निकलने के बाद नेत्र साफ व ठंडे पड़ जाते हैं। —भा. गृ. चि.।

नीम की कोंपलें २० नग, यशद (जस्त) भस्म २ तो., लौंग ६, इलायची छोटी ६ और मिश्री २ तो. सबको एकत्र खूब महीन पीस छानकर सुर्मा बनालें। प्रातः सायं सलाई से लगाने से धुन्ध, जाला आदि विकार नष्ट होकर दृष्टि शक्ति बढ़ती है।

काजल—१ तोला भर साफ रुई को फैलाकर उस पर शुष्क नीम पत्र २० नग बिछा दें तथा ऊपर से ८ रत्ती कपूर का चूर्ण छिड़क कर रुई को लपेट कर बत्ती बना लें। ध्यान रहे लपेटते समय कपूर व पत्तियां सिमट न जावें। फिर इस बत्ती को १ तो. गोघृत में भिगोकर दीपक में रख जला दें। दीपक के दोनों ओर ईंट के टुकड़े रख ऊपर से कांसे की थाली उलट कर निर्वात स्थान में रखें। बत्ती पूर्ण जल जाने के बाद थाली में लगे हुए काजल को खुरचकर रख लें। नित्य रात में सोते समय इसे नेत्र में लगाने से नेत्रों का कसकसाना, धुन्ध मालूम होना, पानी गिरना, लाली आदि समस्त नेत्र रोग मिट जाते हैं। यह बच्चों के लिए तो और भी ज्यादा गुणकारी है। —अनुभूतयोग।

अथवा -जो काजल घर में नित्य बच्चों की आंखों

Scanned with CamScanner

में लगाने के लिये बनाया जाता है, उसमें समभाग नीम की लाल-कोमल पत्तियों को, कांसे की थाली में किंचित् अफीम, फिटकरी और रसौत मिलाकर खूब रगड़कर रख लें। यह काजल भी नेत्रों के लिये विशेष गुणकारी होता है।

बमनी (सलाक रोग) जिसमें आंखों की पलकें मोटी हो जाती हैं, खुजली होती, बरौनी झड़जाती, तथा पलकों का किनारा लाल हो जाता है। नीम पत्र के रस को गाढ़ा कर लगाते रहने से विशेष लाभ होता है

—वैद्य-निर्दशिका।

नेत्र-पीड़ा पर—जिस नेत्र में पीड़ा हो उसके दूसरी ओर के कान में नीम के कोमल पत्तों का रस गरम कर टपकावें। दोनों नेत्रों में पीड़ा हो, तो दोनों कान में टपकावें।

कफज अभिष्यन्द पर—नीम और आक के पत्तों की लुगदी के बीच में इनसे ४ गुने लोध को रखकर गोला सा बना, ऊपर मिट्टी का लेप कर पुटपाक विधि से पका लें। फिर आंख बन्द कर, आंख की पलकों पर उस लोध की धूनी देवें। ध्यान रहे अन्दर धुवां न जाने पावे।

—वं. से.।

(३) पांडु और कामला पर नीम पत्र, गिलोय-पत्र, गूमा पत्र, और हर्रछोटी ६-६ माशा सबको कूटकर २० तोला पानी में पकावें, ५ तोला शेष रहने पर छान कर १ तोला गुड़ मिला, प्रातःसायं (प्रथम २ रत्ती शिला-जीत ६ माशा मधु के साथ चाटकर) सेवन से पाण्डु में विशेष लाभ होता है। —भा. गृ. चि।

मृद्भक्षण (मिट्टी खाने) से उत्पन्न पाण्डु रोग में मिट्टी के दोषनाशार्थ तथा मिट्टी खाने की आदत छुड़ाने के लिये, मिट्टी में जिन द्रव्यों (बायविडंग, अतीस आदि) की गणना है, उनमें नीम पत्र का उल्लेख है। नीम पत्र के रस की यथेष्ट भावनायें देकर मिट्टी को खिलाने से, मृद्भक्षण से उत्पन्न दोष नष्ट होते हैं, मिट्टी खाने से द्वेष होता तथा रोगी क्रमशः स्वस्थ हो जाता है।

—च. चि. अ. १६।

कामला—पित्ताशय से निकलकर आन्त्र में आने वाली पित्तनलिका का मार्गावरोध होने से कामला रोग (पीलिया) हो, तो नीमपत्र-रस १० तोला में ३ माशा सौंठ चूर्ण और ६ माशा मधु मिलाकर ३ दिन प्रातः पिलाने से लाभ होता है। घृत, तैल, शक्कर व गुड़ से परहेज रखें। दही भात ही यदि खावें तो विशेष लाभ होता है। अथवा—नीम पत्र के साथ जड़ की छाल, फूल और फल (निमोली) समभाग, शुष्क कर, महीन चूर्णकर १ माशा की मात्रा में दिन में दो बार घी व शहद में मिला अथवा गोमूत्र, जल या दूध के साथ लेवें।

अथवा—नीम पत्र-रस १ तोला में समभाग अडूसा पत्र रस और १ तोला मधु मिला नित्य प्रातः सेवन करावें।

अथवा—नीम-पत्र रस २० तोला में थोड़ी शक्कर मिला कुछ गरम कर पिलावें। ३ दिन इस प्रकार नित्य १ बार देने से भी लाभ हो जाता है।

नीम के ५-६ कोमल पत्तों को पीसकर मधु के साथ सेवन से भी पांडु, मूत्रविकार और उदर विकार में भी लाभ होता है। —या पत्र रस १ तोला में १ तोला मधु मिला प्रात. ५-७ दिन तक पीने से भी यथेच्छ सुधार होता है।

(४) वातरक्त (गठिया, छोटी सन्धियों में वेदना युक्त जकड़न एवं शोथ Gout) पर—नीम पत्र व कंडु परवल के पत्र २-२ तो० एकत्र ३० तो० जल में पका चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर थोड़ा शहद मिला दिन में दो बार पिलाते रहने से कुछ दिनों में रक्त की शुद्धि, दोषों का पाचन व शमन होकर लाभ होता है। साथ ही साथ नीम पत्रों को कांजी (या तक्र) में उबाल, पीस कर लेप भी करते रहना चाहिए। —हा. सं.

(५) रक्त पित्त पर—नीम पत्र रस और अडूसा पत्र रस २-२ तो० एकत्र मिला उसमें थोड़ा मधु मिला दिन में २ बार सेवन से उत्तम लाभ होता है। यह योग राजयक्ष्मा, कास और हृद्दाह में भी हितकर है।

—आ. पत्रिका।

रक्तपित्त के रोगी को नीम पत्र का साग बनाकर खिलाना हितप्रद है।

Scanned with CamScanner

नकसीर हो तो नीम पत्र के साथ अजवायन मिलाकर जल में पीस कर कनपटियों पर लेप करते हैं। नाक से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। आगे छाल का प्रयोग देखें।

(६) अम्लपित्त, वमन और हैजा पर—ऊपर रक्तपित्त का जो योग दिया है, वह अम्लपित्त पर भी उपयोगी है अथवा अम्लपित्त में नीम पत्र और आंवलों को चटनी की तरह पीसकर घृत के साथ खिलाते हैं।

वमन निवारणार्थ—नीम पत्र २ तो० को अच्छी तरह पीसकर १० तो० जल में घोल व छानकर ५-५ तो० की मात्रा में पिलाते हैं। या नीम पत्र के कल्क की गोली पानी से या मधु से दें[1]।

हैजा के प्रतिकारार्थ -१ तो० नीम पत्र के साथ कपूर और भुनी हुई हींग १-१ रत्ती खरल कर उसमें ½ तो० गुड़ मिला प्रति दिन रात को सोते समय सेवन से हैजा नहीं होने पाता। जब तक निवास स्थान के आस पास हैजे का प्रकोप हो तब तक इस योग के सेवन से रक्षा होती है, कोई विकार नहीं होने पाता। —व. गु.

(७) कास, श्वास और हिक्का पर—नीम पत्र, सांभर नमक, भांग सूखी, अडूसा और कच्चे चना ५-५ तो० थोड़े पानी के साथ पीस कर टिकिया बना मटकी में बन्द कर कपरौटी कर १० सेर जङ्गली कण्डों में फूंक दें तथा पीस कर शीशी में भर रखें। १ या २½ रत्ती प्रातः सायं मधु से चटावें। कास, श्वास में लाभ होता है।

नीम पत्र, मातुलुङ्ग (बिजौरा) पत्र और पटोल पत्र इन तीनों में किसी एक के पत्तों का क्वाथ कर उस क्वथित जल में मूंग दाल का यूप यथाविधि सिद्ध कर उसमें त्रिकटु चूर्ण और यवक्षार या अपामार्गक्षार (जो श्वास, हिक्का के लिए योग्य हो) उचित मात्रा में अवचूर्णित कर सेवन कराने से श्वास और हिक्का में लाभ होता है। —च. चि. अ. १७

(८) उदर कृमि नाशार्थ—नीम पत्र रस ½ तो० तक में भुनी हींग २ रत्ती मिला सायं प्रातः पिलाने से सूक्ष्म कृमि नष्ट होते हैं, नये पैदा नहीं होने पाते तथा कृमिविकारजन्य पांडुता, मंदाग्नि, मंदज्वर एवं निर्बलता भी दूर होती है। —गां. औ. र.

रोगी को बेंगन या किसी दूसरे साग के साथ नीम पत्र का छौंक देकर खिलाने से भी उदर कृमि नष्ट होते हैं।

अथवा - नीम पत्र स्वरस को मधु के साथ प्रातः सायं चटाने से भी कृमि नष्ट होते हैं।

अथवा पत्तों को काली मिर्च के साथ पीसकर ३-४ रत्ती की गोली बना रोगी को कुछ दिन तक प्रातः ताजे जल के साथ देने से भी लाभ होता है।

(९) अतिसार पर—अतिसार पक्व हो तो नीम के कोमल पत्र और बबूल के पत्र ६-६ माशा एकत्र पीसकर दिन में २ बार शहद के साथ लेने से तत्काल लाभ होता है। किन्तु ध्यान रहे नीम अग्निमांद्यकर होने से आमातिसार में इसके प्रयोग से और भी आम की वृद्धि होगी।

विरेचनाऽतियोग अर्थात् जुलाब लेने पर अधिक दस्त होने से निर्बलता आ गई हो तथा थोड़ा-थोड़ा पानी जैसा पतला आम निकलता हो तो नीम पत्र स्वरस में शक्कर मिला पीने से लाभ होता है तथा आंत्र दाह शमन होता है।

(१०) अर्श पर—प्रतिदिन नीमपत्र २१ नग लेकर मूंग की भिगोई व धोई हुई दाल के साथ पीस, कोई भी मसाला न मिलाते हुये उसका पकोड़ी बना, घी में तल कर खावें। इस प्रकार २१ दिन तक इन पकोड़ियों के खाने से सर्व प्रकार के अर्शांकुर निर्बल होकर गिर जाते हैं। इसके सेवन काल में केवल ताजा मट्ठा ही पीकर रहना चाहिये। नमक भी न लेवें। यदि न रहा जाय तो

---

[1]वमन पर ये प्रयोग शार्ङ्गधर के कल्क-कल्पना अध्याय के अनुसार हैं। ध्यान रहे इन प्रयोगों से और भी वमन होकर विशेषतः कफज वमी के कफाशय (छाती, फुफ्फुस) तथा आमाशय या कफ युक्त आमाशय की शुद्धि होती है। एतदर्थ चरक मतानुसार नीम पत्र या नीम की छाल के क्वाथ में पिप्पली, सरसों, मैनफल, सेंधानमक मिला पिलाते हैं। किन्तु दुर्बलों के लिए ये योग प्रशस्त नहीं हैं। उन्हें तो लङ्घन ही कराना योग्य है।

Scanned with CamScanner

सेंधानमक बहुत थोड़ा लेवें, सिर्फ मट्ठा पर ही न रहा जाय तो थोड़ा चावल का भात उसके साथ लेवें।

—व. चं.

अथवा—नीम पत्र २० तोला को मिट्टी के या कलईदार पात्र में १½ सेर जल मिला, रात को रख दें। प्रातः खूब घोट कर कपड़े में छान, उसी पात्र में मंद आंच पर पका घन क्वाथ कर लें। इसे १ माशा की मात्रा में प्रातः गाय के मक्खन के साथ खिलावें। १ घंटा बाद कड़वा-गोघृत (नीमपत्र के रस के साथ पकाया हुआ गो घृत) ५ तोला पिला दें। कुछ दिन के सेवन से सर्वप्रकार के अर्श ठीक हो जाते हैं। —नीम गुण विधान।

लेपार्थ—नीम पत्र के साथ कनेर पत्रों को पानी में महीन पीस मस्सों पर लेप करने से कुछ दिनों में वे नष्ट हो जाते हैं।

(११) प्रमेह और सुजाक पर—नीम पत्रों को पीस टिकिया बना थोड़े से गोघृत में पकावें। टिकिया जलजाने पर घृत को छानकर रोटी के साथ खाने से ७ दिन में प्रमेह दूर होता है तथा वीर्य का स्तम्भन होता है। अथवा—

नीम पत्र रस २ तोला में १ तोला मधु मिला, नित्य कुछ दिन सेवन से प्रमेह नष्ट होता है।

सुजाक पर—नीम पत्र रस ३ तोला में १ माशा तूतिया (नीलाथोथा) घोटकर शुष्क कर, उसे कौड़ियों के भीतर भर, कौड़ियों की भस्म कर महीन चूर्ण कर रख लें। २ रत्ती की मात्रा में प्रतिदिन गोदुग्ध के साथ सेवन से विशेष लाभ होता है —नीम गुण विधान।

यदि लिंगेन्द्रिय सूज कर, मूत्र बन्द हो गया हो, तो नीम पत्र के क्वाथ में रोगी को बिठाने से मूत्र की रुकावट दूर हो जाती है।

(१२) अश्मरी—नीम-पत्रों की राख २ माशा की मात्रा में कुछ दिनों तक नियमित जल के साथ पिलाने से पथरी गल जाती है।

तथा नीम-पत्र १२ तोला पीसकर २ सेर पानी में औटावें। चतुर्थांश पानी जल जाने पर नीचे उतार कर उसका बफारा देवें, पथरी निकल जाती है।

अथवा—नीम पत्र २ माशा को ५ से १० तोला तक जल में पीस छान कर१॥ मास तक पिलाते रहने से पथरी गल जाती है —नी.गु. वि.।

(१३) अपस्मार (मृगी), अर्द्धमस्तक शूल तथा भूतोन्माद पर—नीम की ताजी ५ पत्तियां तथा अजवायन व काला नमक ३-३ माशा एकत्र पीस, ५ तोला जल में घोल छानकर नित्य प्रातः सायं, लगभग तीन मास तक पिलाने से यह कठिन व्याधि दूर होती है।

—भा. गृ चि।

आधा शीशी पर—नीम पत्र शुष्क, कालीमिर्च और चावल समभाग एकत्र महीन चूर्ण कर, सूर्योदय से पूर्व, जिस ओर पीड़ा हो उसी ओर की नाक में १ या २ रत्ती तक नस्य लेने से पुरानी से पुरानी यह व्याधि शीघ्र नष्ट होती है।

भूतोन्माद पर—नीम पत्र, बच, हींग, सर्प की केंचुली और सरसों इनका धूप देने से डाकिनी, भूतोन्माद आदि प्रेत व्याधि दूर होती हैं। —भै. र.

(१४) संसर्गज व्याधि, प्लेग, तथा श्वेतकुष्ठ व चेचक पर—ऊपर प्रयोग नं० ६ में हैजा के प्रतिकारार्थ जो योग दिया गया है उसके सेवन से कोई भी संसर्गज या छूत की व्याधियां नहीं होने पातीं। तथा इसी प्रयोजनार्थ २१ दिन तक २१ नग नीमपत्रों को डालकर गो घृत में आटा सानकर [मांडकर] बनाई हुई रोटियों को गोघृत और मूंग की दाल के साथ खाते हैं। नमक से परहेज रखा जाता है।

प्लेग निवारक एवं नाशक योग - नीम-पत्र १ तोला और ६ माशा कालीमिर्च एकत्र नीम के डंडे से खूब महीन घोटकर चना जैसी गोलियां बना लें। प्लेग के दिनों में प्रतिदिन ४ गोलियां प्रातः जल के साथ लेते रहने से प्लेग के आक्रमण का भय नहीं रहता। इन दिनों में घर में नीम पत्रों की धूप देते रहने से वायु शुद्ध होकर रोगों के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

अथवा—नीमपत्र, चिरायता व पित्तपापड़ा समभाग लेकर अलग अलग जल में भिगोकर, प्रातः नीम पत्रों को उसी जल में (जिसमें भिगोया है) खूब महीन पीसकर उसमें चिरायता व पित्त पापड़ा वाला जल मिला मन्द

Scanned with CamScanner

आंच पर पकावें । पत्र स्वाप हो जाने पर उतार कर, तोल कर प्रति तोले के अनुपात से ४ रत्ती केशर पीसकर उसमें मिलावें, तथा सुरक्षित रखें या २-३ माशा की गोलियां बना लें । प्लेगाक्रान्त रोगी को १-१ गोली खांड के साथ देवें । ३ दिन इनका सेवन करावें ।

—नी. नि. वि. ।

श्वेत कुष्ठ पर—नीम पत्र ताजे ५ नग और हरा आंवला १ तो. (हरे के अभाव में सूखा आंवला ६ मा.) प्रातः सूर्योदय के पूर्व ही ताजे जल में पीसछान कर पीने से तथा केला के क्षार में हल्दी गोमूत्र के साथ पीसकर श्वेत दागों पर लगाते रहने से लाभ होता है ।

—भा. गृ. चि. ।

चेचक पर—नीम के कोमल पत्र या कोंपल १ तो., जंगली केले के बीज ६ मा., हल्दी ३ माशा और कपूर १ मा. एकत्र केले के जल से पीस चने जैसी गोलियां बनालें। प्रातः सायं अवस्थानुसार बच्चे को १ या २ गोली मिश्री मिला कर खिलादें । १ वर्ष का हो तो २ गोली, इसी प्रकार समझकर मात्रा की कल्पना कर लेवें । इसके सेवन से माता की बीमारी न होगी । —भा. गृ. चि. ।

नोट—कुष्ठ तथा चेचक पर विशेष योग पीछे कुष्ठ और नीम एवं चेचक व नीम के प्रकरणों में देखिये ।

(१५) गंज पर तथा केश वृद्धि के लिये—नीम पत्रों के साथ समभाग बेर की पत्तियों को अच्छी तरह पीसकर, इसका उबटन या लेप सिर पर लगाकर १२ घंटे बाद धो डालें । एक मास के इस प्रयोग से बाल उग आवेंगे, गंज दूर होगा ।

नीम पत्रों को पानी में खूब उबालकर ठंडा होजाने पर इसी पानी से सिर को धोते रहने से केश सुदृढ़ होते हैं, उनका गिरना या झड़ना रुक जाता है तथा वे काले भी होने लगते हैं । इसके अतिरिक्त सिर के कई रोग फुन्सियां आदि निकलना बन्द हो जाता है ।

—नी. चि. वि. ।

(१६) विषों पर—सर्प दंश परीक्षार्थ–किस जंतु ने दंश किया है? ऐसी अनजान की स्थिति में उस व्यक्ति से नीम पत्र चबवाये जाते हैं (या नमक, मिर्च खिलाया जाता है) सर्प दंश या सर्प विष होगा तो नीम पत्र ... नहीं लगते. (नमक, मिर्च नमकीन, चरपरे नहीं ...

प्रायः सर्व प्रकार के विषों के उपद्रवों पर नीम, कालीमिर्च, सेंधानमक, मधु एवं घृत सबका ... कर सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है ।

बर्र या बिच्छू के दंश पर पत्तों को मसल कर स्थान पर मलने से शांति प्राप्त होती है ।

संखिया व अफीम के विष पर—नीम के पत्तों का ... पिलाते हैं ।

(१७) स्त्री और बाल रोगों पर—प्रसूता को ... दिन से ही ३ दिन तक पत्तों का ताजा रस १½ तो. की मात्रा में प्रातः पिलाते रहने से गर्भाशय का ... होकर उसके आस पास की सूजन दूर होती, रक्तस्राव ... से होता, मल साफ होता, क्षुधा उत्तम लगती, ज्वर ... आता यदि आया भी तो उसका वेग बहुत कम रहता तथा माता के दूध द्वारा नीम का कुछ अंश बच्चे ... मिलते रहने से उसकी प्रकृति ठीक रहती है ।

—डा. देसाई

उक्त प्रकार से प्रसूता को पत्र रस का सेवन कराने से उसके दुग्ध की शुद्धि होती है तथा उसकी वृद्धि ... है इसी प्रयोजन से ग्रामों में ब्यायी हुई गाय या भैंस ... नीम पत्र खिलाये जाते हैं, जिससे दूध खूब होवे तथा ... निरोगी व सशक्त बनी रहें ।

दुग्ध शुद्धि के लिये (वातादि दोषों से दूध के दूषित होने पर) चरक में जिन द्रव्यों का उल्लेख है उनमें नीम भी है । प्रसूता को या धाय को (जिसका दूध बालक पीता हो) नीम पत्तों की साग बना उसका रस, सेंधा नमक तथा थोड़ा त्रिकटु का चूर्ण मिला कर सेवन कराते ...

—च. चि. अ. ...

नीम पत्रों को मिला कर पकाये हुए सुखोष्ण पानी से प्रसूता की योनि धोने से प्रसव के कारण होने वाला योनि शूल एवं शोथ नष्ट होता है तथा व्रण शीघ्र सूखकर योनि ... तथा संकुचित हो जाती है । योनि शूल की विशेषता ... तो नीम पत्रों के साथ निबोली (नीम फल) की गिरी तथा एरण्ड बीज की गिरी को पीस कर लेप करते ...

शीघ्र लाभ होता है।

योनि दुर्गन्ध नाशार्थ—नीम पत्र के शीत कषाय या क्वाथ से योनि को दिन में कई बार धोते रहने तथा नीम छाल का धुआं देने से या नीमपत्रों को पीसकर थोड़ा गरम कर सुखोष्ण लेप करते रहने से थोड़े ही दिनों में योनि के भीतर का चिप-चिपापन दूर होकर दुर्गन्ध एवं खुजली दूर हो जाती है।

योनि रोग में उत्तम कार्य करने वाले चरक के उदुम्बरादि तैल में नीम पत्र डाला जाता है। इस तैल के प्रयोग से चिपचिपी, विसरन मुख वाली, चिरकाल से दूषित दारुण योनि ७ दिन में शुद्ध हो जाती है। --च चि.अ. ३०

अथवा प्रथम अमलतास के क्वाथ से योनि को धोकर नीम पत्र, अडूसा, बच, कडूपरवल तथा प्रियंगु पुष्प के एकत्र चूर्ण को योनि में रखने से योनि दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है।

स्तन पाक होकर व्रण हो गया हो तो नीम पत्रों की काली राख बना कर उसमें से २½ तो. पत्तियों की राख को ५ तो. सरसों तैल में मिला आग पर रख कर नीम के डंडे से खूब घोट कर अलग रखें। और नीम पत्र के क्वाथ से व्रण को धोकर उस राख मिश्रित तैल को चुपड़ दें तथा कुछ सूखी राख ऊपर से बुरक कर वस्त्र खंड से बांध दें। २–३ दिन के इस उपचार से विशेष लाभ होता है। फिर प्रति दिन नीम क्वाथ से धोकर नीम तैल लगाते रहें। व्रण शीघ्र भरकर सूख जाता है। —नी. चि. वि.।

स्तनों से दूध निकलना बन्द करना हो तो नीम पत्रों के कल्क का लेप करते रहें।

कष्टार्त्तव या मासिक धर्म में पीड़ा विशेष होती हो तो नीम पत्रों को पानी की वाष्प (भाप) पर स्वेदित कर गरम गरम नाभी के नीचे बांधने से मासिक धर्म के समय होने वाला कष्ट (या पुरुष प्रसंग के समय होने वाली पीड़ा) दूर होती है।

अथवा नीम की ७ पत्तियों को अदरक के जल में पीस कर पिलाने से भी मासिक पीड़ा दूर हो जायगी।
--नी. चि. वि.।

शिशु-रक्षक योग—नीम-पत्र ५ तोला को २० तोला जल में घोट छानकर उसमें २० तोला गोघृत मिला मंद आंच पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर सुरक्षित रखें। मात्रा १ माशा घृत, थोड़े दूध में मिला बालक को पिलाया करें। बालक का रक्तविकार दूर होगा। फोड़ा, फुंसियां नहीं निकलेंगी। —नी चि. वि.।

निम्ब पत्रक चूर्ण पत्रों को छाया शुष्क कर (सींकों को दूर कर) जो कूट चूर्ण कर तवे या कढ़ाई में मन्द आंच पर, चम्मच से नीचे ऊपर पत्तों को करते हुये भून लें। जलने न पावें। फिर नीचे उतार कर खरल कर शीशी में भर रखें। १ से ८ रत्ती की मात्रा में दिन में ३-४ बार, मुख में डाल कर आनन्द से खा जावें। यह विशेष कटु नहीं होता, प्रत्युत स्वादिष्ट होता है। इससे अरुचि दूर होती है, पाचन-क्रिया में सुधार होता, पित्त ज्वर नहीं आने पाता यदि हो तो नष्ट हो जाता है। चर्म विकार नहीं होने पाते, यदि हों तो दूर हो जाते हैं। पित्त या कफ के कोई विकार नहीं होने पाते।

आगे विशिष्ट योगों में—बलवृद्धिकर योग देखें।

पत्र-शलाका या सींक—कृमिघ्न तथा कास, श्वास, पित्तज्वर, कुष्ठ, विसूचिका, वमन, हिक्का, दाह, पांडु आदि पर उपयोगी हैं।

(१८) विसूचिका (हैजा) पर—सींक ५ नग, इलायची बड़ी १, लौंग ५ नग तथा नारियल जटा भस्म २ रत्ती, सबको ५ तोला जल में महीन पीस छानकर थोड़ा गरम कर २-२ घंटे से देवें। पेशाब बन्द हो गया हो तो नीम के फूलों को पानी में पीस पेडू पर बांध रखें।

(१९) वमन निरोधार्थ—सींक ७ नग को गर्म-राख में भुलभुला कर, २ बड़ी इलायची और ५ काली-मिर्च के साथ महीन पीस कर २½ तोला जल के साथ पिलावें। —आगे विशिष्ट योगों में निम्ब वटी देखें।

(२०) हिक्का पर—सींक २ नग को १ तोला जल में पीस, मोरपंख के चन्दा की भस्म १ रत्ती मिला पिलावें।

(२१) मूत्र दाह एवं मूत्रावरोध में—सींक और पत्र रस २½ तोला शर्बत उन्नाव के साथ पिलावें।
—यूनानी चि. सा.।

Scanned with CamScanner

(२२) प्लेग पर—सींक २१ नग और ७ कालीमिर्च को ५ तोला अर्क गुलाब में पीसकर २-२ घंटे के अन्तर से पिलाने तथा गिल्टी पर, बारूद और मिट्टी के तेल को मिलाकर लेप करने से प्लेग के रोगी को बड़ा लाभ होता है। —ब. चं.

(२३) पित्त प्रकोप पर—सींक, धनियां, सौंठ और शक्कर ६-६ माशा एकत्र मिला क्वाथ कर प्रातःसायं पीने से पित्त की शांति होती है, दाह, खट्टी डकार, अपचन, अधिक तृषा दूर होती है। पित्त ज्वर में भी यह लाभकारी है।

(२४) कफज मेह (इक्षुमेह, सुरामेह व सिकता मेह) पर—सींकों के क्वाथ में १ माशा त्रिकटु चूर्ण प्रक्षपरूप से मिलाकर सेवन से एकाध मास में ये मेह दूर हो जाते हैं। —गां औ. र.।

(२५) पांडु रोग में—सींक ७ माशा और श्वेत पुनर्नवा मूल ६ माशा दोनों को जल में पीस छानकर, कुछ दिनों तक पिलाने रहने से अवश्य लाभ होता है। —नी. चि. वि.

नोट—उक्त सब प्रयोग डंठल सहित सींकों के हैं। इसके डंठल में ही विशेषतः कास, श्वास, अर्श, गुल्म, उदर, कृमि, प्रमेहादि नाशक गुण हैं।

ये सींक दांत खोदने के काम में भी विशेष लाभदायक हैं। इससे मुख की अच्छी सफाई होती, दांतों के कीड़े आदि नष्ट हो जाते हैं। मुख की विरसता दूर करने में नीम को सींक सभी सींकों से बढ़कर है।

पत्तो के अभाव में छाल को ग्रहण करें।

छाल—नीम वृक्ष की छाल (विशेषतः अन्तरछाल, जड़ की छाल और भी उत्तम) शीतल, नियत कालिक ज्वर प्रतिबंधक, ग्राही, पौष्टिक, आमाशय को बलप्रद, चर्मरोग नाशक, शोथहर, कृमिघ्न और रसायन है। इसका ज्वर प्रतिबंधक धर्म सिन्कोना की छाल जैसा है। छाल में स्थित कड़वा दानेदार क्षारीय द्रव्य मार्गोसीन त्वचा मार्ग से बाहर निकलता है। वह त्वचा के लिये उत्तेजक एवं दाहशामक होता है। छाल में ग्राही गुण विशेष है। अतः इसकी ग्राही पौष्टिक क्रिया अधिक होती है। तथा ज्वर प्रतिबंधक धर्म में बहुत कमी आती है। यह ज्वर प्रतिबंधक या ज्वरनाशक धर्म की न्यूनता विशेषतः ऊपरी छाल में पाई जाती है। —डा. देसाई

छाल का अर्क या क्वाथ बनाकर देने की अपेक्षा चूर्ण रूप में इसका उपयोग विशेष लाभदायक होता है (तथापि इसका फाण्ट या टिंक्चर या क्वाथ भी लाभकारी है) इसका ग्राही धर्म निवारणार्थ इसके साथ कटुकी, निशोथ आदि मिलाकर दिया जाता है। पित्तज्वर या शोथयुक्त ज्वर में यह अधिक उपयोगी है। (जीर्ण विषम ज्वर में छाल की अपेक्षा नीम-तैल बहुत गुणकारी सिद्ध हुआ है)

डा. कोमान के मतानुसार—छाल का टिंक्चर मलेरिया ज्वर के रोगियों पर विशेष उपयोगी पाया गया है। ऊपरी छाल के फाण्ट के प्रयोगों का परिणाम भी ऐसे रोगियों पर संतोषजनक रहा है।

मैंने मलेरिया ज्वर में सिन्कोना की छाल का तथा संखिया और नीम-छाल का भी प्रयोग कर देखा है। नीम-छाल से भी रोगियों को लाभ हुआ तथा पश्चात् परिणाम भी उत्तम रहा जैसे सिन्कोना के प्रयोग से ६ दिन में ६० रोगियों में से ४६ अच्छे हुए; संखिया प्रयोग से ३८ में से २६ को लाभ हुआ; किंतु नीम-छाल के प्रयोग से ६ दिन के अन्दर ही २३४ रोगियों में से १०६ रोगी आराम हुये, तथा ज्वर से होने वाली कमजोरी दूर होकर शरीर में शक्ति-संचार भी हुआ। —डा. कारनिस

(ब. चं. के आधार पर)

अरुचि, वमन, ग्रहणी, कृमि तथा यकृद्विकारों में छाल का स्वरस मधु के साथ दिया जाता है।

(२६) ज्वरों पर—छाल ५ माशा तथा लौंग ५ रत्ती वा दालचीनी ४ रत्ती, एकत्र महीन चूर्ण कर प्रातः सायं जल के साथ २ माशा की मात्रा में लेने से साधारण ज्वर, नियतकालिक ज्वर एवं रक्तविकार दूर होते हैं तथा बल की वृद्धि होती है। अथवा—

छाल, त्रिफला, अमलतास का गूदा, पटोलपत्र, मुनक्का, नेत्रवाला १-१ तो. तथा मिश्री ६ माशा एकत्र जौकुट कर क्वाथ बना ३ मात्रा कर, ६-६ माशा मधु मिला दिन में ३ बार लेने से वात पित्तज्वर, विषमज्वर, नष्ट होता,

Scanned with CamScanner

मलावरोध दूर होता एवं क्षुधा वृद्धि होती है।

छाल, धनियां, रक्तचन्दन, पद्मकाष्ठ, गिलोय और सोंठ का क्वाथ प्रायः सर्वज्वर हर एवं उत्तम गुणकारी है,

कफ ज्वर पर—छाल, सोंठ, पीपला मूल, हरे, कुटकी और अमलतास का क्वाथ लाभदायक है —ग. नि.

सन्निपात ज्वर पर—छाल, नागरमोथा, देवदारु, कुटकी, त्रिफला, हल्दी, कटेरी मूल और पटोल पत्र का क्वाथ काम करता है। ग. नि.।

मलेरिया या विषमज्वर पर—नीम की जड़ की अन्तरछाल जौकुट कर २ तो० में १६ तो० जल मिला मटकी में रात भर भिगोकर प्रातः पकावें। ४ तो० जल शेष रहने पर छान कर सुखोष्ण पिलावें। इसी प्रकार रात्रि में या हो सके तो दिन में ३ बार पिलावें। अथवा जड़ की अन्तरछाल ५ तो० जौकुट कर ६० तो० जल में १८ मिनट तक उबाल कर छान लें। मलेरिया ज्वर में जब किसी औषधि से लाभ न हो तो इस फांट को ४ से ८ तो० की मात्रा में ज्वर चढ़ने से पूर्व २-३ बार पिलाने से ज्वर रुक जाता है। जिन्हें कुनाइन अनुकूल नहीं पड़ती उन्हें इससे अच्छा लाभ होता है। —वं० चं०

डाक्टर देशाई का कथन है कि शीतपूर्ण या मलेरिया ज्वर में नीम के टिंचर या क्वाथ की अपेक्षा अन्तरछाल का चूर्ण ३० रत्ती की मात्रा में दिन में ३-४ बार देने से अथवा उक्त विधि से बनाये हुये फांट के सेवन से विशेष लाभ होता है। कुटकी या काली मिर्च और चिरायता के साथ बनाया हुआ फांट ज्वर की अवस्थाओं में अमूल्य गुणकारी है। ज्वर वेग के पूर्व २-२ घण्टे के अन्तर से ३ बार देकर वेग का समय जाने के बाद भी एक बार दे देना चाहिए। क्वाथ या फांट यथासम्भव ताजा ही बनाकर देवें। ग्रीष्म ऋतु में अधिक परिणाम में बनाकर रखने से खराब हो जाता है।

टिंचर प्रयोग—अन्तर छाल का चूर्ण २½ औंस को रेक्टीफाइड स्प्रिट १ पौंड के साथ एक बड़ी बोतल में भर कार्क बन्दकर ३ दिन धूप में रखें। फिर ब्लाटिंग पेपर या फलालेन के कपड़े से छानकर शीघ्र ही बोतल में भर कार्क बन्द करदें। मात्रा ½ ड्राम से २ ड्राम तक। यह कुनाइन के स्थान पर दिया जाता है। पारी से आने वाला ज्वर, ज्वर जन्य अशक्ति, तृषा, खांसी एवं अतिसार नाशक है। दिन रात में इसकी ६ मात्रा तक दे सकते हैं। —नीम के उपयोग से।

आगे विशिष्ट योगों में निंबारिष्ट देखें।

वात कफज्वर (इनफ्लुएन्जा) पर—छाल के साथ चिरायता, कुटकी, अडूसा पत्र, त्रिफला, नागरमोथा, मुलहठी और सोंठ प्रत्येक २-२ माशा जौकुट कर अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर उसके साथ त्रिभुवन कीर्ति रस देने से अङ्गमर्द, शिरःशूलादि उपद्रव सहित ज्वर दूर हो जाता है। —आ० पत्रिका

जीर्ण ज्वर पर—छाल, काली दाख और नीम गिलोय समभाग का क्वाथ कुछ दिन सेवन कराते हैं अथवा छाल १ तो० को ५० तो० जल में पका ५ तो० शेष रहने पर छानकर प्रातः पिलाते रहने से कुछ दिनों में शरीर में रहने वाला ज्वरांश निकल जाता है।

अथवा छाल, गिलोय, कटु पटोल पत्र, छोटी कटेरी व इन्द्र जौ समभाग, जौकुट कर ३½ तो० का अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर उसकी दो मात्रायें कर प्रातः सायं ६-६ माशा मधु मिला सेवन कराते रहने से अति पुराना दृढ़ हुआ ज्वर भी थोड़े दिनों में छूट जाता है। भोजन में घृत थोड़ा लेवें। गुड़ बिलकुल न लेवें। —गां० औ० र०।

मसूरिका आदि विस्फोटक ज्वरों पर—छाल, खदिरसार, गिलोय और इन्द्र जौ के क्वाथ में मधु मिला सेवन करावें। —योग रत्नाकर।

छाल, पित्तपापड़ा, पाठा, पटोल पत्र, कुटकी, अडूसा की छाल, जवासा, आंवला, खस तथा श्वेत व लाल चन्दन के क्वाथ में खांड मिलाकर सेवन से त्रिदोषज मसूरिका नष्ट होती है। जो मसूरिका बाहर निकल कर अन्तर्लीन हो जाती है वह भी बाहर निकलकर शांत हो जाती है। —भ० र०

नोट—क्वाथ मात्रा ४ तो० में ६ माशा खांड मिलावें। इस क्वाथ से विसर्प भी नष्ट होता है। पाठा के स्थान पर द्राक्षा ले सकते हैं। आगे विशिष्ट योगों में नीम सत्व का प्रयोग देखें।

Scanned with CamScanner

(२७) अतिसार पर—अन्तर छाल जौकुट की हुई ५ तो. को १० तो. जल में आध घंटे तक औटाकर छान लें। फिर उस छनी हुई छाल को पुनः ३० तो. पानी में पकावें, २० तो. जल शेष रहने पर छान कर उसमें उक्त छना हुआ जल मिला शीशी में भर लें। रोगी को ५-५ तो. दिन में ३ बार पिलाने से पतले दस्त आने बन्द हो जाते हैं। —नीम के उपयोग।

आमातिसार हो तो—अन्तरछाल को जौकुट कर किसी पात्र में रख आग पर जलाकर, खरल कर छान रखें। १ तो. यह भस्म दही के साथ दिन में २ बार सेवन करावें।

(२८) उपदंश तथा पूयमेह (सुजाक) इक्षुमेह और सिकता मेह पर—छाल २० तो. जौकुट कर, सायंकाल के समय १ सेर खौलते हुए जल में डालकर, आग से नीचे उतार कर वैसी ही रात भर पड़ी रहने दें। प्रातः छानकर उसमें से ५ तो. रोगी को पिलावें। शेष जल से उपदंश के व्रणों को धोवें। इस प्रकार नियम पूर्वक महीनों तक उपचार करने से इस रोग से छुटकारा होता है तथा व्रण भी सूख जाते हैं। —नी. उ

नोट—खौलते हुए जल में डालकर किसी मटकी में रातभर ढांक कर रखना चहिए। प्रातः रोगी की शक्ति-अनुसार दिन में १-२ बार ४ से ५ तो. तक पिलावें। पथ्य में—केवल घृत, खांड और गेहूं की पतली रोटियां देवें और कुछ नहीं देना चाहिए। १ मास के अन्दर ही पूर्ण लाभ होता है। इस प्रयोग से प्रमेह, बद तथा चट्टे आदि भी दूर होते हैं। प्रमेह पर ताजी छाल को कूट कर पुटपाक विधि से रस निकाल मधु के साथ सेवन करने से भी लाभ होता है।

सिकता या इक्षुमेह हो, तो—छाल के क्वाथ को नित्य नियमित प्रातः काल पिलाते रहने से लाभ होता है।

पूयमेह (सुजाक) में—छाल का मोटा चूर्ण ४ तो मटकी में २॥ सेर जल के साथ पकावें। २० तो. तक शेष रहने पर छान कर पुनः उसे पकावें और २ या २॥ तो. कलमी सोरा का चूर्ण थोड़ी थोड़ी मात्रा में चुटकी से डालते जावें तथा नीम की लकड़ी से धीरे-धीरे हिलाते रहें। पानी पूरा जल जाने पर, उतार कर, चूर्ण को पीसकर कपड़े से छानकर सुरक्षित रखें। ... मात्रा में प्रतिदिन गोदुग्ध की लस्सी के साथ सेवन ... से शीघ्र ही लाभ होता है।

अथवा छाल चूर्ण १० तो. के साथ समभाग ... बबूल का और सबाना लेकर गोंद को ... (दूध में आधा जल मिलाकर बनाई हुई लस्सी) ... कर प्रातः पिलाने से भी कुछ दिनों में लाभ होता है।

(२९) पांडु रोग पर—छाल, पुनर्नवा ... हल्दी, सौंठ, गिलोय, कटुकी, हरड़, और ... समभाग के अष्टमांश क्वाथ में ४ तो. गोमूत्र मिला ... से विशेष लाभ होता है। इससे कास, श्वास, शोथ ... विकार भी समूल नष्ट होते हैं। आधुनिक लिव्हर एक्स्ट्रेक्ट (Liver extract) के इंजेक्शनों से थोड़े समय के लिए ही लाभ प्रतीत होता है। किंतु इससे पूर्ण लाभ होता है। —आ० पत्रिका

(३०) कृमिरोग (विशेषतः आंत्र-कृमि) पर—अन्तर छाल, इन्द्र जौ और वायविडंग का एकत्र चूर्ण मात्रा ... मा. के साथ भुनी हींग २ रत्ती मिला (यह एक मात्रा है) मधु मिला दिन में २ बार सेवन कराते रहने से अन्त्र में रहने वाले सब प्रकार के सूक्ष्म कृमियों का नाश होजाता है। —गां. औ. र.

(३१) प्लेग पर—भीतरी छाल लगभग २ तोला पीस कर ५ तो पानी में छानकर प्रातःसायं पीने से तथा पथ्य में केवल दूध पिलाने से और प्लेग की गिल्टी पर नीम पत्र की या छाल की ही पुल्टिस लगाने से बड़ा लाभ होता है। ग्रंथी बिखर जाती है तथा ज्वर में शांति मिलती है। (व. चं) पीछे पत्र-प्रयोगों में नं. १४ का प्रयोग देखें।

(३२) श्लीपद तथा व्रणों पर—श्लीपद (फीलपांव) में—छाल और खैरसार १-१ तो. दोनों को ५ तो. गोमूत्र में पीस छानकर ६ मा. मधु मिला पिलाते हैं।

जो व्रण या फोड़ा हमेशा बहता रहता है, उस पर छाल की भस्म लगाते हैं। ओष्ठ व्रण या किसी भी स्थान का व्रण हो, जिसमें से रक्त, राधि बहते रहते हों, प्रथम नीम पत्रों के क्वाथ से अच्छी तरह धोकर, छाल की राख

Scanned with CamScanner

को उसमें भर देने से, शीघ्र लाभ होता है। लगभग ७-८ दिन इस प्रकार के प्रयोग से पूर्ण लाभ होता है।

नाक से रक्तस्राव (नकसीर) होता हो तो छाल के कल्क का सिर और तलुए पर गाढ़ा लेप करने से खून गिरना बन्द हो जाता है।

(३३) वात विकार पर--अन्तर छाल को पानी के साथ खूब महीन पीसकर सन्धि-पीड़ा के स्थान पर गाढ़ा लेप करें। सूख जाने पर उसे उतार कर पुनः लेप करें। इस प्रकार ३-४ वार लेप करने से जोड़ों का दर्द मिट जाता है।

छाल का अर्क २ से ४ तो. की मात्रा में पीने से और दो घंटे बाद तत्काल की बनी हुई रोटी घृत के साथ खाने से लकवा, अर्द्धाङ्ग, गठिया में लाभ होता है। कई प्रकार के विकार भी दूर होते हैं। --नी. उ.।

वातिक उदरशूल (कालिक) पर नीम के मोटे पींड (कांड) की अन्दर की श्वेत रंग की छाल ४-५ तो. को जौकुट कर ४० तो. जल में पकावें, उसमें १ तो. नमक भी डाल दें। २० तो. शेष रहने पर, छानकर गरम गरम पिलाने से शीघ्र ही लाभ होता है।

(३४) रक्त विकार पर--नीम की जड़ की छाल रक्त-शुद्धि कारक द्रव्यों में सर्व श्रेष्ठ है। इसका क्वाथ या शीत निर्यास बनाकर सेवन से रक्त शुद्ध होकर रक्त विकार दूर होते हैं।

छाजन (उकवत एग्जिमा) दाद, खुजली, फोड़ा, फुन्सी, उपदंश आदि पर--१०० वर्ष के पुराने नीम वृक्ष की शुष्क छाल को खूब महीन पीसकर रखलें। ३ माशा की मात्रा में रात को २० तो. जल में भिगो, प्रातः छान कर उसमें शुद्ध मधु मिला पिलावें। --नी. गु. वि.।

असाध्य या दुःसाध्य एग्जिमा पर-- १ तो० छाल के साथ समभाग मंजिष्ठादि क्वाथ के द्रव्य तथा पीपल की छाल और नीम गिलोय मिला क्वाथ सिद्ध कर नित्य नियमपूर्वक १ मास तक पिलाने से पूर्ण लाभ होता है। --ब. चं.।

गलित कुष्ठ पर--(कुष्ठनाशक अर्क)--छाल और हल्दी १-१ सेर तथा गुड़ २ सेर, बड़े मटके में भर उसमें ५० सेर तक (१¼ मन) जल भर मुख-संधान कर, घोड़े की लीद में मटके को ढक दें। १४ दिन बाद निकाल कर अर्क खींच लें। १० तो. की मात्रा में प्रातः सायं पिलावें। दवा सेवन के बाद बेसन की रोटी घी के साथ खिलावें। अन्य खाद्य पदार्थ का निषेध है। --नी. चि. वि.।

श्वेत कुष्ठ के रोगी के लिए अर्क--छाल, मुण्डी बूटी के फूल, कच्ची हल्दी और गुड़ समभाग कूटकर मटके में भर उसमें १० गुना जल डालकर पात्र का मुख अच्छी तरह बन्द कर १५ दिन तक घोड़े की लीद में दबाकर रखें। फिर अर्क खींच लें। १० तो. की मात्रा में प्रात-सायं ३-४ मास सेवन से समस्त शरीर का श्वेत कुष्ठ भी नष्ट हो जाता है। सेवनकाल में दूध, दही, छाछ से परहेज रखें। नमक भी कम लें। श्वेत कुष्ठ के अतिरिक्त अन्य कुष्ठ पर भी यह उत्तम लाभकारी है। --नी. गु. वि.।

(३५) शीतपित्त और सिर पीड़ा पर-अन्तर छाल का फाण्ट, आमले के ४ मा. चूर्ण के साथ दिन में २ बार देते रहने से पुराना दृढ़मूल शीतपित्त रोग भी नष्ट हो जाता है। शरीर के ददोरे पर कालीमिर्च के चूर्ण को घी में मिलाकर मसलते रहना चाहिए। --गां. औ. र.।

सिर पीड़ा पर (निम्बादि गुग्गुल)--छाल, त्रिफला, अडूसा और कटु पटोल १-१ भाग सबको एकत्र कूटकर ४ गुने जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर उसमें ६ भाग शु गूगल मिला पुनः पकावें। गाढ़ा होने पर उतारकर गोलियां बनालें। मात्रा २-३ मा. उष्ण जल के साथ प्रतिदिन सेवन से भयंकर वातकफज शिरःशूल नष्ट होता है। पथ्य में उष्ण और स्निग्ध पदार्थों का सेवन करें। --बृ. नि. र.।

(३६) स्त्री रोगों पर—सूतिका रोगों पर बफारा—अन्तरछाल के छोटे-छोटे टुकड़े ३० तो० कूटकर ३ भाग करे तथा ३ मटके लेकर प्रत्येक में १०-१० सेर पानी और १०-१० तो० कुटी हुई छाल भर कर उन पर ढक्कन लगा-कर आग पर पकावें। जब पानी खौलने लगे तब प्रसूत रोग ग्रस्त स्त्री को सन या नारियल की डोरी वाली खाट पर शुद्ध टाट बिछाकर चित लेटावें। (लेटाने के पूर्व सारे शरीर पर तैल की मालिश कर लेवें और

Scanned with CamScanner

ऊपर से खूब लंबा चौड़ा कम्बल ओढ़ावें। जिससे स्त्री का शरीर भी ढंक जाय तथा खटिया से लेकर जमीन तक झूलता रहे, मुख मात्र खुला रखें)। फिर १ मटकी लाकर खाट के नीचे स्त्री की छाती तथा गरदन के नीचे के भाग की ओर रख पात्र का मुख खोलदें। ५-७ मिनट बाद वाष्प कम होने पर उस मटके को कमर के नीचे सरका दें और दूसरा मटका छाती के नीचे रख बफारा देवें। पुनः उसकी वाष्प कम होने पर कमर के नीचे वाले मटके को पैरों के नीचे सरका दें तथा उक्त नं० २ मटके को कमर के नीचे लगावें और नं० ३ के मटके को लाकर नं० २ के स्थान पर रख बफारा दें। फिर १० मिनट बाद तीनों मटके हटा देवें। स्वेद आया हो उसे पोंछकर ½ घण्टा विश्रान्ति के बाद उसे उन्हीं मटकों के पानी से निर्वात स्थान में स्नान करा देवें। इस प्रकार ३ दिन तक नित्य प्रातः स्वेदन क्रिया करने से सूतिका रोग का विष प्रस्वेद द्वारा निकल कर रुग्णा को लाभ होता है। भोजन में दूध, पुराने चावलों का भात, घृत, शक्कर या दलिया-दूध देवें तथा गरम करके ठण्डा किया हुआ जल पीने को देवें।

—गां. औ. र. तथा ग. चं.

प्रसूता को छाल ६ माशा पानी के साथ पीस कर घृत २ तो० में मिला कांजी के साथ पिलाने से सूतिका रोग शीघ्र ही उपशम हो जाता है। —वं. से.

प्रसव पश्चात् रुके हुए दूषित रक्त को निकालने के लिए छाल का क्वाथ ६ दिन पिलाते हैं।

रुद्धार्तव पर—जौकुट की हुई छाल, गाजर के बीज, ढाक के बीज ६-६ माशा, काले तिल और पुराना गुड़ २-२ तो० सब को एकत्र मृत्पात्र में ३० तो० पानी के साथ पकावें। १० तो० शेष रहने पर छान कर ७ दिनतक पिलावें। मासिक धर्म खुलकर होने लगता है। (गर्भिणी को नहीं देवें) अथवा—

छाल ४ माशा, पुराना गुड़ २ तो० दोनों को पानी ३० तो० में पकावें। १० तो० पानी शेष रहने पर छान कर पिलावें। रुका हुआ मासिक धर्म होने लगता है।

—नी० उ०

योनि शैथिल्य पर—छाल को अनेक बार पानी में धोकर उसी पानी में रुई को भिगो कर प्रति दिन योनि में रखें; तथा धोने से बची हुई छाल को सुखा कर आग पर जलाकर उसका धुआं योनि मुख पर देवें। योनि एकदम प्रगाढ़ हो जाती है। नीम के पानी से बार-बार योनि प्रक्षालन भी कराते रहें।

—शोढ़ल संहिता (वृन्द निदान ग्र.)

श्वेत प्रदर पर—नीम छाल और बबूल वृक्ष की छाल समभाग एकत्र जौकुट कर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराते हैं।

कफज रक्त प्रदर पर छाल के साथ गिलोय ... पीसकर मधु के साथ पिलावें। —च. नि. प्र. ...

पुष्प—नीम के फूल नेत्रों को हितकर, वातकर, ... विपाक, आमाशय पौष्टिक, पित्त, कफ, अपचन, मन्दाग्नि, कृमि, विष, अरुचि आदि नाशक है तथा ... शोधक हैं।

फूलों के क्वाथ से कुल्ले करने से दांत व मसूड़े सुदृढ़ होते हैं। इनका अर्क रक्तविकार व कुष्ठ नाशक है। कफ व पित्त के विकारों पर पुष्पों को इमली ... खांड के साथ देते हैं। ताजे फूल प्रातः खाने से मन्दाग्नि दूर होती है। नेत्रों की धुंध व फूली के लिए इन... काजल बनाया जाता है। वमन निवारणार्थ—फूलों ... जल में पीस नाभी पर अच्छी तरह लेप करते हैं। ... को बेसन में मिलाकर पकौड़ियां बनाते हैं जो ... होती हैं। बिच्छू का जहर उतारने के लिये पुष्पों ... सुंघाते हैं।

(३७) जीर्ण मलावरोध पर—शुष्क फूलों का ... १ या २ माशा सुखोष्ण जल से रात्रि के समय लेने ... से शौच शुद्धि होती तथा आंत्र शक्ति बढ़ती है।

(३८) नेत्र विकार पर—शुष्क फूल और ... माशा दोनों को ४ इंच लम्बे एक स्वच्छ वस्त्र के ... पर रख बत्ती बनावें तथा एक दीपक में नीम तैल ... कर इस बत्ती को उसमें रखकर जलावें। ऊपर ... चिकनी मिट्टी की सराई रखदें। जो काजल ... उसे थोड़े शुद्ध गोघृत के साथ कांसे के पात्र में ...

कर कांच की डिबिया में सुरक्षित रखें। यह आबाल वृद्ध सबके नेत्र विकारों पर लाभप्रद होता है।

—सचित्रायुर्वेद

छायाशुष्क पुष्पों को समभाग कलमी सोरे के साथ खूब महीन पीस छान कर सलाई से आंजने से फूली, धुन्ध, माड़ा आदि नेत्र विकार दूर होकर नेत्र ज्योति बढ़ती है।

नेत्रों में अत्यधिक खुजली होती हो तो फूलों को एक कपड़े में लपेट बत्ती बना सरसों तैल में भिगोकर जलावें। जो काजल निकले उसे नेत्रों में लगावें।

—यूनानी

(३९) रक्त विकार पर चैत्र मास में फूलों के रस सेवन से वातज, पित्तज और कफज रक्त विकार नष्ट होते हैं। —यो. चि.

(४०) ज्वर पश्चात् की दुर्बलता पर २-२ तो० पुष्पों को प्रातः सायं घृत व बूरे (या शक्कर) के साथ खाकर ऊपर से १० तो० दूध पीते रहने से लाभ होता है। धातुगत जीर्ण ज्वर नष्ट होता है। शौच शुद्धि होकर शक्ति वृद्धि होती है। —आ० पत्रिका

अथवा पुष्पों के फाण्ट का सेवन करावें। इससे पाचन विकार दूर होकर शक्ति वृद्धि होती है।

नोट—पुष्पों के अर्क और गुलकन्द के प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में देखें।

फल तथा बीज—फल (निबौरी) कच्ची—लघु, तिक्त, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, भेदक तथा अर्श, कुष्ठ, गुल्म, कृमि, प्रमेह आदि नाशक है।

पकी निबौली—मधुर, तिक्त, स्निग्ध, विपाक एवं वीर्य कच्ची के समान, कफ नाशक तथा रक्तपित्त, नेत्र विकार, उरःक्षत, क्षय आदि नाशक है।

बीज की गिरी—तिक्त, कृमि, कुष्ठादि नाशक है। इसके चिकित्सोपयोगी गुण इसके तैल जैसे ही हैं। आगे तैल प्रयोग देखें।

फल संग्रह विधि—चिकित्सा प्रयोजनार्थ फलों का संग्रह तब करें जब वे छोटे हों अर्थात् अपने पूर्ण आकार से आधे आकार तक पहुंचने के पूर्व ही उन्हें तोड़ कर छोटे-छोटे कतरों में काटकर धूप में सुखा लेवें तथा शुष्क स्थान में बन्द कनस्तर में रखें।

तैल निकालने के उद्देश्य से बीजों का संग्रह करना हो तो पकी निबौलियां पेड़ से गिरते ही उन्हें संग्रह करलें।

जमीन पर पड़ी हुई निबौलियां ठीक नहीं होतीं। क्योंकि बीज जितने अच्छे और ताजे होंगे उनसे निकाले गये तैल को रिफाइन करने में उतनी ही सुविधा रहेगी।

—नीम:बकायन

कष्ट प्रसव एवं सूतिका रोग में बीज चूर्ण का सेवन कराते हैं। शुष्क फलों के चूर्ण का दाल शाक में छौंक लगाने से वे विशेष गुणकारी एवं अनेक रोग नाशक हो जाते हैं।

रक्तातिसार में नित्य प्रातः पकी निबौलियां ३-४ खाने से लाभ होता है। इससे अग्निमांद्य में भी लाभ होता है। कच्चे फल का दूध नेत्र में लगाने से रतौंधी अवश्य दूर होती है।

मोतियाबिन्द में—बीज की मींग का चूर्ण नित्य १ या २ सलाई नेत्र में लगाते हैं। सिर के जूं आदि कृमि नाशार्थ बीजों को पीस कर लगाते हैं अथवा इसका पाउडर लगाते हैं; पाउडर का प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में देखें।

(४१) अर्श पर—नीम बीजों की तथा बकायन (महा नीम) के बीजों की शुष्क गिरी, छोटी हरड़ शुद्ध रसौत ५-५ तो., घी में भूनी हींग ३ तो. इन ५ द्रव्यों का महीन चूर्ण कर इसमें बीज निकली हुई मुनक्का ५ तो. मिला खूब घोट पीस कर मटर जैसी गोलियां बना लें (यदि गोली न बन सके तो और भी यथेष्ट मुनक्का मिला-कर घोटें) १ से ४ गोली दिन में २ बार (प्रातः सायं) बकरी के दूध के साथ या ताजे जल से सेवन करते रहने से सर्व प्रकार के अर्शों में लाभ होता है। रक्तार्श हो तो रक्तस्राव बन्द होता, तथा वातार्श की वेदना दूर होती है।

(स्वानुभूत)

अथवा—छिलके समेत शुष्क निमौली कूट कर महीन चूर्ण कर रखें। प्रतिदिन प्रातः बासी जल के साथ १ तो. की मात्रा में सेवन से अर्श रोगी को विशेष लाभ होगा।

Scanned with CamScanner

सेवन काल में घृत का सेवन अनिवार्य है अन्यथा दृष्टि क्षीण होने की पूरी संभावना रहती है— नी. चि. वि.।

अथवा–पकी हुई निमोली का गूदा ३ मा. और गुड़ ६ मा. एकत्र मिला गोली बना नित्य प्रातः ७ दिन सेवन करें। —व. गु.

रक्तार्श पर—बीज की गिरी, गुग्गुल (एलुवा) और रसौत समभाग एकत्र खरल कर झड़बेरी जैसी गोलियां बना लें। नित्य प्रातः १ गोली गो तक्र के साथ लेवें। अथवा—

गिरी के साथ समभाग खूनखराबा, मुनक्का, गेरू और कहरवा समभाग लेकर पानी के साथ पीस चने जैसी गोलियां बना प्रातः सायं २-२ या ४-४ गोलियां सेवन से भी रक्तार्श में लाभ होता है— नी. गु. वि.।

गिरी का तैल २ से ५ बून्द तक शक्कर के साथ खाने से या केपशूल में भर कर निगलने से थोड़े ही दिनों में खूनी या बादी हर तरह के अर्श में अच्छा लाभ होता है। मस्से भी नष्ट हो जाते हैं तथा शरीर भी सशक्त होता है। सेवन काल में केवल दूध और चावल खाना चाहिये। —नी. चि. वि।

अथवा-गिरी १ भाग और वृक्ष की जड़ छाल २भाग दोनों को खूब कूटपीस कर ८-८ रत्ती की गोलियां बना४-४ गोलियां दिन में ४बार ७दिन तक खिलावें। नीम के क्वाथ से मस्सों को धोते रहें। यदि शोथ अधिक हो, तो पत्रों की लुगदी मस्सों पर बांधनी चाहिए।

अर्शांकुर या मस्सों पर लेपादि—बीजों की गिरी, रसौत, माजूफल, तथा विजयसार का गोंद १-१ तो., अफीम, मुर्दासंग, सेलखड़ी और कपूर ३-३ मा. सबको खरल कर १० तो. वेसलीन में मिला मलहम बनालें। इसे शौच जाने के बाद, दिन में २-३ बार लगाते रहने से खुजली, रक्तस्राव, वेदना, शोथ आदि सब जल्दी दूर हो जाते हैं—अथवा–१० तो. शुष्क निबौली को ५ तो. तिल तैल में तल कर निबौलियों को पीस लेवें और शेष तैल में ६ मा. मोम मिला कर गरम कर उसमें यह निबौली चूर्ण और १ मा. नीला थोथा या (तूतिया) का फूला मिला मलहम बना लें। इसे दिन में २-३ बार लगाते रहने से मस्से मर जाते हैं।

—ग. औ.

अथवा गिरी २ तो., फिटकरी का फूला ६ मा. सोनागेरू ३ मा. एकत्र खूब घोट कर मलहम जैसा बना लें (यदि घोट कर मलहम जैसा न बने तो उसमें घृत या मक्खन मिला कर या गिरी का तैल मिला घोटना चाहिये। इसे लगाने से मस्सों की पीड़ा शान्त होती है, रक्तस्राव बन्द होता एवं मस्से मुरझा जाते हैं।

—वै. क.

अथवा गिरी और कपूर ५-५ तो. लेकर कूट कर पातन यंत्र की विधि से आतशी शीशी में तैल निकाल लें। अल्प मात्रा में मस्सों पर लगाते रहने से वे कुछ दिन सूखकर लुप्त हो जावेंगे। —नी. चि. वि.। अथवा

गिरी, रसौत, कपूर व सोनागेरू एकत्र पानी में पीस कर लेप करते रहने से, या इन चारों द्रव्यों को तैल में घोट कर मल्हम बना कर लगाते रहने से मस्से सूख जाते हैं।

(४२) चेचक (मसूरिका) पर—इसकी गिरी और बहेड़ा की गिरी १-१ तो. तथा हल्दी २ तो. एकत्र कर उसमें हुलहुल, छोटी दुधेली (नागार्जुनी) और ब्राह्मी के स्वरस की १-१ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। १-१ गोली ६-६ घण्टे से दिन में २-२ बार देते रहने से उपद्रव सहित मसूरिका दूर हो जाती है। शीत काल में यह योग ८ तो. को रस सिन्दूर ६ मा. में मिला लिया जाय तो अधिक सत्वर करता है।

—र. तं.

चेचक के प्रतिबन्धार्थ-इसके बीज बहेड़ा के बीज व हल्दी समभाग जल में पीस छान कर कुछ दिनों तक पीने वालों को चेचक का भय नहीं रहता। —नी.

चेचक के दागों को दूर करने के लिये-बीजों की गिरी को पानी में पीसकर लगाते हैं। चेचक के कारण सिर से बाल झड़ गये हों तो गिरी को पीसकर लगाते रहने से या गिरी के तैल को लगाते रहने से बाल जम जाते हैं।

(४३) प्लीहा वृद्धि पर—गिरी, अजवायन और नौसादर समभाग एकत्र चूर्ण कर, प्रतिदिन १

Scanned with CamScanner

चूर्ण प्रातः ताजे जल के साथ सेवन कराने से लाभ होता है। —नी. चि. वि.।

(४४) योनि शूल पर—निम्बोली को नीम पत्र रस में १२ घंटे पीस लम्बी गोलियां बनालें (उनको पतले कपड़े के भीतर सिलाई कर तथा १ डोरा लटकता रखें, जिसमें इच्छानुसार उसे बाहर निकाल सकें)। उनमें से १-१ गोली अपत्यमार्ग में चढ़ाते रहने से शूल शमन हो जाता है। —गां. औ. र.

अथवा—बीजों की गिरी और अण्डी के बीजों की गिरी तथा नीम पत्र रस, तीनों को समभाग घोटकर बत्ती बना योनि में धारण करें। —गुप्त प्रयोग

(४५) ज्वर पर सुर्मा—गिरी के साथ समभाग श्वेत जीरा और छोटी पिप्पली एकत्र महीन चूर्ण कर, करेले के रस में २४ घण्टे खरल कर शुष्क करें। पुनः करेले के रस में घोटकर सुखाकर महीन वस्त्र में छानकर रखें। चढ़े हुए ज्वर में इसे सुर्मे की भांति सलाई से आंखों में लगाने से ज्वर उतर जाता है —नी. गु. वि.।

(४६) कुष्ठ पर—रोगी को प्रथम दिन १ गिरी, दूसरे दिन २ गिरी, इसी प्रकार क्रमशः १-१ गिरी बढ़ाते हुए १०० गिरी तक खिलावें। पश्चात् क्रमशः १-१ घटाते हुए १ गिरी पर आ जाने पर सेवन बन्द करें। सेवन काल में चने बेसन की रोटी और घृत के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं खिलाना चाहिये। कुष्ठ पर योग परम लाभदायक है। —नी. चि. वि.

(४७) नाड़ी व्रण (नासूर) तथा व्रणों पर—निबौली और मसूर ५-५ तो. तथा कपूर २ तो. एकत्र खूब महीन पीस कर पाताल यन्त्र की विधि से तेल निकाल कर उसमें प्रति तो. ३ माशा के प्रमाण में कार्बोलिक एसिड मिलादें। नासूर के मुख पर स्वच्छ मलमल कपड़े की गद्दी (वस्त्र की ३-४ तहें कर) इस तैल में भिगोकर रखदें। इसी प्रकार इस तैल के प्रयोग से घाव भर जावेगा। यदि घाव गहरा हो तो बत्ती बना कर तैल में भिगो उसके भीतर रखदें। जब नासूर भरने लगे तथा बत्ती अन्दर न जा सके तब उक्त प्रकार से गद्दी को तर कर रखा करें। चाहे जैसा भी कठिन या भयंकर नासूर हो इसके नियमित प्रयोग से अवश्य अच्छा हो जावेगा। —नी. चि. वि.

व्रणों के लिए मलहम—गिरी के शुद्ध तैल १० तो. में मोम २ तो. मिलाकर पकावें। अच्छी तरह मिल जाने पर उतार कर उसमें १ तो. राल का चूर्ण मिला खूब हिलावें। यदि व्रण में दाह और जलन हो तो उसमें थोड़ा संगजराहत भी मिला दें। यह मलहम व्रणों को तथा अग्निदग्ध व्रणों को शीघ्र अच्छा करता है। —सुधानिधि

(४८) विषों पर—निबौली २ भाग तथा सेंधानमक व काली मिर्च का चूर्ण १-१ भाग सबको एकत्र घोटकर घृत और मधु मिलाकर खिलाने से स्थावर और जङ्गम विष नष्ट होता है। —ग. नि.

अथवा पकी या कच्ची निबौलियों को पीसकर गरम जल में मिलाकर पिलाने से उसी समय वमन हो जाता है तथा अफीम, संखिया, वछनाग आदि विषों से ग्रस्त व्यक्ति शीघ्र ही स्वस्थ होता है। —हा. सं.

(४९) कई पदार्थों के अजीर्ण में—महुआ, बेल, खिरनी, फालसे, खजूर और कथ अधिक खाने से यदि अजीर्ण हो तो गिरी को घोटकर पीना परमोत्तम है। घृत और तक्र के अजीर्ण में भी यह लाभकारी है। —भा. प्र.

(५०) बाल काले होने के लिये—बीजों को एकत्र कर उनमें भांगरा के रस की और बिजयसार के रस की भावनायें देकर कोल्हू से उन बीजों का तैल निकलवाकर रखें। इस तेल का नस्य प्रयोग करें। प्रयोगकाल में पथ्य दूध भात का होना चाहिए। कुछ दिनों तक विधिवत् यह उपचार करने से बाल जड़ से काले हो जाते हैं। —नी. चि वि.

तैल—नीम के बीजों के अन्दर की गिरी से तैल निकाला जाता है। निबौलियां पकने पर जब गिरने लगती हैं, तब उन्हें एकत्र कर धूप में शुष्क कर भीतर की गिरियों को निकाल कर उनका तैल कोल्हू या पानी के साथ उबालकर या पाताल यन्त्र द्वारा निकाला जाता है। कोल्हू में पेर कर निकाला गया तैल भी शुद्ध ही

Scanned with CamScanner

होता है; इसे रिफाईन[1] कर लिया जाय तो यह और भी उत्तम हो जाता है।

पानी में उबाल कर निकालने की विधि–एक लोहे की कढ़ाई में ४-५ सेर पानी डाल कर आगपर रखें। गरम हो जाने पर उसमें ½ सेर गिरी कूट कर डाल दें तथा पानी को खूब उबलने दें। आधा पानी शेष रहने पर नीचे उतार लें। ऊपर जो तैल तैरता है उसे कपड़े में तर कर निचोड़ निचोड़ कर रख लें। इसे ब्लाटिंग पेपर में छान लेने से जल रहित शुद्ध तैल प्राप्त होता है।

अथवा—गिरियों को आवश्यकतानुसार लेकर कुंडे में अच्छी तरह घोटें। बारीक लुगदी हो जाने पर उसमें कुछ खांड़ मिला कर गरम पानी के छींटे देते हुए घोटें। ऐसा करने से तैल पृथक हो जायगा इसे शीशी में भर रखें।

पाताल यंत्र से—मिट्टी के पुराने एवं मजबूत पात्र की पेंदी में छोटे छोटे कई छिद्र कर उसमें गिरियोंको कुचल कर डाल दें। पात्र का मुख किसी ढक्कन से बन्द कर मुख के किनारों को गीली मिट्टी या आटे से अच्छी तरह बन्द कर सूख जाने पर निर्वात स्थान में गढ़ा खोद, उसमें एक चीनी मिट्टी का तसला रखदें। फिर उस पात्र को गढ़े पर रख, गढ़े के किनारों पर और पात्र पर गीली मिट्टी का लेप करदें। इसके सूख जाने पर चारों ओर उपलों को जमा कर आग लगादें। स्वांग शीतल हो जाने पर धीरे से सतर्कता से पात्र को उठा लें। नीचे के तसले में उत्तम तैल प्राप्त होगा। —नी चि. वि

तैल के गुण धर्म व प्रयोग—लघु, तीक्ष्ण, कटुविपाक, अनुष्णवीर्य, सारक, वेदनास्थापन, कीटाणुनाशक, उत्तम स्थानिक उत्तेजक, पूतिहर, व्रणरोपक, केश्य, तथा वात, कफ, कृमि, शिरोरोग, कुष्ठ, कंडु, आदि त्वग्दोष नाशक है।

यह वातहर दुर्गन्ध नाशक, व्रण शोधन एवं रोपक उत्तेजक, कोथ प्रशमन, उत्तम कुष्ठघ्न व रसायन है। इसकी क्रिया इसमें स्थित गन्धक के हेतु से होती है। नीम के सब अङ्गों की अपेक्षा इसका तैल विशेष प्रभावशाली है। शुद्ध तैल के प्रयोग से कभी कभी दाह होता है ऐसा होने पर इसमें आधा तिल तेल मिला देना चाहिये।

तैल के प्रयोग से उदर के तथा बाह्य कृमि नष्ट होते हैं। गंड माला फूट कर अपची होती है, तथा उसका सम्बन्ध रक्तवाहिनी नाड़ी के साथ होने पर नाड़ी व्रण (नासूर) बन जाता है। उनमें इस तैल की बत्ती डाल कर ऊपर इसी तैल की पट्टी लगा दी जाती है। जीर्ण ज्वर, जीर्ण विषमज्वर, विविध चर्मरोग, उपदंश, कुष्ठ आदि रोगों में तैल ५-१० बूंद की मात्रा में प्रातः सायं दिया जाता है। गांठ, एग्जीमा, दादादि चर्म रोगों में तैल लगाने से कीटाणु नष्ट होते हैं। इस तैल की पट्टी से फिरंग क्षत, दुष्ट व्रण, न भरने वाले व्रण ये सब भर जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में धूप में घूमने फिरने से सिर दर्द हो तो सिर पर तैल की मालिश की जाती है। —डा. देसाई

इस तैल से बने हुए लवण (सोडियम) या पोटाशियम मार्गोसेट (Margosate) का उपयोग, त्वचा, मांसपेशी तथा सिरा के द्वारा किया जाता है। इसका शरीर में कीटाणु विरोधी कार्य होता है। पामा (Scabies) छाजन (E zema) एवं स्फोट (Pemphigus) में इससे अच्छा लाभ होता है। फिरंग की प्रथम एवं द्वितीयावस्था में चिकित्सा जिनमें नहीं की गई है, उनकी अपेक्षा इसके द्वारा अधिक लाभ होता है। इसे ०.०१—०.३ ग्राम इंजेक्शन द्वारा दिया जाता है। फिरंग की तृतीयावस्था या द्वितीयावस्था के अन्त में होने वाली ग्रंथि (गामा) तथा त्वचा के अन्य विकार इससे शीघ्र अच्छे होते हैं।

[1] विशेषतः औद्योगिक प्रयोजनार्थ -१०० भाग तैल में १ भाग गन्धकाम्ल को धीरे-धीरे मिलावें। तापमान ३५° शतांश से ऊपर न जाने दें। फिर १०० भाग पानी मिलादें। तैल की तह ऊपर आ जाने पर उसे अलग कर लें। अग्नि को उदासीन करने के लिए तेज क्षार का घोल हिलाते हुए पर्याप्त परिमाण में मिलावें। फेन या झाग को अलग कर दें। इस विधि से तैल का कड़वापन पूर्णतया निकल जाता है तथा अप्रिय गन्ध बहुत अधिक कम हो जाती है। यह रिफाइंड तैल नहाने के साबुनों, लाइसोल टाइप के कृमिहरों तथा कृमि नाशक स्प्रेज आदि निर्माण कार्यों में प्रयुक्त होता है।

—नीम बकायन

Scanned with CamScanner

यद्यपि इसका परिणाम पाश्चात्य चिकित्सा की अन्य पारद आयोडाइड आदि औषधियों के इंजेक्शनों के इतना संतोषजनक नहीं होता। कुष्ठ एवं फिरंगादि में इसके इंजेक्शन एवं मार्गोसिक एसिड के स्थानिक प्रयोगों से विशेष लाभ होता है।

—श्री कृष्ण चन्द्र बुनेकर ए. एम. एस.
(भा. प्र. निघंटु से)

पुराने मलेरिया ज्वर आदि में जब शरीर को रासायनिक द्रव्य की भी आवश्यकता होती है, तब इस तैल की ५ से १० बूंद की मात्रायें दिन में १ या २ बार खिलानी चाहिये। विशेषतः जीर्ण मलेरिया के केसों में मैं इसे गत १२ वर्षों से बरत रहा हूं, तथा निःसंकोच कह सकता हूं कि ऐसे ज्वरों में यह एक असंदिग्ध उत्तम औषधि है। —मेजर डी. बी स्पेन्सर

(५१) आम वात, पक्षाघात, संधि शोथादि वात रोगों पर—

आमवात (गठिया) में तैल की मालिश करने से लाभ होता है। तैसे ही इस तैल का पक्षाघात से पीड़ित व्यक्ति के शरीर पर नियमित मालिश करते रहने से बीमारी धीरे धीरे अच्छी हो जाती है। संधिशोथ भी इसकी मालिश से दूर हो जाता है।

तैल की कुछ बूंदें पान में लगा कर खिलाने से तथा रास्नादि क्वाथ में इसकी ३० बून्द डाल कर पिलाने से ऐंठन तथा कई तरह के वात विकार दूर हो जाते हैं।

—नी. उ.।

वातज शोथ जो देह के भिन्न भिन्न भागों में फिरते हुए कष्ट पहुंचाता है। वह शरीर पर इस तैल का मर्दन कर नीम की अन्तर छाल या पत्तों को स्वेदन कराने पर शमन हो जाता है। किसी किसी को एक ही स्थान में वातिक शोथ रहता है, उस पर तैल लगा कर उबाले हुए नीम पत्रों को बांधने से लाभ हो जाता है।

— गां. औ. र.

(५२) रक्त विकार एवं तज्जन्य विविध व्रण भगंदर आदि पर—

फिरंग, विषजन्य रक्तविकार के ददोरे, फोड़े, फुंसियों, तालु व्रण, नेत्र व्रण, एवं नाडी व्रणादि उपद्रव हों, या सुजाक विष जन्य रक्त विकार, संधिवेदना, मूत्रदाह, पूयमेह, शारीरिक निर्बलतादि उपद्रव हों, तथा वातरक्त, कुष्ठ, चेचक और विष सेवन आदि से जो रक्त विकार हों, उन सब जीर्ण रक्त विकारों पर इस तैल की कुछ बूंदें थोड़ी शक्कर के साथ लेते रहने से लाभ होता है।

—गां. औ. र.

५ तो. नीम तैल में १ तो. कपूर मिला कर रुई का फाहा तर कर फूटे हुए या अन्य घावों पर रखने से घाव साफ होता हुआ भर जायगा एवं साथ ही सूख भी जायगा। विषैले कीटाणु नष्ट होंगे किन्तु इस प्रयोग के पूर्व व्रण को नीम पत्र डाल कर पके हुए पानी में जरा सी फिटकरी मिला कर धोकर साफ कर लेना आवश्यक है।

—भा. गृ. चि.।

भगन्दर एवं अन्य स्थानों के नाड़ी व्रण के भीतर इस तैल की बत्ती रख ऊपर इसी तैल की पट्टी बांधते रहें। अधिक पूय आता हो, तो बार-बार बदलते रहें। अन्यथा दिन में २ या १ बार बदलते रहने पर भगन्दर, नाड़ी व्रण तथा दुष्ट व्रण सब भर जाते हैं। इसी उपचार से कण्ठमाला, फूटी हुई अपची, फूटे हुये गलगण्ड आदि में भी लाभ होता है। साथ ही साथ इस तैल का या पंचतिक्तक घृत (देखो आगे विशिष्ट योग में) का सेवन कराते रहने से भीतर से शोधन होकर २-३ मास में पूर्ण लाभ होता है। गण्डमाला में तैल की नस्य देने से भी लाभ होता है।

—शोढल।

उक्त दुष्ट व्रणों के शोधनार्थ प्रथम उन पर नीम पत्रों को शहद के साथ पीसकर लगाना उत्तम होता है। फिर निम्बादि मलहम (विशिष्ट योगों में देखें) लगाते रहने से व्रण थोड़े ही दिनों में भर जाते हैं। अथवा इस मलहम को लगावें—

नीम तैल २० तो. को आग पर रख उसमें ५ तो. बहरोजा दरदरा कूट कर डाल दें, तेल के साथ पिघलकर मिल जाने पर ५ तो शुद्ध मोम मिला दें। इस मलहम को लगाते रहने से सर्व प्रकार के व्रण, फोड़ा, फुन्सी आदि

Scanned with CamScanner

शीघ्र सुधर आते है।

सिर पर छोटी-छोटी फुन्सियां हों, उनसे पूय निकलता हो या केवल खुजली चलती हो ऐसी अरुंषिका तथा दारुणक क्षुद्र रोग में नीम के क्वाथ से धोकर नीम-तैल नित्य लगाते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

अग्निदग्धजन्य व्रणों पर—पीछे प्रयोग नं०४७ में व्रणों के लिए मलहम का प्रयोग विशेष लाभकारी है। अथवा जले हुए स्थान पर नीम-तैल को रुई में तर कर रखने से घाव शीघ्र अच्छा हो जाता है तथा जलन शांत होती है।

—आगे विशिष्ट योगों में निम्ब तैल व मलहम का प्रयोग देखिए।

(५३) अर्श पर—नीम-तैल ५ तो. में कच्ची फिटकरी और चौकिया सुहागा ३-३ माशा को खूब महीन पीस कर मिला दें। शौच क्रिया में प्रक्षालन के बाद इसे उंगली से गुदा के भीतर तक चुपड़ दिया करें। कुछ ही दिनों में मस्से मिट जाते हैं।

—शेष प्रयोग ऊपर प्रयोग नं० ४१ में देखें।

(५४) राजयक्ष्मा (टी. बी.) पर - अत्यधिक कफ निकलता हो तो तैल के उपयोग से उसका शोषण होता है। इसके कीटाणुनाशक, पूतिहर एवं कफनाशक गुण के कारण पेनसिलीन की अपेक्षा इससे स्थायी लाभ होता है। जीर्ण यक्ष्मा का रोगी जो अस्थिपंजर मात्र रह गया था उसे भी इससे लाभ हुआ है। इसकी ४-४ बून्दें केपसूल में भरकर दिन में ३ बार देवें। ३ दिन के इस प्रयोग से विलक्षण लाभ हुआ है। कफ का केवल १/४ भाग निकलने लगा। फिर ४ दिन तक यही प्रयोग किया गया। ७ वें दिन कफ स्राव नाम मात्र को भी नहीं रहा। खांसी का कष्ट भी बहुत कम हो गया। ८ वें दिन से नीम-तैल के स्थान पर लक्ष्मीविलास (स्वर्णप्रधान) १ रत्ती, जयमंगल रस आधी रत्ती, सितोपलादि १ मा और प्रवाल पिष्टी १ रत्ती के मिश्रण की मात्रा प्रातः सायं शहद के साथ देना तथा १-१ घंटा बाद किराताादि अर्क २॥ तो. पिलाना और दोपहर में २ बार अमृतारिष्ट मात्रा २॥ तो. जल के साथ देना प्रारम्भ किया गया। पथ्य में बकरी का दूध, दलिया, लौकी की साग, मूंग की दाल [illegible] २१ दिन तक यही क्रम जारी रहा। बाद में रोगी [illegible] लता दूर करने के लिए किराताादि अर्क के स्थान पर [illegible] प्राश दिया गया है। इस प्रकार और २१ दिन [illegible] उपचार से रोगी पूर्णतया स्वस्थ होगया।

—कविराज टी. जे. नारायण बी. ए. ([illegible])

(५५) पलित रोग (बालों का श्वेत होना)—[illegible] बीजों को भांगरा के स्वरस की तथा असना वृक्ष की [illegible] क्वाथ की अनेक भावनायें देकर उनका तैल निकालकर विधिवत् नस्य लेने और केवल दूध भात पर रहने से पलित रोग समूल नष्ट होता है। —[illegible]

अथवा—बीजों के साधारण स्वाभाविक तैल का विधिपूर्वक नस्य लेने और केवल गोदुग्ध पीने से १ मास में पुराना यह रोग नष्ट हो जाता है।

—ग. नि. तथा भै. र.

(५६) श्वास, शीतपित्त, कर्णस्राव पर-शुद्ध तैल [illegible] से ६० बून्द तक पानी में रख कर खाने से श्वास रोग में बहुत लाभ होता है।

शीत पित्त पर—तैल में कपूर मिलाकर मालिश करते हैं।

कर्णस्राव—कान से पूय निकलती हो तो इस तैल में शहद मिला उसमें रुई की बत्ती भिगोकर कान में रखने से लाभ होता है। अथवा--एक पात्र में नीम-तैल ४ तो० तथा मोम आधा तो० एकत्र आग पर रखें। मोम गल जाने पर उतार कर उसमें फिटकरी (फुलाई हुई) ६ रत्ती का चूर्ण अच्छी तरह मिलाकर शीशी में रख लें। कान साफ कर ३-४ बून्द दिन में २ बार डालने से अक्सीर लाभ होता है।

नोट—नीम तैल के अभाव में नीम पत्र का रस ४ तोले को तिल तैल ४ तोले में पकावें, तैल मात्र शेष रहने पर छानकर उक्त प्रयोग के काम में लावें।

(५७) रतौंधी (रात को न दीखना)—तैल को आंखों में आंजने से तथा नीम पत्र के ६ तो. स्वरस को १ दिनों तक प्रातः काल पीने से लाभ होता है। किंतु स्वरस पीने का प्रयोग भयंकर रतौंधी पर ही तथा वह भी [illegible] दिन से अधिक दिनों तक नहीं करना चाहिए। स्वरस [illegible]

Scanned with CamScanner

अधिक पीने से अच्छी आंख और भी खराब हो जाती हैं और कम दिखलाई देने लगता है। यदि ऐसी हालत हो जाय तो नीम का प्रयोग बन्द कर गोघृत और दुग्ध का व्यवहार करना प्रारम्भ कर देवें। इससे नीम के दोष शांत जावेंगे। —नी. उ.।

(५८) संतति निरोधार्थ—शुद्ध तैल में रुई का फाया तर कर सहवास के पूर्व योनि के भीतर रख देने से शुक्र-कीटाणु १ घण्टे के अन्दर ही मर जाते हैं तथा गर्भ स्थित नहीं होने पाता। —नी. उ.।

आगे संतति निरोधार्थ गोंद का प्रयोग देखें।

(५९) कृमि रोग तथा जूं, लीख आदि के नाशार्थ कृमि विकार पर—नीम-तैल ½ से २ (चाय के छोटे) चम्मच तक रोगी की अवस्थानुसार, गुड़ में मिलाकर प्रातः सायं ७ दिन तक देवें। —व. गु.।

रात्रि के समय सिर पर नीम-तैल का मर्दन कर प्रातः साबुन से धो डालें। ३-४ दिन तक ऐसा करने से जूएं लीखें आदि नष्ट हो जाती हैं। —गां. औ. र.।

(६०) हैजा तथा ज्वर की ऐंठन व ठंडक पर—हाथ पैर में ऐंठन होती हो और उनमें ठंडक मालूम पड़ती हो तो इस तैल की उन स्थानों पर मालिश करने से बहुत लाभ होता है। —नी. उ.।

(६१) पशु रोग पर—पशुओं के खुर की बीमारी में नीम-तैल मात्रा ८ तो. गाय, भैंस आदि बड़े पशुओं को पिलावें, तथा बकरी, भेड़, हिरण आदि छोटे जानवरों को १½ तो. पिलावें। और उनके घाव पर तैल का फाहा रख कर बांधते रहें।

पशु के किसी भी अङ्ग के घाव पर इस तैल के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है —नी. उ.।

मद—पुराने नीम वृक्ष को या परिपुष्ट किसी किसी नीम वृक्ष को जल पर्याप्त मात्रा में या अत्यधिक मिलने पर उसके पत्ते, बड़ी बड़ी शाख या जड़ से स्वयं ही एक-स्राव पतला, दूधिया वर्ण का महीन धारा में बून्द बून्द निकला करता है। यह स्राव या रस उससे ७ सप्ताह तक एक समान झरता है। किसी किसी वृक्ष से ३ या ४ वर्ष के अन्दर से यह रस अत्यधिक परिमाण में निकल जाने के बाद वह वृक्ष सूख जाता है। तथा कहा जाता है कि जब किसी वृक्ष से मद निकलने वाला होता है, तब उसमें से एक प्रकार की धीमी आवाज बराबर सुनाई पड़ने लग जाती है, जो मद निकलना प्रारम्भ होने पर ही बन्द हो जाती है।

कहीं कहीं कृत्रिम रीति से भी यह मद निकाला जाता है। किसी जलाशय के किनारे वाले अच्छे जवान नीम वृक्ष की जड़ में छिद्र कर नीचे १ पात्र रख अच्छी तरह ढंक दिया जाता है। २४ घण्टे के बाद उस पात्र में २ से ८ बोतल तक रस एकत्र हो जाता है। किंतु इस प्रकार निकाला हुआ रस उतना लाभकारी नहीं होता जितना स्वयंमेव निकला हुआ होता है।

नीम वृक्ष के पत्र, छाल आदि का व्यवहार प्रायःबहुतायत से किया जाता है, किंतु इसकी ताड़ी या मद का प्रयोग विरले ही वैद्यों को करते हुये देखा गया है। हमारे चिकित्साकाल में इसके गुण धर्म तथा प्रयोगों का जो ज्ञान हमें प्राप्त हुआ है उसका वर्णन नीचे दिया जाता है। —सम्पादक।

इसे महाराष्ट्र में तथा अंग्रेजी में भी नीम-ताड़ी (Nim tody) या Toddy of margosa tree कहते हैं।

रासायनिक संगठन—

इसमें जलांश ८६.५६%, प्रोटीडस (Proteids) ३६%, गोंद एवं रंगीन पदार्थ ६.१७%, ग्लूकोज (द्राक्ष शर्करा) २.६९%, ईक्षुशर्करा ३.५१% और भस्म ४१% होती है। इसकी भस्म में पोटेसियम, लोह, एल्युमिनियम, केलशियम, और कार्बन डायोक्साईड पाये जाते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

मधुर, गंध में कडुवा, अप्रिय, शीतल, कीटाणुनाशक, पूतिहर, व्रणशोधन, रक्तशोधक, दीपन, पोषक, बलवीर्य-वर्धक, उत्तेजक, तथा पुराने गलितकुष्ठ, अन्य चर्म रोग, क्षय, अजीर्ण, साधारण दौर्बल्य, नेत्ररोग, अर्श, प्लेग, मूत्र-दाह, जीर्णज्वर, रक्त विकार, विषविकार आदि पर प्रयुक्त होता है।

नोट—नीम-मद में शहद मिला, बोतलों में भी अच्छी

Scanned with CamScanner

तरह डांट लगाकर रखने से यह वर्षों काम देता है, बिगड़ता नहीं। कोई कोई इसमें सरसों का शुद्ध तेल मिलाकर रखते हैं किंतु तेल की अपेक्षा शहद मिलाकर रखना उत्तम होता है। एक बोतल नीम-मद में ५ तो० शहद मिलाना चाहिए। इस प्रकार रखने के बाद इसे बीच बीच में (कम से कम महीने में एक बार) छानते रहना आवश्यक है। ताजी ताड़ी मधुरता युक्त तिक्त या कडुवी होती है। बिगड़ जाने पर इसमें खटास या अम्लता आजाती है, जिसे सेवन करना ठीक नहीं होता किंतु उक्त प्रकार से स्वच्छता के स्थान (शुद्ध स्थान) पर अच्छी तरह मुख बन्द कर रखने से यह सहसा बिगड़ने नहीं पाती। कुछ दिनों बाद इसमें भी स्वाभाविक अम्लता तो आ जाती है, किंतु बाद में पुनः यह स्वयंनेव मधुरता युक्त तिक्त रस में परिणत होकर सेवनीय हो जाती है।

(६२) रक्त विकारों पर—नीम-मद १ तो. में गोरखमुंडी अर्क ६ माशा मिला कर (यह १ मात्रा है, बच्चों को चौथाई मात्रा देवें) उसमें शुद्ध जल २ तो. मिला, नित्य प्रातःसायं सेवन से शीघ्र ही रक्त शुद्ध होकर कुष्ठादि चर्म विकार दूर हो जाते हैं। लगभग ४० दिन तक इसका सेवन पथ्यपूर्वक करना चाहिये।—अथवा—१ तो. मद में समभाग शहद मिलाकर या १ तो. मद को २० तो. गो दुग्ध में मिलाकर सेवन से चर्मरोग, कुष्ठादि, रक्त विकार दूर हो जाते हैं। नमक न खावें, चने की रोटी घृत व शक्कर से खावें।

केवल इसके मद को ही शरीर पर नित्य मलते रहने से खाज, खुजली, दाद, पार्श्वशूल, वात का दर्द आदि नहीं होने पाते। यदि हुये हों तो शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

उक्त प्रकार से (मुंडी अर्क मिश्रित) ३ मास तक नियमपूर्वक सेवन से गलित कुष्ठ में भी विशेष लाभ होता है। इस मद को व्रण पर डालने से व्रण के कीटाणु नष्ट होकर व्रण शीघ्र अच्छा हो जाता है।

मद का अर्क खिचवाकर, प्रातःसायं २½ तो. की मात्रा में पीने से भी रक्तशुद्धि होती है।

(६३) उन्माद रोग तथा संग्रहणी पर - उक्त मुंडी अर्क मिश्रित ताड़ी के प्रयोग में सरफों का का अर्क मिला कर देने से विशेष लाभ होता है।

—अथवा केवल ताड़ी को २½ से ५ तो. तक की मात्रा में समभाग जल मिला नित्य प्रातः सेवन से भी लाभ होता है।

संग्रहणी पर—इसके मद की प्रातःसायं ७-७ बूंदें ताजे तक्र में मिलाकर २१ दिन सेवन करें।

(६४) चेचक [शीतला] के उपद्रवों पर—ताड़ी १ तो. में कालीमिर्च ५ दाने का चूर्ण मिलाकर नित्य प्रातः ७ दिन तक सेवन से बहुत कुछ सुधार होता है।

(६५) बाल रोगों पर - ताड़ी मात्रा ½ तो. तक लेकर उसमें उतना ही शहद मिला, नित्य प्रातः पिलाने से, रक्त शुद्ध होकर शरीर पर फोड़े फुंसियां आदि नहीं होने पाते। यह प्रयोग प्रमेह पिड़िका और अर्श को भी दूर करता है।

अर्श [खूनी या वादी] में - इसकी मात्रा १ से ५ तो. तक लेवें तथा शहद मिलाकर सेवन करावें।

(६६) नेत्र रोगों व कर्णस्राव पर—ताड़ी को लोह पात्र में रख, लोहे के मूसल से खूब घोटते घोटते जब वह गाढ़ा हो जाय तब नेत्रों पर लेप करने से नेत्रशूल, ललाई, जलन, अभिष्यन्दादि नेत्र विकार शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

कर्णस्राव पर—इसके मद में समभाग उत्तम शहद मिलाकर, प्रथम कान को अच्छी तरह साफ कर, इसकी २-२ बून्दें, प्रातःसायं नित्य डालने से १-२ माह में पूर्ण लाभ होता है।

(६७) विषों पर—ताड़ी को कई बार उचित मात्रा में पिलाने तथा सर्वाङ्ग में लगाने से सर्व प्रकार के विषों की शांति हो जाती है।

(६८) प्लेग की ग्रन्थि पर—ताड़ी में कपास या कपड़े को खूब तर कर कई बार बांधते रहने से विशेष लाभ होते देखा गया है।

नोट—मदासव तथा निम्बवारुणी के प्रयोग आदि आगे विशिष्ट योगों में देखिये।

मूल—नीम की जड़ भी कई विकारों को दूर करती है। यथा—

Scanned with CamScanner

(६९) उरुस्तम्भ पर—नीम की जड़ को पानी में घिसकर गाढ़ा चन्दन करे या पीसकर खूब महीन कर, उसमें सरसों चूर्ण, बामी की मिट्टी (वल्मीक मृत्तिका) और शहद मिला उबटन सा बना उरुस्तम्भ (आढ्यवात) में जोर से मलना चाहिये। —च. चि. अ. २७। तथा इसी का गाढ़ा लेप करें। तथा नीम पत्र की साग (तैल में छौंक कर पानी के साथ पका, बिना नमक के खाना चाहिये। —च. चि. अ. २७। अथवा—केवल जड़ को ही पानी में घिसकर गरमकर गरम गरम प्रलेप करें।

(७०) दन्त रोग पर—जड़ को जौकुट कर क्वाथ बनाकर गण्डूष या कुल्ले करते रहने से दांत के अनेक रोग नष्ट होते हैं। —हा. सं.

(७१) अर्द्धाङ्ग वात तथा शैथिल्य पर-(हिंगुल-भस्म)-नीम की मोटी जड़ को खोखला कर(उसमें लम्बा चौड़ा छिद्र कर)भीतर हिंगुल की डली रख ऊपर से (छिद्र करते समय निकले हुये) नीम के चूरा को भर कर, कपड़मिट्टी कर १० कंडों में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर धीरे से, हिंगुल भस्म को निकाल पीसकर रख लें। मात्रा ½ रत्ती, पान में रखकर सेवन करावें।

—नी. गु. वि.।

(७२) नेत्र विकारों पर (सुर्मा)—नीम वृक्ष की एक मोटी जड़ में खोल बनाकर उसमें सुरमे की डली रख दें तथा नीम की लकड़ी या छाल से ही खोल के मुख को वन्द करदें। २ मास के बाद निकाल कर महीन पीस कर आंखों में सलाई से लगाया करें। नेत्रों में ठंडक आती है, जलन, दाह एवं पैत्तिक नेत्र रोगों में विशेष लाभ होता है।

पंचाङ्ग-नीम का पंचाङ्ग (मूल, पत्र, पुष्प, फल और छाल) रक्तविकार, पित्त विकार, कण्डू, व्रण, दाह, कुष्ठादि नाशक है।

(७३) रक्तविकार पर नीम के पांचों अङ्ग सम-भाग लेकर चूर्ण कर रखें। शरीर पर ग्रन्थियां, फोड़े, फुन्सी, विद्रधि, खुजली, दाह आदि की विशेषता हो तो यह चूर्ण १ से ३ माशा तक प्रातः सायं घृत के साथ सेवन करें। नीम पत्रोदक से स्नान करें। प्रारम्भ में रेंडी तैल से विरेचन कर कोष्ठ शुद्ध कर लेना आवश्यक है।

—आ. पत्रिका।

अथवा—पंचाङ्ग को जौकुटकर रात भर पानी में भिगो रखें, प्रातः भबके से अर्क खींच लें। मात्रा-५ तो. प्रातः शहद मिला सेवन करते रहने से समस्त रक्तविकार शांत हो जाते हैं। पथ्य में चने की रोटी और घृत खाया करें।

विशिष्ट योग में पंचनिंब चूर्ण देखें।

(७४) पांडु व कामला पर—पंचाङ्ग का महीन चूर्ण १ मा. की मात्रा में दिन में दो बार घृत और शहद मिला कर सेवन कराते हैं। यदि घृत, शहद का अनुपान अनुकूल न हो तो इस चूर्ण को गोमूत्र या जल या दूध किसी एक के साथ ले सकते हैं।

(विशिष्ट योगों में पंचनिम्ब चूर्ण देखें) पथ्य में शाली चावल दूध के साथ देवें।

(७५) लू लगने पर—पंचांग चूर्ण और मिश्री १-१ तो. एकत्र पानी के साथ पीस छानकर पिलाने से लू लगने के उपद्रव शांत हो जाते हैं।

(७६) प्लेग पर—पंचांग को कूट पीसकर पानी में छानकर १०- ० तो. की मात्रा में १५-१५ मिनट के अन्तर से पिलाने तथा प्लेग ग्रन्थि पर नीम-पत्र की पुल्टिस बांधने तथा रोगी के आस-पास इसकी धूनी करने से बड़ा लाभ होता है। —व. च.।

(७७) भगन्दर पर—पंचांग चूर्ण ६ मा. की मात्रा में नित्य नियमपूर्वक सेवन कराते हैं। जीर्ण भगन्दर दूर होता है।

(७८) अम्लपित्त और कफ पित्तज शूल पर—पंचांग का महीन चूर्ण १ भाग, विधारा चूर्ण २ भाग, एकत्र चूर्ण को १० भाग सत्तू में मिला कर रखलें। इसे यथोचित मात्रा में शहद के साथ सेवन कराने से भयंकर अम्लपित्त नष्ट होता है। यदि अम्लपित्त में वायु प्रबल हो एवं मला-वरोध हो तो कंस हरीतकी (च. चि. अ. १२) नामक अवलेह का सेवन करावें।

पित्त कफज शूल हो तो इस सत्तू में खांड़ मिलाकर

Scanned with CamScanner

पानी में घोलकर पिलावें। —ग. नि. तथा भै. र.।

(७९) कुष्ठ पर—पंचांग का चूर्ण, ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक नियमित रूप से खैरके क्वाथ के साथ सेवन से लाभ होता है। —ग. नि.।

नोट—पंचांग का क्षार प्रयोग (सर्व ज्वर, विशेषतः मलेरिया पर) विशिष्ट योग नं. ६ में देखें।

गोंद—नीम वृक्ष से उजला, कहरवे रंग का छोटे-छोटे टुकड़े के रूप में जो गोंद निकलता है, वह मधुर होता है। शीतजल में सरलता से घुलनशील है। यह शरीर में रक्त की गति को बढ़ाने वाला एवं शक्तिप्रद है। बबूल के गोंद जैसा ही यह औषधियों के लिए उत्तम योग-वाही है।

(८०) सन्तति निरोधार्थ—गोंद चूर्ण १ तो. पानी में घोलकर कपड़े से छान उसमें १ हाथ लम्बा और उतना ही चौड़ा साफ मलमल के कपड़े को तरकर छाया शुष्क करलें। फिर उसके गोल गोल टुकड़े रुपये के बराबर काट कर एक शीशी में रख दें। सहवास के पूर्व एक टुकड़े को निकाल कर स्त्री अपने जननेन्द्रिय के जरायु पिण्ड पर सांट लेवे। संभोग के घंटे बाद उस कपड़े को निकालकर फेंक दे। इस प्रयोग से जरायु में एक विचित्र स्फूर्ति आती है तथा इसी कारण जल्दी गर्भस्थिति नहीं होने पाती। —नी. उ.।

नोट—ऐसा ही प्रयोग नीम-तैल का भी है, पीछे प्रयोग नं. ५८ में देखिये। ये दोनों प्रयोग संतान निरोधार्थ विश्वस्त, सरल एवं निरुपद्रवी हैं।

वीर्य वृद्धि के लिये गोंद को घृत में भूनकर मिश्री या शक्कर मिला सेवन करें। अथवा आगे विशिष्ट योगों में नीम के लड्डू या मोदक के प्रयोग देखें।

काष्ठ—नीम की लकड़ी, दुर्गन्धनाशक, कृमि नाशक, दन्तरोग आदि निवारक होती है।

(८१) दन्तविकार नाशार्थ—कोमल पतली शाखा की प्रतिदिन दातून करने से मुख, दांत एवं श्वास साफ, दुर्गन्धरहित होकर दंतविकार नष्ट होते हैं। दांतों में कीड़े नहीं लगने पाते हैं। दातून को देर तक मुख में नहीं रखना चाहिए, तथा बाद में जल से खूब कुल्ले कर लेना चाहिए। अधिक देर तक इससे दांतों को घिसना [illegible] चाहिए। दातून के बाद नीम-पत्रों को चून में [illegible] खाने से अरुचि दूर होती है।

(८२) रक्तार्बुद तथा मुहांसों (यौवन पिड़िका) [illegible] लकड़ी को पानी में घिसकर १ इंच मोटा लेप करने [illegible] से रक्तार्बुद कुछ दिनों में मिट जाता है। —व[illegible]।

जड़ की छाल रहित भीतर की लकड़ी को पानी [illegible] साथ चंदन की तरह घिसकर मुहांसों पर लगाते रहने [illegible] ७ दिन में पूर्ण लाभ होता है। मुहांसे समूल नष्ट हो जाते हैं। —नी. उ.।

(८३) गर्भ निरोधार्थ—ऋतुकाल के अन्त में योनि को नीम की लकड़ी की धूनी देकर स्त्री यदि पुरुष समागम करे तो गर्भ नहीं रहता। —भा. भै. र.।

तथा वह अपने पति को अपना दास बना लेती है अर्थात् पति उसके बस में हो जाता है।

—नी उ. (यह तांत्रिक प्रयोग है)।

(८४) भूत बाधा निवारणार्थ—नीम की लकड़ी सूतिका-गृह में जलाने से नवजात शिशु को किसी प्रकार की भूतबाधा का भय नहीं रहता। —नी. उ.।

नोट—मात्रा—पत्र चूर्ण १-४ मा.। छाल चूर्ण—१ से [illegible] या ४ मा. तक, विशेषतः अन्तर छाल ३ से ४ मा. तक (अजवायन, त्रिकटु आदि सुगंधित द्रव्यों के साथ देने पर ग्राही गुण कम होता है) दिन में ३ बार सेवन से शीघ्र लाभ करती है। छाल का क्वाथ ५ से १० तो. तक। पत्र-स्वरस १-२ तो.। तैल—५-१० बून्द। बीज की गिरी १॥ मा. पुष्प चूर्ण १-४ मा.। पत्र के सींकों के [illegible] का चूर्ण २ माशा। पंचांग चूर्ण २-४ मा.। मद—[illegible] तो.। अर्क १-२॥ तो.।

नीम गीली या ताजी होने पर भी यह दूनी मात्रा में नहीं ली जाती। संयोगवश पत्रों के अभाव में इसकी छाल ग्रहण करें। नीम वृक्ष के अभाव में बकायन के पत्र या छाल ग्रहण करें। ध्यान रहे यद्यपि बकायन में नीम जैसे ही गुण धर्म हैं, तथापि इसमें विषका अंश अधिक होने से प्रतिनिधि के रूप में इसका व्यवहार थोड़ी मात्रा में करना चाहिये।

काम शक्ति दौर्बल्य में तथा रूक्ष प्रकृति वालों को और उपःपान करने वालों को नीम का सेवन हानिकार है। हानिनिवारणार्थ गोदुग्ध, घृत या सेंधानमक का व्यवहार करना चाहिए।

विशिष्ट योग

(१) निम्बादिचूर्ण--नीम के शुष्क पत्र, सींक, जड़ के निकट की अन्तर छाल, फूल, बीजों की गिरी ५-५ तो., इनके महीन चूर्ण में पांचों नमक का चूर्ण ५ तो. मिला कर रखलें। ३ से ६ माशा तक गरम जल से लेने से जीर्णज्वर, उदरशूल, अतिसार, मंदाग्नि, अरुचि, वमन, कुष्ठ, नेत्र रोग तथा सर्व प्रकार के रक्त विकार नष्ट होते हैं। --नी. उ.।

(२) निम्बादिचूर्ण--नीम पत्र या छाल १० तो., त्रिफला, त्रिकटु (के प्रत्येक द्रव्य) तथा सेंधा, काला व सांभर नमक, जवाखार, सोड़ा या सज्जीखार १-१ तो. और अजवायन ५ तो. सबका महीन चूर्ण मात्रा-२ से ४ माशा तक प्रातः सायं जल के साथ लेने से विषम ज्वर (संतत, सतत, एकतरा, तिजारी, चौथिया) धातुगत ज्वर तीनों दोषों से उत्पन्न ज्वर दूर होते हैं। --भा० प्र०।

(३) निम्बादि चूर्ण (वात रक्तादि नाशक)—नीम की छाल, गिलोय, हरड़, आंमला, बावची ४-४ तो०, सौंठ, वायविडङ्ग, पवांड़ के बीज, छोटी पीपल, अजवायन, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, देवदार और कूठ प्रत्येक का चूर्ण १-१ तो० एकत्र कर खरल कर रक्खें।

नित्य मात्रा १ माशा से तीन माशे तक, गिलोय के क्वाथ के साथ लेने से भयंकर वातरक्त, श्वेत कुष्ठ, औदुम्बर कुष्ठ, कोष्ठ, चर्मदल, सिध्म (छीप), पामा, कण्डू (जिसमें रोगी निरन्तर खुजलाता रहता हो), विर्चचिका, दाद, मण्डल, किटिभ कुष्ठ, आमवातज शोथ, उदर रोग, प्लीहा, गुल्म, पांडु, कामला एवं व्रणादि नष्ट होकर शरीर कान्तिमान हो जाता है। —भै० र०

(४) पंच निम्ब चूर्ण (कुष्ठादि नाशक) नीम वृक्ष के पांचों अङ्ग (यथाकाल अर्थात् फूल के समय पर फूल, फल के समय पर फल, कच्चे पत्रादि) प्रत्येक १२-१२ तो० तथा लोह भस्म (या मांडूर भस्म), हरड़, पंवाड़ के बीज, चित्रक, भिलावे (गाय के गोबर के साथ औटाकर शुद्ध किये हुए), वायविडङ्ग, खांड (शक्कर), आमला, हल्दी, पिप्पली, कालीमिर्च, सौंठ, बावची, अमलतास का गूंदा और गोखरू प्रत्येक ४-४ तो० लेकर सब का चूर्ण एकत्र कर प्रथम भांगरा के रस की १ भावना देकर फिर खैर के अष्टमांश क्वाथ की और असन (विजयसार) वृक्ष के छाल के क्वाथ की क्रमशः कम से कम तीन भावनायें देकर सुखाकर महीन चूर्ण कर रखें।

मात्रा—१ तो० तक, खैरसार के क्वाथ के साथ अथवा घृत या दूध के साथ १ मास तक नियमपूर्वक सेवन से सर्व प्रकार के कुष्ठ एवं रोगों का नाश होता है। यह रसायन है।

नोट—इसकी मात्रा ४ माशा लेना ठीक होगा, दिन में २ या तीन बार देवें। इसे शहद के साथ भी या रोगानुकूल अनुपान के साथ ले सकते हैं। यह प्रयोग प्लीहा वृद्धि पर भी उत्तम लाभकारी है। मांस, शराब, खटाई, कच्चा दूध, प्रकृति के प्रतिकूल भोजन, कब्जकारी पदार्थ का त्याग करना, मलावरोध न रहने देना, आवश्यकतानुसार सारक औषधि लेते रहना आवश्यक है।

शास्त्रों में पंच निम्बादि चूर्ण एवं बृहत्पंचनिम्ब चूर्ण के और भी बड़े-प्रयोग हैं जो विस्तार भय से यहां नहीं दे सकते। उक्त शार्ङ्गधर संहिता का प्रयोग सब बड़े-बड़े प्रयोगों का सारभूत है।

एक निम्बपंचक चूर्ण नामक छोटा प्रयोग गद निग्रह ग्रन्थ का उत्तम सेवनीय इस प्रकार है—यथा समय नीम के पांच अङ्ग १-१ भाग लेकर शुष्क कर चूर्ण बनालें। फिर उसमें त्रिकटु व त्रिफला के प्रत्येक द्रव्य और हल्दी का चूर्ण १-१ भाग मिलाकर सुरक्षित रखें। मात्रा २ से तीन माशा तक दूध, शहद, घृत या उष्ण जल के साथ सेवन से खांसी, विष, प्रमेह पिडिका एवं कुष्ठादि रोग नष्ट होते हैं।

(५) निम्ब हरिद्रा खण्ड—नीम पत्र रस ६० तो०, शक्कर ३२ तो० दोनों को एकत्र मन्द आग पर पकावें।

Scanned with CamScanner

गाढ़ा होकर चम्मच में चिपकने लगे तब उसमें चित्रक, त्रिफला, नागरमोथा, काली जीरी, अजवायन, अजमोद, निसुंण्डी के बीज, त्रिकटु, निशोथ, दन्तीमूल, नीम बीजों की गिरी, बावची बीज २-२ तो०, वायविडङ्ग तथा अनन्तमूल ४-४ तो० सबका महीन चूर्ण मिला कांच के पात्र में भर रखें। मात्रा १ तो० प्रतिदिन प्रातः सायं खाकर ऊपर से ठंडा जल पीने से सर्व प्रकार के कृमि रोग, नहीं भरने वाले व्रण, कुष्ठ, नासूर, भगन्दर, विद्रधि, दाद, खाज, खुजली आदि नष्ट होते हैं। अजीर्ण, कामला, वातगुल्म और शोथ की व्याधि में भी यह लाभदायक है।

—नागार्जुन संहिता

(६) निम्ब सत्व और क्षार—नीम की अन्तरछाल को जौकुट कर खूब कूटकर चटनी जैसा बना २० गुने पानी में, मृत्पात्र या कलईदार बर्तन में रात भर भिगो प्रातः हाथों से इतना मसलें कि उसमें से दूध जैसा सूब झाग निकलने लगे। अब सत्व के सर्व परिमाणु पानी में आ जावें तथा छूछे मात्र अलग रह जायें तो जल को स्वच्छ खादी वस्त्र से छान लें। १२ घंटे तक उसे स्थिर रखने पर सत्व पात्र की तली में जमा हुआ प्राप्त होगा। ऊपर के पानी को धीरे-धीरे निकाल देवें तथा नीचे के सत्व को शुष्क कर रखलें।

जीर्ण ज्वर जो किसी भी उपचार से दूर न होता हो, यह सत्व ४ रत्ती से ८ रत्ती की मात्रा में, प्रतिदिन प्रातः सायं शहद के साथ चटाने से १० दिन में पूर्ण लाभ होगा। ४० दिन नित्य सेवन से शरीर कांतिमान होगा। बच्चे जो जीर्ण ज्वर के कारण विशेष निर्बल हो गये हों तथा सूखा रोग हो गया हो तो उन्हें भी इससे लाभ होता है। दूध पीने वाले बच्चे को तथा उसकी माता को भी १-१ रत्ती या बल देखकर देवें। घबराहट विशेष हो तो इसी सत्व में थोड़ा वंशलोचन अथवा इलायची का चूर्ण मिलाकर अनार का स्वरस या मधु या माखन मिश्री मिलाकर देवें पूर्ण लाभ होगा।

—श्री वैद्य कन्हैयालाल जी व्यास

(धन्वन्तरि चिकित्सानुक्रमांक से)

नीम का क्षार—नीम के पञ्चाङ्ग को जलाकर जितनी राख हो उसमें ३२ गुना पानी मिला [illegible] तक रहने दें। नित्य २-३ बार हिलाते रहें। [illegible] ऊपर का पानी निथार छानकर लोहे की [illegible] आग पर पकावें। पानी जल जाने पर नीचे [illegible] पीसकर रखें। ½ से १ रत्ती मात्रा में दिन में [illegible] पानी के साथ देने से सर्व ज्वर विशेषतः [illegible] होता है।

(७) नीम योग—नीम के पत्तों का, [illegible] और आमले का समभाग मिश्रित चूर्ण (मात्रा [illegible] मा. तक) घृत के कुछ दिन सेवन करने से [illegible] कोठ, क्षत शीतपित्त, खुजली और रक्त पित्त नष्ट होता है।

—[illegible]

(८) निम्बादि गुटिका—नीम की छाल, पटोल, [illegible] जौ, त्रिफला, नागरमोथा, सोंठ ४-४ तो. जौकुट कर लगभग ३¼ सेर पानी में पकावें। अष्टमांश शेष रहने पर छान कर उसमें ३२ तो. शिलाजीत मिला, मटकी में भर कर मुख मुद्रा कर रख दें। १ मास बाद निकाल कर उसमें शुद्ध मनसिला, तथा मोचरस, आमला, वंशलोचन, काकड़ासिंगी और कटेरी चूर्ण ४-४ तो. तथा इन सबका चौथा भाग निसोथ का चूर्ण और १२ तो मधु मिला कर गोलियां बनावें। मात्रा ३ या ४ रत्ती तक दूध के साथ सेवन से कामला, पांडु और ज्वर नष्ट होता है।

—भा. भै. र.

(९) निम्ब वटी—नीम की सींकों के आगे का मोटा हिस्सा १ भाग, काला नमक और लौंग ½ भाग एकत्र जल के साथ पीस कर ४-४ रत्ती की गोलियां बना लें, धूप में शुष्क कर रखें।

मात्रा—४ से ८ रत्ती तक, गरम पानी के साथ लेने से वमन, अरुचि, उदर शूल, तृषा और जुकाम मिट जाता है।

—[illegible]

(१) बल वृद्धिकर योग—नीम की पीली सूखी पत्तियों को कूट कर कपड़े से छान कर खरल में रखें और ऊपर से हरे नीम पत्तों के रस की ७ या २१ भावना देकर सुखालें। यह एक उत्तम रसायन है। मात्रा १ से ३ मा. तक जल के साथ सेवन से शारीरिक दुर्ब-

Scanned with CamScanner

लता जीर्ण ज्वर, पित्त प्रकोप जन्य विकार, भ्रम, पाण्डु, जीर्ण ज्वर, उदर कृमि,रतौंधी, रक्त विकार आदि में पूर्ण लाभ होता है। —नी. उ.।

(११) निम्बार्क—नीम के फूल १ सेर तक लेकर मिट्टी या कलईदार पात्र में रख उसमें ८ सेर ताजा पानी मिला २४ घंटे बाद भवका यंत्र से अर्क खींच लेवें। इसके सेवन से अजीर्ण, ज्वर फोड़े फुंसी, अरुचि, मन्दाग्नि,कृमि तथा रक्त पित्त रोग नष्ट हो जाते हैं। —नी. चि. वि.

(१२) टिंक्चर नीम या निम्बकासव (ज्वरादिनाशक)-नीम की ताजी अन्तर छाल का चूर्ण ६ तो. लेकर रेक्टिफाइड स्प्रिट ४० तो. में मिला, बोतल में वन्द कर ३ दिन धूप में रख कर, फलालीन से छान कर शीशियों में भर रखें। मात्रा १० से ६० बून्द तक, थोड़े जल के साथ देने से मलेरिया ज्वर जन्य दौर्बल्य प्यास, कास, अतिसार, आदि में शीघ्र लाभ होता है। इसे कुनाइन के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। दिन रात में ६ मात्रा तक दे सकते हैं।

(१३) निम्ब वारुणी (वात रक्तादि नाशक)-नीम का मद (ताड़ी) ८ सेर को एक मजबूत मिट्टी के घड़े में या संधान पात्र में डाल कर उसमें अद्रक ५ तो. कूट कर डाल दें। फिर उसमें नया गुड़ १¼ सेर तथा बाद में नीम की छाल ४० तो. कूट कर मिला दें। मुख मुद्रा कर पात्र को जमीन में गाड़ दें। २४ दिन बाद निकाल कर भवके से ४ बोतल अर्क खींच ले। मात्रा--१ से ४ तो. तक भोजन केबाद समभाग पानी मिला कर सेवन से वात-रक्त, गठिया, मंदाग्नि, कुष्ठ, अर्श, पुराना ज्वर और पाण्डु रोग दूर होता है। —बृ. आ. संग्रह

नोट—निम्बमदासव, निम्ब पुष्पाद्यासव, निम्बकारिष्ट आदि के प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह ग्रन्थ में देखें।

(१४) निम्ब-घृत—नीम पत्र रस ४ सेर, नीम की जड़ के निकट की गीली छाल की लुगदी २० तो. और गौ घृत १ सेर सब को एकत्र लोहे की कड़ाही में मंद आग पर पकावें। जब रस जलते जलते ५ तो. तक रह जाय, कपड़े से छान कर पुनः कड़ाही में रख कर पकावें घृत मात्र शेष रहने पर उतार लें। मात्रा ½ तो. को २० तो. गाय के गरम दूध के साथ मिश्री मिला कर केवल प्रातः सेवन करें। इसके बाद तुरन्त ही पानी नहीं पीना चाहिये। इससे वातरक्त, खुजली, फोड़ा-फुंसी, रक्तपित्त शीत पित्त, रतौंधी तथा कफ प्रकोप जन्य संधि वेदना दूर होती है। इसका व्यवहार प्रारंभिक कुष्ठ रोग में किया जाता है। --नी. उ.

(१५)निम्बादि घृत-नीम छाल,गिलोय, अडूसा,पटोल और कटेरी प्रत्येक ४० तो. एकत्र कर १२ सेर ६४ तो. पानी में पकावें। अष्टमांश शेष रहने पर छान कर उस में २ सेर घृत तथा पाठा, बायबिडंग, देवदारु, गजपीपल, जौखार, सज्जीखार, सौंठ, हल्दी, सौंफ, चव्य, कूठ, मालकांगनी, काली मिर्च, इन्द्रजौ, अजमोद, कुटकी, शुद्ध-भिलावा, बच, पीपलामूल, मजीठ, अतीस, कलिहारीमूल, और अजवायन १-१ तो. सबका कल्क करके तथा शुद्ध, गूगल २० तो. मिला पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान लें। मात्रा-१ से २ तो. तक सेवन से अग्नि दीप्तहोती तथा सन्धि अस्थि एवं मज्जागत, कुष्ठ, नाड़ी व्रण अर्बुद भंगदर आदि दूर होते हैं। —वा. भ. चि. अ. २१

(१६) पंचतिक्त घृत---नीम की अंतर छाल, कटु पटोल पत्र, छोटी कटेरी, गिलोय और अडूसा की छाल, प्रत्येक ४० तो. एकत्र जौकुट कर १२ सेर ६४ तो. पानी में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर उसमें घृत ६४ तो. तथा त्रिफला कल्क १२ तो. मिला मंदाग्नि पर घृत सिद्ध करलें। मात्रा ६ मा. से १ तो. तक दिन में २ बार शक्कर के साथ या भोजन के प्रारंभ में प्रथम ग्रास के साथ मिला कर सेवन से कुष्ठ, वातज, पित्तज कफज सर्व प्रकार के रोग, दुष्ट व्रण, नाड़ी व्रण, गंडमाला, भगंदर, कृमि, अर्श एवं सर्व प्रकार की खांसी नष्ट होती है। --भै. र. तथा च. द; वं. से.

नोट—पंच तिक्तक घृत के और भी प्रयोग रत्नाकर आदि ग्रन्थों में देखें।

(१७) निम्ब तैल—नीम पत्र अच्छे साफ किये हुए १२८ तो. हल्दी व निसोथ ६४-६४ तो. सबको कूट कर

Scanned with CamScanner

७२ सेर पानी में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर उसमें तिल का कल्क ६४ तो. तथा तिल तैल ४½ सेर मिला मंदाग्नि से तैल सिद्ध कर लें। सर्व प्रकार के व्रणों पर इस तैल का फाहा रखने से उनका शोधन होता तथा भीतर की राध बाहर आ जाती है। इसके प्रयोग से अत्यन्त सड़ा हुआ व्रण भी सुधर जाता है। व्रण को प्रथम नीम पत्र और त्रिफला मिश्रित पानी के क्वाथ से धोकर साफ कर इस तैल का फाया रख, उस पर शहद की पट्टी रख स्वच्छ वस्त्र की पट्टी बांध दिया करें। अति गहरे व्रण भी थोड़े ही दिनों में शुद्ध होकर भर जाते हैं। --रसतंत्रसार

तैल नं० २—नीम की गिरी का तैल १ सेर, नीम पत्र रस ४ सेर तथा नीम की जड़ की छाल की लुगदी २० तो. सबको एकत्र मन्द आंच पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रख लें।

इसके प्रयोग से गीली, सूखी सब तरह की खुजली, दाद, छाजन, श्वेत कुष्ठ, वातरक्त, कर्णस्राव तथा सन्धि-वेदना आदि वात सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। नी. उ.।

(१८) पंचगुण तैल—नीम पत्र, संभालू पत्र १५-१५ तो. तथा हरड़, बहेड़ा, आमला ५-५ तो सबको जौकुट कर आठ गुने पानी में, चतुर्थांश क्वाथ कर, छान कर उसमें तिल तैल ८० तो., मोम, गंधा-बिरोजा, शिलारस, राल व गूगल ४-४ तो. मिला मन्द आंच पर खरपाक कर छान लें। थोड़ा गरम हालत में ही उसमें कपूर का मोटा चूर्ण ५ तो. डालकर चमचे से हिलाकर मिला दें। ठंडा होने पर तार्पीन तैल, यूकेलिप्टस तैल व केजोपुटी का तैल प्रत्येक २॥ तो. मिला शीशी में भर रखें।

संधिवात तथा शरीर के किसी भी अवयव के शूल में हलके हाथ से मालिश करें। कर्णशूल में कान में डालें। सर्व प्रकार के व्रणों में व्रण को नीम व संभालू के पत्र क्वाथ से धोकर उस पर तैल में भिगोई हुई रूई या स्वच्छ कपड़ा रख ऊपर केला का या धायपात या बड़का या समुद्रशोष का पत्ता रखकर बांध दें। यह तैल उत्तम वेदनाहर, पीड़ाशामक एवं व्रण का शोधन-रोपण करने वाला है। -सिद्ध योग संग्रह।

(१९) निम्बादि मलहम—नीम प[त्र] ... तो. को गोघृत १० तो. में मंदाग्नि पर र[ख] ... के जल जाने पर उसमें २ तो. मोम मिलाकर छान कुछ गरम रहने पर रसकपूर १ तो. मिला मलहम ... लेवें। यह सर्व प्रकार के नये और पुराने घावों ... कर भर देता है।

मलहम नं० २—नीम की गिरी का तैल १ सेर ... कड़ाही में डाल गरम करें, और उसमें २० तो. ... ५ तो. गंधाबिरोजा मिला दें। अच्छी तरह मिल जाने ... नीचे उतार, तत्काल पानी की भरी हुई बाल्टी में ... दें। कढ़ाही में लगा रहे उसे भी खुरच कर ... बाल्टी में डाल दें। २-५ मिनट बाद पानी [पर] तैरती हुई मलहम को निकाल मजबूत कपड़े में रख दबा देवें। इससे सारा भाग बाहर निकल आवेगा ... किट्ट कपड़े में रह जावेगा। इस मलहम को १-... पानी डालकर ५० या १०० बार धोवें। फिर मिट्टी [के] पात्र में भर देवें। यह श्वेत, चिकना व शीतल मल[हम] अग्नि से जले हुये भाग पर चाहे जितनी जलन होती ... चर्म चाहे जितना अधिक जल गया हो, लगाते ही वे[दना] शमन हो जाती है, तथा थोड़े ही दिनों में रोगी स्व[स्थ] होता है। यह अन्य घावों पर भी उपयोगी है। व्रण क[ैसा] भी सड़ा हो, इससे साफ होकर भर जाता है। इसमें ... विशेषता है कि शोधन, रोपण दोनों कार्य सम्यक् प्रक[ार] से सत्वर कर देता है ---रस. तंत्रसार

मलहम नं० ३—नीम गिरी का तैल २० तो. ... नीम पत्र रस १ सेर दोनों को लोह कढ़ाई में पकावें। ... रस जलते जलते ५ तो. तक शेष रहे, तब उसमें मोम ... तो. मिला दें नीचे उतार कर छानकर उसमें नीम-... का सूक्ष्म चूर्ण ५ तो. और नीम-पत्र की राख २॥ तो. मिलाकर रख लेवें।

यह मलहम जहरीले घावों पर लगाने योग्य है। इस[से] शोधन-रोपण दोनों काम हो जाते हैं। सड़े हुये घाव, ना[सूर] तथा पशुओं के घावों में भी इसका व्यवहार किया जा[ता] है। —नी. उ.

(२०) नीम पुष्पों का गुलकन्द—नीम के ताजे फूल

के डण्ठल अलग कर साफ करलें, उसमें ४ गुना मिश्री चूर्ण मिलादें। अमृतवान या कांच के पात्र में प्रथम नीचे थोड़ी मिश्री की तह बिछावें उस पर उक्त पुष्प मिश्रित चूर्ण की तह लगायें। फिर केवल मिश्री तथा ऊपर पुष्प मिश्रित चूर्ण की तह लगावें। इस प्रकार तहों को लगा सबके ऊपर केवल मिश्री चूर्ण का तह लगावें। पात्र का मुख बन्द कर कपड़ मिट्टी कर रखदें। १ मास बाद गुलकन्द तैयार हो जाता है। यह पैत्तिक या वात पैत्तिक उन्माद पर हितकारी है। मात्रा १¼ से २½ तो०

—गां० औ० र०

गुलकन्द नं० २—ताजे पुष्पों के साथ समभाग ताल-मिश्री का चूर्ण मिला, कांच के बड़े पात्र में भरकर मुख बन्द कर १ मास तक बराबर धूप में रखा करें। उत्तम गुलकन्द हो जावेगा। मात्रा ½ से १ तो० तक प्रातः सेवन से नाक से रक्तस्राव होना, हर समय शरीर का गरम रहना, कण्ठ शोष, मुख दुर्गन्धि, मंदाग्नि, रक्त विकृति, अर्श, गठिया और नेत्र विकार दूर होते हैं।

—नी० उ०

(२१) नीम के लड्डू—नीम की गिरी का आटा प्रथम इस प्रकार तैयार करें। गिरी के तैल को कोल्हू से निकालने के बाद जो खली रहती है, उसे एक बार नीबू के रस के साथ मिलाकर मिट्टी की नांद पर लेप करें। सूख जाने पर महीन चूर्ण या आटा करलें। यह आटा १ सेर लेकर पानी के साथ बेसन की तरह खूब मिलालें तथा ३० तो० गौघृत में उसकी बुंदियां बना-कर पृथक करलें। फिर २० तो० नीम के गोंद के टुकड़े कर उन्हें घृत में भूनें, जब फूल जैसे फूल जावें, उन्हें निकाल कर खरल में कूटकर महीन करलें। फिर १½ सेर मिश्री की चाशनी में उत्तम बुन्दियों को और गोंद के फूले को मिला मोदक बना लें।

यदि नीम के उक्त प्रकार से बूंदी के लड्डू न बनाना हों तो प्रथम गोंद को घी में भून कर और गिरी के आटे को १ सेर घी में भूनकर दोनों को मिश्री की चाशनी में मिला मोदक बना लेवें। (ये उत्तम पौष्टिक एवं पैत्तिक विकार नाशक होते हैं)।

—नी० उ०

(२२) निम्बांजन—नीम की पीली सूखी पत्तियां ७ नग और नीम गिरी का तैल १ तो० लेकर प्रथम साफ महीन ४-५ इन्च के कपड़े के टुकड़े पर पत्तियों को व नीम पुष्प चूर्ण १ मा० को बिछा दें तथा खूब कड़े हाथों की तलहथियों द्वारा उसकी १ बत्ती बना दीपक में उक्त तैल में डाल बत्ती तर कर जला देवें। रात्रि में इसे आंखों में लगावें। इससे बच्चों की आंखों के सर्व विकार दूर होते हैं। बड़ों की आंखों की धुन्ध, दर्द आदि में भी यह लाभकारी है।

—नी० उ०

(२२) निम्ब मंजन—नीम जड़ की छाल का चूर्ण ५ तो० को सोनागेरू ५ तो० और सेंधा नमक १ तो० के साथ खूब खरल करें फिर उसमें नीम पत्र स्वरस की ३ भावनायें देकर शुष्क कर शीशी में रखलें। इसके मंजन से दांतों में से खून गिरना, पीव निकलना, मुंह में छाले पड़ना, मुख से दुर्गन्ध आना, जी का मिचलाना आदि विकार दूर होते हैं।

—नी० उ०

(२४) नीम का उबटन नीम जड़ की ताजी छाल और नीम गिरी १-१ तो० दोनों को अलग-अलग नीम के ताजे पत्र रस में पीसकर एकत्र कर खूब मिलावें। मिलाते समय ऊपर से पत्र रस डालते जावें। जब मिल-कर उबटन की तरह हो जाय तब व्यवहार में लावें। यह उबटन शरीर के मैल, खुजली, दाद, वर्षा तथा ग्रीष्म में होने वाली फुन्सियां, शीतपित्त, शारीरिक दुर्गन्ध, पसीने से अधिक नमक का अंश निकलना आदि त्वचा के सभी विकारों को दूर करता है।

—नी० उ०

(२५) नीम का धूप—नीम के शुष्क पत्र, जड़, छाल, पुष्प १-१ तो० तथा गूगल ३ तो० सबको जौकुट कर २½ तो० गोघृत में सानकर डिब्बे में बन्द करके रखलें। इस धूप के व्यवहार से पारी से आने वाले ज्वर, भूत-बाधा, बालग्रह तथा घर की दुर्गन्ध आदि दूर होती है। शीतला, हैजा, प्लेग आदि संक्रामक व्याधियों के प्रकोप काल में इस धूप का व्यवहार करना उत्तम है। इससे वातावरण शुद्ध हो जाता है।

—नी० उ०

(२६) नीमयोग से हरताल और शंख भस्म—गोदन्ती हरताल की २½ तो० की डली को नीम पत्रों

Scanned with CamScanner

होता है। अल्प मात्रा में यह कटुपौष्टिक और विषघ्न अधिक मात्रा में मादक एवं मारक विषाक्त है। इसके पत्र और पुष्प रसायन तथा मूत्रल हैं।

पत्र—उदर शूल में पत्र-क्वाथ में सोंठ चूर्ण मिला पिलाते हैं। वात प्रधान शिर:शूल में पत्रों का उष्ण लेप करते हैं तथा गलगण्ड, विसर्प एवं व्रणों पर भी पत्र लेप किया जाता है। दूषित व्रणों का पत्र स्वरस से प्रक्षालन करते हैं। पत्र-स्वरस अश्मरी नाशक है। अर्बुद पर नीम पत्रों के साथ इसके पत्रों को पीसकर पुल्टिस बनाकर बांधते हैं। शरीर के अङ्ग के कट जाने पर पत्रों का लेप करते हैं। आंत्रकृमि-नाशार्थ पत्तों का फांट देते हैं।

(१) स्त्रियों के अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) पर—पत्र-रस अथवा क्वाथ का सेवन ३-४ मास तक कराने से गर्भाशय विकृति जन्य यह रोग दूर होजाता है।

अधिक ऋतुस्राव होता हो तो कोमल पत्तों का रस १ तो. तक पिलाते हैं। अनार्त्तव या मासिक स्राव के अवरोध पर भी पत्र रस दिया जाता है। पत्र-रस आर्तव प्रवर्तक है। गर्भाशय की शुद्धि के लिए पत्र-रस में अकरकरा का रस या चूर्ण मिलाकर पिलाते हैं।

(२) मूत्राश्मरी पर—पत्र रस में जौखार ४ रत्ती मिलाकर पिलाते हैं. इससे थोड़े ही दिनों में वृक्क एवं मूत्राशय में संग्रहीत अश्मरी के कण या शर्करा निकल जाती है।

(३) रक्तस्कन्दता—चोट आदि कारणों से धमनी या रगों के अन्दर रक्त जम गया (Thrombosis) हो, तो पत्तों को पीस कर गरम कर पुल्टिस बनाकर बांधते रहने से रगों का या गांठों का रक्त बिखर कर आराम होता है।

शोथ या सूजन पर इस प्रयोग से या पत्तों के गरम लेप से लाभ होता है।

(४) दृष्टिमांद्य आदि नेत्र विकार तथा मोतिया बिन्दु पर—इसके हरे ताजे पत्ते १ सेर पानी में धोकर साफकर, कूट पीसकर, निचोड़ कर रस निकालकर छान कर रस को पत्थर के खरल में खूब घोट-घोट कर शुष्क कर पुनः १-२ दिन खरल करें। खरल करते समय उसमें भीमसेनी कपूर ३ माशा तक मिला देवें। शीशी में सुरक्षित रख, प्रातः सायं सलाई से लगाते रहने से मोतिया बिन्दु तथा अन्य प्रकार से उत्पन्न दृष्टिमांद्य, जलस्राव, लालिमा, कण्डू रोहे आदि विकार दूर होते हैं।

छाल – थोड़ी मात्रा में कटुपौष्टिक, ग्राही, ज्वरघ्न, कृमिघ्न, अजीर्णनाशक है। विशेषतः मूल की छाल तिक्त, वामक तथा कृमिघ्न है। यह अर्श पर भी उपयोगी है।

(५) कृमि रोग पर–२० तो. ताजी छाल को जौकुट कर १ सेर २६ तो. जल में पका, चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर ५ से १० तो. तक की मात्रा में (बच्चों को बड़ा चम्मच या १½ तो. की मात्रा) २०-२१ दिन तक प्रातः सायं पिलाते रहने से उदर-कृमि नष्ट होकर तज्जन्य ज्वर, पांडुता, निर्बलता, अरुचि आदि उपद्रव दूर हो जाते हैं। या यह क्वाथ या इसका फांट प्रति २ या ३ घण्टे बाद तब तक दिया जाता है जब तक कि यह आमाशय या आन्त्र पर प्रभाव नहीं कर देता। साथ ही साथ बीच-बीच में कोई क्रियाशील विरेचक भी देना आवश्यक है।

(६) ज्वर (मलेरिया) पर—इसकी छाल और धमासा १-१ तो. तथा कासनी के बीज १० दाने एकत्र जौकुटकर (५ से १० तो. तक) पानी में भिगोकर ज्वर में जाड़ा लगने के समय ही अच्छी तरह हाथ से खूब मसल छानकर पिला देवें। यह ज्वर दो खुराक देने से ही बन्द हो जावेगा।

—वृक्ष विज्ञान।

(७) गृध्रसी (Sciatica) अर्थात् रीगन बात या लंगड़ी के दर्द पर—जड़ की छाल १ तो. तक, प्रातःसायं जल में पीस छानकर पीने से (लगभग १ मास तक) शीघ्र ही लाभ होता है, असाध्य गृध्रसी भी नष्ट होती है।

—ग. नि. तथा वं. से.।

अथवा–इसके मूल या अन्तरछाल का चूर्ण जल के साथ सेवन करने से भी लाभ होता है।

(८) अर्श पर—छाल के साथ समभाग सेंधानमक, चित्रक, इन्द्रजौ, करंज की जड़ को पीसकर मात्रा ३ मा. तक तक्र (छाछ) में घोलकर ७ दिन तक पिलाने से लाभ होता है। इस योग का नाम लवणोत्तमादि चूर्ण है।

—वा. भ. चि. अ. ८।

(९) अनार्त्तव, मुखपाक तथा कुत्ते के विष पर—अनार्त्तव में छाल का क्वाथ, आर्त्तवस्राव के समय प्रतिमाह पिलाते रहने से २-४ मास में आर्त्तव साफ होने लग जाता है।

मुखपाक में—मुख के अन्दर छाले एवं व्रण हो जाने पर छाल को जलाकर श्वेत कत्थे के साथ पीस मुख के भीतर बुरकते हैं।

कुत्ते के विष पर—मूल छाल के रस को पिलाते हैं।

(१०) कुष्ठ तथा गण्डमाला पर—छाल के साथ इसके पत्तों को मिला जौकुट कर, क्वाथ बनाकर पिलाते हैं तथा इसी का लेप भी करते हैं।

पुष्प—वेदनास्थापक, जंतुनाशक, चर्मरोग नाशक एवं आर्त्तव प्रवर्त्तक है। प्रसूता स्त्री के शिरःशूल तथा गर्भाशय की पीड़ा पर पुष्पों को पीसकर सिर तथा पेड़ू पर बांधते हैं। फोड़ा, फुन्सी तथा खुजली आदि चर्म विकारों पर—फूलों को पीसकर लेप करते हैं। सिर की खुजली तथा जूं, लीख आदि नाशार्थ फूलों के कल्क का प्रलेप करते हैं।

(११) फूलों के रस को सिर पर लगाते रहने से दारुणक रोग (छोटी-छोटी फुन्सियां हो जाना, केशभूमि कठोर होना, चमड़ी के टुकड़े निकलते रहना आदि) तथा अरुंषिका (पीपयुक्त फुन्सियां होना) आदि विकार नष्ट होते हैं।

(१२) मासिक धर्मावरोध पर—नियमपूर्वक पुष्पों का रस ६ माशा तक की मात्रा में शहद के साथ चटाते हैं।

फल और बीज—ये विशेष विषाक्त हैं, तथापि कुष्ठ, गण्डमाला, अर्श आदि विकारों पर इनका व्यवहार किया जाता है।

(१३) संक्रामक रोगों से बचने के लिये इसके बीजों की माला धारण करते तथा घर के दरवाजों, खिड़कियों पर तोरण की तरह टांगते हैं।

(१४) गंज पर—फल के गूदे को चरबी में मिलाकर सिर पर लगाते हैं। अथवा इसके बीजों को सरसों तैल में जलाकर तथा उसी में घोटकर सिर पर लगाते हैं।

(१५) अर्श पर—इसके फल जो स्वयं पक कर वृक्ष से गिरते हैं, उन्हें आवश्यकतानुसार लेकर, अन्दर के बीजों को छिलका रहित पानी के साथ पीस जंगली बेर जैसी गोलियां बना छायाशुष्क कर लेवें। प्रातःसायं १-१ गोली बासी जल के साथ सेवन करें। तथा १-२ गोली गुड़ के शर्बत में घिसकर मस्सों पर लेप करते रहें। मस्से मुरझा कर नष्ट हो जावेंगे। - नी गु. वि.

अर्श पर उत्तम प्रयोग यह है, कि इसके बीजों की गिरी के साथ समभाग एलुवा व हरड़ को मिला चूर्ण कर कुकरौंधे के रस के साथ घोटकर १-२ रत्ती की गोलियां बना प्रातःसायं १-२ गोली जल के साथ लेने से अर्श से रक्तस्राव बन्द होता तथा मलावरोध भी दूर होता है
—गां औ. र.।

(१६) कुष्ठ पर—इसके पके हुये पीले बीज दो सेर लेकर उनमें से १ सेर बीजों को १२ सेर पानी में भिगो दें। ७ दिन बाद मल छानकर पानी को सुरक्षित रखें। शेष १ सेर बीजों का महीन चूर्ण बना लें। प्रातः चूर्ण [उचित मात्रा में १ तो. तक]फांक कर ऊपर से १ प्याला उक्त पानी का पिलावें। ४० दिन के सेवन से आराम हो जाता है। पथ्य में केवल बेसन की रोटी और गोघृत देना चाहिये। —भा. जड़ी बूटी

(१७) प्रमेह पर—बीजों का गिरी [१ या २] को चावलों के पानी के साथ पीसकर उसमें घृत मिलाकर सेवन करने से पुराने प्रमेह भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।
—भा. भै. र.

लालामेह [एक प्रकार का कफज प्रमेह Albuminuria]हो, तो इसके बीजों का चूर्ण ४ भाग, अभ्रक और वंग भस्म १-१ भाग तथा रस सिंदूर या चन्द्रोदय २ भाग सबको एकत्र खूब खरल कर रखें। नित्य ४ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ चाटकर ऊपर से हल्दी चूर्ण ३ माशा शहद के साथ चाटें। दुस्साध्य लालामेह भी अवश्य नष्ट हो जाता है। इस योग को नित्यारोगेश्वरो रस कहते हैं। भा. भै. र.

यदि पित्तज प्रमेह हो, तो उक्त योग के साथ हल्दी-चूर्ण लेने की आवश्यकता नहीं है।

(१८) श्वेत प्रदर तथा सुजाक पर—इसके बीज तथा श्वेत चन्दन समभाग चूर्ण कर उसमें समभाग खांड़

Scanned with CamScanner

मिला लें मात्रा ६ माशा से १ तो. तक सेवन से स्त्रियों के श्वेत प्रदर पर उत्तम लाभ होता है। —यू. चि. सा.

सुजाक पर—फलों को छायाशुष्क कर गुठली सूक्ष्म पीस कर शीशी में भर रखें। प्रातःसायं ६-६ माशा यह चूर्ण गाय या बकरी के दूध के साथ सेवन करावें, ७ दिन में पूर्ण आराम हो जावेगा। तैल या तैल के बने हुये पदार्थ, गुड़ और खटाई से परहेज रखें। सुजाक वाले को लाल मिर्च और गरम मसाला प्रायः नहीं दिया जाता है, किंतु इस प्रयोग में यह विशेषता है कि जितनी अधिक लालमिर्च व गरम मसाला रोगी को खिलाया जायगा, उतना शीघ्र लाभ होगा। मांसाहारी मांस के साथ लालमिर्च अधिक परिमाण में खा सकता है —भा. ज बू.।

इस प्रयोग में कुछ अतिशयोक्ति मालूम देती है। चूर्ण की मात्रा ६ माशा की अधिक है। पाठक सोच समझ कर इसे काम में लावें।

(१६) पित्तज नेत्राभिष्यन्द, नारू तथा गठिया पर फलों को पीस कर छोटी बाटी सी बना नेत्रों पर बांधते हैं। गरमी से आई हुई आंख में लाभ होता है।

नारू के विषय में कहा जाता है कि इसका १ बीज नित्य खिलाने से ७ दिन के अन्दर नारू गल जाता है।

गठिया या आमवात में बीज चूर्ण का सेवन कराते तथा इसका लेप करते हैं।

(२०) जीर्ण ज्वर पर—गुठली रहित इसके ताजे फलों को कूट कर रस निकाल, उसमें समभाग गिलोय का रस. तथा दोनों का चतुर्थांश देशी अजवायन का चूर्ण मिलाकर खूब खरल करें। फिर जंगली बेर जैसी गोलियां बना लें। दिन में ३ बार १-१ गोली ताजे जल के साथ सेवन से पुराना ज्वर दूर हो जायगा -नी. चि. वि.।

गोंद और पंचांग—इसके वृक्ष के गोंद का प्रयोग प्लीहावृद्धि पर लेपार्थ किया जाता है।

नोट—इस वृक्ष में एक प्रकार का दूधिया रस निकलता है। विशेषतः फाल्गुन व चैत्र मास में नीचे से ऊपर की ओर यह रस वृक्ष की छाल, डाल तथा पत्तों शाखाओं में जाकर फैलता रहता है। इन दिनों में इसकी छाल, जड़ तथा डाल आदि के रस अथवा क्वाथ द्वारा बनाये हुए पदार्थों में मदकारी दोष आ जाता है। अतः फाल्गुन-चैत्र में इसके पत्ते के अतिरिक्त अन्य किसी भी अङ्ग का रस या क्वाथ व्यवहार में नहीं लाना चाहिए। —नी० बु०

पञ्चाङ्ग—प्लीहा और वृक्क आदि में रक्त की रुकावट होने पर पंचांग का प्रयोग किया जाता है।

नोट—मात्रा—छाल चूर्ण १-३ माशा। छाल क्वाथार्थ १ से २½ तो० तक। छाल का प्रवाहीसार (Fluid extract) ६० बूंद तक। अर्क या टिंचर ३० से १२० बूंद तक। पत्र चूर्ण २-३ माशा। फल की मज्जा २ से ८ रत्ती। पत्र स्वरस १-२ तो०। बीज का चूर्ण १ से ४ रत्ती तक। गिरी का तैल २ से ५ बूंद।

ध्यान रहे विषाक्त होने से इसके किसी भी अङ्ग का व्यवहार अधिक मात्रा में करना उचित नहीं है। फलों की अपेक्षा छाल और फूल कम विषैले हैं। ताजे पत्र प्रायः हानिरहित होते हैं। बीज अत्यधिक विषैले होते हैं। अधिक मात्रा में प्रायः ७ या ८ के खाने से शरीर में ऐंठन, मादकता, जड़ता, घबराहट, बेचैनी, बेहोशी, आंखों की पुतलियों का फैलना, गले में घरघराहट, अत्यन्त वमन, विरेचन आदि हैजे के पूर्ण लक्षण होकर मृत्यु हो जाती है।

यह यकृत तथा आमाशय के लिये हानिकारक है। हानि निवारणार्थ—सौंफ का सेवन करावें।

इसके प्रतिनिधि—मजीठ, तज और जावित्री हैं।

नीम मीठा[1] (Murraya Koenigii)

नीबू के कुल (Rutaceae) के इस सुगन्धित छोटे १२-१५ फुट तक ऊंचे वृक्ष का तना १६-१८ इंच व्यास

[1] नीम के वास्तव में नीम और महानीम (बकायन) ये दो ही मुख्य भेद हैं। मीठा नीम यह नीम का भेद नहीं है (यद्यपि कुछ निघण्टुकारों ने इस नीम का तीसरा भेद माना है)। यह नीबू के कुल का है।

Scanned with CamScanner

का; छाल कुछ भूरी, बैंगनी रंग की, पत्र—५ से १६ इंच तक लंबी सलाका पर, सुगन्धित पत्र १-३ इञ्च लंबे। १० से २५ पत्र जोड़ों में, देखने में नीम पत्र जैसे ही किन्तु कटे या कंगूरेदार किनारे वाले नहीं होते। पुष्प—चैत्र, वैसाख मास में, गुच्छों पर श्वेत रंग के गोलाकार लगभग ½ इञ्च व्यास के अनेक पुष्प होते हैं। फल—गोल ¼ इञ्च व्यास का, खुरदरा, जेठ से पौष तक पककर लाल या काला हो जाता है। फल में प्रायः दो बीज

काठनिम्ब (मीठानीम)

MURRAYA KOENIGII SPRENG.

होते हैं। बीजों से तथा इसके पत्तों से भी सुगन्धित तैल निकाला जाता है जो अन्य सुगन्धित तैल आदि निर्माण कार्यों में प्रयुक्त होता है।

वैसे तो इसके पौधे प्रायः सर्वत्र ही भारत के बड़े शहरों के बाग बगीचों में बोये हुए पाये जाते हैं तथापि दक्षिण भारत में कोंकण, पश्चिम घाट, बम्बई आदि प्रान्तों में, ट्रावनकोर, मद्रास, गुजरात, बंगाल, बिहार, हिमालय में कुमायूं से सिक्किम तक ५ हजार फीट की ऊंचाई तक विशेष परिमाण में होता है।

नाम—

सं०—मिष्ठ निम्ब, कैड़र्य, गिरि निम्ब इ०।

हिन्दी—मीठा नीम, बरसंग, काठ नीम, गन्धला, बोकला, गंड़ी इ०।

मराठी—गोड़ निम्ब, कढ़ी निम्ब।

गुजराती मीठो लीमड़ो।

बं०—बारसुङ्ग, करिया फूली।

अंग्रेजी—करीलीफ ट्री (Curryleaf tree)

लेटिन—मुरैया कोएनिगी; बरगेरा कोएनिगी (Bergara koenigil)।

रासायनिक संगठन—

इसमें एक सुगंधित उड़नशील तैल पाया जाता है, जिसमें चमकदार ग्लुकोसाईड कोईनिगिन (Koeinigin) नामक एक कार्यशील तत्व होता है।

प्रयोज्याङ्ग-छाल, मूल और पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, तिक्त, मधुर, कसेला, तीक्ष्ण (Acrid) उष्ण वीर्य (कोई शीत वीर्य मानते हैं), दीपन, पाचन, बल्य, मूत्रल, आमाशय पौष्टिक, कफ निःसारक, रक्त प्रसादक, तथा अग्निमांद्य, संग्रहणी, कृमि,
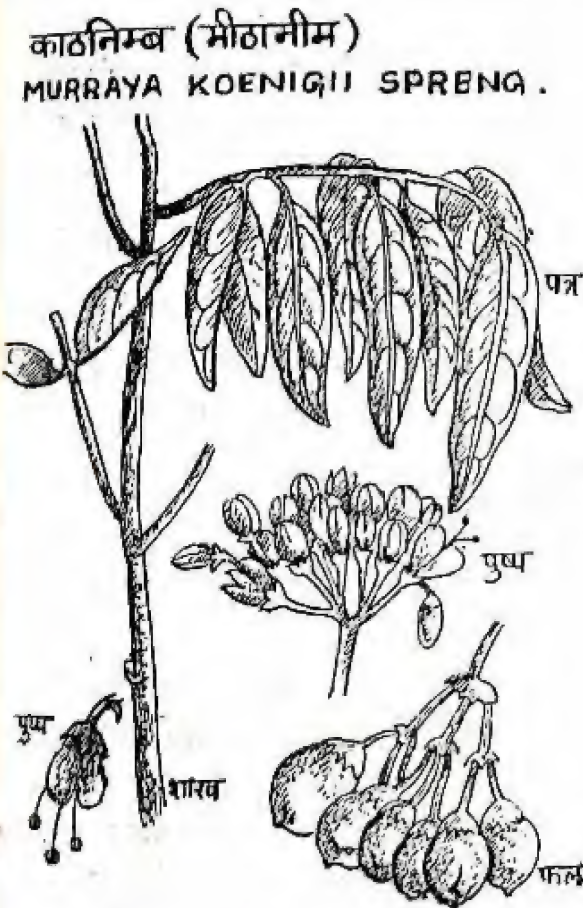
संस्कृत में जो इसे कैड़र्य नाम दिया गया है वह भी प्रयोगात्मक है। इसका अर्थ टीकाकारों ने पर्वत निम्ब, गिरिनिम्ब किया है, वह ठीक प्रतीत नहीं होता। कैड़र्य शब्द वास्तव में कायफल अथवा कटभी के लिये शास्त्रों में प्रयुक्त होता है। अस्तु जो कुछ हो यह मीठा नीम, नीम वृक्ष से सर्वथा भिन्न है। इस मीठे नीम का उपयोग भारत में प्राचीनकाल से हो रहा है तथापि चरक और सुश्रुत में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं हैं। शास्त्रकारों ने इसके और महानीम के पर्यायवाची शब्दों में इतना घालमेल कर दिया है कि ठीक निर्णय नहीं हो पाता कि इनमें से किस नीम का कहां प्रयोग किया गया है।

Scanned with CamScanner

अर्श, दाह, तृषा, शोथ, मुख दौर्गन्ध, व्याकुलता, भूतबाधा, विष विकार आदि में उपयोगी है । मूल–कुछ भेदक है ।

आमातिसार, रक्तातिसार, रक्तार्श, वमन आदि में इसके कच्चे हरे पत्तों को पानी के साथ पीस छान कर पिलाते हैं, वैसे ही चबाकर खाते हैं । पत्र तथा मूल की छाल का फाण्ट भी पिलाते हैं ।

(१) कृमि दंश, खुजली आदि पर–पत्तों को दूध में उबाल कर चटनी के समान पीस कर लेप करने से या पत्तों की पुल्टिस बना कर बांधने से विषैले कीटक के दंश का विष प्रकोप, वेदना, शोथ आदि दूर होती है । खुजली पर या छोटी छोटी फुंसियों पर भी पत्तों का लेप लाभप्रद है। विषैले जंतु के दंश पर इसकी जड़ को पानी के साथ घिस कर भी लेप करते हैं। फफोले या खुजली पर इसकी छाल को पानी में पीस कर लेप करते हैं ।

(२) मूत्र कृच्छ पर–इसका पत्र रस ४ तो.(या मूल का रस २ तो.) में छोटी इलायची बीज का चूर्ण १ मा. मिला कर पिलाने से मूत्रावरोध दूर होकर मूत्र साफ आता है । —गां. औ. र.

(३) पित्त ज उपद्रवों पर इसकी जड़ को शहद और पानी (सिकंजबीन) के साथ मिला कर पिलावें ।

(४) उदर शूल पर जड़ के क्वाथ में सोंठ का चूर्ण मिला सेवन कराते हैं ।

व्यवहारिक उपयोग—

इसके गीले और सूखे पत्तों को घृत या तैल में तल कर कढ़ी या साग आदि में छौंक लगाने से ये अति स्वादिष्ट सुगंधित हो जाते हैं ।

दाल में इसके पत्ते छोड़ देने से दाल स्वादिष्ट बन जाती है। चने के बेसन में मिला कर इसकी उत्तम रुचिकर पकौडी बनाई जाती हैं।

आम, इमली आदि की खटाई के साथ इसके पत्तों की चटनी बहुत स्वादिष्ट, सुगंधित होती है।

इसके पत्तों को नारियल तैल में डाल कर कुछ दिन धूप में रखने से तैल सुगंधित हो जाता है। —नी. र.

नील (Indigofera Tinctoria)

गुडूच्यादिवर्ग एवं शिम्बीकुल के अपराजिता उप-कुल (Papilionaceae) के इसके वर्षायु, चारों ओर शाखायुक्त क्षुप १-२ फुट ऊंचे, सरफोंका के पौधे जैसे, शाखायें–नलिकाकार गोल, श्वेत रोमयुक्त, न्यूनाधिक कोनवाली; काण्ड–श्वेतवर्ण रोमश; पत्र–मेंथी पत्र जैसे किन्तु कुछ बड़े सरफोंका के पत्र जैसे श्याम-हरितवर्ण के १-२ इञ्च लम्बे, संयुक्त-अभिमुख, अग्रभाग का एक पत्र अकेला, पत्र लम्ब गोल, चमकदार, निम्न-पृष्ठ श्वेत रोमश, पत्र-वृन्त ½-१ इंच लम्बा होता है। पत्तों को तोड़ कर शुष्क करने पर नील वर्ण के होजाते हैं। पुष्प–वर्षा ऋतु में पत्रकोण से निकली हुई २-४ इञ्च लम्बी शलाका पर नीलाभ-गुलाबी रंग के बहुत छोटे छोटे पुष्प आते हैं। फली शरद ऋतु में १-२ अंगुल लम्बी, ¼-½ इंच चौड़ी, अग्रभाग में कुछ टेढ़ी होती है। बीज–प्रत्येक फली में बेलनाकार, दोनों छोर कटे हुए से, भूरे, पीले, अतिकड़े चमकीले ८-१० बीज होते हैं ।

नील रंग के लिये इसकी खेती पहले भारतवर्ष के कई स्थानों में अत्यधिक परिमाण में होती थी । जब से कृत्रिम नीला रंग बनने लगा तब से इसकी खेती प्रायः बन्द हो गई है । अब भी इसके क्षुप विशेषतः उत्तर भारत, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, सिंध, अवध, बम्बई तथा दक्षिण भारत में पैदा होते हैं ।

नोट—१—जंगलों में भी यह नैसर्गिक पैदा होता है । इसका वर्णन आगे नील जंगली के प्रकरण में देखिये ।

२—चरक के विरेचन और सुश्रुत के अधोभागहर में यह लिया गया है ।

नाम–

सं.—नीलिनी, नीली, रंजनी (केशों को तथा व

का रस, मधु मिलाकर मुख के भीतर लगाते हैं। त्वचा के कई विकारों पर, रक्तस्राव पर तथा व्रण के शोधन रोपणार्थ पत्तों को कुचलकर पुल्टिस या प्लास्टर बना कर बांधते हैं। —डा. नाड़कर्णी।

पौधे की जड़ में विषहर गुण तथा पत्रों में निर्बलता नाशक गुण अवस्थित है। पारद या रस कपूर के सेवन से मुंह आजाने पर मुख विकार के निवारणार्थ इस पौधे की कोमल शाखा के क्वाथ से कुल्ले करने की प्रशंसा की जाती है। तथा प्रबल कास, फुफ्फुस विकार, धड़कन और जलोदर रोग में भी यह उपयोगी माना जाता है। इसका पत्र रस पागल कुत्ते के विष को दूर करने के लिये बहुत प्रशंसित है। इसके लिये इसका बाह्याभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है। इस पौधे से तैयार किया हुआ एक्स्ट्रैक्ट अपस्मार और मज्जातन्तुओं के रोग में दिया जाता है। फुफ्फुस शोथ विकार (ब्रांकाइटिस) में भी यह उपयोगी है। इससे तैयार किया हुआ लेप फोड़े, फुन्सी, पुराने व्रण और रक्तार्श में लाभदायक होता है —डा० एन्सली।

पत्र—कुष्ठ, किलास (श्वेत कुष्ठ) अर्श, व्रण, दद्रु एवं त्वचा के विविध विकारों पर पत्र लेप किया जाता है। यकृत पर पत्तों को पीस मधु मिला लेप करते हैं। मूत्रावरोध में पत्तों का कल्क नाभी के नीचे मूत्राशय पर बांधते हैं। केशवर्धन एवं रंजनार्थ पत्रों को पीस कर लेप करते हैं।

(१) श्वान विष—पागल कुत्ते के काटने पर इसके ता[illegible] पत्तों का रस ५ तो. प्रतिदिन समभाग गोदुग्ध मिला प्रा[illegible]:काल ३ दिन तक पिलावें। इससे रोगी को कभी कभी सिर दर्द होता है, और कुछ विकार नहीं होता। विष दूर हो जाता है। —नाड़कर्णी।

साथ ही साथ पत्र रस का लेप या पत्तों की पुल्टिस दंश स्थान पर बांधी जाती है। कोंकण की ओर पत्र कल्क में सेंधानमक, मधु एवं घृत मिला कर दंशस्थान पर बांधते हैं।

(२) बाल काले करने के लिये—इसके पत्र के साथ कसीस, भांगरे का रस, दही और लोहे का बुरादा समभाग एकत्र पीसकर लेप करने से श्वेत बाल काले हो जाते हैं (यदि लेप गाढ़ा हो तो उसमें भांगरे का रस अधिक मिला लें। बालो पर लेप कर ऊपर से अण्डी या केले का पत्र बांध देवें। और दूसरे दिन लेप धो कर तैल लगा लेवें)। —भा भै. र.

—आगे विशिष्ट योगों में नीली तैल देखिये।

मूल—इस पौधे की जड़ का क्वाथ अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र आदि में देते हैं। संखिया के विष पर मूल का फाण्ट बार बार पिलाया जाता है।

(३) ज्वर पर—मूल के क्वाथ में प्रक्षेप रूप से हल्दी का चूर्ण मिला सेवन कराने से आमज्वर, कफज्वर आदि दूर होते हैं।

(४) कक्षा (बाहु, पार्श्व, अंश और बगल के आस पास के स्थानों में पित्त प्रकोपज पीड़ायुक्त काले फुंसी), विद्रधि और विसर्प पर इसकी जड़ तथा भूमि कदम्ब की जड़ इन दोनों के कल्क से सिद्ध तैल लगाने से लाभ होता है। (प्रत्येक जड़ ५-५ तो. ति तैल १ सेर पानी ४ सेर मिला कर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें)। —भा. भै.

(५) जाल गर्दभ (यह एक प्रकार का विसर्प है इसमें विसर्प जैसा फैलने वाला, दाह एवं ज्वर युक्त प्रकोपज शोथ होता है Herpes simplex) पर—इसकी जड़ के साथ पटोल की जड़ को पानी के साथ महीन पीस कर घृत में मिला कर लेप करने से यह रोग अवश्य नष्ट हो जाता है। —वं.

(६) गुल्म पर—इसकी जड़, समुद्रफल, त्रिकटु (सोंठ मिर्च पिप्पली) जवासार, सज्जी खार, पांचों नमक और चित्रक मूल सब सम भाग चूर्ण कर लें (१ से ३ मा. की मात्रा में) घृत में मिला कर चाटने से गुल्म रोग नष्ट होता है। —भा. भै.

आगे विशिष्ट योगों में नीलियादि घृत देखें।

(७) दन्त कृमि पर—नीली की जड़ (इसके अभाव में काकजंघा अथवा कड़वी तूम्बी की जड़) के चूर्ण को दांत में भरने से उसके कृमि नष्ट हो जाते हैं। —भा.

नोट—इसकी जड़ का जो घन क्वाथ बनाया जा

Scanned with CamScanner

उसकी मात्रा नील रंग के समान अर्थात् १ से २ रत्ती की है। छोटी मात्रा में इससे उदर शुद्धि होती है, बड़ी मात्रा में देने से विरेचन होता है। यकृत एवं प्लीहावृद्धि और जलोदर में इसके प्रयोग से उदर में संग्रहीत जल मूत्र मार्ग से निकल कर लाभ पहुंचता है। जीर्ण मलावरोध में यह कम मात्रा में दिया जाता है।

नील (रंग)—इसका बाह्य लेप दाहशामक, व्रणरोपक, त्वग्दोषहर, केशवर्धक एवं केशरंजक होता है। इसके चूर्ण को दुष्ट व्रण, नाड़ी व्रणादि पर बुरकने से वे शीघ्र भर जाते हैं। इस रंग को शरीर के शोथ निवारणार्थ तथा सर्पादि विषैले जंतु के दंश पर एवं अग्निदग्ध स्थान की शांति के लिये लगाया जाता है। इसे रेंडी तैल में मिला कर बालकों के विबन्ध की दशा में उसकी नाभी पर लेप करते हैं। बालक के मूत्रावरोध पर इसे गरम पानी में मिला पेड़ू एवं मूत्राशय पर लेप करते हैं।

नोट—यह रंग सूती, सन, रेशम, कृत्रिम रेशम, ऊन एवं चमड़े आदि सब पर लगाया जाता है। वर्तमान के कृत्रिम नील रंग की अपेक्षा विशेष सुन्दर और टिकाऊ है। बालों के रंगने के खिजाबों में भी यह व्यवहृत होता है। ध्यान रहे यह मारक विष है, अतः इसका सेवन औषधि मात्रा से अधिक परिमाण में नहीं करना चाहिये।

[८] सर्प दंश पर – १ तो. नील को ५ तो. जल में घोल कर उसमें से १-१ तो. प्रति १० या १५ मिनट पर पिलावें। इससे लाभ न हो, तो और नील को ५ तो. पानी में घोल कर शीघ्र शीघ्र थोड़ा थोड़ा पिलावें। सोने न देवें। अवश्य लाभ होगा। यह प्रयोग कभी व्यर्थ नहीं हुआ। ६०% लाभ ही हुआ है।

—स्व. श्री भागीरथ स्वामी जी (आत्मसर्वस्व से)

[९] चोट जखम आदि पर शरीर पर चोट या अन्य आघात से अङ्ग भङ्ग हो गया हो तो नील को पानी में उबाल कर लेप किया जाता है। इसके लेप से जलन व दर्द में कमी होती है। तथा जखम शीघ्र भर जाता है और नूतन त्वचा पूर्ववत् आती है, शरीर पर कोई निशान नहीं रहता। —व. चं.।

[१०] विसर्प पर—विसर्प की वृद्धि रोकने के लिये उसके चारों ओर नील का लेप करते हैं।

[११] अर्श पर—नील को जल में पीसकर मस्से पर उसका लेप किया जाता है, तथा जड़ के घन-क्वाथ का उदर सेवन भी कराते हैं।

[१२] पशुओं के पीठ पर [बैल, घोड़े आदि के पीठ पर]—क्षत हो गया हो, तो नील का लेप करने या इसके सूखे चूर्ण को बुरकने से मक्खियां नहीं बैठतीं, तथा क्षत अच्छा हो जाता है —गां. औ. र.।

बीज—इस पौधे के बीज नेत्रों के लिये हितकारी तथा कृमिनाशक हैं।

[१३] नेत्रों में फूली या मोतिया बिन्दु उतर रहा हो, तो बीजों को छायाशुष्क एवं साफ कर, खरल में खूब घोट घोटकर सुरमा जैसा बनाकर शीशी में सुरक्षित रखते, तथा इसी को सलाई से लगाते रहते हैं। अथवा इसके बीज और तमाखू के शुष्क पत्तों का चूर्ण समभाग खूब खरल कर रेशमी वस्त्र में छानकर रखें। प्रातः तथा सायं १-१ सलाई लगाया करें, १-२ मास तक बिना शस्त्रक्रिया मोतिया मिट जाता है।—डा० नरेन्द्रसिंह नेगी।

[१४] जूं, लीख आदि पर—बीजों को मद्य में ७ दिन तक भिगोकर, अच्छी तरह छानकर, उस मद्य को लगाते हैं। सिर के जूं आदि कृमि नष्ट होते हैं।

[१५] अर्श, आमवात तथा व्रणों पर—बीजों को पानी में पीसकर लेप करते हैं।

पंचांग—

[१६] कच्ची धातुओं के विष पर—यदि किसी ने कच्चा [अशुद्ध] पारा खा लिया हो, जिससे देह में घाव पड़ गये हों तथा कुष्ठ की दशा हो गई हो, तो नील के पौधे को जड़ समेत उखाड़ कर टुकड़े टुकड़े कर पानी में उबालें। जब उसका क्वाथ हो जाय, तब उसमें से एक प्याला काढ़ा, रोगी को प्रातः भूखे पेट पिला देवें, और फिर प्रति २० मिनिट में १-१ प्याला पिलाते रहें। शाम तक उसको इसी प्रकार यह काढ़ा पिलाना चाहिये, और

Scanned with CamScanner

खाने को कुछ न देवें। इस प्रयोग से, शरीर का सब पारा पेशाब के रास्ते से निकल जाता है। यदि जांच करना हो, तो उसके मूत्र को चीनी या तांबे के पात्र में एकत्रित करें। थोड़ी देर में पारा उस पात्र के नीचे जमा हुआ दिखाई देगा। इस प्रयोग से एक ही दिन में पारे का सब असर नष्ट हो जाता है। यदि जरूरत हो तो दो तीन दिन तक भी इस प्रयोग को कर सकते हैं।

अनाड़ी वैद्यों के हाथ से कई लोग पारा, रस कपूर, हिंगुल आदि खाकर या चिलम के द्वारा पीकर अपने शरीर को बेकार कर लेते हैं, जिससे अनेक प्रकार के भयंकर चर्म रोग उनके शरीर में पैदा हो जाते हैं। ऐसे लोगों को इस प्रयोग से अवश्य लाभ उठाना चाहिये। —व. चं.

नोट—मात्रा—क्वाथ-५-१० तो.। पत्र चूर्ण-१ से २ माशा तक। मूल का घन क्वाथ १ से २ रत्ती। नील रंग आधी रत्ती।

अधिक मात्रा में यह आमाशय में जलन, दाह एवं पीड़ा पैदा करता है, तीव्र विरेचन लाता है। अल्प मात्रा में शौच मूत्र साफ लाता है।

यह फुफ्फुसों के लिये हानिकर है। हानि निवारणार्थ शहद और मुलहठी सत्त्व[रूब्बेसूस]का सेवन कराते हैं।

विशिष्ट प्रयोग-

[१] नीलिन्यादि घृत—नील की जड़, निशोत, रास्ना, खरैंटी, कुटकी, वायबिडंग, और छोटी कटेरी, [पाठान्तरानुसार निशोत-त्रिवृतां के स्थान पर त्रिफलां हरड़, बहेड़ा, आमला लिया जाता है] ४-४ तो. सबको जौ कुट कर ६ सेर ३२ तो. पानी में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर उसमें गोघृत [या भैंस का घृत] ६४ तो. तथा घृत के समभाग दही और गेहूं… (…) का दूध ४ तो. मिलाकर पुनः पकावें। घृत मात्र … पर छानकर रख लें। आधुनिक व्यवहारिक मात्रा … तो. तक रोगी को प्रातः पूर्व दिन के भोजन के … पर, यवागू या मण्ड में मिला कर पिलावें। … चन हो जाने पर रोगी को पथ्य भोजन करावें [या मां… रस के साथ भोजन करावें] यह घृत गुल्म, कुष्ठ, … रोग, व्यङ्ग, शोथ, पांडु, ज्वर, श्वेत कुष्ठ, प्लीहा और उन्माद को नष्ट करता है —च. चि. अ. …

नोट—महानील घृत के प्रयोग सुश्रुत, वंगसेन आदि ग्रंथों में देखें।

(२) नीली तैल (पलित रोग पर)—नील … भांगरा, अर्जुन की छाल, तगर (या मैनफल), … बुरादा, विजयसार की छाल, कटसरैया के फूल और त्रिफला सबका समभाग चूर्ण कर उसमें सबके बराबर कमल की जड़ के नीचे की कीचड़ मिला लोहे के … में भर मुख बन्द कर १५ दिन तक रखा रहने दें। पश्चात् निकाल (यह कल्क यदि १४ तोले तक हो तो) उसमें तिल तैल (२ सेर) तथा भांगरा और त्रिफला का क्वाथ (४-४ सेर) मिला पकावें। पाक सिद्धि के परीक्षार्थ उसमें बगुले का पंख डालकर देखें, यदि वह पंख भौंरे के समान नील वर्ण का (काला) हो जाय, तो तैल को ठीक तैयार हुआ समझें। फिर … लोह पात्र में भर कर मुख बन्द कर रखें। १ मास बाद छान कर काम में लावें। इसे बालों पर लगा कर मर्दन करने से श्वेत बाल काले हो जाते हैं।

—सु. रं. चि. अ. …

नील जङ्गली (Indigofera Pausifolia)

यह भी सर्वसाधारण नील जैसा ही अपराजिता उप-कुल (Papilionaceae) का पौधा किंतु उससे ऊंचा (३ से ६ फुट तक ऊंचा) होता है। फैली हुई अनेक शाखायें क्रमशः छोटी-छोटी, रक्तवर्ण की; पत्र सिकुड़े ½ से १ इञ्च तक लंबे, अण्डाकार, लंब गोल, अन्तर-अन्तर पर, पृष्ठ भाग न्यूनाधिक रोमश, निम्न भाग श्वेत सघन रोमश; पुष्प—छोटे-छोटे गुलाबी या … वर्ण के; फली—भूरी या रक्ताभवर्ण की; जड़-जमीन में गहरी गई हुई होती है।

इसके क्षुप काठियावाड़, कच्छ, राजपूताना … भारत में प्रायः सर्वत्र न्यूनाधिक प्रमाण में नदी नालों के किनारे पैदा होते हैं। यह सीलोन, बलुचिस्थान, …

Scanned with CamScanner

स्थान और अफ्रीका के उष्ण कटिबन्ध में भी विशेष पाया जाता है।

नोट—आयुर्वेद में इसका स्पष्ट उल्लेख एवं उपयोग नहीं मिलता। किन्तु ग्रामीण लोगों में घरेलू चिकित्सा में इसका उपयोग प्राचीन काल से हो रहा है।

नाम—

सं०—झिल्ल, मृदुपत्रक, नीली।

हि०—नील जंगली, झिल्ल।

मराठी—मुरकुट।

गुजराती—झिल।

अं०—फ्यू लीव्हड इंडिगो (Few leaved indigo)

लेटिन—इण्डिगोफेरा पासिफोलिया;

इं०—आब्लांगी फोलिया (I. Oblongifolia)।

गुण धर्म व प्रयोग—

दीपन, पाचन, कीटाणु नाशक तथा वमन, प्रवाहिका, संग्रहणी, कास, श्वास, वातरक्त, आमवात, यकृद्विकार, प्लीहा वृद्धि, आगन्तुक व्रण आदि में उपयोगी है।

पत्र-व्रणरोपक। बीज—पौष्टिक, रसायन तथा मूल—शीतल, क्षुधावर्धक, वातरक्त, सन्धिवात नाशक है।

साधारण नील जैसे ही प्रायः किन्तु उससे कम प्रभावशाली इसके गुणधर्म हैं तथापि यह उसकी अपेक्षा अति उग्र भी है।

पत्र—(१) कास श्वास पर—इसके छायाशुष्क पत्तों का चूर्ण दिन में ३ बार गुड़ के साथ १½ माशा की मात्रा में सेवन करने से कफ प्रकोपजन्य कास, श्वास में लाभ होता है।

(२) संग्रहणी पर—इसके पत्र स्वरस में जीरा चूर्ण तथा शहद या शक्कर मिलाकर दिन में ३ बार देते रहने से पित्त प्रकोपज ग्रहणी और जीर्णातिसार में लाभ होता है।

(३) मुखपाक पर—पत्र को मुख में रख कर चबाने से मुख के भीतर होने वाला क्षत भर जाता है। पारदजनित मुखपाक में यह विशेष उपयोगी है। अधिक कष्ट हो तो पत्र क्वाथ से कुल्ले और इसकी कोमल शाखा का दतौन रूप से उपयोग भी कराते हैं।

(४) दांत हिलते हों तो इसकी दतौन करते रहने से मसूढ़ दृढ़ होते तथा दांत उज्ज्वल एवं दृढ़ हो जाते हैं।

(५) आगन्तुक घाव या व्रण—चाकू, छुरी आदि का घाव लग जाने पर ग्रामीण लोग इसके पत्तों को चबाकर घाव पर लगाते हैं।

(६) पशुओं का अफारा (आध्मान)—इसके पत्तों का [या इसके पत्तों के साथ खेखसा (ककोड़ा, बन करेला) के पत्ते मिलाकर] क्वाथ कर नमक मिलाकर गाय भैंसों को पिलाते हैं।

(७) मूत्रावरोध पर—पत्तों को पानी में उबालकर नाभी के नीचे बांध देने से पेशाब साफ हो जाता है। मूत्राशय में अश्मरी या रेती हो तो खाने की (यथोचित) दवा भी देनी चाहिए। —गां० औ० र०

फली—(८) उदर पीड़ा—इसकी कच्ची फली १-२ तो० नमक के साथ खिलाने से अजीर्णजन्य उदर पीड़ा शमन हो जाती है। आवश्यकता पर दो घण्टे बाद पुनः दूसरी बार देवें।

मूल—(९) विषैले जन्तु-दंश से उत्पन्न शोथ पर—इसकी जड़ के साथ सोंठ और बारासिंगा को पानी के साथ घिसकर लेप करने से विष प्रकोपज शोथ दूर हो जाता है। —गां० औ० र०

(१०) आमवात तथा हड्डी के पड़दे की सूजन (Periostitis) में इसके आभ्यन्तर सेवन से और पीड़ा स्थान पर जड़ को उबाल कर लगाने से फायदा होता है।

(११) शरीर का दुखना, ग्रन्थि शोथ और वातजन्य पीड़ा पर इसकी जड़ २॥ तो० को २५ तो० पानी में अर्धावशिष्ट क्वाथ कर २½ तोला से ५ तोला तक की मात्रा में पिलावें तथा इसके पंचांग के क्वाथ से सेंक करना चाहिए। यकृत और प्लीहा की वृद्धि पर भी इस प्रयोग से फायदा होता है। —डा० देसाई (व. चं.)

पंचांग—

(१२) वमन—पित्त प्रकोपज वमन होने पर इसके

Scanned with CamScanner

पंचांग को जला काली राख कर शहद के साथ देने से लाभ होता है। अजीर्ण में भी यह राख हितावह है।

(१३) ऊंट की खाज—ऊंट को सूखी खुजली या पामा होने पर इसके पंचाङ्ग की काली राख, सरसों तेल में मिलाकर दिन में २ या ३ बार लेप करते हैं।

—गां. औ र.।

नोट—इसका ही एक भेद indigofera Gordlfolla, सं—लघुनील; हि—भटलील; म—गोराड़ी, गोड़ी, बोड़ग; गु.—भाखो, दालियो, नाम का है। इसका क्षुप आधा फुट से लगभग ३ फुट तक लम्बा, पत्र छोटे, नील पत्र जैसे; पुष्प-सूक्ष्म, लाल रङ्ग के; कली-बारीक, गोल। इसका समस्त क्षुप श्वेत रोमों से व्याप्त रहता है। मूल—३ से ८ इन्च लम्बी, सुतली जैसी जाडी, फीके भूरे रङ्ग की होती है। पत्तों की साधारण लम्बाई ½ से ¾ इन्च व चौड़ाई ¼ से ½ इन्च होती है। दोनों ओर रोमश उपपत्र-महीन छोटे। पत्र कोण से ही ४ से ८ पुष्प गुच्छे से निकलते हैं। फली-लम्ब गोल ½ इन्च लम्बी सूक्ष्म नोकदार, रोमश, १ से ४ तक बारीक, भूरे रङ्ग की होती हैं।

गुणधर्म—रेचक, पौष्टिक, ग्राही। आधाशीशी पर मूल को पीसकर लगाते हैं। बीज-पौष्टिक पाकों में डालते हैं। पूययुक्त व्रणों तथा गूमड़ों पर पत्तों को पीसकर लगाते हैं। अर्श पर—पत्तों का कल्क बांधते हैं।

इसके क्षुप समुद्र किनारे की रेतीली भूमि में नम कीचड़ युक्त मैली जमीन में विशेष पैदा होते हैं।

—वनस्पति वर्णन (गुजराती)

नीलकंठ—देखिये त्रायमाण।

नीलकंठी (Heliotropium Eichwaldi)

गोजिह्वा या श्लेष्मांतक (लसोड़ा) कुल (Boragi-nacae) के इस सीधे खड़े क्षुप के काण्ड रोमाच्छादित सूर्य प्रकाश में तेजस्वी चमकीले, शाखायें मूल के ऊपर से निकली हुई, कोमल-रोमश; पत्र—१-२ इन्च चौड़े, अण्डाकार खुरदरे, अग्रभाग कुंठित एवं कुछ अधिक चौड़ा, दोनों ओर रोमश, चमकीले। नीचे के पत्तों का वृन्त १ इंच या कुछ अधिक लम्बा, ऊपर के पत्र वृन्त अपेक्षाकृत छोटे; पुष्प—नीले सामान्यतः दो पंक्तियों में २ इन्च तक लम्बे, वृन्त रहित; फल—पुष्प के वहिर्कोष में लगे हुए, प्रायः अण्डाकार, सुन्दर रोमयुक्त तथा शुष्क चारकोषयुक्त होते हैं। मूल-नीले वर्ण की होती है।

यह पंजाब, मेवाड़ (राजपूताना) सिन्ध, काश्मीर, बलूचिस्थान आदि के मैदानी स्थानों में तथा पर्शिया, पश्चिम एवं मध्य एशिया, आस्ट्रेलिया आदि देशों में भी पाया जाता है।

नोट—(१) इसके क्षुप प्रायः नीचे ऊपर तक श्वेत-रोमाच्छादित होने से सूर्य प्रकाश में खूब चमकीले एवं तेजस्वी दिखाई देते हैं। अतः लेटिन में हेलियोट्रापियम् (Heliotropium) कहाते हैं।

(२) एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के सनवल्ली (सोनवल्ली) बूटी को भी पंजाब की ओर नीलकण्ठी कहते हैं। इस वनौषधि के २ फुट ऊंचे गुल्म तालाबों किनारे तथा पड़त भूमि में पैदा होते हैं। पत्र—२ से ४ इन्च लम्बे डिम्बाकृति, गोलाकार तीन विभागयुक्त, फीके हरे वर्ण के दोनों ओर रोमश होते हैं। पत्र वृन्त १-२ इन्च पुष्प—श्वेत वर्ण का कुछ कंटक युक्त. पुं पुष्प का बाह्य व्यास ⅙ इन्ची लम्बा, दल छोटे छोटे, पुंकेसर १५, स्त्री पुष्प का वृन्त ½ इन्च लम्बा, त्रिकोणाकार दल तथा नुकीले; फल गोल ⅓ इन्च व्यास के घन लोमश होते हैं। शीतकाल में पुष्प और फल आते हैं।

नाम—

हि.—सनवल्ली, शहदेवी; म.—खुडिओकरा; पं.—नीलकण्ठी। सं.—क्षुदिउकरा। ले.—क्रोझोफोरा प्लीकेटा (Chrozophora Plicata)।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह धातु परिवर्तक विशेषतः रक्तशोधक तथा कुष्ठघ्न है। इसके प्रयोग से रक्त में संचित पित्त तथा कफ के

Scanned with CamScanner

नील कण्ठी
HELIOTROPIUM EICHWALDI.

मूत्र एवं मल के साथ निकल जाते हैं। विसर्प, कण्डू, उष्ण-वात, पूय-विस्फोट आदि में यह प्रयुक्त होती है।

कुष्ठ रोग में—इसके शुष्क पत्रों के क्वाथ में कुछ सरसों का तैल मिलाकर सेवन कराते हैं। जड़ का छाल बच्चों की शीतबाधा या शर्दी में देते हैं। इसके बीज विरेचक हैं।

नोट—इसी बूटी की एक जाति को हिन्दी में सोन-वल्ली, सुबाली, निलान, टप्पलबूटी, म.—मुरावर्त; गु.—काली ओखराड़; अं.--टर्नसोल (Turnsole) और ले.--क्रोझोफोरा टिंक्टोरिया (Chr. zophora Tinctoria) या क्रोझोरोठलेरी (Ch. Rottleri) कहते हैं।

यह बूटी कुकरोंधा जैसी होती है तथा कहां कहीं इसे कुकरोंदा कहते हैं। पत्र मांसल, मुलायम ३.२ से ६.३ सेंटीमीटर लम्बे; बीज ४ मि. मि. लम्बे, नमकीले, रूप-हले होते हैं। यह बूटी दक्षिण, उत्तर और मध्य भारत में विशेष पाई जाती है।

इसमें टर्नसोल (Turnsole) या लिटमस (Litmus) नामक एक प्रकार का रङ्गदार द्रव्य पाया जाता है। यह वामक, तीव्र विरेचक एवं विषाक्त बूटी है।

(३) उक्त नोट नं. २ की बूटी के अतिरिक्त एक तुलसी कुल (L biatae) की वनौषधि होती है, जिसके बहुवर्षायु, अनेक शाखायुक्त क्षुप होते हैं। पुष्प-हलके नीले रङ्ग के वृन्त रहित, ⅓ इंच लम्बे होते हैं। इसे पंजाबी में कुरबंठी और कहीं-कहीं नीलकंठी भी कहते हैं। लेटिन में अजुगा ब्रेक्टीओसा (Ajuga Bracteosa) कहते हैं।

यह बूटी कडुवी, ग्राही, मूत्रल, कृमिघ्न, ज्वरहर तथा भेदनीय है। यह सिंकोना की प्रतिनिधि औषधि है।

(४) इसके अतिरिक्त एक नीलकंठी और होती है, उसका वर्णन लीलकंठी प्रकरण में देखिये।

प्रस्तुत प्रसंग की बूटी के—

नाम—

हि.—नीलकंठी, बिठुआ, अटबिन, अतनून, चिरगास। गु.—पोपट। ले.—हेलिओट्रोपियम एस्वाल्ड, हेलियूरोपीयम (H. Europaeum) तथा पंजाब और कच्छ की ओर होने वाली इसी जाति की बूटी जिसे पोपट कहते हैं, उसे लेटिन में हेलियोट्रोपियम अन्डुलेटम (H. Undulatum) कहते हैं।

इस बूटी में एक प्रकार का मादक, विषैला क्षार-तत्व (Toxic alkaloid) पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

ऊष्ण, रूक्ष, वामक, रक्तप्रसादन, जीर्ण ज्वर, ग्रन्थि ज्वर (प्लेग), संधिशोथ, रक्तविकार, सुजाक, श्वेतकुष्ठ, विसर्प आदि चर्म रोगों में यह प्रयुक्त होता है।

इसका क्वाथ रक्तस्थ विष एवं कीटाणुनाशक है। दूषित कफ और पित्त को मलमूत्र के मार्ग से निकाल देता है मात्रा ४-६ मा तक।

प्लेग में—यह क्वाथ दिन में ३ बार पिलाया जाता है, तथा गांठ पर इसकी पुल्टिस बांधते हैं।

सर्पदंश पर – इसका क्वाथ पिलाते और दंश स्थान

Scanned with CamScanner

पर इसे तमाखू के तैल में मिलाकर लगाते हैं। यह बिच्छू के दंश पर भी उपयोगी है।

मात्रा-अधिक से अधिक ६ मा. तक।

फुफ्फुसों के लिए यह हानिकर है। ... मधु और कामशी है। प्रतिनिधि ब्रह्मदण्डी है।

नीलगिरी-देखिये यूकलिप्टस। नीलचम्पक-देखिये हरा चम्पा।

नील वृन्त (Diospyros Candollena)

तिन्दुक कुल (Ebenaceae) के इसके बड़े वृक्ष (तेन्दू जाति के) जंगलों में, विशेषतः पश्चिमी प्रायद्वीप में पैदा होते हैं। मद्रास की ओर इसे करिमारम कहते हैं।

इसकी छाल औषधि कार्य में ली जाती है। ... का क्वाथ गंधियात, गठिया और शोथ में ...

नीली निर्गुंडी–देखिये निर्गुंडी काली या नीली। नीलोफर–देखिये कुमुद। नीवार--देखिये चावल ...

नुकाचीनी (Stemodia Viscosa)

तिक्ता (कुटकी) कुल (Scrophulariacea) की इस वनौषधि के पौधे विशेषतः दक्षिण भारत के धान के खेतों के आस-पास अधिक पाये जाते हैं। ये पौधे ऊंचे तथा सुगंधित, बहुशाखायुक्त होते हैं। पत्र कुछ लम्बे एवं बिखरे हुए रहते हैं।

इसे बंगाल तथा बम्बई की ओर नुकाचीनी ... लेटिन में स्टेमोडिया विस्कोसा कहते हैं।

यह मृदुकर, शांतिदायक है। इसका शुष्क पौधा ... सुगंधित और लुआबदार होता है। इसका [फाण्ट या ... निर्यास एक शांतिदायक औषधि के रूप में व्यवहृत होता है।

नेजा—देखो-चिलगोजा।

नेत्रवाला (सुगन्धवाला) (Pauonia Odorata)

कर्पूरादि वर्ग एवं कार्पास कुल [Malvaceae] के इस सीधे, सूक्ष्म-तीक्ष्ण रोमाच्छादित, किंचित् कस्तूरीवत सुगन्धयुक्त क्षुप के पत्र १॥–३ इंच लम्बे, चौड़े, गोलाकार, हृदयाकृति, कंघी या कपास के पत्र जैसे ३ से ५ भागों में विभक्त, प्रत्येक भाग त्रिकोणाकार, कंगूरेदार, अग्रभाग में नुकीला होता है, तथा पत्र लुआबदार होता है। पत्रवृन्त लम्बा होता है।

पुष्प—शाखाओं के अन्त में गुच्छों में, या पत्रकोण से निकली हुई शलाका पर ६ दल युक्त, हलके गुलाबी रंग के; फल-छोटे छोटे चना जैसे, द्विदल युक्त; बीज—फल के प्रत्येक दल में १-१ बीज, धूसर या भूरे रंग का गंध हीन, तैल युक्त होता है। क्षुप में अक्टूबर से जनवरी तक फूल-फल आते हैं।

मूल—इसकी जड़ अधिक से अधिक ½ इंच व्यास की भूरे रंग की, चिकनी, ऐंठी हुई सी ६-८ इंच लम्बी, अनेक उपमूलों से युक्त, कस्तूरी जैसी गंध वाली होती है। ... फीके धूसर वर्ण की; भीतर का काष्ठ भाग रक्ताभ ... वर्ण का होता है। इसके प्रायः प्रत्येक उपमूल में तुर्श काला, अति सुगन्धित कन्द लगा हुआ होता है।

ये क्षुप भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश, उत्तर ... [विशेषतः बान्दा जिला] सिन्ध, बर्मा, सीलोन ... पश्चिम प्रायद्वीप में अधिक पैदा होते हैं।

नोट—कहीं कहीं विशेषतः पंजाब की ओर तगर ... पिण्डीतगर को ही सुगन्ध वाला [नेत्रवाला] कहते हैं। वास्तव में यह तगर से भिन्न है। तगर या पिण्डीतगर का वर्णन पीछे भाग ३ में देखें।

कई लोग भ्रमवश खस [उशीर] को ही नेत्रवाला ...

मानते हैं। किंतु यह खस नहीं है। खस का वर्णन इसी ग्रन्थ के भाग २ में देखिये।

नाम—

सं०—वाल, ह्रीवेर, बर्हिष्ठ, उदीच्य, केशनाम, अम्बुनाम [केश और जल वाचक सब शब्द], बालक इ.। हि.—नेत्रवाला, सुगन्धवाला। म.—काला वाला। गु.—वालों, कालो वालो। बं.—बाला। ले.—पेवोनिया ओडोरेटा।

रासायनिक संगठन—

इसमें एक लुआबदार, तथा उत्तेजक सुगन्धिद्रव्य पाया जाता है।

प्रयोज्यांग—मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, सुगंधित, मधुर, तिक्त, कटु, शीतवीर्य, दीपन, पाचन, स्तम्भक, कफपित्तशामक, तथा हृल्लास [उबकाई], अरुचि, हृद्रोग, आम, अतिसार, पित्तज्वर, रक्तपित्त, उदरशूल, दाह, भ्रम, तृषा, वमन, व्रणशोथ, विसर्प आदि में प्रयुक्त होता है।

नेत्रवाला (सुगन्धवाला)
PAVONIA ODORATA WILLD

[१] दाह, तृषा, वमनी युक्त ज्वर में—जो षडङ्ग पानीय बनाया जाता है, उसमें यह डाला जाता है [नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, लाल चन्दन, नेत्रवाला और सोंठ २-२ तो. कोई सब मिलाकर दो तो. लेकर ४ सेर जल में अर्धावशिष्ट पकाकर छानकर, ठंडा होने पर रोगी को थोड़ा थोड़ा पिलाते हैं]

[२] आमातिसार और संग्रहणी पर—इसे बेलगिरी के साथ देने से आमातिसार में विशेष लाभ होता है। अथवा—

इसके साथ समभाग धनियां लेकर जल के साथ पीस छानकर पिलाने से अतिसार, तृष्णा, दाह, शूल, और हिक्का का नाश होकर आम का पाचन होता है

—हा. सं.।

अतिसार में इसका अद्रक के साथ फाण्ट बनाकर पिलाते हैं। संग्रहणी में इसे दो तो. की मात्रा में ६० तो. जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर प्रतिदिन पिलावें, तथा पथ्य में अरहर की दाल की खिचड़ी अथवा चावल खिलावें। इससे अतिसार में भी लाभ होता है।-यूनानी

बालकों के रक्तातिसार या साधारण अतिसार, तृषा दाह, वमन, और ज्वर में इसके चूर्ण की मात्रा १ रत्ती से १ माशा तक लेकर उसमें समभाग खांड या शक्कर मिला शहद के साथ चटावें तथा ऊपर से चावल का धोवन पिलावें। —वं. से.

[३] वमन, उबकाई आदि पर—इसके साथ थोड़ा गेरू मिला चावलों के पानी में पीस छानकर पिलावें

—यो. र.।

[४] रक्त पित्त में—इसके चूर्ण को, चन्दन चूर्ण और मिश्री के साथ मिलाकर चावल के धोवन साथ पिलाते हैं।

[५] श्वेत कुष्ठ तथा विसर्प में—इसे अन्तर्धूम दग्ध करने से जो कालीराख होती है, उसे बहेड़ा के तैल में

Scanned with CamScanner

मिलाकर लेप करना श्वेत कुष्ठ में लाभकारी माना जाता है।

विसर्प में—इसके चूर्ण को घृत के साथ लेप करते हैं —यूनानी।

[६] दाहयुक्त ज्वर में स्नानार्थ—इसके साथ आमला, श्वेत या रक्तचन्दन तथा पद्मकाष्ठ को चूर्णकर पानी में मिला स्नान करावें —चक्रदत्त।

[७] शिश्न शैथिल्य—इसे बकरी के ताजे दूध में घिसकर शिश्न इन्द्रिय पर लेप या मालिश करने से शिथिलता दूर होती है।

[८] वमन के प्रतिकारार्थ—वमन के प्रारम्भ में ही इसे नींबू के रस में पीसकर चटाने से वमन का वेग शीघ्र नहीं होने पाता।

—वै. प

[९] सिर पीड़ा पर—पित्तजन्य सिर के दर्द में इसका लेप करने से तथा इसे जल में भिगोकर उस जल को पिलाने से लाभ होता है।

—वै. प

[१०] मूत्र दाह—दाह या जलनयुक्त पेशाब होता हो, तो इसके क्वाथ में खांड़ या मिश्री मिलाकर पिलावें।

नोट—मात्रा—३ से ६ माशा तक।

नेनुआ—देखो घीया तोरई।

नेपारी (Delphinium Brunonianum)

वत्सनाभ (वच्छनाग) कुल (Ranunculaceae) की इस वनौषधि के क्षुप सीधे खड़े हुए; काण्ड—चिकना व किंचित नीचे की ओर झुका हुआ, अग्र भाग में गांठदार; पत्र—अग्र भाग में नोकदार, कस्तूरी जैसे तीव्र गन्धयुक्त; पत्र वृन्त—बहुत लम्बा होता है। पहाड़ी प्रदेश के लोग इन पत्तों को देव मूर्ति पर चढ़ाते हैं। पुष्प—बड़े-बड़े, हलके नील वर्ण के एवं रोमश होते हैं।

यह बूटी पंजाब, हिमालय प्रदेश, पश्चिमी तिब्बत तथा अल्पाईन के पार्श्ववर्ती प्रदेशों में विशेष पाई जाती है।

नाम—

पहाड़ी भाषा में गढ़वाल, कुमाऊं की ओर इसे नेपारी, कस्तूरी, मुंडेवाल, लश्कर, सांपकली आदि कहते हैं। लेटिन में डेल्फीनियम ब्रुनोनियानम।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह विषाक्त है। इसके पत्तों से टपकती हुई ओस की बूंदें जिस घास पर पड़ती हैं उसे खाने से घोड़े, बकरी आदि पशुओं पर बड़ा जहरीला असर होता है।

इसका पत्र रस पशुओं के विशेषतः भेड़ों के कृमि, जूं आदि नष्ट करने के लिये लगाया जाता है।

नोट—इस बूटी की एक जाति उसी पहाड़ी प्रान्त में विशेषतः कुमाऊं से सिक्किम तक पैदा होती है जिसे पंजाबी में डाक बांगू और लेटिन में डेल्फीनियम सीरुलीयम (Delphiuium caeru eum) कहते हैं।

इसकी जड़ के कल्क का लेप बकरों के व्रणों में कृमिनाशार्थ किया जाता है।

नेपाल टुन्थ (Guaz ma Tomentosa)

मुचकन्द कुल (Sterculiaceae) के इसके कुछ बड़े वृक्ष होते हैं। पत्र—लम्ब गोल, ताम्बूल पत्रवत्, नोकदार किन्तु कंगूरेदार होते हैं। पुष्प—छोटे, पीत-वर्ण के ५ दल युक्त होते हैं। फल—छोटे-छोटे मधुर होते हैं।

इसके वृक्ष भारत के ग्रीष्म प्रधान प्रान्तों की चौड़ी सड़कों पर और सीलोन में लगाये जाते हैं।

नाम—

बंगला में—नेपाल टुन्थ; दक्षिण में बांड़ीकमरी, रुद्राक्षी आदि; अं०—हनीफुटट्री (Honey fruit tree) तथा ले०—गुआझुमा टोमेंटोसा कहते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग–

इसकी छाल शान्तिदायक और पौष्टिक है। दारुहल्दी या रसौत (Calamba) तथा कुटकी (Gentian) के स्थान पर प्रस्वेद एवं शांतिजनक औषधि के रूप में इसकी पुरानी छाल का फाण्ट विशेष लाभप्रद एवं प्रशस्त माना गया है। इसके पत्तों का क्वाथ प्रस्वेदजनक तथा चर्म रोग नाशक माना जाता है। इसकी अन्तरछाल . श्लीपद रोग में व्यवहृत होती है।

नेपाली धनिया—दे० तुम्बरू। नेमुक—दे०–पाठा।

नेर (Skimmia Laureola)

जम्बीर कुल (Rutaceae) के इस सदैव हरे भरे, सर्वाङ्ग तीक्ष्ण कस्तूरी जैसे सुगन्धित, छोटे-छोटे, समूहबद्ध, छायादार स्थानों में होने वाले क्षुप की छाल श्वेत, अति चिकनी, मुलायम, पत्र-शाखाओं के अग्र भाग पर अखण्ड सरल किनारों वाले, आयताकार या भालाकार, चमड़े जैसे, कुछ मांसल ४-६ इञ्च लम्बे, ६-१५ इञ्च चौड़े होते हैं।

इसके पत्र ही प्रायः औषधिकार्यार्थ लिये जाते हैं। ये क्षुप हिमाचल में काश्मीर से सिक्किम तक ६ से १० हजार फीट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं।

नोट नं० १—इसके पत्र ही विशेष उपयोगी हैं। इन्हें 'काश्मीरी पत्ता' कहा जाता है। ये तेजपात जैसे किन्तु उससे बड़े और मोटे होते हैं। काश्मीर में इनका उपयोग बेलपत्र जैसे किया जाता है। —यूनानी द्र० गु०

नोट नं० २–इसकी ही एक जाति विशेष जापान देश में होती है। इसे स्किमिया जापोनिका [Skimmia Japonica] कहते हैं। इसके सर्वाङ्ग में तथा विशेषतः पत्तों में एक चमकीला विषाक्त क्षार तत्व स्किमियानिन (Skimmianine) नामक पाया जाता है। जिसकी प्रत्यक्ष क्रिया हृदय की मांसपेशियों पर होती है, हृदय की धड़कन कम होती तथा उसमें विकृति पैदा होती है। सम्भव है यही विषैला क्षार तत्व भारतीय प्रस्तुत प्रसंग की बूटी में भी हो। अतः इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिए। —नाड्कर्णी

नाम–

हि०–[पञ्जाबी तथा गढ़वाली आदि पहाड़ी भाषाओं में] नेर, नइर, नेरा, बेरू, काश्मीरी पत्ता या पट्ठा, कपूर चारा, शालंगली, गुलपिटा इ०।

लेटिन–स्कीमिया लारीओला; लिमोनिया लारीओला [Linenia Laureola].

गुणधर्म व प्रयोग–

उष्ण, रूक्ष, दीपन, पाचन, वातनाशक, छिक्काजनन है।

इसके पत्तों से वाष्पीकरण द्वारा एक उड़नशील तैल प्राप्त किया जाता है जिसे गठिया आदि वात पीड़ा पर लगाते हैं। पत्तों का धूम्र हवा को शुद्ध करने वाला माना जाता है। —व० चं०

पत्तों को अकेले ही या अन्य द्रव्यों के साथ महीन पीसकर नस्य लेने से, सूंघने से अवरुद्ध प्रतिश्याय [जुकाम] की दशा में विशेष लाभ होता है। —यू० द्र० गु०

पत्तों का उपयोग चेचक में भी किया जाता है। [चोप्रा]

इसकी प्रतिनिधि नकछिकनी है। —यू० द्र० गु०

नेवारी [वासन्ती]—दे० बेला में। नोना—दे० कुल्फा। नोनिया—दे० कुल्फा।

Scanned with CamScanner
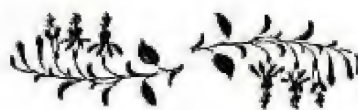
पंगरा–देखिये फरहद में नोट नं. २ । पंजा सालब–देखिये सालम मिश्री । पंजुली-देखिये भुईआंवला में । पंजेरी–देखिये जंगली अंगूर ।

पँवाड़ (Cassia Tora)

हरीतक्यादि वर्ग एवं शिम्बीकुल के पूतिकरंज–उप-कुल (Caesalpiniaceae) के इस वर्षायु, मसलने से दुर्गन्धयुक्त २-५ फुट ऊंचे क्षुप के पत्र-संयुक्त, पत्र दण्ड दो ग्रंथियुक्त, पत्रक ३ संयुक्त या जोड़े में कुंठिताग्र, चिकने चमकीले प्रायः मेथी के पत्र जैसे १-१॥ इन्च लम्बे, रात्रि में परस्पर मिल जाने वाले; पुष्प–पत्र कोण से वर्षाऋतु में २-२ के जोड़ों में पीतवर्ण के प्रायः वृन्तरहित; फली–शीत काल में, पतली ६ इन्च लम्बी, चतुष्कोण, कुछ मुड़ी हुई, अग्रभाग में नुकीली; बीज–प्रत्येक फली में २०-३० बीज, मेथी के बीज जैसे बेलनाकार कड़े होते हैं।

इसके क्षुप जंगल, झाड़ी, खेत, मैदान, कूड़ाकरकट आदि पड़ित स्थानों में, समस्त भारत के विशेपतः सम-शीतोष्ण कटिबन्ध या उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र बर्षाकाल में पाये जाते हैं।

नोट (नं. १) वर्षारम्भ में ही जैसे ही इसके क्षुप कुछ बढ़ते हैं, तैसे ही इसकी कोमल पत्तियों को तोडकर साग बनाकर खाते हैं।

सुश्रुत ने मण्डूकपर्णी, सप्तला, चौपतिया आदि के सागों के साथ प्रपुन्नाट (पंवाड़) की शाक को भी सामा-न्यतया रक्तपित्त नाशक, हृद्य, बहुत हलाका एवं कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, श्वास, कास तथा अरोचक नाशक कहा है। (सु. सू. अ. ४६) तथा इसी स्थान में और कहा है कि वरुण और पंवाड़ का शाक कफ नाशक, रूक्ष, हलका, शीतल एवं वातपित्त प्रकोपक होता है।

इसकी फली या बीजों की गणना सुश्रुत ने ऊर्ध्वभाग-हर गणों में की है। —सु. सू. अ. ३९।

नं० २–इसी पंवाड का एक भेद चकून्दा (Cassia Obtusifolia) नामक होता है। इसके क्षुप ७ फुट तक ऊंचे पत्र–संयुक्त, पक्षाकार प्रायः ३-४ इन्च लम्बे, पत्रक तीन जोड़े, १-२ इंच लम्बे, लट्वाकार आयताकार होते हैं। इसमें दुर्गन्ध नहीं होती, यही इसकी एक विशेषता है। इसके आधारीय पत्रक द्वय के बीच में एक ग्रन्थि होती है। (ब. दर्शिका) गुणधर्म में बहुत कुछ साम्य है।

नं० ३–कासमर्द (कसौंदी) को बड़ा चकौड़ा कहा जाता है। इसके भी क्षुप पंवाड़ के क्षुप जैसे किन्तु बहुत बड़े होते हैं। इसके गुणधर्म भी भिन्न हैं। कसौंदी का प्रकरण इस ग्रन्थ के भाग २ में देखिये।

नाम–

सं–चक्रमर्द (चक्रं-दद्रुं मर्दयति, दाद नष्ट करने वाला).

चक्रमर्द (पवांड)

CASSIA TORA LINN.
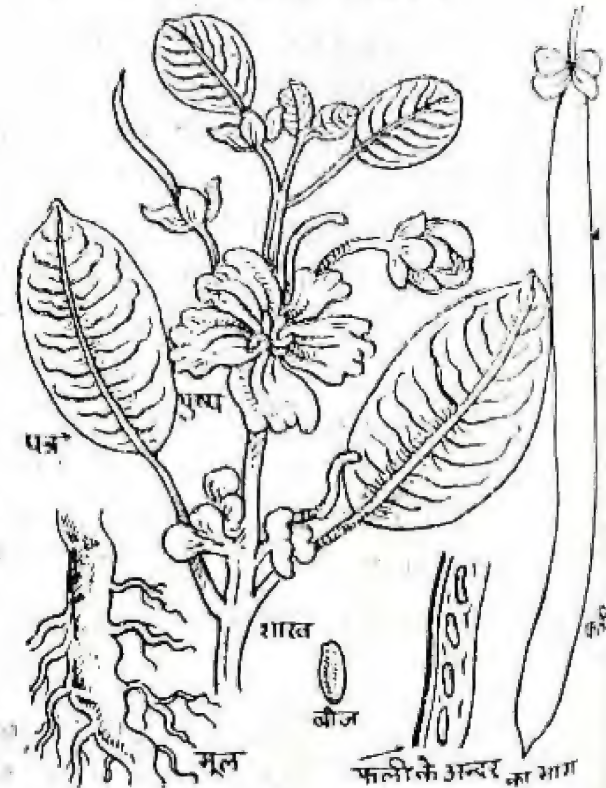
दद्रुघ्न, एड़गज (आकार में छोटा होने से), मेषलोचन (मेष या भेड़ के नेत्र की आकृति के पुष्प वाला), प्रपुन्नाड (प्रकर्षेण पुरुषं नाडयति लेखन होने से पुरुष को दुर्बल बनाने वाला), पद्माट, चक्री, पुन्नाट इ.।

हि०--पंवाड़, पमार, चकवड़, चकौड़ा इ.।

म.—टाकला, तरोटा। गु.–कुंवाड़ियों, पुंवाड़ियो। बं.—चकुन्दे, चावुका। अं.—फीटिड केसिया [Foetid Cassia], रिंगवर्म प्लांट (Ringworm plant)। ले.--केसिया टोरा, के. टोरायडेन्स (*C.* Toroides), के. फीटिडा (*C.* Foetida), के. टेगरा (*C.* Tagara)

रासायनिक संघटन–

बीजों में क्राइसोफेनिक एसिड (Chrysophani-acid) के समान एक एमोडीन (Emodin) नामक ग्लुकोसाईड होता है पत्र में कैथार्टीन (Cathartin) नामक एक रेचक तत्व, लालरंजक द्रव्य, तथा कुछ खनिज द्रव्य पाये जाते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—बीज, पत्र, फूल, मूल तथा पंचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग–

बीज—लघु, रूक्ष, कटु, विपाक में कटु, उष्णवीर्य, कफ वातशामक, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, कफनिःसारक, दीपन, पाचन, बल्य, त्वक्दोषहर, कृमिघ्न, विषघ्न, ओजोवर्धक, मेदोहर (लेखन), नाड़ियों के लिये बलप्रद, तथा पक्षाघात, अर्दित, वातविकार, विबन्ध, गुल्म, अर्श, रक्तविकार, हृद्रोग, कास, श्वास, वातरक्त, कण्डु, दाद आदि में प्रयोजित होते हैं।

बीज की क्रिया त्वचा के विकारों पर उत्तम होती है। दाद, खुजली, पामा, छाजन (एक्जिमा) आदि में यह विशेष लाभकारी है। विशेषतः जिन चर्म रोगों में त्वचा मोटी हो जाती है, उन पर यह बहुत अच्छा असर करता है। व्रण के स्थान पर उत्पन्न होने वाली तन्तुयुक्त ग्रन्थियों (कीलाएड Cheloid) पर बीजों को सेहुंड [थूहर] के दूध में भिगोकर, फिर गोमूत्र में पीसकर लेप करने से लाभ होता है। अर्धावभेदक आदि शिरोरोग में इसे कांजी के साथ पीसकर लेप किया जाता है। बीजों का सेवन काफी के रूप में भी किया जाता है।

चर्म रोगों में बीजों को नीबू रस में पीसकर लेप करने तथा साथ ही साथ इसके पत्तों का शाक खिलाने से बहुत लाभ होता है। चीन देश में सर्व प्रकार के नेत्र-विकारों के बाह्याभ्यान्तर उपचारों में बीजों का उपयोग किया जाता है।

कुष्ठादि त्वचा के विकारों पर, विष-विकार में, अर्श में भी बीजों का लेप करते हैं। कुष्ठ में बीजों को दही या कांजी में सड़ाकर पीसकर अथवा नीबू-रस में पीसकर लेप करते हैं। विशेषतः दाद पर लाभप्रद है। ग्रामवासी स्त्रियां कमर में दर्द होने पर बीजों को सेंककर, चूर्ण कर, खांड़, गुड़, आदि मीठा और थोड़ा घृत मिला लड्डू बनाकर खाती हैं। अर्धावभेदक शिरोरोग या आधाशीशी में बीजों को कांजी में पीसकर लेप करते हैं। कास रोग (खांसी) में बीज-चूर्ण की मात्रा २ से ४ माशा तक चाय के साथ या गरम जल के साथ २१ दिन तक देते हैं। प्लेग की ग्रन्थि पर—बीज चूर्ण को तिधारा थूहर के दूध में पीसकर लेप करते हैं।

(१) दाद पर—बीजों को थोड़े से मट्ठे में भिगो दें, जब वे फूल जावें पीसकर उबटन की भांति दाद पर मर्दन कर १ घंटा बाद फिटकरी मिश्रित गरम पानी से साफ कर दें। ७ दिन के प्रयोग से पूर्ण लाभ होगा।

—भा. गु. चि.।

अथवा—बीज चूर्ण २० तो, दूध २ सेर, तैल १ सेर तथा गंधक ६ माशा एकत्र मिला तैल सिद्ध कर लें। दाद पर दिन में ३–४ बार लगावें। अथवा—

बीजों का चूर्ण ५ तो. कबीला [कपीला, कमीला] ५ तो. और गंधक आंवलासार १० तो. एकत्र खूब महीन कर इसमें नीबू रस की ३ भावनायें देवें। १ तो. इस चूर्ण को (गोआ पाउडर या एसिड क्राइसोफोनिक के प्रतिनिधि रूप इस चूर्ण को) १० तो. वेस्लीन या सादे मलहम में मिलाकर लगावें। इससे दाद, कण्डु, कम्बल, पामा में शीघ्र लाभ होता है —भा. नूतन योग संचय।

बीजों के समभाग जीरा तथा थोड़ी सी सुदर्शन की जड़ इन तीनों को एकत्र पीसकर लेप करने से; अथवा

Scanned with CamScanner

केवल इसके बीजों को ही मूली के रस में पीसकर लेप करने से दाद नष्ट हो जाता है —वं. से.

अथवा—इसके बीजों के साथ समभाग आमला, राल और सेहुण्ड का दूध, इन सबको कांजी के साथ पीसकर मलने से दाद नष्ट होता है वं. से. । -अथवा-बीज चूर्ण को करंज तैल में मिला लगाते रहने से भी लाभ होता है।

(२) छाजन (एग्जिमा), उकवत, चम्बल या व्यूची पर—इसके बीज ७ तो. तथा पारा, गंधक, मनसिल, श्वेत कत्था, पाषाणभेद-पत्थर, मुर्दासंग १-१ तो. लेकर, प्रथम पारा गंधक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिला दें। फिर सबको चौगुने गोघृत के साथ ताम्र पात्र में तांबे के दस्ते से (या नीम के डण्डे के नीचे तांबे का पतरा लगाये हुये दस्ते से) ६ घंटे खरल कर मलहम बनालें। इस मलहम से सूखा या गीला छाजन, पामा, दाद, खाज आदि दूर होते हैं। रोग स्थान को तमाखू के पानी से (१ तो. तमाखू को ½ सेर पानी में भिगोकर छान लें) नित्य प्रातःसायं धोया करें। शाम को भिगोया पानी प्रात लेवें, शीतकाल में पानी को गरम कर लेवें।

नोट—जिस छाजन (व्यूची) से जल जैसा स्राव अत्यधिक होता हो, उस पर घृत युक्त कोई भी मलहम नहीं लगाना चाहिए। अन्यथा विष अधिक स्थान पर फैलता है। उस पर दशांग लेप या गोमूत्र की पट्टी का प्रयोग हितावह होता है। —रसतंत्रसार।

अथवा–बीजों के महीन चूर्ण १ सेर को २ सेर गोदुग्ध में पकावें। इसमें २० तो. गोघृत तथा २तो. गंधक का चूर्ण मिला दें। दूध के जल जाने पर नीचे उतार कर रखलें। इसके मर्दन से दाद, छाजन दूर होती है। हम इस योग को तैयार कर, ताम्रपात्र में खट्टा दही डालकर उसमें इसे मिला देते हैं, फिर दूसरे दिन से लगवाना प्रारंभ करते हैं। इस लेप से वर्षों पुरानी व्यूची (छाजन) दूर होजाती है। —वैद्य श्री अम्बालाल जी जोशी जोधपुर

अथवा—इसके बीज ६ भाग, बावची ८ भाग और गाजर के बीज २ भाग इन तीनों के चूर्ण को एकत्र मिला मटकी में गोमूत्र में ८ दिन तक भिगो रक्खें। फिर उसी मटकी में से आवश्यकतानुसार निकाल कर लगाया करें। सूख जाने पर पुनः गोमूत्र डाल दिया करें, यदि यह सूखने न पावे तो १ वर्ष तक उपयोग में आ सकता है। —व. गुणादर्श।

(३) खाज, खुजली पर—इसके १ सेर बीजों को खूब महीन पीसकर चीकनी मटकी में ५ सेर मट्ठे में मिला मुख मुद्रा कर जमीन में दबा देवें। ७ दिन बाद निकाल बोतलों में भर लें। इसे लगाकर ५-६ घंटे बाद गरम पानी से स्नान करें। कैसी भी खाज हो ३ दिन में दूर हो जाती है। —वैद्य पं. रामचन्द्र जी शर्मा रजवाड़।

अथवा—५ तो. बीजों का महीन चूर्ण १ सेर गोमूत्र में ३ दिन भिगोकर लगाते रहने से भी खाज, खुजली, मुख की झांई आदि दूर होती हैं।

इस प्रकार के रोगी को काफी का प्रयोग विशेष लाभप्रद होता है। --आगे विशिष्ट प्रयोगों में देखिये।

(४) कुष्ठ पर—इसके बीजों को दूध में पीसकर अण्डी का तैल मिलाकर लेप करने से सर्व प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं। —भा. भै. र.

यदि किटिभ कुष्ठ (जो स्रावयुक्त, गोल, ठोस, अति खाज युक्त और काला होता है Psoriasis) हो तो बीजों को सेहुंड (थूहर) के दूध की भावना देकर, गोमूत्र में पीस धूप में गरम कर उसमें समभाग किण्व (शराब की गाद) मिलाकर लेप करने से लाभ होता है। -ग. नि.

नोट—वात विकार पर चक्रमर्दादि तैल आगे विशिष्ट योगों में देखिये।

पत्र–पंवाड़ के पत्ते लघु, रूक्ष शीतवीर्य, सौम्य-विरेचक (सनाय पत्र जैसे रेचक), कृमिघ्न, पीड़ानाशक, हृद्य रक्तप्रसादन तथा वातपित्त शामक हैं। पत्तों की शाक के विषय में ऊपर के प्रारम्भिक नोट नं॰ १ को देखिये। दोषों के प्रतिकारार्थ पत्र-शाक खाते हैं।

(५) बच्चों के विकारों में विशेषतः दन्तोद्भेद के समय होने वाले हरे पीले दस्त, ज्वर आदि में उदर शुद्धि के लिये मृदुरेचक रूप में पत्तों का क्वाथ दिया जाता है।

(६) भिलावा के धुआं या तैल के लगजाने से उत्पन्न त्वग्विकार, दाह आदि पर पत्तों का रस लगाया जाता है।

(७) अपक्व व्रणों को शीघ्र पकाने के लिए पत्तों को

पुल्टिस बना कर बांधते हैं। वातरक्त, गृध्रसी तथा सधिवात में भी इस पुल्टिस से लाभ होता है, वेदना कम हो जाती है। दुर्गन्धयुक्त व्रणों पर पत्तों को अण्डी तैल में भून कर पुल्टिस बना बांधते हैं।

(८) सर्वाङ्ग शोथ पर- पत्तों को जल में उबाल तथा निचोड़ कर उस जल को ५ तो. की मात्रा में पिलावें; तथा उबले हुए पत्तों की शाक बनाकर खिलावें। ७ दिन में पूर्ण लाभ होता है। —श्री राधारमण दूर्वार।

(९) दाद तथा अन्य चर्म रोगों पर—इसके ताजे पत्र १० तो. तथा गंधक, राल, फिटकरी, चौकिया सुहागा और रस कपूर १-१ तो. सबको थोड़े जल के साथ खूब महीन पीसकर जंगली बेर जैसी गोलियां बना सुखाकर रखलें। इसे पानी में घिसकर दाद पर मलें, जरा देर कुछ चुनचुनाहट मालूम होगी, विशेष त्रास नहीं होगा और थोड़े ही दिनों में दाद नष्ट हो जावेगी। — भा. गृ. चि.

चर्म रोगों पर—पत्र साग खिलाया जाता है। तथा गुड़ और खटाई मिलाकर पत्तों का रायता बनाकर दिया जाता है (राई नहीं मिलानी चाहिए) इस प्रकार १५-२० दिनों तक पत्तों का सेवन करने से तथा इसके पंचांग के क्वाथ से दाद आदि को धोते रहने से या स्नान कराते रहने से सब चर्म रोग दूर हो जाते हैं। —गा. औ. र.।

(१०) कंठमाला पर—पत्तियों को थोड़ी कच्ची फिटकरी और थोड़ा सेंधानमक मिला, थोड़े जल के साथ पीसें तथा टिकिया बना कुछ गरम कर कंठमाला की गांठों पर नित्य बांधा करने से लाभ होता है। यह उपचार प्रारम्भ में ही करना ठीक होता है पंवाड़ पत्र के स्थान में कसौंदी पत्र और भी उत्तम कार्य करते हैं। —भा. गृ. चि.।

(११) पशुओं के कृमिरोग पर—पत्र-रस आधा सेर से १ सेर तक लेकर उसमें उतना ही तक्र तथा गंधक शुद्ध १ तोला और हींग १० तो. तक मिला पिलावें। छोटे बछड़ों के लिए पत्र रस ३ से ५ तो. में समभाग तक्र तथा चतुर्थांश गन्धक व हींग मिलाकर पिलावें।

—व० गु०।

पुष्प-पंवाड़ के फूल शांतिदायक तथा वेदनास्थापक है।

(१२) विद्रधि पर—विद्रधि या फोड़े के पाक होने के समय उसमें वेदना होती या शूल चलता है। कभी कभी ज्वर भी आ जाता है, निद्रा नहीं आती ऐसी स्थिति में इसके फूलों को पीसकर गरमकर पुल्टिस बनाकर बांधते रहने से वेदना शांत होती तथा पाक शीघ्र होता है।

(१३) प्रमेह पर—फूल और शक्कर १-१ तो. मिला कर नित्य प्रातः खिलाते रहने से थोड़े ही दिनों में पाचन क्रिया का सुधार होकर मूत्र का गंदलापन एवं क्षार जाना बन्द हो जाता है तथा मूत्र का वर्ण सुधर जाता है।

—गा. औ. र.।

मूल—रक्तशुद्ध कारक, स्राव निवारक तथा चर्म रोग आदि नाशक है।

(१४) पुष्टि तथा उष्णताजन्य रक्त विकृति पर—पंवाड़ की जड़ को स्वच्छ धोकर शुष्क कर महीन चूर्ण कर लेवें। प्रतिदिन प्रातः यह चूर्ण ४ मा० को घृत २ तो. तथा मिश्री चूर्ण १ तो. के साथ एकत्र मिलाकर सेवन से रक्त शुद्ध होकर शक्ति की वृद्धि होती है।

(१५) सोम रोग अर्थात् स्त्रियों के जल प्रदर या श्वेत प्रदर पर इसकी जड़ को चावलों के धोवन के साथ पीस छानकर पिलावें।

(१६) वसामेह (एक प्रकार का वात प्रमेह, जिसमें वसा-चरबी मिश्रित या चर्बी जैसा बार-बार मूत्र होता है। Lipuria) पर—जड़ का क्वाथ पिलावें।

(१७) शीत पित्त पर—जड़ के महीन चूर्ण को घृत मिला सेवन करावें। —ब. गु.।

(१८) चर्म रोग तथा गण्डमाला पर—जड़ को नीबू रस में पीसकर लेप करें।

गण्डमाला पर—इसकी जड़ के १० तो. कल्क के साथ भांगरे का स्वरस २ सेर तथा सरसों तैल ४० तो. मिला मंदाग्नि पर पकावें। तैल सिद्ध होने पर पाक के अन्त में उसमें १० तो. सिन्दूर मिलाकर नीचे उतार लेवें। यह तैल भयंकर गण्डमाला को अति शीघ्र नष्ट करता है।

—वं० से०।

पंचांग

(१९) दाद पर—पंवाड़ का पंचांग २० तो. कुचल

Scanned with CamScanner

कर मखनियां दही (मक्खन मिला हुआ दही) ४० तो. में मिला लें, और ३-४ दिनों तक मिट्टी की पतीली में पड़ा रहने दें। ४-५ दिनों के बाद यह व्यवहार के योग्य हो जायगा।

दिन में कम से कम दो बार इसे उबटन की तरह दाद के स्थान पर मलें। घंटे, आध घंटे बाद पानी से धो डालें। इसके ४-५ दिनों के प्रयोग से दाद आराम होजाता है। —सिद्ध मृत्युञ्जय योग से साभार।

(२०) शीत ज्वर पर पंचांग को महीन पीसकर इसकी लुगदी को प्रातः काल हाथों की कलाई पर बांध देने से शीत ज्वर की पाली रुक जाती है।

—स्व० गो० श० छांगाणी।

नोट—मात्रा–बीजों का चूर्ण १-३ मा.। पत्र-स्वरस आधा-एक तो., छाल का क्वाथ ५-१० तो.।

यह आन्त्र के लिये हानिकर है। हानि निवारणार्थ-दही, दूध या अर्क गुलाब। प्रतिनिधि-बावची है।

विशिष्ट योग—

(१) चक्रमर्दादि तैल (वात रोग पर)—पंवाड़ के बीज, हालों, राई, सरसों, मालकांगनी, तिल और नारियल की गिरी समभाग लेकर नारियल गिरी के अतिरिक्त शेष वस्तुओं को मिलाकर चूर्ण करें। फिर गिरी को कतर कर उसी चूर्ण में मिला कोल्हू में तैल निकलवा लेवें।

इस तैल को थोड़ा गरम कर मालिश करने से वात-रोग से जकड़े हुए कमर, जांघ, पिंडली आदि अङ्ग अच्छे हो जाते हैं। पुराने रोगियों को भी इससे लाभ होता है।

—रसतरङ्गिणी

(२) प्रपुन्नाटादि लेप [कुष्ठादि नाशक]—पंवाड़ बीज, आक का दूध, चित्रक, दन्तीमूल, वायविडङ्ग, सेंधानमक, घर का धुआं, हल्दी, दारुहल्दी और छोटी कटेरी के फल समभाग लेकर सबको पानी के साथ महीन पीसकर लेप करने से समस्त कुष्ठ, सुप्ति [स्पर्श ज्ञान का नाश] और विवर्णता दूर होती है।

—वंगसेन

(३) काफी प्रयोग—इसके बीज १ सेर, गाय के घृत में भून लें, अधिक जलने न पावें। फिर यवकुट कूट कर महीन चूर्ण करलें। उसमें जायफल, समुद्रफल, जावित्री, सौंठ, लौंग ६-६ माशा, दालचीनी १ तो०, छोटी इलायची बीज २ तो० और केशर ३ माशा इनका महीन चूर्ण मिलालें। बस काफी तैयार है। विधिपूर्वक इसकी काफी बनाकर पान करने से थकावट व सुस्ती दूर होकर चित्त प्रसन्न होता है। अग्निमांद्य, शिरःशूल आदि दूर होते हैं। भूख अच्छी लगती है। इस स्वादिष्ट, पौष्टिक वीर्य स्थान को शुद्ध कर बल प्रदान करने वाली काफी को बालक, वृद्ध, युवा सभी पी सकते हैं।

—भा० नूतन योग संचय से साभार

सूखी खुजली सारे शरीर में होने पर इसके भुने बीजों की काफी बनाकर पिलाई जाती है। काफी में आधा दूध और आधा जल मिला ५-७ मिनट तक उबा-लना चाहिए। शक्कर स्वाद आवे उतनी मिला लेवें।

—गां० औ० र०

पकड़ी देखो पाकर।

पाखाण भेद[1] नं० १ (Saxifraga Ligulata)

हरीतक्यादि वर्ग एवं स्वकुल पाषाण भेद कुल[2] [Saxifragaceae] के प्रमुख इस बहुवर्षायु बूटी के छोटे

[1] इस नाम की बूटी के विषय में बहुत मतभेद हैं। कई विद्वानों ने भिन्न-भिन्न बूटियों को पाषाणभेद माना है। उनमें से ४-५ बूटियों का नम्बरवार क्रमशः वर्णन आगे के प्रकरणों में दिया गया है। प्रस्तुत प्रसंग की बूटी को प्रायः सब विद्वानों ने यथोचित पाषाणभेद माना है। अतः इसी का प्रथम वर्णन यहां पाषाणभेद नं० १ के शीर्षक से दिया जाता है।

[2] इस कुल के प्रायः प्रसरणशील क्षुप के पत्र–एकान्तर या अभिमुख; पुष्प बाह्यकोष के दल ४-६, अभ्यन्तरकोष दल भी ४-८; पुंकेशर ८-१६ होते हैं।

Scanned with CamScanner

छोटे क्षुप पहाड़ों की चट्टानों पर फैले हुए होते हैं। पत्र कुछ गोलाकार, प्रायः ३-५ इंच व्यास के, एकत्र ३-४ पत्र, दलदार [मांसल], दन्तुर, चिकने, किनारे पर सूक्ष्म, सघन रोमश, ऊपर का पृष्ठ भाग हरा, निम्न भाग रक्ताभ; पुष्प—छोटे-छोटे श्वेत, जामुनी या गुलाबी रङ्ग के या नीले; फल—छोटे नीलाभ श्वेत वर्ण के होते हैं। मूल—स्थूल, लगभग १-२ इंची, ½-१ इंच मोटी, कड़ी, भीतरी भाग श्वेत, स्वाद में कसैली, सुगन्धित होती है। इस मूल से अनेक उपमूल निकल कर चारों ओर फैले हुए रहते हैं। औषधि कार्य में प्रायः मूल ही ली जाती है।

इसके क्षुप ५-१० हजार फीट की ऊंचाई पर हिमालय के मध्य भाग में, काश्मीर, नेपाल, भूटान आदि में पर्वतों की ढालों पर, पत्थरों की दरारों में बहुतायत से पाये जाते हैं।

नोट नं० १—बाजार में इसकी जड़ के सूखे टुकड़े भूरे रङ्ग के कड़े, खुरदरी एवं झुर्रीदार छाल युक्त पाषाण भेद नाम से जो बिकते हैं, उनमें प्रायः वटपत्री [पाषाण भेद नं० २] की जड़ के टुकड़े मिश्रित रहते हैं। यह भी यथेष्ट लाभकारी है।

नोट नं० २—चरक के मूत्र विरेचनीय तथा सुश्रुत के वीर तर्वादि गणों में यह लिया गया है।

नोट नं० ३—पाषाण भेद या पाषाण भेद नामक एक अन्य खनिज द्रव्य भी होता है। यह लोहा और चूने का कार्बन में परिणित द्रव्य विशेष [Carbonate of Iron and lime] है।

नाम—

सं०—पाषाणभेद, अश्मघ्न [अश्मरी को नष्ट करने वाला या पत्थरों को फोड़कर पैदा होने वाला], गिरिभिद, भिन्न योजिनी इत्यादि। हि०—पाषाणभेद, पथरचूर, सिलफोड़ी, पोपल, बन पत्रक, दकचु, वथँव इत्यादि। मराठी—पाषाणभेद। गुजराती—पषाणभेद। बं०—पाथुरचुटी। लेटिन सेक्सिफ्रेगालिगुलेटा।

रासायनिक संगठन—

इसके मूल में टैनिक और गैलिक एसिड १५½% स्टार्च १९ प्रतिशत्, खनिज लवण, मेटार्बिन, अल्ब्युमिन ७¾ प्रतिशत्, ग्लुकोज ५½ प्रतिशत्, पिच्छिल द्रव्य २¼ प्रतिशत्, तथा मोम, सुगंधि द्रव्य होते हैं। इसकी भस्म १२.८७ प्रतिशत् होती है, जिसमें कैल्शियम आक्जलेट (Calcium oxalate) ११¾ प्रतिशत् होता है।

प्रयोज्याङ्ग—मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, कषाय, तिक्त, कटु विपाक, शीतवीर्य, प्रभाव—अश्मरी भेदन। यह त्रिदोष शामक, स्तंभक, भेदन, शोथहर, व्रणरोपण, रक्तपित्त शामक, हृद्य, वस्तिशोधक, कफ निःसारक, मूत्रल, ज्वरघ्न है। तथा अतिसार प्रवाहिका, अर्श, गुल्म, प्लीहा, शूल, हृद्रोग, कास, योनि, व्यापद (श्वेत प्रदर, रक्त प्रदर, कष्टार्तव), मूत्रकृच्छ, अहिफेन विष आदि में प्रयुक्त होता है।

व्रणशोथ तथा नेत्राभिष्यन्द में इसका लेप करते हैं। बच्चों के दन्तोद्भेद के समय इसे मधु के साथ देते हैं या इसके चूर्ण को मधु में मिला हड्डियों पर धीरे धीरे मलाते हैं। बच्चों के पेशाब के गंदलेपन में इसे दूध में घिस कर पिलाते हैं। बच्चों के उदर शूल में इसके पत्र रस में शक्कर मिला पिलाते हैं। बड़ों के शूल में पत्र रस में सोंठ चूर्ण मिला सेवन कराते हैं।

(१) नेत्र के श्वेत भाग की पीड़ा पर नेत्रों के बाहर इसका लेप करते हैं।

(२) स्त्रियों के योनिस्राव तथा पुरुषों के मूत्रसम्बन्धी विकारों पर इसके क्वाथ में मधु मिला कर सेवन कराते हैं। श्वेत प्रदर में इसे फिटकरी भस्म और मिश्री के साथ देते हैं।

(३) अश्मरी पर—पित्तज अश्मरी (पथरी) हो तो इसके क्वाथ में शिलाजीत और खांड या मिश्री मिला कर सेवन से पित्तजन्य पथरी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।
-वृ. नि. र.

इसके चूर्ण को, शिलाजीत और मिश्री मिले हुये दूध के साथ पीने से पित्ताश्मरी दूर होती है।

शुक्राश्मरी हो, तो इसके साथ वरने की छाल, गोखरू

Scanned with CamScanner

अण्डी की जड़, छोटी व बड़ी कटेरी तथा तालमखाने की जड़ लेकर क्वाथ सिद्ध कर उसमें दही मिलाकर पिलावें। इससे मूत्रावरोध तथा शर्करा भी दूर होती है। –यो. र. (वंगसेन के इस योग में वरने की छाल का अभाव है)

पाषानभेद, वरने की छाल, गोखरू और ब्राह्मी, इन के क्वाथ में शिलाजीत तथा ककड़ी व खीरे के बीज मिला गुड़ से मीठा कर पीने से दुर्भेद्य पथरी भी अवश्य नष्ट होती है। --वं. से.

वातज अश्मरी पर पाषाणभेदादि घृत विशिष्ट योग में देखें।

(४) मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात पर (पाषाणभेदादि-क्वाथ)–इसके साथ मुलैठी, छोटी इलायची, पीपलामूल, रेंडी (अण्डी) की जड़, श्वेत अडूसा, स्पृक्का (असवर्ग या पिण्डी शाक, इसका विशेष वर्णन 'मखमली चौधारू' में देखें। इसके अभाव में कपूरी जड़ा जिसका वर्णन भाग २ में है, ले सकते हैं), गोखरू और हरड़ लेकर क्वाथ सिद्ध कर सेवन करने से भयंकर मूत्रकृच्छ्र भी नष्ट हो जाता है। —ग. नि.।

पाषाण भेद, अमलतास, धमासा, हर्र और गोखरू के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से पीड़ा, दाहयुक्त मूत्रकृच्छ्र शीघ्र नष्ट हो जाता है -वृ. नि. र. मूत्राघ त भी दूर होता है।-अथवा मूत्राघात पर—

पाषान भेद, निसोत, हर्र, धमासा, पोखरमूल, गोखरू, ढाक के फूल, सिंघाड़ा और ककड़ी के बीजों का क्वाथ पिलावें। —यो. र.

अथवापाषान भेद के चूर्ण के साथ कपूर और शिलाजीत मिलाकर नालिकेरासव के साथ पिलाने से मूत्राघात और अश्मरी में भी लाभ होता है।

नोट—मात्रा-चूर्ण ५ से १० रत्ती तक (क्वाथ के लिये १ से २॥ तो. तक)।

विशिष्ट योग–

(१) पाषाणभेदादि घृत—(वातज अश्मरी नाशक) क्वाथार्थ—पाषाणभेद, लाल आक, अपामार्ग, अश्मन्तक (अम्लोट या पत्थरचटा), शतावर, गोखरू, छोटी व बड़ी कटेरी, मकोय, नीले फूल की कटसरैया, कचनार की छाल, खस, गिलोय, बन्दा, अरलू की छाल, सागोन के फल, जौ, कुलथी, बेर और निर्मली के फल समभाग मिश्रित ४ सेर लेकर एकत्र कूटकर, ३२ सेर जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छान लेवें। इस क्वाथ में ऊषकादिगण (रेह, सेंधा नमक, शिलाजीत, दो प्रकार का कसीस-धातुकासीस व पुष्पकासीस, हींग और शुद्ध नीला थोथा) के द्रव्य समभाग मिश्रित का कल्क १३ तो. ४ माशा और घृत २ सेर मिला घृत सिद्ध कर लेवें।

मात्रा—३-४ बून्द से १ या २ माशा तक। इसके सेवन से वातज अश्मरी शीघ्र ही टूट कर निकल जाती है। पथ्य रूप में उक्त क्वाथ में कहे गये वातनाशक द्रव्यों से सिद्ध यवागू, पेया, दूध, भोजन का सेवन करें।

—भै. र. तथा भा. प्र.; वं से.; च. द. आदि।

(२) पाषाणभेद पाक [अश्मरी, मूत्रकृच्छ्रादि नाशक]–पाषाण भेद के महीन चूर्ण ६४ तो. को लगभग ३½ सेर गो दुग्ध में मंदाग्नि पर पकावें, करछी से चलाते रहें। कुछ गाढ़ा हो जाने पर, नीचे उतार कर उसमें इलायची, लौंग, पिप्पली, मुलैठी, गिलोय, हरड़, रेणुका [सम्भालू या निर्गुण्डी] के बीज, गोखरू, अडूसा, भरफोंका, पुनर्नवामूल, जवाखार, बहेड़ा, जटामांसी और कचनार की छाल प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तो. तथा वंगभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, कपूर, पित्तापापड़ा, कचूर, तेजपात, नागकेशर, दालचीनी व शुद्ध शिलाजीत २-२ तो. और मिश्री १ सेर १६ तो. सबका महीन चूर्णकर मिला, पुनः मंद आंच पर रखें। लेह जैसा हो जाने पर नीचे उतारकर ठंडा हो जाने पर ६४ तो. उत्तम मधु मिला चिकने पात्र में सुरक्षित रखें।

६ माशा की मात्रा में सेवन से ५ प्रकार की अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, वातरक्त, प्रमेह, मधुमेह, अधोगतरक्तपित्त, बस्ति और कुक्षि के रोग नष्ट होते हैं। तीव्र अश्मरी से पीड़ित रोगी के लिये यह विशेष लाभकारी है। तीक्ष्णपदार्थ और तेल का सेवन नहीं करना चाहिये —यो. र.

नोट—अन्य उत्तमोत्तम पाकों के प्रयोग हमारे 'बृहत् पाक संग्रह' ग्रन्थ में अवश्य देखिये।

Scanned with CamScanner

पाखान भेद नं. २ (Bergenia Ligulata)

यह पाखान भेद नं० १ का ही एक विशिष्ट भेद है। इसका क्षुप भी उसी के जैसा, किंतु पत्र वटपत्र के आकार वाले, किंचित् लम्बाईयुक्त गोल, किनारे पर चिकने होते हैं। । पत्ते वट [बरगद] के पत्र जैसे होने से इसे वटपत्री कहते हैं।

इसके क्षुप काश्मीर, भूटान और पश्चिम प्रायद्वीप में बहुतायत से पैदा होते हैं।

बाजारों में प्रायः इसी के मूल के टुकड़ पाषान भेद नाम से बेचे जाते हैं।

नोट—पत्थर फोड़ी—जिस पहाड़ी भूमि में उक्त वटपत्री नामक पाषान भेद पैदा होता है, वहीं पर इस पत्थर फोड़ी के छोटे छोटे पौधे पाये जाते हैं। इसका आकार वटपत्री के आकार से बहुत कुछ मिलता है । गढ़वाली भाषा में इसे पत्थर फोड़ी कहते हैं। मालूम होता है यह वटपत्री का ही भेद है। इसके पत्ते किंचित् गोलाईयुक्त ४-६ इंच लम्बे होते हैं। तथा किनारे किंचित् कंगूरेदार होते हैं। यह बूटी प्रायः वर्षा के पानी पड़ने पर उत्पन्न होती है और वर्षाऋतु के बाद क्रमशः पत्तियां एवं पौधे प्रायः नष्ट हो जाते हैं। किंतु जड़ का भाग जीवित रहता है, तथा उस पर छोटे छोटे नारङ्गी रंग के पीतवर्ण के पत्र दिखलाई देते हैं। पुनः वर्षाकाल में इनसे अंकुर निकल कर पौधे रूप में तैयार हो जाते हैं। जड़ से ही पत्ते निकलते हैं, पश्चात् फूल आते हैं। फलियां लम्बी-गोल होती हैं।

वर्षा के बाद इसके पीले पत्तों को तोड़कर संग्रह करते हैं तथा ये ही पत्र औषधि कार्यार्थ लिये जाते हैं। बालक के ज्वर इत्यादि निवारणार्थ इसका प्रयोग किया जाता है। अश्मरी (पथरी) की साध्य या कष्टसाध्य अवस्था में भी यह उपयोगी सिद्ध हुआ है। इन पत्तियों का चूर्ण ही उपयोग में आता है।—स्व. श्री लाला रूपलाल जी बूटी-विशेषज्ञ

[धन्वन्तरि से]

नाम—

सं.—वटपत्री, मोहिनी, ऐरावती, रेचनी इ. ।

पाषाण भेद (वटपत्री)
BERGENIA LIGULATA (WALL) ENGL.
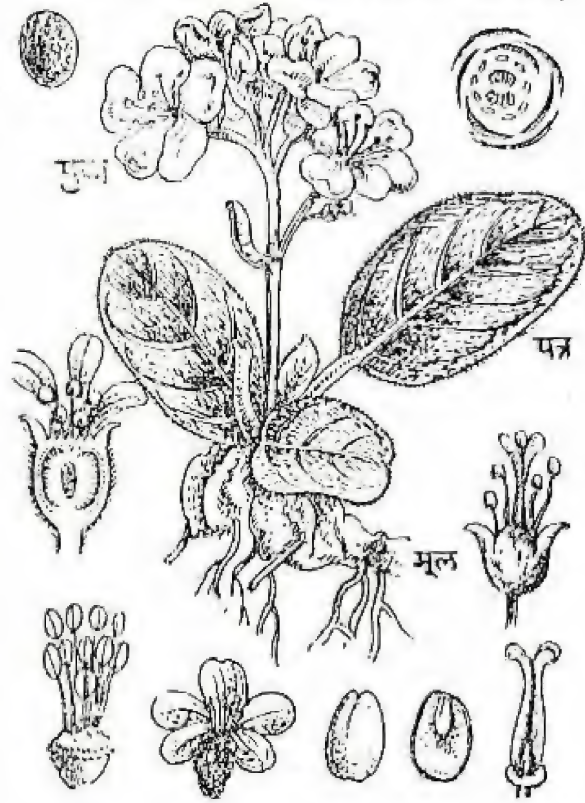
हि.—बड़पत्री, वटपत्री, पाषाणभेदी । म—वटपत्री
गु.—बड़पत्ती । बं.—बड़पाता, पातरकुचा ।
ले.—बरजेनिया लिगुलेटा; सेक्सीफ्रेगा लिगुलेटा ।

गुणधर्म व प्रयोग—

मधुर, कषाय, उष्णवीर्य, बल्य, दीपन, रक्तशुद्धिकर, योनि तथा मूत्र आदि विकारनाशक है। उपदंश-जन्य जीर्ण रोगों पर, तथा दूषित पदार्थों के सेवन से उत्पन्न रक्तविकृति पर इसके पत्तों का क्वाथ सेवन कराया जाता है। दंतकृमि पर इसके फलों का धुवां दिया जाता है।

शेष, इसके मूल के गुण धर्म तथा प्रयोग पाषानभेद नं १ के जैसे ही हैं।

Scanned with CamScanner

पखानभेद नं० ३ (Coleus Aromaticus)

तुलसी कुल (Labiateae) के इस वर्षायु या बहु-वर्षायु अति सुगंधित, रोमश नीचे की ओर गुल्मवत् क्षुप के सरस काण्ड १-३ फुट ऊंचे कोमल, पत्र गोलाकार १-३ इंच व्यास के हृदयाकृति, मांसल (गूदेदार), दन्तुर, रोमश, कपूर या अजवाइन की सी तीक्ष्ण प्रिय गन्धवाले, स्वाद में कटु। पुष्प–पुराने क्षुपों में १ इंच लम्बी डंडी के चारों ओर दूर दूर स्थित चक्रों में छोटे छोटे सघन नीले या बैंगनी रंग के आते है। कलिकायुक्त कोण पुष्पों की ४ पंक्तियां होती हैं। पुष्प शीतकाल के अन्त में आते हैं। फल नहीं आते। क्षुप की शाखा या काण्ड को वर्षाकाल में लगाने से ही यह बढ़ कर क्षुपाकार हो जाता है।

इसका आदि मूल स्थान मलक्का द्वीप समूह है किंतु सम्प्रति भारत के बाग बगीचों की क्यारियों में या गमलों में शोभा के लिये प्रायः सर्वत्र ही लगाया हुआ पाया जाता है। पर्वतों पर ६ से ८ हजार फीट की ऊंचाई पर होने वाले इसके क्षुपों में इससे बढ़िया उत्तम गुण धर्म विशिष्ट होते हैं। पहाड़ी पौधों के पत्र कुछ बड़े विशेष दलदार तथा पुष्प ४ या ५ रंगीन दल एवं छोटे से हरित दल और गुलाबी लम्बी डंडी से युक्त होते हैं।

पाषाण भेद देशी (पत्थरचूर)
COLEUS AROMATICUS BENTH.

नाम–

सं—पर्ण यवानी, पाषाण भेदी, अश्मन्तक इ.। हि.—पत्ता अजवायन, पाषाण भेदी, पत्थरचूर, अमरोला, पठानबेग, इ.। म.—पानओवा। गु.—ओवापान। बं.—पातेरचूर, पाथरचूर, आमला कूची इ.। अं.—कंट्री बोरेज (contry borage)। ले.—कोलियस एरोमेटिकस,को. एम्बोयानिकस (c. Amboinicus) को० कारनोसस [C. cornosus]

रासायनिक संगठन–

इसमें एक उड़नशील सुगन्धित तैल तथा कार्वाक्रोल [carvacrol] नामक तत्व होता है।

मद्यको सुगंधित करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

प्रयोज्यांग—पत्र।

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, किंचित् कषाय, कटु विपाक, उष्णवीर्य (शीत वीर्य ?) कफ वात शामक, रोचन, दीपन, पाचन, ग्राही, उत्तेजक, वातानुलोमन, उद्वेष्टन निरोधी, यकृदुत्तेजक, बस्तिशोधक, कफघ्न, आक्षेपहर, वेदनास्थापन, विषघ्न, मादक, मूत्रल, कफदुर्गन्ध नाशक, श्वास प्रतिश्याय हर, अश्मरीघ्न, तथा वातव्याधि (आक्षेपक, अपतन्त्रकादि), अरुचि, अग्निमांद्य, अजीर्ण, विष्टम्भ, यकृद्विकार, उदरशूल, अतिसार, ग्रहणी, विशूचिका [हैजा], कृमि रोग, हृद्दौर्बल्य, जीर्ण कास, श्वास, हिक्का, मूत्रकृच्छ्र, प्रबल उदरशूल आदि में उपयोगी है।

Scanned with CamScanner

इसके पत्तों का सीधा असर मूत्राशय या वृक्कों पर होने से यह मूत्र सम्बन्धी सर्व विकारों पर उत्तम उपयोगी माना जाता है।

पत्तों के क्वाथ का प्रयोग मूत्रकृच्छ्रादि मूत्राशय के रोग, उदर शूल, शोथ (Dr psy), अश्मरी, जीर्णकास, श्वास (ब्रांकायटिस), अपस्मार. आक्षेप सन्यास (Apilapsy) पर किया जाता है।

(१) नेत्राभिष्यन्द में—इसका स्वरस पलकों पर लगाने से वेदना शांत होती है।

(२) शिरःशूल तथा कनखजूरा [गोजर] आदि कीटकों के दंश पर–पत्तों को पीस कर लेप करने से या पत्तों को कुचल कर मर्दन करने से लाभ होता है।

(३) बालकों के उदर शूल में—पत्र रस ५-६ बूंद में मिश्री या शक्कर मिलाकर देते हैं। बड़ों की उदरपीड़ा में पत्ररस में सौंठ का चूर्ण बुरक कर पिलाते हैं।

(४) पित्ताश्मरी पर—पत्र क्वाथ में शहद और शिलाजीत मिलाकर सेवन कराते हैं।

(५) स्त्रियों के श्वेत प्रदर तथा मनुष्यों के मूत्र सम्बन्धी विकारों पर–पत्र क्वाथ में शहद मिलाकर सेवन कराते हैं।

(६) ग्रहणी रोग, कृमि रोग तथा व्रण पर–ग्रहणी में—पत्तों की पकौड़ी बनाकर खिलाते हैं। कृमिरोग में–पत्र का स्वरस जल के साथ पिलाते हैं।

सद्यःक्षतव्रण पर–पत्ते और काण्ड का गूदा बांधते हैं।

(७) हैजा (विसूचिका) पर डा. हेमेन्दनाथ चटर्जी M. B. M D. के प्रयोग—प्रतिदिन प्रातः इसके पत्तों को तोड़कर सर्वप्रथम काण्डीज लोशन (सोडियम और पोटासियम परमेंगनेट का बना हुआ कृमिनाशक घोल), में डुबोकर धोया गया, फिर स्वच्छ जल से धो लिया। तदनन्तर उनको झटककर उनमें लगे हुए पानी को दूर कर उन्हें साफ कुण्डी सोंटे या सिल या खरल में कूट कर, स्वच्छ कपड़े पर रख उनका स्वरस निचोड़ लिया जाता रहा। यह स्वरस हरित वर्ण का स्वाद में रुचिकर और गन्ध में कपूर जैसा सुगन्धित होता है।

रोगी को प्रथम मात्रा इस स्वरस की ४ चाय चम्मच, दूसरी मात्रा २ चाय चम्मच प्रथम दिन १-१ घंटे के अन्तर पर दी गई। इस प्रकार इन मात्राओं में देने पर यदि ८ घंटे के बाद तक दस्त होना जारी रहे तो अपराह्न में इन मात्राओं को इसी क्रम में दोहराना चाहिए। अगले दिन भी इसी क्रम से देना चाहिये, जब तक रोगी को कब्ज न हो जाय तब तक। कब्ज पैदा हो जाने पर इसका स्वरस देना बन्द कर देवें। इसके प्रयोग से दस्तो के स्वरूप में क्रमिक परिवर्त्तन होता है। सर्व प्रथम दस्तों का तण्डुलोदक स्वरूप कुछ ही घण्टों में पित्त से रंगे हुए द्रव रूप में परिवर्तित हो जाता है। फिर द्रव मल आधा गाढ़ा व हरे रंग का होने लगता है, अन्त में मल का स्वरूप बिलकुल घना हो जाता है।

अपने अनुभव में मैंने देखा कि इसका पत्र-स्वरस हैजा के दस्तों को वस्तुत. बन्द कर सकता है। इस पत्र-स्वरस के प्रयोग से ३०० हैजा रोगियों में से ७४ प्रतिशत रोगियों के दस्तों को ४८ घंटे के अन्दर और ९२.५ प्रतिशत रोगियों के दस्तों को ७२ घण्टे के अन्दर रोका जा सका। —सचित्रायुर्वेद से साभार।

नोट—मात्रा—पत्र स्वरस ६ बून्द से ६ माशा या १ तोला तक। अधिक मात्रा में यह मादक होता है। यह पित्त प्रकृति वालों के लिए कुछ हानिकर है। इसका प्रतिनिधि पुनर्नवा है।

इसके पत्तों को मक्खन और रोटी के साथ भी खाते हैं।

पाखानभेद नं० ४ (Irispseudo Achorus)

केशर या बच कुल (Iridaceae) का यह बहुवर्षायु सुगन्धित मूलयुक्त क्षुप प्रायः भारतवर्ष में नहीं पाया जाता। यूरोप की सामान्य आर्द्रभूमि में यह विशेष होता है। इसके मूल विदेश से यहां आते हैं जो सामान्यतः

Scanned with CamScanner

वच जैसे ही होते हैं।

गुजरात की ओर इसे लकड़ी पाखानभेद, तथा लैटिन में आइरिस सूडो अकोरस कहते हैं।

रासायनिक संघटन–

इसमें एक प्रकार का काला, भूरा, कड़वा, स्निग्ध आयरीडिन (Iridin) नामक राल सदृश पदार्थ तथा इसोपथेलिक एसिड, सेलिसिलिक एसिड, कपूर, गोंद, टेनिन (कषायाम्ल), शक्कर, उड़नशील तैल आदि पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग–

समशीतोष्ण, ग्राही, उत्तेजक, वामक, रेचक, मूत्रल, रजःस्रावी, यकृद्विकार, पित्तप्रकोप, उदरशूल, कामला, कष्टार्तव, नष्टार्तव, प्रदर एवं विष प्रकोपज विकार आदि में उपयोगी है।

इसमें यकृत विकार तथा पित्त विरेचन धर्म तो स्पष्ट है। किंतु अश्मरी-भेदक कोई धर्म नहीं प्रतीत होता।

इसके लोशन या घोल में रुई का फाया भिगोकर योनिमार्ग में रखने से दुर्गंध दूर होती है, कीटाणु नष्ट होकर योनि आकुंचित होती है।

इसका सुगन्धित तैल, दंत मंजन तथा केश-तैलों में मिलाया जाता है।

यूरोप में इसके बीजों को भूनकर काफी के समान पेय रूप से व्यवहार में लाते हैं।

पाखानभेद नं० ५ (Hemonoia Riparia)

एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के इस सदैव हरे भरे रहने वाले क्षुप के पत्र-३-६ इञ्च लम्बे तथा ४-८ इञ्च चौड़े होते हैं।

ये क्षुप हिमालय, सिक्किम, आसाम की पथरीली पहाड़ी नदियों के तटवर्ती स्थानों में तथा उत्तरी बंगाल, बर्मा और मध्य भारत में पाये जाते हैं।

नाम–

सं०—पाषाणभेदक, क्षुद्रपाषाणभेद। हि०—बं० पखानभेद। ले०—हेमोनोइया रिपेरिया।

गुणधर्म व प्रयोग–

शीतवीर्य, मूत्रल, मृदुविरेचक है। इसका क्वाथ तृषा, अर्श, मूत्राशय की अश्मरी, सुजाक और उपदंश में दिया जाता है।

पाखानभेद नं० ६ (Rhabdia Lycioides)

Hydrophyllaceae कुल के इस क्षुप के मूल पषान भेद जैसे गुणधर्म विशिष्ट हैं। इसे भी पाषाण भेद कहा जाता है। लेटिन में र्‍हेवडिया लाइकाइड़ीस।

इसकी जड़ अर्श, मूत्राशय की अश्मरी एवं उपदंश आदि व्यभिचारजन्य रोगों में व्यवहृत होती है।

नोट–गोरखगांजा (Aeru Lanata) को भी पाषाण भेद कहा जाता है। इसका वर्णन इस ग्रन्थ के भाग २ कपूर जड़ी के प्रकरण में देखिए।

पर्णबीज (Bryophyllum Calycinum) को पाखानभेद या पत्थर चूर कहते हैं। वर्णन आगे पर्णबीज में देखिये।

पचगुरिया – देखिये शिवलिंगी। पचलाना—देखिये पानी आंवला। पचांगुरबूटी—देखिये ईसरमूल।

पटपनस (कटहल) [Artocarpus Hirsuta]

वट कुल (Urticaceae) का यह एक जंगली कटहल है। इसके वृक्ष साधारण कटहल के वृक्षों की अपे

बड़े; पत्र-मोटे खुरदरे; फल—साधारण कटहल से छोटे तथा बड़े बड़े कांटे वाले होते हैं।

इसे बम्बई की ओर रानफणस, फणसुला, पटफणस तथा लेटिन में आर्टोकार्पस हिरसुटा कहते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग–

यह वेदना स्थापक, शोथनाशक है। बदगांठ और अण्डकोष की सूजन पर—इसके पत्तों को या पत्र-रस को आंबी हल्दी तथा कपूर के साथ पीसकर बांधते हैं।

पटसन—देखिये सन तथा झुनझुनिया में।

पटुआ घास (Cassia Mimosoides)

शिम्बीकुल के पूतिकरंज उपकुल (Caesalpiniaceae) के इसके वर्षजीवी क्षुप २० से ६० सेंटी मीटर ऊंचे, कभी कभी फैले हुये; डंठल तथा शाखायें कुछ रोमश; पत्र-डंठल के दोनों ओर लगे हुए ५ से १० सें. मी. तक लम्बे; डंठल-ऊबड़-खाबड़ १.३ से २.५ सें. मी. तक लम्बे; पुष्प १ से ३ तक एक साथ लगे हुए; फूल की पंखड़ियां ४.५-६.५ सें. मी. लम्बी गोलाकार; फलियां ५ से ६.५ सें. मी. तक लम्बी होती हैं।

इसके क्षुप समस्त भारतवर्ष तथा सीलोन में भी पाये जाते हैं।

इसे पहाड़ी संथाली भाषा में पट्टुआघास, पट्वाघास, विरविरी तथा लेटिन में केसिया मीमोसोइड्स, तेलगू में नेलापोना कहते हैं।

प्रयोग—संथाल जाति के लोग इसकी जड़ को पेट की मरोड़ दूर करने के काम में प्रयोग करते हैं। छोटा नागपुर के मुण्डा जाति के लोग जड़ को पीसकर बेहोशी (मूर्च्छा) दूर करने के उपयोग में लेते हैं। —ब. चं.।

पट्टआशाक दे. नाड़ी शाक और जूट में। पटवास—देखिये छोंकर। पटेर (पटेरा)—देखिए एरक।
पटोल—देखिये परवल। पठानीलोध—देखिये लोध।

पतकारू (Roylea Elegans)

तुलसी कुल (Labiatae) के इसके क्षुप झाड़ी के रूप में काश्मीर से कुमाऊं तक पश्चिमी हिमालय में; २ से ५ हजार फीट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं।

इसे हिन्दी में पतकारू, कौर, कौरी; गढ़वाल और कुमाऊं की ओर पहाड़ी भाषा में कड़ुई, तिल पाती, कौड़ी आदि तथा लेटिन में रायली एलेगान्स कहते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग–

यह कड़ुवी, कटुपौष्टिक और ज्वरघ्न है। इसके पत्तों का फांट शस्त्र से हुए गंभीर जखम की शांति के लिए पिलाया जाता है।

पतंग (Caesalpinia Sappan)

कर्पूरादिवर्ग एवं शिम्बीकुल के पूतिकरंज उपकुल (Caesalpinaceae) के इसके वृक्ष रक्त चन्दनवृक्ष के जैसे २०-४० फुट तक ऊंचे; काण्ड-गोल ६-१० इंच व्यास का कहीं कहीं कंटकावृत्त, शाखायें श्वेत भूरे रंग की, कांड अतिकड़ा, भीतर से पीताभ रक्तवर्ण का; पत्र-८-१५ इंच लम्बे, ८ से १२ तक संयुक्त, लगभग वृन्तरहित, तल भाग के पत्र छोटे कंटक युक्त, ऊपर चिकने, नीचे रोमश; पुष्प-¾-इंच व्यास के चमकदार पीले रंग के। पुष्प बाह्यकोष चर्मवत्, चिकना, आभ्यन्तर कोष की पंखुड़ियां ऊपर पीतवर्ण की, तलभाग में लाल दागवाली। फली-३-४ इंच लम्बी, १½-२ इञ्च चौड़ी, कड़ी, टेढ़ी लम्बगोल, दबी हुई सी, चमकीली, ३ या ४ बीजों से युक्त होती हैं। ग्रीष्म-

Scanned with CamScanner

ऋतु में पुष्प तथा शीत काल में फली आती है।

इसकी लकड़ी या लकड़ी के बुरादे में कोई खास सुगंध नहीं होती। इसके वृक्ष दक्षिण भारत विशेषतः मद्रास में तथा बंगाल, बिहार में भी लगाये जाते हैं। बर्मा तथा शान पर्वतांचल में ये वृक्ष नैसर्गिक पैदा होते हैं। वास्तव में यह दक्षिण-पूर्व एशिया का वृक्ष है।

नोट—इसकी लकड़ा या बुरादा औषधि कार्य में लिया जाता है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका औषधि प्रयोग नहीं मिलता।

पहले भारत में यह वस्त्रों को रंगने के काम में आता रहा है। इसीलिए संस्कृत में इसे पट्टरंजक नाम दिया गया है।

बाजार में इसके विभिन्न प्रकार के कड़े तथा भारी टुकड़े या लाल नारंगी रंग की चपटियां मिलती हैं। इसे रक्त चन्दन नाम से भी बेंचते हैं। इसके लकड़ी के टुकड़े सिंगापुरी, धुनसरी और सिलोनी पतंग नाम से भी बेचे जाते हैं। अमृतसर, कानपुर आदि नगरों में सिंगापुरी या सिलोनी पतंग के नाम से इनके मूल्यादि में अन्तर रहता है।

इसकी लकड़ी के महीन बुरादे में अरारूट मिलाकर गुलाल बनाया जाता है। तथा हरड़ मिलाकर कालीस्याही बनाते हैं।

नाम–

सं०—पत्रंग, पतंग, रक्तसार, रंजन, पट्टरंजक, पत्तूर, कुचन्दन इ। हि०—पतंग, बकम काठ, आल इ। म. गु.—पतंग। बं. बोकम, बकम काष्ठ। अं.—सेपन वुड (Sappan wood) ब्रेझिल वुड (Brazil wood) ले.–सोसेल्पीनिया सेप्पन।

रासायनिक संगठन–

इसमें सेप्पनरेड (Sappan red) नामक एक लालरंग [जो हीमटोक्साइलिन (Haematoxylin) के सदृश तथा ईथर, मद्यसार (alcohol) व पानी में घुलनशील होता है] पाया जाता है। इस रंग में कार्बन (Carbon) ६७.११ प्रतिशत, हायड्रोजन ५.४३ प्रतिशत और आक्सिजन (oxygen) २७.४६ प्रतिशत होता है। इसके अ... रिक्त गैलिक (Gallic) व टैनिक एसिड एवं ... तैल आदि पाये जाते हैं। इसका कार्यकारी सत्व ... (Haematin) से मिलता जुलता तथा ब्रजलिन (Braz-ilin) के समान कहा जाता है। इसके सत्व सदृश ... (extract) में एक रवेदार, चमकीला पदार्थ होता है। यदि आसुत कर (Distilled) पोटाश के साथ मिला... जाय तो रीसार्सिन (Resorcin) प्राप्त होता है।

—नाडकर्णी

प्रयोज्यांग—काष्ठ।

गुणधर्म व प्रयोग–

गुरु, कटु, रूक्ष, मधुर–विपाक, शीतवीर्य, पित्त, ... रक्त विकृति, विस्फोट, उन्माद, ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, ... आदि में उपयोगी, भूतबाधा निवारक, व्रण ... व्रणसुधारक, ऊर्ध्व रक्तपित्त निवारक है।

पतङ्ग (बकम)
CAESALPINIA SAPPAN LINN.
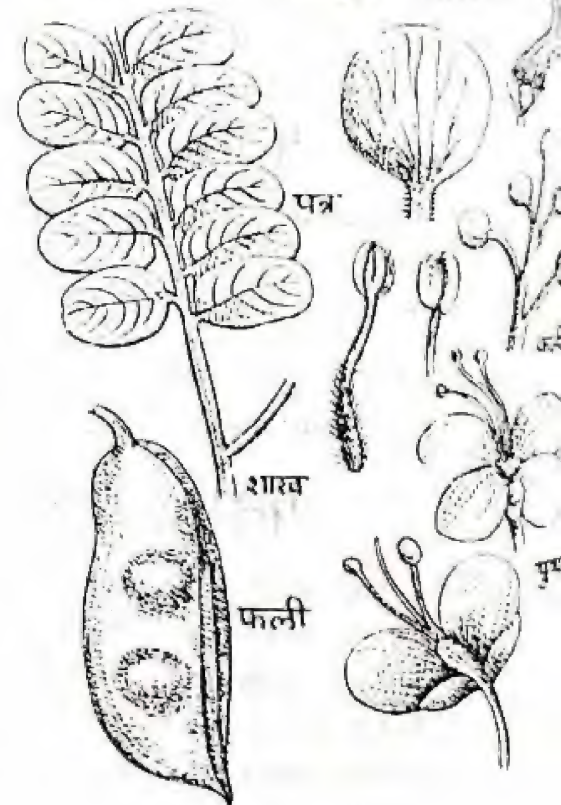
इसके गुणधर्म प्रायः अन्य चन्दन के जैसे ही है, किन्तु हरिचन्दन या पीतचन्दन की अपेक्षा इसमें दाहनाशक गुण की विशेषता है।

(१) इसका क्वाथ रक्तशोधक एव पुष्टिकर, उदर विकृति नाशक, चर्मरोग में हितकर, छोटे और बड़ों के अतिसार, रक्तातिसार, जीर्णातिसार पर लाभकारी तथा फुफ्फुस, आंत एवं गर्भाशय मार्ग से होने वाले रक्तस्राव का निरोधक है। इस क्वाथ के सेवन से अन्त्रांतर्गत श्लैष्मिक कला की उग्रता शमन होकर रक्तस्राव तथा अतिसार दूर होता है, उदर पीड़ा शांत होती है। इसके सेवन काल में मूत्र का रंग लाल हो जाता है।

(२) श्वेतप्रदर पर—इसका क्वाथ दिन में दो बार देते रहने से कुछ दिनों में पतला, गरम जल सदृश स्राव बन्द हो जाता है। यदि स्राव गाढ़ा, दुर्गन्धयुक्त होगया हो तो इसके क्वाथ को डूस में भरकर धोते रहना भी चाहिए। गर्भाशय की शिथिलता के कारण मासिक धर्म में अवरोध होता हो या साफ न आता हो तो इसके क्वाथ का सेवन कराया जाता है। —गां० औ० र०।

(३) व्रणों पर—इसके चूर्ण को बुरकने से व्रणरोपण शीघ्र होता है। रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

फूटे हुए व्रणों को या मांसार्बुद को इसके क्वाथ से धोने तथा क्वाथ में रुई का फाया तरकर रखने से पूय एवं दूषित रसोत्पत्ति कम होती, दुर्गन्ध दूर होती तथा पीड़ा व दाह की शांति होती है।

नोट—इसके योग प्रयोग श्वेत या रक्तचन्दन जैसे ही हैं। कर्णस्राव में—इसके रस के तेल में बने हुए फुलाल को कान में रख कर फूंक मारते हैं।

सत्व-विधि—इसके ५० तो० काष्ठ के छोटे-छोटे टुकड़े कर या यवकुट या सिल पर पीसकर २५ सेर जल में ५ से ८ घंटे तक पकावें। १० सेर शेष रहने पर छानकर जल को अलग रखें तथा छानने पर जो फुजला रहता है उसे पुनः २५ सेर जल में पकाकर १० सेर शेष रहने पर छानकर उक्त छने हुए जल में मिला (मन्द आंच पर घन सत्व तैयार करलें) देवें। —नाड़कर्णी।

मात्रा—चूर्ण—१ से ३ माशे तक। सत्व—२ से ४ रत्ती तक। प्रतिनिधि—लाल चन्दन।

विशिष्ट योग—

(१) पतंग योग (वीर्यस्तम्भक)—पतंग का चूर्ण, जावित्री और अफीम १-१ टंक (३ या ४ माशा) तथा शुद्ध हिंगुल ६ या ८ माशा लेकर, सबको एकत्र घोटकर महीन चूर्ण कर लेवें।

यथोचित मात्रानुसार थोड़े दूध के साथ सेवन से वीर्य स्तम्भन होता है। शुक्रस्तंभनार्थ यह एक महान योग है। —भा० भै० र०।

(२) पत्रांगासव (प्रदरादि नाशक)—भैषज्य रत्नावली आदि ग्रन्थों में या हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह में देखिए। प्रयोग बड़ा है, विस्तार भय से यहां नहीं दिया जाता।

पतज—दे० जियापोता। पतालकोहड़ा—दे० विदारीकन्द। पत्ता अजवायन—दे० पखानभेद नं० ३। पतियाल—दे० जमरासी। पतीस—दे० अतीस। पत्रज—दे० तेजपात। पत्री कपूर—दे० कुकरौंधा में। पत्री दालचीनी—दे० दालचीनी और तेजपात। पथरचट—दे० पखानभेद नं० १ या पर्णबीज में। पथरचटा—दे० चूका। पथर चूर—दे० पर्णबीज। पत्थर फूल—दे० छड़ीला। पत्थर सुआ—दे० पित-पापड़ा नं० ५। पनीर—दे० एरक।

पत्थर फोड़ी (Linaria Ramosissima)

निका-कुटकी कुल (Scrophulariaceae) के इसके पौधे लताओं की तरह पत्थरों, दीवालों तथा नदी नालों के किनारे उगते हैं। इसकी जड़ अन्दर, गहरी धंसी हुई रहती है और उससे बहुत सी पतली शाखायें निकल कर पत्थर या दीवाल के अन्दर व बाहर फैल जाती है। पत्र—छिरेंटे के पत्र जैसे, कुछ दबीज होते है। पत्तों को

मुख में चाबने से लेसदार, स्वाद नमकीन होता है। पुष्प-पीले तथा फल—छोटे-छोटे होते हैं। यह बूटी जिस दीवाल में पैदा होती है। उसे नष्ट कर देती है, गला देती है।

नाम—

हि०—पत्थर फोड़ी। गु०—भीतङ्कलोड़ी, फानोठी, भीतचट्टी इ०। अं०—टोडफ्लेक्स (Toad flax)। ले०—लिनेरिया रेमोसिसिमा।

गुणधर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, प्रबल मूत्रल, अश्मरी नाशक तथा मधुमेह नाशक है।

पत्तों को पीसकर फोड़े फुन्सियों पर लगाते हैं।

इसके पत्र अकेले या अन्य प्रवर्तकद्रव्यों के साथ पीसकर मिश्री या शर्बत बजूरी मिलाकर पिलाने से मूत्र का प्रवर्तन होता है और यह पथरी को गला कर निकाल देती है।

नोट—मात्रा-५ माशा से १ तोला तक। यह ... शक्ति के लिए अहितकर है। हानि निवारणार्थ इस ... का फांट देवें।

पद्मकाठ—देखो पद्माख। पद्मगुलंच—देखो गिलोय में।

पद्माख (Prunus Puddum)

कर्पूरादि वर्ग एवं तरुणी कुल (Rosaceae) के इस बड़े, ऊंचे अचिरस्थाई वृक्ष के काण्ड—गोल, लोहिताभ, कमल जैसी गन्धयुक्त एवं ग्रन्थि युक्त; अन्दर का काष्ठ बाहर से श्वेत, भीतर लाल, सुगन्धियुक्त; छाल—पीताभ या कृष्णाभ भूरे रंग की, चमकीली, जिसके ऊपर की पतली-पतली चमकीली पपड़ियां फिसलने वाली या निकलते रहने वाली; पत्र—३-५ इञ्च लम्बे, १-१½ इञ्च चौड़े, भालाकार, दन्तुर धार वाले, चिकने, रोमश, लम्बी नोक वाले, पत्रवृन्त ½-¾ इञ्च लम्बा; पुष्प—पत्रकोण से निकले हुए, कदम्ब पुष्प जैसे, किन्तु बहुत छोटे, कमल जैसी गन्ध वाले, श्वेत या रक्त वर्ण के, पतझड़ के बाद नूतन पत्र निकलने के पूर्व ही, खिल जाने वाले होते हैं। फल—छोटे-छोटे, लम्बगोल, ½-१ इञ्च परिमाण के, पीले या गुलाबी रंग के, भीतर गूदा अत्यल्प, स्वाद में कुछ खट्टा, गुठली या बीज कड़ा होता है। ये फल खाये जाते हैं तथा इनसे एक प्रकार का मद्य बनाया जाता है। किसी-किसी वृक्ष में फल नहीं आते।

प्रायः पौष मास में वृक्ष के पुष्प युक्त होने पर वह बड़ा ही सुन्दर दिखाई देता है। फल फाल्गुन मास में आते हैं।

इसके वृक्ष हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल, शिमला, सिक्किम, नेपाल, भूटान आदि स्थानों में ... फीट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं।

पद्माक (पद्मकाष्ठ)
PRUNUS PUDDUM ROXB.
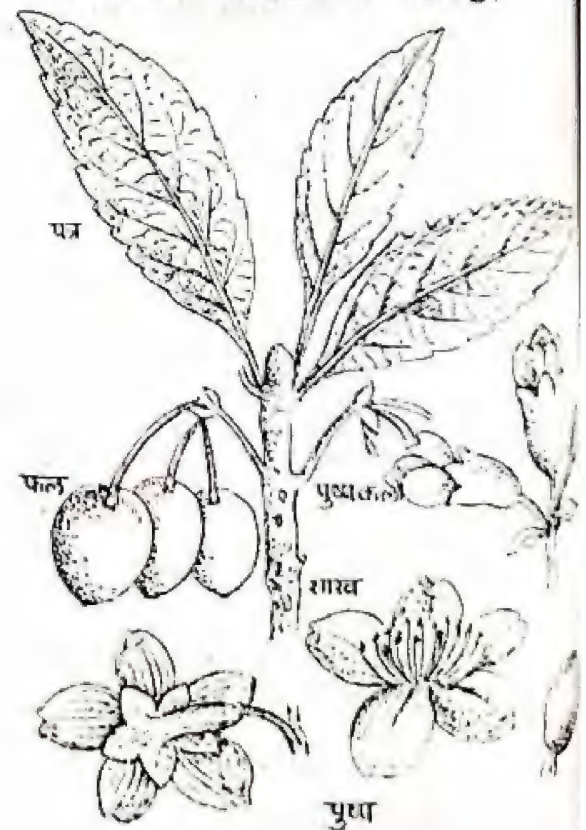
नोट-(१) चरक के वेदनास्थापन, वर्ण्य तथा कषाय स्कन्ध में और सुश्रुत के गुडूच्यादि वर्ग एवं सारिवादि और चन्दनादि गणों में इसे लिया गया है। वाग्भट्ट ने पद्मकादि गण ही अलग लिखा है।

(२) बाजारों में प्रायः असली पद्मकाष्ठ नहीं मिलता। जो इस नाम से छोटे-छोटे टुकड़े मिलते हैं, उनमें असली के लक्षण क्वचित ही पाये जाते हैं। पद्मकाष्ठ के टुकड़े वजन में भारी, भीतरी भाग रक्त पीताभ श्वेत वर्ण का तथा ऊपरी छाल पर भोजपत्रवत् उठावदार गांठें, रङ्ग में लालिमायुक्त पीला या काला, उस पर आड़ी खांचें होना चाहिए तथा हाथों से रगड़ने से मजेदार एवं मृदुसुगन्ध आनी चाहिए।

पद्मकाष्ठ पुराना हो जाने से लक्षणहीन एवं गुणहीन हो जाया करता है। यथा सम्भव औषधि कार्यार्थ बहुत पुराना गुणहीन पद्माख नहीं लेना चाहिए।

नाम-

सं०—पद्मगन्धि, पद्मक, पीतरक्त, पद्माह्वय (कमल के पर्यायवाची सब शब्द) इत्यादि। हि०—पद्माख, पद्मकाठ, चमियारी, अमलगुच्छ, फाज पोजिया इत्यादि। मराठी, गुजराती, बंगाली—पद्मकाष्ठ। अं०—बर्डचेरी (Bird cherry) हिमालयनचेरी (Himalayan cherry) लेटिन—प्रुनस पुद्दुम, प्रुनस सिरेसायडिस (Prunus cirasoides)

रासायनिक संगठन-

इसकी छाल में हायड्रोसायनिक (Hydrocyanic) नामक तीव्र विषैला एसिड होता है। अतः छाल का प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अमिगडेलिन (Amygdalin) आदि अन्य पदार्थ भी पाये जाते हैं।

इसके ताजे बीजों के तैल में आयोडीन जैसा गुण है। इसमें प्रुसिक हाइड्रोस्टेनिक एसिड होने से इसका उपयोग खाने के प्रयोगों में नहीं किया जाता।

प्रयोज्याङ्ग—काण्ड (काष्ठ), छाल, बीजों का गूदा।

गुणधर्म व प्रयोग-

लघु, स्निग्ध, कषाय, तिक्त, कटु विपाक, शीतवीर्य, दीपन, पाचन, स्तम्भन, बल्य, वातजनक, पित्त नाशक, वमन निवारक, स्वेदापनयन, आमपाचन, वर्ण्य, वेदना-स्थापन, रक्तस्तम्भक, कटु पौष्टिक, शुक्र जनन, गर्भ-स्थापन है तथा कास, श्वास, हिक्का, अग्निमांद्य, तृषा, हृद्द्रव, रक्तप्रत्यावर्तन (Regurgitation), वर्ण विकार, कण्डू, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोट, ज्वर, दाह, मेदक्षय, रक्तपित्त, शुक्रदौर्बल्य, गर्भस्रावादि गर्भाशय दौर्बल्य जन्य विकार, नाड़ी शूलादि वेदना प्रधान रोग आदि में इसकी योजना की जाती है।

यह आमाशय में श्लैष्मिककला की क्रिया बढ़ाकर या शुद्ध कर पाचन शक्ति एवं आमाशय की शक्ति बढ़ाता है। उस समय इसका स्तम्भन गुण भी स्पष्ट दिखलाई देता है। साथ ही साथ वेदनास्थापन गुण भी देखने में आता है। इन तीनों गुणों (पाचन रसोत्पत्ति, स्तम्भन और वेदना शमन) का उपयोग अजीर्ण रोग में आमाशय की श्लेष्मिक कला का प्रदाह होकर वमन-विरेचन होने या आमाशय की इस कला में शोथ युक्त क्षत के हो जाने से वमन विरेचन होने पर होता है। ऐसे समय में इसके प्रयोग से लाभ होता है। इसकी लकड़ी में स्तंभन [ग्राही] और कटुपौष्टिक गुण हैं, तथा वेदनास्थापन गुण इसकी छाल में स्थित विषैले तत्व में है। इसके फाण्ट के सेवन से उत्क्लेश [मतली] और जम्भाई दूर होती है।

इसके विषैले तत्व की शामक क्रिया शरीर के भीतर सब अवयवों पर या मुख्यतः जीवनीय केन्द्र स्थान पर होती है। श्वासोच्छ्वास केन्द्र पर इसकी शामक क्रिया का असर होने पर शुष्क कास और [राजयक्ष्मा में] अतिप्रस्वेद कम हो जाते हैं। हृदय-केन्द्र में इसकी शामक क्रिया से हृदय की बढ़ी हुई धड़कन, हृदय के बांये हिस्से में, हृत्पटल के विकृति जन्य रक्त का प्रत्यावर्तन [पीछे की ओर लौटना Mitral regurgitation] तथा हृदय पर मेदवृद्धि होने से जो एक प्रकार की खांसी होती है, इन सब पर लाभ पहुंचता है। —डा. वा. ग. देसाई।

Scanned with CamScanner

इसका काण्ड या काष्ठ स्तम्भक, कटुपौष्टिक तथा कफ पित्तशामक है। छाल—वातशामक, वेदनास्थापक तथा दाह प्रशमन है। इसके बीज का गूदा या बीज-मज्जा-मूत्रल एवं अश्मरी नाशक है।

[१] रक्तपित्त, तमक श्वास, पिपासा और दाह पर—इसके चूर्ण के साथ समभाग [३ से ४ माशा तक] चन्दन चूर्ण और खांड मिश्रित कर चावलों के धोवन के साथ आलोड़ित कर पिलाने से उक्त तीनों विकारों की शांति होती है। —च. चि. अ. ४०

रक्तपित्त पर—पद्माख, कमलकेशर, दूब, बथुआ, नीलोफर, नागकेशर और लोध का कल्क, अडूसे के क्वाथ में थोड़ा शहद मिला पिलावें। —च. चि. अ. ४

[२] हिक्का और श्वास पर—इसके चूर्ण में घृत मिलाकर आग पर डालकर धूम्र ग्रहण करें। इस प्रकार २-२ घंटे पर २-३ बार धूम्र ग्रहण करने से अथवा इसके फाण्ट के पिलाने से लाभ होता है। अथवा—इसके ३ माशा चूर्ण को घृत के साथ चटावें।

[३] ज्वर तथा रक्तष्ठीवी सन्निपात पर—पद्माख, महुवे के फूल, मुलैठी, अडूसा, खस, सुगन्धवाला, मुनक्का तथा नीलकमल के पत्र इनके क्वाथ को ठंडा कर पिलाने से बालकों और बड़ों का वात-पित्त ज्वर, मोह व प्रलाप दूर होता है। —ग. नि.।

यदि केवल पित्त ज्वर हो तो पद्माख, धनियां, सोंठ, पित्तपापड़ा, खस और सुगन्धवाला इनका क्वाथ सेवन करावें। —ग. नि.

रक्तष्ठीवीसन्निपात में—रक्तस्राव निवारणार्थ—पद्माख लाल चन्दन, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चमेली, श्वेतचन्दन, सुगन्धवाला, मुलैठी व नीम की छाल का क्वाथ पिलावें। —भा. प्र.

[४] कास पर पद्मकादि लेह—पद्माख, त्रिफला, त्रिकटु, बायबिडंग, देवदारु, खिरेंटी व रास्ना समभाग का चूर्ण कर चूर्ण के बराबर शहद तथा इतना ही घृत व खांड़ मिलाकर रख लें। इसके बार-बार चटाते रहने से सर्व प्रकार की खांसी दूर होती है [मात्रा १ तो० तक] —च. चि. अ. १७

[५] योनिकण्डू तथा गर्भपात पर—जननेन्द्रिय में सूखी खुजली होती हो तो इसे शीतल जल में घिसकर लेप करने से लाभ होता है।

वैसे शरीर के किसी भी भाग पर शुष्क खुजली हो तो इसके लेप से खाज दूर होती है तथा त्वचा की कान्ति बढ़ती है।

गर्भपात निरोधार्थ—इसे जल में घिसकर पिलाते हैं। गर्भपात की पूर्वावस्था में या जिसे बार-बार गर्भपात होता हो उसे इसके ३ से ६ माशा तक चूर्ण को जल के साथ या जल में घिसकर प्रतिदिन देवें।

नोट—मात्रा—चूर्ण ५-१५ रत्ती तक। फाण्ट-२-४ तो. औषधि के लिये काण्ड या लकड़ी ताजी नूतन ही काम में लावें। क्वाथ बनाने से इसका सत्वभाग प्रायः उड़ जाता जाता है। अतः इसे फाण्ट के रूप में ही देना ठीक होता है।

विशिष्ट योग—

[१] पद्मकादि घृत [वमन, तृष्णादि पर]—पद्माख, गिलोय, नीम की छाल, धनिया व चन्दन समभाग मिश्रित ४सेर जौ कुटकर ३२ सेर जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर छान लें।

फिर कल्कार्थ उक्त द्रव्य समभाग मिश्रित १३ तो. ४ माशा लेकर जल के साथ पीस कल्क करें [ध्यान रहे क्वाथ में लालचन्दन तथा कल्क में श्वेत चंदन लेवें] फिर उक्त क्वाथ और कल्क में २ सेर घृत मिला पकावें। घृत सिद्ध हो जाने पर छान लें।

मात्रा १ तो तक सेवन से वमन, पिपासा, अरुचि, दाह और ज्वर का नाश होता है। —यो. र.।

(२) पद्मकादि घृत नं. २ (विस्फोट आदि पर)—पद्माख, मुलैठी, लोध, नागकेशर, केसर, हल्दी, दारुहल्दी, बायबिडंग, छोटी, इलायची, तगर, कूट, लाख, तेजपात सेंधानमक और नीलाथोथा समभाग मिश्रित २० तो. लेकर पीस कर ८ सेर पानी में मिलावें तथा उसमें २ सेर घृत डाल कर घृत सिद्ध कर लें।

इसे विविध प्रकार के स्फोट, कुष्ठ, विसर्प, नासूर

Scanned with CamScanner

गण्डमाला, विशेषतः जिस गण्डमाला में घाव हो गये हों उसमें तथा सर्पादि विषैले जन्तुओं के दंश स्थान पर, मकड़ी आदि के विष पर लगाने से लाभ होता है। —बं. से.

(३) पद्मकादि तैल—पद्माख, खस, मुलैठी और हल्दी समभाग २ सेर जौ कुट कर १६ सेर जल में चतुर्थांश क्वाथ करें। कल्कार्थ राल, मजीठ, बड़ी सतावर, काकोली व श्वेत चंदन समभाग ६ तो. ८ मा. पानी के साथ पीस कर कल्क करें। उक्त क्वाथ, कल्क और १ सेर तिल तैल एकत्र मिला पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रख लें। यह तैल वात रक्त और पित्त का नाशक है। —भा. प्र.

नोट—पद्माक तैल का और भी एक प्रयोग है, जो त्वचा के लिये हित कर, तृष्णा, क्षय, व ज्वर नाशक है। इसे भा. प्र. या ब. से. में देख लें।

(४) पद्मकादि लेप—नं० १—पद्माख, खस, मुलैठी व लाल चन्दन को पीस कर लेप करने से विसर्प, रक्तपित्त दाह और त्वचा की लालिमा दूर होती है। —ग. नि.

लेप नं० २—पद्माख, कमलगट्टा, खीरे के बीज, सतावर, विदारीकन्द व ईख की जड़, समभाग महीन पीस कर धुले हुए घृत में मिला कर रक्त प्रदर हो, योनि में दाह हो, तो शरीर तथा शिर पर लेप करने से लाभ होता है। —बं. से.

पद्मावती—दे.—पनड़ी। पनटी—दे.—पनड़ी ॥

पनड़ी (Pogostemon Patchouli)

कर्पूरादि वर्ग एवं तुलसी कुल (Labiatae) के इस अनेक शाखायुक्त, अतिसुगंधित क्षुप के पत्र—अण्डाकृति, लम्बी नोक वाले, दन्तुर, लम्बे वृन्त से युक्त होते हैं।

पुष्प—तुलसी के पुष्प जैसे, गुच्छों में बहुत छोटे-छोटे आते हैं।

इसके पौधे जंगलों में (विशेषतः भारत के दक्षिण में कोंकण की ओर अधिक) होते हैं। कई प्रान्तों में यह बाग बगीचों में बोया भी जाता है। किन्तु जंगली नैसर्गिक और बोये हुए पौधों की आकृति में कुछ भेद होता है।

नोट—नं. १—इस वनौषधि के स्वरूप के विषय में बहुत मतभेद है। हमने यहां इसका संक्षिप्त वर्णन डा. वा. ग. देसाई कृत औषधि संग्रह तथा डा० नाडकर्णी की पुस्तक के आधार पर किया है।

नं. २—भावप्रकाशकार ने जिस बूटी का वर्णन पर्पटी (पद्मावती) नाम से कर्पूरादि वर्ग में किया है, हमारे ख्याल से वह यही बूटी होना संभव है।

नं. ३—उज्जैन आदि मालवा प्रान्त से जो एक लता जाति के सुगन्धित पत्र पनदी या पानड़ी नाम से आया करते हैं वे ताम्बूल (खाने के पान) पत्रवत् होते हैं। वह भी इसी का एक प्रकार मालूम देता है। तैल तथा औषधियों में सुगन्ध के लिये इनका उपयोग किया जाता है।

नं. ४—बनौषधि के प्रायः पांचों अङ्ग उत्तम सुगंधित होते हैं। रेशमी एवं ऊनी वस्त्रों के बक्सों में इसके शुष्क पत्र रखे जाते हैं। जिससे वस्त्रों में किसी प्रकार का कीड़ा नहीं लगने पाता तथा वे खुशबूदार रहते हैं।

नाम—

सं.- पाची, पर्पटी, रंजना, कृष्णा, जतुका इ.। हि.—पनड़ी, पानड़ी, पाचोलो, पपड़ी, पनटी इ.। म.—पांच, फांगला, पाचपात। गु. सुगन्धी पानड़ी, पाचा। बं.—पाटचोली, पाचपट। ले.—पोगोस्टेमन, पाचौली।

रासायनिक संगठन—

इसमें एक अति सुगन्धित उड़नशील तैल पाया जाता है। यह तैल या इतर इस बूटी के शुष्क शाखाग्रभाग और पत्रों के बाष्पीकरण विधि से निकाला जाता है।

Scanned with CamScanner

प्रयोज्याङ्ग—पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, वर्ण्य, रक्तस्तंभक, मूत्रल, वातानुलोमन है। तथा विष, व्रण खुजली, रक्त-पित्त, कुष्ठ आदि में उपयोगी है।

(१) रक्त-मूत्र (पेशाब के साथ रक्त आना) में–इसके २ तो. पत्र रस में १ मा. भांग का चूर्ण मिला सेवन कराते हैं।

(२) मूत्राल्पता या मूत्रकृच्छ्र में—इसके शुष्क पत्रों के साथ तुलसी के बीजों को मिला फाण्ट बनाकर सेवन कराते हैं। इससे पित्त प्रकोप की भी शांति होती है। १ भाग पत्र व तुलसी बीजों के मिश्रण में १० भाग उष्णोदक मिला यह फाण्ट बनाते हैं। मात्रा ½ से १ औंस तक।

पनड़ी (पचौली)
POGOSTEMON PATCHOULI HOOK.

पनस–देखो कटहल। पनियाला–देखो पानी आंवला। पनिसिगा–देखो जल पिप्पली। पन्नी–देखो खस। पपड़ी–देखो पनड़ी। पपड़िया कत्था–देखो खैर में। पपीता (पपैया)–देखो अण्ड खरबूजा।

पपीता (Strychnos Ignatii)

कारस्कर (कुचला) कुल (Loganiaceae) के एक विदेशी वृक्ष के बीजों को पपीता कहा जाता है। ये बीज १ से १½ इञ्च लम्बे, कुछ दीर्घाकार (अण्डाकार), त्रिकोण युक्त, अनियमित रूप से नोकदार, बाहर से हलके भूरे या कृष्णाभ, भीतर से कुछ स्वच्छ, अति कड़े, अत्यन्त तिक्त, गन्ध रहित होते हैं। इस वृक्ष का फल अमरूद के बराबर होता है, जिसमें उक्त बीज १५ से २० तक होते हैं।

इसके वृक्ष फिलीपाईन द्वीप तथा कोचीनचाईना में अधिक पैदा होते हैं। उधर से ही इसके बीजों का इधर निर्यात होता है।

नोट नं० १—कुचला की जो ६–७ जातियां हैं वे सब भारतवर्ष में पाई जाती हैं। वे प्रायः अन्य देशों में नहीं पाई जातीं। किंतु यही एक कुचले की जाति विशेष है जो भारत में नहीं होती। पपीता यह नाम वास्तव में मलाया भाषा का है। चीनी भाषा में इसे 'हॉंग नान' कहते हैं। इन बीजों का सर्व प्रथम औषधि उपयोग इन्हीं लोगों ने युरोपियनों को बतलाया तथा उन्होंने इसका नामकरण अपने गुरु सेंट इग्नेशियस के नामानुसार किया।

ब० गु०।

Scanned with CamScanner

नं २—सर्व साधारण में अण्डखर्बूजा को पपीता, पपई कहते हैं। कोई कोई भ्रमवश तुवरक (चालमोगरा) के बीज को ही पपीता मानते हैं। किन्तु चालमोगरा, तुवरक कुल (Flacourtiaceae) का है तथा जिस पपीते का यहां वर्णन हो रहा है, यह कुचला कुल का है।

नं० ३—यह एक विदेशी बीज होने से तथा प्राचीन काल में इसका उपयोग भारत में नहीं होने से आयुर्वेदीय ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं प्राप्त होता।

नाम–

हि०—पपीता, पापीता। अं०—सेंट इग्नेशियस बीन (St. Ignatius bean)। ले०—स्ट्रिक्नोस इग्नेशिआई। इग्नेशिया अमरा (Ignatia amara)।

रासायनिक संघठन–

कुचला के समान ही इसके सत्व व उपादान होते हैं, प्रत्युत् इसमें विषैला सत्व (Strychnine) कुचला से दुगुनी मात्रा में तथा अधिक प्रभावशाली होता है। इसमें यह सत्व १५ प्रतिशत तथा ब्रुसाईन (Brucine) ०.५ % पाया जाता है।

प्रयोज्यांग—बीज।

गुणधर्म व प्रयोग–

उष्ण, रूक्ष, अतितिक्त, उष्णवीर्य, सर्वप्रकार के विषों का निवारक,शोथहर, कफहर,वातानुलोमन, शूलहर,आर्तव जनन, वाजीकर तथा अतिसार, वमन, विसूचिका, प्लेग, कफजकास, श्वास, जलोदर, वातवेदना, आमवात, अर्श, पक्षवध, मूर्च्छा आदि में प्रयुक्त होता है।

नोट—यूनानी तथा होमियोपैथी में इसका सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। यूनानी हकीम हवा, पानी में जहरीला असर होने पर इसे अपने पास रखते या सेवन कराते हैं। प्लेग के रोगी को गुलाब जल या शीतल जल में घिसकर इसे पिलाते तथा गिल्टी पर लगाते हैं। इसी प्रकार सर्प दंश पर भी इसका उपयोग करते हैं। हैजा, चेचक, सूजन, आतशक, रक्तविकार, मूर्च्छा, विष तथा अनेक प्रकार के वातविकारों में इसे काम में लाते हैं। पित्ती, चकत्ते, दाद, गांठ, जहरीली सूजन एवं अनेक प्रकार के चर्म रोगों पर इसका लेप करते हैं। इसी प्रकार होमियोपैथी में भी इसका अत्यधिक उपयोग किया जाता है।

(१) आंत्र तथा आमाशय के शूल पर—इसे २ रत्ती की मात्रा में अर्क गुलाब के साथ घिसकर पिलाते हैं। अतिसार में भी इससे लाभ होता है।

(२) मूर्च्छा पर—रोगी के मस्तक के बाल दूरकर इसके चूर्ण को मलते हैं तथा इसको जल में घिसकर मुख में टपकाते हैं।

(३) पक्षवध, सुन्नवात, खुजली आदि पर—इसके चूर्ण को तिल तैल में पकाकर, छानकर मालिश करते हैं।

(४) विषैले जंतुओं के दंश पर तथा अर्बुद (रसौली) पर इसका लेप करते हैं। पीड़ा दूर होकर लाभ होता है।

(५) प्लेग पर—प्लेग का आक्रमण होते ही यदि

पपीता
STRYCHNOS IGNATII BERG.

Scanned with CamScanner
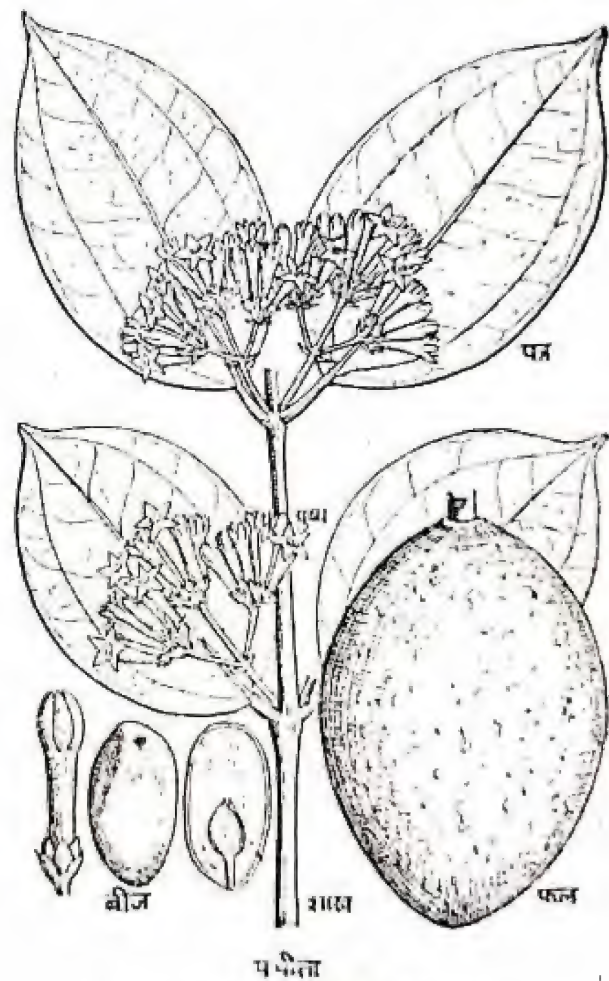
आधी-आधी रत्ती की मात्रा में इसका चूर्ण जल के साथ २-२ घंटे के अन्तर से दिया जावे तो २४ घण्टे के भीतर ही प्लेग का ज्वर तथा संधि पीड़ा शांत होती और गांठ भी मुलायम हो जाती है। यदि प्लेग का आक्रमण होकर ६ घंटे से अधिक समय व्यतीत न हुआ हो तो एक ही दिन में उक्त प्रकार से लाभ होता है। प्लेग के प्रतिकारार्थ प्रतिदिन प्रातः सायं १ से २ रत्ती की मात्रा में इसके चूर्ण को जल के साथ लेते रहने से प्लेग के दिनों में भी इसका आक्रमण नहीं होता। —जंगलनी जड़ी बूटी।

इसमें प्लेग के आक्रमण को रोकने की तथा आक्रमण के बाद उसके विष को दूर करने की प्रभावपूर्ण क्षमता विद्यमान है। प्लेग के दिनों में जिन लोगों ने इसके बीजों को कमर और हाथ पर बांधा था उनमें से एक पर भी प्लेग का आक्रमण नहीं हुआ।—डा० महेन्द्रलाल सरकार सी. आई. ई. (कलकत्ते के सुप्रसिद्ध होमियोपैथिक डाक्टर)।

इसके दो बीजों को लेकर उनके अन्दर छिद्रकर इस प्रकार तावीज बनावें कि बीजों का निम्न भाग खुला रहे और शरीर से स्पर्श करता रहे। फिर इस तावीज को बाजू पर या गले में इस प्रकार धारण करें कि खुला भाग शरीर से स्पर्श करता रहे। इसे धारण करने से प्लेग का आक्रमण कदापि नहीं होता। कारण शरीर में जितना विषैला अंश रक्त में उत्पन्न होता है, उसे अपनी शक्ति से ये बीज चूस लेते हैं। २ मास बाद यह गुण हीन हो जाता है, अतः २ मास बाद पुनः नूतन बीजों का तावीज बनाकर धारण करें। पुराने तावीज के बीजों को भूमि में गाड़ देवें।

जिसे प्लेग का आक्रमण हो उसे १ रत्ती पपीता पानी में घिसकर २-२ घंटे के अन्तर से पिलाने से वमन-विरेचन होकर आराम हो जायगा।

(६) हैजा पर—इसमें एक यह विशेष गुण है कि हैजा की दशा में इसे घिसकर पिलाने से वमन विरेचन होकर आराम हो जाता है। यह इसमें अद्भुत गुण है कि एक रोग में वमन विरेचन कारक है तो दूसरे रोग में वमन विरेचन को बन्द करता है।

—भा. ज. बूटी से साभार।

अथवा—इसके साथ समभाग कपूर, [illegible] का सत), जदवार, दरियाई नारियल, [illegible] हींग, अजवायन का सत, काली मिर्च और [illegible] लेकर गुलाब जल में घोटकर १-१ रत्ती की [illegible] कर १-१ गोली २-२ घंटे के अन्तर से [illegible] साथ देवें। तत्काल लाभ होता है। —जंगलनी [illegible]

अथवा—इसके साथ बकायन के बीज, दरियाई [illegible] यल की गिरी और श्वेत आक की जड़ [illegible] चूर्ण कर शहद या जूने गुड़ के साथ [illegible] की गोलियां बना रोगी को देने से लाभ होता है।

—वै० [illegible]

अथवा—केवल इसी को १-२ रत्ती की मात्रा [illegible] गुलाब जल में घिस-घिसकर कई बार पिलाने [illegible] मरणासन्न रोगी भी ठीक हो जाता है। —[illegible]

नोट—मात्रा—बीज का चूर्ण २ चावल से ४ चावल तक अधिक से अधिक दिन में ३ बार देवें।

उष्ण प्रकृति के लिए हानिकारक है। हानि निवारणार्थ हरी कासनी का प्रयोग करें।

इसका प्रतिनिधि—दरियाई नारियल है।

ध्यान रहे पपीते का विष बड़ा सांघातिक होता है। अतः इसके उपयोग में बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

विशिष्ट योग—

(१) अर्क पपीता (Tinctura Ignatiae)—इसके १ भाग चूर्ण को १० भाग मद्यसार या रेक्टीफाइडस्पिरिट में मिला कार्क बन्द बोतल में १०-१५ दिन रखने के बाद छानकर काम में लावें। मात्रा—३ से २० बूंद। थोड़े से जल के साथ प्रातः सायं या केवल एक बार लेते रहने से बलवीर्य की पुष्टि होती है। यह वातनाशक पौष्टिक (Nervine tonic) है। हैजे में भी यह उपयोगी है।

(२) हब्ब (वटी) पपीता—पपीता ६ मा., सोंठ, पिप्पली, कालीमिर्च, पोदीना शुष्क, आक के फूल, सेंधा नमक, कालानमक १-१ तो. एकत्र कूट छानकर नीबूरस में खरलकर चने जैसी गोलियां बना लें। १-१ गोली प्रातः सायं भोजन के बाद जल से लेवें। अजीर्ण, उदरशूल, वातशूल, हैजा, अफरा (आध्मान) में लाभप्रद है।

Scanned with CamScanner

आमाशय के रोगों में २ गोली देवें। —पु० सि० गु०र।

परगाछा—देखिये बान्दा।
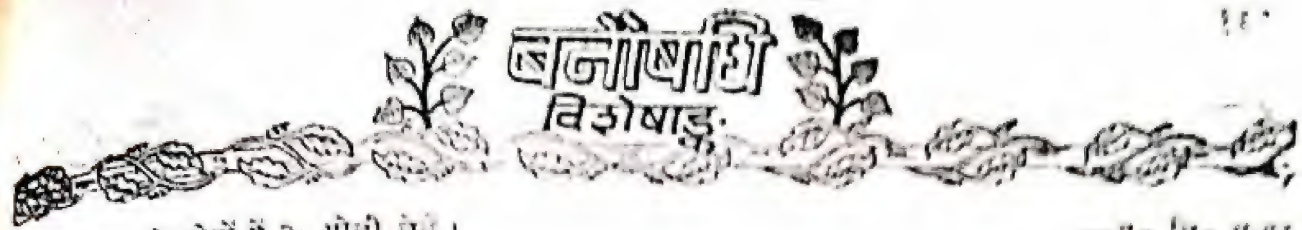
परजंव (Olea Dioca)

पारिजात कुल (Oleaceae) के इस छोटे वृक्ष की छाल भूरी, मुलायम; पत्र ७.६ सें० मी० से १२.५ सें० मी० तक लम्बे तथा ३.२-५ सें० मी० तक चौड़े होते हैं।

यह वनौषधि मध्यप्रांत, बंगाल और आसाम के जंगलों में पैदा होती है।

नाम–

बम्बई की ओर—परजंव कवायु। बंगाल-अट्टजम। मध्यप्रांत—फूलुगर। लै० —ओलिया डायोका।

गुण धर्म व प्रयोग–

मध्यप्रांत की ओर इसकी छाल ज्वरनाशक औषधि की तरह काम में ली जाती है। —व. चं.।

परपट—देखिए पित्तपापड़ा।

परवल [Trichosanthes Dioica]

शाकवर्ग एवं कोशातकी कुल (Cucurbitaceae)—की इसकी वर्षायु, बड़ी लम्बी लता के कोमल, हरिताभ काण्ड की प्रत्येक ग्रन्थि से जड़ें निकलकर यह लता फैलती है। पत्र–हृदयाकार, अखण्ड, खुरदरे, कंगूरेदार ३–४ इंच लम्बे, २ इंच चौड़े, नुकीले; पत्रवृन्त-¾ इंच लम्बा; पुष्प–श्वेत वर्ण के पुष्प का वाह्यकोष १ ¾ इञ्च लम्बा तथा सकड़ा; फल—लम्बगोल -३½ इञ्च लम्बे, दोनों सिरों पर नुकीले, ऊपर श्वेत धारियों से युक्त, कच्ची दशामें श्वेताभ हरित, पकने पर पीले या रक्ताभ पड़ जाते हैं। बीज ½ से ½ इञ्ची गोल चिपटे होते हैं।

परवल
TRICHOSANTHES DIOICA ROXB

भारत में उत्तर प्रदेश के गंगा तटवर्ती प्रान्तों में तथा बंगाल, पंजाब, आसाम आदि में विशेषतः रेतीली भूमि में अधिक पैदा किया जाता है।

नोट–नं० १ मधुर और कटु भेद से इसकी मुख्य दो जातियां हैं। इनमें से मधुर की ही एक जाति Taichosanthes nervifolia नामक होती है। जो विशेषतः बंगाल, पंजाब आदि पश्चिम भारत, दक्षिण भारत, तथा कुर्ग आदि समशीतोष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों में अधिक होती है। इसके गुणधर्म आदि प्रस्तुत मधुर परवल जैसे ही हैं।

इसकी कड़ुवी जाति के भी दो प्रकार हैं। लेटिन में

इन दोनों को Trichosa: thes ct cun e: ne कहा जाता है। इनमें से एक का वर्णन चचेंड़ा जंगली के प्रकरण (भाग ३) में दिया जा चुका है। दूसरी कटु परवल की लता उक्त वर्णित मधुर की लता जैसी ही होती है। यह प्रायः जंगलों में तथा पहाड़ी जमीन में अधिक पैदा होती है। इसके पत्र—प्रायः त्रिकोणाकार, सिराजालों से युक्त खुरदरे होते हैं। पुष्प–श्वेत वर्ण के; फल–उक्त मधुर परवल जैसे ही किंतु आकार प्रकार में छोटे होते हैं। इसके पत्र, फलादि कड़वे होते हैं।

मधुर का प्रायः शाक बनाया जाता है तथा कड़ुवे का प्रयोग औषधि कार्य में होता है।

नोट नं० २—चरक के तृप्तिघ्न एवं तृष्णा निग्रहण गणों में तथा सुश्रुत के पटोलादि व आरग्वधादि गण में इसकी गणना की गई है।

सुश्रुत के पटोलादि गण में पटोल, लालचन्दन, पतंग, मूर्वा, गिलोय, पाठा और कुटकी है। यह गण पित्त, कफ, अरुचि, ज्वर, वमन, कण्डू, विष नाशक है। तथा व्रणों में लाभदायक है।

वाग्भट के पटोलादि गण में पटोल, कुटकी, लालचन्दन, महुआ, गिलोय और पाठा है। यह गण कफ, पित्त, कुष्ठ, ज्वर, विष, वमन, अरुचि तथा कामलानाशक है।

नाम–

सं.—पटोल, कूलक, पांडुक, राजीफल इ.। हि.–परवल, परवर, परोरा, पलवल, पटोली। इ.। म.–पड़वल, गु.—पाड़र, मीठा पटोल। बं.—पटोल, स्वादु पटोल, पलता। अं—सेसपाडुला (Sespadula)। ले.—ट्रायकोसेन्थस डायोइका।

रासायनिक संगठन—

इसमें ९२.३% जल, ०.५% खनिज द्रव्य, २.५% प्रोटीन, ०.३% वसा, १.९% कार्बोहाइड्रेट, ०.०३% कैलशियम, ०.०४% फासफोरस तथा १७ मिलीग्राम लोहा पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—फल, पत्र, मूल।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु मधुर, उष्ण, स्निग्ध, दीपन, पौष्टिक, कामोद्दीपक, कफ निःसारक, रक्त विकार नाशक, हृद्य, त्रिदोषहर, कास, ज्वर, कृमि आदि नाशक है।

मूल —मृदु विरेचक है।

परवल के फलों को अकेले या मांस के साथ पकाकर साग बनाई जाती है, जो पौष्टिक, शुद्ध धातु उत्पादक होती है। लघु या शीघ्र पचने वाली होने से रोगियों के लिये उत्तम पथ्य रूप है। पथ्यरूप में इसे इस प्रकार बनाकर देना ठीक होता है:—

(१) परवलों को काटकर १६ गुने जल के साथ पकावें। उसमें, पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सौंठ, काली मिर्च, जीरा, धनियां, आदि मसाले एवं नमक भी अन्दाज से मिला लें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर छान कर थोड़ी थोड़ी देर में थोड़ा थोड़ा पिलावें। यह हलका, तृप्तिकारक, दोष पाचक एवं बल्य है।

यदि रोगी के दोष विशेष प्रबल न हों तो परवलों को छील कर टुकड़े कर लें तथा वैसे ही (बिना घृत या तैल के) तवे पर भून लेवें। और उसमें अन्दाज से नमक, काली मिर्च, जीरा, धनियां तथा अदरक डाल कर जल के छींटे देकर मंद आंच पर रख दें। अच्छी तरह पक जाने पर उतार कर रोगी को थोड़ा थोड़ा खिलावें। यह भी उत्तम हलका पथ्य है

(२) जीर्ण ज्वरों में–पत्र सहित इसकी लता १ तो. को समभाग सूखे धनिये के साथ जौ कुट कर रात्रि के समय २० तो. तक जल मिला कर रख देते हैं। प्रातः मल छान कर उसमें आवश्यकतानुसार शहद मिला आधा प्रातः तथा आधा शाम को पिलाते हैं।

नोट–कच्चे फलों का ताजा रस शीतल, मृदुरेचक है। इसके साथ अन्य पौष्टिक द्रव्य मिला पुष्टी के लिये देते हैं।

इसके पत्र दीपन, पाचन, लघु, स्निग्ध, वृष्य, उष्ण एवं ज्वर, कास, कृमि रोग नाशक हैं। ज्वर में इसका क्वाथ देते हैं।

Scanned with CamScanner

अग्नि दग्ध पर पत्तों के क्वाथ में कपड़ा भिगो कर दग्ध स्थान पर रखने से जलन शान्त होती है। इसके पके फल खट मीठे होते हैं। इनका रायता उत्तम बनाया जाता है।

उष्ण प्रकृति के लिये परवल कुछ हानिकर होते हैं। हानि निवारक हरा और सूखा धनिया है। इसका प्रतिनिधि तुरई है।

कडुवा परवल—लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु विपाक, उष्ण वीर्य त्रिदोष शामक, रोचन, दीपन, पाचन, तृष्णा निग्रहण, पित्तसारक, अनुलोमन, रेचन, रक्तशोधक, वेदनास्थापन, केश्य, व्रणशोधन, रोपण, बल्य, विषघ्न है तथा अरुचि अग्निमांद्य, तृष्णा, दाह, यकृद्विकार, उदर रोग, अर्श, कृमि, रक्तपित्त, शोथ, कास, कुष्ठ, कण्डू, पित्तज्वर, जीर्णज्वर दौर्बल्य आदि में प्रयुक्त होता है।

शिरः शूल में इसकी जड़ को पीस कर लेप करते हैं व्रण तथा खालित्य (गंज या बालों के गिरने पर) में पत्र स्वरस लगाते हैं। सर्व प्रकार के ज्वरों पर इसके फल, वच और चिरायता इनका क्वाथ उपयोगी है। पित्तज्वर में इसके पत्र और धनिया का क्वाथ दिया जाता है। ज्वर में पत्र रस का मर्दन भी कराते हैं। फलों का क्वाथ यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर, कामला, तथा अन्य उदर व्याधियों में दिया जाता है। इसके कच्चे फलों के स्वरस की भावनायें पारद प्रधान शोधन औषधियों में दी जाती हैं जिससे वे कुष्ठ, वातरक्त, विचर्चिका आदि पर उत्तम कार्यक्षम होती हैं। फलों को जल के साथ पीस छान कर पिलाने से वमन द्वारा विष निकल जाता है।

ज्वरों पर कफ पित्तज ज्वर हो तो पटोल, कुटकी, नीम की छाल और हरड़ का क्वाथ पिलावें। —यो. र.।

इसके पंचांग का क्वाथ सेवन कराने तथा पञ्चाङ्ग ३ मा. और धनिया ३ माशा एकत्र रात्रि के समय जल में भिगो प्रातः छानकर पिलावें, एवं पुनः प्रातः भिगोकर शाम को पिलाने से ३-४ दिनों में कष्टप्रद किसी भी प्रकार का तीव्र ज्वर दूर हो जाता है।

कफ ज्वर हो तो डण्ठल सहित इसके पत्र ६ माशा और सोंठ ६ माशा का एकत्र क्वाथ कर आधा प्रातः तथा आधा शाम को शहद मिलाकर पिलाने से कफ सरलता से गिरने लगता है, आम का पाचन होता, मल दोष दूर हो जाता तथा ज्वर शमन हो जाता है।

विषम ज्वर पर—पटोल, कुटकी, मुलैठी, हरड़ और नागरमोथे का क्वाथ पिलावें। —वैद्य जीवन।

मसूरिका आदि विस्फोटक ज्वरों पर—पटोल पत्र, गिलोय, नागरमोथा, अडूसा, धमासा, चिरायता, नीम छाल, कुटकी व पित्तपापड़ा का क्वाथ उत्तम लाभदायक है। —भै. र.।

क्वाथ-द्रव्य मिश्रित २ तो. को ३२ तो. जल में पकावें। ८ तो. शेष रहने पर दो भाग कर ४-४ घंटे से पिलावें। इससे चेचक के अपक्व दाने बैठ जाते तथा पक्व सूख जाते हैं।

अथवा—पटोल की जड़, लाल चौलाई की जड़, खैरसार व आमला इनका क्वाथ ठंडाकर पीने से भी लाभ होता है। —वृ. मा.।

वात कफ ज्वर हो तो पटोल पत्र, सोंठ, इन्द्रजौ व पिप्पली का क्वाथ सेवन करने से लाभ होता है, बेचैनी, शूल, श्वास, कास, अरुचि व मलबद्धता दूर होती है। यह क्वाथ दीपन पाचन भी है। —बं. से.।

ऐकाहिक (इकतरा) ज्वर पर—पटोल पत्र, त्रिफला, नीम छाल, मुनक्का, अमलतास का गूदा व अडूसा का क्वाथ, शहद और मिश्री मिलाकर सेवन करें। —शा. सं.।

सतत विषम ज्वर हो तो पटोल-पत्र, इन्द्रजौ, देवदारु, गिलोय, और नीम पत्र का क्वाथ सेवन करें। —ग. नि.।

पित्तज ज्वर पर—पटोल पत्र व इन्द्रजौ के क्वाथ में शहद मिला सेवन करने से तृषा, दाह सहित भयङ्कर पित्त ज्वर की शांति होती है। —बं. से.।

ज्वर पर अनुवासन या स्नेह बस्ति—पटोल, नीम-छाल, गिलोय, आमला और मैनफल समभाग मिश्रित ४ सेर, पाकार्थ जल ३२ सेर, शेष क्वाथ ८ सेर। कल्कार्थ उक्त द्रव्य समभाग मिश्रित १३ तो. ४ मा. लेकर जल के साथ पीस लेवें। फिर उक्त क्वाथ, कल्क तथा २ सेर तैल को एकत्र मिला तैल सिद्ध कर लेवें। इस तैल की

Scanned with CamScanner

बस्ति देने से ज्वर नष्ट होता है। —वं. से.।

नोट—चरकसंहिता में भी ज्वर पर पटोलादि बस्ति का विधान है। —च. चि. अ. ३।

(४) वमन और अतिसार पर—पटोलपत्र, जौ (मूल में 'यव' पाठ होने से कई इन्द्र जौ ग्रहण करते हैं, किंतु जौ या जव धान्य ही लेना उचित जंचता है) और धनियां इनके क्वाथ को ठंडाकर उसमें खांड व शहद मिलाकर सेवन से वमन तथा अतिसार में लाभ होता है। —भै. र.।

(५) वातरक्त पर—पटोल पत्र, कुटकी, शतावर, हरड़, बहेड़ा, आमला और गिलोय, ये सब मिश्रित जौकुट चूर्ण २ तो. का ३२ तोले जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर सेवन से दाह युक्त वातरक्त शांत होता है। —भै. र.।

नोट—क्वाथ सिद्ध होकर ठंडा होजाने पर उसमें खांड़ और शहद मिलाकर पिलाना और भी श्रेष्ठ है। —भा. प्र.।

(६) शोथ पर—पटोल पत्र, त्रिफला, नीम छाल तथा दारुहल्दी इनके क्वाथ में शुद्ध गूगल मिलाकर सेवन से तृष्णा एवं ज्वर युक्त पित्तज शोथ (कफज शोथ भी) नष्ट होता है। —वं. से. व भै. र.।

पित्तज शोथ पर लेप—पटोल, मुलैठी, नीम छाल, दारुहल्दी, सतौना, अडूसा और सारिवा सब के समभाग मिश्रित महीन चूर्ण को घृत मे मिलाकर लेप करें। —ग. नि.।

(७) विसर्प और दुष्ट व्रण पर—पटोल पत्र, नीम छाल, दारुहल्दी, कुटकी, त्रायमाणा और मुलैठी इनका क्वाथ विसर्प को नष्ट करता है —यो. र.। गद निग्रह कार ने इसमें गिलोय भी मिलाया है।

विसर्प के रोगी को पटोलपत्र, नीमछाल, पिप्पली, मैनफल और इन्द्रजौ का क्वाथ पिलाने से वमन होकर विसर्प रोग नष्ट हो जाता है। —ग. नि.।

पटोल पत्र, नीम छाल, असन (विजयसार) की छाल और त्रिफला इनके क्वाथ में शुद्ध गूगल मिला प्रातः सेवन करने से विसर्प, विस्फोट एवं दुष्ट व्रण नष्ट होता है। —भा. प्र.।

(८) उपदंश पर—पटोल पत्र, नीम छाल, त्रिफला और गिलोय का क्वाथ सेवन कराने से सर्व प्रकार के उपदंश में लाभ होता है। —भै. र. [illegible]

(९) रक्त पित्त पर—इसके पत्र के साथ [illegible] नीम छाल, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन और [illegible] में शहद और मिश्री मिलाकर सेवन करावें। [illegible]

(१०) मुख रोग तथा गुद रोग पर—पटोल [illegible] त्रिफला, इन्द्रायन, त्रायमाणा, कुटकी, हल्दी व [illegible] इनके क्वाथ में शहद मिला सेवन से समस्त मुख रोग [illegible] होते हैं। —वं. से. [illegible]

पटोल-पत्र, नीम. जामन, आम और चमेली [illegible] के क्वाथ से कुल्ले कराने से मुखपाक दूर होता है। —वं. से. [illegible]

गुद रोग—गुद दाह एवं गुदपाक हो तो पटोल और मुलैठी के क्वाथ से प्रक्षालन (गुदा को धोने) [illegible] से लाभ होता है। अहिपूतना रोग (बालकों का [illegible] जिसमें बच्चों के मलमार्ग या मूत्रमार्ग की सफाई न [illegible] से खुजली होकर फुन्सिया निकल आती है) पर—पटोल, त्रिफला और रसौत के कल्क (३ तो. ४ मा.) [illegible] क्वाथ (सिद्ध क्वाथ २ सेर) में (आधा सेर) घृत [illegible] मंद आंच पर घृत सिद्ध कर (माता के दूध के साथ [illegible] ३ मा. तक) पिलावें। कष्ट साध्य वह रोग दूर होता है।

(११) कफ पित्त या पित्त कफ के प्रकोप पर—[illegible] और सोंठ कल्क अथवा केवल पटोल के कल्क से सिद्ध [illegible] का सेवन कफ पित्त जन्य व्याधियों का नाशक है। [illegible] १० तो., जल ४ सेर और घृत १ सेर)। —[illegible]

यदि पित्तज शूल हो तो पटोल पत्र, त्रिफला, [illegible] की छाल इनके क्वाथ में शहद मिलाकर पिलावें। [illegible] कफज शूल में विरेचन और वमन कराना चाहिए। —यो. र. + [illegible]

(१२) नेत्र रोग पिल्ल (यह एक नेत्र वर्त्मगत रोग है, जिसमें बार बार धोने पर भी वर्त्म या पलक जुड़ जाते हैं। इसे पलक चिपकना कहते हैं) पर—पटोल पत्र, [illegible] और आमला इनके मन्दोष्ण क्वाथ में शहद मिलाकर [illegible] के समय पीने से लाभ होता है। —ग. नि.।

(१३) बाल रोग—आमातिसार हो तो पटोल [illegible]

जड़, सोंठ, बच, बायविडङ्ग, अजमोद और पिप्पली तण्डुल (छोटी पीपल को दूध में भिगोकर मलने से जो छोटे छोटे दाने निकलते हैं वे दाने) सबको पीसकर मन्दोष्ण जल में मिला बालक को पिलाने से लाभ होता है।
—बं. से.।

यदि बालक को क्षत, विसर्प, विस्फोटक तथा ज्वर हो तो-पटोलपत्र, त्रिफला, नीम छाल और हल्दी इनका क्वाथ उचित मात्रा में थोड़ा-थोड़ा पिलावें। —भा. प्र.।

विशिष्ट योग–

(१) पटोलमूलादि योग (कुष्ठ, शोथादिनाशक)–पटोल-मूल, इन्द्रायण मूल, त्रिफला और निसोथ ४-४ तो., त्राय-माणा व कुटकी १½-१½ तो. तथा सोंठ १ तो. सबको जौकुट करलें। इसमें से २ तो. चूर्ण को ३२ तो. जल में पका ८ तोले शेष रहने पर छानकर नित्य सेवन से कुष्ठ, शोथ, ग्रहणी, अर्श, हलीमक (Chlorosis), हृदय तथा बस्ति का शूल और विषमज्वर ६ दिन में ही नष्ट हो जाता है। इस दोपहर प्रयोग के सेवन के बाद इसके पच जाने पर पुराने शालि के भात को जांगल पशुपक्षियों के मास रस के साथ खावें। —च. चि. अ. ७।

(२) पटोलादिक्वाथ (अम्लपित्त, शूलादि नाशक)–पटोल, नीम छाल, गिलोय और कुटकी इनका क्वाथ पित्तकफ प्रधान अम्लपित्त, शूल, भ्रम, अरुचि, अग्निमांद्य, दाह, ज्वर और वमन को दूर करता है। —ग. नि.।

पटोलादि क्वाथ नं. २ (कण्डू, पामादि नाशक)—पटोल पत्र, सोंठ और धनिया इनका क्वाथ खुजली पामा, शूल, कफपित्त तथा अग्निमांद्य नाशक है। —ग. नि.।

(३) पटोलादि चूर्ण (उदर रोग नाशक)—पटोल-मूल, हल्दी, बायविडंग, त्रिफला १-१ तो०, कमीला २ तो., नील का पंचाङ्ग (या नील के बीज) ३ तो०, निसोथ ४ तो. इनका महीन चूर्ण ४ तो० की मात्रा (आधुनिक मात्रा १ से २ मा०) गोमूत्र के साथ पीवें। जब इसके सेवन से विरेचन हो जाय तब मण्ड और पेया पीकर ६ दिन तक त्रिकटु युक्त पकाया हुआ दूध पीवें। तदनन्तर पुनः चूर्ण का प्रयोग करें। इस प्रकार तब तक बारम्बार करता रहे जब तक उदर रोग नष्ट न हो जाय। यह चूर्ण सर्व उदर रोगों (जलोदरादि) का नाशक है। कामला, पांडु रोग व शोथ को कम करता है। यह चूर्ण उदर रोग में प्रशस्त माना गया है। —च. चि. अ. १३

(४) पटोल मूलादि कषाययुक्त घृत (शोथ, विस-र्पादि नाशक)—पटोल मूल, देवदारु, दन्तीमूल, त्रायमाणा पिप्पली, हरड़, इन्द्रायण, मुलैठी, कटुकी, लाल चन्दन, हिज्जल बीज (अथवा जल वेतस) और दारुहल्दी १-१ तो० सबका चूर्ण आठ गुने (९६ तो०) जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर इस क्वाथ में १३ तो० घृत मिला पिलावें (आधुनिक प्रमाण ऐसा होना चाहिये- उक्त क्वाथ्य द्रव्य कुल मिला कर २ तो. लेकर ३२ तो. जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छान कर उसमें १ या २ तो० गोघृत डाल कर रोगी को पिलावें)। यह प्रयोग विसर्प, दाह, ज्वर, सन्निपात, तृष्णा, विष और शोथ को नष्ट करता है। —च. चि. अ. १२

(५) पटोलादि घृत (नेत्र विकार आदि नाशक)—पटोल पत्र (या फल), कुटकी, दारुहल्दी, नीम छाल, अडूसा छाल, त्रिफला, धमासा, पित्तपापड़ा और त्रायमाण ४-४ तो. तथा आमला ६४ तो० सबको जौकुट कर २५ सेर ४८ तो० जल में पकावें। ६ सेर ३२ तो. जल शेष रहने पर छान लें। कल्कार्थ चिरायता, इन्द्रजौ (या कुड़ा छाल), नागरमोथा, मुलैठी, श्वेत चन्दन व पिप्पली सम-भाग मिश्रित १३ तो० लेकर जल के साथ पीसलें।

उक्त क्वाथ और कल्क के साथ १ सेर तक घृत मिला कर घृत सिद्ध कर लेवें। मात्रा ६ मा० से १ तो. तक सेवन से नेत्र, कान, नाक, त्वचा और मुख के रोग, व्रण, कामला, ज्वर, कुष्ट, विसर्प, तथा गण्डमाला दूर होती है। यह शुक्रवर्धक है। —भै. र.

(६) पटोलादि तैल—पटोल, मैनफल, नीमछाल, गिलोय और मुलठी १-१ तो० लेकर जल के साथ पीस लेवें। फिर इस कल्क के साथ ४ सेर तैल और १६ सेर जल मिला पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान लें।

इस तैल की अनुवासन बस्ति लेने से सर्व प्रकार के ज्वर, खांसी और वातज रोग नष्ट होते हैं। —बं. से.

Scanned with CamScanner

पर्णबीज (Bryophyllum Calycinum)

यह स्वकुल-पर्ण बीज कुल[१] (Erassulaceae) का बहु वर्षायु, मांसल प्रधान क्षुप है। इसके काण्ड चिकने रोमश, मोटे, गोले, कुछ लाल वर्ण के १ से ४ फुट तक ऊंचे, पत्र-मांसल, अण्डाकार, दन्तुर, अग्रभाग में गोल चौड़े, निम्न भाग की ओर क्रमशः पतले ३-६ इंच लम्बे पुष्प-नलिकाकार, २ इंच लम्बे रक्ताभ हरित वर्ण के, नीचे की ओर झुके हुये; फली-४ भागों में विभक्त, अनेक बीजयुक्त होती है। इसके उक्त पत्रों के दन्तुर किनारों में भी एक प्रकार के बीज होते हैं जिनसे पत्तियों के जमीन पर गिरने से यथासमय नवीन क्षुपों की उत्पत्ति होती है। इसीलिये इसे 'पर्ण बीज' कहते हैं। फूल—शीत काल में एवं फल-ग्रीष्म काल में आते हैं।

ये पौधे भारत के उष्ण प्रदेशों में, खाली पड़ित भूमि में तथा बागों में शोभा के लिये लगाये जाते हैं। बंगालके दक्षिण भाग में ये अधिक पैदा होते हैं। वर्षा काल में जमीन को थोड़ी खोद कर इसके एक पत्ते को तिरछाकर गाड़ देने से इसमें शाखाएँ अंकुरित होकर बढ़ने लगती हैं। चारों ओर अंकुर फूट कर इसका पौधा एक ही वर्ष के अन्दर ही अच्छा फैलता हुआ २-३ हाथ ऊंचा हो जाता है। इससे अधिक ऊंचा यह नहीं बढ़ता। कई लोग गमलों में भी इसे लगाते हैं।

नोट नं० १—स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री गणनाथ सेन जी के अनुयायी इसी को पाषाण भेद मानते हैं। तथा पाषान भेद के स्थान पर इसी का उपयोग करते हैं।

नोट नं० २—इसकी ही एक बड़ी जाति को बंगाल की ओर हेमसागर, हिमसागर, कोमपाना आदि तथा लैटिन में कैलचीलेसिएटा या पिनाटा (K lanchoe Laciniata or K. Pinnata) कहते हैं। इसके क्षुप, पत्रादि अपेक्षाकृत बड़े तथा अधिक मांसल होते हैं। इसमें फूल वर्षाकाल में और फल शीतकाल में आते हैं। गुणधर्म में प्रस्तुत पर्णबीज के गुणधर्म के समान ही है। इसके पौधे भारत के उत्तर पश्चिम प्रदेशों के पहाड़ी स्थानों में दक्षिण के प्रान्तों में, बंगाल, बिहार आदि में साधारण पड़ित स्थानों में अधिक पाये जाते हैं।

इसकी ही एक जाति कैलंची स्पेथ्युलेटा (Kalenchoe Spathulata) है। इसे भाषा में निनुरी, तातारा आदि कहते हैं। इस क्षुप के ऊपर के पत्तों की अपेक्षा नीचे के पत्र अधिक लम्बे (१० इंच तक लम्बे) होते हैं। पुष्प-पीतवर्ण के लम्बी सी मंजरी में आते हैं। इसके भी गुण-धर्म प्रायः उक्त जाति के गुणधर्म जैसे ही हैं। बकरियों के लिये यह विषैला है।

पर्णबीज (हिमसागर)

BRYOPHYLLUM CALYCINUM SALISB

---
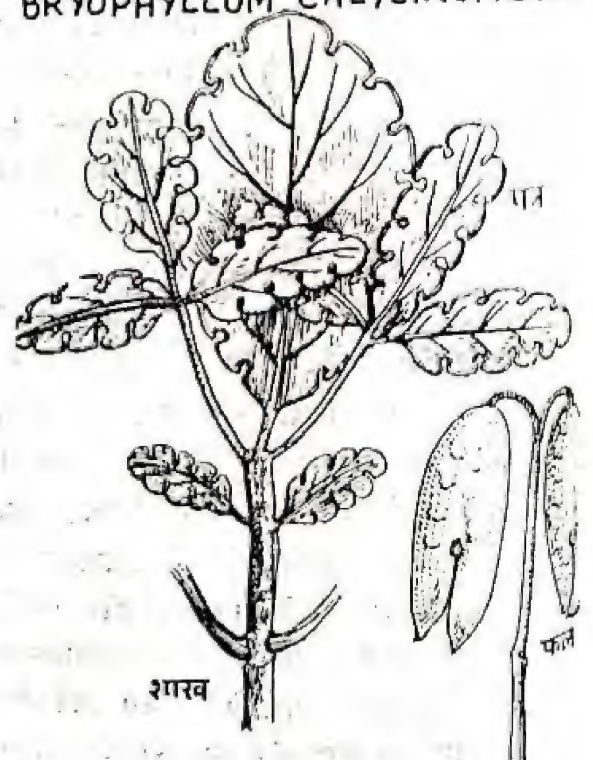
[१] इस कुल के क्षुप के पत्र एकान्तर या अभिमुखवाह्य कोषदल ४-८, पुष्पाभ्यन्तर, कोषदल ४-८ पुंकेशर ८-१ तक होते हैं। इस कुल में पर्ण बीज के ही जाति के ४-५ क्षुप पाये जाते हैं। जिनका संक्षिप्त वर्णन ऊपर के नोट नं० २ में दिया गया है।

Scanned with CamScanner

नाम—

सं.—पर्णबीज, धन्वन्तरि बीज । हि.—पर्णबीज, अजूबा, जख्मेहयात,अहिरावण, आम्बटा, महिरावण, घाव-पाला, पथरचढ़, पथरचूर इ. । म.—घायमारी । बं.—पाथरकूचि, कोपपाता । ले.—ब्रायोफाइलम कैलिसियम ।

रासायनिक संगठन—

इसके पत्र में-क्लोरोफिल (Chlorophyl) वसा, एक पीतवर्ण का ऐन्द्रीय क्षार (Crganic acid), क्षारीय सार (Cream of tartar), केल्शयिम आक्जलेट (Calcium oxalate) तथा टार्टरिक एसिड़ (Tartaric acid) पाये जाते हैं ।

प्रयोज्यांक—पत्र ।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह लघु, रूक्ष, कषाय, अम्ल, मधुरविपाक, शीतवीर्य, ग्राही, वात पित्त शामक, रक्तरोधक, रक्तपित्तशामक, व्रण शोधन तथा रोपण आदि गुणधर्म युक्त हैं । रक्तस्राव, चोट, मोच, अतिसार, अश्मरी, विसूचिका, अर्श आदि विकारों में प्रयुक्त होता है ।

यह सूक्ष्म धमनियों का संकोच कर बाह्य या आभ्यन्तर रक्तस्राव का निरोध करता है ।

इसके पत्तों को पीसकर लेप करने से या पत्तों को थोड़ा गरम कर कुचलकर बांधने से अभिघातज चोट, मोच, शोथ, फोड़ा, व्रण, कीट दंश आदि में शीघ्र लाभ होता है। शोथ, वेदना, रक्तिमा, जलन आदि शांत होते हैं । नूतन व्रण इसके प्रयोग से शीघ्र ही रोपण होकर ठीक हो जाते हैं । उनका निशान भी नहीं रहता ।

पत्तों का स्वरस–रक्त प्रवाहिका, रक्तार्श और रक्त प्रदर में पिलाते हैं।

(१) रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तप्रदर तथा रक्तपित्त पर—इसके पत्र स्वरस ३ से ६ माशा (या अधिक से अधिक १ तोला तक) के साथ समभाग जीरा चूर्ण और दो गुना घृत (गौ घृत हो तो उत्तम) मिलाकर पिलाने से रक्तातिसार में लाभ होता है । यह योग बालकों को भी दिया जा सकता है ।

अथवा—१ तोला तक की मात्रा में पत्र-स्वरस लेकर उसमें ६ माशा से १ तोला तक मिश्री मिलाकर सेवन करावें । रक्तातिसार, रक्तमूत्र, रक्तार्श, रक्तप्रदर और रक्त-पित्त में भी शीघ्र लाभ होता है । योग दिन में ३ बार देवें, ७, १४ या २१ दिन में पूर्ण लाभ होता है ।

नोट—यदि इसके पत्र स्वरस का घन क्वाथ तैयार कर उसमें चौथाई भाग मृत संजीवनी सुरा मिला द्रवसार बनाकर रख लिया जाय तो और उत्तम है । इसकी मात्रा ३० से ६० वून्द तक ठण्डे जल के साथ दे सकते हैं ।

—पं० रामगोपाल मिश्र वैद्यराज, गोंदिया

(२) क्षत, व्रण आदि पर—शरीर के किसी भी भाग में चोट, चाकू छुरी आदि से होने वाले क्षत, घाव से अत्यन्त रक्तस्राव हो रहा हो, उस पर इसके पत्र रस का सिंचन करते ही रक्तस्र व बन्द हो जाता है । फिर प्रतिदिन इसके रस में कपास का फाया तरकर लगाते रहने से कुछ दिन में ही जख्म भर जाता है । यदि क्षत में मिट्टी आदि चली गई हो, तो प्रथम उसे स्वच्छ जल से साफ कर लेना आवश्यक है । कभी कभी अंगुली आदि शरीरांग ऐसा कुचल जाता है कि उसे डाक्टर लोग काट कर फेंके बिना दुरुस्त होना कठिन मानते हैं । ऐसे कुचले हुये अंगावयव पर इसके पत्तों की लुगदी रखकर कपड़े की पट्टी से ठीक संभालकर कस देने से तुरन्त खून बन्द होकर कुचला हुआ भाग सुधर कर पूर्ववत् ठीक हो जाता है । लुगदी शुरू में दिन में दो बार अवश्य बदलते रहना चाहिये ।

अथवा—इसके पत्र और कंघी के पत्र समभाग पीस कर चकती बना तैल में पकाकर कटे स्थान को संभालकर ऊपर से चकती रखकर बांध दें । यह बिल्कुल कट या कुचल कर लटके हुये मांस को भी पूर्ववत् जोड़ देती है ।

—श्री पं० रामगोपाल जी मिश्र राजवैद्य, गोंदिया

प्रतिदिन इसके पत्र न प्राप्त हो सकें, तो निम्नविधि से इसका तैल बनाकर रख लेवें—

इसके पत्र रस १ भाग में चौथाई भाग तिल तैल मिलाकर कलईदार पात्र में मंदाग्नि पर पकावें । तैल मात्र शेष रहने पर छानकर कांच की बोतल में भर रखें ।

Scanned with CamScanner

प्रथम क्षत या व्रण के रक्तस्राव को इसके पत्र-रस का सिञ्चन कर बन्द कर देवें। फिर इस तैल में साफ रूई का फाया भिगोकर रखें। यदि घाव गहरा हो गया हो, तो स्वच्छ रुई की बत्ती बना उक्त तैल में भिगोकर चांदी की (या कांच की) सलाई से धीरे धीरे गहराई में ऐसी रीति से डालें कि जिससे घाव से अधिक रक्तस्राव न होने पावे। पश्चात् उस पर उक्त तैल का एक फाया रख दें। फिर दूसरा रुई का फाया सूखा ही रखकर स्वच्छ श्वेत कपड़े की पट्टी बांध दें। इसी प्रकार रोज करें जब तक घाव पूर्णतया भरकर सूख न जाय।

ज्यों ज्यों घाव भरता आये, बत्ती भी वैसी ही कम कर दें, फाया भी छोटा करते जावें। बत्ती या फाये से घाव पूरी तरह भरें, पोला न रखें। यदि घाव में कदाचित पीव (राध) दिखाई दे, तो घाव को गर्म जल से या नीम के क्वाथ से या फिटकरी मिले गरम जल से धीरे धीरे धोकर मुलायम कपड़े से पोंछ साफ कर सुखा लिया करें।

आगे विशिष्ट प्रयोग में व्रणहर तैल देखिये।

फोड़ा या बड़ी फुन्सी जो पकी न हो उस पर—इसके पत्र पर घृत या तिल तैल चुपड़ गरम कर बांध देने से फोड़ा या फुन्सी बैठ जाती है। शोथ भी जाता रहता है। यदि पककर फूट गया हो, तो उसे अच्छी तरह साफ कर उक्त तैल को या आगे विशिष्ट योग के तैल को फाया से लगाकर पट्टी बांध दिया करें। शीघ्र अच्छा हो जावेगा।

(३) शोथ और शिर दर्द पर—उक्त प्रयोग नं० २ में कहे हुये तैल को कुछ गरम कर मर्दन करने से शोथ रोग में अभूतपूर्व गुण प्रकट होता है। पैर हाथ के शोथ में तैल मर्दन के बाद इसके पत्रों पर कुछ तैल चुपड़ जरा गर्म करके बांधना चाहिये शीघ्र लाभ होता है। सर्वाङ्ग शोथ हो तो पत्तों के सुखोष्ण क्वाथ से रोगी को निर्वात स्थान में स्नान करावें।

सिर दर्द उष्णता के कारण (या अति जागरण से) होता हो, तो उक्त तैल को सिर पर मलें (या केवल पत्र-रस को मलने से भी लाभ होता है) तथा आवश्यकतानुसार इसके पत्र रस १ तोला में मिश्री मिलाकर पिलावें या पत्तों को पानी के साथ पीस छानकर शक्कर मि[लाकर] शर्बत बनाकर पिलावें। —वैद्यराज पं० रामगोपाल मि[श्र]

(४) नकसीर (नासिका से रक्तस्राव रूप रक्तपित्त) पर—इसके पत्र रस की कुछ बून्दें नाक के अन्दर डा[ल] दी जायें तथा पत्र रस में मिश्री मिलाकर पिला दि[या] जाय तो फौरन ही रक्त का प्रवाह रुक जावेगा।

अथवा—इसके पत्तों की टिकिया बनाकर तालू [पर] रखने से तुरन्त खून बन्द होता है। जिसे बार बार नक[-]सीर फूटती हो, उसे कुछ दिन उक्त पर्णबीज तैल की न[स्य] नित्य प्रातः लेने से नकसीर फूटनी बन्द हो जाती है।

—पं० रामगोपाल जी मि[श्र]

(५) मूत्रकृच्छ्र तथा दाह पर—पत्र स्वरस १ से २ तोले में चावल का धोवन ५ तोले और थोड़ी मिश्री मि[ला]कर पिलावें, २-२ घंटे के अन्तर से ३ बार पिलाने से पेशाब खुल जावेगा, जलन, टीस आदि सब दूर होंगी।

—पं० रामगोपाल जी मिश्र

दाह पर—तीव्र ज्वर के कारण रोगी दाह से बेचै[न] हो तो इसके रस की मालिश सर्वाङ्ग पर करावें और ऊपर से वस्त्र ढांके रहें तो शीघ्र शांति प्राप्त होती है।

मूत्रावरोध या मूत्राघात या सुजाक पर—पत्तों को कालीमिरच के साथ जल मिलाकर पीस छान कर पिलाने से सुजाक का जख्म, पेशाब की जलन और मूत्रावरोध दू[र] होजाते हैं।

—व. चं.

(६) अर्श पर—विशेषतः प्रस्तुत प्रसंग के छोटी जाति के पर्णबीज के पत्तों को छायाशुष्क कर चूर्ण कर लें। रात में सोते समय ७ तोले गुड़ खाकर सो जावें। प्रातः इसके चूर्ण को हथेली भरकर ठंडे जल के साथ खा लेवें। इस प्रकार ७ दिन तक सेवन से अर्श के मस्से मुरझाकर हमेशा के लिए आराम हो जाते हैं। सेवन काल में खटाई एवं वातकारक चीजों से परहेज रखें।

अथवा कालीमिर्च के साथ इस बूटी को पीसकर पिलाने से खूनी और बादी बबासीर में लाभ होता है।

—व० चं०

(७) कुष्ठ और उपदंश पर—प्रथम कोई उत्तम जुलाब से कोठा साफ कर इस वनस्पति को कालीमिरच

Scanned with CamScanner

के साथ ४० दिनों तक पिलाने से कुष्ठ और उपदंश के घाव अच्छे होजाते हैं। —व० चं०।

(८) नेत्र विकार पर-पैत्तिक नेत्राभिष्यन्द या गरमी से दुखती आई हुई आंख पर इसकी लुगदी को बांधने से पीड़ा व सूजन दूर होती है। कफज अभिष्यन्द या सर्दी से दुखती आई आंख पर इसकी पत्र-लुगदी में कुछ हल्दी का चूर्ण मिला तथा कुछ गरम कर बांधना चाहिए। अत्यन्त लाभ होता है। आंख में कुकरे होगये हों तो इसके स्वरस में शक्कर मिला कर भीतर टपकावें, अचूक लाभ होता है। —पं० रामगोपाल जी मिश्र।

नेत्र पीड़ा पर—इसके ताजे पत्र रस में काला सुर्मा ३ दिन तक खरल कर आंखों में लगाने से लाभ होता है।

(९) बिच्छू के दंश पर—जहां बिच्छू का डंक लगा हो उस स्थान पर इसका रस और नमक एकत्र मिला धीरे धीरे घिसने से लाभ होता है।

नोट—मात्रा-स्वरस ३ मा. से ६ मा. या अधिक से अधिक १ तोला तक (कभी कभी आवश्यकतानुसार) दो तोले तक भी दिया जाता है।

विशिष्ट योग–

(१) पर्ण बीज व्रण हर तैल—इसके पत्र का कल्क और कंघी के पत्र का कल्क २०–२० तो० तथा गोल बड़ी हरड़ का चूर्ण ५ तो० तीनों को एकत्र मिला चकती बना लें; और ४० तो० तैल में रख कर मंदाग्नि से पकावें। चकती पक कर लाल हो जाने पर उतार कर छान रखें।

यह तैल प्रचलित जाम्बुक, हीलएक बाम आदिकों से एवं अन्य व्रणहर पेटेण्ट योगो से लाखों गुणा उत्तम है। इस तैल को छानने के बाद गर्म रहते ही उसमें चौथाई भाग श्वेत मोम मिला देने से यह अपूर्व फलप्रद मलहम बनेगा। हर प्रकार के सूखे गीले फोड़ों, गरमी के चट्टों तथा बवासीर के मस्सों के लिये अद्वितीय मलहम है।

—राजवैद्य पं० रामगोपाल जी मिश्र

(२) पर्णबीजादि तैल (कर्ण रोगनाशक)–पर्ण-बीज पत्र-स्वरस, धतूरा पत्र स्वरस, आमलों का स्वरस और हल्दी का क्वाथ १०–१० तो०, मेनसील तथा लोह भस्म १–१ तो० इन सबको एकत्र कर २० तो० सरसों तैल मिला मंद आंच पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर शीशी में भर रखें। कान बहना, कर्ण पीड़ा कान में होने वाला फोड़ा, नाड़ी व्रण (नासूर) आदि रोग चन्द दिनो में दूर होते हैं। १०–१० वर्ष का नाड़ी व्रण इस तैल से ठीक हुआ है।

—राजवैद्य पं० रामगोपाल जी मिश्र

(३) पर्ण बीज की स्वादिष्ट चटनी—पत्तों को अच्छी तरह साफ कर जीरा, धनिया, नमक और मिर्च मिला कर चटनी पीसलें। यह जायकेदार, रुचिवर्धक और पित्त शामक है। ज्वरी को यह चटनी पथ्य में दे सकते हैं।

(४) पर्ण बीजारिष्ट—इसके पत्र १ सेर कुचल कर ५ सेर जल में अर्धावशिष्ट क्वाथ सिद्ध कर मल छान कर संधान पात्र में भर उसमें शहद ६० तो०, धाय पुष्प १० तो तथा लौंग, जायफल, जावित्री, इलायची, सोंठ, कालीमिर्च व पिप्पली का चूर्ण १-१ तो० मिला पात्र का मुख बन्द कर १ मास तक सुरक्षित रख, छान कर बोतलों में भर लें। मात्रा–१-२ तो० प्रातः सायं, सेवन से प्लीहा, यकृत, गुल्म, आध्यमान, अजीर्ण, मन्दाग्नि, अरुचि, शूल आदि दूर होता है।

—श्री पं० अनन्तदेवजी शर्मा वैद्यशास्त्री

पर्वती (Cocculus Leaeba)

गुडूची कुल (Menispermaceae) की इस गिलोय जैसी ऊर्ध्वप्रसरन शील लता की शाखायें भूरे रंग की चिकनी एवं टहनियां पतली होती हैं। पत्र—लगभग $1\frac{3}{4}$ इंच से २॥ इंच लम्बे, $\frac{3}{5}$ इंच से $1\frac{3}{4}$ इंच चौड़े, पुष्प-प्रायः श्वेत या गुलाबी रंग के छोटे छोटे होते हैं।

यह लता पश्चिम भारत में, पंजाब, सिंध, काठिया-

Scanned with CamScanner

वाड़, कर्नाटक आदि के विशेषतः शुष्क स्थानों में तथा अफगानिस्थान, अबिया, पशिया में भी अधिक पाई जाती है।

नाम–

हि. पं. गु. और म.—पर्वती, उल्लर बिल्लर, वेबरी। ले.—कोकुलस लेईवा; को. पेंडुलुस (C. Pendulus)।

गुणधर्म व प्रयोग–

कड़ुवी, पौष्टिक, ज्वरघ्न है। इसके गुणधर्म गिलोय के जैसे ही हैं। तथा गिलोय के स्थान में इसका प्रयोग सिन्ध आदि देशों में किया जाता है।

पलाच—दे० पहाड़ी पीपल। पलाश—दे० ढाक। पलाश पापड़ा—दे० ढाक में।
पलाशलता—दे० ढाकलता। पसरन—दे० गन्धप्रसारनी। पहलवास—दे० बिरंजासिफ।
पहाड़ी बेल—दे० पाठा (पाढ़)। पहाड़मूल—दे० पाठा। पहाड़ी कन्द—दे० जंगली प्याज।

पहाड़ी गंदना (Marrubium Vulgare)

तुलसी-कुल (Labiatae) के इस वर्षायु १ से ४ फुट या इससे भी अधिक ऊंचे क्षुप के काण्ड चौकोर, श्वेत-रोमश; अनेक सरल शाखायुक्त; पत्र—सम्मुखवर्ती, सवृन्त, लगभग १ इंच लम्बे, अण्डाकार, वृन्त की ओर कुछ गोल, दन्तुर, पृष्ठ भाग झुर्रीयुक्त, श्वेत रोमावृत्त, निम्न भाग हरिताभ श्वेतरोमश; पुष्प—मंजरी में श्वेत रंग के छोटे होते हैं। इसके क्षुप से एक विशिष्ट प्रकार की कस्तूरी जैसी गन्ध आती है।

इसके क्षुप पश्चिमी समशीतोष्ण हिमालय प्रदेशों में काश्मीर से यूरोप तक ५ से ८ हजार फीट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं।

नाम–

हि.—पहाड़ीगंदना, फरासियून। अं.—व्हाईट होर-हाऊण्ड (White hore hound), ईस्ट इंडियन पेपरमिंट (East Indian peppermint)। ले.—मेरुबियम व्हुल-गेर, मे. हमालालियम (M. Hamalalium), मे. जर-मेनिकम (M Germanicum)।

रासायनिक संघटन–

इसमें एक प्रभावशाली उड़नशील तैल, एक तिक्त मेरु-बीज (Marubien) नामक ग्लुकोसाईड, राल, टेनीन और वसा पाई जाती है।

प्रयोज्याङ्ग पंचांग।

गुणधर्म व प्रयोग–

तिक्त अनूष्ण, रूक्ष, मूत्रल, पौष्टिक, शांतिप्रद, कफ

पहाड़ी गंदना
MARRUBIUM VULGARE LINN.

Scanned with CamScanner

निःसारक, लेखन, ज्वरनाशक, आर्त्तवजनन, वातानु-लोमन, संधिवेदनादि वेदना हर, फुफ्फुस शोथ (ब्रांकाइटीज), यकृत, प्लीहा, कास, प्रतिश्याय, गर्भाशय-विकार, नेत्रव्रण, रतौंधी आदि में उपयोगी है। अधिक मात्रा में विरेचक है।

दूषित कफ निःसारक होने के कारण फुफ्फुस सम्बन्धी ब्रांकाइटीज आदि विकारों में तथा कफज कास, श्वास, कृच्छ्रश्वासादि कफज रोगों में एवं ज्वर, मंथरज्वर (टायफाईड़) में इसका फांट या शीत निर्यास (१ भाग में २० भाग जल मिलाकर किया हुआ) २॥ से ५ तोले तक की मात्रा में दिया जाता है। यह फांट उत्तेजक, शोथहर, कृमिघ्न, धातुपरिवर्त्तक (पौष्टिक) है। जीर्ण फुफ्फुस विकार, अजीर्ण, अग्निमांद्य, पांडु, यक्ष्मा, नष्टार्त्तव, जीर्ण-संधिवात में भी यह प्रयुक्त होता है। इसका शर्वतरूप में भी प्रयोग किया जाता है।

कृच्छश्वास तथा पार्श्व, कुक्षि आदि के शूलों में इसके पत्तों को पीस शहद मिलाकर लेप करते हैं।

मस्तिष्क संशोधनार्थ तथा शिरःशूल में अकेले इसके रस का या उसमें गुलरोगन मिलाकर नस्य देते हैं। यह नस्य कामला में भी लाभकारी है।

इसके क्वाथ या फांट में गुल रोगन या जैतून का तैल मिलाकर पिलाने से अवरुद्ध दूषित वायु का ठीक प्रकार से अनुलोमन हो जाता है।

वातज बस्ति विकार तथा मूत्रकृच्छ्र में रोगी को इसके क्वाथ में बैठाते या पेड़ू पर क्वाथ की धार छोड़ते हैं।

नाभी के टलने पर—नाभी के नीचे इसके पत्तों को पीस तथा गर्मकर मोटा लेप करते हैं।

शोथ, दुष्ट व्रण, दूषित ग्रन्थि आदि पर—इसके पत्तों को पीसकर आग पर गरम कर उसमें शहद मिला लेप करते हैं। इससे शोथ दूर होती है दुष्ट व्रण शुद्ध होता, ग्रन्थी एवं कंठमाला कोमल और विलीन होती, पक्वापक्व व्रण बिना कष्ट के फूट जाते तथा उनका रोपण होता है। इसके बफारा या स्वेदन से भी सर्व प्रकार की शोथ विलीन हो जाती है।

नेत्र-विकारों पर (अंधता, धुन्ध, फूली, मोतियाबिन्द, नेत्र कण्डु, नेत्रस्राव तथा कामलाजन्य नेत्रों का पीलापन) इसके रस को अकेले या शहद के साथ नेत्र में लगाते हैं।

कर्ण विकार (कर्णशूल, कर्णस्रोतगत अवरोध, चिरज कर्णशूल) पर—इसके रस या क्वाथ में मद्य मिलाकर कान में टपकाते हैं।

मुख रोग में—इसके पत्तों को मुख में रखकर चाबने से लाभ होता है तथा दांत व मसूड़े दृढ़ होते हैं।

विष भक्षण जन्य उपद्रवों के निवारणार्थ इसका पत्र-स्वरस पिलाते हैं।

कुत्ते के दंश पर —पत्तों को पीस, नमक मिलाकर लेप करते हैं।

गर्भाशय शोधन, गर्भ व अपरा निःसरण, सुख प्रसूति एवं आर्त्तव जननार्थ इसे विशेषतः सौसन ईरसा) के साथ पिलाते हैं।

नोट—मात्रा—१$\frac{1}{2}$ मा. से ३$\frac{1}{2}$ मा. तक। यह बस्ति, वृक्क एवं वातनाड़ी को अहितकर है। हानि निवारक—बबूल का गोंद, कतीरा, शहद, बालछड़ और सौंफ है। इसका प्रतिनिधि-हंसराज, कुंदुरु, उशक, अफतीमून और अनीसू है। —यू. द्रव्यगुण विज्ञान से।

पहाड़ी पीपल (Ficus Arnottiana)

वट कुल (Urticaceae) का पीपल वृक्ष जैसा किंतु छोटा झाड़ीदार इस वृक्ष के पत्र ३ से ८ इंच लम्बे २-६ इंच चौड़े, ७ नसयुक्त (३ मोटी २-४ मंद), सुन्दर जालीदार पीपल के पत्र से कुछ मोटे, तेजस्वी, चिकने, किनारे में तरंगदार होते हैं। कर्णिका (फल) लगभग $\frac{1}{2}$ इंच व्यास की लगभग वृन्तरहित, पहले श्वेत, फिर लाल, अन्त में बैंजनी या काली, अनेक बीज युक्त। बिहार में फल पाक मार्च एप्रिल और दूसरी बार दिसम्बर जनवरी

Scanned with CamScanner

पत्र–वसंतारम्भ में पतन शील नये पत्र तेजस्वी, लाल। पुराने पत्र दिसेम्बर में ताम्बे जैसे रंग के। उप पत्र, लम्बे गोल, ½ से १ इंच लम्बे सूखने पर लाल भूरे। पत्र वृन्त २ से ६ इंच लम्बा।

तने पर घाव करने से दूध जैसा रस निकलता है। पान और छाल औषध रूप से व्यवहृत होते हैं। फल-मधुर होते हैं। इन वृक्षों पर लाख अच्छी होती है।

उत्पत्तिस्थान–बिहार, मध्य प्रदेश (सी.पी.), राजपूताना, दक्षिण, सरहद प्रान्त, सिलोन।

नाम–

सं—नन्दीवृक्ष, क्षीरी, अश्वत्थ भेद, क्षयतरु। हि.—पहाड़ी पीपल। काठियावाड़ी—डुंगरी पीपलो। लेटिन–फीयकस आर्नोटियाना।

गुण धर्म व प्रयोग–

फल – मधुर अनुरस कड़वा, कसैला, लघु, उष्णवीर्य, विपाक–चरपरा, ग्राही तथा विष, पित्तप्रकोप, कफ विकार और रक्त विकार नाशक है।

इसकी छाल का उपयोग दुष्टव्रणों को धोने के लिये होता है। पत्र चूर्ण और छाल का क्वाथ अतिसार में दिया जाता है। इसली लाख का उपयोग पीपल की लाख के समान होता है।

विशेष वक्तव्य – पहाड़ी पीपल (नन्दी वृक्ष) नाम से जिस वृक्ष का वर्णन 'गांवों में औषधि रत्न के तृतीय भाग में किया गया है उसी का समुद्धरण हमने ऊपर किया है।

उक्त ग्रन्थ में भी यह लिखा है कि इसका वर्णन सुश्रुत के अम्बष्ठादिगण तथा न्यग्रोधादि गण में किया गया है। किंतु सुश्रुत के उक्त गणों का नन्दी वृक्ष यही पहाड़ी पीपल है अथवा अन्य इस विषय में मतभेद है। कई उक्त गणोक्त नन्दी वृक्ष को निम्ब कुल (Meliaceae) का तून वृक्ष (Cedrela Toona) मानते हैं। इसका सचित्र वर्णन हमारे इस ग्रन्थ के तृतीय खण्ड में देखिये। संस्कृत में तगर पिण्डी को भी नन्दी वृक्ष कहा गया है। अस्तु, प्रस्तुत प्रसंग का यह पहाड़ी पीपल (नन्दी वृक्ष) उनसे भिन्न मालम देता है। संभव है सुश्रुत के न्यग्रोधादि गण का नन्दी वृक्ष यही हो तथा अम्बष्ठादिगण का उक्त तून वृक्ष हो। हमें तो यह पहाड़ी पीपल प्लक्ष (पाकर) की ही एक बड़ी जाति का भेद प्रतीत होता है। आगे पाकर का प्रकरण देखें।

नोट नं० २—एक वेतस कुल (Salicaceae) का Populus Ciliata नामक पहाड़ी पीपल और होता है जिसे भाषा में पलाच, फाल्श, शरफारा, तिलोंजा आदि तथा नेपाल, कुमाऊं और गढ़वाल की ओर बांगीकट, चाव मिया, गड़पीपल, स्यान, बनपीपल, सफेदा, चेलोन आदि कहते हैं।

यह एक बड़ी जाति का पीपल वृक्ष जैसा ही वृक्ष होता है। इसकी छाल हरिताभ श्वेत या भूरे वर्ण की, चिकनी; पत्र ७.४ से १८ सें० मी० तक लम्बे और ६.३ से १२ सें० मी० तक चौड़े होते हैं।
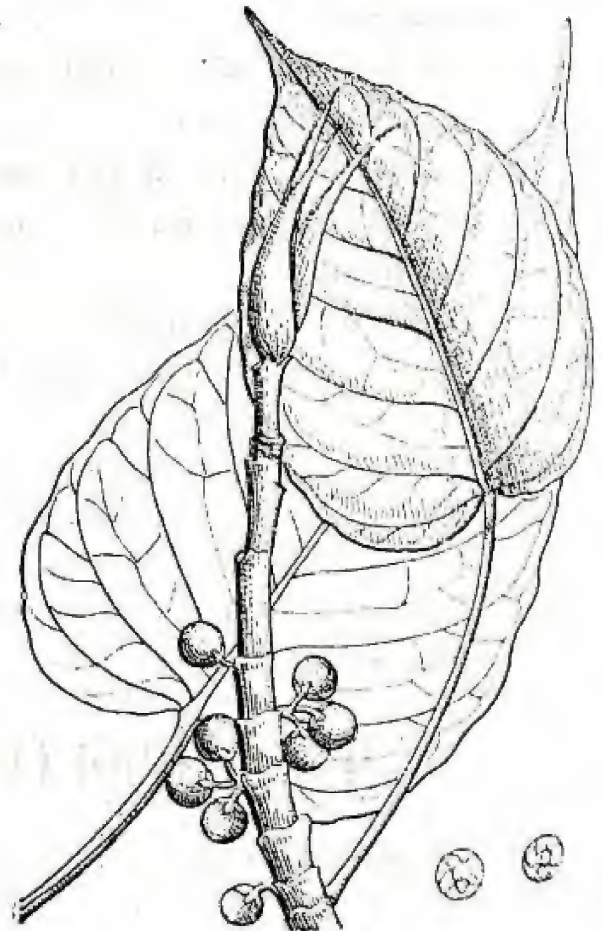
पहाड़ी पीपल
FICUS ARNOTTIANA MIQ.

इसके वृक्ष हिमालय में काश्मीर से भूटान तक ४ से १० हजार फीट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं।

गुण धर्म—इसकी छाल उत्तेजक, पौष्टिक और रक्त वृद्धि कारक है।

नोट नं० ३—हिन्दी में प्रायः पिप्पली को पीपल, पीपर कहते हैं। इस दृष्टि से पिप्पली कुल (PiPorace ae) के Piper sylvaticum (पायपर सिल्हवाटिकम) [illegible] नामक एक जंगली जाति की पिप्पली को बंगाल की ओर पहाड़ी पीपल कहते हैं।

इसके पौधे उत्तरी और दक्षिणी आसाम, बंगाल, और वर्मा में विशेष पाये जाते हैं।

गुण धर्म—बंगाल की ओर यह दीपनीय एवं शांतिदायक वस्तु की तरह उपयोग में ली जाती है। इसकी जड़ सर्प विष नाशक मानी जाती है।

पहाड़ी पोदीना—दे॰पोदीना में। पहाड़ी प्याज—दे. जंगली प्याज। पहाड़ी रतन जोत—दे.-रतनजोत।

पहाड़ी सीसम (Sapium Sebiferum)

एरण्ड कुल (Euph. rbiaceae) के इस बड़ी जाति के पौधे या वृक्ष का प्रायः सर्वाङ्ग चिकना, चमकीला; पत्र—चौड़े, तथा विषम आकृति के; फूल—पीत वर्ण के छोटे छोटे होते हैं।

इसका मूल स्थान चीन और जापान है। किंतु भारत में भी यह पैदा किया जाता है।

नाम—

मं—तोया पिप्पली। हि.—पहाड़ी सीसम, तारचर्बी, विलायती सीसम। ले. —सेपियम सेबिफेरम।

गुण धर्म—

इसका रस चरपरा, चर्मदाहक, फफोला-उठाने वाला होता है।

नोट—हमने इस बूटी का उक्त वर्णन बनौषधि चन्द्रोदय के आधार पर किया है। इसे सीसम क्यों कहा जाता है यह सन्देहास्पद है। नाड़कर्णी ने इसे एरण्ड कुल का तथा इसका हिन्दी नाम पिप्पलयांग; बंगला मोम चिना और गुण धर्म मूत्रल, सर्प दंश तथा व्रणों पर उपयोगी लिखा है।

सीसम तो शिम्बी कुल (Leguminoceae) का है यथास्थान सीसम का प्रकरण देखें।

पांगरा—दे. फरहद। पांगला—दे. फांगला। पांसरा-दे. बिदा

पाकर (Ficus Infectoria)

वट कुल (Urticaceae) के गूलर या पीपल वृक्ष जैसे किंतु सघन शाखाओं से युक्त छायेदार वृक्ष की छाल हरिताभ धूसर वर्ण की चिकनी; पत्र-आम के पत्र जैसे नोंकदार उनसे चौड़े, ४ से १० सयुक्त सिराओं से युक्त पत्रांकुर-स्वाद में खट्टे; पुष्प गूलर, पीपलादि के पुष्प जैसे अप्रकट; फल—पत्तों की डंडियों पर पीपल वृक्ष जैसे छोटे छोटे, गोल, श्वेत वर्ण के (पकने पर श्वेत वर्ण के) होते हैं ग्रीष्म और वर्षा काल में फूल फल आते हैं।

इसके वृक्ष भारत में प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं।

नोट न० १—चरक के मूत्र संग्रहणीय तथा कषाय स्कन्ध में, सुश्रुत के न्यग्रोधादि गण में और भावप्रकाश के क्षीरी वृक्ष एवं पंच वल्कल में इसका उल्लेख है।

नं० २—पहाड़ी पीपल जिसका वर्णन पीछे दिया गया है वह तथा भावप्रकाशोक्त नन्दी वृक्ष (बेलिया पीपल) एक ही मालूम देते हैं। इसका आकार प्रकार बहुत कुछ पीपल वृक्ष से मिलता जुलता है। इसके पत्र साधारण बड़े होने से उनसे स्थाली (थाल या पत्तल) का काम लिया जा सकता है। अतः इसे स्थाली वृक्ष, तथा इस

Scanned with CamScanner

वृक्ष की हवा क्षय नाशक (इसके नीचे बैठकर हवा सेवन से क्षय रोगी को लाभ) होने से क्षय तरु कहा गया है। इसकी पत्तियों को हाथी बड़े आनन्द से खाता है अतः इसे गज पादप भी कहते हैं। इसकी जड़ें मोटी होती हैं। इसकी शाखाओं में अंकुरित या प्ररोह (वट वृक्ष जैसे) निकलते हैं जो कि पीपल वृक्ष में नहीं निकलते। गुणधर्म आदि पहाड़ी पीपल में देखिये।

नोट नं० ३—पाखर (पाकरी) Ficus Tsiela इस का भी बड़ा (वट या पीपल से छोटा) छायेदार, बड़ (वट) वृक्ष जैसे प्ररोह या जटा युक्त वृक्ष होता है। बड़ी शाखायें ऊपर को बढ़ने वालीं, प्रशाखायें टेढ़ी प्रायः नीचे की ओर मुड़ी हुई, पत्र—अन्तर पर, लम्बे गोल, मोटे, कुठित नोक वाले, निम्न भाग में सकरे, ३½ से ५½ इंच के लगभग लम्बे; पत्रक-अन्डाकार, कुछ नोकदार ½ से १ इंच लम्बा। पुष्प—अप्रकट। फल—शाखाओं के अग्रिम

पाकर पीपल (गयाश्वत्थ)
FICUS RUMPHII BLUME.

भाग पर, वृन्त रहित, गोल लगभग ½ इंच व्यास के कच्ची दशा में हरिताभ पीत वर्ण के, पकने पर बैंजनी रंग के, एप्रिल मास से अक्टोबर तक आते हैं। इसकी शाखा को काटकर वर्षाऋतु में जमीन में गाड़ देने से वृक्ष लग जाता है। इसकी छाल प्रस्तुत प्रसंग के पाकर की छाल जैसी ही होती है। छाल में से दृढ़ रेसा निकलता है, उसकी डोरी बनती है। इसके सर्वाङ्ग से दूध जैसा रस (खुरचने पर) निकलता है। इसके वृक्ष गुजरात, कच्छ, काठियावाड़, बिहार और महाराष्ट्र में अधिक पाये जाते हैं।

नाम—

सं.—प्लक्ष, वटप्लव, वरोहशाखी, दृढ़ प्ररोह इ.। हि—पाखर, पकरिया। म. गु. और बंगला के नाम प्रस्तुत प्रसंग के पाकर की नामावली में नीचे देखें।

ले.—फायकस सिला।

गुणधर्म व प्रयोग—

पाकर जैसे ही हैं। नीचे देखें। इसकी छाल उदर के तीव्रशूल (Colic) के निवारणार्थ विशेष उपयोगी मानी जाती है।

नोट नं० ४—पाखुर (Ficus Heterophylla) भी इसी का एक भेद कहा जाता है। किन्तु बंगाल की ओर इसे त्रायमाण मानते हैं; अतः इसका वर्णन आगे के प्रकरण में देखिये।

नं० ५—खिउनाऊ (Ficus Cunia) का वर्णन इसी ग्रन्थ के द्वितीय भाग में देखिये।

नं० ६—इसी कुल के F. Retusa T. या F. Benjamina या F. Comosa का वर्णन द्वितीय भाग के 'कामरूप' के प्रकरण में देखिये।

नं० ७—पाकर-पीपल (गया अश्वत्थ) Ficus Rumphii का वर्णन पीपल वृक्ष के प्रकरण में देखें।

प्रस्तुत प्रसंग के पाकर के—

नाम—

सं.—प्लक्ष, पर्कटी, जटी, पर्करी, इ.। हि.—पाकर, पाकड़, पिलखन, पकरिया इ.। म.—पिंपरी, पाकरी।

Scanned with CamScanner
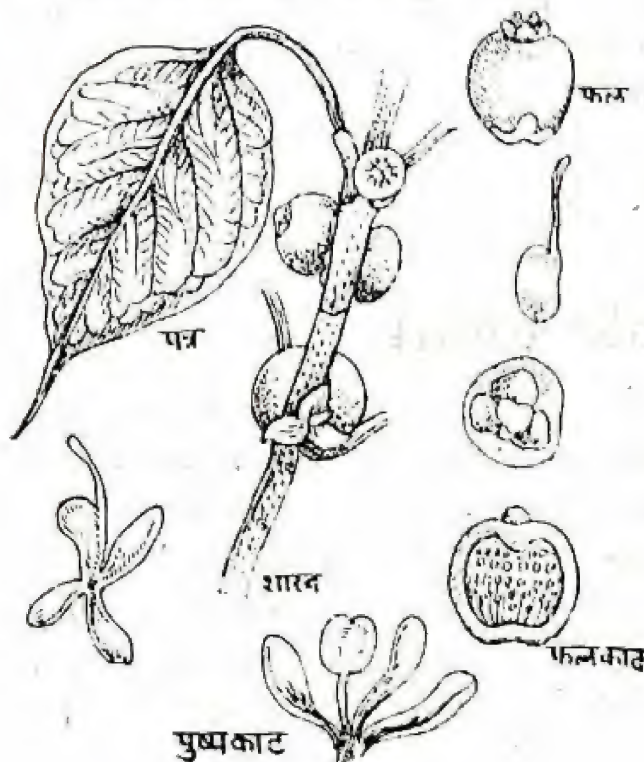
गु.-पीपली, पीपर। बं.-पाकुड़, पांकुर । ले.-फायकस इन्फेक्टोरिया, फा. लेकर (Ficus Lacor)

प्रयोज्यांग-छाल और पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कषाय, कटु-विपाक, शीतवीर्य, कफ-पित्त-शामक, दाह प्रशमन, स्तम्भन, शोथहर, रक्तरोधक, एवं शोषक, व्रणरोपण, योनिदोषहर, मूत्रसंग्रहणीय, तथा अतिसार प्रवाहिका, रक्तपित्त एवं अन्य रक्तविकार, रक्तप्रदर, श्वेत प्रदर, प्रमेह, मूर्च्छा, प्रलाप, भ्रमादि मानसिक विकारों में प्रयुक्त होता है। छोटे पत्र वाला पाकर अधिक गुण वाला होता है।

(१) रक्तस्राव, शोथ, विसर्प और व्रणों में छाल का अवचूर्णन (प्रक्षेप) या लेप करते हैं। छाल के क्वाथ से व्रण या जख्म को धोने तथा पश्चात् क्वाथ में रुई डुबोकर उस पर रख पट्टी बांध देने से लाभ होता है।

(२) फोड़े, फुंसी, खुजली आदि चर्म रोगों पर—इसकी छाल और पत्तों को जल में भिगोकर प्रातः उस जल को छानकर शक्कर मिलाकर पिलाते हैं। मुख पाक में-छाल के क्वाथ से कुल्ले कराते हैं। इन कुल्लों से दांतों का दर्द भी दूर होता है।

(३) विसर्प पर—इसकी ताजी छाल और कोमल पत्तों को पीसकर उसमें घृत मिला प्रलेप करते हैं। इस प्रकार का इसका लेप अन्य शोथों पर भी किया जाता है।

(४) श्वेत प्रदर या योनिस्राव पर—छाल के क्वाथ की उत्तर बस्ति (क्वाथ से योनि में पिचकारी लगाने) देने से; तथा छाल के महीन चूर्ण को थोड़े शहद में मिला शिखराकार गोली बना पतले कपड़े में सिलाई कर योनि-मार्ग में धारण कराने से लाभ होता है।

(५) उदावर्त्त या वातगुल्म पर—छाल का यूष (१८ गुना जल मिलाकर बनाया हुआ) घृत मिलाकर पिलाते हैं।

(६) रक्तपित्त में—इसके कोमल पत्तों को उबाल कर या वैसे ही खाते हैं।

(७) कफपित्तजन्य—ज्वर में-छाल का क्वाथ लाभदायक है।

नोट-- मात्रा—छाल का क्वाथ ५-१० तोला।

इसके फल दीपन व हृद्य हैं। फल का रस निकाल कर या फलों को जल के साथ पीस छानकर सेवन करने से जठराग्नि प्रबल होती, भूख बढ़ती तथा हृदय की शक्ति बढ़ती है।

पाकर की बड़ी जाति के फलों का मुरब्बा प्लीहा की विकृति को दूर करता, पाचन शक्ति को बढ़ाता, तथा रक्त व पित्त के विकारों को शान्त करता है।

इसके फल कुछ खट्टे होते हैं, और इसके बीज फुफ्फुस शोथ (ब्राकाइटिज) पित्त प्रकोप तथा गीली खुजली में लाभदायक हैं। —यूनानी मत

विशिष्ट योग—

(१) प्लक्षादि लेप (बालग्रहादिनाशक)—पाकर, पीपल, गूलर, महुआ, बड़, व पारस पीपल की छाल सम-भाग मिश्रित ५ तोला तक जौकुट कर स्नानार्थ जल में मिला पकावें। आधा जल शेष रहने पर छानकर ठंडा कर

Scanned with CamScanner

इस जल से बालक को स्नान कराने से त्वग्दोष, रक्तविकार, चकत्ते, विस्फोटक आदि समस्त ग्रह दोष शांत होते तथा शीघ्र ही उसकी सन्धियां मजबूत होती हैं। उक्त छालों को पानी में पीसकर लेप करने से त्वचा के लाल चकत्ते नष्ट होते हैं। —ग. नि.।

(१) प्लक्षासव—इसके वृक्ष की जड़ की छाल और फल प्रत्येक २½ सेर, जौ कुट कर १३ सेर जल में पकावें, ६ सेर जल शेष रहने पर, छानकर ठंडा होने पर, संधान पात्र में भर, उसमें शहद ३ सेर, धाय पुष्प चूर्ण ½ सेर व गुड़ ५ सेर मिला, मुख मुद्राकर १ महीने तक सुरक्षित रखें। पश्चात् छानकर बोतलों में भर रखें। मात्रा-१ से २½ तोला तक देवें। उदावर्त्त व वातगुल्म पर लाभकारी है। रक्तदोषनाशक तथा अतिसार पर भी लाभदायक है। —स्वकृत।

नोट—पंचवल्कल का प्रयोग आगे बड़ (बरगद) के प्रकरण में देखिये।

पाकरमूल–देखो पोहकरमूल में नोट। पाकरी, पाखर–देखो पाकर में नोट नं० ३। पाखान भेद–देखो पखान भेद।

पाखुर (Ficus Heterophylla)

वैसे तो यह वटकुल (urticaceae) का ही है किन्तु कोई कोई इसे भिन्न कुल का मानते हैं। इसका झाड़ीदार क्षुप भूमि, चट्टान आदि पर पसरा हुआ; शाखायें छोटी-छोटी, सूक्ष्म, रोमश; पत्र-सनाल, २-५ इंच लम्बे, भिन्न-भिन्न आकार के छोटे-बड़े, कोई गूलर या अंजीर के पत्र जैसे अण्डाकार, कोई दन्ती के पत्र जैसे भालाकार, खुरदरे, कटे किनारे वाले होते हैं। पुष्प-अप्रकट। फल—अग्रभाग में मोटा, गोलाकार, पकने पर पीले रंग का; बीज गोलाकार होते हैं। फल–वर्षाकाल में आते हैं। जड़ की छाल बहुत कड़ुवी होती है।

यह भारत के उष्ण प्रदेशों में, जल समीपवर्ती स्थानों में उत्तर-पूर्व बंगाल, चेनासरीम, बर्मा, पूरब में गंगानदी के किनारे, तथा सीलोन में विशेष पाया जाता है।

नोट —बंगाल के कविराज इसे बाला डुमर त्रायमाण नाम से पुकारते हैं। तथा त्रायमाणा के स्थान में इसीका प्रयोग करते हैं।

नाम—

सं.—त्रायमानी। हि.—पाखुर, दुत्री। म.—दुवीर बं.—पटी शेतड़ा, बालाडुमर, भुइडुमर, बलाबहुला, इ.। ले.— फायकस हेट्रोफिला।

गुण धर्म व प्रयोग—

अतिसार, फुफ्फुस विकार आदि नाशक है।

(१) आमातिसार में इसकी जड़ का रस देते हैं। इससे तीव्र उदरशूल भी दूर होता है।

अथवा—इसके पत्र रस में दूध मिलाकर सेवन कराने से अतिसार, रक्तातिसार में भी लाभ होता है।

(२) कास, श्वासादि फुफ्फुस विकारों पर—इसकी जड़ की छाल का चूर्ण धनिया चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन कराते हैं।

Scanned with CamScanner
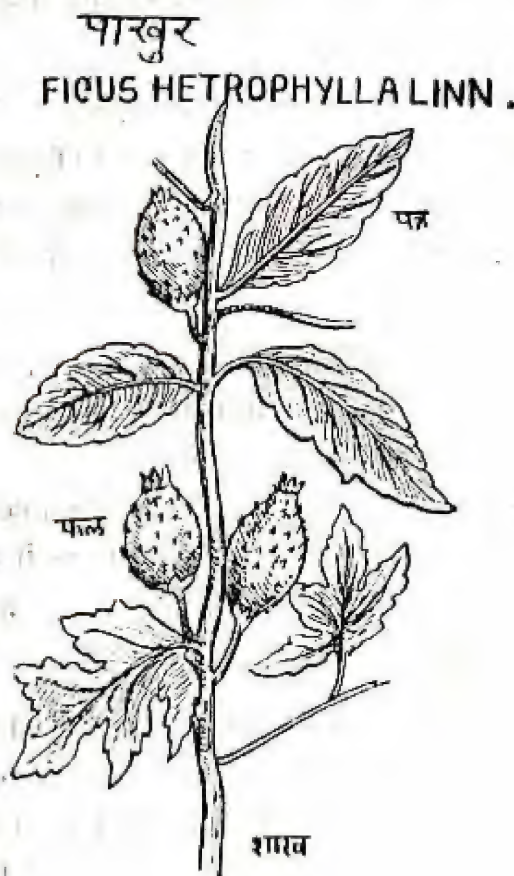
पागलपन की जड़ी–देखो सर्पगन्धा । पाचोली–देखो पनड़ी । पाट–देखो जूट । पाटल (पांडुर)–देखो पाढ़ल । पाटली–देखो भाटी । पाटा–देखो पाढ़ । पाड़र–देखो पाढ़ल ।

पाढ़ (पाठा) (Cissampelos Pareira)

गुडूची कुल (Menispermaceae) की वृक्षों के सहारे ऊपर चढ़ने वाली या जमीन पर फैलने वाली इस लता की शाखायें पतली, रेखा चिह्नित, चिकनी या मृदु, श्वेत रोमाच्छादित; पत्र—गिलोय के पत्र जैसे एकान्तर, हृदयाकृति के गोल १½ से ४ इंच व्यास के, लम्बाई से चौड़ाई में कुछ अधिक, रोमश, मसलने पर चिपचिपे, गंध में सोया जैसे, स्वाद में कुछ रुचिकर; पत्रवृन्त-लगभग २-४ इञ्च लम्बा पत्र की पीठ की ओर लगा हुआ; पत्र में सिरायें ७-११; पुष्प—वर्षा या शरदऋतु में, पीताभ श्वेतवर्ण के उभयलिंग विशिष्ट, बहुत छोटे-छोटे, नरमंजरी लम्बी अनेक पुष्पों से युक्त, मृदुरोमश, पत्रकोण से निकली हुई होती है। प्रायः नर पुष्प गुच्छों में तथा मादा पुष्प लम्बे मंजरी में आते हैं। फल—शीतकाल में मकोय या मटर जैसे किंतु रोमश, कच्ची दशा में पीताभ हरित, पकने पर लाल या नारंगी रङ्ग के कुछ गोलाई लिये हुए चपटे होते हैं। बीज—वक्राकृति या मुड़े हुए सूक्ष्म होते हैं। मूल—आध इंच मोटी, जमीन में बहुत गहरी गई हुई; छाल–फीके खाकी रंग की होती है।

चिकित्सा में प्रायः मूल का विशेष उपयोग किया जाता है। शुष्क जड़ के लंबे, गोल या अण्डाकार दबे हुए टुकड़े आधा से चार इंच तक व्यास के बाजार में मिलते हैं। बाहर से ये भूरे बादामी रङ्ग के एवं लम्बाई में झुर्रीदार होते हैं। अन्दर से ये काष्ठमय, पीताभ भूरे रङ्ग के होते हैं। स्वाद प्रथम कुछ मधुर, किंतु बाद में अत्यन्त कडुवा होता है।

बाजार में प्रायः इसके मूल के साथ पाताल गरुडी छिरहटा (Cocculuss Villosus) की जड़ों का मिश्रण कर देते हैं। क्योंकि असली पाठामूल का संग्रह अधिक प्रमाण में कठिनाई से होता है। कुछ लोग पाताल गरुड़ी (जलजमनी) को ही पाठा मानते हैं; किंतु यह उससे भिन्न है। आगे पाताल गरुड़ी का प्रकरण देखें।

यह लता भारत के उष्ण एवं समशीतोष्ण प्रांतों के पथरीले जंगलों में तथा सिन्ध, पंजाब, शिमला, देहरादून से लेकर अमेरिका के उष्ण प्रदेशों में विशेष पाई जाती है।

नोट नं० १–चरक के स्तन्यशोधन, ज्वरहर,संधानीय, तिक्तस्कन्ध, वमनोपज तथा सुश्रुत के आरग्वधादि, पिप्पल्यादि, बृहत्यादि, पटोलादि, अम्बष्ठादि, मुस्तादि गणों में इसका उल्लेख है। चरक और सुश्रुत के अनेक रोगों के प्रयोगों में इसकी योजना की गई है।

नोट नं० २–लघुपाठा और राजपाठा (बड़ी पाठा) ऐसे दो भेद इसके बहुत प्राचीन काल से माने गये हैं। प्रस्तुत प्रसंग में लघुपाठा का वर्णन किया गया है।

पाढ
CISSAMPELOS PAREIRA LINN
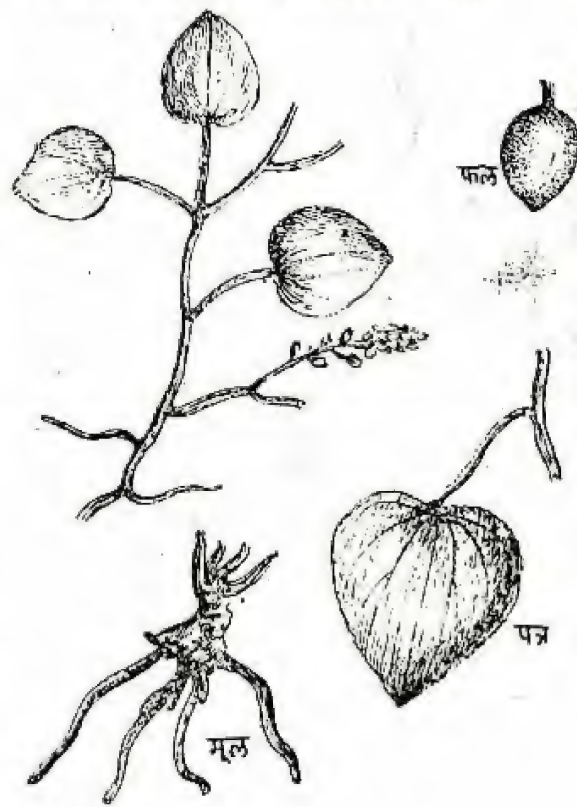
बड़ी पाठा या राजपाठा के अन्तर्गत मुख्यत दो पाठा हैं—(१) स्टिफेनिया हर्नेण्डिफोलिया (Stephenia Herneudifolia) या सिसेनपेलास हैक्जांड्रा (Cissempelos Hexendra) है। इसे बंगालीपाठा, आगनाद या कहीं कहीं नेमुक कहते हैं। इसकी लता प्रायः लघुपाठा के सदृश ही दिखाई देती है। किन्तु इसके पत्र उसकी अपेक्षा बड़े, ढाल जैसे ३ से ६ इञ्च लम्बे तथा २॥ इंच चौड़े, शिराजाल कम सघन; पुष्प-के बाह्यकोष के दल ६-१० एवं अभ्यान्तर कोष के दल ३-५ होते हैं [लघु पाठा के बाह्य पुष्प दल ४ (पुं० पुष्प) एवं २ (स्त्री पुष्प) तथा अभ्यन्तर दल ४ संयुक्त (पुं. पुष्प) व १ (स्त्री पुष्प) होते हैं]। फल–अपेक्षाकृत बड़े तथा बीज मुड़कर लगभग गोलाकार से होता है।

यह लता उत्तरी भारत में, विशेषतः बंगाल तथा
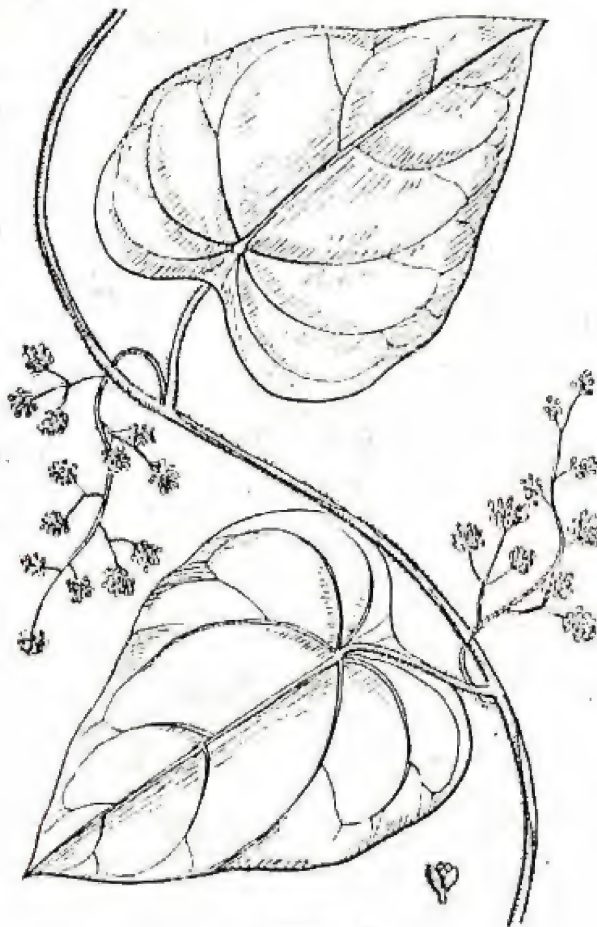
पाठ
CYCLEA PELTATA THOMS.

नेपाल से चितागांग तक अधिक होती है। बंगाल में इसी पाठा का उपयोग आकनादी नाम से अधिक किया जाता है। इसका सांकेतिक अति संक्षिप्त सचित्र वर्णन इस ग्रंथ के प्रथम भाग के आगनाद के प्रकरण में दिया गया है।

इसमें कुछ सेपोनिन (Saponin) नामक तत्त्व होते हैं। इसकी जड़ का उपयोग लघुपाठा मूल के समान अति-सार, कुपचन, अजीर्ण, मूत्र विकार आदि में किया जाता है। इसका सत्त्व मेंढक के लिये अत्यन्त विषैला होता है।

(२) Cyclea Peltata (साइक्लिया पेल्टेटा) नामक राजपाठा के इस भेद को आसामी पाठा, मराठी में-पाड़ पाड़ावल और गुजराती में-का ीपाट कहते हैं। इसकी शाखायें धारीदार, अल्परोमश, पत्र–उक्त बड़ी पाठा के सदृश, पतले, रोमश एवं १ से २½ इंच लम्बे पर्णवृन्त से युक्त जो उक्त लघु तथा बड़े पाठा की तरह ही फलक के पृष्ठ की ओर जुड़ा रहता है। पुष्प—बहुत छोटे, हरे रंग के; और फल—कालीमिर्च जैसे गोल, श्वेत वर्ण के गुच्छों में आते हैं।

इसी लता का एक भेद Caylea Burmanni (साइक्लिया बर्मेनी) भी इसी के साथ आसाम एवं खासिया पर्वत से पूर्व की ओर तथा दक्षिण भारत में पश्चिमी, पूर्वोघाट कोंकण, माथेरान, महाबलेश्वर तथा सीलोन तक पाया जाता है।

ध्यान रहे, लघुपाठा के पुष्प के बाह्य कोश के परस्पर में मिले हुये नहीं रहते, किन्तु इसमें वे मिले हुए तथा संख्या में ४-६ होते हैं।

दक्षिण मेंप्रायः इन्हीं का अधिक उपयोग छोटी एवं बड़ी पाठा के नाम से किया जाता है। यद्यपि प्रस्तुत प्रकार का लघुपाठा भी वहां पाया जाता है। उत्तरी भारत में यह आसामीपाठा नहीं पाया जाता, किन्तु उक्त राजपाठा का प्रथम भेद बंगाली पाठा (आगनाद) विशेष पाया जाता है।

यह आसामी पाठा-कड़वा, वातहर, स्वेदल और मूत्रल है। छोटे बालकों के उदरशूल, आमातिसार एवं अजीर्ण में इसकी जड़ को पीसकर देते हैं। इसके साथ अतीस और करंज का मगज देने का विशेष रिवाज है। पंतिक अ...

Scanned with CamScanner

में इसका स्वरस सौंठ के साथ दिया जाता है। प्रमेह में इसकी जड़ का प्रयोग तक्र के साथ किया जाता है। शेप प्रयोग मात्रा आदि लघु पाठा के सदृश ही हैं। अतः उक्त दोनों राजपाठा, लघुपाठा के प्रतिनिधि रूप में लिये जा सकते हैं। गुजरात, काठियावाड़ की ओर इसी कुल की पातालगरुड़ी का उपयोग पाठा के स्थान पर किया जाता है, जो उचित नहीं जंचता। आगे पाताल गरुड़ी का प्रकरण देखिये।

नोट नं० ३-Stephania glabra (Miers) स्टेफानिया ग्लेब्रा नामक उक्त पाठा के ही कुल की देखने में पाठा सदृश एक लता है, जिसे पाठा समझ लिया जाता है। इसमें मूल कंदवत् पत्तियां सर्वदा चिकनी और व्यास में ३-७ इंची तथा पुष्प मंजरी सचूड़ होती है। इन लक्षणों से इसे वास्तविक पाठा से अलग कर सकते हैं। इसे भाषा में पाढ़ कहते हैं। —वनौषधि दर्शिका

प्रस्तुत प्रसंग के पाठा के नाम आदि—

नाम–

सं.—पाठा (लघु पाठा), अम्बष्ठा, वरतिक्ता, प्राचीना, रसा इ.। हि.—पाढ़, पाठा, पाढ़ी, कालीपहाड़, हड़जोरी, पारी, कटोरी, पाटकी, पाठनी इ.। म.–पहाड़, पहाड़मूल, पहाड़वेल, पाड़ावल इ.। गु०—करंडियु, वेणिवेल। बं.–एकलेजा, पाठा। अं.—व्हलवेट लीफ (Velvetleaf) ले.—सिसेम्पेलस परेरा।

रासायनिक संगठन–

इसकी जड़ में सिसेम्पेलिन (Cissampeline) या पेलोसीन (Pelosine) नामक तत्व ½% पाया जाता है। इसके अतिरिक्त सेपीरीन (Sepeerine), बेबीरीन [Bebeerine] तथा अल्प मात्रा में एक रवेदार डेयामेट्टीन [Deyamettin] नामक पदार्थ एवं राल पाई जाती है।

प्रयोज्यांग–मूल, छाल और पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, तीक्ष्ण, तिक्त, कटु विपाक, उष्णवीर्य, त्रिदोष विशेषतः कफवातशामक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, ग्राही, स्तन्यशोधन, दाहप्रशमन, बल्य, कटुपौष्टिक, मूत्रल, व्रणरोपण, विषघ्न, भग्नसन्धानकारक, रक्तशोधक, कुष्ठघ्न, शोथहर, तथा अग्निमांद्य, अजीर्ण, अतिसार, उदरशूल, प्रवाहिका, रक्तविकार, हृद्रोग, कास, श्वास, स्तन्यदोष, बस्तिशोथ, मूत्रकृच्छ्र, अधोगतरक्तपित्त, शीत, ज्वर, ज्वरातिसार, कण्डू, वमन, प्रसवपीड़ा, प्लीहावृद्धि, गर्भाशय के विकार आदि में प्रयुक्त होता है।

अल्प मात्रा में देने से यह क्षुधा को प्रदीप्त करता, भोजन को पचाता तथा आन्त्र की श्लैष्मिक कला को बल प्रदान करता है। अधिक मात्रा में यह दस्त साफ लाता है। डा. देसाई के मतानुसार यह पाठा तथा बंगाली पाठा बस्ति और मूत्रेन्द्रिय की श्लैष्मिक कला पर ग्राही, शामक और बल्य क्रिया करता है, जिससे अन्तस्त्वचा का संशोधन होता है। वृक्क पर इसकी उत्तेजक एवं मूत्रजनन क्रिया होती है। इनमें शोथहर, वेदनाशामक, और मूत्रल धर्म उत्कृष्ट होने से ये दोनों प्रकार के पाठा मूत्र संस्थानके रोगों पर अच्छा लाभ पहुंचाते हैं। आशुकारी या चिरकारी बस्तिप्रदाह तथा उसके साथ होने वाले बस्तिप्रसेक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तमूत्र व सान्द्रमेह (मूत्र में चिपचिपा, श्वेत पदार्थ जाना, मूत्र बार-बार थोड़ा थोड़ा होते रहना तथा पेडू में पीड़ा बनी रहना) पर पाठा मूल का कषाय पूरी मात्रा में देना चाहिये, जिससे शौच शुद्धि होती रहे। उक्त दशा में पाठा मूल को गिलोय व मुलैठी के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

शिथिलता प्रधान अपचन, सिर दर्द, आमातिसार, और ज्वरातिसार में इसको थोड़ी मात्रा में देने से लाभ होता है। आंतों के रोगों में इसकी जड़ किसी सुगन्धित पदार्थ के साथ दी जाती है।

इसके पत्र—शीतवीर्य, वृक्कशोथ में लाभकारी, दुष्ट व्रण, नाड़ी-व्रण पर लगाने के काम में आते हैं। पत्तों को पीसकर थोड़ा गरम कर लेप करने से ग्रन्थि तथा शोथ बिखर जाती है। दुष्टव्रण, नाड़ीव्रण, कण्डू, कुष्ठ व सर्पविष में पत्र और मूल का लेप तैल मिलाकर करते हैं। आधाशीशी में-मूल के स्वरस का या चूर्ण का नस्य देते हैं। मूत्राशय की जलन, अश्मरी एवं जीर्ण शोथ में-मूल का क्वाथ पिलाते हैं। उदर शूल में—मूल का चूर्ण सेवन कराते हैं। कास में—मूल के क्वाथ में मधु मिला पिलाते

Scanned with CamScanner

हैं। मंदाग्नि में-मूल के क्वाथ पर पिप्पली चूर्ण भुरका कर पिलाते हैं।

(१) अतिसार पर-आमातिसार हो, तो पाठा, सोंठ, धमासा, बेलगिरी, चित्रक, अडूसा और नागरमोथा के क्वाथ के सेवन से कफ व शूलयुक्त आमातिसार में लाभ होता है । —भा. भै. र.

पित्त कफज अतिसार में पाठा, इन्द्रजौ, चित्रक व सोंठ इनके चूर्ण को गर्म जल के साथ पीने से या इनके क्वाथ के सेवन से लाभ होता है। ग्रहणी और शूल भी नष्ट होते हैं। —वं. से.

आम ज्वरातिसार हो तो पाठा, इन्द्र जौ, चिरायता, नागरमोथा, पित्तपापड़ा और गिलोय इनका क्वाथ सोंठ चूर्ण का प्रक्षेप देकर सेवन करावें। इससे आमातिसार और ज्वर भी दूर होता है। —भै. र.

अथवा—सर्व प्रकार के अतिसार पर-पाठा ११ तो., इन्द्रजौ, कुड़ा छाल, बेलगिरी १-१ तोला सबका चूर्ण बना लें। ३ माशा तक तक्र के साथ या दही के पानी के साथ लेवें। बच्चों को अल्प मात्रा में मुनक्का में देवें।

दाह और पीड़ा युक्त अतिसार हो, तो पाठा और आम वृक्ष की अन्तर्छाल समभाग गाय के दही के साथ पीस कर पिलावें। —भा. प्र.

दुसाध्य अतिसार पर—पाठा, मोचरस, नागरमोथा, धाय के फूल, बेलगिरी और सोंठ इनके चूर्ण में समभाग गुड़ मिला कर तक्र के साथ सेवन करावें। —भा. भै. र.

(२) ज्वर पर—ज्वर पाचनार्थ पाठा, खस और सुगन्धवाला (नेत्र वाला) इनका क्वाथ सेवन करावें। इससे ज्वर का दोष पाचन होकर अरुचि, तृषा, अपचन, अरुचि आदि सहित ज्वर निवृत होता है।

शीत ज्वर या विषम ज्वर पर पाठा मूल को प्रतिदिन प्रातः ३ दिन तक दूध में पीस कर उसमें थोड़ा लहसुन मिला पीने से शीत एवं कम्पयुक्त विषमज्वर दूर होता है। जिसे लहसुन अनुकूल न हो वह केवल पाठा मूल को ही दूध के साथ लेवें। अथवा पाठामूल के क्वाथ में काली मिर्च का चूर्ण मिला प्रातः सायं कुछ दिन सेवन करें। —भा. भै. र.

(३) अन्तर्विद्रधि तथा प्लीहा वृद्धि पर—पाठामूल के चूर्ण को (३ मा० तक) शहद के साथ चाट कर ऊपर से चावलों का धोवन (तंडुलोदक[1]) पिलावें। (इस प्रकार प्रातः सायं कुछ दिनों तक प्रयुक्त करने से) अति प्रवृद्ध अन्तर्विद्रधि शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। —वं. से.

नोट—यह प्रयोग अन्तर्विद्रधि की अपक्वावस्था से और पच्यमान अवस्था के प्रारम्भ तक हितकर है। विद्रधि का पाक हो जाने पर तो शस्त्र क्रिया का ही सहारा लेना आवश्यक होता है।

प्लीहा वृद्धि पर—पाठामूल के साथ पुनर्नवाका चूर्ण मिला चावलों के धोवन के साथ या शहद के साथ सेवन करावें।

(४) मूत्र विकारों पर-पाठा और अगर के क्वाथ के सेवन से शीघ्र ही मूत्र शुद्धि होती है। पेशाब में धात जाना रुक जाता है। अथवा-पाठ मूल के क्वाथ में नीम की छाल का चूर्ण, गोमूत्र और शहद मिला कर सेवन से पेशाब में श्वेत क्षार या कफ धातु (म्युकस) का जाना या सान्द्रमेह दूर होता है।

शीत मेह (कफज प्रमेह का एक भेद) में पाठा मूल और गोखरू का क्वाथ हितकारी है।

हस्ति प्रमेह (वातज प्रमेह का एक प्रकार जिसमें मूत्र मार्ग से मूत्र बून्द-बून्द निरन्तर टपकते रहता है) पाठा, सिरस की छाल, धमासा, मूर्वामूल, ढाक के फूल, तेंदू की छाल और कैथ वृक्ष की छाल समभाग जौकुट कर २ तो० चूर्ण को ३२ तो० जल में पकावें। ८ तो० शेष रहने पर छान कर सेवन करें। हस्तिमेह नष्ट होता है। —भै. र.

(५) गले (कंठ) के विकारों पर तथा कास पर पाठा, रसौत, मूर्वा की जड़ और मालकांगनीका समभाग चूर्ण बना लें। शहद के साथ सेवन से गल रोग न...

---

[1] कूट कर बारीक किये हुए चावल ४ तो० को प्रथम एक बार पानी से धोकर उनमें ३२ तो० जल मिला १ से ३ घंटे तक भिगोने के बाद, मसल कर जल को निथार लें। यह कषाय, मधुर, लघु, संग्राही, विष वमन, तृषा, दाहनाशक है।

होते हैं।[1] —च. चि. अ. २६

कास पर—पाठा, सोंठ, कचूर, मूर्वा मूल, इन्द्रयण की जड़, नागर मोथा और पिप्पली समभाग पीसकर चूर्ण बना लें। १ से २ मा० तक चूर्ण, गरम जल में मिला, उसमें थोड़ी हींग और सेंधा नमक मिला सेवन से विशेषतः कफज कास में लाभ होता है। —च. चि. अ. १८

(६) स्त्री रोगों पर—मासिक धर्म के लिये—पाठामूल, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली और पुनर्नवा के चूर्ण को जल के साथ सेवन करने से कष्टार्तव तथा मासिक धर्म में रजःस्राव के साथ रक्त की गांठें गिरना आदि विकार दूर होते हैं।

कष्ट प्रसव में पाठामूल को पानी में घिस कर या पानी के साथ पीस कर (कुछ गर्म कर) नाभि, वस्ति और योनि पर लेप करने से सुखपूर्वक प्रसव होजाता है —वृं. मा.

(पाठा के अभाव में संभालू, अडूसा मूल, अपामार्ग या इन्द्रजौ इनमें से किसी एक को पीस कर उक्त प्रकार से लेप करें।)

गर्भाशय भ्रंश-प्रसवकाल में सम्हाल न रखने से गर्भाशय योनिमार्ग से बाहर निकल आया हो और रोग नया हो तो उसे पाठा मूल के क्वाथ से धोते रहने तथा माजूंफल व फिटकरी की पोटली धारण करते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है। किंतु शारीरिक परिश्रम काअधिककार्य नहीं करना चाहिये। —गां. औ. र.

(७) पीनस या दुष्ट प्रतिश्याय पर पाठादि तैल—कल्कार्थ पाठा, हल्दी, दारुहल्दी मूर्वामूल, पिप्पली, चमेली पत्र और दन्ती मूल (मिलित १० तो० का कल्क करें। तिल तैल ½ सेर और पाकार्थ जल २ सेर) सब को एकत्र मिला तैल सिद्ध कर लें। इस तैल के नस्य से पक्व पीनस रोग दूर होता है। —च. चि. अ. २६

(८) अर्श रोग पर—पाठा के साथ धमासा, बेलगिरी, अजवायन या सोंठ इन चारों में से जो अनुकूल हो उसे मिला कर चूर्ण करें अथवा वायु और मल के अनुलोमनार्थ पाठा के साथ अजवायन, सोंठ, अनारदाना का रस, गुड़ और नमक को मट्ठे में मिला कर पिलाते रहने से बवासीर दूर हो जाती है। —गां. औ. र.

(९) दुग्धशुद्धिके लिये—पाठा, मूर्वामूल, चिरायता, देवदारू, सोंठ, इन्द्रजौ, सारिवा, गिलोय और कुटकी का क्वाथ बालक की माता (या धाय) को पिलाने से उसका दूध शुद्ध होता है। —बं. से.

(१०) कुष्ठ पर—पाठा, पिप्पली, गजपिप्पली, कटेरी, सोंठ, चित्रक, पीपलामूल, जीरा, हल्दी और नागरमोथा समभाग चूर्ण बना लें। १ से ४ माशे तक उष्णजल के साथ सेवन से कुष्ठ तथा त्रिदोषज पुराना शोथ भी दूर होता है। —ग. नि.

आगे विशिष्ट योगों में पाठादि चूर्ण नं० १ देखें।

(९) मसूढ़ों के विकारों पर—पाठा, दारुहल्दी की छाल, कूठ, नागरमोथा, मजीठ, कुटकी, हल्दी, लोध और मालकांगनी समभाग चूर्ण बना लें। इसे शहद में मिला कर मसूढ़ों पर मलने से उनकी पीड़ा, खुजली, पाक और स्राव (पाइरिया) का नाश होता है।

—वा० भ० उ० अ० १२

(१२) अस्थिभंग या अस्थि भ्रंश पर—पाठा की ताजी हरी पत्तियों को १ तो. की मात्रा में लेकर जल में ठंडाई की तरह पीसकर प्रातः सायं पीने से अस्थिभ्रंश, चोट प्रभृति अति शीघ्र शमन होते हैं। साथ ही यदि १ मा. पिसी हल्दी भी मिश्रित कर ली जाय तो अति उत्तम है।

लेप—प्रथम अस्थि को यथास्थान बिठाकर उस पर इसकी पत्तियों के साथ चौथाई भाग हल्दी मिला बकरी के दूध में पीस, आग पर पकाकर गुनगुना ही लेप करें तो कैसी ही अस्थि भंग चोट क्यों न हो? १ मास में अवश्य ठीक हो जायगी। साधारण चोट आदि तो १-२ दिन में ही शमन हो जाती है।

—कविराज विश्वनाथ प्रसाद (भा. ज. बूटी से साभार)

[1] पाठा रसांजनं मूर्वा तेजोह्वं तिच चूर्णितम्। क्षौद्र युक्तं विधातव्यं गल रोगे भिषग्जितम्॥
(च. चि. अ. २६) का यह पाठ आधुनिक ग्रन्थों में नहीं मिलता।

Scanned with CamScanner

नोट—मात्रा—चूर्ण १५ से ३० रत्ती अथवा १ से ३ माशा तक। क्वाथ ५-१० तोला।

अल्प मात्रा में यह क्षुधावर्धक, पाचक एवं आंत्र की श्लैष्मिक कला के लिए पुष्टिकर है। अधिक मात्रा में कुछ रेचक है, दस्त साफ लाता है।

प्रतिनिधि—इसके स्थान पर आमनाद या बंगाली पाठा लेवें।

विशिष्ट प्रयोग—

(१) पाठा फाण्ट—पाठा चूर्ण २½ औंस को २४ औंस जल मिलाकर १५ मिनट उबालकर (अथवा चूर्ण में खौलता हुआ २४ औंस जल मिलाकर) ५-१० मिनिट ढक कर छान लेवें। यदि जल २० औंस से भी कम होगया हो तो उतना गरम जल पाठा के चूर्ण में मिलाकर फिर उसे छानकर पूरा करलें। मात्रा—१ से २ औंस तक।

(२) पाठा तरल सार—पाठा के चूर्ण को दूने गरम जल में मिलाकर २४ घण्टे रहने दें। फिर पर्कोलेशन यंत्र द्वारा टपका लें। फिर पुनः पुनः जल मिलाकर गरम कर जब तक चूर्ण से १० गुना जल न हो जाय (या चूर्ण सारहीन न हो जाय) तब तक टपकाता रहे। फिर स्वेदन यंत्र पर तस्तरी में रख घन बना लें। लगभग ¾ घन बनता है। उसमें ३ गुना मद्यार्क मिला तरलसार (extract) तैयार करलें। मात्रा—½ से २ ड्राम।

—गा० औ० र०

(३) पाठादि चूर्ण नं० १ (कुष्ठादि पर)—पाठा, दारुहल्दी, चित्रक, अतीस, कुटकी व इन्द्र जो समभाग चूर्ण बना लें। इसे यथोचित मात्रा में (४ माशा तक) गोमूत्र या उष्ण जल के साथ सेवन से १ मास में कुष्ठ, प्रमेह, अर्श, शोथ, पांडु, कृमिरोग और अजीर्ण नष्ट होता है।

—वा भ. चि. अ. १६

चूर्ण नं० २—पाठादि चूर्ण (वात विकारों पर)—पाठा ६ तो. सोंठ, पिप्पली ४-४ तो. पीपलामूल २ तो., शुद्ध गूगल ५ तो. और कालीमिरच १ तो सबका महीन चूर्ण कर उसमें लोह भस्म १ तो, कस्तूरी असली ६ रत्ती तथा ३ साल का पुराना गुड़ इतना मिलावें कि गोली मटर के बराबर बन जावें।

प्रातः सायं १-१ गोली उष्ण दुग्ध के साथ सेवन से अंग-प्रत्यङ्ग की पीड़ा, वायु युक्त खट्टी डकार, उदर शूल, एवं अन्य उदर रोग शीघ्र दूर होते हैं।

—वैद्य ललिता प्रसाद (धन्वन्तरि से)

(४) पाठादि गुटिका—(हृद्विकार आदि पर)—पाठा ६ तो., बहेड़ा, गिलोय, आंवला ४-४ तो., धनिया, ब्राह्मी, कटेरी, सौंफ ३-३ तोले, धमासा, विदारीकंद, सतावरी, सरफोंका, चित्रक, देवदारु, इलायची, दालचीनी, जायफल, नागकेशर २-२ तो. सबका महीन चूर्ण कर चीनी की चाशनी में ४-४ माशा की गोलियां बनालें। हृदयरोग में जयन्ती के साथ, दाह जलन में सौंफ के हिम के साथ, मेद और कण्डू रोग में अडूसा के क्वाथ के साथ, श्वास में पंचमूल या मधु के साथ देवें।

—वैद्य ललिताप्रसाद (धन्वन्तरि से)

पाठादि गुटिका नं० २ (शूल आदि पर)—पाठा स्वरस १ सेर, मेथी ५ तो., जीरा ४ तोला, भुनी हींग १ तोला, लौंग ६ मा., कस्तूरी असली २ माशा तथा अफीम १। तोला इनके चूर्ण को स्वरस में मिला पकावें। खूब गाढ़ा होजाने पर १० तो. शहद मिला गोली बनाने योग्य हो जाने पर नीचे उतार कर चने जैसी गोलियां बना लें। प्रातः सायं १-१ गोली के सेवन से अङ्ग शूल, आमाशय के सर्व विकार तथा वमन, जी मिचलाना, मुख के छाले शीघ्र दूर हो जाते हैं। ७ दिन में पूर्ण लाभ होता है—

—वैद्य ललिताप्रसाद पांथरी (धन्वन्तरि से)।

पाठादि गुटिका नं० ३ (अजीर्ण, शूल आदि नाशक)—पाठामूल ४ भाग, कालीमिर्च ५ भाग, भुनी हींग ३ भाग और सोंठ ६ भाग सबका चूर्ण कर शहद मिला गोलियां बना लेवें। मात्रा—२॥ रत्ती से ३ रत्ती तक लेवें।

—वाइकर्मा

(५) पाठादि तैल—पाठा १० तो०, बायबिडंग, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली आर अडूसा ५-५ तो. सबको एकत्र जल के साथ पीस कल्क बना आधा सेर तिल तैल में मिला पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर उतार लें। इस की मालिश से वायु, लकवा, सूजन एवं वातजन्य सर्व विकार दूर होते हैं।

—धन्वन्तरि।

(६) पाठादि घृत (बालकों के लिए हितकर)—पाठा, बच, सेंधानमक, सहंजने की छाल, हरड़, सोंठ

Scanned with CamScanner

मिर्च, व पिप्पली समभाग मिश्रित १ सेर जौकुट कर ८ सेर जल में पकावें। २ सेर जल शेष रहने पर छान लें। कल्कार्थ उक्त सब द्रव्य मिलित ३ तो. ४ मा. लेकर जल के साथ पीस लें। फिर आध सेर गाय का मक्खन, उक्त क्वाथ व कल्क एकत्र मिला पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान लें। इसे बालकों को सेवन कराने से उनकी बुद्धि, स्मरणशक्ति, रूप और बल की वृद्धि होती है।

—ग॰ नि॰

पाठादि घृत नं॰ २—(आध्मान आदि नाशक)—पाठा, अजमोद, धनियां, गोखरू, पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सौंठ व बेलगिरी का समभाग मिश्रित कल्क १० तो. तथा दही २ सेर और चूका (चांगेरी) का स्वरस १ सेर व घृत १ सेर लेकर सबको एकत्र मिला पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान लें। मात्रा–१ तोला तक सेवन से अफारा नाश होता है। —वा. भ. अ. ७

नोट— पाठादि घृत के अन्य योगों को ग्रन्थों में देखिए।

पाढ़ल [रक्त] (Stereospermum Suaveolens)

गुडूच्यादि वर्ग एवं श्योनाक कुल (Bignoniaceae) के इस ३०–६० फीट ऊंचे, सुन्दर वृक्ष के काण्ड बाहर से धूसर वर्ण के काले दागों से युक्त, भीतर से कुछ पीताभ, छाल ½ इंच मोटी प्रायः चिकनी धूसर वर्ण की भीतर हलके पीले रंग की उसमें कड़े व मुलायम पत्ते एक के बाद एक निकलते हैं। पत्र-अभिमुख या विपरीत विषम दल १-२ फुट लम्बे, अयुग्म पक्षाकार; पत्रक संख्या ५–६ (प्रायः ७) अण्डाकार या आयताकार ३–८ इंच लम्बे, २-३½ इंच चौडे लम्बाग्र, अवृन्त या छोटे वृन्त वाले, प्रायः मृदुरोमश किंतु छोटे पौधे के पत्रक खुर दरे एवं दन्तुर होते हैं। वसन्त ऋतु में पतझड़ होकर नूतन पत्र निकलते हैं और प्रायः इसी समय वक्षों पर नलिकाकार पुष्प आते हैं। पुष्प–अति सुगन्धित१–१. ५ इंच लम्बे, बाहर से लाल किंतु भीतर पीली रेखाओं से युक्त, फली अमलतास की फली जैसी १८ से २४ इंच तक लम्बी ¾ इंच चौड़ी गोल ४ शिराओं से युक्त, सूक्ष्म रोमयुक्त कुछ टेढ़ी सी भीतर स्थूल पर्वों की माला से युक्त बाह्य आवरण या छिलका पतला काष्ठमय, बीज-प्रत्येक फली में १२-३० तक बीज १-१½ इंच लम्बे सपक्ष, कार्क सदृश लम्ब गोल रचनाओं में छिपे रहते हैं। प्रायः शीतकाल में फली पकती है।

इसके वृक्ष भारत के जल प्राय प्रदेशों यथा पश्चिमोत्तर बंगाल, बिहार, छोटा नागपुर आदि में तथा हिमालय के तराई इलाकों में एवं ट्रावनकोर, सीलोन के आर्द्र भागों में विशेष पाये जाते हैं।

नोट नं॰ १—भावप्रकाश निघण्टु में रक्त और श्वेत पुष्प के भेद से दो प्रकार के पाढ़ल का उल्लेख है। उनमें से रक्त पुष्प वाले पाढ़ल (पाटला) का वर्णन प्रस्तुत प्रसंग में दिया जा रहा है। दूसरे श्वेत पुष्प वाले पाढ़ल (घण्टापाढ़ल या सिता पाटला) तथा पीत पाटला का वर्णन

आगे के प्रकरण में देखिये।

नोट नं० २—मरेठी के वनौषधि गुणादर्श में जिस लता पाढल (बेल पाढल) का उल्लेख है वह पाताल-गरुड़ी का ही एक भेद मालूम देता है। आगे पाताल-गरुड़ी का प्रकरण देखें।

नं० ३—चरक के शोथहर तथा सुश्रुत के बृहत्पंच-मूल, अधोभागहर और आरग्वधादिगणों में इसकी गणना है।

नाम–

सं.—पाटला (पाटल अर्थात् रक्त वर्ण के पुष्प होने से), कृष्णवृन्ता, मधुदूती, अलिवल्लभा, ताम्रपुष्पी, कुबेराक्षी, (करंज जैसे बीज होने से) कुंभी पुष्पी, अम्बुवासिनी (अनूप देशज होने से), इ०। हि.—पाढल, अधकपारी (इसके फल के भीतर के लम्बगोल टुकड़े निकाल कर जुलपित्ती तथा अधकपारी या अर्धावभेदक, आधाशीशी में बांधे जाते हैं) पाड़ल, पारल। म. गु.—पाडल। बं—पारुल-गाछ। ले.—स्टिरियोस्पर्मम स्वैविओलेन्स।

रासायनिक संगठन–

इसके पुष्पों में शर्करा, एक प्रकार का लुआब (म्युसिलेज) तथा मोम आदि मांसल पदार्थ पाये जाते हैं) पुष्प को जल में डालने से जल सुवासित होता है। इसलिये भी इसे संस्कृत में अम्बुवासिनी कहा जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—मूल त्वक, पुष्प, फल, पत्र, और क्षार।

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तिक्त, कषाय, कटु विपाक, अनुष्णवीर्य, त्रिदोष शामक (विशेषतः छाल कफवात शामक, पुष्प व फल वात पित्त शामक) रोचक, तृष्णाशामक, ग्राही, यकृदुत्तेजक, आमाशय की अम्लता को कम करने वाला, कफघ्न, मूत्रल, दाह प्रशमन, वेदनास्थापन, व्रणरोपण, हिक्का निग्रहण, अश्मरी नाशक, वातव्याधि, अरुचि, रक्त प्रकोप, शोथ, वमन, अतिसार, अर्श, अम्लपित्त, कास, श्वास, मूत्राघात, ज्वर आदि में प्रयुक्त होता है।

छाल–इसकी छाल-कफ वात शामक, अधोभाग दोषहर, विषघ्न, और शोथहर है। अम्लपित्त में छाल का फाण्ट देते हैं।

पुष्प—कषाय, मधुर, हृद्य, वात पित्त [illegible] नाशक, वाजीकर, तथा शुक्रदोष, रक्त विकार, [illegible] पित्तातिसार नाशक एवं कंठ के विकार में हितकर है। शुक्र दौर्बल्य में पुष्पों का गुलकन्द देते हैं।

फल—हिक्का और रक्तपित्त नाशक है।

पत्र—व्रणरोपण हैं। व्रणों पर पत्तों के [illegible] लेप करते हैं। तथा कोमल पत्तों से व्रण बंधन करते हैं।

क्षार—इसके पंचाङ्ग का क्षार मधुमेह और [illegible] नाशक है। इस क्षार को तिल तैल के साथ [illegible] कराते हैं।

(१) उष्णता या पित्त प्रकोप पर मूल की [illegible] को शीत जल में पीस कर पिलाते तथा नाभी पर [illegible] करते हैं। और मूल का एक टुकड़ा मुख में रख कर उसका रस निगलते हैं। इससे उदर शूल में [illegible] होता है।

(२) छोटे बच्चों के उदरशूल पर मूल की [illegible] लता करंज के बीज, और अतीस को जल [illegible] छान कर पिलाते हैं।

(३) अम्ल पित्त विकार पर–मूल की छाल [illegible] परवल के क्वाथ में धनियां और सोंठ के चूर्ण [illegible] देकर पिलाने से अम्लपित्त दूर होता है। –[illegible]

अथवा केवल इसकी छाल के फाण्टसे भी अम्लपित्त में लाभ होता है।

अथवा इसके पत्र रस में सोंठ चूर्ण ३ मा० [illegible] मिश्री २ तो० मिला पिलाने से पैत्तिक विकारों की [illegible] होती है। अम्ल पित्त भी नष्ट होता है।

(४) हिक्का पर—इसके फूलों के १ तो० [illegible] समभाग मधु और $\frac{1}{2}$ रत्ती स्वर्ण भस्म मिला कर [illegible] से भयंकर हिक्का शमन होती है।

बालकों के कुक्कुर कास में भी यह योग हितकर है।

अथवा–इसके फूल और फलों का चूर्ण ३ से ६ [illegible] तक में मधु मिला सेवन से कठिन हिक्का दूर होती है। —सु. उ. अ. [illegible]

(५) मूत्र में शर्करा (अश्मरी के कण) के [illegible]

पीड़ा हो तो इसके क्षार को बकरी के मूत्र के साथ पिलाते हैं।

(६) अग्निदग्ध व्रण पर—इसकी जड़ के घन क्वाथ में तैल मिला कर लगाते तथा ऊपर से इसके कोमल पत्तों को बांधते हैं।

(७) अर्धावभेदक (आधा शीशी पर)–इसके बीजों को जल में घिस कर ललाट पर लगाते हैं।

नोट—मात्रा-छाल चूर्ण १० से २० रत्ती (अथवा १ से ३ मा० तक) पुष्प-स्वरस १–२ तो० । क्षार ६–११ रत्ती ।

विशिष्ट योग–

पाटला तैल (अग्निदग्ध पर) इसकी जड़ के क्वाथ के साथ इसकी छाल का कल्क और सरसों का तैल मिला विधिवत् तैल सिद्ध करलें । इसके लगाने से अग्निदग्ध से उत्पन्न दाह व्रण तथा विस्फोटकारी व्याधियां दूर होती हैं।

पाढल [श्वेत] (Stereospermum Chelonides)

उक्त पाढ़ल के कुल का इसका वृक्ष भी प्रायः उतना ही ऊंचा, प्रत्युत् कहीं कहीं अधिक ऊंचा ६० या ८० फुट तक भी देखा गया है। काण्ड-सीधा, बहुत ऊंचा, मोटा, अनेक शाखा प्रशाखायुक्त (नीचे की शाखायें भूमि के समानान्तर, ऊपर की सीधी); छाल—धूसर, भूरे या पीतवर्ण की, कार्क सदृश मोटी, खुरदरी; काष्ठ-कड़ा, धूसर वर्ण का; पत्र-१२-१८ इंच लम्बे, सूक्ष्म लोमयुक्त, अयुग्म, पक्षाकार (फैलेहुये), विपरीत छोटी-छोटी टह-नियों के अग्रभाग पर समूहबद्ध; पत्रक-संख्या में ७-११, चिकने, अण्डाकार, ३-५ इंच बड़े। पत्रवृन्त-परई जैसा; पुष्प-तुरही जैसे बड़े, लम्बाकृति के, बहिर्व्यास में ½ इंची १०-३० इंच लम्बे, ⅓ इंच चौड़े, चिकने, पीले तथा गुलाबी रंग के, कोमल, कुछ टेढ़े से, अतिसुगन्धित, रुचि-कर; फलियां-१०-२० इंच लम्बी, पतली, विशेष गोल न होकर कुछ फैली हुई (सपक्ष) या ४ उभरी हुई रेखाओं से युक्त होती हैं। फली में बीजाधार के मध्य की शिरायें उन्नत, तथा बीज-१ इंच लम्बा, ½ इंच चौड़ा होता है। मूल की छाल स्वाद में विशेष कड़ुवी नहीं होती। ग्रीष्म-ऋतु में पुष्प तथा शीतकाल के अन्त में फली पकती है। पक कर फूट जाने पर भीतर के बीज बाहर निकल पड़ते हैं।

इसके वृक्ष आसाम से दक्षिण भारत में सीलोन तक आर्द्र भूमि में, तथा उत्तर बंगाल, चटगांव, वर्मा, कुमाऊं के पहाड़, मध्यभारत, राजपूताना आदि प्रांतों में पाये जाते हैं। दक्षिण के पहाड़ी प्रांतों में यह अधिक होता है।

नोट नं० १—यह पाढ़ल भारत के दक्षिण में, लाल पाढ़ल की अपेक्षा अत्यधिक होने से, वहां के प्रान्तों में लाल पाढ़ल के स्थान पर इसी का उपयोग दशमूल आदि औषधियों में विशेष किया जाता है। कुछ निघण्टु ग्रन्थों में जो पीत पाटला (पीले पाढ़ल) का उल्लेख मिलता है,

Scanned with CamScanner

वह यही प्रतीत होता है।

नोट नं० २—भाव प्रकाश निघंटु के सम्पादक श्री गंगाप्रसाद जी पांडे का कथन है कि कुछ ग्रन्थों में इसी पाढ़ल के कुल के मिलिंगटानिआ हार्टेन्सिस (Milling tonia Hortensis) नामक वृक्ष का वर्णन मिलता है। इसके ८० फीट तक ऊंचे सुन्दर वृक्ष होते हैं। इसमें रजत सम चमकीले सफेद वर्ण के, घंटाकृति तथा सुगन्धित पुष्प आते हैं। इस वृक्ष के कार्क का उपयोग भी किया जाता है। इसे कहीं-कहीं आकाश नीम कहा जाता है। भावप्रकाशोक्त श्वेत पाटला संभवतः यह ही हो।

नोट नं० ३—बंगला के भारतीय वनौषधि ग्रन्थ में स्क्रेबेरा-स्विटेनियोडिस (Schrebera Swietenioides) नामक परिजात कुल (Oleaceae) के वृक्ष को घंटापाटल, घंटा पाटली नाम दिया गया है। इसे हिन्दी में मोखा कहते हैं। यह पाढ़ल से भिन्न है। इसका वर्णन यथा स्थान मोखा के प्रकरण में देखिये।

नाम–

सं.—पाटला सिता, मुष्कक, गोक्षक, घण्टापाटलि, काष्ठ पाटला इ.। हि.—सफेद पाढ़ल, पाड़र, परारी, घंटापाढ़र, कठपाड़र, कोंजारी, पाटुली इ.। म. गु.—पाड़ला, पाड़री। बं.—घंटापारुल, पीतपाटल, घारमार। अं.—ट्रम्पेटफ्लावर (Trumpet flower) ले.—स्टेरि. ओस्पर्मम केलोनाइडिस, स्टेरि० टेट्रागोनम [St. Tetragonum]

रासायनिक संगठन–

इसमें एक रवेदार कड़वा पदार्थ पाया जाता है।

प्रयोज्यांग—मूल, फूल, पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग–

शीतल, ज्वरघ्न, वातहर, मस्तिष्क तथा वातनाड़ी संस्थान पर अवसादक क्रियाकारी है। पत्र और फूलों का क्वाथ ज्वरनाशक है। ज्वर में शांति के लिये मूल का फाण्ट दिया जाता है।

पाचन क्रिया के सुधार एवं दूषित पित्त के निर्हरणार्थ फूलों का रस दिया जाता है।

उन्माद में—इसके पत्र रस को नीबू के रस के साथ देते हैं। इसके फूल और फल बिच्छू के विष में उपयोगी माने गये हैं।

मात्रा—चूर्ण-१-३ माशा

पाताल गारुडी (Cocculus Hirsutus)

गुडूची कुल (Menipermaceae) की यह लता पाढ़ (पाठा) की लता जैसी, किन्तु कुछ अधिक मोटी, दृढ़; काण्ड-मृदु, श्वेताभ रोमाच्छादित; पत्र-मृदु, श्वेत रोमश, विविध आकार प्रकार के नीचे पत्र प्रायः बड़े लट्वाकार आयताकार, १-२॥ इंच लम्बे, १-२॥ इंच चौड़े, ऊपर के पत्र क्रमशः छोटे आयताकार, पत्रवृन्त ¼ इंची, पुष्प—हरिताभ पीत वर्ण के बहुत छोटे; फल—गुच्छों में छोटे-छोटे गोल चने के बराबर चिकने, कच्चे में हरे, पकने पर काले या बेंगनी रङ्ग के काले रस से युक्त; बीजाधार-चिकना-काला या बेंगनी रंग का ⅙ इंची घोड़े के नाल सदृश होता है। मूल—धूसर वर्ण की जमीन में गहरी गई हुई सुदृढ़, अन्त में कन्द से युक्त, स्वाद में कडुवी होती है। वर्षा ऋतु में पुष्प तथा शीतकाल में फल आते हैं।

यह लता भारत के प्रायः सर्व उष्ण एवं समशीतोष्ण प्रदेशों में तथा नेपाल, पश्चिम बंगाल, बिहार, सिन्ध, पंजाब, मद्रास, या हिमालय से दक्षिण तक प्रायः सर्वत्र पाई जाती है। यह जंगल तथा खेतों की मेंड़ों पर या बेर के या सीताफल के वृक्षों पर फैली हुई अधिक देखी जाती है। इसकी बेल मोटे सूत जैसी पतली, पुरानी-बेल कुछ अधिक मोटी होती है।

नोट—नं० १–इसके पत्तों को जल में मसलने या पत्तों को पीसकर या पत्तों के चूर्ण को जल में मिलाने से जल दही जैसा जम जाता है। अतः इसे जल जमनी कहते हैं। कहा जाता है कि इसकी जड़ को या जड़ के अन्त में गहराई में जो कन्द होता है उसे जल में घिसकर पिलाने से वमन द्वारा सर्प विष तत्काल निकल जाता है अतः इसे पाताल गरुड़ी नाम दिया जाता है।

Scanned with CamScanner

आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। पाढ़ (पाठा मूल) के स्थान पर इसकी जड़ ली जाती है तथा बाजार में प्रायः पाठामूल के साथ इसका जड़ों का मिश्रण रहा करता है।

नोट—नं० २—पीछे पाढ़ल के प्रकरण के नोट नं.२ में मरेठी में लतापाढ़ल (वेल पाढ़ल) का उल्लेख किया है। वह लता वृक्षों पर चढ़ी हुई, पत्र—पाताल गरुड़ी के पत्र जैसे ही किन्तु कुछ लम्बे होते हैं तथा पत्र-रस को जल में मिलाने से वह जम जाता है। इसके फल गोल छोटे मोती जैसे श्वेत रङ्ग के एवं गुच्छों में लगते हैं। इसकी जड़ पाताल गरुड़ी की जड़ जैसी कडुवी होती है। इसे मरेठी में 'मोटीताह्लीची' वेल (बड़ी पाताल गरुड़ी लता) कहते हैं। यह उष्णवीर्य तथा वात, अरुचि, पित्त, और रक्तदोष नाशक है। शेष गुणधर्म व प्रयोग पाढ़ल जैसे ही हैं। छोटे बालकों के (विशेषतः बालिका के) तालू भ्रंश पर इसके पत्तों को पीस बटी सी बना तालू स्थान पर (सिर में) रखते हैं।

—व० गुणादर्श से।

पातालगरुडी

COCCULUS HIRSUTUS (LINN) DIEL.

नाम—

सं०—छिलहिण्ट, महामूल, पाताल गरुड़। हि०—पाताल गरुडी, जल जमनी, [1]फरीद बूटी, फरीदबेल, छिरेटा। म०—वासबवेल, गरुड़वेल, भुईपाड़ल, ताह्लीचा वेल। गु०—पाताल गलोरी, वेवड़ी। बं०—हयेर, शिलिन्दा। ले०—काक्युलस हिर्स्युटस, कां. व्हिलोसस (Coceulus Villosus), टिनोस्पोरा क्रिस्पा (Tinosora Crispa)।

रासायनिक संगठन—

इसमें परस्पर विभिन्न दो क्षारीय तत्व होते हैं तथा एक एसिड, एक पीताभ हरित, मृदु, सुगन्धित राल होती है।

प्रयोज्याङ्ग—मूल, पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, पिच्छिल, तिक्त, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, प्रभाव-विषघ्न। त्रिदोषशामक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, रक्तशोधक, अति वृष्य (वीर्यवर्धक), मूत्रल, मूत्रमार्ग के लिए स्नेहन, शामक, स्वेद जनन, शोधन, ज्वरघ्न, तथा अग्निमांद्य, अजीर्ण, विष्टंभ, शूल, रक्तविकार (उपदंश, आमवातादि) कास, श्वास, चर्म रोग आदि में उपयोगी है।

मूल—कड़वी, चरपरी, उत्तेजक, मृदुरेचक, उष्ण, स्वेदल, सौम्य, बलवर्धक, मूत्रल, ज्वरघ्न, ग्राही, वातहर एवं शोधन है। यह सार्सापरेला की उत्तम प्रतिनिधि है।

इसका प्रयोग रक्तविकार, बस्तिशोथ एवं प्रमेहों में किया जाता है। जीर्ण ज्वर में—मूल का हिम या फाण्ट देते हैं, इससे रक्त शुद्धि भी होती है। पैत्तिक अपचन या पाचन शक्ति के कम होने पर-मूल चूर्ण ३ से ६ माशा तक में शक्कर और सोंठ चूर्ण मिलाकर सेवन कराते हैं। नारू पर-इसे जल में घिस कर पिलाते हैं। छोटे बच्चों के उदर शूल में—मूल के साथ लता-करंज के बीज का मगज या अतीस जल में पीसछान कर पिलाते हैं। दौर्बल्य तथा सर्पविष में मूल को पीसकर पिलाते हैं।

[1]फरीद बूटी नाम की एक अन्य बूटी का वर्णन आगे फरीद बूटी के प्रकरण में देखिये।

Scanned with CamScanner

(१) संधिवात, विस्फोटक, कण्डू तथा उपदंशज रक्त विकारों पर—इसकी २ तोले जड़ को ७ दाने कालीमिर्च के साथ पीसकर ६० तो. जल में पकावें । ५ तो. शेष रहने पर पिलावें । शीघ्र ही कुछ दिनों में ही सार्सापरेला की तरह लाभ होता है ।

(२) जीर्ण आमवात (विशेषतः उपदंशज), संधिशोथ आदि पर मूल को बकरी के दूध में उबालकर उसमें पिप्पली, सोंठादि सुगन्ध द्रव्य मिला सेवन कराते हैं। इसमें चर्म रोगों में भी लाभ होता है । अथवा–

इसकी जड़के क्वाथ १० तोले में बकरी का दूध २॥ तोले मिला उस पर कुछ पिप्पली या कालीमिर्च के चूर्ण का प्रक्षेप देकर नित्य प्रातः सेवन से गठिया एवं उपदंशज अन्य उपद्रव दूर होते हैं ।

(३) बच्चों के सूखा रोग पर ३ दिन में लाभ—प्रथम दिन इसकी जड़ का चूर्ण २ रत्ती प्रातः (बकरी के दूध या पानी से) देवें । यदि इससे लाभ न हो, तो दूसरे दिन पुनः २ रत्ती चूर्ण पोस्त के डोड़े के रस में देवें । अवश्य लाभ होगा । यदि कुछ कसर रह जाय, तो तीसरे दिन २ रत्ती चूर्ण प्रातः ५ नग लौंग के महीन चूर्ण के साथ देवें । बच्चा बिलकुल ठीक हो जावेगा ।

—वैद्य श्री सुरेन्द्रकुमार चमोली आयुर्वेद भास्कर
(धन्वन्तरि के परीक्षित प्रयोग से)

(४) अफीम का व्यसन छुड़ाने के लिये—जिन लोगों को अफीम खाने का व्यसन पड़ जाता है, और वह किसी प्रकार नहीं छूटता, उनको यदि धीरे-धीरे अफीम कम करते हुये, उसके स्थान पर इसकी जड़ का चूर्ण दिया जाय, तो धीरे-धीरे यह दुर्व्यसन छूट जाता है । यह चूर्ण शुरू में १ तोला की मात्रा में देना चाहिये, और इसके पश्चात् धीरे-धीरे कम करते जावें । इसके सेवन से सिर में चक्कर आते हैं, वमन भी होता है । इसलिये इसके ऊपर मिश्री मिले हुये दूध में १½ या २ रत्ती जायफल का चूर्ण मिलाकर पिलावें । इस प्रकार १-२ मास लगातार इसके प्रयोग से २० वर्ष का पुराना अफीम का व्यसन भी छूट जाता है ।

—व. चं.

(५) सर्प दंश पर–जड़ की छाल ½ से १ तोला तक ७ या १० कालीमिर्च के साथ पीस छान कर १५-१५ मिनट में २-३ बार देवें ।

—सुधानिधि से

पत्र—दाहप्रशमन, मूत्रल, शोथहर, स्तन्यजनन, वीर्यवर्धक, त्वग्दोषहर है । पत्तों का लेप विषघ्न, शामक एवं त्वग्दोषहर हैं । शुक्र स्तंभन तथा वाजीकरणार्थ पत्र-स्वरस पिलाते हैं । मूत्र दाह, मूत्रकृच्छ्र और पूयमेह (सुजाक) में पत्र-स्वरस में चीनी मिलाकर पिलाते हैं ।

पत्र रस को पानी में मिलाने पर जब वह लुआबदार हो जाता है, तब उसका लेप दाहजनक खुजली, दाहयुक्त फोड़ा, छाजन आदि पर शांति के लिये किया जाता है। इसके शुष्क पत्तों का चूर्ण व्रणों पर बुरकने से आइडोफार्म का कार्य होता है । इसके पत्तों और शाखों को पीस कर १० बार तीन तह किये हुये कपड़े में से छान लेने से अत्युत्तम ऐड़ोफार्म [1] तैयार हो जायगा—भा. ज. बूटी से

पत्तों को पीसकर कुछ गरम कर शोथ, चोट आदि पर बांधने से लालिमा तथा पीड़ा कम होती है। इसे शिरःशूल में भी बांधते हैं । पित्त के विकारों पर पत्र रस में सौंठ चूर्ण मिलाकर पिलाते हैं ।

(५) सुजाक (पूय प्रमेह पर)—रोग की प्रारम्भिक अवस्था में इसका पत्र रस, जीरा चूर्ण और मिश्री के साथ सेवन करना विशेष उपयोगी है ।

—अथवा

इसके २ तोला पत्तों को प्रतिदिन प्रातः ठंडाई की भांति पानी के साथ पीस छानकर तुरंत ही पीवें, ऊपर से २-३ माशा मिश्री चबालें । पथ्य में बिना नमक के रोटी, दलिया, घृत, दूध खूब लेवें । ७ दिन के सेवन से रोग समूल नष्ट होता है ।

(३) स्वप्न दोष पर—इसके छायाशुष्क पत्र १०

---

[1] आयड़ोफार्म (Iodoform) यह एलोपेथिक चिकित्सा में व्रणों के ड्रेसिंग के लिये विशेष उपयोगी पदार्थ है। रासायनिक दृष्टि से यह ट्राइ आयड़ोमिथेन (Tri-iodomiethane) होता है । इसके चमकीले जम्बीर वर्ण [Shining lemon yellow] के छोटे-छोटे षट्कोणीय रवे या क्रिस्टल्स होते हैं, अथवा चूर्ण के रूप में होता है । इसमें एक विशिष्ट प्रकार की अरुचिकारक गंध एवं स्वाद होता है । यह खुला रहने से धीरे धीरे उड़ जाता है । यह कृमिनाशक, स्वापजनक [Anaesthetic] व दुर्गन्ध नाशक है । यह विषैला भी है ।

—सम्पादक

Scanned with CamScanner

तोला और घृत में भुनी हुई छोटी हरड़ ५ तोला दोनों को महीन पीसकर समभाग मिश्री मिला रखें। बलानुसार १ से २ तोला की मात्रा में प्रातःसायं गो दुग्ध के साथ सेवन करने से भयंकर स्वप्नदोष भी अवश्य नष्ट होगा। हमारा अनुभूत है। खटाई, तैल, मिर्च, गुड़ एवं गरिष्ठ पदार्थों से परहेज रखना चाहिये।

अथवा—इसके शुष्क पत्र ५ तोला, त्रिफला ६ तोला, गोंद बबूल ३ तोला, गोंद कतीरा १ तोला, सबका महीन चूर्ण कर इसके पत्र स्वरस में घोटकर (पत्र स्वरस को निकालने के लिये पत्तों में जल के छीटे देकर घोटकर निचोड़ना चाहिये) सुखाकर रख लेवें। मात्रा—६ माशा चूर्ण ताजे जल से प्रातःसायं सेवन करें। स्वप्नदोष दूर होकर बल वीर्य की वृद्धि होगी। परीक्षित है।

अथवा—इसका पंचाङ्ग सूखा ५ तोला, दूर्वा सूखी २॥ तोला, गोंद कतीरा, छोटी इलायची प्रत्येक १¼ तोला सबका महीन चूर्ण कर बराबर की मिश्री मिलालें। १ तोला की मात्रा में प्रातःसायं गोदुग्ध से लेवें। स्वप्नदोष एवं रक्त की उष्णता अवश्य शांत होगी। स्त्रियों के प्रदर रोग को भी नष्ट करता है। हमारा परीक्षित है।

अथवा—इसके पत्र १ तोला और कालीमिर्च ५ नग लेकर प्रतिदिन ठण्डाई की तरह पीस मिश्री मिलाकर सेवन से वीर्य शुद्ध होकर स्वप्नदोष और प्रमेह दूर होता, कान्ति की वृद्धि होती है। परीक्षित है।

—पं० अनन्तदेव जी शर्मा वैद्यशास्त्री, लखीमपुर (खीरी)

इसके दो पत्तों को जल के साथ पीस छानकर थोड़ी शक्कर मिला तुरंत ही प्रातःसायं पीने से वीर्य गाढ़ा होता है। स्त्रियों के प्रदर पर भी लाभकारी है। सेवन काल में भोजन के बाद कोई पाचन चूर्ण अवश्य लेवें, जिससे पाचन ठीक बना रहे।

(७) अस्थिभ्रंश, चोट, मोच आदि पर—इसका प्रयोग पाढ़ [पाठा] के पत्र प्रयोग जैसा ही है। पाढ़ के प्रकरण में प्रयोग नं० १० देखें।

नोट—मात्रा—स्वरस १-२ तोला। मूल चूर्ण ३-६ माशा। मूल स्वरस ४ माशा तक। पत्र चूर्ण २-७ माशा तक। क्वाथ ५-१० तोला।

विशिष्ट प्रयोग -

पारद की अग्निस्थायी गोली का योग—इसके पत्ते और आक के कुछ कच्चे व पके पत्ते समभाग लेकर कूट पीसकर १ सेर रस निकाल लें। फिर मिट्टी का एक सरावला लेकर चूल्हे पर रख, नीचे धीमी आंच लगावें तथा उसमें उस रस का कुछ हिस्सा डाल दें। जब रस गरम होकर उफान देकर नीचे बैठ जाय, तब उसमें ७ तोला पारा डाल देवें। जैसे जैसे नीचे का रस जलता जाय तैसे तैसे ऊपर से नया रस डालते जावें। इस प्रकार जब रस जल जावे, तब उस सरावले को नीचे उतार लेवें। इस प्रकार १० दिन में १० सेर जल पचा देने के पश्चात् पारे की गोली बन जाती है। ऐसा कहा जाता है।

—जंगलनी जड़ी बूटी (व. चं)

पाताल तुम्बी (Ceropegia Bulbosa)

अर्क कुल (Asclepiadaceae) की २ से ५ फुट लम्बी इस लता के पत्र-अभिमुख, लम्बगोल, पुष्प-छोटे-छोटे नीलाभश्वेत वर्ण के; फली ३ इञ्च लम्बी होती है। इस लता के मूल के नीचे आलू जैसे कन्द लगते हैं।

यह लता पंजाब आदि पश्चिम भारत के प्रान्तों में तथा उत्तर भारत में गंगा के उत्तरी मैदानों में प्रयाग तक और दक्षिण में कोंकण, मलाबार, कर्नाटक, ट्रावनकोर तक पायी जाती है।

नोट नं० १—इसकी एक जाति कच्छ में दूधिया कुन्डेर नाम से प्रसिद्ध है। यह बहुत कम, कहीं-कहीं मिलती है। कहा जाता है कि यदि इसका कन्द वर्षाऋतु में सेवन कर लिया जाय तो १२ मास तक कोई रोग नहीं होता।

—व. चं.

नोट नं० २—इसकी एक जाति सेरोपेजिया टयुबेरोसा (Ceropegia tuberosa) लेटिन नाम की होती है। इसके भाषा में अन्य नाम प्रस्तुत प्रसंग की पाताल तुम्बी के नामानुसार ही हैं।

यह खेतों और मैदानों में होती है। इसके ऊपर

Scanned with CamScanner

बारीक एवं पीले रंग के छींटे वाले, बिच्छू के डंक के समान कांटे होते हैं। काठियावाड़ में यह बहुत पाई जाती है। इसके गुणधर्म के विषय में देवगढ़ (राजस्थान) निवासी वैद्याचार्य उदयलाल महात्माजी ने लिखा है—

कि स्त्रियों को प्रसव होने के पश्चात् कभी कभी दौरे आने लगते हैं। दांत भिड़ जाते हैं, तथा धनुर्वात के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। ऐसे संकट पूर्ण समय में इसके प्रयोग से आश्चर्यजनक लाभ होता है। सूतिका रोग में होने वाले अतिसार शोथ आदि उपद्रवों में भी यह एक महौषधि का काम करती है। बालकों को होने वाले धनुर्वात (टिटेनस) में भी यह एक अव्यर्थ महौषधि है। यह हेमगर्भ की तरह चमत्कारिक कार्य करती है।

नोट नं० ३—कहा जाता है कि एक पाताल तुम्बी सर्प के बिलों में होती है। यह तुम्बी सिंघाड़े के आकार प्रकार की होती है। इसे जल में घिस कर कंठमाला की गाठों पर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

प्रस्तुत प्रसंग की पाताल तुम्बी के नामादि—

नाम—

हि०—पाताल तुम्बी, गालोत। म०—खापरकद्दू। गु—कुन्टेर, कुन्ढ़ेर, खापरकद्दू। ले०—सेरोपेजिया बल्बोसा।

रासायनिक संगठन—

इसके कन्द में स्टार्च, शर्करा, गोंद, अल्ब्युमिन, वसा, तन्तु, क्षार ६.४ प्र. शत् (इसमें मेंगनीज होता है)। कन्द में सेरोपेजीन (Ceropegine) नामक जो क्षाराभ तत्व होता है, वह ईथर, मद्यार्क तथा जल में घुलनशील है।

प्रयोज्याङ्ग—कन्द।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसके तथा इसकी जाति की अन्य लताओं के कन्द
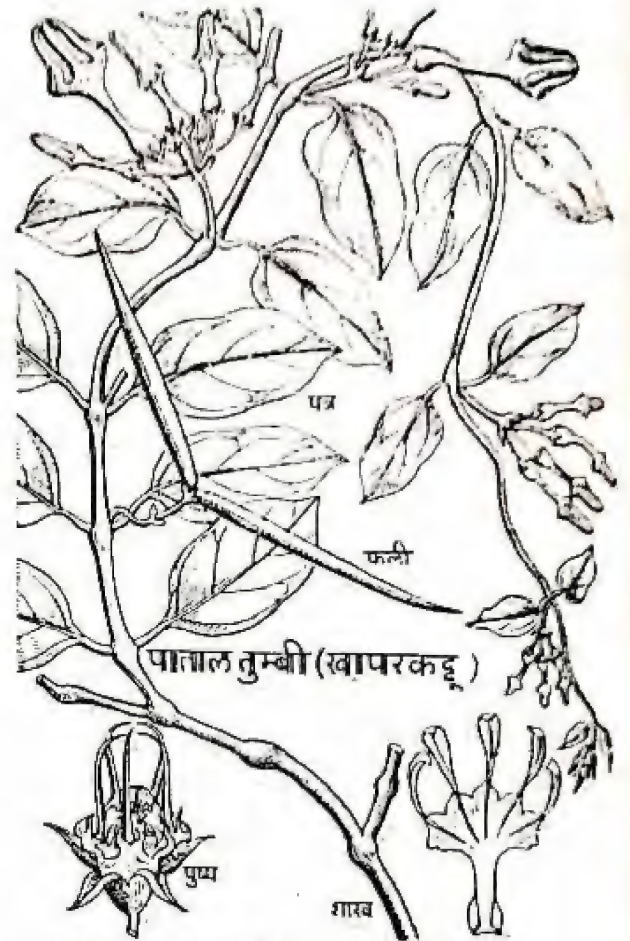
CEROPEGIA BULBOSA ROXB

पौष्टिक और पाचक होते हैं। कन्दों को उबालने से उनका कडुवापन दूर होता है। तथा उन्हें दूध के साथ पीसने से जो मधुर पिच्छल द्रव्य तैयार होता है वह रासायनिक दृष्टि से विशेष पौष्टिक है। बिहार में इसके चूर्ण का उपयोग ½ से १ रत्ती की मात्रा में प्रतिश्याय एवं साधारण नेत्र विकारों पर नस्य रूप में छींक लाने के लिये किया जाता है। श्वेत प्रदर, धातुदौर्बल्य तथा बालकों के आंत्र विकार आदि पर इसके कन्द का प्रयोग किया जाता है। यह कई पाकादिक प्रयोगों में डाला जाता है।

—नाड़कर्णी

पाती (Juncellus Inundatus)

मुस्ताकुल (Cyperaceae) का यह वर्ष जीवी क्षुप शीतकाल में शुष्क हो जाता है। वर्षा में इसकी जड़ से पुनः अंकुर फूट कर पौधा पैदा होता है। यह २-३ फुट ऊंचा बढ़ता है। पत्र नागरमाथा के पत्र सदृश; पुष्प

Scanned with CamScanner

दण्ड—सूक्ष्म लोमयुक्त; प्रशाखायें ½ इंची। फल-लम्बा, चपटा, चिकना होता है। वर्षा व शरद ऋतु में फूल व फल आते हैं।

इसके पौधे आर्द्र भूमि में, धान्य के खेतों में तथा सुन्दरबन में अधिक पाये जाते हैं। हिन्दी और बंगला में पाति, लेटिन में जुनसेलस इनन्डेटस या सायपरस इनन्डेटस (Cyperus Inundatus) कहते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—मूल।

गुण धर्म—ज्वरनाशक, पौष्टिक और उत्तेजक है।

पाथर चूर—दे० पखान भेद नं. ३। पाथरसुआ—दे. पित्त पापड़ा नं० ५। पान—दे. ताम्बूल।
पथरी—दे. बनकाहू पानगोभी—दे. करमकल्ला।

पानजीरी पात (Anisochilus Carnosus)

तुलसी कुल (Labiatae) के इस पौधे को लता कहा जाता है; किन्तु यह लता रूप नहीं होता। इसका पौधा लगभग ३ से ८ फुट तक ऊंचा पतला दीखने में खुरदरा सा किंतु हाथों से छूने पर मुलायम मालूम देता है पत्र-कुछ लम्बे, गोल, दन्तुर तथा पुष्प के तुर्रे श्वेत रंग के। होते हैं। इस पौधे से प्रातः कपूर जैसी सुगन्ध आती है तथा दूर से देखने में यह बेल कुछ (लता) सा दिखाई देता है। अतः इसे कपूर वल्ली कहते हैं।

इसके पौधे पश्चिमीय हिमालय तथा बंगाल, मध्य-भारत, दक्षिण भारत, मैसूर, मलाबार, कर्नाटक, सीलोन और जावा में विशेष पाये जाते हैं।

नाम—

सं—कर्पूर वल्ली, इन्दुपर्णी। हि०—पानजीरी पात, सिताकी। म०—कापूर वेल। गु०—अजमागुपत्र, उभोर-तकेलियो। अं०—थिकलेव्हन्डर (Thick Lavender) ले०—एनिसोचिलस कार्नोसस।

रासायनिक संगठन—

इसका मुख्य तत्त्व रूप एक उड़नशील तैल इसमें पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

यह साधारणतः उत्तेजक और कफनिःसारक है। बच्चों

Scanned with CamScanner

की खांसी और कफ विकारों पर इसका ताजा पत्र रस मिश्री मिलाकर दिया जाता है। इससे गले की पीड़ा भी दूर होती है। मस्तिष्क की शांति के लिये इसके पत्रों के कल्क में शक्कर तथा तिल तैल मिला सिर पर लेप करते हैं। इसके पत्र और डंठलों का फाण्ट प्रतिश्याय, कास आदि पर उपयोगी है।

इसका तैल विशेष उत्तेजक, स्वेदजनन एवं कफ नि:सारक है। इसकी मात्रा १ से ३ बून्द तक मिश्री या कन्द के साथ दी जाती हैं।

पानजोली—दे. भुई आंवला में। पानमुहुरी—दे. बनमेथी। पानरसोन—दे. लहसुन में।

पानलता (Derris Uliginosa)

शिम्बी कुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) की यह कड़े तने वाली या काष्ठीय आरोही जंगली लता है। इसकी शाखा-प्रशाखायें चिकनी, रोमश, मुरचई रंग के क्षोद से आलिप्त होती हैं। छाल—धूसर रंग की पत्र—छोटे-छोटे कंगूरेदार चिक्कन लोमयुक्त, २-४ इंच लम्बे; पुष्प—तुरें के आकार के गुलाबी रंग के ½ इंच लम्बे होते हैं। पुष्प दण्ड—२-४ इंच लम्बा मुरचई, मृदु-रोमश क्षोद (Ferruginous Pubescence) से आलिप्त होती हैं। पुरानी लता के तने या काण्ड बहुत मोटे होते हैं। फली—सूक्ष्म रोमश १-२ गोल बीज युक्त,बीज पतला, चिपटा होता है। मूल—इसकी जड़ प्रायः भौमिक कांड (Rhizome) के साथ संलग्न एवं काफी कड़ी होती है। जड़ें बाहर से हल्के खाकी रंग की तथा लम्बाई की दिशा में झुर्रियां पड़ी हुई तथा चारों ओर दागों के चक्रों से युक्त एवं भीतर का काष्ठ हल्के पीतवर्ण का होता है। गन्ध में साधारण सुगंधित, स्वाद में चरपरी, चुनचुनाहट पैदा करने वाली। औषधि कार्यार्थ जड़ों की छाल ही ली जाती है। इन जड़ों का संग्रह अच्छी तरह डाट बन्द पात्रों में करना चाहिये।

यह तथा इसकी जाति की लतायें पूर्वी हिमालय प्रदेशों में तथा दक्षिण में पश्चिमी घाट से सीलोन तक, एवं आसाम और बर्मा के उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों (Tropical zone) में स्वयं जात पाई जाती हैं। इस लता में पुष्प वर्षाकाल में और फल शीतकाल में आते हैं।

नोट—इसकी अन्य भारतीय प्रजातियां—(१) डेरिस स्केन्डन्स (Derris Scandens) गंज, नोआलता है। यह दक्षिण भारत में अधिक होती है। इसकी छाल मृदुरेचक एवं मछलियों के लिए विष है। सर्पदंश में इसका उपयोग होता है। (२) डेरिस एलेप्टीका (Derris Ellaptica) आदि हैं।

नाम—

हि०—पानलता (यह इसका बंगला नाम है)। म०—किरताना, काजरवेल। अं०—इंडियन टूबारूट (Indian Tubaroot)। ले०—डैरिस युलिजिनोसा।

पान लता
DERRIS ULIGINOSA BENTH.

रासायनिक संघटन–

इसकी छाल में एक उदासीन चमकदार तत्व (Crystallineanhydrodesrlde), वसा, दो प्रकार की राल, दो प्रकार के रंजित पदार्थ, क्षाराभ, शर्करा, सेपोनीन जैसा एक तिक्त ग्लुकोसाइड, गोंद और खनिज द्रव्य ८% पाये जाते हैं।

प्रयोज्यांग—छाल और पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग–

कसैली, ग्राही, धातुपरिवर्त्तक एवं तीव्र कीटनाशक है। कृषि में इसकी छाल का उपयोग टिड्डियों को भगाने के लिए तथा जो कीड़े वृद्धिशील छोटे छोटे पौधों की पत्तियों, टहनियों एवं पुष्पों को खा जाते हैं उनके नाशार्थ विशेषत: किया जाता है। एतदर्थ संगजराहत, (शंखजीरा Talc) और गेरू के साथ इसकी छाल का चूर्ण मिलाकर पौधों पर प्रक्षेप (Dust) किया जाता है। छाल का चूर्ण मछलियों के लिये घातक विष है।

संधिवात, जीर्ण पक्षाघात, कष्टार्तव पर एवं धातु-पुष्टि के लिये तंजौर के चिकित्सक इसके द्वारा सिद्ध घृत एवं तैल का वाह्य तथा आभ्यन्तर प्रयोग करते हैं।

गठिया (आमवात) पर–इसकी छाल के चूर्ण के साथ हींग, लहसुन और चित्रक मूल को पीसकर कल्क बना कर लेप करते हैं।

बदग्रन्थि या अन्य पीड़ादायक ग्रन्थियों को फोड़ने के लिये—इसके पत्तों को उबाल कर, काजू की गिरी के साथ पीसकर बांधते हैं।

खुजली के लिए 'एप्लिकेशन आफ डेरिस' (Derris application) तथा 'डेरिस क्रीम' (Derris Cream) ये दो पाश्चात्य प्रयोग प्रसिद्ध हैं। प्रथम योग की निर्माण-विधि–इसकी छाल का चूर्ण २५ग्रा. हार्डसोप ६.६ग्रा. तथा परिश्रुत जल आवश्यकतानुसार १००० मि.लि. तैयार औषधि के लिए लेकर जल को गरम कर उसमें हार्ड सोप मिलावें। घुल जाने पर उसमें चूर्ण मिलावें और फिर इतना परिस्रुत जल और मिलावें कि सब तैयार औषधि की मात्रा १००० मि. लि. हो जावे और खाज पर लगावें। जब प्रयोग करना हो इसे ताजा बनाना चाहिए।

डेरिस क्रीम में १ प्रतिशत रोटेनोन (Rotenone यह इसकी छाल का एक विषाक्त तत्व है) तथा ७ प्रतिशत इसका एकस्ट्रक्ट (Derris extract) होता है।

—पा. म. मेडिका

पानी आंवला [Flacourtia Cataphracta]

फल वर्ग एवं तुवरक कुल (Flacourtiaceae) के इस सशाख कांटे युक्त, सदैव हरित, झाड़ीदार वृक्ष की ऊंचाई १५-१६ फुट, कहीं कहीं लगभग २८ फुट तक, कांड-गोल लगभग ३०-३५ इंच व्यास का; छाल-धूसर वर्ण की चिकनी; पत्र—लगभग २-४ इंच लम्बे, १-१¾ इंच चौड़े, लट्वाकार, भालाकार, लम्बी नोकवाले, गोल दंतुर किनारे वाले; पुष्प–बहुत छोटे-छोटे, बैंगनी रंग के बेर या आमले के पुष्प जैसे; फल–छोटे आंवले या झड़-बेरी के बेर जैसे, ५-७ इंच व्यास के ५-६ (अधिक से अधिक १२) बीजों से युक्त, पकने पर गहरे बैंगनी या लाल रंग के स्वाद में खट मीठे होते हैं। फल खाये जाते हैं। फूल—जुलाई अगस्त मास में तथा फल–अक्टूबर से दिसम्बर तक आते हैं।

इसके वृक्ष—उत्तर पूर्व बंगाल, कुमाऊं, उड़ीसा, आसाम, चटगांव तथा दक्षिण भारत के जंगलों में पानी के किनारे, एवं समुद्रतटवर्त्ती प्रदेशों में निसर्गत: पैदा होते हैं। कई स्थानों पर ये लगाये भी जाते हैं। इसके वृक्ष में जो गोंद निकलता है उसे कहीं कहीं कतीरा गोंद कहते हैं।

नोट–इसे कहीं कहीं तालीस पत्री या तालीस पत्र कहा जाता है। क्योंकि इसके शुष्क पत्रों के गुणधर्म एवं प्रयोग प्राय: तालीस पत्र जैसे ही हैं। तथापि यह तालीस पत्र से भिन्न है। तालीस पत्र का प्रकरण देखिये।

नाम–

सं—प्राचीनामलक। हि०—पानीआंवला, पनियाला, पचनाला, जमनुआ। म०—पान आंमले, ताम्बट, जंगम। गु०—पाणी आंवला। अं०—मेनी स्पाइक्ड फ्लेकोरिटा

Scanned with CamScanner

पानी आंवला
FLACOURTIA CATAPHRACTA ROXB

(Manyspiked Flacorita)। ले०—फ्लाकोर्शिया काटाफ्राक्टा।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, फल और पत्र

गुण धर्म व प्रयोग–

गुरु, मधुर, रोचक, ग्राही, उष्णवीर्य, त्रिदोष शामक, मुख-शोधक, दीपन, पाचन, ज्वरघ्न, कफ, तृषा, वात विकार, पित्तविकार, यकृद्विकार आदि में उपयोगी है।

छाल—संकोचक, ग्राही, दीपन, पौष्टिक, मूत्र कास, श्वासहर है। स्वरभंग में छाल का फांट देते हैं। कास, श्वास में भी लाभकारी है।

फलों का उपयोग–साधारणतः आलू बुखारा जैसे किया जाता है। ताजा पकाफल–कफपित्तवृद्धि कारक है।

पत्र—संकोचक, दीपन, स्वेदल, अतिसार, दौर्बल्य आदि में एवं उदरविकारों में उपयोगी है।

पानीफल—दे० सिंघाड़ा। पानी लजक—दे० लजालू में। पानी लबंग—दे० वन लबंग।

पानीवेल (Vitis Latifolia)

द्राक्षा कुल (Vitaceae) की इस बड़ी लता का काण्ड बहुत मुलायम, छिद्रल, बाहर की ओर नालीदार–(Furrowed) होता है पत्र–साधारण ३-७ इंच लम्बे, ४ - इंच चौड़े, गोलाई लिये हुए आधार पर ताम्बूलाकार धार पर ५ कोण या विच्छेद वाले होते हैं। इसका कांड काट देने से प्रचुर मात्रा में स्वादिष्ट जल निकलता है, जिसे पीकर जंगल के कुली अपनी प्यास शांत करते हैं। इस लता का वर्णन राजनिघण्टुकार ने अमृतस्रवा के नाम से किया है। इसी जाति की एक दूसरी लता Vitis Lanata (व्हायटिस लेनाटा) भिनान नामक होती है। इसका भी कांड काटने से जल स्राव होता है।

देहरादून के जंगलों में प्रायः शाल आदि ऊंचे वृक्षों पर फैली हुई ये लतायें पाई जाती हैं।

—व० दर्शिका।

इस लता को हिन्दी तथा बंगला में पानिबेल, गुवर, गोविल आदि; मरेठी में गोलिदा और लेटिन में व्हायटिस लेटिफोलिया कहते हैं।

यह लता भारत के उत्तर पश्चिम प्रदेशों में पूर्व और पश्चिम किनारों पर तथा दक्षिण की ओर पाई जाती है।

इसके कोमल पत्तों का स्वरस दंतपीड़ा पर तथा दुष्ट व्रणों की शुद्धि के लिए लगाया जाता है। इस रस का आभ्यन्तरिक प्रयोग धातु परिवर्त्तक, पौष्टिक है। इसकी जड़ ग्राही और संकोचक है।

—नाड़कर्णी।

पानी संभालू—दे० निर्गुण्डी में नोट नं० २। पानेरू—दे० हिरन चारा।

पापरा (पापड़ा)-दे० खुब्बाजी तथा पापरी नं० २

पापरी[1] (Pavetta Indica)

मंजिष्ठ कुल (Rubiaceae) के इस छोटी जाति के झाड़ीदार क्षुप की शाखायें बहु विस्तृत, कोमल, लोमयुक्त, छाल-पतली, मुलायम, पीताभ श्वेत या भूरे रंग की; पत्र-७.५ से १५ सें. मी. तक लम्बे, २.५ से ६.२ सें. मी. तक चौड़े और रोमश, गांठों से युक्त झिल्लीदार तीखी-नोक वाले; पुष्प-छोटे छोटे सुगंधित; फल-गोल, सूक्ष्म रोमश, काला, मुलायम होता है। वर्षाकाल में फूल व शीत काल में फल आते हैं।

यह बूटी भारत में प्रायः सर्वत्र पहाड़ी जमीन पर दक्षिण में, पूर्व, पश्चिम घाटों पर सुन्दर वन के पश्चिम भाग पर भी पाई जाती है। इसकी जड़ें खुरदरी, ऊबड़ खाबड़ होती हैं।

नाम-

सं०—पापटा, तिर्यकफला। हिं०—पापरी, कांकरा, कंकर, काठचम्पा[2], अंगारी। म०—पापड़ी। गु०—पापट। बं.—कुकुरचुड़ा, जुई। अं०-इंडियन पेलेट श्रब (Indian pellet shrub) माथेरान काफी (Matheran Coffee)। ले०—पवेटा इंडिका, आइक्झोरा (Ixora Pavetta)। आइक्झोरा पेनिक्युलेटा (Ixora Paniculata)।

पापरी
PAVETTA INDICA LINN.

रासायनिक संगठन-

इसमें हरितवर्ण की राल, स्टार्च, एक सेन्द्रिय क्षार (An organia-acid), सालीसीन (Salicin) सदृश एक ग्लुकोसाईड होता है।

प्रयोज्यांग—मूल, त्वक् व पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग-

कड़वी, सुगंधित, पौष्टिक, आनुलोमिक, मृदुरेचक, आंत्रावरोध निवारक है।
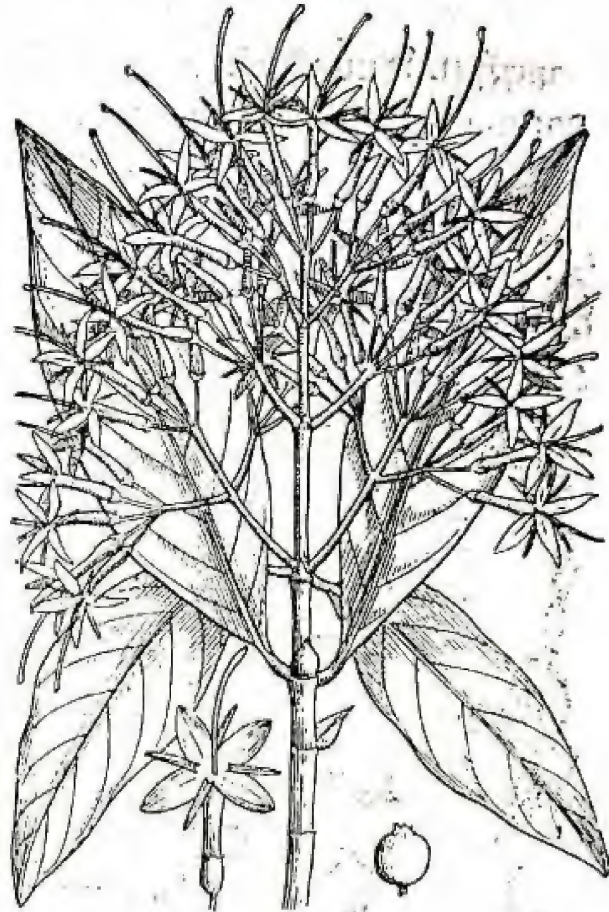
आंत्र में किसी प्रकार की रुकावट होने पर प्रायः बच्चों को मूल छाल का चूर्ण १ ड्राम की मात्रा में देते हैं।

जलोदर तथा मूत्रावरोध पर—जड़ की छाल के चूर्ण को सोंठ के चूर्ण के साथ मिला चावल के धोवन या कांजी के साथ देते हैं इससे अन्य उदर रोग और अजीर्ण में

---

[1] यद्यपि सर्वसाधारणतः वटकुल (urticaceae) के चिलबिल (Holoptelea Integrifolia) को पापरी कहा जाता है (चिलबिल का प्रकरण भाग ३ में देखिये) तथापि कई अन्य बूटियां भी हैं, जिन्हें हिन्दी में पापरी, पापड़ी कहते हैं। उनका ही यहां संक्षिप्त में क्रमशः वर्णन किया जाता है।

[2] काठचम्पा-सुलतान चम्पा (पुन्नाग) को भी कहते हैं। देखिये सुलतान चम्पा।

Scanned with CamScanner

भी लाभ होता है।

अर्श की पीड़ा निवारणार्थ—इसके पत्तों का बफारा दिया जाता है।

यकृत दौर्बल्य या शैथिल्य पर—जड़ का क्वाथ या शीत निर्यास दिया जाता है। इससे संधिवात पर भी लाभ होता है।

पापरी नं॰ २ (Podophyllum Emodi)
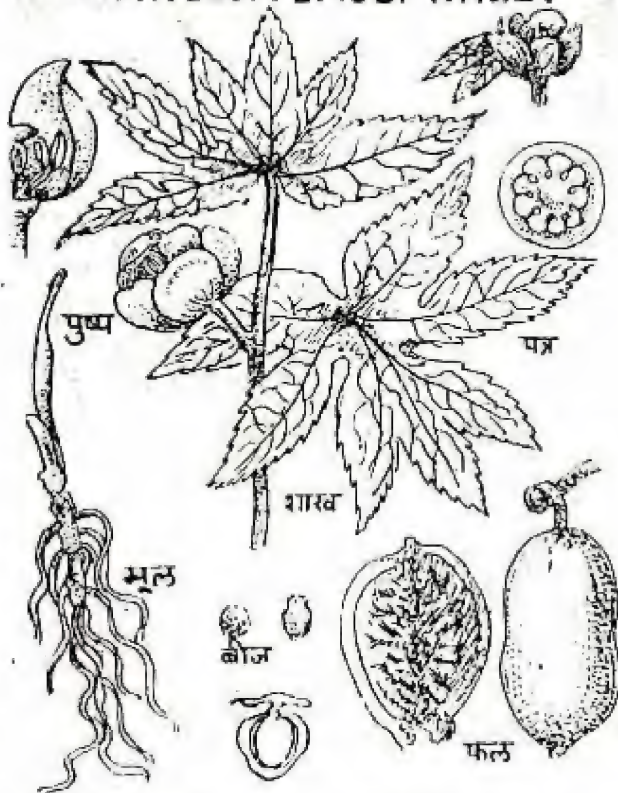
दारुहरिद्राकुल (Berberidaceae) के इस छोटे क्षुप के कांड ६ से १२ इंच ऊंचे, सरल, स्थूल; पत्र—देखने में प्रायः अण्डखर्बूजे के पत्र जैसे गोलाकार लगभग ६-१० इंच व्यास के ३-५ भागों में खंडित, दन्तुरधार वाले; पत्र-वृन्त-लम्बा; पुष्प—किंचित् गुलाबी छटायुक्त श्वेत वर्ण के गोल, १-१॥ इंची व्यास के; फल—१-१२ इन्च लम्बे लाल रङ्ग के छोटी ककड़ी या अण्डखर्बूजा जैसे अनेक बीजयुक्त होते हैं। ये फल खाये जाते हैं।

मूल—गोल ग्रन्थियुक्त कुछ चपटी बाहर से रक्ताभ-धूसर भीतर से श्वेत या धूसर वर्ण की विशिष्ट प्रकार की तीक्ष्ण गन्धयुक्त होती है।

इसके क्षुप हिमालय प्रदेशों में, काश्मीर, कांगड़ा, कुल्लू, चंबा, शिमला, सिक्किम आदि स्थानों में ७ हजार फीट के ऊपर छायायुक्त स्थानों में विशेष पाये जाते हैं।

नाम—

सं॰—गिरिपर्पट, वनवृन्ताक। हि॰—पापरी, पापड़ा, बनककड़ी, गुलकाकरु, बनबेंगन, रिखपित्ता। म॰—पड़वल। गु॰—बेनिवेल। बं॰—पापरा। अं॰—इंडियन पोडोफिलम (Indian Podophyllum)। ले॰—पोड़ोफिलम एमोड़ी।

रासायनिक संगठन—

इसके मूल में पोड़ोफिलन (Podophyllin) नामक राल जैसा क्रियाशील द्रव्य लगभग १० प्रतिशत जिसमें पोडोफाइलो टाक्सिन (Podophyllotoxin), पोड़ोफाइलिक एसिड (Podophyllic acid), पोड़ोफिलोरेजिन (Podophylloresin) तथा क्वर्सेटिन (Quercetin) नामक तत्व पाये जाते हैं।

प्रयोज्यांग—मूल तथा मूल सत्व (पोडोफाइलिन)

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, कटु विपाक, उष्णवीर्य, कफपित्तहर, विशेषतः पित्तशोधक, दीपन, यकृदुत्तेजक, लेखन, क्षोभक, पित्तसारक, विरेचक कभी कभी हृल्लास, वमनकारक (इसकी क्रिया प्रायः कैलोमल के समान होती है। इससे यकृत के पित्त का स्राव तो विशेष नहीं होता किंतु आंत्र की परिसरणगति के बढ़ जाने से उत्सृष्ट हुए अत्यधिक पित्त का परिशोषण न हो पाने से वह अधिक मात्रा में मल के साथ बाहर निकलता है। इस प्रकार यह परोक्ष पित्त सारक Indirect Cholagogue है) रक्त-

Scanned with CamScanner

शोधक, जीर्ण विबन्ध, वातरक्त, आमवात, कफ विकार, कुष्ठादि में प्रयुक्त होता है।

अग्निमांद्य जन्य दौर्बल्य में इसकी अत्यल्प मात्रा दी जाती है।

डा. वा. ग. देशाई का कथन है कि यह बूटी पित्त प्रकोप में एवं पित्त प्रकृति वालों के अजीर्ण विकार में दी जाती है। इससे यकृत की क्रिया सुधरती, उसकी सूजन उतर जाती है किंतु इसके सेवन से उदर में ऐंठन होती है, अतः इसे खुरासानी अजवायन या अन्य किसी सुगंधित द्रव्यों के साथ लेना चाहिए। विषम ज्वर की दशा में यकृतवृद्धि होने पर तथा दस्त साफ न होने पर विरेचनार्थ इसे दिया जाता है। आमवात, वातरक्त तथा अन्यान्य चर्म रोगों में उदर शुद्धि के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

नोट—मात्रा—मूल चूर्ण २-४ रत्ती, सत्व १/४-१/२ रत्ती। सामान्यजीर्ण विबन्ध में इसका सत्व १/१२-१/८ रत्ती तथा क्रूर कोष्ठ (जिनका कोठा बहुत कड़ा है) वालों के लिये या प्रतिहारिणी सिरा के अवरोध को दूर करने के लिए १/८-१/४ रत्ती की मात्रा में देते हैं। साधारणतः यकृदुत्तेजक कर्म के लिये इसका प्रयोग १/६०-१/४० रत्ती की मात्रा में करते हैं। इस मात्रा से रेचन भी नहीं होता।

अधिक मात्रा में प्रयोग से महास्रोत में भी क्षोभ तथा शोथ उत्पन्न होता है। उसके निवारणार्थ स्निग्ध, मधुर, शीतद्रव्य (दूध, नीबू का शर्बत आदि) देना चाहिये।

पाश्चात्य वैद्यक में इसका टिंचर दिया जाता है। कैंसर रोग में भी यह विशेष उपयोगी मानी गई है।

पापरी नं० ३ (Buxus Sempervirens)

एरण्ड कुल (Euphorbiaceae) के इस छोटे आकार के वृक्ष के पत्र-बर्च्छी जैसे लम्ब-गोल; पुष्प-छोटे पीले, हरे, उत्तम सुगन्धित; फली—गोलाकार, ६-६ बीज युक्त होती हैं।

यह बूटी समशीतोष्ण कटिबन्ध में हिमालय, भूटान, पंजाब आदि में विशेष होती है।

इसे हिन्दी में—पापरी, चिकरी, चिकारी, शमशेद आदि तथा लेटिन में—बक्सस सेंपरव्हिरेन्स कहते हैं।

रासायनिक संगठन—

इसमें बक्सिन (Buxine), पेराबक्सीन (Parabuxine), बक्सिनाइडिन (Buxinidine), बक्सिनेमिन (Buxinamine) नामक क्षाराभ पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसके पत्र कड़वे, विरेचक,स्वेदल, आमवात तथा गर्मी में लाभकारी हैं। संधिवात, उपदंश, सिर दर्द, गुदभ्रंश आदि में पत्तों का प्रयोग किया जाता है।

इसकी छाल ज्वर निवारक है और स्वेदजनक है। इसके बीज कड़वे, संकोचक, तथा हृदय व मस्तिष्क को बलप्रद हैं। मुख शोथ तथा यकृद्विकार नाशक हैं।

पामारि—दे. पंवाड़।

पामुख़ (Verbena Officinalis)

निर्गुण्डी कुल (Verbaceae) की इस छोटी जाति की बूटी के पत्र-५ सें० मी० से १० सें० मी० तक लम्बे होते हैं। यह पंजाब, बंगाल तथा हिमालय में काश्मीर से पूर्व ७ हजार फीट की ऊंचाई तक पैदा होती है।

नाम—

हि०—पामुख, कराइता (यह पंजाबी नाम है) अं०—कोलुम्बाईन (Columbine)। ले०—व्हर्बेना आफिसिनेलिस।

रासायनिक संगठन—

इसमें एक ग्लुकोसाईड़ और व्हर्बेनालिन नामक (Verbenalin) क्रियाशील तत्व पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह ज्वरनाशक एवं पौष्टिक है। वात मंडल या

नाड़ी के विकारों पर तथा पक्षाघात पर इसका उपयोग किया जाता है। संधिवात, अर्धाङ्ग, लकवा आदि की पीड़ा पर इसके ताजे पत्तों का उपयोग चर्मदाहक पदार्थ की तरह किया जाता है। कंठमाला पर इसकी जड़ उपयोगी मानी जाती है। यकृत के विकारों पर यह पुल्टिस की तरह ऊपर बांधने के काम में तथा क्वाथ के रूप में सेवन कराते हैं। जलोदर में भी यह उपयोगी माना जाता है।

पारस पीपल (Thespesia Populnea)

वट वर्ग एवं कार्पास कुल (Malvaceae) के इस मध्यमाकार सदैव हरे भरे रहने वाले शीघ्र बढ़ने वाले छोटी शाखा प्रशाखा युक्त वृक्ष का भीतरी काष्ठ भाग किंचित् बैंगनी नील वर्ण का, सुगन्धित और सुदृढ़ होता है। पत्र—पीपल वृक्ष के पत्र जैसे किंतु छोटे, ३–५ इञ्च विस्तृत, हृत्पिण्डाकार, चिकने, तल भाग में किंचित धूसर नोकदार, पत्र वृन्त १–४ इञ्च लम्बा; पुष्प—घण्टाकार सुन्दर बड़े ५ लम्बी पंखुडी युक्त गुलाबी या हलके पीतवर्ण के भिंडी के पुष्प जैसे कहीं कहीं गुच्छों में (पीपल वृक्ष में पुष्प अप्रकट होता है इसमें स्पष्ट बड़े आकार प्रकार का होता है); फल—गूलर के फल जैसे किंतु कड़े, भीतर ४ बड़े एरण्ड बीज की आकृति के बीज होते हैं। हरे फलों को चीरने से स्वर्ण वर्ण का पीला दूध बहुत निकलता है। सूखने पर फल खाकी रंग के होकर चिटक जाते हैं किंतु डाल से अलग नहीं होते। वर्षा के बाद शीतकाल पर्यन्त इसमें फूल और फल आते हैं।

ये वृक्ष भारत के कई प्रांतों में कहीं न कहीं पाये जाते हैं। बंगाल के समुद्रतटवर्ती स्थानों में तथा सुन्दर बन में अधिक होते हैं। दक्षिण में कोंकण की ओर पहाड़ी प्रान्तों में भी विशेष पाये जाते हैं। मद्रास आदि कई शहरों के किनारे ये वृक्ष लगाये जाते हैं।

नाम—

सं०—पारीष, कपिचूत, कन्दराल, गर्दभाण्ड, कमंडलु, नन्दी, सुपार्श्वक, कुबेराक्ष इ०। हिं०—पारसपीपल गजदंड, सहोरा, गजहुंड, फारसझाड़, परास पीपल इ०। म०—पारोसा पिंपल, अष्ट, भेंडी, कड़े पाईर इ०। गु०—पारस, पीपलो वेंड़ी। बं०—पलाश पीपुल, गजशुण्डी। अं०—पोर्शियाट्री (Portia tree) टुलेपट्री (Tulep tree), हार्ट वुड (Heart wood) ले०—थेसपेसिया पापुलनी; हिबिसकस पापुलनी Hibiscus populanes)

रासायनिक संगठन—

इसके पके फलों में फासफोरिक एसिड; बीज में कृष्णाभ लाल वर्ण का तैल होता है, जिसे हुइले अमेरे (Huile amere) कहते हैं। काष्ठ के मध्य भाग में लाल रंग का राल जैसा खनिज द्रव्य होता है जो जल में नहीं घुलता ईथर और बेंज़ाल (Benzol) में घुलता है।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, फल, पत्र, मूल आदि।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु (दुर्जर) स्निग्ध, मधुर, वीर्यवर्धक, उत्तेजक, कृमि शुक्र कफोत्पादक है। तथा वात, पित्त, हृद्रोग, दाह, कंठरोग आदि नाशक है। इसके गुणधर्म प्रायः पाकर के जैसे ही हैं।

मूल—मधुर और कसैली होती है।

छाल—ग्राही संकोचक एवं त्वग्रोग नाशक है। अतिसार, रक्तातिसार आदि में छाल का क्वाथ पिलाते हैं।

(१) खुजली, दाद आदि त्वचा के रोगों पर छाल को पीस कर नारियल के तैल में पका कर तैल को छान कर लगाते हैं।

(२) पुत्रोत्पत्ति के लिये—इसके मूल की छाल के साथ श्वेत जीरा, और सरफोंका की जड़ को पीस कर चूर्ण कर रखें। इसे गर्भिणी स्त्री (३ से ६ मा० तक) की मात्रा में दूध के साथ पथ्य पालनपूर्वक सेवन करे तो निश्चय ही पुत्रोत्पत्ति होती है। भा. प्र.तथा यो०

फल—अम्ल या खट मीठे होते हैं।

(३) खुजली आदि चर्म रोगों पर—प्रथम इसकी छाल के क्वाथ से चर्म रोग ग्रस्त अङ्ग को धोकर पश्चात् फलों का पीला रस लगाते रहने से गीली खुजली,

Scanned with CamScanner

पारस पीपल
THESPESIA POPULNEA CORR.

पुष्प
पत्र
फल
शाख
पुष्पकली
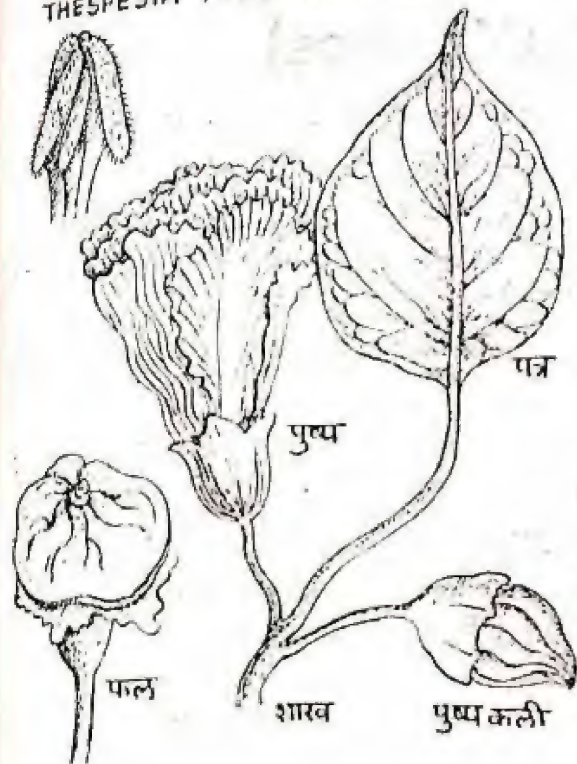
छाजन आदि तथा मोच, चोट, रगड़ एवं कीटक दंश में लाभ होता है।

अथवा उक्त चर्म रोगों में इसके पके फलों को जला कर उसकी राख को तैल में मिला कर लगाते तथा छाल का क्वाथ पिलाते हैं।

(४) श्वास पर—इसके फल के रस में अथवा इस के वृक्ष को छेदने से जो दूध निकलता है उसमें कालीमिर्च और हल्दी (अथवा बहेड़ा) का चूर्ण मिला २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। इनके सेवन से वमन होकर दूषित कफ निकल जाता है तथा आराम मिलता है। शांति के लिये घृत और चावलों का भात खायें।
—ब. गु.

(५) कफ विकार पर—बलाबल देख कर इसके रस को (या वृक्ष के निर्यास की) छोटों को ३ बून्दें तथा बड़ों को ६ बून्दें थोड़े ही गुड़ के साथ देने से कफ पतला हो कर निकल जाता है।
—ब. गु.

(६) मस्तक शूल तथा अर्धावभेदक पर—इसके ताजे फलों को पीस कर लेप करने से शिर दर्द शांत होता है।

फल को जल में पीस कर नस्य देने से आधा शीशी में लाभ होता है।

(७) व्रणों के कृमिनाशार्थ इसके रस को लगाते हैं।

(८) गर्भाशय शुद्धि के लिये—इसके ११ शुष्क फलों का महीन चूर्ण समभाग मिश्री मिला कर ६-६ मा० प्रतिदिन प्रातः दूध के साथ मासिक धर्म के चौथे दिन से ७ दिन तक सेवन से गर्भाशय शुद्धि एवं ऋतु शुद्धि होती है।

गर्भस्राव हो रहा हो तो या गर्भवती के शूल चलता हो तो इसके ३ फलों को पीस समभाग मिश्री मिला ठंडे जल के साथ देने से सत्वर लाभ होता है।

—राजवैद्य पं० रमेशचन्द्र जी व्यास (स्वास्थ्य से)

(९) संधियों की जकड़न तथा शोथ पर—पत्रों को पीस कर गरम कर लेप करते या पुल्टिस बना कर बांधते हैं। दाह युक्त शोथ पर पत्तों को पीस कर तिल तैल मिला कर लेप करते हैं।

(१०) नारू पर—पत्तों पर तैल चुपड़ कर गरम कर बांधने से, नारू से पैदा हुये छाले और व्रण में लाभ होता है।

फूल—

(११) खुजली, दाद आदि पर—फूलों को पीसकर लेप करते हैं, या फूलों का रस निकाल कर लगाते हैं।

बीज—बीजों की गिरी कसैली, कुछ स्वादिष्ट होती है।

(१२) संग्रहणी, अर्श, सुजाक तथा मूत्र दाह पर—इसके २-३ बीजों को शक्कर के साथ देते हैं।

(१३) गर्भाधान एवं पुत्रोत्पत्ति के लिये—इसके एक पके सूखे फल के बीजों को कूट छानकर गोदुग्ध के साथ ऋतुस्नान के ३ दिन बाद अर्थात् चौथे दिन से लगातार ३ दिन पीने से बच्चा पैदा होगा। —भा. गृ. चिकित्सा

काष्ठ—

(१४) पित्त विकार पर—इसकी लकड़ी के मध्य भाग को घिसकर लेप करने से पैत्तिक दाह, जलन तथा छाती की पीड़ा दूर होती है।

Scanned with CamScanner

(१५) उदर शूल पर—काष्ठ के गर्भभाग का क्वाथ पिलाते हैं।

पारिजात—देखो हारसिंगार। पारिभद्र—देखो फरहद। पाङ—देखो प्याज में।

पालक (Spinacia Oleracea)

शाकवर्ग एवं वास्तूक कुल (Chenopodiaceae) के इस वर्षजीवी सुप्रसिद्ध शाक के पौधे १-२ फुट ऊंचे; पत्र-कुछ मोटे, मांसल, लम्बे, विस्तृत, आकार में बहुत कुछ बथुआ (वास्तूक) जैसे साधारण त्रिकोणयुक्त; पत्रवृन्त-लम्बे, डंडी-पोली कोन युक्त; पुष्प-लम्बी डंडी पर मूल में, पुष्प बहुत छोटे वृन्त रहित, गुच्छों में हरितवर्ण के गुच्छों में आते हैं। उसी स्थान में बीजाधार भी होता है। बीज चौकोणाकार, खुरदरे होते हैं। पुष्प—फाल्गुन चैत्र मास में आते हैं।

इस शाक का मूल स्थान अफ्रीका कहा जाता है। किंतु भारतवर्ष में यह प्राचीन काल से बोई जाती है। बंगाल में अधिक होती है। वैसे तो भारत में प्रायः सर्वत्र ऊंचे स्थानों के खेतों में तथा बागों में यह प्रायः भाद्रपद मास में बोई जाती है तथा मार्गशीर्ष से लेकर चैत्र मास तक इसके पत्र शाक के लिये काटे जाते हैं। परिपक्व एवं डंठलों पर कुछ लालिमा पाई जाती है। इसके पत्र जितने काटे जाते हैं, उतने ही पुनः शीघ्र बढ़कर आ जाते हैं। इसके पौधे की जड़ गुच्छेदार होती है।

इसकी एक जंगली जाति की जंगली पालक (Rumex Maritimus) होती है। उसका वर्णन आगे के प्रकरण में देखें।

नाम—

सं.—पालक्या, वास्तुका कारा, छुरिका, चीरित्त-च्छदा इ.। हि.—पालकशाक, पलाकी, पालकी इ.। म.-पालख, पालकी। गु.—पालखनी भाजी, टांको। बं.—पालं-शाक, पालेक। अ.—स्पाइनेज (Spinage), स्पिनाच (Spinach) लै.—स्पाइनेशिया ओलिरेसया।

रासायनिक संगठन—

इसमें पानी ९१.७%; खनिज पदार्थ १.५%, प्रोटीन १.०%; वसा ०.९%; कार्बोहाइड्रेट ४.०%; कैलशियम ०.०६%; फासफोरस ०.०१%; लौह ५.० मिली-ग्राम प्रति सौ ग्राम; विटामिन 'ए' २६३० से लेकर ३५०० इण्टरनेशनल यूनिट तक प्रति १०० ग्राम; विटामिन 'बी' ७० इ. यू. प्रति १०० ग्राम और विटामिन 'सी' ४८ मि. ग्रा. प्रति प्रतिशत ग्राम होता है। इसके अतिरिक्त क्षार नाइट्रेट ३॥ प्रतिशत तक, कुछ शर्करा आदि होते हैं।

इसके बीजों में एक प्रकार का चर्बी जैसा गाढ़ा तैल होता है। इसे **Chenopodium oil** या **Oleum Chenopodii** कहते हैं।

पालक के पत्र-वृन्त (डंठल) में—जल ९३.४ प्रति खनिज

पदार्थ १.८ प्रति. प्रोटीन ०.६ प्रति. वसा ०.१ प्रति. कार्बोहाइड्रेट ३.८ प्रति. कैलशियम ०.६ प्रति. फासफोरस ०.०२. प्रति. लोह १।३ मि. ग्रा. प्रति. १०० ग्राम; तथा विटा 'सी'–३ मि. ग्रा. प्रति. १०० ग्राम होता है। इसमें तन्तु तथा क्षार का भाग अधिक होता है।

प्रयोज्यांग—पत्र, बीज तथा पंचाङ्ग । औषधि-कार्यार्थ बीज अच्छे परिपक्व जो कुछ लालिमायुक्त होते हैं उत्तम माने जाते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग–

गुरु, शीतवीर्य, वातकारक, मलभेदक, दाहशमन, मूत्रल, तथा मद (नशा), श्वास, पित्त, रक्तविकार, विष, कफ, पैत्तिक ज्वर, कंठशूल आदि में प्रयुक्त होता है। यह वात प्रकृति वालों को विष्टम्भकारी तथा कफ प्रकृति वालों को कफकारी है। अन्यथा यह कफघ्न है।

पत्र—पत्तों का (डंठल सहित) शाक लघु (शीघ्रपाकी) सारक, तथा पैत्तिकज्वर, राजयक्ष्मा, उरःक्षत, मलावरोध, कामला, आंत्रविकार, मूत्रदाह आदि में लाभकारी है।

(१) रक्तपित्त पर शाक विधि—पालक २० तो. जल से धोकर शुद्ध कर एक देगची में ५ तो. गोघृत डालकर, उसमें ६ माशा जीरा भूनकर पालक को उसमें छौंक देवें, ऊपर से थोड़ी अदरख कतर कर डाल दें। फिर नमक ३ माशा मिलाकर पात्र के मुख पर जल भरा दूसरा पात्र रख दें। जब शाक पक्व हो जाय तो उसमें अनार दाने का रस २ तो. मिला रक्तपित्त से पीड़ित रोगी को सेवन करावें। —अ. यो. माला

अथवा—कच्चे पत्तों के रस में शहद या मिश्री मिला कर सेवन से भी रक्तपित्त में लाभ होता है।

(२) विष भक्षण पर शाक विधि–२० तो. पालक को बारीक कतर कर, उसमें नमक ३ माशा अनारदाने का चूर्ण ६ माशा, हरड़ चूर्ण १॥ माशा, नागकेशर चूर्ण २ माशा, हल्दी १ माशा, श्वेत चन्दन का चूर्ण और कालीमिर्च ६-६ रत्ती मिलाकर घृत में थोड़ा लहसन भूनकर उसमें उक्त शाक के मिश्रण को छौंक देवें। और पात्र के मुख पर दूसरा पानी से भरा हुआ पात्र रख पकावें। यह शाक अफीम, धतूरा, भंग, आक का दूध, कुचला, घुंघची, कनेरफल, संखिया, आदि के भक्षणजन्य विष प्रकोप पर विशेष हितकर है। —अ. यो. माला।

(३) मदात्यय रोग पर शाक—पालक २० तोला धोकर पात्र में १ तोला घी डालकर थोड़ा जीरा उसमें भूनकर छौंक दें। ऊपर से नमक ३ माशा, कालीमिर्च १॥ माशा, धनिया ६ माशा, हल्दी १॥ माशा, सौंफ १ माशा तथा गरम मसाला १॥ माशा डालकर उक्त विधि से तैयार कर लें। तथा किसी मृतिका या चीनी के पात्र में निकालकर उसमें १ तोला बिजौरे नीबू का रस मिला रोगी को गेंहू की रोटी के साथ देवें।

नोट—उक्त प्रयोग तथा नीचे का दाल शाक, का योग श्री वैद्य रामेश्वर प्रसाद जी दीक्षित के लिखे हुये अ. यो. माला से साभार लिये गये हैं।

ध्यान रहे पालक की किसी भी प्रकार की शाक आदि वात और कफ की व्याधि वाले रोगी को नहीं देनी चाहिये। अन्यथा उनके रोग की वृद्धि होना संभव है।

पालक की दाल शाक–पालक २० तो. शुद्ध कर कतर लें। और ५ तो. मूङ्ग की दाल को पानी में उबाल कर उसमें नमक ६ माशा, लालमिर्च ३ माशा, धनिया १॥ तोले, अमचूर ३ माशा, हल्दी १॥ माशा डाल दें। इससे पहले मूङ्ग की दाल का पानी शोषित कर लें, अर्थात् बहुत गाढ़ी दाल पकालें, तथा उक्त पालक का मिश्रण उसमें मिला आग पर पुनः पकावें। यह दाल का शाक स्वादिष्ट बनता है। इसी प्रकार मुङ्गौड़ी, या अन्य किसी दाल या पापड़ के साथ भी पालक का शाक बनता है।

ध्यान रहे पालक को चना, अरहर आदि दालों के साथ या आलू, गोभी, अर्वी, गाजर, बेंगन, बथुआ, मूली, टमाटर आदि दूसरे शागों के साथ मिलाकर पकाकर खाना अति हितकर है। क्योंकि इसमें पाया जाने वाला उच्च कोटि का प्रोटीन तथा व्हिटामीन 'ए' और 'बी' दालों के या अन्य शागों के कम उपयुक्त प्रोटीनों का शरीर में उत्तम आत्मीकरण (पाचन) कराता है।

(४) उदर शुद्धि के लिये—इसके कच्चे पत्ते खाने में कुछ कडुवे लगते हैं, किंतु अधिक गुणकारी होते हैं। दही के साथ कच्चे पत्तों का रायता स्वादिष्ट एवं लाभ-

Scanned with CamScanner

दायक होता है।

कच्चे पत्तों को सिल पर बिना जल के पीसकर, वस्त्र में निचोड़ कर निकाला गया स्वरस लगभग ४० तोले तक प्रायः पीने से पेट खूब साफ हो जाता है।

अथवा—२० तो. पत्तों के साथ टमाटर २ नग मिला उबालें, जब गल जावें, रस निकाल लें। एक गिलास यह रस पीने से प्रायः एक दस्त साफ हो जाता है।

(५) विद्रधि, गांठ, गठिया, शोथादि पर—पत्तों को उबाल कर पुल्टिस जैसा बांधने से लाभ होता है। बर्र के दंश पर भी यह लाभकारी है।

(६) अश्मरी, सिकतामेह तथा कंठशूल पर—इसके पत्तों का रस या क्वाथ पिलाने से पेशाब खूब साफ होकर पथरी या सिकता निकल जाती है।

कंठ शूल में—पत्र रस से कुल्ले कराते हैं। अथवा रस में शक्कर मिला पिलाते हैं।

(७) ज्वर प्रधान विकार आदि में—इसके पंचाङ्ग का क्वाथ सेवन कराते हैं। यह क्वाथ गले की, फेफड़ों की या श्वासनलिका की सूजन पर भी उपयोगी है।

बीज—शीतल, स्निग्ध, मृदुविरेचन, संतापहर, मूत्रल, पैत्तिक ज्वर, हृच्छूल, कृच्छ्रश्वास, यकृच्छोथ, पांडु आदि पर लाभकारी है।

(८) पामा, खुजली आदि चर्म रोगों पर—बीज के समभाग खसखस बीजों को पीसकर मर्दन करने तथा नीम के पत्र पकाये हुये पानी से स्नान करने में शीघ्र लाभ होता है।

(९) आंत्र—कृमि (हुक वर्म) जन्य विकारों पर—बीजों के तैल का प्रयोग इस प्रकार करें—प्रथम कोष्ठ शुद्धि के लिए रोगी को सायंकाल के समय मग्नेसिया सल्फ आदि कोई उचित रेचन औषधि देकर दूसरे दिन प्रातः खाली पेट इस तैल की २४ बून्दें (यह बड़ों की मात्रा है) कैपसूल में भरकर खिला दें। दो घंटे बाद पुनः रेचक औषधि देवें जिससे तैल का अंश अन्दर न रहने पावें। बस इस एक बार के ही तैल प्रयोग से यथोचित लाभ हो जाता है। यदि आवश्यकता हो १४ दिन बाद पुनः उक्त प्रकार से तैल प्रयोग करें। शीघ्र ही लगातार इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा विपरीत प्रभाव होना संभव है।

—नाडकर्णी।

नोट—मात्रा—स्वरस ५-७ माशा (या यथोचित मात्रा में देवें)। अधिक मात्रा में देने से यदि शिरःशूल आदि विकार हों तो बादाम तेल, घृत, दालचीनी का सेवन करावें। पत्रों का प्रतिनिधि—कुलफा और बथुआ साग है।

बीज—मात्रा—५-७ माशा तक। अधिक मात्रा में प्लीहा के लिये हानिकर है। प्रतिनिधि—कुलफा बीज।

विशिष्ट योग—

पत्रहरित (क्लोरोफिल्ल)—

पालक के ताजे पत्र स्वरस को तामचीनी के तसले में रखकर १५०°c तापमान पर शुष्क करलें। इसे 'क्लोरोफिल' कहते हैं। इसके द्वारा निम्न मरहम बनाया जाता है—पत्रहरित १ ग्राम, लोभान का सत (एसिड बेन्जोइक) ५ ग्राम और वेसलीन १०० ग्राम सबको घोंटकर मरहम बनालें। यह फोड़ा, फुन्सी व जख्म पर लाभकारी है।

संग्रहणी पर—पत्रहरित ५ तोले, गेरू १० तोले व कुड़ा छाल चूर्ण २० तोले सबका महीन चूर्ण बनाकर १५ ग्रेन की मात्रा में कैप्सूलों में भर दिन में २-४ कैप्सूल देवें।

पालक जंगली (Rumex Maritimus)

शुक्र कुल (Polygonaceae) के इस वर्षायु सरल, सीधे १-४ फुट ऊंचे, क्षुप के काण्ड अधिक शिरा विशिष्ट; पत्र—३-१० इंच लम्बे अग्रभाग में एवं वृन्त की ओर भी पतले नुकीले; पुष्प—काण्ड या शाखा की प्रत्येक गांठ पर गुच्छबद्ध उभयलिंगी होते हैं। उन्हीं में इसका बीज कोष भी होता है। बीजकोष पकने पर पीताभ धूसर वर्ण का चिकना, किनारे पर नुकीला, अग्रभाग में कुछ टेढ़ा सा होता है। बीज बहुत ही छोटे या सूक्ष्म होते हैं। शीत काल के अन्त में फूल और फल आते हैं।

इसके क्षुप बंगाल, आसाम, सिलहट, कचहर आदि

Scanned with CamScanner

...ग्रामों में दलदल या जलाशय के स्थानों में विशेष पाये जाते हैं।

नोट—इसके बीज 'बीज बन्द' नाम से बाजार में बिकते हैं।
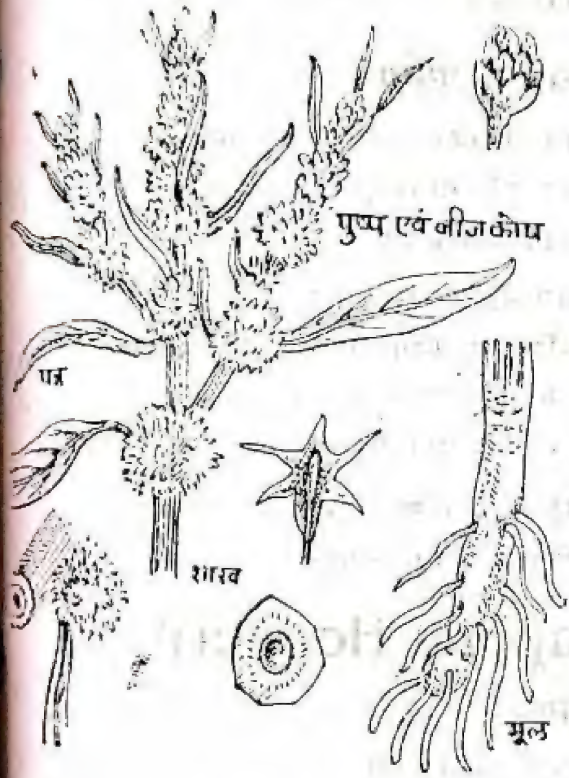
इसकी एक जाति विशेष रुमेक्स नेपालेंसिस (Rumex Nepalensis) लेटिन नाम की होती है। इसके क्षुप का आकार प्रकार उक्त जंगली पालक के क्षुप जैसा ही होता है। इसकी जड़ें रेचक होती हैं तथा रेवन्द-चीनी के स्थान में प्रयुक्त की जाती हैं। बंगाल के बाजारों में इसकी जड़ें 'रेवन्दचीनी' नाम से बेची जाती हैं।

—नाडकर्णी।

नाम–

हि० - पालक जंगली, जुल पालक, जल पालक। बं०—बन पलंग। ले०—रुमेक्स मेरिटियुस, रुमेक्स एक्युटस (Rumex Acutus)।

रासायनिक संघटन–

इसमें रुमिसिन (Rumicin), नेपालिन (Nepalin) और नेपोडिन (Nepodin) नामक ३ चमकदार क्रियाशील तत्व पाये जाते हैं। इनमें से इसमें नेपालिन की अधिकता होती है। रुमिसिन तो क्रयासीफेनिक एसिड (Chrysophanic) ही है। —नाड़कर्णी।

प्रयोज्यांग—बीज और पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग–

यह शीत वीर्य है। इसके बीज जो बीजबन्द कहे जाते हैं—वीर्यवर्धक, बाजीकरण, कामोद्दीपक तथा कटिवात, पृष्ठ शूल, एवं जीर्ण प्रमेह में उपयोगी हैं।

अग्निदग्ध स्थान पर इसके पत्तों को पीसकर लेप किया जाता है।

पालक जुही—देखो जूही पालक।

पाला (Ehretia Buxifolia)

श्लेष्मातक (लसोड़ा) कुल (Boragineae) के ये छोटे-छोटे झाड़ीदार वृक्ष भारत के दक्षिण में पड़ित या ...रा कंकट की भूमि में अधिक पाये जाते हैं। ये वर्षा-...ऋतु में पैदा होते तथा ग्रीष्म में नष्ट प्रायः हो जाते हैं। ...की जड़ अति तिक्त एवं कटु होती है।

इसे हिन्दी व मरेठी में–पाला तथा लेटिन में इरेशिया बक्सीफोलिया कहते हैं।

इसमें एक ग्लुकोसाईड रूप तत्व पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग–

यह धातु परिवर्तक, कटु-पौष्टिक है। दौर्बल्य तथा उपदंश में उपयोगी है। स्थावर विष नाशक है।

उपदंशजन्य पांडुरोग में इसकी जड़ का क्वाथ दिया जाता है।

Scanned with CamScanner
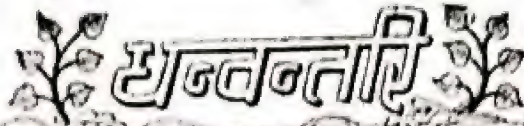
पालोर (Melastoma Malabathricum)

अंजनी[१] कुल (Melastomaceae) के इस बहुशाखी क्षुप के पौधे घाय के पौधे जैसे किंतु डंठल लाल रंग के तथा पत्र–मोटे, खुरदरे, शल्याकृति के गहरे हरे, पत्र वृन्त–बहुत मुलायम; पुष्प-बड़े, गुलाबी रंग के वृन्त रहित, ३-३ या ५-५ के गुच्छों में लगते हैं। फल–छोटे-छोटे गोलाकार होते हैं।

इसका उक्त पालोर नाम महाराष्ट्र भाषा का है, कोंकण की ओर नानकेरी; नेपाली में चोलिसी; अं.—इंडियन रोडोडेन्ड्रान (Indian rhododendron) तथा ले०—मेलेस्टोमा-मेलेबाथ्रिकम)।

प्रयोज्याङ्गः– पत्र, पुष्प और मूल।

गुणधर्म व प्रयोग–

पत्र–संकोचक, ग्राही एवं अनुलोमिक है। अर्श, अतिसार आदि नाशक हैं। मूल या छाल भी ग्राही। पत्र-वातसंस्थान के लिए शांतिकर है।

अर्श और रक्तस्राव में पुष्पों का प्रयोग किया जाता है।

प्रतिश्याय, कंठनाली का आक्षेप एवं मुख के व्रण पर–छाल के क्वाथ से कुल्ले कराते हैं। तथा योनी मुख और व्रणों को धोते हैं।

पाशुपत–दे० मोलसरी में। पाषान भेद–दे० पखान भेद। पिवड़—दे० कामरूप (भाग २ में), तथा भाग ३ में तून के प्रकरण में पाद टिप्पणी। पिकवन—दे० अन्तमूल।

पिचकी [पिसा] (Actinodaphne Hookeri)

कर्पूर कुल (Laurineae) के इस मध्यमाकार प्रकार के वृक्ष के पत्र १०-१८ सें. मी. तक लम्बे, ४.५-६.३ सें. मी. तक चौड़े; पुष्प–पीताभश्वेत तथा फल छोटे, चिपटे होते हैं। बीज-चिरौंजी जैसे होते हैं, इनसे तैल निकाला जाता है।

ये वृक्ष दक्षिण भारत के महाबलेश्वर, माथेरान एवं पश्चिमीघाट के पहाड़ी प्रांतों में विशेष पैदा होते हैं। उत्तर भारत में नहीं देखे जाते।

नाम–

पिचकी या पिसा नाम महाराष्ट्र भाषा का है। उड़िया भाषा में–जर्दालु तथा ले०–एक्टिनोडेफने हूकेरी।

रासायनिक संगठन–

इसमें एक्टिनोडेफनीन (Actinodaphnine) नामक एक क्रियाशील क्षाराभ पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र और बीज।

प्रयोग–

पत्तों का चूर्ण या फाण्ट—प्रमेह, मधुमेहादि मूत्र सम्बन्धी विकारों पर तथा वीर्य विकार पर दिया जाता है। इन विकारों पर छायाशुष्क पत्तों का चूर्ण १ से ३ माशा तक मिश्री मिले हुए दूध के साथ सेवन कराते हैं।

पांडु रोग पर—पत्र चूर्ण को गरम जल के साथ देते हैं।

बीजों का तेल—मोच, चोट, मरोड़ आदि पर मालिश के काम में आता है।

नोट—इस बूटी की एक जाति लिट्सी स्टाक्सी (Litsea stocksii) नाम की होती है। इसके वृक्ष छोटे आकार के, शाखायें और कोमल पत्र रोमश, पत्र–४-६ इंच लम्बे, चर्मवत्; पुष्प—रेशम जैसे मुलायम छोटे-छोटे; फल—जर्दालु (खुबानी) जैसे, पकने पर किरमिची रंग के, भीतर का गूदा पीतवर्ण का तथा बीज बैंगनी रंग के होते है। बीजों से एक प्रकार का नारंगी का तैल निकाला जाता है।

---

[१] इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में अंजनी का प्रकरण देखिये। इस कुल के पौधे उत्तर भारत में देखने में नहीं आते। दक्षिण भारत में अधिक होते हैं। नेपाल और आसाम में भी होते हैं।

Scanned with CamScanner

इनके भी वृक्ष दक्षिण भारत के महाराष्ट्र प्रान्तों में कोंकण, कर्नाटक आदि में पहाड़ी भूमि में विशेष पैदा होते हैं। उत्तर भारत में नहीं देखे जाते।

महाराष्ट्र भाषा में इसे पिसी कहते हैं।

इसमें भी एक क्षाराभ तथा कार्यशील तैल पाया जाता है।

प्रयोग—पत्र का फांट या हिम मुत्राक, मूत्राशय की जलन, अश्मरी आदि में दिया जाता है। बीजों का तैल मोच, चोट, संधिवात, खुजली आदि पर लगाया जाता है।

पिंजारी दे.—पियारांगा।

पिठवन नं॰ १ (Uraria Picta)

गुडूच्यादिवर्ग एवं शिम्बी कुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) के इस २-६ फुट ऊंचे बहुवर्षजीवी भूलम्बी अल्प निम्न अवनत शाखा वाले क्षुप के पत्र-संयुक्त, विभिन्न आकार के नीचेके पत्ते छोटे,लगभग वृत्ताकार उनके ऊपर ३-५ पत्रक, सदल पर्ण ऊपर के लम्बे, पत्रक ३-६ इंच लम्बे श्वेत रंग की चौड़ी धारियों से युक्त अग्रभाग में मोटे; पुष्प छोटे, लाल या नीले रंग के ३-४ इंची लम्बी सघन,जटायुक्त मंजरी में (कहीं कहीं यह मंजरी या पुष्प दण्ड ६ से १२ इंच तक लम्बा) लगते हैं। फल आने पर ये पुष्प मंजरियां शृगाल पुच्छाकार दिखाई देती हैं। फली-छोटी छोटी चपटी, टेढ़ी, ३-६ संधियों वाली, गोल-वृक्काकार, फीके पीले रंग के प्रत्येक फली में १-६ तक रहते हैं। वर्षा काल में पुष्प, शीत काल में फली आती है।

इसके पौधे प्रायः समस्त भारत की ऊसर भूमि एवं सूखे जंगलों में, विशेषतः समग्र बंगाल तथा हिमालय प्रदेश के ६ हजार फुट ऊंचे स्थानों में तथा सीलोन में भी अधिक पैदा होते हैं।

नोट—पिठवन (पृश्निपर्णी) नाम से और भी कई पौधों का औषधि प्रयोग दशमूलादि में किया जाता है। इनमें U. Lagopoides और U. Hamosa मुख्य हैं। इनका वर्णन आगे के प्रकरण पिठवन नं॰ २ में देखिये।

चरक के अङ्गमर्द प्रशमन, सन्धानीय, शोथहर मधुर स्कन्ध तथा सुश्रुत के विदारिगंधादि, हरिद्रादि एवं लघु-पंचमूल गणों में इसकी गणना है।

नाम—
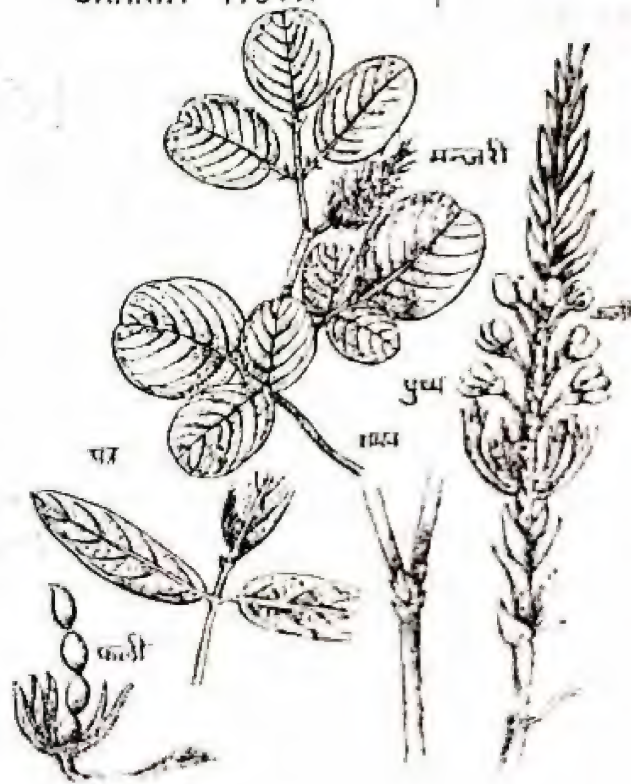
सं—पृश्नि पर्णी (पतले लम्बे पत्र होने से) पृथक्-पर्णी, कलशी, चित्रपर्णी, क्रोष्टु विन्ना, धावनि, गुहा इ.। हि॰—पिठवन, डावरा इ॰। म॰—पिठवण, रानभाल। गु॰—पीठवण, पीलो समेरवो। बं॰—शंकरजटा। लै॰—यूरेरिया पिक्टा।

प्रयोज्याङ्ग—पंचाङ्ग, मूल और फल ।

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, स्निग्ध, मधुर, तिक्त, मधुर विपाक, उष्णवीर्य, त्रिदोषशामक,दीपन,सारक,नाड़ी बल्य,वातहर,हृद्य,शोणितास्थापन, शोथहर, जीवाणुनाशक, कफनिःसारक, वृष्य, मूत्रल, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, संधानीय, अङ्गमर्दप्रशमन, विषघ्न तथा वातव्याधि,कोष्ठवात, रक्तातिसार, रक्तार्श, ग्रहणी, रक्तविकार, वातरक्त, वमन, उन्माद, व्रण, कास श्वास, तृषा, शुक्रदौर्बल्य, मूत्रकृच्छ्र, शोथ, सर्प विष आदि पर प्रयुक्त होता है ।

(१) रक्तार्श और मदात्यय में इसका और खिरैटी का क्वाथ लाभदायक है ।

(२) अस्थि भग्न में–इसकी जड़ का चूर्ण मांस रस के साथ २१ दिन तक सेवन से लाभ होता है ।

—भा. प्र.

(३) फुरसा नामक (Echis carinata) सांप के विष में–इसके पंचाङ्ग का स्वरस लाभदायक माना जाता है ।

(४) वच्छनाग (मीठा विष) के विष पर पंचाङ्ग का स्वरस ४ तो० तक शक्कर मिला कर देते हैं ।

नोट—मात्रा–मूल चूर्ण २ से ४ मा० (या १ तो० तक) क्वाथ ५-१० तो० ।

आगे के प्रकरण में वर्णित पिठवन नं०२ विशेष उपयोगी होने से इसके विशेष प्रयोग उसी में दिये जाते हैं ।

पिठवन नं० २ [Uraria Lagopoides]

उक्त पिठवन नं० १ के ही कुल के बहुवर्षायु, काष्ठीयमूल से प्रतिवर्ष निकलने वाले कोमल लोमयुक्त ३-५ फुट ऊंचे इस क्षुप की मूल के समीप से निकलने वाली शाखायें प्रायः अतिप्रसरणशील लगभग १२ इंच लम्बी; पत्र-किंचित् वृत्ताकार या चौड़ाई लिये हुए आयताकार आध-एक इंच, अग्रभाग-मोटा विस्तृत, त्रिपत्र विशिष्ट, मध्य पत्र अगल-बगल के पत्तों से बड़ा; पुष्प-पुष्पमंजरी ८-१२ इंच तक लम्बी, गोल, पुच्छाकार जो स्थायी बाह्यकोष के पंख सदृश खण्डों के कारण अति सघन एवं शृगाल पुच्छ (क्रोष्टुविन्ना) जैसी दिखाई देती है । इसीसे कहीं कहीं जंगलों में इसे सियार पुछिया भी कहते हैं। फली–१ इञ्च लम्बी, टेढ़ी मेढ़ी तथा चिकनी होती है । पुष्प और फली का काल उक्त पिठवन नं. १ के समान ।

ये क्षुप नेपाल, बंगाल, बर्मा तथा अन्य प्रान्तों के जंगली स्थानों में विशेष पाये जाते हैं ।

नोट—पृष्ठ २४३ पर दिये हुए चित्र में ऊपर की ओर सपत्र मंजरी युक्त शाखा का चित्र पिठवन नं०२ का है; तथा नीचे की ओर लम्बे पत्र वाली शाखा, फली और कली के चित्र पिठवन नं. १ के हैं ।

नोट नं. २—इसकी ही एक अन्य जाति U. Hamosa (यूरेरिया हमोसा) होती है । जिसमें मंजरी लम्बी किंतु सघन नहीं होती तथा पर्ण अपत्रक या त्रिपत्रक होते हैं । इसे उड़ीसा में सालपानी (शालपर्णी) कहते हैं क्योंकि इसके पत्र—शाल पत्र जैसे होते हैं । वस्तुतः 'शाल-पानी' नाम कई जाति के पौधों को दिया जाता है।

—भा. प्र. टी.

शालिपर्णी (सरिवन) इससे भिन्न है ।

नाम—

सं —पृश्निपर्णी आदि उक्त पिठवन नं. १ के अनुसार। हि.—पिठवन, पिठोनी, पित्तावन । म.–डवला, पिठवन। गु.–नहानो समेरवो । बं.–चाकुलिया, चाकुले । लै.–यूरेरिया लेगोपाइड्स ।

गुण धर्म व प्रयोग –

पिठवन नं. १ के अनुसार ही इसके गुणधर्म हैं। रसायन, बल्य, कफघ्न एवं त्रिदोष नाशक है । दोनों प्रकार के पिठवन दशमूल में लघुपंचमूल के अङ्ग हैं।[1]

[1] "शालिपर्णी, पृश्नपर्णी, वार्ताकी कण्टकारिका । गो क्षुरः पंचभिश्चैतैः कनिष्ठं पंचमूलकम् ।" सरिवन, पिठवन, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी व गोखरू इन पांचों के मूल एकत्र करने से लघु पंचमूल कहलाता है । यह लघु, स्वादु, बल्य, वातनाशक, बृंहण, ग्राही एवं ज्वर, श्वास और अश्मरीनाशक है । यह अति उष्णवीर्य नहीं होता है । —भा० प्र०

Scanned with CamScanner

प्रतिश्याय में—इसके मूल के क्वाथ को मिश्री मिला कर पिलाते है। ऐकाहिक ज्वर में—इसके फूले हुए धुन की जड़ को लाल तागे में बांधकर मस्तक पर धारण कराते है। रक्तप्रवाहिका में इसके क्वाथ को बकरी के दूध के साथ पिलाते हैं।

(१) गर्भपुष्टि के लिए—सुश्रुत के शारीरस्थान में गर्भ पुष्टि के लिये, गर्भवती स्त्री को प्रतिमास जो सेवनीय योगों का विधान है, उसमें ७ वें मास में पिठवन से सिद्ध किये हुए घृत के सेवन करने को कहा गया है[1]। इसमें इसके ही कल्क और क्वाथ द्वारा यथा विधि घृत सिद्ध कर, यथोचित मात्रा में दुग्ध के साथ सेवन करना चाहिए।

गर्भिणी को ६ वें मास में यदि रक्तस्राव हो (गर्भपात की शंका हो) तो इसकी जड़ के साथ खरैंटी, सहिजना छाल, गोखरू और मुलैठी समभाग का चूर्ण या कल्क १ माशा की मात्रा में दूध के साथ देवें या कल्क का यथाविधि दुग्धपाक कर सेवन करावें। —भै. र.।

(२) गर्भिणी के रोगों पर—पिठवन, खरैंटी और अडूसा का स्वरस या क्वाथ गर्भिणी के रक्तपित्त, कामला, शोक, कास, श्वास व ज्वर को नष्ट करता है। —यो. र.

(३) पित्तोदर रोग में—पिठवन, खरैंटी, कटेरी, लाख और सोंठ सब समभाग मिश्रित २॥ तो. चूर्ण को २० तो. दूध में डालकर ८० तो. जल मिला पकावें। दुग्ध मात्र शेष रहने पर छानकर पिलावें। इससे पित्तोदर कुछ दिनों में ही नष्ट हो जाता है। —यो. र.।

(४) पित्तज शोथ पर—पिठवन, नागरमोथा, सुगन्धबाला और सोंठ से पकाया हुआ जल पिलाना तथा दूध का आहार देना चाहिए। —ग. नि.।

(५) ज्वरातिसार पर—पिठवन, खरैंटी, बेल गिरी, सोंठ, नीलोफर, और धनियां समभाग मिश्रित १½ तो. चूर्ण को २ सेर जल में पेया (कण सहित मांड) पका १ सेर शेष रहने पर उसमें अनार का रस मिला थोड़ा थोड़ा पिलावें। —वृ. मा.।

(६) सुख पूर्वक प्रसवार्थ—इसकी जड़ का लेप नाभि, बस्ति और योनि पर करते हैं।

नोट—मात्रा—मूल-६ माशा से १ तो. तक। क्वाथ ५-१० तोला।

प्लीहावृद्धि या प्लीहा के शोथ पर—इसके पत्र और जड़ का रस पिलाने से लाभ होता है।

भगन्दर में—इसके पत्तों को पीसकर लगाना और पिलाना चाहिए। पत्तों में कत्था मिलाकर पीसकर भगन्दर पर लेप करने तथा कालीमिर्च व कत्था के साथ पीसकर पिलाने से लाभ होता है। अनुभूत है। —बूटीदर्पण।

इसका प्रतिनिधि शालिपर्णी (सरिवन) है। सरिवन और पिठवन के विषय में बहुत मतभेद है। इसका विशेष विवरण सरिवन के प्रकरण में देखिए।

पिण्डली•। पिण्डा—दे० लिसोड़ा छोटा।

पिण्डखजूर—दे० खजूर में। पिण्डतगर—दे० तगरपिण्डी।

पिण्डार (Trewia Nudiflora)

शाक वर्ग एवं एरण्ड कुल (Euphorbiaceae) के इस मध्यम आकार के २५-३० फुट ऊंचे वृक्ष की छाल

---

[1] सप्तमे सर्पिःपृथक्पर्ण्यादि सिद्धम्—एवमाप्यायते गर्भः। —सु. शा.

• पिण्डली का पौधा नहीं होता, भूमि के भीतर १ से ३ इंच तक होती है। परिपक्व होने पर तीव्र सुगन्ध आ जाती है। इसके इच्छुक इसकी सुगन्ध को सूंघकर ठीक स्थान का पता लगा कर इसे निकाल लेते हैं। पकी हुई भीतर से काली एवं बाहर से भूरे रंग की होती तथा सूखने पर सुगंध नाम मात्र रह जाती है। ५ तोले वजन की सूखने पर १-१॥ तोले तक होती है। वर्षा ऋतु की समाप्ति पर मिलने लगती है। तब से दो मास तक मिलती रहती है। इसे चाहे जड़ कहो या फल इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। यह पिंडली प्रायः देवदार के जंगल में ७॥ से ९ हजार फीट की ऊंचाई तक मिलती है। कयार या चीड़ के जंगल में नहीं मिलती। २ रत्ती की मात्रा में इसे प्रयोग में लाते हैं। कस्तूरी की तरह गुण दिखाती है। बच्चों के डिब्बा रोग में तत्काल लाभकारी है। इसका टिंचर एकोनाइट या बेलाडोना की तरह तैयार किया जाता है। —स्वास्थ्य के वर्ष ८ अंक १० से साभार।

चिकनी, मुलायम, धूसर वर्ण की; पत्र—३-६ इन्च लंबे, ४-७ इन्च चौड़े, ऊपरी भाग कोमल लोमयुक्त, ताम्बूलपत्र जैसे या लट्वाकार, आधार पर ३-४ सिराओं से युक्त, पर्ण-मूल गोल, पत्रवृन्त १-४ इन्च लम्बा; पुष्प—हरित पीत (नरपुष्प पीत वर्ण का, मादा पुष्प हरित वर्ण का), नर पुष्पों की मंजरियाँ ४-८ इन्च लम्बी, नीचे की ओर लटकी हुई, स्त्री पुष्प एकाकी या २-३ अग्र भाग में होते हैं। नवीन पत्र आने के पूर्व ही पुष्प निकल आते हैं। फल—गोल, लगभग २ इन्च तक व्यास के, हरित वर्ण के, पकने पर छोटे आलू जैसे दीखते हैं। फलों की शाक होती है।

इसके वृक्ष भारत के प्रायः समस्त उष्ण प्रदेशों में

बंगाल में सर्वत्र, आसाम आदि में, जङ्गलों या नदी नालों के किनारे पाये जाते हैं।

नोट—दशमूल में बृहत्पंचमूल की जो गम्भारा नामक औषधि है उसके स्थान पर कई लोग प्रायः इस वृक्ष के मूल, छाल, फलादि का उपयोग करते हैं (गम्भारा प्रकरण भाग दो में देखिए) तथा भाषा में इसे ही कहीं कहीं गम्हार कहा जाता है। यह एक प्रकार का पिण्डार ही है। पिण्डीतक एवं पिण्डालु इससे भिन्न भी होते है। आगे के प्रकरणों में देखिए।

नाम—

सं०—पिण्डार, कुरङ्ग, करहट इ०। हि०—पिण्डार, तुम्री, भिलोर, धवल पेड़, गम्हार, खमारा इ०। म०—पेंदुर, सिवनी, भिलोरी। बं०—पिटोली, पिटुली। ले०—ट्रेविया न्यूडीफ्लोरा; ट्रेविया मेक्रोफाइला (Trewia Macrophylla)।

रासायनिक संगठन—

इसकी जड़ में राल सदृश पदार्थ तथा वसा पाई जाती है।

प्रयोज्यांग—मूल, छाल (यह छाल मोटी, चिकनी, हलके भूरे रंग की होती है)।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, बल्य, पित्त नाशक, रोचक, विषघ्न तथा शोथ, आमवात, वातरक्त, विस्फोटक, कफ विकार, दूषित वात, पित्त, रक्तदोष, चर्म रोग आदि में प्रयुक्त होता है।

(१) इसके मूल का क्वाथ उदर वात, पित्त एवं आमदोष के निर्हरणार्थ दिया जाता है।

(२) गठिया, संधिवात तथा वातरक्त पर इसकी छाल को थोड़े पानी के साथ पीसकर लेप करते हैं।

(३) श्लीपद पर—इसकी जड़ के कल्क को गोमूत्र के साथ सेवन करने से तथा जड़ को सूत में लपेट कर बाहु में बांधने से शीघ्र लाभ होता है। —योग तरङ्गिणी
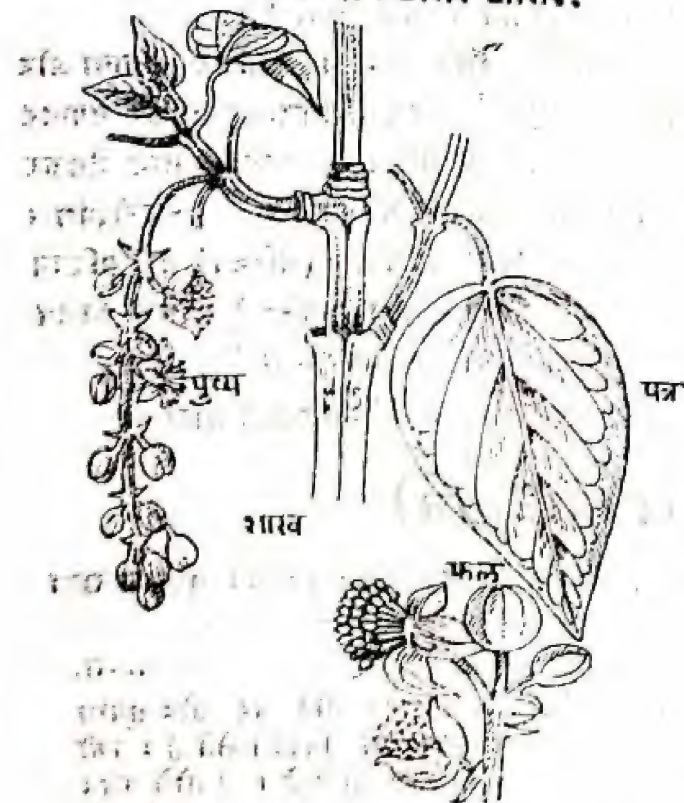
पिण्डालू (Randia Uliginosa)

मञ्जिष्ठ कुल (Rublaceae) के ८-६ फुट तक ऊंचे इस वृक्ष की शाखायें कड़ी, चौपहल (चौकोर),

Scanned with CamScanner
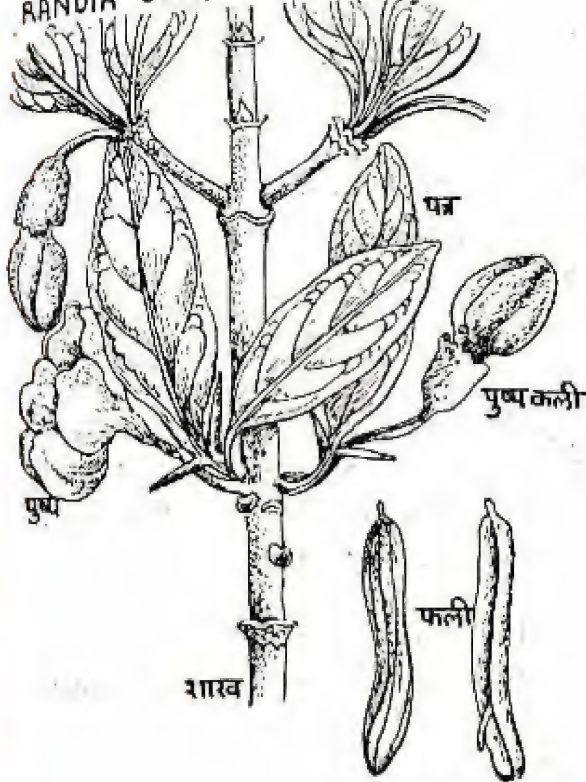
छाल—लाल भूरे रङ्ग की।

पत्र—लट्वाकार या कुछ आयताकार २-८ इंच लम्बे, १-४ इंच चौड़े, टहनियों के अग्रभाग पर दलबद्ध, ऊपर के पत्र कोण लगभग ½ इञ्च लम्बे, तीक्ष्ण किंतु कमजोर, विपरीत कंटकों से युक्त होते हैं।

पुष्प—श्वेत, मांसल, सुगंध युक्त, प्रायः वृन्त रहित या त्रिकोणाकार छोटे वृन्त युक्त;

फल—२ इञ्च तक लम्बा, अण्डाकार, अमरूद जैसा पकने पर पीला, भीतर का गूदा कुछ कड़ा होता है। ग्रीष्म तथा वर्षा काल में फूल तथा शीतकाल में फल आते हैं। ये फल खाये जाते हैं।

ये वृक्ष प्रायः आर्द्र भूमि में, पूर्व एवं दक्षिण भारत, सिक्कम से आसाम तक नैसर्गिक पैदा होते हैं। बंगाल के कई स्थानों में भी ये पाये जाते हैं।

नोट—इसमें और पिण्डीतक में बहुत कुछ साम्य हैं। आगे पिण्डीतक का प्रकरण देखिये।

नाम–

सं०—पिण्डालुक, पिण्डीतक, पिण्डकन्द इ०। हि०—पिण्डालु, पेड्रुवा, पिंड़ारा, भरणी, कटूल इत्यादि। मराठी—पेंढारी, पेंडूर। गुजराती—गंगेड़ा, पिंगलु। बंगला—पिरालु, चिरलू। लेटिन—रेंडिया युलिगिनोसा।

प्रयोज्यांग—मूल और पत्र फल।

गुण धर्म व प्रयोग–

गुरु, मधुर, शीतवीर्य, दाहशामक, तृप्तिकर, वीर्यवर्धक, वात प्रकोपक, शोषहर, प्रमेहहर, मूत्रकृच्छ्रनाशक, कामोद्दीपक, हृद्य, रक्तशोधक और स्तन्य है।

पक्व फल—मधुर, शीतल और मूत्रल हैं। कच्चे फल-स्तम्भक, ग्राही हैं। इनकी साग या अचार बनाते हैं। गरम राख या भूभल में भुने हुये कच्चे फलों का छिलका (भीतर का गूदा और बीज दूर कर) अतिसार, रक्तातिसार में सेवन कराते हैं।

मूल के चूर्ण या कल्क को घृत में भूनकर अतिसार, प्रवाहिका आदि में दिया जाता है। नारूके स्थान पर पत्र गरम कर बांधते हैं।

पिण्डीतक (Vangueria spinosa)

उक्त पिण्डालू के अनुसार ही मंजिष्ठ कुल (Rubiaceae)के इस छोटे झाड़ीदार, कंटक युक्त (कहीं कहीं कंटक रहित) वृक्ष की छाल गहरे रंग की, मुलायम; पत्र-चिकने लोमयुक्त २-४ इंच लम्बे, लगभग २½ से ३ इंच तक चौड़े, पत्र वृन्त १ इंच तक लम्बा, पुष्प—हरिताभ-श्वेत, छोटे, १-१½ इंची मंजरी में आते हैं। फल—बेर या आमला जैसे मांसल ½—१ इंची व्यास के, पकने पर पीले, एक बीज युक्त होते हैं। ये फल खाये जाते हैं। ग्रीष्मऋतु में पुष्प तथा शीतकाल में फल आते हैं। फल का स्वाद खटमीठा होता है।

ये पौधे उत्तर तथा पूर्व बंगाल, कोंकण, मद्रास, बर्मा आदि के जंगलों में जलाशय के किनारे विशेष पैदा

Scanned with CamScanner

होते हैं।

नोट—इसकी ही एक जाति व्हेनग्रेरिया मोलिस (Vangueria mollis) नाम की पश्चिम बंगाल के जंगलों में अधिक देखी जाती है। इसके पौधे अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। इसके पत्तों का ऊपरी भाग कोमल, कहीं कहीं लोमों से युक्त होता है। —भा. वनौषधि (बंगाल)

नाम—

सं.—पिंडीतक, पिंड़ा, पिंडी[1] इ। हि.-पिण्डीतक, पुंडरिक, बंगाली की लकड़ी, मोयना इ०। म—चिरबोली, चिरबोट, हलावनी। बं.—मयना, मेन, मूयना, गेल। ले. व्हेनगेरिया स्पिनोसा।

रासायनिक संगठन—

इसके फल में शर्करा, गोंद तथा अल्प प्रमाण में टेनिक एसिड होता है। अन्य कोई क्षाराभ नहीं पाया जाता।

प्रयोज्यांग—फल और पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग—

फल—पौष्टिक, मृदुरेचक, शांतिकर, कफ पित्त निःसारक होते हैं।

फलों का क्वाथ पैत्तिक विकार एवं यकृत की अवसाद या अवरुद्ध दशा में दिया जाता है।

पत्र चूर्ण गले के डिप्थीरिया रोग में उपयोगी है।

पिण्डी तगर—देखो तगर पिंडी।

पिण्डी (Rungia parviflora)

वासा कुल (Acanthaceae) की वर्षायु, रोमश, कोमल, इस छोटी बूटी के पत्र मोटे, मांसल, सूक्ष्म रोमश २॥-४ इंच लम्बे, १॥-१॥। इंच चौड़े, प्रायः वृन्तरहित; पुष्प—श्वेत वर्ण के, लम्बी पंखुड़ी वाले। पुष्पस्तवक—छोटा ¼ इंची, पुष्प दण्ड छोटा ¾ इंची, चपटा; फल या बीजकोष ½ इंची, बीज छोटे-छोटे संख्या ४ में होते हैं। प्रायः शीतकाल में पुष्प और फल आते हैं।

यह बूटी भारतवर्ष के कई स्थानों में तथा बंगाल, छोटा नागपुर, उड़ीसा एवं हिमालय के कुमायूं आदि प्रदेशों में ४ हजार फुट की ऊंचाई तक विशेष पाई जाती है।

नाम—

सं०—पिण्डी। हि०—पिंडी। गुजराती—मोटोखड़सलियो। बं०—पिण्डी। ले०—रंगिया पारवीफ्लोरा।

प्रयोज्यांग—पत्र, मूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

ताजे पत्र—मृदुकर, शांतिदायक, मृदुरेचक एवं ज्वरघ्न हैं।

[1] पिण्डी नाम की वासाकुल की अन्य बूटी का वर्णन आगे के प्रकरण में देखें। पिण्डी संस्कृत में मैनफल को भी कहते हैं।

Scanned with CamScanner

बच्चों की चेचक की बीमारी में इसका पत्र रस १ या २ छोटा चाय के चम्मच भर दिन में दो बार देने से शांति प्राप्त होती है।

आघातज वेदना युक्त शोथ पर—पत्रों का लेप करते हैं। शोथ निवारणार्थ इसकी जड़ का क्वाथ देते हैं।

नोट—गुजरात की ओर इसे तथा (Rungia Repens) को पित्तपापड़ा मानकर व्यवहार करते हैं। आगे पित्तपापड़ा का प्रकरण देखिये।

पित्तौजिया देखो—जियापोता।

पित्तपापड़ा नं० १* (Fumaria parviflora)

गुडूच्यादि वर्ग एवं अपने ही कुल पर्पट कुल[1] (Fumariaceae) के इस ½-१ फुट ऊंचे स्वाव-लम्बी या प्रसरणशील, दृढ़, मांसल, श्वेत रोमश, वर्षायु क्षुप की शाखा ६ इञ्च लम्बी, पीताभ हरितवर्ण की; पत्र—गाजर या धनियां के पत्र जैसे, सूक्ष्म, ½-२½ इंच तक लम्बे, ¼-¾ इञ्च चौड़े, दोनों किनारों पर संकड़े एवं कटे हुए; पुष्प—श्वेत या गुलाबी रंग के छोटे .१-.३ इंच तक लम्बे। अग्र भाग पर बैंगनी रंग के होते हैं। गुलाबी रंग के पुष्प वाला पित्तपापड़ा विशेष गुण-दायक होता है। फल—गोल, छोटे, चमकीले, चिकने, अग्रभाग पर दो खाने युक्त शुष्क हो जाने पर जौ के दाने जैसे भूरे या नीले रंग के हो जाते हैं। पुष्प और फल—माघ, फाल्गुन मास में आते हैं।

इसके क्षुप भारत के अनेक भागों में विशेषतः गंगा तट के आसपास तथा पंजाब, दिल्ली, चित्तौड़, खान-देश आदि के समतल विभागों में शीतकाल में यव, चना, गेहूं के खेतों में अधिक पाये जाते हैं। हिमालय की तराई और नीलगिरी में भी अधिक होते हैं। खुले मैदानों में इसके क्षुप प्रायः जमीन पर फैले हुए देखे जाते हैं।

नोट नं० १—इसी की एक विशेष जाति शाहतरा (Fumaria officinalis) नाम की पर्शिया से आती है। यह स्वाद में कड़ुवा, कुछ चरपरा एवं कसैला होता है। यहां के भारतीय प्रस्तुत प्रसंग के पित्तपापड़ा की अपेक्षा यह विशेष गुणकारी होता है तथा यूनानी में इसी (शाहतरे) का अधिक उपयोग किया जाता है।

नोट नं २—चरक के तृष्णा निग्रहण दशेमानि में इसका उल्लेख है तथा ज्वर, रक्तपित्त, दाह, कुष्ठ, मदात्यय, ग्रहणी, पांडु, अतिसार आदि रोगों के प्रयोगों में इसकी योजना की गई है। सुश्रुत में भी पित्त प्रधान अतिसार आदि में इसे लिया गया है।

नाम—

सं.—पर्पट, क्षेत्र पर्पट, वरतिक्त (तिक्त द्रव्यों में श्रेष्ठ) तथा पांशु एवं कवच वाचक सब शब्द इसके पर्याय-वाची हैं।

हि.—पित्तपापड़ा, धमगजरा, शाहतरा। म.—पित्त-

* बंगाल, गुजरात आदि प्रान्तों में भिन्न-भिन्न वर्गों की वनस्पतियों का एवं उनके उपभेदों का पित्त-पापड़ा के नाम से उपयोग किया जाता है तथा उनमें कुछ न कुछ शास्त्रीय गुणधर्म पाये भी जाते हैं। उनमें से प्रथम जिसका वर्णन यहां दिया जा रहा है, वह प्रायः उत्तर भारत में सर्वत्र प्रचलित है तथा भिन्न-भिन्न वर्ग या कुल की जो ६-७ वनौषधियां इस नाम से कहीं-कहीं व्यवहृत हैं, उन सब की अपेक्षा इसमें पित्त एवं तृषा शामक गुण की विशेषता पाई जाती है तथा इसमें प्रायः सब की अपेक्षा कड़वापन भी अधिक होता है। सामान्यतः देखा गया है कि पित्तपापड़ा में जितना कड़वापन अधिक होता है उतना ही वह विशेष गुणदायक होता है। इसके अभाव में प्रतिनिधि रूप से अन्य जातियों का उपयोग किया जा सकता है। अन्य जातियां जो पित्तपापड़ा नाम से विभिन्न प्रान्तों में प्रयुक्त होती हैं, उनका भी क्रमशः नम्बर पर वर्णन आगे के प्रकरणों में देखिये।

[1] इस कुल के क्षुप—सपुष्प, द्विबीजपर्ण, विभक्तदल, अधःस्थबीजकोष, पुष्प बाह्यकोष के दल दो, आभ्यन्तरकोष के दल ४, जिसमें दो छोटे और दो बड़े; पुंकेशर ६ तीन-तीन के जोड़े में, स्त्री केशर १ होता है। इस कुल में सब क्षुप छोटे-छोटे ही होते हैं।

Scanned with CamScanner

पित्त पापड़ा नं॰ १
FUMARIA PARVIFLORA LAM.
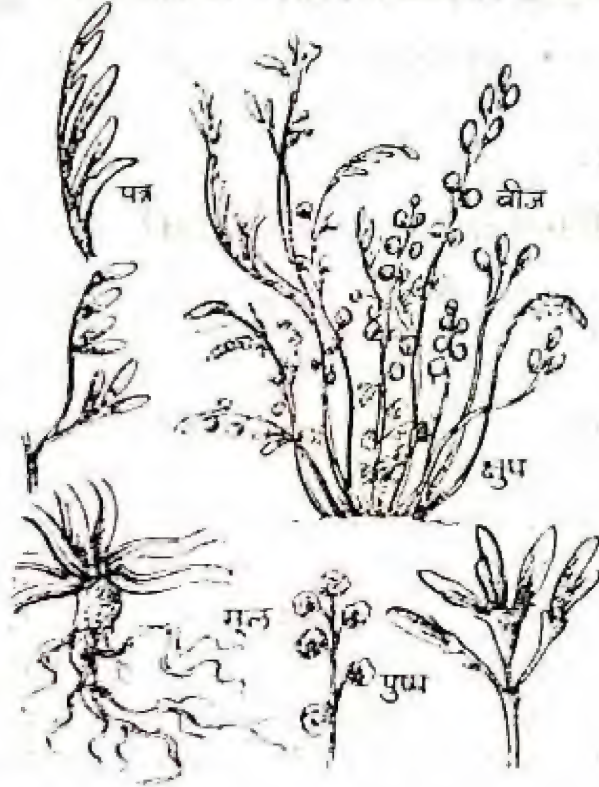
पापड़ा, शातरा । गु.—पित्तपापड़ो, खड़सलिया । बं—बनशुल्फा । अं.—कॉमन फ्युमिटोरी Common fumitory), फाईन लीव्हड फ्युमिटोरी (Fine leaved fumitory) ले.—फ्युमेरिया पार्व्हिफ्लोरा । फ्युमेरिया इंडिका (Fumaria Indica) ।

रासायनिक संगठन—

इसमें फ्युमेरिक एसिड़ (Fumaric acid) तथा मुख्य क्रिया शील फ्युमेरिन (Fumarine) नामक एक क्षाराभ ६% पाया जाता है ।

प्रयोज्याङ्ग—पंचाङ्ग (जब इसके क्षुप पूर्ण रूप से बढ़ जाते हैं; तब लगभग माघ या फाल्गुन मास में या जनवरी, फरवरी में उन्हें उखाड़ कर धूप में शुष्क कर संग्रह कर सुरक्षित रख लें । ये ६ मास तक पूर्ण प्रभावयुक्त रहते हैं)

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, तिक्त, कटुविपाक, शीतवीर्य, कफ पित्त शामक, वातवर्धक, दीपन, रूक्ष, ग्राही (किंचित् सारक) तृष्णाशामक, कटुपौष्टिक, कृमिघ्न, यकृदुत्तेजक, रक्तशोधक, रक्त स्तंभक, मूत्रल, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, तथा ग्लानि, भ्रम, मूर्च्छा, मदात्यय, प्रमेह, वमन, अरुचि, अग्निमांद्य, यकृद्विकार, कामला, रक्तपित्त, वातरक्त, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठादि त्वग्विकार में प्रयुक्त होता है ।

इसकी विशेष क्रिया रस और रक्त धातु पर होने से परंपरागत अन्य धातुओं पर भी इसका उपयुक्त असर पहुंचता है । इन्द्रियों में यकृत पर इसकी मुख्य क्रिया होती है एवं यकृत की विकृति से हुए पित्त प्रकोप तथा तज्जन्य ज्वर, वमन, सिर दर्द, कामला, रक्तविकार, तृषा वृद्धि, पचन आदि विकारों पर इसका उत्तम उपयोग होता है। यह अधिक पित्तोत्पत्ति को कम करता तथा यकृत के शोथ को भी दूर करता है इसका असर रक्त के साथ त्वचा पर भी होने से अनेक प्रकार के चर्म रोगों पर इसका व्यवहार किया जाता है ।

डा॰ देसाई का कथन है कि यह स्वेदल, मूत्रल, स्रंसन, और कटुपौष्टिक है । इसका क्षार त्वचा, यकृत तथा वृक्कों की क्रिया द्वारा बाहर निकलता है । इसकी क्रिया वासा कुल के पित्तपापड़ा (आगे के प्रकरण में वर्णित पित्तपापड़ा नं॰ २)की अपेक्षा अति प्रबल है। यह आंत्र शैथिल्य जन्य अपचन एवं त्वग्रोगों में गुणदायक है। सामान्य प्रतिश्याय पर इसका विशेष उपयोग होता है। इसके सेवन से प्रस्वेद आता है । मूत्र बढ़ता तथा अंग प्रत्यङ्ग की वेदना कम होती है। शौच शुद्धि होती है। पित्त ज्वर पर यह अति प्रशस्त है । इससे यकृत की पीड़ा कम होती है गण्डमाला एवं उसके कीटाणु से उत्पन्न त्वचा रोग तथा अन्य त्वचा रोग पर यह लाभदायक है।

रक्तविकार जन्य कुष्ठ, कण्डू, कण्ठमाला, व्रण, विद्रधि आदि पर इसका चूर्ण उपयोगी है । उसमें भी केवल इसके बीजों का सेवन कराया जाय, तो विशेष लाभ होता है । इसके पत्तों के स्वरस का अंजन करने से (रस को आंखों में लगाने से) नेत्रों में कुछ जलन तो होती है । किंतु नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं ।

इसके पंचाङ्ग का क्वाथ या फाण्ट स्वेदल, पौष्टिक, मूत्रल, कृमिघ्न, मृदुरेचक एवं धातुपरिवर्तक है; तथा यह

Scanned with CamScanner

उपदंश, गण्डमाला, कुष्ठ, अजीर्ण, कामला, यकृत या आंत्र शैथिल्य जन्य अजीर्ण, ज्वर,प्रतिश्याय, राजयक्ष्मा आदि पर विशेष उपयुक्त है। एतदर्थ पित्तपापड़ा या शाहतरा २½ तो० बनफशाह ६ मा० कालीमिर्च, सौंठ ३–३ मा० मुनक्का १ तो० तथा जल १ सेर, चतुर्थांश क्वाथ कर ५ तो० दिन में ३–४ बार देते हैं।

(१) ज्वर पर—इसके क्वाथ में सौंठ चूर्ण मिला कर सेवन करने से प्रायः सर्व प्रकार के नये बुखार दूर होते हैं। अथवा इसके और गिलोय के स्वरस में कालीमिर्च या पीपलामूल का चूर्ण मिला कर पिलाने से प्रस्वेद आकर ज्वर दूर होता है।

पित्त ज्वर की तो यह एक मात्र प्रमुख औषधि है। कहा भी है [१] कि पित्तज्वर के नाशार्थ केवल पित्तपापड़ा का क्वाथ ही श्रेष्ठ औषधिहै यदि उसके साथ चन्दन (रक्त चन्दन), नेत्र बाला और सौंठ मिला कर क्वाथ तैयार किया जाय, तो फिर कहना ही क्या? अर्थात् इससे पित्त ज्वर सत्वर शमन हो जाता है।

उक्त क्वाथ में नागरमोथा और खस भी मिला लिया जाय तो और भी उत्तम है। [२] पैत्तिक ज्वर से पीड़ित रोगी के सिर पर पित्तापापड़ा के चूर्ण को नारियल तैल में मिला मोटा लेप करना विशेष लाभकर है।

मलेरिया ज्वर में भी प्रायः पित्त की प्रधानता रहती है, उसमें भी इसका उपयोग निर्भय किया जा सकता है। यह पसीना लाकर खून को साफ करता, तथा मूत्रल होने से ज्वर की उष्णता एवं मूत्र की लालिमा, दाह को दूर करता, मस्तिष्क को शांति प्रदान करता, हाथ पैर एवं नेत्र की जलन को तथा ज्वर पश्चात् की कमजोरी को दूर करता है।

पित्त प्रधान ज्वर पर इसका हिम भी प्रशस्त है—इसके साथ समभाग १-१ तोला काली दाख, धनियां, गिलोय और चिरायता जौ कूट कर सायंकाल के समय १½ सेर जल में पत्थर की कूंडी में भिगोकर प्रात:मल छानकर २-२ घंटे से ५ या १० तोला तक यह हिम पिलाने से ज्वर की तृषा, गले की खुश्की, ज्वर की उष्णता, सिर की पीड़ा शांत होती तथा पेशाब खुलकर होता है। यदि उबाक, वमन, बेचैनी, नेत्रदाह, मुखपाक, शारीरिक दाह की विशेषता हो, तो उक्त हिम के ५ द्रव्यों के साथ नेत्रबाला भी समभाग (१ तो.) मिला सबका जौ कुट चूर्ण १ तोला को १६ गुने जल में हिम तैयार कर मिश्री मिलाकर पिलावें।

पित्तपापड़ा, गिलोय और आंवला इनका क्वाथ भी पित्तज्वर को नष्ट करता है -भै. र.

यदि रक्तपित्त युक्त पित्तज्वर हो, तो पित्तपापड़ा, अडूसा पत्र, कुटकी, चिरायता, धमासा व फूल प्रियंगु इनके क्वाथ में मिश्री मिलाकर पिलाने से, तृषा, दाह एवं रक्तपित्त सहित ज्वर की शांति होती है —शा. सं.

पित्त कफ ज्वर हो, तो—पित्तपापड़ा, कायफल, कूठ खस, लालचन्दन, नेत्रबाला, सौंठ, नागरमोथा, या काकड़ासिंगी व पिप्पली इनका क्वाथ सेवन करावें। इससे तृषा, दाह, अग्निमांद्य भी दूर होता है —भा. प्र.।

जीर्ण ज्वर पर–पित्तपापड़ा व गिलोय समभाग जौ कुट चूर्ण २ तोला को २० तो. जल में पकावें। ५ तो. शेष रहने पर छानकर उसमें १ माशा पिप्पली चूर्ण को मिला सेवन करें। इससे मन्दाग्नि व खांसी भी दूर होती है।–अथवा पित्तपापड़ा और धनियां का क्वाथ सेवन करावे।

---

[१] एक पर्पटकः श्रेष्ठः पित्त ज्वर विनाशनः। किं पुनर्यदि युज्यते चन्दनो दीच्य नागरैः ॥—चक्रदत्त। तथा एक एवं खलु पैत्तिक ज्वर हन्ति पर्पट कृतः कषायकः। चन्दनोदक महौषधान्वितं श्चेत्तदा किमु पुनर्विचारणा ॥ —बं. से.

[२] यह षडङ्गपानीय योग (पित्तपापड़ा, नागरमोथा, खस, लाल चन्दन,नेत्रबाला व सोंठ समभाग चूर्ण, मात्रा १ तो. को १½ सेर जल में अर्द्धावशिष्ट क्वाथ कर छानकर, ठंडा कर) थोड़ा थोड़ा पिलाने से तृषा, दाह सहित ज्वर की शांति होती है। इस योग के लिये पित्तपापड़ा नं० ३ वाला श्रेष्ठ माना जाता है। पंचभद्रक्वाथ में भी इसका योग है।

Scanned with CamScanner

(२) रक्तपित्त पर—पित्तपापड़ा और अनार का छिलका १-१ तो. जीरा श्वेत ६ माशा जौ कुट चूर्ण कर ६० तोला जल में पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर उसमें १ तो. मिश्री मिला ३ मात्राकर दिन में ४-४ घंटे से १-१ मात्रा पिलाने से ऊर्ध्व रक्तपित्त (मुख व नाक से रक्त गिरना) बन्द हो जाता है। —भा. गृ. चि.

अथवा—पित्तपापड़े का हिम तैयार कर उसमें चन्दन और शहद मिला पिलावें।

(३) मदात्यय पर—इसके चूर्ण के साथ नागरमोथे का चूर्ण मिला दिन में २-३ बार जल के साथ कुछ दिन सेवन करावें। रात्रि में निद्रा के लिये खुरासानी अजवायन देते रहें। —गां. औ. र.

(४) अश्मरी पर—इसका रस मट्ठे में मिलाकर पिलाने से मूत्राशय की पथरी निकल जाती है, एवं मूत्रकृच्छ्र में भी लाभ होता है। वृक्क की अश्मरी पर इससे लाभ नहीं होता —गां. औ. र.

इसके रस के अभाव में इसका चूर्ण ४ तो. तक गौ की छाछ के साथ देना चाहिये।

(५) मुख रोग तथा दाह पर—इसके क्वाथ से कुल्ले करने से जीभ तथा तालु के व्रण ठीक होते, मसूढ़े दृढ़ होते, तथा मुख की गरमी दूर होती है।

दाह—आमाशय में दाह हो, तो इसके पत्र रस में दूध और शक्कर मिला पिलाते हैं। हाथों की हथेली तथा पैरों की पगतली में दाह, जलन होती हो, तो इसके पत्तों के रस का लेप करने से लाभ होता है।

(६) खुजली पर—पित्तपापड़ा और हल्दी समभाग पीसकर शरीर पर मालिश करने से गीली या सूखी खुजली दूर होती है। इसे मक्खन में मिलाकर मालिश करना चाहिये।

इसका अवलेह बनाकर चटाने से खुजली और त्वचा के विकार दूर होते हैं। अवलेह या माजून के प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में देखिये।

(७) नेत्र विकार पर—इसके रस को नेत्रों में लगाने से दृष्टिशक्ति बढ़ती तथा नेत्रों से अशुद्ध पानी का स्राव होकर नेत्रों की शुद्धि हो जाती है।

यदि नेत्रों में परवाल निकलते हों, तो उन्हें उखाड़ कर उनकी जड़ों में इसका रस थोड़ा सा गोंद मिलाकर भर दिया जाय तो फिर ये बाल नहीं निकलते। —व. चं.

(८) पैत्तिक मस्तिष्क शूल तथा उदर कृमि पर—इसके तथा करेला के पत्र रस को एकत्र कर गोघृत मिला मर्दन करने से मस्तिष्क शूल शांत होता है।

उदर कृमि पर—इसका और बायविडंग का क्वाथ सेवन कराते हैं।

(९) बर्र एवं मधुमक्खी के दंश पर—इसके ताजे पंचांग को पीस कर लेप करने से विशेष लाभ होता है।

नोट—मात्रा—चूर्ण २-७ माशा। ताजा स्वरस-५-८ तोले।

क्वाथ—५-१० तो.।

बीज—२-८ माशा।

इसका अधिक सेवन प्लीहा, वृक्क, फुप्फुस या हृदय के लिए हानिकर है। हानिनिवारक-बड़ी हरड़, शहद, नीबू, कासनी हैं। बेचैनी विशेष हो तो आलू बुखारा देवें।

विशिष्ट योग–

(१) पर्पटाद्यारिष्ट–पित्तपापड़ा (शाहतरा) ५ सेर कूटकर १ मन १२ सेर जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर ठंडाकर संधान में भर उसमें गुड़ १० सेर, धाय पुष्प १३ छटांक, तथा गिलोय, नागरमोथा, दारुहल्दी, देवदारु, कटेरी, धमासा, चव्य, चित्रक, त्रिकटु व बायविडङ्ग का चूर्ण प्रत्येक ४-४ तोले मिला पात्र का मुख अच्छी तरह बन्द कर १ मास तक सुरक्षित रक्खें। पश्चात छान कर बोतलों में भर लेवें।

मात्रा–१ से ४ तोला तक सेवन से पांडु रोग, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, कामला, हलीमक, प्लीहा, यकृत विकार शोथ तथा सर्व प्रकार के विषम ज्वरों का नाश होता है। —भै. र.।

शेष प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह ग्रंथ में देखो।

(२) अतरीफल शाहतरा–पित्तपापड़ा २५ तो., छोटी हर्र २० तो., बड़ी हरड़ १५ तोले, बहेड़ा, आमला १०-१० तोले, सनायपत्र ५ तोले, गुलाब पुष्प ५ तोले, दाख (बीज रहित) २ सेर १६ तोले लेकर दाख को पृथक पीस

Scanned with CamScanner

इन सबके चूर्ण में मिला दें और शहद तिगुना मिलाकर अतरीफल[1] बनालें।

मात्रा–७ मा० रात्रि को सोते समय अर्क गावजवां १२ तोले से या जल के साथ लेवें। प्रातः अर्क मुरक्कब मुसफ्फी खून (रक्त शोधक अर्क) १२ तोले के साथ लेवें। रक्त-दुष्टि, उपदंश एवं तज्जन्य गर्मी, सिरदर्द, भ्रम, गंज आदि में लाभ होता है। मस्तिष्क को बल प्राप्त होता है। (अर्क मुरक्कब मुस्फीखून का योग–नीम पत्र, नीम छाल, बकायन पत्र व छाल, कचनार, मौलसरी छाल, छोटी दुधी, काला भांगरा, यवासा पत्र व शाखा, गूलर छाल, मेंहदी पत्र, मुण्डी पित्तपापड़ा, सरफोंका, धमासा, विजयसार, नीलोफर, श्वेत व रक्त चंदन का बुरादा, गुलाब पुष्प, धनिया, कासनी बीज व जड़, मंजीठ, वेदपत्र, शीशम का बुरादा १०-१० तो. जौकुट कर १६ गुने जल में २४ घंटे भिगोकर आधा भाग अर्क खींच लें। यह महान रक्त शोधक है, उपदंश में भी उत्तम है)। —यू० चि० सा०।

(२) पर्पटादि अर्क–पित्तपापड़ा, बड़ी हरड़, नीम छाल, अमरबेल, मकोय, और सरफोंका १-१ सेर, चिरायता ४० तो०, चमेली मूल की छाल, गावजवां, गुलाब पुष्प, दोनों चन्दन २०-२० तोले लेकर जौकुट कर १६ गुने जल में २४ घंटे भिगोकर आधा भाग अर्क खींच लेवें। ३ से ६ तो० अर्क में २ तो० शहद मिला प्रातःसायं सेवन से उपदंश जन्य संधिवात, गठिया, गर्मी, सूजाक, दाद, खुजली आदि में लाभ होता है।

(३) शर्बत पित्तपापड़ा–पित्तपापड़ा १ सेर, बड़ी हरड़ २० तोले दोनों को जौकुट कर ८ सेर पानी में पकावें। २ सेर जल शेष रहने पर छान कर उसमें २ सेर खांड मिला एक तार की चाशनी बना लें। इसे २॥ तोले की मात्रा में जल या अर्क चन्दन के साथ प्रातः सायं लेने से रक्तविकार, दाह एवं मस्तिष्क विकार शांत होते हैं।

शर्बत, अर्क आदि शाहतरा के योग यूनानी ग्रन्थों में देखिये। अर्क शाहतरा का एक सरल योग इस प्रकार है–

पित्तपापड़ा (शाहतरा) १½ सेर (जौकुटकर १६ गुने जल में भिगो) २० बोतल अर्क खींच लें। १० तोले अर्क, शर्बत उन्नाव २ तोले के साथ सेवन करें। यह रक्त प्रसादक है, मुख का वर्ण निखारता (कान्तिदायक) फोड़े-फुन्सी की शिकायत दूर करता एवं संतापहारक है।

नोट–यदि २½ सेर पित्तपापड़ा को जल में भिगोकर २० बोतल अर्क खींचें और इस अर्क में उतना ही और पित्तपापड़ा भिगोकर दोबारा अर्क खींचें तो यह उक्त अर्क की अपेक्षा अधिक वीर्यवान हो जाता है। इसकी मात्रा ५ तोले है। इसे अर्क शाहतरा जदीद कहते हैं।

—यू० सि० यो० सं०।

पित्तपापड़ा नं० २ (Justicia Procumbens)

वासाकुल (Acanthaceae) के इस अप्रियगंधयुक्त, लगभग ६-१० इंच ऊंचे क्षुप के पत्र-सूक्ष्मरोमश, ¾—1½ इंच लम्बे, ½—¾ इंच चौड़े, अग्र भाग में कुछ मोटे, पुष्प-फीके जामुनी रंग के छोटे बड़े उभय प्रकार के अप्रिय हृल्लासकारक गंधयुक्त होते हैं। मूल—कोमल, लम्बा सकप; बीज कोष ⅙ इंची होता है। वर्षा से लेकर शीत-काल तक फूल फल इसमें आते हैं। पुष्पित होने पर क्षुपों को उखाड़ और सुखाकर ओषधि कार्यार्थ संग्रह करते हैं।

नोट—इसे जिस्टीसिया डिफ्युसा (Justicia-Diffusa) भी कहा जाता है। यह दक्षिण भारत में भी पाया जाता है।

[1] यह एक प्रकार का अवलेह है। इसके योगों में त्रिफला (अतरीफल) आदि के चूर्ण को बादामरोगन से अच्छी तरह से स्नेहाक्त करके डाला जाता है। इसे कलईदार पात्रों में बनाना चाहिए तथा बनाकर कांच या चीनी के मरतबान में रखें। अन्य पात्रों में यह काला पड़ जाता है और गुणों में भी न्यून हो जाता है। तैयार करने के ४० दिन या २ माह बाद प्रयोग करना चाहिए। अधिक समय तक प्रयोग न करें। मध्य में छोड़ दें। अधिक समय तक लगातार सेवन करने से आमाशय की शक्ति क्षीण हो जाती है।

Scanned with CamScanner
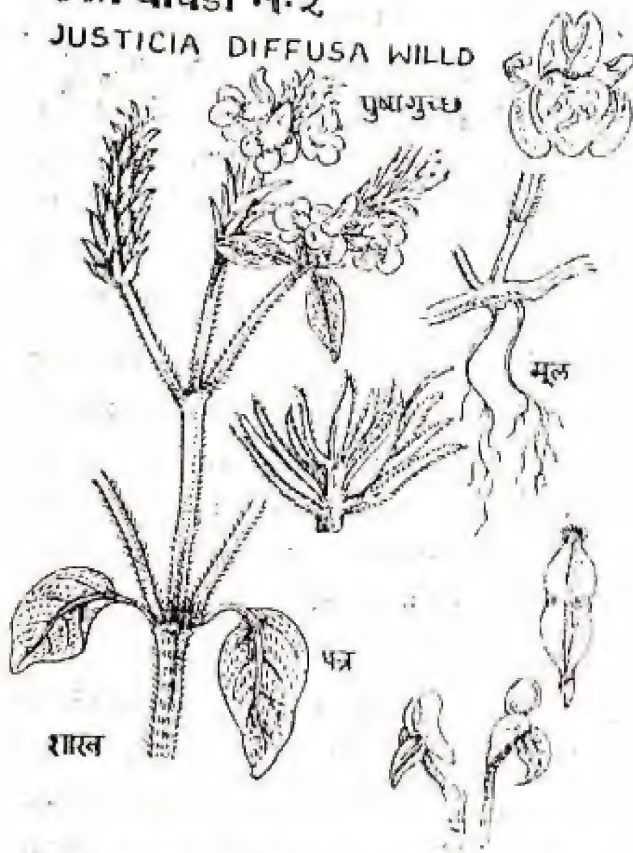
इसे महाराष्ट्र भाषा में घाटी या घास पित्तपापड़ा तथा लेटिन में जिस्टेसिया प्रोकुम्बेन्स कहते हैं।

इसमें एक कडुवा क्षार भी पाया जाता है। तथा यह मूत्रल, मृदु विरेचक, स्वेदल, धातुपरिवर्तक, एवं कफनिसारक है यकृत के विकारों में तथा पित्तज्वर में कडुवे पदार्थों के साथ मिश्रित कर इसका क्वाथ या फाण्ट देने से लाभ होता है। श्वास, कास संधिवात आदि में भी इसका फाण्ट उपयोगी है। नेत्राभिष्यन्द में इसका पत्र रस डालने से लाभ होता है। यह उक्त पित्तपापड़ा नं० १ का प्रतिनिधि माना जाता है।

नोट—इसके दो भेद (अ) रंगिया रीपेन्स या जस्टिसिया रीपेन्स (Rungla or JusticlaRepens)तथा रंगिया पारव्हीफ्लोरा (Rungla Parviflora) जिसका वर्णन पीछे पिण्डी के प्रकरण में दिया गया है) हैं; ये विशेष कडुवे नहीं होते, तथापि गुजराथ की ओर रबड़ सलीयो नाम से इनका व्यवहार पित्तपापड़ा जैसा ही किया जाता है।

(ब) पेरिस्ट्रोफी बाइकेलिकुलेटा (Peristrophe Bicalyculata) यह भी घाटी पित्तपापड़ा नाम से दक्षिण भारत में बम्बई की ओर व्यवहृत होता है। इस सबल, विस्तृत, रोमश क्षुप के पत्र २-३ इंची, डिम्बाकृति, अग्रभाग में कड़े, पत्र वृन्त $\frac{1}{4}$ इंची; पुष्पदण्ड $\frac{1}{3}$—$\frac{1}{8}$ इंची लम्बाकृति, कड़ा, पुष्प स्तबक $\frac{1}{3}$—$\frac{1}{2}$ इंची; बीजकोष $\frac{1}{3}$ से $\frac{1}{2}$ इंची; बीज-नन्हें नन्हें अनेक होते हैं। शीतकाल में फूल फल आते हैं। उक्त क्षुप दक्षिण भारत के अतिरिक्त उत्तर पूर्व बंगाल, बिहार आदि स्थानों में भी वर्षाकाल में पैदा होते हैं।

इसे बंगाल में नास भाग तथा हिन्दी में कहीं कहीं अत्रीलाल कहते हैं। यह यूनानी निघंटु का अत्रीलाल नहीं है।

यह सर्प विष पर उपयोगी माना जाता है। डा० सखाराम अर्जुन ने अपने Bombay drugs नामक पुस्तक में इसके गुणधर्म पित्तपापड़ा नं० १ के समान बतलाये

Scanned with CamScanner

है। किन्तु इसमें भी कडुवापन उसकी अपेक्षा कम होता है।

पित्तपापड़ा नं० ३ (दमनपापड़ा)
(Oldenlandia Corymbosa)

मंजिष्ठ कुल (Rublaceae) के वर्षायु, ३–१५ इंच ऊंचे, अनेक शाखा युक्त, धनिया के पौधे जैसे। प्रसरणशील, प्रायः चिकने या मृदुरोमश इस क्षुप के पत्र १½–२ इंच लम्बे, ⅛–½ इंच चौड़े, लम्बे रेखाकार भालाकार या पतले लम्बे, कहीं-कहीं अण्डाकार प्रासवत; पुष्प-श्वेत रङ्ग के, सूक्ष्म, प्रायः २-२ या ४-४ एक साथ; फल-गोल, धनिया जैसे पीतवर्ण के किंतु सूखने पर काले पड़ जाने वाले, तथा बीज-हलके भूरे रंग के कोण युक्त होते हैं। इसके फल स्वाद में खारे व कडुवे होते हैं। पुष्पित होने पर प्रायः दिसम्बर व जनवरी माह में क्षुपों को उखाड़ व शुष्क कर संग्रह करते हैं।

पित पापड़ा नं. ३
OLDENLANDIA CORYMBOSA LINN.
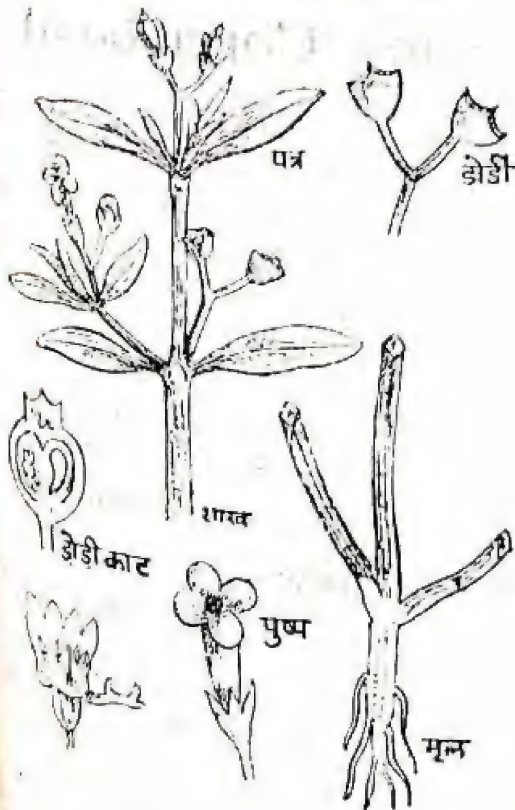
यह भारत के प्रायः सभी भागों में ५-६ हजार फीट की ऊंचाई तक पर्वतीय प्रान्तों में तथा आर्द्र स्थानों में या धान के शुष्क प्रायः खेतों में अधिक पाया जाता है।

नोट—बंगाल की ओर पर्पट श्वेतपापड़ा या पित्त-पापड़ा नाम से इसीका अधिक व्यवहार किया जाता है।

नाम–

सं०—क्षेत्रपर्पट। हि०—दमन पापड़ा। म०—परिपाठ, पाप्टी। गु०—परपट। बं०—श्वेत पापड़ा। अं०—टू फ्लावर्ड इंडियन माडर (Two flowered Indian madder)। ले०–ओल्डेनलेन्डिया कोरिम्बोशा; ओ बायफ्लोरा (O. Biflora), ओ. हेरबेसी (O. Herbaceae)।

रासायनिक संगठन—

इसके पंचांग में दो समान प्रकार के क्षाराभ बाइफ्लोरीन व बाइफ्लोरोन (Biflorine and Biflorone) पाये जाते हैं, जिनकी मात्रा शुष्क पौधे के वजन के अनुपात में ०.१२% तक रहती है। इसके अतिरिक्त एक रंजित द्रव्य भी होता है तथा उसकी राख में सोडियम, पोटासियम एवं केल्शियम के क्षार विशेषतः क्लोराइड पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग–

इसके गुणधर्म एवं प्रयोग भी प्रायः पित्तपापड़ा नं० १ के समान ही शीतवीर्य, ज्वरघ्न, दाहशामक, कफघ्न, कटु पौष्टिक एवं अल्प स्तंभन है। इसका उपयोग ज्वर (पित्त तथा वात प्रधान ज्वर), यकृद्विकार, कामला तथा कृमि रोग में विशेष किया जाता है।

इसके पंचांग का क्वाथ–यकृद्विकार तथा आमाशय के जलन युक्त एवं स्नायु मंडल के अवसादयुक्त पार्यायिक ज्वरों में और चिरकालिक मलेरिया में उत्तम ज्वरघ्न

Scanned with CamScanner

रूप में दिया जाता है। इससे शरीर का दाह, तृषा, आमाशयिक प्रक्षोभ, भ्रम एवं सुस्ती आदि दूर होतो, पसीना व पेशाब अधिक आता है।

पित्त ज्वर में इसके साथ पित्तपापड़ा नं० १ मिलाकर प्रयोग किया जाता है। पडंगपानीय में भी प्रायः इसी का व्यवहार किया जाता है।

सन्तत ज्वर में यदि वमन, विरेचन, भ्रम एवं शारीरिक शैथिल्य आदि लक्षणों की विशेषता हो तो इसके साथ ब्राह्मी, हंसराज, चन्दन, खस, नागरमोथा, गिलोय और तुलसी का क्वाथ या फाण्ट बनाकर पिलाते हैं।

इसके साथ गिलोय, नागरमोथा, चिरायता और सोंठ मिलाकर जो पंचभद्र नामक क्वाथ तैयार किया जाता है, वह वात पित्त तथा पित्त कफ ज्वर को भी हटाता है। ज्वर की उत्पत्ति से ७ दिन या उससे अधिक काल में जा ज्वर का विराम होकर सायंकाल पुनः ज्वर हो आता है तथा दाह, तृषा आदि लक्षण हों तो इसे सेवन कराना चाहिए। मलेरिया की विराम अवस्था में भी इसका प्रयोग कराया जाता है। ज्वर एवं प्रकृति के अनुसार इस क्वाथ से सोंठ के स्थान में चंदन [illegible] प्रयोग करते हैं।

दाह शांति के लिये इसके साथ चन्दन [illegible] लेप करते हैं। हाथ पैरों की जलन या दाह पर [illegible] रस का मर्दन करते हैं। शारीरिक उष्णता तथा [illegible]न्तिका (छोटी चेचक Measles) जन्य दाह या [illegible] की शांति के लिये उसके पंचांग को कूट कर [illegible] जल मिला रस निचोड़ कर उसमें मिश्री मिला [illegible] पिलाते हैं।

कफ विकार तथा गले एवं श्वास नलिका शोथ [illegible] इसके शुष्क पंचांग के जौकुट चूर्ण को चिलम में [illegible] धूम्रपान कराने से कंठ में अवरुद्ध हुआ कफ [illegible] होकर निकल जाने से लाभ होता है।

तमक श्वास में इसके साथ समभाग छोटी [illegible] और मुलैठी का महीन चूर्ण कर शहद के साथ [illegible] कराते हैं, तथा इससे थोड़ा धूम्रपान भी कराते हैं।

नोट—इसकी मात्रा २ से ८ माशा तक है।

पित्तपापड़ा नं० ४ (Polycarpaea Corymbosa)

ओखराड़ कुल [1] (Caryophyllaceae) के अनेक शाखायुक्त ३ इंच से १२ इंच तक ऊंचे इन क्षुपों की शाखायें सीधी या जमीन पर फैली हुई अत्यन्त कृश, मुलायम रोमों से आच्छादित; पत्र—अभिमुख, रेखाकार ½-१ इंच लम्बे सकड़े, पुष्प बहुत छोटे, श्वेत वर्ण के चमकीले, बाह्यदल भूरे, आभ्यन्तर दल सूक्ष्म लाल रङ्ग के शीर्षस्थ सघन द्विविभक्त मंजरियों में आते हैं। फल—उक्त पुष्प ही प्रायः श्वेत चमकीले फल रूप में परिणित हो जाते हैं।

ये क्षुप भी प्रायः सब स्थानों में, विशेषतः भारत के उत्तर प्रदेश के पूर्वी विभाग में प्रायः बाजरे के खेतों में आश्विन-कार्तिक मास में पैदा हो जाते हैं, तथा ग्रामीण लोग प्रायः इसका उपयोग पित्तप्रकोप की शांति के [illegible] पित्तपापड़ा के नाम से करते हैं। छोटा नागपुर तथा [illegible] नदी के आसपास की पथरीली एवं रेतीली जमीन में ये क्षुप पाये जाते हैं। गुजरात में भी यह खूब होता [illegible] दक्षिण भारत में इसकी तीन जातियां पाई जाती हैं।

नाम—

हि०—एक प्रकार का पित्तपापड़ा। [illegible] गु०—भीणा पान नो ओखराड़। ता.—नीलाई [illegible] ते.-बोनासरी, राजूमां। ले.—पोलिकार्पिया कोरिम्बो[illegible]

रासायनिक संगठन—

इसमें एक प्रकार का साबुन सत्व पाया जाता [illegible]

---

१ वर्षाकाल में भरे हुये छोटे छोटे ताल, डबरे आदि के शुष्क हो जाने पर उस जमीन में जो कई प्रकार [illegible] छोटी छोटी बूटियां पैदा हो जाती हैं उन्हें गुजराती में ओखराड़ या ओक कहते हैं। इस कुल के क्षुपों [illegible] शाखायें तथा पत्र प्रायः अभिमुख, उपपत्र बहुत अल्प प्रमाण में, पुष्प बाह्य एवं अभ्यन्तर कोश के दल ४-[illegible] पुंकेशर ५-८ या १० तक, स्त्रीकेशर १ से ५ तक, फल पतला, कड़कीला, बहुत नन्हें बीजवाला होता है।

Scanned with CamScanner

गुणधर्म व प्रयोग—

शीतवीर्य, मूत्रल, पित्तशामक, विषघ्न, व्रण, व्रणशोथ फोड़े आदि पर पत्तों को पीसकर पुल्टिस बनाकर बांधते हैं। जखम या व्रण पर इसकी भस्म को कालीमिर्च चूर्ण मिला लगाते हैं।

कामला और पांडु रोग में पत्र स्वरस को राब के साथ मिलाकर पिलाते हैं। अथवा गुड़ के सीरे के संयोग से इसकी गोलियां बनाकर सेवन कराते हैं। विषैले जन्तु के काटने पर इसके क्वाथ का बफारा देने और पीसकर लगाते हैं।

नोट—मात्रा—१-३ माशा तक।

सर्पादि के विषों पर इसका प्रयोग व्यर्थ सिद्ध हुआ है।

पित्तपापड़ा नं०५(पूना का) (Glossocardia Linearifolia)

भृङ्गराज कुल (Compositae) के अनेक प्रसरणशील सघन शाखायुक्त, छोटे, सुन्दर, गन्धयुक्त १ से १० इंच तक ऊंचे चिकने, वर्षायु क्षुपों के पत्र-एकान्तर, पत्राकार, रेखाकार खण्ड युक्त; पुष्प-सेवती के पुष्प जैसे, पीतवर्ण के मुण्ड़कों (Capitulum) में छोटे-छोटे किनारे पर जिह्वाकार, स्त्री पुष्प प्रायः अकेला, तथा केन्द्र भाग में नलाकार उभय लिंग पुष्प, संख्या में कम होते हैं। फल—सूक्ष्म, गोल, पकने पर नील वर्ण के हो जाते हैं।

पित्त पापड़ा नं ५
GLOSSOCARDIA LINEARIFOLIA CASS.

मूल—लम्बी कुछ पीतवर्ण की होती है।

इसके क्षुप मध्य तथा दक्षिण भारत में तथा अन्य प्रान्तों में भी प्रायः कंकरीली जमीन पर विशेष पाये जाते हैं।

नोट—डा० देसाई इसे पूना की ओर का पित्त पापड़ा कहते हैं। तथा अन्यान्य प्रान्तों में भी कहीं कहीं इसका व्यवहार पित्तपापड़ा के स्थान पर किया ।जा हैता।

नाम—

सं.—पियारी, रेणु । हि.—पूना का पित्तपापड़ा पत्थर सुवा सेरी, दांतरीसा। म.—फतरसुवा, पित्तपापड़ा गु.—दवनापाड़ । ले.—परपालानामु अं.—राक एनेथम (Rock anethum) । ले०—ग्लासोकड़िया लिनि एरिफोलिया, गमासो, वांसवेलिया (Glossocardia Bosvallia) ।

रासायनिक संगठन—

इसकी जड़ में एक उड़नशील तैल तथा काण्ड, पत्र औन पुष्प में एक कडुवा क्षाराम पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पंचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग—

कटु, तिक्त, गंध में साधारण सोया जैसा, स्वेदल, ज्वरघ्न, कफनिःसारक, गर्भाशय संकोचक, रजःस्थापनीय, शेष गुण धर्म प्रायः पित्तपापड़ा नं० १ या ३ के जैसे ही हैं; किंतु इसकी क्रिया यकृत पर विशेष न होकर गर्भाशय पर अधिक होने से यह पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिये विशेष उपयोगी है।
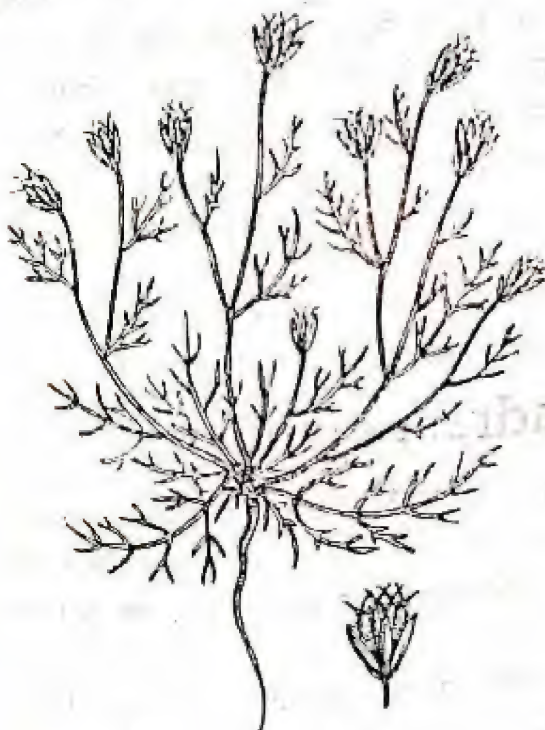
अनार्त्तव एवं पीड़ितार्त्तव में अन्य गुणधर्मी औषधियों के साथ मिला कर इसका क्वाथ या मुरब्बा बनाकर दिया जाता है।

वात पित्त ज्वर पर भी इसका क्वाथ या फाण्ट दिया जाता है। पित्त ज्वर में इसके साथ चन्दन, खस और सोंठ मिला, क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराते हैं। दूषित वात जन्य ज्वर में इसके साथ ब्राह्मी और हंसराज मिला क्वाथ बना कर देते हैं।

श्वास या यक्ष्मा पीड़ित रोगी को, कहीं-कहीं इसके शुष्क पत्र चूर्ण को आटे में मिला, रोटी बना कर खिलाते हैं।

दांतों से रक्तस्राव होने या दन्त कृमि में इसका उपयोग किया जाता है। इसके क्वाथ से कुल्ले कराते हैं।

मात्रा—१-३ माशा।

पित्तपापड़ा नं. ६ (Mollugo Stricta)

भारस कुल (Ficoldaceae) के इस क्षुद्र वनस्पति के क्षुप ३-१० इन्च ऊंचे; शाखायें प्रसरणशील, अनेक, पतली, नालीदार या कोणयुक्त; पत्र-अभिमुख या चक्राभासक्रम से निकले हुए, प्रायः मांसल ०.५-१.७ इंच लम्बे; पुष्प–सूक्ष्म, हरे या श्वेत वर्ण के; फल–आयताकार, लम्बगोल, तीन पक्ष वाले होते हैं। बीज—चपटे, गहरे बादामी रंग के होते हैं।

वैशाख-ज्येष्ठ मास में यह खूब पैदा होता है। यह कुछ कड़ुवा होता है। इसके पत्तों की साग बनाते हैं।

यह प्रायः सर्वत्र भारतवर्ष में ऊसर या जोताऊ भूमि में पैदा होता है।

नोट—डा. देसाई ने इसका संस्कृत नाम 'पर्पटका' लिखा है।

मलाबार (केरल) की ओर इसके ताजे क्षुप बाजारों में साग की तरह बेचे जाते हैं।

इस ग्रन्थ के तीसरे भाग में जिस 'जिम' बूटी का सचित्र वर्णन दिया जाता है उसका ही यह एक भेद मात्र है। इसमें और उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं है।

नाम–

सं०—पर्पटका। हि०—तपभाड़। म०—भारस। बं०—जुल पापड़ा, जोल पर्पट। ले०—मोलुगो स्ट्रिक्टा, मो. न्युडिकॉलिस, (M. Nudi Caulis)।

गुणधर्म व प्रयोग–

दीपन, अनुलोमन, मृदुरेचक, वातनाशक, कृमिघ्न, विषमज्वर हर, आर्त्तव जनन, ऋतुस्राव नियामक है।

प्रसूता स्त्री को इसकी साग बनाकर खिलाते हैं। इससे प्रसवकालीन स्राव बहुत ही साफ हो जाता है, आर्त्तवशुद्धि, मलशुद्धि तथा क्षुधावृद्धि होती है।

अनियमित मासिक धर्म में इसके पत्तों का शीत निर्यास या हिम के सेवन से रज की मात्रा बढ़ती है।

सुजाक में भी इस बूटी का उपयोग किया जाता है। विषम ज्वरों में इसका साग खिलाया जाता है।

पित्ति (Ventilago Madraspatana)

बदरकुल (Rhamnaceae) की सदैव हरीभरी रहने वाली वृक्षारोही, बड़े-बड़े वृक्षों के नीचे की भूमि से उत्पन्न होकर वृक्षों के शीर्ष भाग तक चढ़ कर फैलने वाली मोटी, कड़ी एवं अनेक शाखायुक्त इस लता की छाल गहरी धूसर, लाल झुर्रीयुक्त; पत्र-लम्ब गोल, अंडाकृति २-६ इंच लम्बे, १-१½ इंच चौड़े, तीक्ष्ण नोक वाले; उज्वल, अखण्ड या कुछ-कुछ तुलसी पत्र जैसे कंगूरेदार, पुष्प-कोमल, गोल, ⅛ इंच व्यास के हरिताभ पीतवर्ण के दुर्गन्धयुक्त; फल–१½ २ इंच, ½ इंच चौड़े अहमदाबादी बेर जैसे; बीज—लगभग गोल सुपारी जैसा पीताभ होता है। पुष्प–सितम्बर मास से मार्च तक तथा फल–मार्च मास में आते हैं।

यह लता मद्रास, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, बिहार, गुजरात, उड़ीसा, छोटा नागपुर, पश्चिमी भारत तथा मैसूर, बंगाल, नीलगिरी का उत्तरी भाग, बर्मा, सीलोन आदि सामान्यतः उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र जंगलों में पैदा

Scanned with CamScanner

होती है।

नोट—इसकी छाल में से अच्छे लम्बे रेसे निकलने से डोरी बनाई जाती है। बीज भूनकर खाये जाते हैं उनसे तैल भी निकालकर खाया जाता है। छाल से जो लाल रंग निकाला जाता है उसे मद्रास में पोपली कहते हैं।

इसकी ही एक जाति व्हेन्टिलेगो बयालिकुलेटा (Ventilago calyculata) है। इसे भी भाषा में पित्ती, राई, रई, काली बेल, पित्तोली और बंगाल में रक्तपित्त कहते हैं। इसकी भी लता उक्त लता जैसी होती है। पत्तों का अग्रभाग कोमल, लोमावृत्त, पत्र वृन्त—$\frac{1}{2}$-$\frac{2}{3}$ इञ्ची, रोमश; पुष्प—छोटे-छोटे किंचित् हरित वर्ण के।

फल—गोल $\frac{1}{4}$ इंची व्यास के होते हैं। यह लता भी मद्रास आदि उक्त स्थानों के अतिरिक्त कुमाऊं (हिमालय), नेपाल, चांदा (महाराष्ट्र प्रान्त) देहरादून, पंजाब आदि उष्ण प्रदेशों में होती है।

नाम–

सं०—रक्तवल्ली। हि०—पित्ती, राई, धनी, बोंग, सर्जोम आदि। म०—खांडवेल, लोखंडी, केवटी, सकलवेल इ०। गु०—रगतो रोहड़ो। बं०—रक्तपीठ, रक्तपित्त अं०—रेड क्रीपर (Red creeper)।

प्रयोज्यांग—मूल की छाल।

गुण धर्म व प्रयोग–

दीपन, पाचन, ग्राही, पौष्टिक, वातहर, आध्मान, उत्तेजक, त्वग्रोग तथा दौर्बल्य एवं सामान्य ज्वर नाशक है।

परिश्रमजन्य जो मन्द ज्वर रात्रि में आ जाता है, हाथ पैरों में हड़फूटन सी होती है उस पर-इसकी छाल का चूर्ण २-३ माशा तक जल या दूध के साथ १०-२० दिन तक दिया जाता है। इससे पाचन क्रिया में सुधार, दूषित आमोत्पत्ति में सुधार होकर ज्वर निवृत होता तथा बल की वृद्धि होती है।

त्वचा के विकारों पर—छाल के चूर्ण में १६ वां हिस्सा नीलाथोथा मिलाकर वेसलीन या धोये हुए घृत के साथ घोट कर मलहम जैसा बना दिन में २-४ बार लगाते रहने से पामा, कण्डू, छाजन आदि चर्म विकार शमन होते हैं। रोगी को नमक, मिर्च कम से कम खिलावें। पेट की सफाई रखना आवश्यक है।

—गां. औ. र.।

छाल चूर्ण को केवल तेल में मिलाकर लगाने से भी खुजली आदि में लाभ होता है।

पित्तोहरी देखो—निसोथ। पितौजिया देखो—जियापोता, पिन्ना देखो—तेंदू काक (काक तेंदू) में नोट।

पिपरमिण्ट (Mentha piperita)

तुलसी कुल (Jablatae) के बहुवर्षायु, पुदीने की जाति के, जमीन पर फैलने वाले, उग्र गन्धी इस छोटे क्षुप के पत्र १-४ इञ्च लम्बे, अण्डाकार, दन्तुर, ऊपरी पृष्ठ भाग में चिकने, तल भाग में उभरी हुई सिराओं से युक्त; पुष्प—छोटे, रोमश, बैंगनी रंग के, पुष्प दण्ड के अग्रभाग पर होते हैं। पुष्प दण्ड पर ही इसके नन्हें २ फल होते हैं।

पुष्प एवं फल शीतकाल में होते हैं।

इसका मूल स्थान यूरोप, अमेरिका, एशिया में चीन, जापान तथा मिश्र देश हैं। सम्प्रति भारत में भी यह बाग बगीचों में, विशेषतः उत्तर भारत तथा काश्मीर में विशेष लगाया जाता है तथापि इसके तेल, सत्व आदि का अधिक आयात चीन या जापान देशों या अमेरिका से ही भारत में होता है।

नाम–

हि० म० गु०—पिपरमिण्ट। बं०—पिपारमेण्ट। अं०—मार्शमिण्ट या पेपरमिंट (Marsh mint or Peppermint)। ले०—मेंथा पिपेरिटा।

रासायनिक संगठन–

इसमें एक उड़नशील तैल, मेन्थोल (Menthol) राल, टैनिन तथा गोंद होता है। यह उड़नशील तैल इसके

पीपर मिंट

MENTHA PIPERITA LINN.

पौधों के ताजे पुष्पिताग्रों (Fresh flowering tops) से परिस्त्रवण विधि के द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसे तैल पिपरमिण्ट (Peppermint oil or oleum menthae piperltae) कहते हैं। आवश्यकता हो तो इसे पुनः विशोधित (Rectified) कर लिया जाता है। इस तैल में ४५%. स्फटकीय द्रव्य (सत पिपरमिण्ट या मेंथाल) तथा कम से कम ४ से ९%. तक मैथिल एसिटेट (Methyl acetate) पाया जाता है।

उक्त तैल रंगहीन या हलके पीत वर्ण का या हरिताभ पीत होता है, जिसमें पिपरमेंट की सुगन्ध आती है। स्वाद में प्रथम तीक्ष्ण, अन्त में ठंडक, शून्यता एवं उष्णता प्रतीत होती है। पुराना होने पर यह काला पड़ जाता है। इस तैल को अच्छी तरह डाट बन्द शीशियों में शीतल स्थान में रखना एवं प्रकाश से बचाना आवश्यक है; अन्यथा काला होकर बेकार हो जाता है।

प्रयोज्यांङ्ग—पंचाङ्ग, तैल और सत्व।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु विपाक, उष्णवीर्य, कफवात शामक, रोचन, दीपन, वातानुलोमन, वमन निवारक, ग्राही, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, कफनिःसारक, आर्त्तवजनन, शोथ प्रशमन, दुर्गन्धनाशक, वेदनास्थापन है। तथा अरुचि, आंत्रविकार, अग्निमांद्य, अतिसार, विसूचिका, उदरशूल आदि में इसे शक्कर या मिश्री के साथ देते हैं। रेचक औषधियों के साथ इसे देने से मरोड़ (ऐंठन) कम होती है।

हृद्दौर्बल्य, कास, श्वास, हिक्का आदि में भी यह प्रयुक्त होता है। शिरःशूल, सन्धिवात एवं अन्य वात विकारों में इसका लेप किया जाता है। सिर के कृमि नाशार्थ इसे साबुन के घोल में थोड़ा मिलाकर सिर को २-४ बार धोने से सब जूं आदि कृमि नष्ट होते हैं। इसके सत्व (मेथोल) के साथ कपूर, फेनोल, क्लोरल हाइड्रेट इनमें से किसी एक को मिलाने से द्रव बनता है। वह उक्त विकारों के लिये उपयुक्त होता है। इस सत्व के साथ समभाग कपूर (शुद्ध देशी) और अजवायन का सत्व (थायमोल) मिलाने से जो द्रव होता है वह अमृतधारा कहलाता है। इस अमृतधारा १ भाग में सत्व दालचीनी ½ भाग मिला ५-१० बूंद जल से २-२ घंटे पर हैजा निवारणार्थ देते हैं। इसका उपयुक्त प्रयोग प्रायः सर्व विकारों में किया जाता है।

केवल इसके सत्व को (या उक्त अमृतधारा को) दन्तकोटर में रुई के फाहे में रखकर दबाने से पीड़ा, मसूढ़ों के विकार, दंत कृमि आदि नष्ट होते हैं। प्रतिश्याय, वातकफ ज्वर तथा श्लैष्मिक शिरःशूल में इसका नस्य लेते हैं। रोहिणी तथा अन्य कण्ठ रोगों में इसका लेप करते हैं। श्वसन संस्थान के जीर्ण रोगों में इसे सूंघते हैं। कष्टार्तव में इसके प्रयोग से वेदना शांत होती है।

भयंकर हिक्का पर—पिपरमेंट, कपूर १-१ रत्ती, मकरध्वज, कस्तूरी आध-आध रत्ती लेकर प्रथम मकरध्वज महीन पीस कर सबको मिलावें। इसमें थोड़ी शहद मिलाकर चटावें या अर्क पोदीना के साथ पिलावें।

इसके पंचांग या पत्तों को पीस कर लेप करने से

Scanned with CamScanner

मस्तक पीड़ा या अन्य अङ्गों की वेदना शांत होती है।

पंचांग या पत्तों का फाण्ट २॥ से ५ तो. की मात्रा में सेवन से वमन, आमाशय की दूषित वात जन्य पीड़ा, विसूचिका, ऐंठन युक्त अतिसार आदि में लाभ होता है।

तेल—बाह्य स्थानिक प्रयोग से यह वेदन‌ ‌ प्रभाव करता है। आभ्यन्तर सेवन से यह वातानुलोम‌ (Carminative) क्रिया करता है तथा आमाशय या आंत्र-गत आध्मान एवं शूल का निवारण करता है। वातानुलोमन क्रियार्थ इसे शक्कर या बताशे के सा‌ प्रयुक्त करते हैं। इस तेल में साधारण कीटाणुनाशक गुण होने से इसका उपयोग दंत मंजन आदि में किया जाता है तथा पाचन औषधियों में रोचनार्थ इसे मिलाते हैं।

नोट—मात्रा फाण्ट १ से ५ तोला तक। सत्व चौथाई से १ रत्ती तक। तेल १-३ बूंद।

विशिष्ट योग—

अर्क अजीर्ण—पिपरमेंट, कपूर १-१ तोला, अजवायन सत्व ६ माशा, पोटेसियम ब्रोमाईड, क्लोरल हाईड्रेट ३-३ माशा सबको एकत्र मिला धूप में शीशी में रखें तेल जैसा हो जायगा। हैजा, अतिसार, वमन, अजीर्ण, उदर शूल में २ से ४ बूंद तक मिश्री में मिला कर या जल में डालकर पिलावें। सिर पीड़ा, दंत पीड़ा तथा बिच्छू आदि काटने पर रुई से पीड़ा स्थान पर लगावें। अति प्रभावशाली सिद्ध प्रयोग है।

—यू० चि० शा०।

पिपरामूल देखो—पिप्पली में।

पिप्पली (Piper Longum)

हरीतक्यादि वर्ग एवं अपने पिप्पली कुल[२] (Piperaceae) की प्रमुख, भूमि पर प्रसरणशील या अन्य वृक्षों के सहारे ऊपर को उठने वाली इस बहुवर्षायु लता के पत्र—२-३ इन्च लम्बे, १॥-३ इंच चौड़े, चिकने, नुकीले, ताम्बूल पत्र (पान) सदृश किंतु छोटे, वृन्त के पास एक खड्डे से युक्त, पृष्ठ भाग पर ५ शिराओं से युक्त, काण्ड के निम्न भाग के पत्र लम्बे वृन्त वाले, ऊपर के पत्र वृन्तरहित या कांडों से संलग्न होते हैं।

पुष्प—एक लिंगी, पुंपुष्प दण्ड १-३ इंच लम्बा, स्त्री पुष्प दण्ड ½ इंच लम्बा।

फल—१ इंच तक लम्बे ⅙ इंच मोटे, शुण्डाकार, कच्चे शहतूत जैसे किंतु छोटे व बारीक, काण्ड की प्रत्येक ग्रंथि के पास से निकले हुए प्रकोष्ठों से २-२ फल एक साथ या एक ही फल। पकने पर लाल वर्ण के तथा सूखने पर कृष्णाभ धूसर वर्ण के होते हैं। वर्षा ऋतु में फूल तथा शरद ऋतु में फल आते हैं। फलों को ही पिप्पली कहते हैं।

मूल—काष्ठमय, ग्रंथिल, कड़ी, भारी, आकार में कुछ-कुछ तगर के सदृश, कृष्णाभ धूसर वर्ण की, तोड़ने पर अन्दर से श्वेत रंग की दीखती है। यह स्वाद में कुछ कड़वी (पिप्पली के सदृश) तीक्ष्ण एवं चरपरी होती है। इसीमें से शाखायें या उपमूल निकल कर भूमि पर पसरती हैं। मूल जितना वजनदार और मोटा हो उतना ही अधिक गुणदायक माना जाता है। इसे ही पिपरामूल, पीपरामूल कहते हैं। पिप्पली की अपेक्षा यह सौम्य किंतु अधिक वीर्यवान एवं उत्तेजक है।

ध्यान रहे बाजारों में जो पीपलामूल मिलती है, उसमें इसकी मूल एवं गांठ सहित इसकी शाखाओं तथा काण्डों का भी मिश्रण रहता है। इतना ही नहीं इसमें अपामार्ग आदि अन्य बूटियों की जड़ों का भी मिश्रण देखा

---

[१] हिन्दी में इसे प्राय: पीपल ही कहते हैं। पीपल शब्द से पीपल वृक्ष के भ्रम निवारणार्थ यहां इसका पिप्पली नाम दिया गया है।

[२] इस कुल की बूटी के काण्ड मुड़ने वाले, आधार मिलने पर आरोही; पत्र—अखण्ड, एकांतर, हृदयाकृति, पुष्प-छोटे, काण्ड पर एक स्थान पर जमे हुए, पत्र कोण या पत्र के सामने से निकलते हैं।

Scanned with CamScanner

जाता है। अतः उक्त जो पहिचान इसकी सूचित की गई है, तदनुसार ही देख भाल कर इसे लेना चाहिए।

पिप्पली की लता मध्यप्रदेश के मालवा आदि स्थानों में, बिहार, गुजरात, आसाम, ट्रावनकोर, नेपाल, भूटान, हिमालय की तराई, नैनीताल आदि एवं फिलीपाईन द्वीप समूह, मलाया, सिंगापुर में विशेष होती है। पूर्वी बंगाल में यह खूब बोई जाती है। यह उष्ण प्रदेश में, विशेषतः पत्थर, रेत एवं चूना मिश्रित भूमि में अधिक होती है। अधिकतर नागरवेल (पान) के टांडों में (जो टट्टरों से चारों ओर से छाया हुआ रहता है) इसकी लता लगाई जाती है। एक बार की लगाई हुई लता के मूल से ही प्रति वर्ष अंकुर फूट कर नूतन लतायें तैयार हो जाती हैं। पिप्पली (इसके फल) ताजे अपरिपक्व दशा में हरितवर्ण की सुहावनी होती है, तथा यही धूप में शुष्क कर औषधि कार्यार्थ ली जाती है।

नोट—प्राचीन निघण्टु ग्रन्थों में पिप्पली, गज पिप्पली, सैंहली, और वनपिप्पली ऐसे इसके ४ प्रकार दर्शाये गये हैं। इनमें से (१) पिप्पली—मगध (दक्षिण बिहार) आदि में पैदा होती है। इसे मागधी भी कहते हैं। (२) गज पिप्पली-अभी तक संदिग्ध है। अनेक लोग इसे चव्य का फल मानते हैं। इसका विशेष विवरण भाग २ के गज पीपल के प्रकरण में तथा भाग ३ के चव्य के प्रकरण में देखिये। (३) सैंहली पिप्पली-वह है, जो सीलोन, सिंगापुर, जंजीबार आदि बाह्य प्रदेशों से यहां आती है, इसे जहाजी पीपल भी कहते हैं। यह अधिक तीक्ष्ण या चरपरी होती है। (४) वन पिप्पली या पहाड़ी पीपल का लेटिन नाम पाइपर सिल वेटिकम (Piper sylvaticum) है। यह आसाम, बंगाल, कोंकण आदि के पहाड़ी जंगलों में नैसर्गिक पैदा होती है। इसकी लता खूब लम्बी; पत्र उक्त पिप्पली के पत्र जैसे ही किन्तु किंचित् बड़े; फल ३/४ से १ १/२ इंच तक लम्बे गोल पतले तथा कम तीक्ष्ण बंगाल की ओर इसका बहुत व्यवहार किया जाता है। पीछे पहाड़ी पीपल वृक्ष के प्रकरण के विशेष वक्तव्य के नोट नं० ३ में इसका उल्लेख देखिये। इसे बंगाली पिपली भी कहते हैं।

पिप्पली
PIPER LONGUM LINN.

इसके अतिरिक्त नवसारी (गुजराती) पिपली उक्त बंगाली पिपली से कुछ बड़ी होती है। इसका चूर्ण सुन्दर हरे रंग का होता है। (बंगाली या पहाड़ी पिपली का चूर्ण भूरा होता है। एक अति छोटी चूहे की मेंगनी जितनी पिपली होती है, इसे जंजबारी पिपली कहते हैं। इसकी लता बहुत लम्बी होती है तथा विशेषतः अफ्रीका के जंगलों में पैदा होती है। यह भी कम तीक्ष्ण एवं कम गुण वाली होती है। पान पिप्पली जो पान के टांडों में लगाई जाती है (जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं) भी कम गुण वाली मानी जाती है।

आजकल व्यवहार में प्रायः दो प्रकार की पिपली ली जाती है। एक तो बड़ी पिप्पली जो संभवतः उक्त सैंहली है। और दूसरी छोटी पिप्पली या बन पिप्पली जो ... देश में अधिक पैदा होती है। तथापि पिप्पली का आ...

Scanned with CamScanner

बाहर से ही अधिक होता है।

नोट नं० २—चरक के कासहर, हिक्का निग्रहण, शिरोविरेचन, वामक, तृप्तिघ्न, दीपनीय, एवं शूल प्रशमन गणों में तथा सुश्रुत के पिप्पल्यादि, ऊर्ध्व भाग हर एवं शिरोवेचन गणों में यह ली गई है।

नाम–

सं.—पिप्पली, मागधी, कृष्णा, कणा, वैदेही, चपला, तीक्ष्ण तण्डुला, ऊषणा (कटु रस होने से), उपकुल्या (कुल्या-जलीय प्रदेशकेआस पास होने से), शौण्डी (शुण्डा, क्षार फल होने से)।

हि.—पिप्पली, पीपल, पीपरि,मधां। म.—पिंपली गु.—लेंड़ी पीपल। बं.—पिपुल। ता.—टिपिली। अं.—लांग पेप्पर [Long pepper], ड्राईड़ क्याटकिन्स (Dried catkins)। ले.—पाइपर लांगम; चविका राक्सवर्घी (Chavica Roxburghii)।

रासायनिक संगठन–

इसमें उड़नशील तैल 1%, तथा राल, स्टार्च, गोंद, वसा, निरिन्द्रिय द्रव्य और पाइपरीन (Piperine)नामक एक क्षार तत्व १–२% पाये जाते हैं। यह क्षारतत्व श्वेत दानेदार, पुराना होने पर पीला, अल्कोहल व ईथर में घुलनशील, जल में अविलेय, स्वादरहित होता है। यह उत्कृष्ट ज्वरघ्न है। वातसंस्थान की निर्बलता तथा प्लीहा वृद्धि (प्लीहा में रक्त संग्रह) में इसे निलगिरी तैल में मिला कर प्रयुक्त करते हैं। इसकी मात्रा १ से ५ ग्रेन है।

प्रयोज्याङ्ग—फल और मूल

गुणधर्म व प्रयोग–

फल:—लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, कटु, मधुर विपाक, अनुष्ण शीतवीर्य, रसायन, कफवात शामक, दीपन, पाचन, अरुचिनाशक, वातानुलोमन, शूल प्रशमन, मृदुरेचन, यकृदुत्तेजक, मेध्य, रक्तोत्क्लेशक, रक्त शोधक, मूत्रल, शिरो विरेचन, ज्वरघ्न (विशेषतः नियत कालिक ज्वर, जीर्ण-ज्वर, प्रसूति ज्वर प्रतिबन्धक) वृष्य, तथा अरुचि, अग्निमांद्य, प्लीहावृद्धि, अजीर्ण, विबन्ध, गुल्म, उदर शूलादि उदर रोग, यकृद्विकार, अर्श, हृद्दौर्बल्य, पांडु, प्रमेह, आमवात, गृध्रसी, कटिशूल, अंगघात, रक्तविकार, कास श्वास, हिक्का, क्षय, मूत्रविकार, कुष्ठ आदि में प्रयुक्त होता है।

इसका ताजा आर्द्र फल—गुरु, मधुर, शीतवीर्य, वात कफ वर्धक और पित्तशामक है।

नोट—नवीन शुष्क पिप्पली दाहक एवं पितकारक होने से आचार्यों ने पुरानी (लगभग १ वर्ष की) औषधि कार्यार्थ लेने का विधान किया है।[1] पुरानी होने पर यह सौम्य एवं विशेष गुणदायक होती है। किंतु यदि आशु कारी रोग में तीव्र उत्तेजना की आवश्यकता हो, तो नवीन पिप्पली की योजना ठीक होती है।

शुद्धिकरण—रासायनिक औषधियों में डालने के लिये पिप्पलियों को चित्रक के क्वाथ में डालकर तथा धूप में सुखाकर शुद्ध कर लेना चाहिये। कहा है—

'वैदेही चित्रक रसैरातपे भावयेत् पुटे।
सम्यक्शुद्धा भवत्यत्र रस- योगेषु योजयेत् ॥'
—यो. र.

साधारण औषधकार्यार्थ भी पिप्पलियों के वृन्तों को तोड़कर साफ जल में २-३ बार धोकर, स्वच्छ कपड़े में बांध, डोलायन्त्र विधि से गोदुग्ध में पकाकर, पुनः जल से अच्छी तरह धोकर धूप में शुष्क कर लेना ठीकहोता है।

डा. देसाई का कथन है कि-पिप्पली उष्ण, वातहर, श्वासहर, दीपन, नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक तथा गर्भाशय संकोचक है। जिस प्रकार कालीमिर्च की क्रिया पचनेन्द्रिय पर विशेष रूप से होती है उसी प्रकार पिप्पली की विशेष क्रिया फुफ्फुस और गर्भाशय पर होती है। इसके सेवन से शीत एवं कफ प्रधान रोगों में बहुत लाभ होता है।

श्वसनक सन्निपात (निमोनियां) में कफ वृद्धि हो जाने पर कफ को सरलता से बाहर निकालने वाली औषधि दी जाती है। पिप्पली और लहसुन के क्वाथ में दूध मिलाकर दिया जाता है, जिससे फुफ्फुस व हृदय सबल

[1] नवान्येव हि योज्यानि द्रवाण्यखिल कर्मसु। विना विडङ्ग कृष्णाभ्यां गुड़ धान्याज्यमाक्षिकैः। (शा. सं.) अर्थात्—बायबिडंग, पिप्पली, गुड़, धनियां, घृत तथा मधु इतने द्रव्य औषधि कार्यार्थ पुराने लेने चाहिये।

Scanned with CamScanner

होते, तथा कफ सरलता से निकलने लगता है । आशुकारी अवस्था की अपेक्षा चिरकारी एवं जीर्णावस्था में यह अधिक लाभ पहुंचाती है।

सूतिका ज्वर, मलेरिया ज्वर, आमवात और कफ ज्वर में इसे शहद के साथ दिया जाता है। इससे सूतिका ज्वर में गर्भाशय के अन्दर रहा हुआ सब मल निकलकर शुद्ध हो जाता है, स्त्री को उत्तेजना प्राप्त हो जाती है। मलेरिया ज्वर में इसे देने से यकृत की वृद्धि कम होती, तथा कफ ज्वर में इसके प्रयोग से कफ छूटने लगता, कण्ठ या गला साफ हो जाता है। पुरानी खांसी में इसे बड़ी मात्रा में देने से लाभ होता है।

लोह, अभ्रक, मल्ल, नाल और पारद कल्प से जब उत्तेजक असर पहुंचाना हो, तब उनके साथ इसे मिला देने से शीघ्र लाभ पहुंचता है । इसी उद्देश्य से अनेक क्वाथों के साथ इसका चूर्ण प्रक्षेप रूप से मिलाया जाता है।

यह चरपरी एवं ऊष्ण होने से आमाशयिक रस या पाचक पित्त का अधिक स्राव कराती है। अतः अजीर्ण, उदर में भारीपन, आध्मान, मुख मीठा या चिपचिपा बना रहना, भोजन पर अरुचि आदि लक्षण हों, तो इसका सेवन अतिलाभदायक माना जाता है। अग्निमांद्य होना, अधिक भोजन कर लेने पर अपचन होकर दूषित डकारों का आना, बार-बार थोड़ा-थोड़ा दस्त होना, मल सफेद होना या दुर्गन्धयुक्त होना, उदर में वायु भर जाना आदि लक्षण होने पर इसके या त्रिकटु के साथ पाठा का सेवन कराया जाता है।

आमाशय में आम दूषित आहार पड़ा रहने या कफ वृद्धि की दशा में वमन कराने की आवश्यकता होने पर वान्तिकारक औषधि के साथ इसे मिला देने से आमाशय में चिपके हुये आम और कफ को खोलकर बाहर निकालने में यह सहायक बन जाती है। इसी हेतु से चरक तथा वाग्भट ने वामक गण में इसकी योजना की है।

इसमें उदर शूल प्रशमन गुण की भी विशेषता है। यह अपने दीपन पाचन गुणों द्वारा विकार का पचनकर, सारक गुण द्वारा मल की गति आगे कराती है, तथा स्निग्धोष्ण गुण द्वारा पानी का संशमन कर शूल को निवृत्त करती है। उदर शूल पर विशेषतः इसके साथ हरड़, क्षार या हींग की योजना की जाती है। शिवाक्षार पाचन में पिप्पली, हरड़, हींग और क्षार (सज्जीखार या सोडा-बाई कार्ब) ये चारों मिश्रित हुये हैं।

जनन यंत्र पर इसकी क्रिया—इसकी उत्तेजक क्रिया गर्भाशय पर विशेष होने से प्रसव पश्चात् उत्पन्न मक्कल शूल तथा गर्भाशय में दूषित रक्त आदि के संग्रह से उत्पन्न सूतिका ज्वर पर यह प्रयोजित होती है। यह गर्भाशय को संकुचित कर उसमें संचित हुए रक्त आदि को बाहर निकालती एवं गर्भाशय में उत्पन्न वात को शमन करती करती है। किंतु गर्भाशय के वातशमनार्थ पिप्पली की अपेक्षा पिप्पली मूल अधिक प्रशस्त मानी गई है। प्रसव-काल में प्रसव वेदना अधिक सबल होकर सत्वर प्रसव होने और आंवल को शीघ्र गिराने के लिये पिपलामूल खिलाने का विशेष रिवाज है।

यह अपने मधुर विपाक तथा रसायन गुण से रस धातु को सबल कर स्तन्य की प्रवृत्ति कराती है। माता की पचनशक्ति के निर्बल हो जाने एवं भोजन व दुग्ध आदि पदार्थों का सेवन कम होने से शिशु के लिये आवश्यक दुग्ध की प्रवृति नहीं होती, ऐसी अवस्था में गो-दुग्ध और पिप्पली या त्रिकटु का सेवन कराने से शीघ्र ही पचन शक्ति बलवान होकर रसोत्पत्ति की तथा साथ ही साथ स्तन्योत्पत्ति की भी वृद्धि होती है।

इस प्रकार गर्भाशय और बीजाशय आदि जनन यन्त्र पर इसकी क्रिया होने पर रजोत्पत्ति बढ़ती है। जब पचनेन्द्रिय संस्थान एवं जननेन्द्रिय की शिथिलता के कारण मासिक धर्म की शुद्धि नहीं होती, गांठवाला या झागदार या दुर्गन्धयुक्त रजका स्राव होता है, तब उन विकृतियों का यह यथेष्ट सुधार करती है। अतः यह स्त्री रोग में लाभदायक है।

ज्वर पर इसकी क्रिया—यह अपने दीपन पाचन गुणों से प्रायः आम प्रकोप से उत्पन्न ज्वर तथा कफ प्रधान नूतन ज्वर में सहायक औषधि रूप से प्रयोजित होती है। यह अपनी उत्तम आम पाचन गुणों से आम का पाचन तथा प्रस्वेद की वृद्धि कर ज्वर का निवारण कराती है। कफप्रधान ज्वर में वामक औषधि के साथ

इसे मिला देने से कफ ढीला होकर सरलता से गिर जाता है। कण्ठ साफ होता तथा शेष विकार पचन होकर दूर होता है। आम और कफ प्रधान ज्वर के परिपक्व होजाने पर, मंदाग्नि वाले को भोजन रूप से जो पैदा हो जाता है, उसमें पिप्पली और सोंठ मिलाने के लिये चरक ने लिखा है। यह पेया क्षुधा को शांत करती एवं विकार को जलाने में सहायक भी होती है। यदि ज्वर के साथ कास श्वास, हिक्का और मलावरोध हो तो पिप्पली और आमला मिली हुई यवागू दी जाती है। यदि उदर साधनार्थ निरुह वस्ति दो जाती है, तो उसमें भी पिप्पली मिलाई जाती है। संक्षेप में आप प्रकोप और कफ प्रधान ज्वरों में यह अमृतोपम उपयोगी है।

जीर्ण ज्वर में पित्त वृद्धि और पित्त ह्रास, ऐसे दो प्रकार प्रतीत होते हैं। इनमें से पित्त का ह्रास होने पर बहुधा अग्निमांद्य, अरुचि, कफवृद्धि, देह में भारीपन, अनेकों की प्लीहावृद्धि, निस्तेजता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी दशा में यह अति लाभ पहुंचाती है। शहद पिप्पली या वर्धमान पिप्पली का प्रयोग किया जाता है। जीर्णज्वर में ६४ प्रहरी पिप्पली विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है। यदि यकृत और प्लीहा में वृद्धि हुई हो या शिथिलता आदि हो तो उनको भी निरोगी व सबल बना देती है।

ज्वरावस्था में प्रायः प्रस्वेद क्रिया योग्य नहीं होती। विष रक्त में संग्रहीत हो जाता है, तब पिप्पली के सेवन से त्वचा में उष्णता पहुंचने से विष रसायनियों के बाहर निकलने लगता है। इससे उदरस्थ तथा रक्तस्थ कृमि एवं कीटाणुओं का नाश भी हो जाता है।

श्वसन संस्थान पर इसकी क्रिया—यह फुफ्फुस और हृदय पर बल्य असर एवं कफ को बाहर फेंकने में सहायता पहुंचाती है। इसीलिये कासहर क्वाथ आदि में यह प्रयोजित की जाती है। इसके कफघ्न और बल प्रदान करने के गुण का लाभ जीर्ण कफ कास और क्षयकास में प्राप्त होता है। आचार्यों ने श्वास रोग के अनेक प्रयोगों में इसे मिलाया है। श्वास रोग में प्रधानता कफ की होती है, वातपित्त गौण होते हैं। इस हेतु से पित्तानुबन्धज, वातानुबन्धज कफानुबन्धज आदि श्वास के विविध प्रकारों में इसका व्यवहार लाभदायक ही होता है। यदि हिक्का, कास, और श्वास में कफ प्रकोप हो, तो पिपलामूल और मुलेहठी को गुड़, घृत, शहद और गोबर का रस मिलाकर देने का विधान आचार्यों ने किया है। इस तरह प्राचीन काल से ही श्वास रोग पर इसे अति हितकर मान कर चूर्ण, क्वाथ, घृत, यूप, यवागू आदि में यह मिलाई जाती है।

(गां. औ. र.

पिप्पली का क्वाथ स्रोतःस्थित कफ तथा गुरुता को हटाने वाला, अग्निदीपक, वातकफ जन्य रोगों को दूर करने वाला प्लीहा तथा ज्वर का नाशक है। —भै. र.)

(१) पिप्पली चूर्ण को १–१½ मा० की मात्रा में, शहद के साथ चाटने से श्वास, कास, हिक्का, ज्वर, प्लीहा स्वरभंग में लाभ होता है। यह मधु पिप्पली योग कफ रोग को दूर करता है, वीर्यवर्धक, बुद्धि और अग्निवर्धक है; प्रसूत ज्वर में यह रोग अच्छा उपयोगी है। इससे कष्टार्तव में भी लाभ होता है, गर्भाशय की शुद्धि होती है। आगे प्रयोग नं. १५ में देखिये।

(२) इसके चूर्ण के साथ समभाग त्रिफला मिलाकर शहद के साथ (३-४ मा० की मात्रा में) भोजन के समय चाटने से हिक्का, श्वास, कफ, ज्वर और पीनस का नाश होता है। —ग. नि.।

(३) मंदाग्नि अजीर्ण तथा जीर्ण ज्वर में–इसके चूर्ण को गुड़ के साथ (चूर्ण से गुड़ दुगना) सेवन से लाभ होता है। इस गुड़ पिप्पली योग से कास, अरुचि, श्वास, हृद्रोग, पांडु और कृमिरोग भी नष्ट होते हैं।

(४) पिप्पली और सोंठ के समभाग चूर्ण में समभाग गुड़ मिलाकर उचित मात्रा में तथा रोगानुसार अनुपान के साथ सेवन से आमाजीर्ण, शूल, बस्तिगत-विकार तथा शोथ में भी लाभ होता है। —वं. से.

(५) गृध्रसी, उरुस्तंभ, कटिशूल, अधोशाखाघात (पक्षाघात) में–पिप्पली तथा सोंठ से सिद्ध तैल की मालिश उपयोगी है। गृध्रसी में इसके चूर्ण को गोमूत्र व रेंडी तैल के साथ पिलाते हैं।

(६) मूर्छा में—इसके चूर्ण को मधु के साथ चटाने तथा इसे जल में घिसकर नेत्र में आंजते हैं। अथवा पिप्पली चूर्ण १ मा०, पारद भस्म (या रस सिंदूर) १

Scanned with CamScanner

रत्ती और शहद १ तो. (यह १ मात्रा है) एकत्र मिला-कर चटाने से मूर्च्छा दूर होती है। मूर्च्छा व मद रोग में शरीर पर शीतल जल की धार डालना आदि शीतल उपचार करना चाहिये। —भा. भै. र.

(७) स्तनों में दुग्धवृद्धि के लिये- इसे पाषाणभेद के साथ पीसकर स्तनों पर प्रलेप करते हैं।

(८) आधाशीशी (अर्धमस्तकशूल पर)—इसके और बच के चूर्ण को शहद से चाटते हैं।

(९) सन्निपात में—इसके चूर्ण के साथ अपामार्ग का चूर्ण मिला नस्य देते हैं। अपस्मार में नीबू के रस में घिसकर नस्य देते हैं।

(१०) आमातिसार (शूल या ऐंठनयुक्त) में इसके चूर्ण के साथ हरड़ का चूर्ण मिलाकर मात्रा ६ माशा तक उष्णोदक से पिलाते हैं। इससे सुख रेचन होकर ऐंठन नहीं होने पाती। आगे प्रयोग नं० २० में अतिसार संग्रहणी देखिए।

(११) कास, श्वास, हिक्का और वमन पर–पिप्पली, आमला, मुनक्का, बंसलोचन, मिश्री व लाख (लाक्षा) सम भाग लेकर सबको पीसकर घृत और शहद में मिला कर चाटने से खांसी नष्ट होती है। —ग. नि.।

पित्तज एवं क्षतज कास हो तो उक्त योग में बंस-लोचन के स्थान में खजूर लेवें।

हिक्का, श्वास और वमन पर—पिप्पली चूर्ण तथा मोरपंख की भस्म समभाग एकत्र मिला, शहद के साथ बार बार चाटने से प्रवल हिचकी, अत्यन्त बढ़ा हुआ श्वास और दुस्साध्य वमन में लाभ होता है। —यो. र.।

(१२) ज्वरों पर —सर्व प्रकार के ज्वर पर–पिप्पली और तुलसी पत्र ५-५ तो०, अदरख व लौंग १-१ तो. सबको जल के साथ खूब महीन पीसकर मटर जैसी गोलियां बना छायाशुष्क कर रखें। दिन में ३ बार (प्रातः दुपहर व शाम) २-२ गोलियां पीस कर शहद से चटाने से लाभ होता है। इससे खांसी भी दूर होती हैं। मियादी (विषम) ज्वर में भी लाभ होता है। किंतु रोगी को अन्न का भोजन देते न हुए केवल दूध, मुनक्का, अंगूर, या अनार का सेवन कराना अच्छा होता है—अथवा–

पिप्पली को गोमूत्र में ७ बार फुला फुलाकर सुखाकर, पीस छानकर शीशी में डाट बन्द कर रखलें। इसमें से ३ मा. चूर्ण लेकर १।। माशा श्वेत जीरा, १ तो. मिश्री और १।। तो. शहद के साथ पीसकर खूब मिलाकर पत्थर या कांच की कटोरी या प्याली में धर ४ बार में (४-४ घंटे बाद) चटाकर ऊपर से गरम जल ५ तोला तक पिलावें। ज्वर, कास, श्वास एवं जीर्ण ज्वर में लाभ होगा। जीर्ण-ज्वर में बकरी या गाय का दूध पीना हितकारी है।

अथवा—पिप्पली को तुलसी पत्र के रस में ७ बार फुलाकर शुष्क कर पीस छानकर शीशी में सुरक्षित रखें। ४ मा. चूर्ण में १ तो. शहद मिला, ४ बार में (४-४ घंटे से) चटाकर ऊपर से ५ तो. गरम जल पिलावें तो बुखार जाता रहेगा। जीर्ण ज्वर में जल के स्थान में बकरी का दूध पिलावें तो लाभ होगा।

कफ ज्वर में—पिप्पली का चूर्ण ३ मा. में अदरख रस ३ माशा और शहद १ तोला पीसकर मिलावें। दिन में ३ बार चटाकर ऊपर से ५ तोला तक गरम जल पिलावें। ३-४ दिन में कास सहित कफ ज्वर दूर हो जाता है।

अथवा पिप्पली को बकरी के चौगुने दूध में पका शुष्क कर पीस छानकर शीशी में डाट बन्द कर रखें। मात्रा–३ माशा चूर्ण में १ तोला शहद और ३ मा. अदरख का रस मिला दिन में ३ बार चटाकर ऊपर से गरम जल ५ तोले पिलावें। इससे कफ ज्वर, खांसी आदि में लाभ होता है।

जीर्ण ज्वर में —उक्त बकरी के दूध में पकाई हुई पिप्पली का चूर्ण २ माशा, श्वेत जीरा चूर्ण १ मा. और मिश्री ६ माशा एकत्र खरल कर ५-५ तो. बकरी के गरम दूध में मिला दिन में ३ बार पिलावें। एक महीने के सेवन से जीर्ण ज्वर दूर हो जाता है। अथवा–

बकरी के दूध में पक्व उक्त पिप्पली चूर्ण १ माशा लेकर शहद मिला चटावें। दूसरे दिन २ माशा तीसरे दिन ३ माशा। इसी प्रकार आवश्यकता और शक्ति के अनुसार ७, १४, या २१ दिन सेवन करें और ऊपर से बकरी का गरम दूध पीवें। जीर्ण ज्वर दूर होगा।

Scanned with CamScanner

नोट—प्रारम्भ में १-१ मा. बढ़ाकर तथा बाद में १-१ मा. घटा-घटा कर सेवन करें । जैसे ७ वें दिन ७ मा., तो ८ वें दिन ६ माशा, ९ वें दिन ५ मा. के क्रम से सेवन करें । यदि १४ दिन तक बढ़ाना हो तो १५ वें दिन १३ माशा, १६ वें दिन १२ मा. का क्रम रहेगा ।

अथवा-६४ प्रहरी पिप्पली का सेवन करें । यह प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में देखिये ।

—ऊपर के प्रयोग राजवैद्य पं. परमेश्वर दीन जी मिश्र लिखित भारतीय गृह चिकित्सा से साभार लिए गये हैं ।

जीर्णज्वरादि पर पिप्पल्यादि घृत भी उत्तम है, प्रयोग विशिष्ट योगों में देखिए ।

अथवा—पिप्पली १½ तोले को २४ तोले जल में मिला, मंदाग्नि पर अर्धावशिष्ट क्वाथ सिद्ध कर छानकर उसकी ३ मात्रा कर दिन में ३ बार शहद ६ मा. मिलाकर सेवन कराने से शीघ्र ही जीर्णज्वर, वात कफ ज्वर, आम प्रकोप, प्लीहा वृद्धि, कफवृद्धि, वात प्रकोप निवृत होते हैं ।

सर्व प्रकार के ज्वरों पर—पिप्पली, चित्रक, हरड़ और आमले का क्वाथ लाभदायक है । यह दीपन भी है ।
—ग० नि० ।

वात-कफज ज्वर में—पिप्पली के क्वाथ में शहद मिलाकर सेवन करावें ।

विषम ज्वर पर—पिप्पली चूर्ण बलाबल के अनुसार १-२ या ३ रत्ती लेकर उसमें घृत, शक्कर और शहद ६-६ माशा मिला चाटकर ऊपर से दुग्ध पीने से अथवा पिप्पली चूर्ण को दशमूल के क्वाथ के साथ प्रतिदिन सेवन से लाभ होता है । —सु. उ. अ. ३९ ।

तथा पंचसार पेय या पंचकोल घृत का सेवन भी विषम ज्वर में लाभदायक है । प्रयोग विशिष्ट योगों में देखिये ।

धातुगत ज्वरादि पर—विशिष्ट योगों में पिप्पली घृत देखें ।

(१३)उदर रोगों पर—पिप्पली को सेंहुड के दूध की भावना देकर सुखा लेवें । प्रतिदिन शक्तिमान के अनुसार ३, ५, ७ या अधिक पिप्पलियों को दूध में पकाकर दूध पीवें तथा पिप्पली भी खा लेवें । शक्ति के अनुसार पिप्पली की संख्या बढ़ाते जावें । कुल मिला-कर १ हजार तक सेवन करें । उदर रोग नष्ट होते हैं ।
—वं. से. ।

अथवा शुद्ध पिप्पली चूर्ण २० तोला में सेंहुड का दूध २० तोला मिला खरल कर धूप में शुष्क कर स्वच्छ शीशी में भर कर रखें । २ रत्ती इस चूर्ण को २ माशा शहद के साथ प्रातः सायं चाट कर ऊपर से यथेष्ट दूध पीवें । फिर प्रतिदिन १ रत्ती चूर्ण बढ़ाते हुए २० दिन में २१ रत्ती चूर्ण की मात्रा लेवें । पश्चात् २१ वें दिन से १-१ रत्ती मात्रा घटाते हुए ४० वें दिन २ रत्ती चूर्ण की मात्रा कर देवें । नियमपूर्वक ४० दिन के इस प्रयोग से सर्व प्रकार के उदर रोग नष्ट होते हैं । ध्यान रहे जिस दिन इसके सेवन से पतले दस्त अधिक प्रमाण में आने लगें, उसी दिन से औषधि की मात्रा घटाना आरम्भ कर देना चाहिए ।

अथवा पिप्पलियों को २१ या १०० भावनायें गोमूत्र की देकर शक्ति के अनुसार १-२ पिप्पली का सेवन प्रतिदिन करने से भी लाभ होता है ।

आध्मान पर—यदि कोष्ठबद्धता (कब्जी) या अपानवात का संसरण न होने से कोष्ठ में वायु भरा रहता है, आध्मान की विशेषता हो तो पिप्पली चूर्ण ४ से ६ रत्ती तक लेकर उससे सेंधा नमक या काला नमक २ माशा तक मिला १० तोला मट्ठे में मिलाकर पिलावें । इस प्रकार १-१ घण्टे से २-३ बार पिलाने से अपानवायु की शुद्धि होकर उदर हल्का हो जाता है, बेचैनी दूर होती है तथा शौच शुद्धि होकर प्रकृति स्वस्थ हो जाती है । सर्व प्रकार के वातजन्य विकारों पर ६४ प्रहरी पिप्पली भी उत्तम कार्य करती है । आगे विशिष्ट योगों में देखें ।

अजीर्ण पर—इसके चूर्ण को भोजन के बाद तत्काल ही शहद के साथ लेते रहने से अजीर्ण नहीं होने पाता ।

उदर रोगों पर वर्तमान पिप्पली का प्रयोग विशिष्ट योगों में देखिए । अथवा—

पिप्पली १ तोला, निशोथ ४ तोला और खांड ४ तोला सबका चूर्ण बनाकर १ तोला तक की मात्रा में शहद के साथ चाटने से आध्मान, मल का कड़ा होना, उदर रोग व पित्तशूल नष्ट होता है । —शा० सं०

Scanned with CamScanner

(१४) गुल्म और उदावर्त पर—पिप्पली, पीपलामूल, चित्रक, श्वेत जीरा और सेंधानमक समभाग चूर्ण बनालें। मात्रा १ से ३ माशा तक, मद्य के साथ सेवन से दुस्साध्य गुल्म भी शीघ्र नष्ट होता है। —ग० नि०

अथवा इसके चूर्ण में जवाखार मिलाकर ३ माशा तक की मात्रा में अदरख के रस और शहद के साथ सेवन करें।

अथवा पिप्पली ४ नग का चूर्ण जल २ तोला में मिला उसमें १-२ तोला गोघृत मिलाकर सेवन करते रहने से गुल्म और उदावर्त में भी लाभ होता है।

वात गुल्म —जो प्रायः अपस्मार (हिस्टीरिया) ग्रस्त रुग्णा को होता है जिसमें वायु का गोला सा हृदय के पास से उठकर अकस्मात् कण्ठ में आकर मार्ग को रोक देता है, उसके शमनार्थ पिप्पली २ तोला, काली मिर्च ३ तोला, सेंधा नमक १ तोला तथा भुनी हींग ३ माशा एकत्र महीन चूर्ण कर, मात्रा ३ माशा से ६ माशा तक, तक्र के या सुखोष्ण जल के साथ देने से लाभ होता है।

(१५) प्लीहा और यकृत विकार पर—पिप्पली, सोंठ व दन्तीमूल १-१ भाग, हरड़ ३ भाग और बायविडंग आधा भाग, एकत्र चूर्ण बनालें। ३-४ माशा की मात्रा में उष्ण जल, दूध या गोमूत्र के साथ सेवन से प्लीहा की विकृति दूर होती है। —ग. नि.

नोट—चरक और वाग्भट्ट के मतानुसार इस योग में हरड़ २ भाग ली गई है तथा चरक ने इसमें चित्रक भी १ भाग मिलाया है और विडंग १ भाग लिया है। वाग्भट्ट ने विडंग के स्थान में विड लवण आधा भाग लिया है तथा इन दोनों ने केवल उष्ण जल के ही साथ लेने के लिए लिखा है।

पिप्पली और चित्रक मूल १०-१० तोला लेकर दोनों को पानी के साथ पीस कल्क करें। फिर इस कल्क को २ सेर घृत व ८ सेर दूध में एकत्र मिला घृत सिद्ध करलें। इसे ६ माशा तक की मात्रा में सेवन से प्लीहा, यकृत और उदर रोग नष्ट होते हैं। —च० द०

ठीक पाकार्थ इसमें दूध के समभाग जल भी मिला लेना चाहिए।

अथवा केवल पिप्पली घृत इस प्रकार बनाकर सेवन करावें। पिप्पली ६४ तोला का कल्क कर उसमें घृत १ सेर ४८ तोला तथा दूध ६ सेर ३२ तोला (और दूध के समभाग जल) मिला घृत सिद्ध करलें। मात्रा ६ माशा से १ तोला तक (दूध के साथ या उष्ण जल के साथ) सेवन से प्लीहा, अग्निमांद्य तथा यकृद्विकार नष्ट होते हैं। —भै० र०

मधुपिप्पली योग—क्विनाईन खाने से अवरुद्ध हुए ज्वर में या जीर्ण ज्वर में प्लीहा अथवा यकृत या दोनों बढ़ जाते या विकृत हो जाते हैं। तब इस योग का सेवन (पिप्पली चूर्ण में द्विगुण शहद मिला १ माशा की मात्रा में) करने से विशेष लाभ होता है। किन्तु रोगी को केवल दूध या पिप्पली के संयोग से परिपक्व दूध पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए। इस मधु पिप्पली योग के साथ चन्दनादि लोह या कोई भी लोह मिश्रित योग दिया जा सकता है। यह मधु पिप्पली योग बालकों की प्लीहा विकृति, श्वास, कास, ज्वर, हिक्का आदि में भी विशेष लाभकर है। —भै. र.

अथवा पलास क्षार भावित पिप्पली योग—पिप्पली को पलाश क्षार की भावना देकर [पलाश (ढाक) की भस्म को ६ गुना जल में घोलकर क्षार निर्माण विधि से (रैनी चढ़ाकर) २१ बार छान कर इस जल में पिप्पली चूर्ण को खूब अधिक से अधिक दिनों तक घोट सुखाकर सुरक्षित रखें] २-४ रत्ती की मात्रानुसार शहद के साथ सेवन से प्लीहा विकृति, गुल्म का नाश होता है तथा जठराग्नि की वृद्धि होती है। यह रसायन है।

नोट–यदि चूर्ण न करते हुए तैसे ही पिप्पलियों को उक्त क्षार की कई भावनायें देकर, शुष्क कर सुरक्षित रखलें तथा उपयुक्त मात्रा में विशेषतः वर्धमान पिप्पली के प्रयोगानुसार सेवन करें तो भी उचित लाभ होता है। आगे विशिष्ट योगों में नं० १ देखें। —भै. र. तथा वं. से.

अथवा पिप्पली लोह योग—पिप्पली चूर्ण और लोह भस्म समभाग खूब खरल कर सुरक्षित रखें। मात्रा १ से ४ रत्ती दूध के साथ सेवन से प्लीहा नष्ट होती है।

साधारण प्लीहा विकार पर—पिप्पली चूर्ण को ताजे तक्र में मिला उसमें शहद मिला पिलाते हैं।

यकृत विकार पर गुड़ पिप्पली योग—पिप्पली चूर्ण १ तोला लेकर किसी स्वच्छ पात्र में साफ गुड़ १५ तोला और जल ३० तोला एकत्र मिला आग पर ३ तार की चाशनी तैयार कर पात्र को नीचे उतार चाशनी में उक्त पिप्पली चूर्ण डालकर कलछी से भली भांति मिला, शीतल हो जाने पर घृत के योग से ४ से ८ रत्ती तक की गोलियां बना छाया में शुष्क करलें। दिन में ३ बार १ से २ गोली तक जल के साथ सेवन से यकृत विकार में उत्तम लाभ होता है।

आचार्य डाक्टर गयाप्रसाद शास्त्री, आयुर्वेदबृहस्पति।
(आयुर्वेद विकास से साभार)

(१६) शूलों पर—

परिणाम शूल—पिप्पली घृत योग—

पिप्पली का कल्क १३ तो० ४ मा० तथा पिप्पली का क्वाथ ७ सेर और घृत २ सेर (पाकार्थ जल २ सेर) एकत्र कर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान कर रख लें। इसे १ तो० तक शहद २ तो० मिला कर सेवन से प्रवृद्ध परिणाम शूल (अन्नद्रव शूल, पक्ति शूल, अन्न विदाहज शूल Gastral gokenosis or hunger pain) अवश्य नष्ट होता है। —च. द.

अथवा—पिप्पली, हरड़ और लोह भस्म समभाग एकत्र खरल कर रक्खें। मात्रा—३ रत्ती तक, शक्कर और शहद के साथ मिलाकर सेवन से भयंकर परिणाम शूल शीघ्र नष्ट होता है। —वृ. मा.

अथवा—पिप्पली चूर्ण ४ तो०, गुड़ १६ तो० और गोघृत ६४ तो० सब को एकत्र २५६ तो० दूध में क्षीरपाक कर नित्य प्रातः ४ तो० तक सेवन करावें।

शिरः शूल पर—पिप्पली, काली मिर्च, मुनक्का, मुलैठी और सोंठ के सम भाग चूर्ण को गाय के मक्खन में पका कर, छान कर उसकी नस्य लेने से शिर पीडा नष्ट होती है। —ग. नि.

अथवा—पिप्पली और सेंधा नमक के चूर्ण को घृत में पका कर नस्य लेने से भी सिर दर्द दूर होता है।

दन्त शूल पर—पिप्पली के चूर्ण में शहद और घृत मिला कर मुख में (दांत के नीचे) रखने (या घर्षण) से लाभ होता है। दन्त शूल नाशक औषधियों में यह एक प्रधान औषधि है। —वृ. मा.

अथवा इसके चूर्ण में जीरा और सेंधा नमक मिला कर मंजन करने से दन्त वेदना, शोथ, दांतों का हिलना आदि विकार दूर होते हैं।

कर्ण शूल पर—पिप्पली चूर्ण बना, निर्धूम अंगारे पर रखने पर जो धुआं निकले उसे किसी नली द्वारा कान में प्रविष्ट कराने से कान पक कर होने वाला शूल नष्ट हो जाता है। —गां. औ. र.

(१७) कास, श्वास, प्रतिश्याय, स्वर भंग, हिक्का आदि श्वसन संस्थान के विकारों पर।

कास व श्वास—पिप्पली को तिल तैल में भून कर पीस कर उसमें समभाग मिश्री मिला रक्खें। इसे उचित मात्रा में (१ से ४ रत्ती) कुलथी के क्वाथ में मिला कर पीने से कफज कास में विशेष लाभ होता है। —ग. नि.

अथवा—पिप्पली, पीपलामूल, सोंठ और बहेड़ा, समभाग चूर्ण बना लें (मात्रा ३ मा० तक, दिन में ३-४ बार) शहद के साथ चटाने से खांसी नष्ट होती है। —ग. नि.

पिप्पली के कल्क को घृत में भून कर सेंधा नमक और शहद मिला कर सेवन से कफज कास दूर होती है। —च. सं.

पिप्पली, पोखारमूल, हरड़, सोंठ, शठी (कचूर), और नागरमोथे के समभाग मिश्रित चूर्ण को, (उससे दो गुने) गुड़ में मिला (६ मा० तक) गोलियां बना लें। इसे (उष्ण जल से) लेने से प्रबल श्वास और कास नष्ट होता है। —यो. र.

पिप्पली के चूर्ण में समभाग फिटकड़ी का फूला मिला दोनों को धतूरे के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। प्रातःसायं शहद के साथ १-१ गोली देने से श्वास में विशेष लाभ होता है।

इसके चूर्ण को चिलम में भर कर धूम्रपान करने से भी कास, जीर्ण कास में लाभ होता है।

अथवा—पिप्पली चूर्ण और घृत १६-१६ तो० एकत्र

Scanned with CamScanner

मिला उसमें अड़ूसा का रस ४ सेर तथा शर्करा १ सेर मिला मन्द आग पर पकावें। अच्छा गाढा हो जाने पर नीचे उतार, ठंड़ा हो जाने पर १ सेर शहद अच्छी तरह मिला सुरक्षित रक्खें। यह अवलेह १-२ तो० की मात्रा में चाटने से श्वसन संस्थान सम्बन्धी कास, श्वास आदि सर्व विकारों में लाभ होता है। —नाडकर्णी

अथवा—पिप्पली, काली मिर्च १-१ तो०, अनारदाना २ तो० और जवाखार ६ मा० इनके चूर्ण को ८ तो० जड़ के साथ खूब खरल कर ४-४ रत्ती की गोलियां बना लें। १–१ गोली मुख में रख कर चूसने से कास, श्वास व गले के रोग दूर होते हैं। —ग. नि.

आगे विशिष्ट योगों में-पिप्पल्यादि लोह, पिप्पल्यादि घृत और पिप्पल्यादि लेह देखिये।

प्रतिश्याय व स्वर भंग पर—पीपल, पीपलामूल, काली मिर्च और सौंठ (चतुरूपण) समभाग का चूर्ण शहद के साथ चटाते रहने से अथवा पिप्पली के क्वाथ में शहद मिला कर थोड़ा थोड़ा पिलाने से प्रतिश्याय (जुखाम) में लाभ होता है, छाती में जमा हुआ कफ निकल जाता है।

नोट—उक्त चतुरूपण चूर्ण ५ से ३० रत्ती तक की मात्रा में दिन में दो बार के पथ्यपूर्वक सेवन से न केवल प्रतिश्याय, स्वरभंग एवं खांसी में ही किन्तु उदर शूल, आध्मान आदि में भी लाभ होता है।

कफज स्वर भंग हो (गला बैठ गया हो), तो उक्त चतुरूपण चूर्ण को २ मा० तक की मात्रा में गोमूत्र के के साथ सेवन करावें। —बं. से.

उक्त योग के द्वारा सिद्ध घृत भी विशेष लाभकारी है। चतुरूपण का कल्क १० तो० घृत १ सेर मिला (ठीक पाकार्थ इसमें जल २ सेर मिला लें,) मात्रा १ तो० तक ले लें।

प्रतिश्याय पर पिप्पल्यादि नस्य—पिप्पली, सहंजने के बीज, वाय बिडंग और काली मिर्च समभाग जल के साथ महीन पीस कर इसकी लुगदी को वस्त्र में बांध कर निचोड़ने से जो रस निकले उसकी नस्य लेने से जुखाम नष्ट होता है। —वृं. मा.

हिक्का पर—पिप्पली व मुलैठी का चूर्ण समभाग एकत्र कर उसमें चूर्ण के समभाग शक्कर मिला लेवें। इसे शहद के साथ चाटकर ऊपर से बिजौरे नीबू का रस पीने से हिचकी दूर होती है। यह योग वमन को भी नष्ट करता है। यह बालकों के लिये विशेष लाभकारी है।

—बं. से.

पिप्पली चूर्ण में शक्कर मिला कर फांकने से भी हिक्का में लाभ होता है। अथवा इसके चूर्ण के साथ कटेरी का चूर्ण मिला शहद और आमले के रस के साथ चाटने से भी लाभ होता है।

छींक (क्षवथु) अधिक आती हो तो (पिप्पली तैल नस्य) पिप्पली, कूठ, सौंठ बायबिडंग और मुनक्का सम भाग मिश्रित १ सेर लेकर ८ सेर जल में पकावें। २ सेर जल शेष रहने पर इस क्वाथ में उक्त ५ द्रव्यों का कल्क ३॥ तो० तथा आधा सेर तिल तैल अथवा घृत या वसा मिला पकावें। स्नेह मात्र शेष रहने पर छान कर रख लेवें। इसका नस्य लेने से क्षवथु रोग नष्ट होता है। —वं. से.

(१८) हृद्रोग पर—पिप्पली चूर्ण में बिजौरे नीबू की जड़ की छाल का चूर्ण मिलाकर मक्खन के साथ खाने से हृदयशूल तथा दुसाध्य हृद्रोग नष्ट होता है।—वं. से.

अथवा—गोदुग्ध ९६ तो० लेकर मंद आग पर पकावें। आधा दूध शेष रहने पर उसमें पिप्पली चूर्ण १ तोला तथा खांड, शहद और घृत २-२ तोला मिलाकर (हरएक दिन रात में ३ या ४ बार) पिलाने से हृद्रोग, ज्वर, कास और क्षय पर लाभ होता है। प्रतिदिन इस योग को ताजा बनाकर सेवन करायें। —वै. मु.

(१९) क्षय पर (पिप्पलीघृत)—पिप्पली का कल्क और गुड़ १०-१० तो., घृत २ सेर तथा बकरी का दूध ७ सेर एकत्र मिलाकर घृत सिद्ध करलेवें। १ तोला तक की मात्रा में इसके सेवन से क्षय और खांसी दूर होती तथा अग्नि तीव्र होती है।—बं. से.। आगे विशिष्ट योगों में पिप्पल्यादि घृत देखें।

अथवा—पिप्पली के महीन चूर्ण में नागरपान (ताम्बूल) के रस की ७ या २१ भावना देकर सुखा लेवें। प्रातः सायं ५ अड़ूसे के पत्तों का रस और ३ माशे शहद के साथ एक मासे इस चूर्ण का सेवन करने से क्षय

दिनों में अम्ल रोग नष्ट हो जाता है। नोट—इसमें १-१ रत्ती चन्द्रोदय अथवा मोती भस्म मिलाकर सेवन करने से कठिन रोग भी अच्छा हो जाता है। इसके अतिरिक्त प्रातः सायं उक्त चूर्ण का सेवन कर रात्रि में सोते समय ६ मा० त्रिवोपलादि चूर्ण और दो रत्ती स्वर्णभस्म शहद के साथ व्यवहार करना भी उत्तम है। —अनुभूत योग भा. १।

(३०) अतिसार तथा संग्रहणी पर—पिप्पली, श्वेत चन्दन, नागरमोथा, खस, कुटकी, पाठा, इन्द्रजौ, हरड़ और सोंठ समभाग चूर्ण (की मात्रा २-३ मा० उष्ण जल के साथ) के सेवन से पीड़ायुक्त आमातिसार, कफातिसार व पित्तातिसार शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।
—ग. नि.

जीर्णातिसार या प्रवाहिका पर—पिप्पली को पीसकर (२ मा. तक) दूध के साथ पीने से ३ दिन में ही लाभ होता है—बं. से.। दूध बकरी का हो तो और उत्तम।

संग्रहणी पर—पिप्पली, भांग और सोंठ के समभाग चूर्ण को शहद के साथ सेवन करते रहने से भयंकर संग्रहणी भी नष्ट होती है। —वृ. नि. र.

वातज संग्रहणी हो तो पिप्पली, छोटी बड़ी कटेरी, जवाखार, इन्द्रजौ, चित्रक, सारिवा, पाठा, कपूर तथा पांचों नमक समभाग लेकर चूर्ण बना रक्खें। इसे यथोचित मात्रा में दही, मधु या उष्ण जल के साथ सेवन से लाभ होता तथा अग्नि दीप्त होती है। —वं. से.

(३१) अर्श और अन्त्रवृद्धि पर—अर्श रोगी प्रतिदिन भोजन के पश्चात् पिप्पली चूर्ण ४ रत्ती, भुना हुआ जीरा १ मा० तथा थोड़ा सेंधा नमक मट्ठे के साथ मिलाकर सेवन करता रहे तो अर्श का कष्ट नहीं भोगना पड़ता।

तक्र कल्प (केवल मट्ठा पर ही रहना अन्न जल नहीं लेना) के साथ पिप्पली (या पीपलामूल) का सेवन (वर्धमान पिप्पली प्रयोगानुसार) कराया जाय तो अर्श रोग एक मास में नष्ट हो जाता है— गां. औ. र.।

अर्शाङ्कुरनाशार्थ—पिप्पली, सेंधानमक, कूट और सिरस के बीज समभाग महीन चूर्ण कर उसे सेंहुड थूहर या आक के दूध में घोटकर लेप करने से अर्श के मस्से दूर हो जाते हैं।
—भा. प्र.

अथवा पिप्पली, चित्रक, काली निशोथ, किण्व (सुरा-बीज) मैनफल के बीज, मुर्गे की विष्ठा, हल्दी और गुड़ एकत्र मिश्रित खूब महीन पीसकर प्रलेप करें अथवा पिप्पली चूर्ण और हल्दी चूर्ण को मिश्रित कर गोरोचन (गौ के पित्त) के साथ पीसकर प्रलेप करें।
—च. सं. चि. अ. १४.

आन्त्र वृद्धि पर—पिप्पली, जीरा, कूठ, बेर और सूखा हुआ गाय का गोबर सम भाग, कांजी के साथ खूब महीन पीस कर लेप करने से लाभ होता है।
—ग. नि.

(३२) अम्लपित्त एवं रक्तपित्त पर—पिप्पली के क्वाथ तथा कल्क से यथाविधि सिद्ध किए हुए घृत का सेवन शहद के साथ कराने से अम्लपित्त नष्ट होता है।
—भै. र.।

आगे विशिष्ट योगों में पिप्पल्यादि घृत देखें।

अथवा—पिप्पली चूर्ण और आमले का चूर्ण १-१ भाग तथा लोह भस्म सबके बराबर (या १ भाग) लेकर एकत्र खरल कर रक्खें। मात्रा २-३ रत्ती मिश्री में मिलाकर सेवन से लाभ हो जाता है। इससे रक्तपित्त में विशेष लाभ होता है। इस योग को रक्तपित्तांतक लौह कहते हैं।
—भै० र०।

नोट—यह ऊर्ध्वग रक्तपित्त में प्रयुक्त होता है। इसे दूर्वारस और शहद के साथ भी सेवन करते हैं।

(३३) नेत्र विकारों पर—पिप्पली, त्रिफला, लाख, लोध व सेंधानमक इन सबके समभाग चूर्ण को भांगरे के रस में घोटकर गोलियां बना लें। जल में घिसकर नेत्रों में आंजने से अर्म (नेत्र के श्वेतभाग गत रोग, नाखूना Pterygium), तिमिर (Amaurosis नेत्र दृष्टि भाग गत रोग जन्य दृष्टि मांद्य), काच (तिमिर की उत्तरावस्था), कण्डू, शुक्र (फूला), अर्जुन (नेत्र के श्वेत भागान्तर्गत एक लाल बिन्दु Ecchymosis) तथा अजकाजात (एक प्रकार का फूला जो नेत्र के कृष्ण भाग पर होता है Leucoma) आदि नेत्र रोग नष्ट होते हैं। —यो. र.।

फूला पर—पिप्पली, समुद्रफेन और सेंधानमक का महीन चूर्ण तथा शहद १-१ भाग लेकर सबको एकत्र कांसी के पात्र में (कांसी की कटोरी से) रगड़ कर आंजने से फूला दूर होता है। —वं० से०।

Scanned with CamScanner

दृष्टिप्रदार्थ—पिप्पली, तगर, नीलकमल की पंखड़ी, मुलेठी और हल्दी समभाग एकत्र महीन चूर्ण को जल के साथ पीसकर बत्तियां बना लें। इसे प्रतिदिन आंख में आंजने से दीर्घ, तीक्ष्ण दृष्टि होती है। —च. द.।

केवल पिप्पली के खूब महीन चूर्ण को सलाई से आंजते रहने से नेत्रों की धुन्ध, रतौंधी, जाला दूर होता है।

पिप्पली १ भाग और हरड़ २ भाग दोनों को एकत्र जल के साथ खूब महीन पीसकर बत्तियां बनाकर, नेत्रों में फेरते रहने से भी तिमिर, नेत्रकण्डु, नेत्रस्राव आदि विकार दूर होते हैं।

रतौंधी में–पिप्पली को गो मूत्र में घिसकर आंजने से भी लाभ होता है। —व० गु०।

(२४) स्त्री-रोग पर—सूतिका रोग पर–पिप्पली, देवदारु, नागरमोथा, अगर और पिप्पलीमूल इनके महीन चूर्ण को तक्र में मिलाकर उसके साथ दाल (मूंगकी दाल) का यूष बना, उसमें घृत मिलाकर पिलाने से भिन्न भिन्न दोषज एवं त्रिदोषज सूतिका रोग उपद्रव सहित नष्ट होता है। —वं से.

अथवा–पिप्पली ३ भाग, कालीमिर्च २ भाग, सोंठ १ भाग, अभ्रक भस्म आधा भाग, जावित्री और शुद्ध तूतिया (नीलाथोथा) २-२ भाग सबके चूर्ण को एकत्र मिला, १ प्रहर तक संभालू के रस में खरल कराने से सूतिका रोग नष्ट होता है। रसशास्त्रों में इसे सूतिका विनोद रस कहा गया है।

नोट—रस रत्नाकर तथा वंगसेन में सूतिका रोग पर पिप्पल्यादि घृत का प्रयोग देखिये।

सूतिका के रक्तस्राव निवारणार्थ—पिप्पली चूर्ण को घृत में मिलाकर चटाते हैं।

प्रसूता के स्तनों में दुग्ध वृद्धि के लिये--पिप्पली, सोंठ और हरड़ के चूर्ण को गुड़ में मिलाकर उसमें थोड़ा घृत मिला दूध के साथ पिलावें—हा. स.। आगे पिप्पली मूल का प्रयोग नं. ३६ देखिए।

गर्भ निरोधार्थ—पिप्पली, वायविडङ्ग और सुहागे के समभाग मिश्रित चूर्ण को ऋतुकाल में (मासिक धर्म के समय) दूध के साथ पीने से गर्भ नहीं रहता। —यो. र.।

गर्भ धारणार्थ—पिप्पली, सोंठ, कालीमिर्च औ[र] नाग केशर के चूर्ण को घृत के साथ पीने से वंध्या भी भी गर्भ धारण करती है। —भा. भै. र.

(२५) बाल-रोगों पर–दन्तोद्गम के समय पिप्पली चूर्ण को शहद मिलाकर मसूढ़ों पर घिसने से दांत बिना कष्ट के निकलते हैं। पिप्पली, मजीठ, नागरमोथा और काकड़ासिंगी का एकत्र चूर्ण १ माशा या २ माशा तक शहद के साथ चटाने से बालकों के ज्वर, कास, अतिसार और वमन पर लाभ होता है।

केवल पिप्पली चूर्ण को ही १ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ चटाते रहने से ज्वर, कास तथा प्लीहा वृद्धि में विशेष लाभ होता है। इससे गर्भिणी माता के स्तनपान करने से बालक को जो कास, अग्निमांद्य, श्वास तन्द्रा, अरुचि, भ्रमादि विकार होते हैं तथा वह कृश होता एवं उदरवृद्धि होती है के सब उपद्रव दूर हो जाते हैं। —[illegible]

अथवा–पिप्पली, अतीस, काकड़ासिंगी व नागरमोथा समभाग का एकत्र चूर्ण (इसे बाल चतुर्भद्रा कहते हैं) १ से २ रत्ती की मात्रा में शहद या माता के दूध के साथ देने से ज्वर, अतिसार, वमन, जुकाम, कासादि में लाभ होता है। यह बालकों के लिये सौम्य एवं विशेष हितकारक है।

यदि बालक अधिक रोता हो तो उसे पिप्पली और त्रिफला के समभाग मिश्रित चूर्ण को घृत और शहद में मिलाकर चटाना चाहिए। —यो. [illegible]

नोट—मात्रा-चूर्ण २ से २० रत्ती तक। क्वाथ [illegible] से ४ तोला तक।

ध्यान रहे इसका उपयोग विशेषतः योगवाही (अनु-पानादि) के रूप में करना ठीक होता है। इसका अधिक, अति मात्रा में या अतिकाल तक स्वतन्त्र रूप से प्रयोग करने से शरीर में कफ पित्त के प्रकोप की सम्भावना है। तथा इसमें अत्यल्प स्नेह एवं उष्णता होने से प्रकुपित वात को भी यह पूर्णतया शांत नहीं कर सकती अतः त्रिदोष वर्धक हो जाता है।

यह शीघ्र ही शुभ या अशुभ करने वाली है। अनुरूप प्रयोग के यदि शुभ गुण युक्त हो तो तत्काल

वह कल्याणकारक है। किंतु निरन्तर प्रयोग से परिणाम में वह दोषों का संचय करती है।

—चरक सं० वि० स्थान अ० १

इसका विशेष व्यवहार कफ वात प्रधान विकारों पर ही ठीक होता है। पित्त प्रधान विकारों में (जैसे मुखपाक, मुख में कड़वापन, नेत्र में लाली, तृषाधिक्य, पतले गरम दस्त, दाह, निद्रानाश आदि लक्षण युक्त व्याधियों में) इनका उपयोग नहीं करना उचित है।

यदि इसके प्रयोग से पित्त प्रकोप या रक्त प्रकोप के लक्षण (खट्टी वमन, मुखपाक, रक्त दबाव वृद्धि, शुष्क कास, नासिका में रक्तस्राव आदि) हो तो अतियोग समझ कर तत्काल प्रयोग को बन्द कर प्रकोप शामक मुक्ता, प्रवाल, आंवले, त्रिफला, भांगरा, शंखपुष्पी, अनार, अमृतासत्व आदि का सेवन करना चाहिए।

—गां. औ. र.

यह सिर के लिये हानिप्रद (शिरःशूलजनक) है। हानि निवारणार्थ गोंद बबूल, चन्दन, अर्क गुलाब, जरेसक, ईसबगोल आदि का सेवन करें।

इसके प्रतिनिधि सौंठ, कुलंजन या श्वेत मिर्च हैं।

—यू. द्रव्य गुण

मूल - पीपलामूल (पिप्पलीमूल) लघु, रूक्ष, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य, दीपन, पाचन, पित्तकारक, भेदन, रेचन, वातानुलोमन, कफ वात नाशक, गर्भाशय संकोचक, वाजीकर है तथा प्लीहा, गुल्म, शूल, कृमि, श्वास, आमाशय का वातज शूल, आध्मान, निद्रानाश, क्षय रोग, रजोरोध, कष्ट प्रसव, मस्तिष्क दौर्बल्य, उन्माद, वात प्रकोप, सूतिका रोग आदि में प्रयुक्त की जाती है।

(२६) प्रसव कष्ट निवारणार्थ एवं गर्भाशय के वात शमनार्थ—पिप्पली की अपेक्षा यह (मूल) विशेष लाभदायक है। प्रसवकाल में प्रसव वेदना अधिक सबल होकर शीघ्र प्रसव होने तथा आंवल को जल्दी गिराने के लिये इसका विशेष प्रयोग किया जाता है। इसे ईश्वरमूल और हींग के साथ मिलाकर पान में रखकर खिलाने से प्रसव पीड़ा घटकर प्रसूति शीघ्र होती है। प्रसव के पश्चात् तुरन्त ही इसका फाण्ट देने से आंवल (अपरा) गिरने में सहायता होती है।

—डा० देसाई

(२७) गला (कंठ) के दोषों के निवारणार्थ—मूल के साथ मुनक्का मिला क्वाथ कर गण्डूष (कुल्ले) धारण कराते हैं।

(२८) बालकों के फुफ्फुस विकार में—मूल का चूर्ण ½ रत्ती मधु के साथ चटाने से कफ स्राव होकर लाभ होता है।

(२९) श्वास रोग में—इसके चूर्ण को ८ प्रहर तक खरल कर मधु से चटाते हैं।

(३०) अम्लपित्त में—इसका चूर्ण ३ माशा तक मिश्री के साथ नित्य दो बार १ मास तक सेवन करावें।

(३१) वमन पर—मूल के चूर्ण में समभाग सोंठ चूर्ण मिला २ माशा तक की मात्रा में ६ माशा मधु मिला सेवन कराते हैं।

(३२) कास पर—मूल चूर्ण के साथ सोंठ और बहेड़ा चूर्ण मिला मधु से चटाते हैं।

नारू पर—इसे शीतल जल में पीसकर पिलाते हैं।

(३३) अनिद्रा पर—मूल का महीन चूर्ण २ रत्ती, रससिन्दूर ½ रत्ती, अफीम ½ रत्ती (यह एक मात्रा का प्रमाण है) एकत्र मिलाकर जल या दूध के साथ देने से उत्तम नींद आती है। किसी भी रोग में निद्रा के लिए यह उत्तम कार्य करती है। अथवा—

केवल पिप्पली मूल के महीन चूर्ण को १ से ३ मा. तक की मात्रा में मिश्री या दूने गुड़ के साथ मिलाकर प्रातःसायं सेवन करते रहने से आहार का ठीक पाचन होता है, शांत निद्रा आने लगती है तथा वात प्रकोप शूल, वेदना आदि विकार दूर होते हैं। निद्रा के लिए वृद्ध मनुष्य इस योग का विशेष रूप से व्यवहार करते रहते हैं।

—गां. औ. र.।

(३४) शूल पर—पीपलामूल, अरण्डमूल, चित्रक, सोंठ, भुनी हुई हींग और सेंधानमक समभाग चूर्ण कर (४ से ६ रत्ती मात्रा में) सेवन से शूल शीघ्र ही नष्ट होता है। (इसे उष्ण जल से लेवें) —ग० नि०।

अथवा—केवल मूल का चूर्ण १॥ से ३ माशा तक की मात्रा में उष्णोदक के साथ मिला देने से शरीर के किसी भी भाग का दर्द एक आध घंटे में दूर होकर रोगी आराम से सो भी जाता है। यदि किसी रोगी को रात्रि में दर्द के

कारण निद्रा न आती हो तो इसके चूर्ण को शहद से चटा देने से नींद आजावेगी। आधुनिक एस्प्रो, सैरीडीन आदि निद्राकारक दवायें हृदय को कमजोर करती हैं किन्तु यह हृदय की कमजोरी दूर करती है। इसे वातपित्त तथा कफजन्य सभी प्रकार के दर्दों में व्यवहार कर सकते हैं। साथ साथ पार्श्वशूल, हृदयशूल तथा कफ रोग में इसके व्यवहार से रोग दूर भी होजाता है।

—श्री काशीनाथ जी गुप्त आयुर्वेदाचार्य (गोल्ड-मेडेलिस्ट) सारजमडीह (रांची)।

(३५) वातविकार पर—दूध २० तोले को पकाने पर जब वह आधा रह जाय, तब उसमें मूल का महीन चूर्ण १ तो. तक डालकर और भी औटावें। ५ तोला शेष रहने पर उसमें मिश्री का चूर्ण १ तो. मिला प्रतिदिन प्रातः एक वार लेने से प्रायः सर्व प्रकार के वात विकार दूर होते हैं। —ब० गु०।

ऊपर के २६ व २७ नम्बर के प्रयोगों को देखें।

ऊर्ध्ववात पर—वायु या कफ से प्रतिहत हुई अधोवायु के कारण अत्यन्त डकारें आती हों तो मूल को पीसकर उसमें दूध तथा अड्रूसे का रस मिलाकर पिलावें।

गठिया (आमवात) पर—मूल को थोड़े घृत के साथ आग पर सेंककर चूर्ण कर शहद के साथ चटाते हैं।

गृध्रसी (लंगड़ी का दर्द Sciatica) व उरुस्तंभ पर अष्टकट्वर तैल—पिप्पली-मूल व सोंठ ८-८ तो. इनका कल्क कर उसमें कट्वर (मलाईदार दही से बना हुआ मक्खनयुक्त तक्र) १६ प्रस्थ (१२ सेर ६४ तोला), सरसों तैल और दही २-२ प्रस्थ (प्रत्येक १ सेर ४८ तो.) मिला कर यथाविधि तैल सिद्ध कर प्रयोग करने से गृध्रसी तथा ऊरुस्तम्भ दोनों दूर होते हैं। –भा. प्र. तथा भै. र.।

इस तेल की मालिश से विशेष लाभ होता है ½ से १ तो. तक की मात्रा में इसे रोगी को पिलाना या भोजन (दाल, रोटी) के साथ खिलाना शीघ्र लाभकारी है।

(३६) हृद्रोग तथा उदर रोग पर—पीपरामूल और छोटी इलायची दोनों समभाग चूर्ण कर (३ मा. तक की मात्रा में) घृत के साथ सेवन से कफज हृद्रोग शीघ्र नष्ट होता है। —वृ. नि. र.।

उदर रोग पर पिप्पल्यादि लोह—पीपरामूल, चित्रक, अभ्रक भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, तेजपात, इलायची, दा... चीनी, कपूर और सेंधा नमक का चूर्ण १-१ भाग ... लोह भस्म सबके बराबर लेकर अच्छी तरह खरल कर रक्खें। मात्रा—४ रत्ती तक शहद के साथ सेवन से समस्त उदर रोग नष्ट होते हैं। –भा. भै. र.।

(३७) शोथ पर—विशेष कफज शोथ हो तो पीपरा-मूल, देवदारु, चित्रक और सोंठ के द्वारा पकाया हुआ जल पीना तथा इसी जल से बना हुआ आहारादि करना हित-कारी है। —गा० दि०।

शोथ के स्थान पर पीपरामूल को जल के साथ पीस कर गरम कर लेप भी करते हैं।

(३७) ज्वर पर—पित्त ज्वर में—पीपरामूल, ह... नागरमोथा, अमलतास, सोंठ, कुटकी, पित्तपापड़ा और खस इनके क्वाथ सेवन से तृषा, मूर्च्छा एवं दाहयुक्त पित्त ज्वर तथा मुख का कड़ुवापन दूर होता है। —भा० भै० र०।

मूल को मुख में रखने से बुखार की तृषा शान्त होती है।

विषम ज्वर पर—मूल के चूर्ण को घृत और मधु मिलाकर चाटने तथा ऊपर से गरम किया हुआ दूध पीने से कास सहित विषम ज्वर में तथा हृदय रोग में भी लाभ होता है। –गां० औ० र०।

(३८) स्त्री रोग पर—ऊपर प्रयोग नं० २६ देखिये। प्रसूता के स्तनों में दुग्ध वृद्धि के लिये—पीपरामूल और कालीमिर्च जल के साथ खूब महीन पीसकर इस कल्क को दूध में मिला कर पिलाते रहने से शीघ्र ही दुग्ध वृद्धि होती है। —हा० सं०।

मासिक धर्म के उपद्रव रूप में होने वाली खांसी पर मूल का चूर्ण शहद के साथ चटाते हैं।

नोट—मात्रा-मूल का चूर्ण १ से २ माशा तक।

इसका अधिक सेवन उष्ण प्रकृति वालों को तथा नेत्र दृष्टि और वीर्य को क्षयकारक है। हानि निवारक बहुल का गोंद, श्वेत चन्दन आदि हैं। इसका प्रतिनिधि नागकेशर और सुरंजान हैं।

Scanned with CamScanner

विशिष्ट प्रयोग -

(१) पिप्पली वर्धमान[1] (पिप्पली रसायन कल्प)— पंचकर्म द्वारा शरीर शुद्धि के बाद शुद्ध पिप्पली प्रथम दिन १० पिप्पली ५ तोला दूध के साथ दूसरे दिन २० पिप्पली १० तोला दूध के साथ इसी क्रम से पिप्पली व दूध का प्रमाण बढ़ाते हुए १० वें दिन १०० पिप्पली ५० तोला दूध के साथ सेवन कर १०-१० पिप्पली प्रति दिन घटाते हुए १९ वें दिन १० पिप्पली का सेवन ५ तोला दूध के साथ करें। इस प्रकार बढ़ाते और घटाते हुए २० दिन में १००० पिप्पलियों का यह प्रयोग सब से श्रेष्ठ या सबसे बड़ी मात्रा का है (इससे अधिक सेवन नहीं करना चाहिए)।

६ पिप्पलियों से प्रारम्भ कर १० दिन तक प्रतिदिन ६-६ बढ़ाना तथा इसी प्रकार क्रमशः ६ तक घटाना यह मध्यम मात्रा का प्रयोग है। ३ पिप्पलियों से प्रारम्भ कर १० दिन तक ३-३ बढ़ाना और फिर इसी क्रम से ३ तक घटाना यह अल्पतम मात्रा का प्रयोग निर्बल व्यक्तियों के लिये है।

दूध की मात्रा जितनी उक्त १० पिप्पली वाले प्रयोग के साथ दर्शाई गई है उतनी ही ६ या ३ पिप्पली वाले प्रयोग के साथ रहेगी। शेष और रोगों के बलाबलानुसार बलवान पुरुष पिप्पली पीसकर, मध्यम बल वाले क्वाथ कर तथा दुर्बल व्यक्ति इसका शीतकषाय, फांट या हिम रूप में सेवन करें। प्रति दिन जब ये पच जावें तब दूध और घृत के साथ साठी चावल के भात का भोजन करना चाहिए।

यह प्रयोग पुष्टिकर, स्वर के लिये हितकर, आयुष्कर, प्लीहोदर नाशक, यशः स्थापक तथा मेधा के लिये हितकर है। च० चि० अ० १। इस प्रयोग से वातरक्त, विषम ज्वर, अरुचि, पांडु, अर्श, कास, श्वास, शोथ, शोष, अग्निमांद्य, हृद्रोग आदि भी नष्ट होते हैं।

चरक में जो पिप्पली रसायन का प्रयोग कहा गया है उसमें प्रथम पिप्पलियों को ढाक (पलाश) के क्षारोदक की १ या ७ भावना देकर गोघृत में थोड़ा भूनकर प्रतिदिन प्रातः भोजन से पूर्व ५,७, ८ या १० पिप्पलियों[2] को (चूर्ण, कल्क, शीतकषाय या फांट रूप में) मधु और घृत के साथ एक वर्ष तक प्रयोग करें। इस प्रयोग से कास, क्षय, शोष, श्वास, हिक्का, गले के रोग, अर्श, संग्रहणी, पांडु, विषमज्वर, पीनस, प्रमेह, गुल्म, वातकफज रोग नष्ट होते हैं। इस योग को क्षार पिप्पली योग कहते हैं।

(२) पिप्पली खण्ड और खण्ड पिप्पली—पिप्पली चूर्ण १६ तोला, शतावरी का रस ३२ तोला, आंवले का रस ६४ तोला और (गोदुग्ध) १२८ तोला लेकर सबको एकत्र मन्दाग्नि पर पकावें। खोया जैसा हो जाने पर उसे ३२ तोला गोघृत में भूनकर ६४ तोला मिश्री की चाशनी में (चाशनी बहुत कड़ी न हो) मिला उसमें दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, हरड़, कालाजीरा, धनियां, नागरमोथा, बंशलोचन व आंवले का चूर्ण १-१ तोला तथा श्वेत जीरा, मीठा कूठ, सोंठ, नागकेशर, जायफल, कालीमिर्च और कत्था का चूर्ण ६-६ माशा मिलाकर नीचे उतार कर शीतल हो जाने पर

---

[1] इस योग का कुछ निर्देश ऊपर के प्रयोग नं० १३ के उदर रोगों पर किया गया है।

[2] इस रासायनिक प्रयोग में तथा उक्त वर्तमान पिप्पली के योग में जो पिप्पलियों की संख्या प्राचीनाचार्यों ने दर्शाई हैं उसी संख्या में उनका प्रयोग करना आवश्यक नहीं है। प्रत्युत रोग एवं दोष, मान, काल आदि के अनुरूप इनकी संख्या का निर्धारण करना चाहिए। आधुनिक काल में उक्त संख्यानुसार इनका सेवन असह्य एवं अहितकर होने की सम्भावना है। अतः अधिक से अधिक १ पिप्पली का चूर्ण शहद के साथ प्रातः चाटकर ऊपर से शुद्ध गोदुग्ध २० तोला पिलावें। प्रतिदिन केवल १ पिप्पली का सेवन करें। फिर क्रमशः १-१ बढ़ावें। १० वें दिन १० पिप्पली का सेवन कर फिर क्रमशः १-१ घटावें। पुनः १-१ बढ़ावें १० दिन तक और फिर घटावें। इस प्रकार एक मण्डल (४० दिन) सेवन करें। यदि इस प्रकार सेवन से उष्णता की वृद्धि हो जाने तो अनुपान में शहद के साथ गोघृत या मक्खन मिला लिया करें। इस कल्प के समय दुग्ध के साथ ही पर्याप्त मात्रा में अनार, अंगूर, सेव, मौसंमी, सन्तरे आदि का रस भी दिया जा सकता है। भोजन में केवल दूध, साठी चावल व घृत लेवें। प्यास लगने पर दूध में आधा जल मिला पकाकर ठंडा होने पर पीवें।

Scanned with CamScanner

शहद ८ तोला मिलाकर सुरक्षित रखें।

मात्रा—६ माशा से २ तोला तक, प्रातः सायं सेवन से अम्लपित्त, जी मिचलाना, अरुचि, वमन, श्वास, कास, क्षय का नाश होता है। यह आमाशय की पित्त एवं वात की विकृति को दूर कर अग्नि-प्रदीपक और हृद्य है। —भै. र.

खण्ड पिप्पली—पिप्पली चूर्ण ६४ तोला को २५६ तोला दूध में पकावें। फिर उसमें १६ तोला घृत और २५६ तोला खांड मिलाकर लेह बनावें। पाक के अन्त में उसमें लौंग, चातुर्जात (दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर), सौंठ, काली मिर्च, पीपलामूल, श्वेत चन्दन, मुलहठी, अलसी, सुगन्धवाला व जायफल चूर्ण १-१ तोला मिलादें। ठंडा हो जाने पर १६ तोला शहद मिलाकर रख लेवें। मात्रा ६ माशा से २ तोला तक। सेवन से मन्दाग्नि, कृशता, क्षय का नाश होता है। यह अत्यन्त बलकारक, दीपन, पाचन, कास, श्वास, प्रमेह, तृषा, कामला, खाज, प्लीहा, ज्वर, वात कफ के विकार एवं रक्त पित्त नाशक हैं। —यो. र.

(३) पिप्पली पाक—ज्वरादि नाशक पिप्पली चूर्ण ४ भाग को १६ भाग दूध में पकावें। खोया सा हो जाने पर उसे २ भाग घृत में भून लें और उसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर का एकत्र महीन चूर्ण १ भाग मिला ८ भाग खांड की चाशनी में पाक जमा देवें अथवा शहद १ भाग मिला मोदक बना लें। १ तोला की मात्रा में सेवन से धातुगत ज्वर, श्वास, कास, पांडु, धातुक्षय और अग्निमांद्य नष्ट होता है।

नोट—पिप्पली पाक के और भी उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे बृहतपाक संग्रह ग्रन्थ में देखिये। यहां तो विस्तार भय से उनमें से यह एक छोटा प्रयोग संक्षेप में दे दिया गया है। एक और छोटा पाक प्रयोग इस प्रकार है—नई ताजी पिप्पली के ८ तोला महीन चूर्ण को २ सेर गोदुग्ध में पकाकर खोया बना १० तोला घृत में भून लें। फिर ४० तोला शक्कर की कड़ी चाशनी में उसे मिलाकर पाक जमा दें। २-२ तोला खाने से पाचन क्रिया बढ़ती तथा शक्ति आती है।

(४) पिप्पल्यासव—पिप्पली के महीन चूर्ण ५ तोला को २० तोला उत्तम सुरा (मद्य) में मिला शीशियों में भर मुख बन्द कर रखें। प्रतिदिन २-३ बार हिला दिया करें। ७ दिन बाद छान कर शीशियों में भरलें। मात्रा—१० बूंद जल ५ तोला में मिला दिन में २ बार देने से अपस्मार, उन्माद, संन्यास रोग, मूर्च्छा आदि में लाभ होता है। मृगी, योषापस्मार या सन्यास रोगियों के नेत्रों में इसकी २-४ बूंदें टपकावें। सन्यास रोग में हथेली एवं सर्वाङ्ग में मलने से भी लाभ होता है। इसके इंजेक्शन भी दिये जा सकते हैं।

—मिश्र बलवन्त शर्मा वैद्यराज

नोट—पिप्पल्याद्यासव, कणासव तथा पिप्पली के विशेष योग से निर्मित पिंडासव, मध्वरिष्ट आदि के प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह ग्रन्थ में देखिये।

(५) पिप्पल्यादि क्षार—पिप्पली, पिप्पली मूल, पाठा, चव्य, इन्द्र जौ, सौंठ, चित्रक, अतीस, हींग, गोखरू, कुटकी व बच १-१ तोला पांचों नमक ४-४ तोला सबका चूर्ण तथा दही ३ सेर १७ तोला, तिल तैल व घृत प्रत्येक ३२ तोला एकत्र मिला मटकी में मन्दाग्नि पर पकावें। जलांश जल जाने पर नीचे उतार भीतर के शुष्क द्रव्यों को मजबूत सकोरे में या हांडी में भरकर मुख बन्द कर ऊपर से ३-४ कपड़मिट्टी कर पुट पाक करें (हांडी में भरो तो चूल्हे पर तीक्ष्ण अग्नि देकर अन्तर्धूम पाक करें)। जिसमें समस्त औषधियों की भस्म हो जावे पश्चात् निकाल कर पीस लें। इसे १ तोला की मात्रा में (आधुनिक मात्रा १ से ३ माशा तक) घृत में मिलाकर सेवन करें (अनुपान में उष्ण जल ले सकते हैं) औषधि के पच जाने पर मधुर (दूध भात इत्यादि) आहार करें यह सर्व वात कफज रोगों को तथा विष विकारों को नष्ट करता है। —च. चि. अ. १५

(६) पिपल्यादि लोह—पिप्पली, आंवला, मुनक्का, बेर की गुठली की गिरी, मधुशर्करा (शहद की चीनी, अथवा मुलहठी और खांड), बायबिडंग और पोहकर मूल १-१ भाग तथा लोह भस्म सबके बराबर लेकर चूर्ण योग्य चीजों का चूर्ण कर सबको एकत्र खरल कर रखलें। (मात्रा २ से ४ रत्ती तक शहद के साथ) इसके सेवन से भयंकर वमन, हिक्का, महाश्वास आदि रोग ३ दिन में

Scanned with CamScanner

ही अर्थात् शीघ्र ही नष्ट होते हैं। यह हिक्का रोग में अति प्रशस्त है। —भै. र.

(७) पिप्पली ६४ प्रहरी—अच्छी पकी और नई पिप्पली लेकर उनके डंठलों को दूर कर एक एक करके कूटकर फिर सबको महीन चूर्ण कर खरल में डालकर ६४ प्रहर (८ दिन अहोरात्रि) लगातार (निरन्तर) खरल कर शीशी में सुरक्षित रख लेवें। कुछ धनिक बट्टे के नीचे सुवर्ण का पतरा लगवाकर खरल कराते हैं जिससे सुवर्ण भी घिसकर कुछ अंश में मिल जाता है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती शहद के साथ सेवन करें। यह सत्वर उत्तेजक, दीपन, पाचन एवं कफघ्न गुण दर्शाती है। भस्म, रसायन आदि औषधियों के साथ अनुपान रूप में यह मिलाया भी जाता है। जीर्ण ज्वर में ८ रत्ती तक यह ३ माशा शहद में मिला प्रातः सायं चाटने और ऊपर से बकरी का गरम दूध पीने से विशेष लाभ करता है। क्षुधा की वृद्धि होती है। श्वास, कास तथा वात प्रकोप पर यह प्रयुक्त होती है। —गां.औ.र. तथा गृह चि.

नोट—इसकी मात्रा कम से कम १ चावल या ½ रत्ती की है। यदि इसकी अधिक मात्रा से शरीर में दाह आदि हो तो घृत का सेवन करावें।

(८) पिप्पली पाचक—पिप्पलियों को दूने नीबू के रस में पत्थर या कांच के पात्र में (४० तोला पिप्पली हो तो १ सेर नीबू के रस में) भिगोकर उसमें २० तोला अदरक का रस तथा ५ तोला काला या सेंधा नमक मिलादें। १०-१५ दिन तक बन्द कर रखने के बाद जब पिप्पली सब रस पीलें। यह शुष्क सी हो जावे तब उन्हें सुखाकर पीसकर शीशी में भर रखें। कफ वात के प्रकोप के कारण या ज्वर के कारण क्षुधा एकदम मन्द पड़ गई हो, भूख न लगती हो तो ३ माशा तक इसे जल के साथ लेवें। क्षुधा लगेगी, साथ ही हड़फूटन और हरारत जाती रहेगी। —गृ. चि.

नोट—उक्त पिप्पलियों को सुखाकर वैसे ही शीशी में भर कर २-४ पिप्पलियों को खा लेने से अपचन दूर होती है। मुख में रुचि आती है एवं भोजन का पचन ठीक-ठीक हो जाता है। अजीर्ण विकार दूर होता है।

(९) पिप्पल्यादि लेह—पिप्पली, मुलहठी व मिश्री प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, गो दुग्ध, बकरी का दूध व ईख का रस प्रत्येक १२८ तोला तथा गेहूं का आटा, जौ का आटा, मुनक्के का कल्क, आंवले का रस व तिल तैल प्रत्येक ८ तोला इन सबको एकत्र मिला मन्दाग्नि पर लेह पाक करें। चाटने योग्य हो जाने पर नीचे उतार कर कुछ ठण्डा हो जाने पर उसमें घृत और शहद ८-८ तोला मिलाकर रखलें (अथवा घृत और शहदकी मात्रा दोषानुसार चटाते समय मिलाना ठीक होता है)। उचित मात्रा में इसके सेवन से क्षतज कास तथा श्वास, हृद्रोग एवं कृशता दूर होती है। वृद्ध एवं अल्प वीर्य पुरुषों के लिए हितकारी है। —च. चि. अ. १८

लेह नं० २—पिप्पली चूर्ण १२० तो०,मुनक्का २०० तो० और खांड ४ तोला इन्हें एकत्र पीसकर रखलें। ३ मा० की मात्रा में इसे शहद मिलाकर चटाने से अथवा इसकी मात्रा में दूध पीने वाले गौ के बछड़े के गोबर का रस और शहद मिलाकर चटाने से पित्तजकास में विशेष लाभ होता है। —च. चि. १८

(१०) पिप्पल्यादि घृत—पिप्पली, पिप्पली मूल, चित्रक, सौंठ, धनियां, पाठा, वच, रास्ना, मुलैठी, यवक्षार व हींग १-१ तोला सब को जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। तथा क्वाथार्थ दशमूल (मिलित) २५६ तोला जौकुट कर उसमें ८ गुना जल मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसमें उक्तकल्क और गोघृत २५६ तोला मिला यथाविधि घृत सिद्ध करलें।

४ तोला की मात्रा में (आधुनिक मात्रा आधा या १ तोला) पीकर पेया या मण्ड पीने से श्वास, कास, हृद्रोग, पार्श्वशूल, ग्रहणी तथा गुल्म का नाश होता है। —च. चि.अ. १८

घृत नं० २—पिप्पली चूर्ण ६४ तोला को दशगुने जल में पकावें, चतुर्थांश जल शेष रहने पर, छान कर उसमें घृत २ सेर, गिलोय का रस १२८ तोला, आंवले का रस २४० तोला तथा मुनक्का, आमला, पटोल पत्र, सोंठ, कुटकी व वच ४-४ तोला एकत्र कल्क कर मिलाकर, यथाविधि घृत पाक करें। मात्रा आधा से १ तोला सेवन से कष्टसाध्य अम्लपित्त, दाह, वमन आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। इसे शास्त्रों में नारायण घृत कहा गया है।

Scanned with CamScanner

नोट—शेष घृत के प्रयोग चरकादि शास्त्रों में देखिये।

(११) पिप्पल्यादि तैल—पिप्पली, मुलैठी, बेलगिरि, सोवा, मैनफल, वच, कूठ, सोंठ, पोहकरमूल, चित्रक व देवदारु समभाग मिश्रित २० तोला, जल के साथ पीस कल्क करें। इसे तिल तैल २ सेर, दूध ४ सेर और जल १६ सेर में मिलाकर तैल सिद्ध कर लें।

इसकी अनुवासन (स्नेह) वस्ति लेने से अर्श, मूढ़-वात, गुदभ्रंश, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, कमर, जंघा व पीठ की दुर्बलता, वंक्षण स्थान का आनाह, पिच्छल (चिपचिपाहट वाला) दस्त आना, गुदशोथ, मलमूत्र का रुकना (या मलावरोध, बार-बार मलत्याग) आदि रोग नष्ट होते हैं। —भै. र.

(१२) पिप्पलीयुक्त पंचसार पेय—पिप्पली चूर्ण, पकाया हुआ दूध, शक्कर, शहद और ताजा घृत इन्हें उचित प्रमाण में लेकर एकत्र कर मथानी से मथ कर प्रतिदिन पीने से विषम ज्वर, क्षतक्षीणता, क्षय, श्वास, कास, हृद्रोग में लाभ होता है।

नोट—इसकी मात्रा आयु, स्वास्थ्य या रोग की दशा तथा अग्निबल, कालादि का विचार कर निश्चित् करना चाहिए। साधारणतः दूध २० तोला, शक्कर दो तोला पिप्पली चूर्ण २ रत्ती, शहद १ तोला तथा घृत ... २ तोला मिश्रित् कर मथकर सेवन से शरीर के बल की वृद्धि, पुष्टता होती है। —सुश्रुत ...

(१३) पिप्पली युक्त शिरोविरेचन—पिप्पली ... और सेंधानमक चूर्ण समभाग एकत्र कर आक के दूध की ३ भावनायें देकर सुखाकर खूब महीन पीस कर रखें। इसकी नस्य से आलस्य, सिर दर्द, अर्धावभेदक (आधा-शीशी) आदि तथा मूर्च्छा भी दूर होती है। जो रोगी बेहोश हो, इस नस्य को कागज की नली में भर कर ... द्वारा नाक में चढ़ा देनी चाहिए। —अ. ...

(१४) पिप्पली रसायन—पिप्पली ५० ग्राम, नौसादर देशी २५ ग्राम एकत्र महीन पीस, बोतल में ... भिगोकर ८ दिन धूप में रख मोटे वस्त्र से छानकर शीशी में रखें। मात्रा—१ से २ बूंद। यकृत, प्लीहा वृद्धि ... मन्द मन्द रहने वाले ज्वर में अवस्थानुसार २-४ बूंद ... के साथ देवें। कफ वृद्धि, छाती में शूल, हृदय ... अरुचि, आध्मान आदि में लाभकारी है। बालकों के क्षीणता व उदर विकार पर १ से २ बूंद मिश्री के ... जल से देवें।

—श्री कृष्ण त्रिवेदी (निराला)
अ. यो. माला से साभार

पियाज—दे० प्याज। पियावासा—दे० कटसरैया।

पियारांगा (ममीरी) (Thalictrum Foliolosum)

वत्सनाभ कुल (Ranunculaceae) के बहुवर्षायु, सदैव हरे भरे अनेक पत्रयुक्त (Foliolosum) इसके क्षुप की शाखायें—४-८ फुट ऊंची, चिकनी, अनेक शाखाप्रशाखा-युक्त; पत्र—गोलाकार ½ से ¾ इंच व्यास के, पक्षाकार संयुक्त, किंचित् लम्बे, कुछ कंगूरेदार, पत्राधार—कोषमय; पत्रक—¾ से १ इंच तक लम्बे, चवन्नी जैसे गोल, किनारे पर प्रायः गोलदन्तुर होते हैं। पत्र—प्रत्येक सींक पर ३ से ७ तक, सींक के अन्त में १ पत्र तथा शेष पत्र आमने सामने निकलते हैं। पुष्प—गुच्छों में सूक्ष्म, श्वेत या पीताभ हरित या कृष्णाभ रक्तवर्ण के, पुष्प बाह्यकोष के दल ४-५ होते हैं। फल—छोटे-छोटे लम्बगोल, दोनों ओर के अग्रभाग में नुकीले व धारीदार होते हैं।

मूल—दृढ़, रक्ताभ पीतवर्ण की ६-१२ इंच लम्बी, गांठदार, पतले उपमूलों से युक्त, चमकीली, अन्त भाग में ऊंगली जैसी मोटी देखने में कुछ मुलैठी जैसी किंतु स्वाद में बहुत कड़वी और दाहक होती है। मूल—पुरानी होने पर काले रंग की हो जाती है।

इसका क्षुप हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों में ५ से ८ हजार फीट की ऊंचाई पर विशेषतः खासिया और नील-गिरी पहाड़ों पर तथा मंसूरी, सहारनपुर एवं बद्रीनाथ आदि में पाये जाते हैं। पहाड़ी लोग इसकी जड़ों को पियारंग या ममीरी नाम से बाजारों में बेचने के लिये लाते हैं।

Scanned with CamScanner

पियारांगा (ममीरी)
THALICTRUM FOLIOLOSUM DC.

नोट—प्राचीन ग्रन्थों में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इसके कुछ गुण त्रायमाण के सदृश होने से इसे कुछ लोग त्रायमाण मानते हैं। किन्तु यह त्रायमाणा से भिन्न है। पीछे भाग ३ में त्रायमाण नं. २ के प्रकरण में अन्तिम नोट देखिए।

ममीरा जैसे ही नेत्रों के लिए हितकारी होने से यह ममीरा का प्रतिनिधि माना जाता है तथा इसे ममीरी कहते हैं। आगे ममीरा का प्रकरण देखिये।

बाजार में मिलने वाला पियारंग इसकी जड़ है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जाता। इसकी अच्छी तरह परीक्षा करके लेनी चाहिये। असली पियारंग की छाल का रंग भी पीला या लाल (रक्ताभ पीला) होता है, तोड़ने पर भीतर का रंग गहरा पीला होता है। इसके सूक्ष्म चूर्ण को या इसके सत्व को पानी में डालने से शीघ्र घुल जाता है शराब में नहीं घुलता। इसका अर्क लोह संयोग से काला नहीं पड़ता।

नाम–

सं.—पीतरंगा। हि.—पियारांगा, पियारंग, पीली-जड़ी, ममीरी, पिजारी, शुप्रक, गुरबैनी, पसमरन, चवन्नी-गाछ, चित्रमूल। म.—ममीरा, पिआरंग। बं.—गुरवि-याणी, काश्मीर चैत्र। अं.–गोल्ड थ्रेड (Gold thread) ले.—थैलिक्ट्रम फोलियोलोजम।

रासायनिक संघठन–

इसके मूल में ममीरा जैसा ही या दारुहरिद्रा के सत्व जैसा बर्बेरिन (Berberin) नामक एक क्षारतत्व ८३% तथा थालिक्ट्राइन (Tholictrine) नामक तत्व पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—मूल।

गुण धर्म व प्रयोग–

उष्ण, रूक्ष, तिक्त, दीपन, पाचन, वातकफ नाशक, सारक, वृष्य, कटुपौष्टिक, मूत्रल है तथा चक्षुष्य, ज्वरघ्न, वेदनास्थापन, कफ निःसारक, विसूचिकाहर और सर्पविष नाशक इन गुणों की इसमें कुछ विशेषता है। शेष गुणधर्म ममीरा जैसे ही हैं, किन्तु यह उसकी अपेक्षा अधिक उष्ण है। इसके गुण धर्म जितियाना बूटी के गुणधर्मों से मिलते जुलते हैं (पीछे भाग ३ में जितियाना तथा आगे ममीरा का प्रकरण देखिये।)

इसके सेवन से उदर में उष्णता बढ़ती है, पाचक रस विशेष उत्पन्न होकर आहार शीघ्र पचन होता है। अतः यह आमाशय को सबल बनाने वाला एवं उतम सारक है। उसका नियतकालीन ज्वर प्रतिबन्धक गुण कुटकी तथा दारु-हल्दी के समान है। नेत्र विकारों पर यह तूतिया (नीला-थोथा) के समान प्रयुक्त होती है, किंतु इसमें नेत्र दृष्टि बढ़ाने की भी शक्ति है। दन्तशूल एवं तीक्ष्ण अतिसार में यह लाभकारी है। अर्श के मस्से, नखों की पीड़ा तथा त्वचा की विवर्णता पर इसका लेप किया जाता है।

इसका उपयोग विषमज्वर में हितकारक है। यह अपने प्रभाव से ज्वर को कमजोर कर देता तथा उसकी पाली को (पुनरावर्त्तन को) भी कभी कभी टाल देता है। शीत ज्वर में यह लाभदायक है। ज्वर की हालत में भी

Scanned with CamScanner

यह दिया जाता है। ज्वर न हो तब भी इसका उपयोग ज्वरजन्य दौर्बल्य के निवारणार्थ उत्तम होता है। जीर्ण ज्वर में हड़फूटन (हाथ पैर में पीड़ा), निरुत्साह, नेत्रदाह, सिर में भारीपन, विबन्ध, तन्द्रा निद्रा की विशेषता आदि लक्षण होने पर यह उत्तम गुणकारी है।

किसी गम्भीर रोग के कारण उत्पन्न शिथिलता, आमाशय की निर्बलता, अपचन, अरुचि, अग्निमांद्य आदि विकार तथा तीक्ष्ण रोग के पश्चात् होने वाले आक्षेप पर भी यह लाभदायक है।

कास, श्वास, फुफ्फुस शोथ, विशूचिका (हैजा) में यह प्रयुक्त होता है। शोथयुक्त वेदना में इसका लेप करते हैं। सर्प विष में यह बाह्य एवं आभ्यंतर दोनों रूप से व्यवहृत है।

इसके चूर्ण की नस्य से नासास्राव होकर मस्तिष्क विकार, नासा रोग एवं नेत्र रोग में लाभ होता है। सिर के दर्द पर इसे गुलाब जल में घिसकर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

(१) विशूचिका (हैजा) पर—इसे ४ रत्ती तक की मात्रा में थोड़े गुलाब जल में घिसकर पिलाने से वमन व दस्त बन्द हो जाते हैं। यदि हैजे में कफ की विशेषता हो तो इसे २ रत्ती की मात्रा में २-३ लौंग व थोड़ी काली मिर्चों के साथ पीसकर इसमें थोड़ा पपीता (जह-रीला) के बीजों का चूर्ण मिलाकर देने से लाभ होता है।

—यू. यो.

(२) नेत्र विकारों पर—इसे जल में घिसकर अंजन करने, इसके हिम से नेत्र धोने, हिम में रुई को तरकर ऊपर रखने या नेत्र के चारों ओर लेप करने से नेत्रस्राव, लालिमा, मन्ददृष्टि, नेत्र पीड़ा, नया फूला, रात्र्यान्ध आदि विकार दूर होते हैं।

रतौंधी तथा आंख की लाली पर इसे १ माशा सम-भाग हल्दी के साथ, स्त्री के दूध में घिसकर उसमें कपड़े को तरकर बत्ती बना जलावें तथा उसका काजल एकत्र कर आंजने से लाभ होता है।

नेत्र में जाला हो तो इसे ४ रत्ती १-१ माशा हल्दी व रसौत तथा २ रत्ती फिटकरी इन सबको जल के साथ खरल कर सलाई से नेत्रों में लगाया करें। —यू० यो०

नेत्राभिष्यन्द पर—रसौत के समान ही इसे जल के साथ घिसकर लेप व आंजने से लाभ होता है।

(३) बालापस्मार—इसे १ रत्ती तक मात्रा में १ लौंग व १ काली मिर्च के साथ घिसकर पिलाने से बच्चों की मिरगी (अपस्मार) दूर होती है। यह छोटे बालकों के डिब्बा रोग या ब्रांकोनिमोनिया में भी लाभ-दायक है।

—वै. वै.

(४) आमाशय के विकारों पर—यह १ माशा तथा अजवायन, सौंफ, वायविडंग व काला नमक १-१ तोला सबको कागजी नीबू के रस में खूब खरलकर गोलियां बनालें। १ से २ माशा तक की मात्रा में इन गोलियों को प्रातः सायं खाने से आमाशय की शुद्धि होकर जठ-राग्नि प्रदीप्त होती है। भोजन पचकर क्षुधावृद्धि होती है। इससे सब प्रकार के दस्त (अतिसार) में भी लाभ होता है।

—वै. वै.

(५) श्वास, कास तथा पीनस पर—इसे १ तोला लेकर उसके साथ काली मिर्च २ तोला जल में पीसकर चने जैसी गोलियां बनालें। १-२ गोली प्रातः सायं सेवन से श्वास, कास तथा कफ के रोगों में लाभ होता है तथा—

इसके साथ समभाग १-१ माशा गरेटी मूल की छाल और कंघी मूल की छाल इन तीनों को चिलम में रखकर धूम्रपान करें।

पीनस की बीमारी में इसे १ माशा तूतिया १ माशा के साथ गोघृत में खूब घोटकर थोड़ा सा नाक में सूंघने से काफी लाभ होता है। —वै. वै.

(६) दन्त शूल तथा कर्ण शूल पर—सेंधा नमक, तमाखू, भुनी हुई हींग, आक की छाल की राख तथा छोटी कटेरी की छाल इनको समभाग और सब के बराबर इसे लेकर पीसकर मंजन बनालें। इसे दांतों पर मलने और लार टपका देने से शीघ्र दन्त शूल दूर होता है।

अथवा केवल इसे ही दांतों के नीचे दबाने से भी लाभ होता है।

कर्ण शूल में—दो बैंगनों को भूभल में भूनकर उनका रस निकाल उसमें थोड़ा सा इसे घिसकर थोड़ा गर्म

कर २-३ बूंद कान में टपका देने से कान की पीड़ा तथा उससे पीब आना बन्द हो जाता है। —व. च.

(७) प्रसूति रोग में—इसे १ रत्ती, अम्बर, कस्तूरी, केशर २-२ माशा काली मिर्च २१ इनको पीसकर जल के साथ गोलियां बना ½ माशा की मात्रा में प्रतिदिन खिलाने से तथा मीठी, खट्टी एवं वातकारक चीजों से परहेज रखने से बहुत लाभ होता है। — व. च.

(८) जलोदर पर–इसे ४ रत्ती, बिखमा सफेद २ मा. तथा अजवायन, मेथी के बीज व श्वेत जीरा ४-४ मा. सबको महीन पीसकर ७ पुड़ियां बना लें। प्रतिदिन १ पुड़िया प्रातः निहारे मुंह लेकर उसी समय दाल चावल खा लेने से ७ दिन में जलोदर के रोग में लाभ होता है। —व. च.

(९) सर्पदंश पर—थोड़ी मात्रा में इसे आक और थूहर के दूध में पीस कर दंशित स्थान पर लगाने से तथा इसे थोड़ी मात्रा में जदवार और काली मिर्च के साथ पीसकर खिलाने से लाभ होता है।

(१०) आंत्र विकार पर—इसका चूर्ण २½ रत्ती तथा इसका तरलसत्त्व १ रत्ती की मात्रा में प्रतिदिन ३ बार देते हैं। इससे विषमज्वर तथा रोग पश्चात् की निर्बलता में भी लाभ होता है। —नाड़कर्णी

नोट—मात्रा—चूर्ण १ से ७ रत्ती तक। अर्क २ से ३० बूंद। टिंचर २० से ३० बूंद (टिंचर में १ भाग के साथ ८ भाग मद्यसार होता है)। फाण्ट—½—१ औंस (फाण्ट में १ भाग के साथ ४० भाग जल लिया जाता है)।

प्रतिनिधि–इसके अभाव में पपीता (बिरंगा) दरियाई नारियल आदि लिये जाते हैं।

इसका उपयोग लोहभस्म के साथ कर सकते हैं।

विशिष्ट योग–

(१) ममीरी बटी—१ तो. पियारंग को ६ मा. काली मिर्च के साथ पीसकर, हरी कंघी के रस में खरलकर काली मिर्च जैसी गोलियां बना लेवें। प्रातः सायं १-२ गोली लेते रहने से बवासीर, जलोदर, आमाशय की निर्बलता तथा कफातिसार में बहुत लाभ होता है।

वटी नं. २—पियारंग ४ रत्ती, केशर, कस्तूरी १-१ रत्ती और मोमियाई [१] (शुद्ध शिलाजीत) १ मा. एकत्र पीसकर छान कर ३ गोलियां बना लें। प्रतिदिन प्रातः १ गोली नास्ता (कलेवा) करने के बाद खाने से ज्वर, कास, आमाशय की जलन, उपदंस, तथा फोड़े फुन्सी में लाभ होता है। —व. चं.

पियाल—देखो चिरौंजी। पिरियाहलीम—दे० हालों में नोट। पिलखन – दे० पाकर। पिलू—दे० पीलू। पिसा—दे० पिचकी। पिसी—दे० पिचकी में नोट।

पिस्ता (Pistacia Vera)

आम्रकुल (Anacardiaceae) के इस मेवे के वृक्ष आम्र या भिलावे के वृक्ष जैसे होते हैं। इसके पत्तों पर एक प्रकार का कीट-कोश (कीड़ों का घर) काकड़ासिंगी के समान, प्राकृतिक बनता है, जिसे पिस्ते के फूल (गुले-पिस्ता) कहते हैं। ये एक ओर गुलाबी रंग के, दूसरी ओर पीताभश्वेत, अनेक आकृति के (कहीं अंजीर जैसे गोल, कहीं अण्डाकृति आदि) तथा स्वाद में कषायाम्ल एवं सुगन्धित होते हैं। फल—ऊपर के कवच सहित चने के घेघरा सदृश किंतु उससे बड़ा अण्डाकार, रक्ताभ होता है। ऊपर का कवच या छिलका श्वेत रंग का कड़ा होता है, जिसे फोड़ने पर भीतर से जो गिरी निकलती है, उसे ही पिस्ता कहते हैं। इस गिरी या पिस्ते पर भी आवरण रूप में लाल वर्ण का महीन छिलका होता है, जिसके अन्दर हरे रङ्ग की यह गिरी किंचित् लाल वर्ण के नन्हें

[१] शिलाजीत के समान अरब व फारस के पहाड़ों से प्राप्त वस्तु को यूनानी में मोमियाई कहते हैं। किंतु यह आजकल एक प्रकार से अप्राप्य है। अतः इसके स्थान में हकीम लोग शुद्ध शिलाजीत (सत शिलाजीत) काम में लेते हैं। —यू० द्रव्यगुण।

Scanned with CamScanner

PISTACIA VERA LINN.

नन्हें धब्बे युक्त होती है। ऊपर के कड़े कवच को 'पोस्ते पिस्तः' कहते हैं।

उक्त गिरी मेवे की तरह खाने तथा पौष्टिक पाकादि बनाने के काम में, तथा औषधि कार्य में आती है। उक्त फल तथा छिलका भी औषधि कार्य में लिया जाता है।

इसके वृक्ष एशिया और सीरिया के जंगलों में नैसर्गिक अधिक परिमाण में पैदा होते हैं। अफगानिस्तान में ये बोये जाते हैं। भारत में उक्त देशों से ही इसका आयात होता है।

नोट—चरक तथा सुश्रुत के सूत्रस्थानों में 'मुकूलक' तथा 'निकोचक' नामों से इसका उल्लेख किया गया है। निकोचक का यह संस्कृत नाम चिलगंजिका भी है।

नाम–

सं.—मुकूलक, निकोचक। हि.—पिस्ता। म.—पिस्ते गु.—पिस्तं। बं.—पेस्ता। अं.—पिस्टेशिओ (Pistachio) ले.—पिस्टासिया वेरा।

रासायनिक संगठन–

बीज की गिरी में एक मधुर, सुगन्धित तैल होता है। फूल में—माजूफल के टैनिक एसिड (Gallotannic acid) जैसा ही एक टैनिक (कषाय द्रव्य) ४२ प्रतिशत तथा एक तैलीय राल (Oleoresin) ३० प्रतिशत पाया जाता है।

प्रयोज्यांग—फल की गिरी, छिलका, फूल तथा गिरी का तैल।

गुण धर्म व प्रयोग–

फल की गिरी—गुरु, उष्ण, स्निग्ध, मधुर, वातघ्न, कफपित्तवर्धक, बल्य, वृष्य, बृंहण, सारक, रक्तशोधक है। इसके गुणधर्म व प्रयोग प्रायः बादाम की गिरी से ही हैं।

फूल—शीतल, रूक्ष, विबन्धकारक है। दस्तों में विशेष लाभदायक है। इसका प्रसिद्ध यूनानी योग हब्बे गुले पिस्ता आगे देखिये।

छिलका (पोस्त बेरूं पिस्तः)—गिरी पर जो पतला लाल वर्ण का छिलका होता है, वह समशीतोष्ण है। यह आमाशय के लिये बहुत लाभदायक है। अतः इस छिलके सहित गिरी का सेवन आमाशय के लिये विशेष हितकर है। छिलके रहित गिरी आमाशय को अहितकर है। यह हकीम गिलानी का मत है। यह पतला छिलका ग्राही, विबन्ध कारक, वमन तथा हिक्का नाशक, दांत, मसूड़े, हृदय व मस्तिष्क को बलप्रद और तृषाशामक है। इसे खाने से मुख के छाले दूर होते हैं।

ऊपर का जो कड़ा, श्वेत, चिकना, छिलका होता है वह शीत व रूक्ष है। यह संग्राही, दीपन, हृद्य, उत्क्लेश व वमननाशक, अतिसारघ्न, तथा अंतड़ियों को व आमाशय को बलप्रद है। मुखपाक नाशक है। इसे अकेले या उपयुक्त द्रव्यों के साथ महीन पीसकर छिड़कने से मुख के छाले, फुंसियां आदि दूर होती हैं। उत्क्लेश तथा वमन नाशार्थ इसका फाण्ट बनाकर पिलाने या किसी शर्बत में मिलाकर चटाते हैं।

गलशोथ, मुखपाकादि में फूल और छिलके भी

गोलियां बनाकर मुख में रख चूसते हैं।

शुष्क तथा गीली खुजली के नाशार्थ इसके फूल और छाल के क्वाथ से धोते हैं। इस क्वाथ से सिर को धोनेसे केश सुदृढ़ होते तथा जुयें नहीं पड़ते।

गिरी–स्मरणशक्ति, हृदय, मस्तिष्क तथा आमाशय को बलप्रद है। उन्माद, वमन, हृल्लास, यकृतवृद्धि के लिये उपयुक्त है। नपुंसकता नाशक माजूनों में यह डाली जाती है।

इसे चबाने से मसूढ़े सुदृढ़ होते तथा मुख से सुगन्ध आने लगती है।

हैजा तथा प्लेग के दिनों में इसे शक्कर के साथ खाना लाभप्रद है।

(१) स्मरणशक्ति के वर्धनार्थ–गिरी (पिस्ता), बादाम, पके नारियल की गिरी, शक्कर या मिश्री और घृत मिलाकर लड्डू बना २ से ४ तोला तक की मात्रा में खाकर ऊपर से गाय का धारोष्ण दूध पीवें।

(२) बल वृद्धि के लिये पौष्टिक खीर–पिस्ता, चिरौंजी, और खसखस एकत्र उचित परिमाण में महीन पीसकर दूध में औटाकर गाढ़ी खीर बना, उसमें गोघृत और खांड़ मिलाकर सेवन करें। –व० गु०

तैल–पिस्ते का तैल-१०० तोला पिस्ते से ६० तो० हरितवर्ण का गाढ़ा, मधुर एवं सुगन्धित तैल निकलता है। यह उष्ण तथा स्निग्ध एवं पित्तशामक है, स्मरणशक्ति वर्धक, कास प्रतिबन्धक, हृद्य, रक्त विकृतिनाशक, यकृत के लिये लाभकारी, मुखपाक नाशक, और उन्माद नाशक है। जहरों का दर्द मिटाने के लिये या मदात्यय पर तैल को शराब के साथ पिलाते हैं।

(३) आधा शीशी पर—प्रथम रोगी को गरम जल का बफारा देकर तैल की नस्य देते हैं।

यह तैल प्रायः शीतकाल में मस्तक पर मर्दन करने से लाभ होता है। मस्तिष्क तर रहता व स्मरणशक्ति बढ़ती है।

नोट–मात्रा-गिरी ½-१ तो०। फूल व छिलके का चूर्ण ३-६ माशा।

छिलका रहित गिरी को अधिक खाने से शीतपित्त या शरीर पर पित्ती उछल आती है। इसके निवारणार्थ शिकञ्जबीन, सिरका या खट्टे अनार का सेवन करें।

यह अधः शाखागत व्याधियों के लिये भी हानिकर है। इसके निवारणार्थ रक्ताभ पीतवर्ण के जरदालू, सिकंजबीन और आलू बुखारा दिया जाता है।

प्रतिनिधि—बादाम की गिरी या अखरोट की गिरी।

विशिष्ट योग–

हब्ब गुले पिस्ता—पिस्ता के फूल १ तोला और बहेड़ा २ तोला इन दोनों को कूट छान कर अदरक के रस में खरल कर मूंग जैसी गोलियां बना लेवें। १ से २ गोली मुख में रखकर चूसने से कफज कास में उत्तम लाभदायक है। छाती से कफ को निकालती है।

—यू० चि० सा०

पीतबला—दे० खरेटी। पीपर, पीपल–दे० पिप्पली।

पवित्र पीपल वृक्ष (Ficus Religiosa)

वट कुल (Urticaceae) के इस विशाल, बहुशाखी, दीर्घजीवी, क्षीरी वृक्ष के काण्ड अनियमित। छाल–श्वेत धूसर वर्ण की, वृक्ष पुराना होने पर यह छाल फटीसी, छाल पर पपड़ी जमी हुई। शाखायें–लम्बी, मोटी, चारों ओर फैली हुई। पत्र–पतले, चिकने, चमकीले, ५-७ सिरायुक्त, ४-७ इन्च लम्बे, ३–४.। इंच चौड़े, हृदयाकृति, अग्र भाग पर नुकीले। पत्रवृन्त —३-४ इंच लम्बा पुष्प–अप्रकट गुह्य पुष्प। फल–गोल, चौड़े, छोटे-छोटे वृन्त रहित कच्चे में हरे, पकने पर रक्ताभ श्वेत होते हैं। ये फल पत्तों के मूल प्रदेश में पत्र वृन्त के समीप ही पत्तों के आने के १०-१५ दिन बाद ही ग्रीष्म में आने लगते हैं तथा आषाढ़, श्रावण के मध्य तक पकने लगते हैं। मूल–भूमि के अन्दर शाखा प्रशाखा (उपमूलों) सहित बहुत दूर तक फैली रहती है। जटा–वटवृक्ष के समान इसके तने तथा मोटी-मोटी शाखाओं से जटाएं निकलती हैं किंतु ये बहुत लम्बी मोटी नहीं

Scanned with CamScanner

होती। तंतुरूप छोटी-छोटी होती है। इसे पीपल की दाढ़ी कहते हैं। दूध—तने या शाखा पर चोट करने से या कोमल पत्तों को तोड़ने से एक प्रकार का रसदार श्वेत दूध (अश्वत्थ क्षीर) निकलता है। लाख—पुराने वृक्ष की छोटी छोटी शाखाओं से लाख फूटती है।

ये वृक्ष भारत में सर्वत्र पाये जाते हैं। विदेशों में नहीं होते।

नोट नं. १—हिन्दू समाज में इस वृक्ष का अत्यधिक धार्मिक महत्वहै। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भगवान ने अपनी विभूतियों में इसकी भी गणना की है "अश्वत्थ सर्व-वृक्षाणाम्" (गीता अ. १०) कहा है। इसकी लकड़ी यज्ञ में व्यवहृत होती है। महात्मा गौतम बुद्ध ने इसी के नीचे बैठकर ध्यान लगाया था, तथा उन्हें बुद्धत्व या ज्ञान ज्योति की प्राप्ति हुई थी; तब से यह वृक्ष बौद्धों का प्रतीक रूप हो गया है, और बोधि वृक्ष कहा जाता है।

जो माला मंत्र जाप करने के लिये बनवाई जाती है, या बाजार से खरीदी जाती है, उसका सर्व प्रथम संस्कार पीपल के नवीन कोमल पत्तों का दोना बना कर उसमें उसे रखकर अभिमंत्रित करने के बाद ही उससे जाप करने का विधान, माला संस्कार विधि में दिया गया है। राज-स्थान तथा उत्तर प्रदेश की कई स्त्रियां इस वृक्ष की लाख की बनी हुई चूड़ियां अपने सौभाग्यवती होने के प्रतीक रूप में पहनती हैं।

यह वृक्ष भूत बाधा-हारक है, और कहा जाता है कि इसमें कोई प्रेतात्मा नहीं रहने पाती। इसीलिये कई स्थानों में हिन्दू लोग मुर्दे को जलाने के बाद, तीसरे दिन उसकी अस्थियों का संचय कर, मटकी में भर इसकी शाखा से ही लटका कर बांध देते हैं। और फिर सुविधा-नुसार गंगाजी में प्रवाहार्थ ले जाते हैं।

जानवरों में सब से बडे डील डौल वाले हाथियों के लिये इसकी पत्तियां प्रिय खाद्य द्रव्य है। अतः यह गजा-शन, गज भक्ष्य कहा जाता है। कहते हैं कि यदि हाथी को ४–६ दिन तक इसके पत्र खाने को न मिलें तो वह उन्मत्त हो उठता है। हाथियों का उन्माद इस की पत्तियों के खाने से ही दूर होता है। मनुष्यों के भी मस्तिष्क शांति के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

पीपल
FICUS RELIGIOSA LINN.
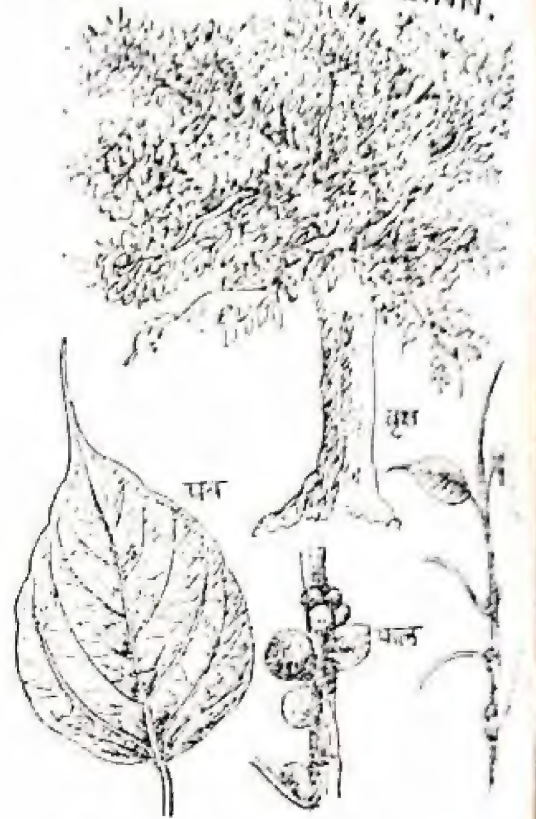
इस वृक्ष में प्राणवायु को शुद्ध एवं पुष्ट करने का विशेष गुण है। औषधि कार्यों में इसका सर्वाङ्ग उपयोगी है।

नोट नं. २—इसका ही एक भेद पाकर पीपल (क्ष अश्वत्थ) है। इसका संक्षिप्त वर्णन इसी प्रकरण के अन्त में देखिए।

नोट नं. ३—चरक ने मूत्र संग्रहणीय कषायस्कन्ध में तथा सुश्रुत के न्यग्रोधादि गण में, और भावमिश्र ने इसे क्षीरी वृक्ष एवं पंचवल्कल में लिया है। पंचवल्कल का वर्णन आगे बरगद (बड़) के प्रकरण में देखिये।

नाम—

सं.—अश्वत्थ, पिप्पल, चलपत्र, गजाशन, बोधिद्रुम इ.। हि.—पीपल, पीपर, भोरे। म.—पिंपल। गु.—पीपलो। बं.—अश्वत्थ, आशुद, असवन गाछ। अं.—सेक्रेड फिग (Sacred fig), पीपल ट्री (Peepul tree)। ले.—फायकस रिलिजिओसा।

रासायनिक संगठन–

छाल में टेनिक एसिड़,काउचाउक (Caoutchouc) या कोचटोन (Cochtone) नामक एक रबर का घटक तथा एक प्रकार का सुस्निग्ध मोम जैसा पदार्थ पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, पत्र, बीज, दुग्ध, जटा व लाख।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, रूक्ष, कषाय, कटु विपाक, शीत वीर्य, कफपित्त शामक, वर्ण्य, व्रणरोपण, बदनास्थापन, शोथहर, रक्त-शोधक, रक्त पित्तशामक, मूत्र संग्रहणीय,योनिशोधक तथा पित्त, कफादि विकार नाशक है।

डा० देसाई के मतानुसार-सुजाक में इसके कोमल पत्र दूध में उबाल कर देते हैं, इससे शौच शुद्धि, मूत्रदाह की शांति एवं पूय का ह्रास होता है। इसी प्रकार इस की छालका क्वाथ भी सुजाक में काम करता है। रक्त स्राव पर कोमल पत्र और लाख मधु के साथ देते हैं। कामला पर इसका पका हुआ आधा पत्र नागरवेल के पान में देते हैं। हिक्का और वमन बन्द कराने के लिये छाल की राख को जल में मिला फिर जल को निथार कर थोड़ा-थोड़ा पिलाते हैं। मूत्रेन्द्रिय घावके छाल की राख लगाने से शीघ्र भर जाते हैं त्वचा रोग में छाल का फाण्ट देते हैं। शोथ शमनार्थ छाल का लेप करते हैं। पंचवलाल (बड़, पीपल, गूलर, पाकर व पारस पीपल की छाल)का क्वाथ व्रण को धोने, कुल्ले करने, तथा प्रदर में उत्तर वस्ति देने के लिये व्यवहृत होता है। इससे शोथ दूर होता तथा व्रण का संकोच होता है। बालकों के मुख रोग में इस की छाल को शहद में घिस कर लेप करते हैं, तथा बहने वाले व्रणों पर लगाते हैं। भगंदर में छाल का चूर्ण भरते हैं।

असि. सर्जन डा. नवीनचन्द्र जी लिखते हैं कि भगंदर रोग में बांस की नलिका द्वारा इसकी छालकामहीन चूर्ण फूंकते रहने से कुछ दिनों में लाभ होता है। सड़े हुये किसी भी व्रण पर यह चूर्ण हितकारी है। कंठमाला में भी अच्छा काम देता है।

(१) वंगसेन ने वाजीकरणार्थ इसकेप के फल ८-१०, मूल की छाल २ तो. और ८-१० कोमल पत्तों के अंकुर सिद्ध किये हुए दूध में खांड मिलाकर सेवन करने का प्रयोग लिखा है। इससे कामोत्तेजक शक्ति सबल होती है, तथा लिखा है कि इस प्रयोग से वृद्ध भी तरुण के समान हो जाता है। इस प्रयोग में सुश्रुत खांड के साथ ही साथ शहद भी मिलाते हैं।

इस प्रयोग को इस प्रकार बनाना ठीक होता है—प्रथम उक्त फलादि को ४० तो. जल में पकावें। १० तो. शेष रहने पर छानकर इसमें अच्छा औटाया हुआ २० तो. तक दुग्ध तथा खांड ५ तो. व शहद ३ तो. मिलाकर रात्रि में पीवें।

इसकी ताजी छाल को कूटकर १२ घंटे जल में भिगो कर, मसल कर, छानकर पीते रहने से भी स्तम्भन एवं वाजीकरण होता है, कटिशूल भी दूर होता है। नियम-पूर्वक पथ्य पालने की आवश्यकता है। वीर्य का दुरुपयोग नहीं करना चाहिये।

"अश्वत्थ फल मूलत्वक शुंगसिद्धं पयोनरः पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं कुलिंगं इव हृष्यति॥ —सु. चि. अ. २६

छाल—स्तंभक, संकोचक, रक्तसंग्राहक, पौष्टिक, कफघ्न, गर्भस्थापन, वाजीकरण है, तथा सुजाक, व्रण, शोथ, भगंदर, मुखपाक, वमन, अतिसार, प्रवाहिका, रक्त-विकार, प्रमेह, वातरक्त आदि में प्रयुक्त होती है।

(२) स्वप्नदोष, शीघ्रस्खलन, मूत्र रोग, रक्त एवं चर्म-विकार, पाचन शक्ति का अभाव एवं जीर्ण कोष्ठबद्धता में इसकी ताजी छाल को स्वच्छकर अच्छी तरह कूटकर १-२ तोला तक २० तो. जल में रात्रि के समय भिगोकर प्रातः शौचादि से निवृत्त होकर जल को छान कर, कुछ दिन तक पीते रहने से लाभ होता है। शरीर सुदृढ़ होता स्फूर्ति, उत्साह की वृद्धि होती है। यह सरल संन्यासी प्रयोग है।

—श्री चुन्नीलाल भारद्वाज
१०६, खारी कुआं, मेरठ शहर

(३) छाल (जड़ की हो तो उत्तम) का क्वाथ या फाण्ट—मूत्र दाह, मूत्रकृच्छ्र, पुराना सुजाक,प्रमेह, विसर्प, हड्डी की जलन, कुक्कुर कास, खाज, दाद आदि चर्म-रोगों में विशेष लाभदायक है।

Scanned with CamScanner

यदि वातरक्त हो तो इसकी छाल ५ तो. को १ सेर जल में पकावें। १० तो. शेष रहने पर छान कर थोड़ा शहद मिलाकर सेवन करते रहने से (आधा क्वाथ प्रातः और आधा शाम को) दारुण एवं त्रिदोषज वातरक्त भी कुछ दिनों में दूर होता है। —च. चि. अ. २९

इस प्रयोग से अन्यान्य रक्तविकार भी दूर होते हैं।

(४) वमन और हिक्का पर—शुष्क, ताजी छाल को जलाकर, इसमें जलते हुए अङ्गारों को ८ गुने जल में बुझा, उस जल को निथार तथा छान कर, थोड़ा-थोड़ा आध-आध घंटे पर पिलाने से वमन या उबकाई से एवं गर्भवती के उग्र प्रकार के वमन में भी लाभ होता है। —च. द.।

नोट—यदि दोषों की उग्रता के कारण कोई भी द्रव पदार्थ आमाशय में न टिकता हो शीघ्र ही उबकाई या वमन द्वारा बाहर निकल आता हो तो इसकी अन्तरछाल का छायाशुष्क कर, बनाया हुआ महीन चूर्ण, मात्रा ४ से ८ रत्ती तक शहद में मिलाकर बार २ चटावें इससे कफज वमन अवश्य शांत होगा। पैत्तिक वमन हो, विषम ज्वर जन्य वमन हो तो उक्त मात्रा में थोड़ी खांड मिला, बार-बार मुख में डालते रहें या शहद से ही चटावें। इस प्रकार यह चूर्ण ३ मा. तक दे सकते हैं।

हिक्का पर—ताजी जलाई हुई जड़ की राख (इसे कोई कोई ब्रह्मखार कहते हैं) को जल में घोल निथारकर जल को १० तो. तक थोड़ा थोड़ा पिलावें तथा छाल जलाकर उस पर जल छिड़क कर ठंडी हो जाने पर उसे कांजी में पीस छाती पर लेप करें।

(५) प्लीहा वृद्धि तथा शोथ पर—छाल की उक्त राख में समभाग कलमीशोरा मिला चूर्ण कर रखें। नित्य प्रातः एक पके केले की ऊपर की छाल दूरकर उस पर १½ माशा यह चूर्ण डालकर खिलावें। प्रयोग काल में रोगी को मूंग के दाल की पतली खिचड़ी खानी चाहिए। उक्त चूर्ण केले के साथ ३ मा. तक दिया जा सकता है।

पित्तजन्य शोथ पर—छाल को जल के साथ पीसकर ठंडा लेप करते हैं। चोट लगने या किसी जन्तु के काटने से आई शोथ हो तो छाल के चूर्ण को घृत में मिलाकर लेप करें।

(६) श्वास तथा हनुग्रह पर—कई महात्मा इसकी अन्तरछाल को छायाशुष्क कर चूर्ण करते तथा श्वास के रोगियों को शरद पौर्णिमा के दिन उपवास कराते और गोदुग्ध में चावल व शक्कर मिला खीर बना उसे रात्रि के १२ बजे तक चांदनी में रख देते हैं। पश्चात् १०-२० तो. खीर में ६ मा. उक्त चूर्ण को मिलाकर खिलाते हैं। रात्रि को रोगी को जागरण कराते हैं। इस विधि से प्रयोग करने पर अनेकों को लाभ पहुंचा है। यह प्रयोग कार्तिक पौर्णिमा एवं फाल्गुन पौर्णिमा की रात्रि में भी दिया जा सकता है। किंतु शरद पौर्णिमा का प्रयोग श्रेष्ठ होता है।

हनुग्रह (वातरोग जिसमें मुख की पेशियों का संकोच होकर जबड़े जकड़ जाते हैं, मुख नहीं खुलता (Lockjaw) अन्तर छाल को जल के साथ कूटकर रस निचोड़ कर उसमें पिप्पली का चूर्ण मिला धीरे धीरे मुख के अन्दर डालें। —व. गु.।

(७) प्रमेह तथा पांडु पर—पित्तप्रकोप जन्य नील, पीत, रक्त आदि प्रमेह हों तो छाल १-१ तो. का क्वाथ दिन में २ बार प्रातः सायं कुछ दिनों तक देते रहें। —गां. औ. र.।

अथवा—अन्तरछाल को छायाशुष्क कर महीन चूर्णकर समभाग खांड मिलाकर रख लें। प्रातः सायं ६-६ मा. चूर्ण धारोष्ण दुग्ध के साथ सेवन से शीघ्र लाभ होता है। —हकीम मोहम्मद अब्दुल्ला रोड़ी वाले।

पूयमेह (सुजाक, उष्णवात एवं मूत्रकृच्छ्र) हो तो अन्तर छाल ३ या ४ तो. जौकुट कर एक मिट्टी के कोरे मटके में २० तो. जल के साथ भिगो देवें। प्रातः इसका निथरा हुआ जल छानकर पिलाया करें। शीघ्र लाभ होगा। —ह. गो. अ. रो.।

पांडु रोग पर भी यह योग लाभकारी है, लगभग १४ दिन देवें। रोगी को दही या दही की लस्सी का सेवन अवश्य करावें। यदि शीतकाल हो तो उक्त निथरे हुए जल को थोड़ा गरम कर पिलावें।

(८) व्रण, भगंदर तथा कण्ठमाला पर—छायाशुष्क अन्तरछाल के महीन चूर्ण को नवीन या पुराने व्रण या घाव (जखम) पर दिन में ३-४ बार बुरका करें। चूर्ण को बुरकने के पूर्व व्रण को रुई से साफ करलें। ८-१०

Scanned with CamScanner

दिनों में ही लाभ होता है।

अथवा इसके वृक्ष पर छाल की जो सूखी पपड़ियां होती हैं उनका महीन चूर्ण बना रखें। घाव पर प्रथम तिल तेल चुपड़ कर ऊपर से यह चूर्ण इतना बुरक दें कि घाव पर उसकी मोटी तह जम जावे। यदि चूर्ण की तह के ऊपर घाव का पानी आ जावे तो उस पर फिर तेल डाल कर चूर्ण बुरक देवे। इस प्रयोग से शीघ्र न भरने वाला घाव शीघ्र ही भर जाता है।

—सिद्धमृत्युञ्जय योग से

अग्निदग्ध व्रण जो फूट गया हो उस पर इस चूर्ण को बुरकने से लाभ होता है या चूर्ण में घृत मिलाकर चुपड़ दिया करें।

अग्निदग्ध पर—इसकी छाल ८ तोला जौकुट कर जल में अष्टमांस क्वाथ कर मलकर छानलें। उसमें ८ तोला नारियल तेल मिला पुनः पकावें, तेल मात्र शेष रहने पर इसमें देशी मोम, कपूर, सिंदूर १-१ तोला मिलाकर रखलें। इसे अग्निदग्ध व्रण पर लगाने से शांति मिलती व घाव दूर होता है।

पशुओं के घाव पर भी इस चूर्ण को बार-बार बुरकते रहने से लाभ होता है।

अनेक प्रकार के फोड़े फुंसियों पर मरहम ५ तोला राल के चूर्ण को १० तोला सरसों के तेल में डालकर मन्द आंच पर रखें। राल और तेल एक हो जाने पर उसमें २॥ तोला इसकी अन्तरछाल की भस्म डालकर खूब घोटकर मरहम बनालें। इसे लगाया करें। इस मरहम की पट्टी फोड़े पर बांधने से प्रायः एक ही पट्टी में वह फूट जाता है। उसी पट्टी से वह भर जाता है तथा पट्टी फिर अपने आप खुल जाती है।

—जंगली जड़ी बूटी से

इसकी छाल और ईंट को पानी में घिसकर लेप करते रहने से भी फोड़ा फुंसी में लाभ होता है।

सड़े हुए तथा न भरने वाले व्रण या घाव पर इसकी अन्तरछाल को गुलाब जल में घिस कर लगाते रहने से शुद्ध होकर शीघ्र भर जाते है। भगन्दर और कण्ठमाला में भी कई बार इसकी छाल के चूर्ण को भरने से या उसे गुलाब जल में मिलाकर लगाने से लाभ होता हुआ देखा गया है।

—व. चं.

भगन्दर के छिद्र में इसके महीन चूर्ण को किसी नली के द्वारा भर देने से कुछ दिनों में लाभ हो जाता है।

या चूर्ण को गुलाब जल में थोड़े कपूर के साथ घोट कर लगाते रहें।

कण्ठमाला पर—किसी पक्की दीवाल पर लगे हुए पीपल की जड़ जोकि जमीन तक न पहुंची हो उसे लेकर प्रतिदिन जल में घिसकर ग्रंथियों पर लगाया करें।

—हु. मो. अ. रो.

किसी पशु के शरीर पर जख्म लगकर कीड़े पड़ गये हों तो छाल के चूर्ण को ज्वार की रोटी के साथ मिलाकर खिलावें।

—व. ग्र.

(९) दन्त रोग पर—छायाशुष्क जड़ की छाल का महीन चूर्ण कर रक्खें। प्रातः सायं इसी चूर्ण का मंजन करने से दांतों का हिलना, दन्तशूल, दांतों का मल आदि दूर हो जाता है।

पीपल की कोमल, ताजी लकड़ी से दांतुन करना विशेष लाभदायक है। दांत सुदृढ़ होते, मसूढ़ों की सूजन एवं पूयस्राव बन्द होता, मुख की दुर्गन्धि दूर होती है तथा दृष्टि तेज होती है।

छाल को पानी के साथ कूट पीसकर वस्त्र में निचोड़ कर जो रस निकले उससे कुल्ले करते रहने से दांत और मसूढ़ों की पीड़ा शीघ्र दूर होती है।

(१०) खाज, खुजली, छाजन आदि चर्म रोगों पर—छाल को पानी में घिसकर लगाने से या छाल की राख में आधा भाग चूना मिला मक्खन के साथ घोटकर लगाते रहने से खाज खुजली में लाभ होता है।

कष्टदायक गीली खुजली हो तो छाल का फाण्ट या हिम पिलाते हैं।

छाजन, उकौत या एग्जिमा पर—छाल और उसके पत्तों का एकत्र चूर्ण कर नारियल के तैल में पकाकर लगाते हैं।

(११) स्मृतिभ्रंश पर—छाल की चाय छायाशुष्क की हुई इसकी ताजी छाल का जौकूट चूर्ण बना कर रख लें। प्रातः सायं ४ मा. से १ तो. तक चूर्ण को २० तो.

Scanned with CamScanner

जल में पकावें। आधा जल शेष रहने पर छानकर उसमें दूध और खांड मिलाकर पीने से स्मरण शक्ति तेज होती है, मस्तिष्क की निर्बलता दूर होती है।

—हृ. मो. अ. रो.

(१२) स्त्रीरोग तथा बाल रोग पर—कष्टार्त्तव या आर्त्तव की अप्रवृति है, मासिक धर्म न होता हो तो इसकी छाल और इमली की छाल दोनों को जल में पीस छान कर पिलाते हैं।

गर्भारक्षार्थ–गर्भस्राव या पात की आशंका हो तो छाल का चूर्ण ६ मा. तक नारंगी के छिलकों के क्वाथ के साथ दिन में ३-४ बार पिलावें।

स्तन में शोथ या पाक हो या अन्य कोई विकार हो तो इसकी छाल को जला कर जल में डाल दें तथा एक लोहे के टुकड़े को बार-बार आग में तप्त कर उसमें बुझावें। तथा इसी जल में इन्द्रायण की जड़ को घिसकर लेप करें।

—ब. गु.

बालकों के तीव्र पैत्तिक ज्वर में जब अत्यधिक प्यास के कारण बार-बार पानी देने पर भी वह पानी के लिये ही रोता चिल्लाता हो, जीभ बाहर को बार-बार निकलती रहती हो, एक क्षण भी शांति लाभ नहीं करता हो तो छाल की राख को ६ मा. तक गावजवां के १० तो. अर्क में (अभाव में १० तोला उबले हुए जल में) मिलाकर अच्छी तरह घोलकर थोड़ी देर बाद ऊपर के स्वच्छ भाग को निथार कर पिलाने से शीघ्र तृषा शांत होती है।

बालकों के मुख पाक पर—छाल और इसके पत्र का चूर्ण शहद में मिला लेप करते हैं।

बालकों के रोहिणी (प्राण घातक कण्ठगत रोग डिफ्थीरिया Diphtheria-में प्रथम गले के भीतरी भाग में लालिमा होकर तालू के मूल भाग में श्वेत पर्त, गले में शोथ, पीड़ा, ज्वर, थोड़ी खांसी, मुख का वर्ण फीका, श्वास में खरखराहट, फिर गले का शोथ बढ़ जाना, ज्वर तीव्र होना, मुख का रङ्ग लाल, तृषा अधिक, गर्दन का जकड़ना, कर्ण पीड़ा आदि लक्षण होते हैं) पर–इसकी अन्तरछाल तथा इसके कोमल पत्रों का स्वरस निकाल कर थोड़ा गरम कर उसमें शहद मिला थोड़ी-थोड़ी देर पर चटाते हैं।

जटा[1] (पीपल की दाढ़ी या अंकुर) के योग—

(१३) योषापस्मार (हिस्टीरिया)—पीपल के पिंड या शाखाओं के सन्धि स्थान पर जो पतले तन्तु फूटते हैं उन्हें २ तोला लेकर खूब महीन कतर और कूट उसके साथ जटामांसी व जावित्री १-१ तोला का चूर्ण मिला खरल करें। फिर उसमें कस्तूरी १॥ माशा डालकर थोड़ा जल मिला खूब अच्छी तरह घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बना रक्खें। २ से ४ तक गोलियां ठंडे जल के साथ दिन में ३ बार खिलाकर आध घण्टे बाद थोड़ा दूध पिलावें या दूध में बनाई हुई चावलों की पेया पिलावें। इस प्रकार १-२ मास तक इसके प्रयोग से जीर्ण एवं दृढ़ हुआ स्त्रियों का हिस्टीरिया रोग भी दूर हो जाता है। रुग्णा को पथ्य पालन आवश्यक है। वात-प्रकापक पदार्थ, तीव्र खटाई, अग्नि का सेवन आदि से परहेज करावें। मन को प्रसन्न रखें।

—(जंगली जड़ी बूटी से)।

(१४) गर्भधारणार्थ—प्रतिदिन ताजी कोमल जटा २ तोला जौकुट कर ४० तोला दूध में पकावें। २० तोला शेष रहने पर छान कर उसमें शक्कर और शहद मिला मासिक धर्म होने के ५ वें या ६ वें दिन से प्रारम्भ कर १० दिन तक प्रातः सायं पिलावें। इससे वंध्या स्त्री भी गर्भवती होती है।

—वैद्य मनोरमा

नोट—पुस्तक में 'बन्दाकं' शब्द है। इससे पीपल के वृक्ष पर पैदा होने वाले बांदा के पंचांग का प्रयोग उक्त विधि से करने के लिए कहा जाता है। यह भी ठीक है किंतु जटा का प्रयोग उत्तम होता है। पीपल के फलों का पाक भी गर्भधारणार्थ दिया जाता है। आगे फल प्रयोग में देखिए।

किंतु उक्त प्रयोगों को प्रारम्भ करने के पूर्व यह देख लेना चाहिए कि स्त्री को मासिक धर्म की विकृति या अन्य कोई योनि दोष तो नहीं है। जो गर्भ रोधक हो यदि

---

[1] इसकी जटा का विशेष सम्बन्ध छाल के साथ होने से इसके योग छाल के साथ ही देना योग्य समझा गया है।

—सम्पादक

ऐसी कोई विकृति या दोष हो तो उनकी प्रथम चिकित्सा करना आवश्यक है ।

उक्त योग को इस प्रकार भी सफलता के साथ सेवन कराया जाता है—जटा के अंकुरों को १ या २ तो. कच्चे गोदुग्ध दस तोला के साथ पीस कर रजोदर्शन के ४ दिन पहले १५ दिन तक प्रतिदिन प्रातः पिलावें । इस प्रकार २-३ माह के सेवन से अवश्य गर्भधारणा होती है ।

—गुप्त प्रयोग

अथवा इसकी जटा २ भाग तथा हाथी दांत का चूर्ण १ भाग दोनों को खरल कर रख लें । जब स्त्री रजोधर्म से निवृत होकर स्नान कर चुके तब प्रतिदिन रात्रि के समय ४ माशा चूर्ण गोदुग्ध के साथ ७ दिन तक सेवन करावें । यदि ७ दिन में गर्भस्थापना के कोई चिह्न प्रकट न हों तो दूसरे महीने में पुनः इसी प्रकार ७ दिन तक दवा का सेवन करावें अवश्य गर्भ रहेगा ।

अथवा स्त्री पुरुष दोनों के लिए निम्न प्रयोग परमोत्तम सेवनीय है । शत प्रतिशत लाभदायक है ।

इसकी जटा और लाल शक्कर (खांड या ताड़ शर्करा) समभाग दोनों को अलग अलग चूर्ण कर एकत्र मिलाकर रखलें । जिस दिन स्त्री को रजोधर्म हो उसी दिन से पति पत्नी १-१ तोला चूर्ण प्रातः सायं गरम दूध के साथ सेवन करें और ११ वें दिन भोग करें, ईश कृपा से अवश्य इच्छापूर्ति होगी ।

—हकीम मोहम्मद अब्दुल्ला रोडीवाले ।

(१५) वृक्क शूल (गुर्दे का शूल) पर—इसकी शुष्क जटा को चूर्ण कर हुक्के की चिलम में भरकर धूम्रपान करने से शीघ्र लाभ होता है । —ह. मो. अ. रो.

(१६) बालकों के आक्षेप (झटके के साथ शरीर की पेशियों में प्रबल संकोच होना (Spasm or convulsions) पर—जटा का महीन चूर्ण और केशर समभाग एकत्र खूब खरल कर १ या २ रत्ती की मात्रा में जल के साथ आध-आध घण्टे पर देने से तीव्र आक्षेप शमन हो जाते हैं ।

अथवा जटा को थोड़े जल के साथ पीसकर रस निचोड़ कर या उसका क्वाथ सिद्ध कर उसमें सुहागे की खील और शहद मिलाकर पिलावें । बड़ों के आक्षेप पर भी लाभकारी है ।

बालकों के डब्बा रोग (श्वास चलने) पर—जटा के अंकुरों को जल में पीस कर पिलाते हैं ।

(१७) अफीम विष, विषम ज्वर तथा मुख के छालों पर—इसकी अन्तर छाल १० तो. १ सेर जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, छान कर, २-२ तो. बार-बार ६ घण्टे तक पिलावें । अफीम का विष उतर जाता है । यदि कुछ कसर रहे तो पुनः पिलावें । आगे नं. २३ में जो सर्व विष का पत्र प्रयोग है वही अफीम विष पर किया जा सकता है ।

विषम ज्वर पर (टोटका)–ज्वर चढ़ने के दिन, ज्वर वेग के १ घण्टा पूर्व ही इसकी ताजी कोमल लकड़ी की दातोन करने तथा उसका कुछ रस चूसने से, उसी दिन से ज्वर आना बन्द हो जाता है ।

मुख पाक पर–इसकी जटा ३ मा. तथा दूधिया कत्था व छोटी इलायची के दाने १–१ मा. सबको दूध में पीस कर जिह्वा पर लगाने और पिलाने से मुख के छाले आदि दूर होते हैं । —भा. गृ. चि.

पत्र—आनुलोमिक, ग्राही, विषनाशक पत्रांकुर या कोंपल रोग प्रतिरोधक, चर्म रोग, रक्तविकार एवं मूत्र-सम्बन्धी रोगनाशक है । प्रतिदिन प्रातः थोड़ी सी कोंपलें चबाकर खा लेना विशेष लाभदायक है । शरीर के कई विकार नष्ट होते हैं ।

बद की गांठ पर—पत्तों को गरम कर सीधी ओर से बांधते हैं, गांठ बैठ जाती है । बाल तोड़ पर—पत्तों को पीस कर लगाने से पीड़ा दूर होती एवं शीघ्र लाभ होता है । नारू पर–पत्र पर रेंडी का तैल लगा गरम कर बांध देने से दाहयुक्त शोथ दूर होता, तथा नारू शीघ्र बाहर आ जाता है । चोट के दर्द पर—११ पत्तों को पीस कर सम भाग गुड मिला ७ गोलियां बना ७ दिन खिलावें ।

पांडु रोग पर–इसके ५ या ७ पत्तों के समभाग लसूड़े के पत्र लेकर दोनों को घोट छान कर उसमें थोड़ा नमक मिला कर १० दिन पिलावें । —यूनानी

प्लीहा वृद्धि पर—छायाशुष्क पत्तों के महीन चूर्ण में गुड़ मिला कर बेर जैसी गोलियां प्रातः सायं सौंफ के अर्क के साथ १४ या २१ दिन तक सेवन करें । —यूनानी

Scanned with CamScanner

मूत्र दाह पर—ताजे हरे पत्र ७ नग को ४० तो. जल में पीस छान कर मिश्री मिला पिलावें।

दूषित व्रण पर—इसकी नरम कोंपलों को जला कर राख को कपड़छन कर—व्रण पर बुरकाते रहने से लाभ होता है।

रक्तपित्त पर—पत्र स्वरस १ भाग, हीराबोल ६ भाग और मधु दो भाग एकत्र कर उचित मात्रा में पिलाने से ऊर्ध्व रक्तपित्त में लाभ होता है।

(१८) वाजीकरणार्थ—(मुरब्बा)—इसकी कोमल कोंपलें ४० तो. को ४ सेर जल में कलईदार पात्र में चतुर्थांश शेष रहने पर, छान कर उसमें २ सेर शक्कर मिला पुनः पकावें। कुछ गाढ़ी सी चाशनी हो जाने पर नीचे उतार कर, उक्त छानने से निकली हुई कोंपलों की लुगदी को इस चाशनी में डाल कर मुरब्बा बना लेवें। लुगदी को चाशनी में अच्छी तरह मिला ढांक कर ७ दिन सुरक्षित रखें। मुरब्बा हो जावेगा। इसे प्रातः सायं २½ तो. की मात्रा में खाकर ऊपर से १ पाव दूध में ५ तो. तक शुद्ध मक्खन और मिश्री मिला कर पीवें। वीर्य तथा कामशक्ति की विशेष वृद्धि होती है किंतु वीर्य का दुरुपयोग करना श्रेयस्कर नहीं है। यह स्मरणशक्ति को भी बढ़ाता है।

(१९) मस्तिष्क दौर्बल्य, उन्माद एवं भ्रम पर—इसकी १० कोंपलें ४० तो. गोदुग्ध में पकावें। ४–५ उफान आ जाने पर नीचे उतार मिश्री या शक्कर मिला छान कर प्रतिदिन प्रातः पीनेसे मस्तिष्कशक्तिकी वृद्धिहोती है। यह पौष्टिक शांतिदायक एक उत्तम प्रातःकालीन पेय नित्य सेवनीय है।

अथवा—इसके छायाशुष्क नये पत्तों का चूर्ण कर रखें। ४ मा. चूर्ण २० तो. पानी में पकावें। आधा पानी शेष रहने पर छानकर खांड व दूध मिलाकर चाय की तरह पिया करें।

उन्माद तथा भ्रम पर—इसकी १० कोंपलों को १० तो. गोदुग्ध में पकावें। सब दूध जल जाने पर (खोया जैसा हो जाने पर) थोड़ी मिश्री मिला खिला दिया करें।

–ह. मो. अ. रो.।

उक्त प्रातः कालीन पेय से या इसकी ताजी कोंपलों को गोदुग्ध में पकाकर प्रातः (बिना कुछ खाये पीये) १८ या २१ दिन तक खाने से उन्माद, अपस्मार, भ्रम आदि दूर होते हैं।

(२०) विषूचिका (हैजा) तथा रक्तातिसार पर—इसके दो पत्तों के साथ ७ नग लौंग मिला, जल के साथ खूब पीस छानकर बार-बार १५-२० मिनिट बाद १-१ घूंट पिलाने से हैजे की वमन शीघ्र रुककर पानी हजम होने लगता है और आमाशय की विष निवृत्ति होती है।

—ह. मो. मो. अ. रो.।

रक्तातिसार पर—पत्तों के नरम डंठल, धनियां तथा शक्कर समभाग एकत्र मुख में रखकर दांतों से चबाकर रस निगलना चाहिये। अथवा एकत्र महीन पीसकर थोड़ा थोड़ा मुख में डालकर रस निगलते जावें।

(२१) उदरशूल, अजीर्णादि आमाशय के विकारों पर—इसके २½ पत्तों को पीसकर गुड़ के साथ गोली बनाकर खिलाने से अथवा छायाशुष्क पत्तों के चूर्ण में गुड़ मिला घोटकर चने जैसी गोलियां बना प्रातः सायं १-१ गोली सौंफ के अर्क के साथ देते रहने से शूलादि अन्य आमाशय के विकार दूर होते हैं। अजीर्ण, कोष्ठबद्धता हो तो उक्त २-२ गोलियां रात्रि के समय गरम दूध के साथ लिया करें।

(२२) प्रमेह, स्वप्नदोष एवं नपुंसकता पर—हरे ताजे पत्रों को कूटकर ८ गुना जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार छान पुनः पकावें। खूब गाढ़ी एवं कड़ी हो जाने पर उसमें समभाग मिश्री का चूर्ण मिलाकर सुरक्षित रक्खें। मात्रा—२ से ४ रत्ती तक प्रातः सायं लेते रहने से उक्त विकार दूर होते हैं। वीर्य पुष्ट होता है बल की वृद्धि तथा वाजीकरण होता है।

(२३) सर्प विष पर—सर्प दंश होने पर विष के कारण बेहोशी आ जाने पर पीपल वृक्ष की एक ऐसी डाली तुड़वाकर मंगवालो, जिसमें २०-२५ बड़े बड़े हरे चमकदार पत्ते लगे हों। उसी डाली से दो पत्ते मय डंठल (पत्तों में लगी हुई लम्बी डंठल सहित) के तोड़कर तथा मरीज को किसी प्रकार बैठाकर उसके पैर सीधे कर एक एक आदमी एक-एक पैर मजबूती से दाब कर बैठ जावे और उसके दोनों हाथ सीधे करके जमीन

Scanned with CamScanner

पर रखवा कर १-१ आदमी १-१ हाथ दृढ़ता से पकड़ कर बैठ जावे। पांचवां आदमी मरीज की पीठ की ओर बैठ कर उसका सर पकड़ लें (ये पांचों आदमी तन्दुरुस्त और हिम्मती होने चाहिए)। यह दृढ़ता से पकड़ने की क्रिया इसलिए की जाती है कि मरीज किंचित भी हिल डुल न सके। फिर मरीज के कान में पत्ता डालने वाला व्यक्ति मरीज के मुंह के सामने एक एक पत्ता अपने दोनों हाथों में लेकर बैठ जाये और अपने हाथ में लिए पत्ते में लगी सींक (डंठल) को पकड़ कर प्रथम किसी भी एक कान में धीरे-धीरे डंठल के अग्रभाग (नोंक) को कान के अन्दर प्रविष्ट करें। ज्यों ही पत्ते की सींक, कान के पर्दे के पास पहुंचेगी यदि सर्प का ही विष होगा तो तुरन्त ही मरीज चीखने चिल्लाने लगेगा। उसी समय सींक को उसी स्थान में रोक दें, आगे न बढ़ावें तथा अपने हाथ की हथेली का सहारा मरीज की कनपटी (कान के नीचे के भाग) में इस प्रकार करलें कि सींक अपने स्थान से न आगे जा सके न पीछे निकल सके। फिर प्रथम कान की भांति दूसरे कान में भी उतनी ही सींक प्रविष्ट करें तथा इस हाथ को भी कनपटी का सहारा देकर आप दोनों कानों में पत्ते लगाये हुए शांति से बैठे रहें मरीज को चीखने चिल्लाने दें। पकड़ने वाले पांचों व्यक्तियों को सावधान करते रहें, मरीज उठने या हिलने डुलने न पावे।

उस समय मरीज के कानों में भीषण दर्द होता है क्योंकि पत्ते विष को बाहर खींचते हैं और विष पत्तों को अन्दर खींचता है। मरीज बहुत ही छटपटाता है, अण्ट-सण्ट जोर-जोर से बकने लगता है। ऐसे समय न घबड़ाते हुए उसे दृढ़ता से पकड़े रहने की आवश्यकता है। पत्ते पकड़ने वाला व्यक्ति अपने हाथों को ढीला न करे अन्यथा सींक अन्दर घुसकर कान के पर्दे फाड़ देगी। ध्यान रहे पत्तों को डाल से तब ही तोड़ना चाहिए जब पांचों व्यक्ति मरीज को दृढ़ता से पकड़ कर बैठ चुके हों। डाल से तोड़कर तुरन्त ही पत्तों को डंठल की ओर से कान में धीरे-धीरे प्रविष्ट करना चाहिए। ५-१० मिनट में पत्ते जहर को खींच लेते हैं। ज्योंही जहर समाप्त होगा मरीज चिल्लाना बन्द कर देगा तब पत्ते बाहर खींच लेवें और उसे नीम की पत्ती चबाने को देवें। यदि वह थूक दे और कहे कि कड़वी है तो समझ लो जहर नहीं है। यदि वह चबाता जावे थूके नहीं तो समझो अभी विष शेष है। तब फिर दूसरे पत्ते उसी प्रकार लगावें। ४-५ मिनट में शेष रहा विष भी साफ हो जावेगा।

यदि सर्प दंश होकर कई घंटे व्यतीत हो गये हों, मरीज बिल्कुल मरणासन्न हो किन्तु उसकी नाड़ी में कुछ गति हो, मर न गया हो तो वह भी इस उपचार से ठीक हो जाता है। ऐसी दशा में हर दस मिनट के बाद पत्ते बदलना पड़ेगा। दस मिनट से पूर्व कदापि न बदलें चाहे १५ मिनट भले ही हो जावें। ध्यान रहे कान से निकाले हुए पत्ते को जमीन में गाड़ देवें या जला देवें। यदि कोई पशु खा लेगा तो मर जावेगा।

रोगी के ठीक हो जाने पर उसे ५ तोला से ७॥ तोला तक गाय के शुद्ध घृत में १०-१२ कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर पिला देवें और कम से कम ८ घंटे सोने न देवें। गोघृत के अभाव में भैंस का घृत दे सकते हैं। पश्चात् ३ दिन तक दूध का अधिक सेवन हो, भोजन हलका दिया जावे।

नोट—श्री मेवालाल उर्फ वीरेन्द्र तार्किक जी (मुकाम पोस्ट मूसानगर जिला कानपुर यू० पी०) ने इस पीपल पत्र के चमत्कारिक प्रयोग का विस्तृत सचित्र विवरण अपनी पुस्तक 'विषधर सर्प काटे की अचूक चिकित्सा' में प्रकाशित किया है। उसी का संक्षेप सारांश यहां दिया गया है। उक्त प्रकार का प्रयोग अफीम के तथा पारद के विष पर भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

(२०) कर्ण पीड़ा पर—इसके हरे पत्तों को तेल लगाकर ऊपर नीचे रखकर उसका दोना बनाकर उसमें अंगारे भर कर उसे कान के छिद्र से जरा ऊपर इस प्रकार रखें कि उसमें जो तेल टपके वह कान के भीतर जावे। इस तेल के कान में जाते ही कर्ण पीड़ा शीघ्र ही बन्द हो जाती है। —वृ० मा० तथा बं० से०

फल—पीपल के पके फल—मधुर, शीतल, हृद्य, पाचक, अनुलोमिक, मृदुरेचक, संकोच विकास प्रतिबन्धक, रक्त शोधक, गर्भस्थापक, बाजीकरण, प्रमेह नाशक होते हैं तथा पित्त, विष, दाह, वमन, शोष, अरुचि, रक्तपित्त, आक्षेप, उदरशूल, विबन्ध आदि विकारों में प्रयुक्त होते

Scanned with CamScanner

है। ये वातपित्त शामक है।

रक्तविकार में रक्त शुद्धि के लिए फल के चूर्ण को २-४ माशे तक शहद से चटाते हैं। इससे श्वास रोग में भी लाभ होता है। बालकों के तुतलाने पर—पके फलों को खिलाते हैं। इससे वाणी का सुधार होता है।

(२१) प्रमेह पर—शुष्क फलों का चूर्ण १ से २ तोला तक या बीजों का चूर्ण ६ माशा लेकर उसमें सांभर मृग के सींग की भस्म २ से ४ रत्ती तक और थोड़ा शहद मिला चाटकर ऊपर से तक्र पान करने से प्रायः समस्त प्रमेह एवं तज्जन्य उपद्रव नष्ट होते हैं।

—भा० भै० र०

(२२) गर्भधारणार्थ (वंध्यत्व निवारणार्थ)—छायाशुष्क फलों के चूर्ण के साथ ½ भाग कमलगट्टे का चूर्ण तथा ½ भाग असली वंशलोचन का चूर्ण मिला कर मात्रा ४ माशा तक प्रातः सायं मासिक धर्म से निवृत्त हो जाने पर कच्चे या धारोष्ण गो दुग्ध के साथ सेवन कराने से जिस स्त्री के सन्तान न होती हो या होकर मर जाती हो उसे अवश्य लाभ होता है। कम से कम ३ मास तक सेवन कराना चाहिए। यह योग स्त्री के प्रदरादि सर्व विकारों को दूर कर हृष्ट पुष्ट बनाता है।

अथवा केवल फलों के चूर्ण को ही उक्त प्रकार से ऋतुधर्म के पश्चात् १४ दिन तक सेवन कराने से इच्छा-पूर्ति होती है। दुग्ध, मक्खन का अधिक सेवन कराते रहें।

नोट—ध्यान रहे वंध्यत्व दोष के कई कारणों में से प्रायः पित्त प्रकोप जन्य योनि दोष भी एक मुख्य कारण हुआ करता है। अतः उक्त प्रयोग के या कोई भी प्रयोग के साथ ही साथ स्त्री को चाहिए कि यह प्रतिदिन नियमित रूप से स्नानादि से शुद्ध होकर पीपल वृक्ष की प्रातः ६ से १२ बजे के समय में ७ प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करे। पीपल की शीतल वायु एवं छाया का लाभ होकर अधिकांश में पित्त शमन होता है।

(२३) उदर दाह, मन्दाग्नि एवं कोष्ठ बद्धता पर—फलों के बीज ३ माशा तक लेकर जल के साथ पीस छानकर खांड या मिश्री मिलाकर पीने से उदर की जलन दूर होती है।

मन्दाग्नि पर—छायाशुष्क फलों का चूर्ण १ माशा तक प्रतिदिन दूध या जल के साथ लिया करें। इससे कोष्ठबद्धता (कब्जी) भी दूर होती है।

दूध—पीपल वृक्ष का दूध या रस-वेदना, शोथ, रक्तस्राव, पाददारी (बिवाई) आदि पर लगाया जाता है।

वृक्ष के पिण्ड पर गोदने से या कोमल पत्तों को तोड़ने से जो दूध जैसा रस निकलता है, उसे शोथयुक्त वेदना पर, शरीर में कहीं कुछ लग जाने से रक्तस्राव होता हो उस पर, खरोंचों या बिवाई पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

[२४] नेत्र विकार पर—उक्त दूध को नेत्रों में आंजने से नेत्रों की लाली, पीड़ा शीघ्र ही दूर होती है। तथा अनेक नेत्र रोग नष्ट होते हैं।

[२५] प्रमेह तथा श्वेत प्रदर पर—इसका दूध ३ से १२ बूंद तक वंशलोचन के चूर्ण में मिलाकर मुंह में डालें तथा ऊपर से धारोष्ण गोदुग्ध प्रातःकाल पीने से प्रमेह शीघ्रपतनादि विकार दूर होते हैं।

स्त्रियों के श्वेत प्रदर में दूध १० बून्द तक बताशे में डालकर प्रातः सेवन करें, ऊपर से गोदुग्ध आधा सेर तक पीवें

—ह. मो. अ. रो.

[२६] मूर्च्छा तथा वृक्क शूल पर—इसका दूध २ से ४ बून्द रोगी के नथनों [नाक] में टपकावें और इसी दूध में समभाग उत्तम शहद मिलाकर मस्तक पर लेप कर दें। सन्निपात, अपस्मार, हृदय दौर्बल्यादि से होने वाली मूर्च्छा में शीघ्र लाभ होता है।

दर्द गुर्दा या वृक्क शूल में इस दूध की १० बूंदें पोदीना के पीसे हुये १ तोला पत्तों की लुगदी में मिला टिकिया सी बना चिलम में रख तम्बाकू की तरह धूम्रपान करने से शीघ्र लाभ होता है।

—ह. मो. अ. रो.

(२७) बदगांठ पर—फूटी हुई बद पर इसके दूध में गंधा बिरोजा का चूर्ण मिला वस्त्र की पट्टी पर फैला कर बांधते रहें। पूय से पट्टी खराब होने पर बदलते रहें। बदगांठ मिट जाती है।

—गां. औ. र.।

नोट—उक्त योग में गन्धा बिरोजा के स्थान पर कहं रवा (चन्दरस) भी लिया जाता है।

Scanned with CamScanner

लाख—पीपर के पुराने पेड़ों पर जो एक प्रकार का निर्यास या गोंद निकाल कर शुष्क हो जाता है, वही पीपल की लाख, लाह (लाक्षा) कहलाती है।[1] यह लघु कसैली, कटु विपाक व शीत वीर्य (अनुष्ण वीर्य) वल्य, रक्तशोधक, स्निग्ध, रंजक, भग्नसंधानकृ, स्तंभन, वर्णप्रद, कफपित्तशामक, लेखन, तथा कफ, पित्त, शोप, दाह, विप, रक्तविकार, विषमज्वर, हिक्का, कास, उरःक्षत, नासारोग, विसर्प, कृमि, कुष्ठ, व्रण, चर्मरोग, रक्तस्राव, श्वास, प्रदर, क्षय, सर्वाङ्गशोथ आदि विकारों पर प्रयुक्त होती है।

(२८) रक्तष्ठीवन बंद करने के लिए आधा से १ मा. तक धोई हुई शुद्ध लाख बकरी के दूध के साथ खिलाते हैं, या लाख[2] के रस या पानी में शहद मिलाकर पिलाने से रक्त की वमन बन्द होती है। शोप या उरःक्षत जन्य रक्त की वमन पर—दूध में घृत व शहद मिलाकर उसके साथ लाख के चूर्ण का सेवन करावें। —यो. र.

अथवा लाख का चूर्ण १-१ मा. दिन में ३ बार घृत और शहद मिला कर देते रहने से उरःक्षत से गिरता हुआ रक्त बन्द होता है, क्षत भरता है, तथा कफ सरलता से बाहर आ जाता है। —गां. औ. र.।

अथवा—दूध में शहद मिलाकर उसके साथ इसके चूर्ण को सेवन करने तथा औषधि पच जाने पर दूध भात खाने से क्षतज रक्तस्राव एवं रक्तातिसार शीघ्र ही बन्द हो जाता है। —यो० र०

अथवा-लाख को घृत में पकाकर, फिर चूर्ण कर उसमें दूध मिलाकर पिलाने से भी उरःक्षत एवं रक्तप्रदर आदि में लाभ होता है।

ऊर्ध्वग रक्तपित्त में— साफ धोकर महीन चूर्ण की हुई कच्ची लाख को १ मा० की मात्रा में लेकर उसमें घृत में भूना हुआ शुद्ध गेरू ४ रत्ती मिला (यह १ मात्रा है) दूध के साथ सेवन से विशेप लाभ होता है।

इसकी ताजी लाख ६ माशा (यदि सूखी मिले तो ३ माशा) के साथ समभाग श्वेतजीरा महीन पीसकर उसमें १ तोला गुलकन्द मिला, शर्बत अनार से तरकर ४ बार ४-४ घंटे से खाने से मुख से रक्त गिरना अवश्य बन्द हो जावेगा। —गृ० चि०

(२९) हिक्का, श्वास कास पर—हिक्कापर—लाख का चूर्ण १-१ मा० शहद के साथ बार-बार चटाते हैं तथा इसे दूध में मिलाकर नस्य देते हैं।

---

[1] वास्तव में यह निर्यास या गोंद नहीं है—यह जांगम द्रव्य है जो पीपल, ढाक, वट, बेर आदि वृक्षों की पतली टहनियों पर एक प्रकार के काकस लक्का (Coccus Lacca) नामक लाल रङ्ग के बहुत छोटे-छोटे कीड़ों द्वारा पैदा किया जाता है। वैसाख और आश्विन के महीनों में व्यापारी लोग वृक्षों से इस लेसदार, चिपकनी सी रक्ताभ या गाढ़े भूरे रङ्ग की लाख को वृक्षों से छुड़ाकर सुखाते हैं। चिकित्सा कार्यार्थ सबसे श्रेष्ठ लाख पीपल वृक्ष की ही मानी गई है।

सुश्रुत ने लाक्षादिगण में इसे आदि स्थान दिया है।

नाम—

सं०— लाक्षा, पलंकषा, वृक्षामय, अलक्त, जतु इत्यादि। हिन्दी—लाख, लाह। मराठी, गुजराती—लाख। बंगाली—लाही, गाला। अंग्रेजी—लेक (Lac)। लेटिन—कोकस लेक्का (Coccus Lacca), टकार्डिया लक्का (Tachardia Lacca)।

नोट—यह विशेषतः जांगल प्रदेशों के वृक्षों पर पाई जाती है। रांची में इसका एक बड़ा उत्पादन केन्द्र है। औषधि की अपेक्षा इसका रङ्ग, वार्निश आदि कार्यों में अत्यधिक उपयोग होता है। विदेशों में उत्पन्न न होने से यह निर्यात व्यापार की एक प्रमुख वस्तु है। यहां पर भी महावर या अलता, चपड़ा, गुलाल आदि कई पदार्थ इसके द्वारा बनाये जाते हैं।

[2] लाक्षा रस की विधि—लाख में $\frac{1}{10}$ (दशमांश) लोध्र तथा लोध्र से दशमांश सज्जीखार एवं कुछ बेर के पत्र मिला १६ गुना जल में पकावें। चतुर्थांश शेप रहने पर उतार कर छान लें। यह अत्युत्तम लाल वर्ण का लाख का रस तैयार होता है। (योग रत्नाकर) अथवा लाख के चूर्ण को कपड़े में बांधकर दोलायंत्र विधि से ६ गुना जल में पकाकर २१ बार छान लें। अथवा चूर्ण ८ गुना जल मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छान लेवें। —भै० र०। उक्त यो० र० की विधि सर्वश्रेष्ठ है।

Scanned with CamScanner

शुष्क कास में इसका चूर्ण ३ से ८ रत्ती तक की मात्रा में, घृत और शक्कर के साथ दिन में ३ बार चटाते रहने से कास का वेग शांत होता है। श्वास में भी इसी योग से लाभ होता है।

क्षतज कास या रक्त कास पर—लाख, काकड़ासिंगी, खरैंटी, मुनक्का, कटेरी, मुलेठी, शतावर तथा पिप्पली १-१ भाग, खांड़ सबसे ४ गुनी और बंसलोचन इन सबसे २ गुना लेकर चूर्ण कर रखें। मात्रा ३ मा० शहद व घृत में मिला कर सेवन करते रहने से पित्त प्रधान क्षतज कास में लाभ होता है। —ग० नि०

अथवा—केवल लाख का चूर्ण ४-४ रत्ती, घृत, शहद और शक्कर के साथ मिलाकर दिन में ३ बार देते रहने से कास का वेग भी शांत होता है। इस योग से जीर्णज्वर, निर्बलता, अग्निमांद्य, मलावरोध आदि दूर होकर रोगी स्वस्थ एवं सबल बन जाता है।

बालकों की कुक्कर कास (काली खांसी) पर—लाख का चूर्ण २-२ रत्ती की मात्रा में ३ मा० मक्खन मिला दिन में तीन बार देते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है। — गां. औ. र.

(३०) रक्तार्श तथा रक्त-क्षय पर—लाख, हल्दी, मजीठ, मुलैठी व नीलोफर समभाग एकत्र चूर्ण कर बकरी के दूध के साथ सेवन से रक्तार्श का नाश होता है। —ग. नि.।

रक्त क्षय पर—पेठा (कुम्हड़ा) के गूदे के रस में १ से दो मा० तक पीसकर सेवन से लाभ होता है। —वृ. नि. र.।

(११) बाल रोगों पर लाक्षादि तैल—लाक्षारस ४ सेर, तिल तैल एक सेर, दही का पानी (या दही से दो गुना पानी मिलाकर बनाया हुआ तक्र) १६ सेर, तथा कल्कार्थ रास्ना, लाल चन्दन, कूठ, नागरमोथा, असगन्ध हल्दी, दारु हल्दी, सोया, मुलेठी, मूर्वामूल, कटुकी और सम्हालू (निर्गुण्डी) के बीज २-२ तो० सबको पानी में पीसकर बनाई हुई लुगदी (कल्क) लेकर, उक्त तैल व दही के पानी में मिला मंदाग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान रखें। इस तैल की मालिश से बालकों का ज्वर नष्ट होता, बल एवं वर्ण की वृद्धि होती, तथा ग्रह भूत प्रेत से रक्षा होती है। —भै. र.

बालकों के आक्षेप या धनुर्वात पर—लाख का चूर्ण १-१ रत्ती दूध में मिलाकर दिन में २ बार देते रहने से लाभ होता है।

बालकों की कुक्कर खांसी पर—ऊपर प्रयोग नं. २६ में देखिये। अन्य बाल रोगों में लाक्षादि घृत आगे विशिष्ट योगों में देखें।

(३२) दंत विकारादि मुख रोग पर (तैल)—लाख का रस, गोदुग्ध, तिल तैल ६४-६४ तो० तथा विट्खदिर (दुर्गन्धित खैर) की छाल १२८ तो. को ८ गुना पानी के साथ चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर उसमें उक्त तैलादि तथा निम्न द्रव्यों का कल्क-लोध, कायफल, मजीठ, कमलकेसर (पाठान्तरानुसार-नागरमोथा, नागकेसर) पद्माख, लाल चन्दन, नीलोफर और मुलैठी ४।४ तो० का कल्क एकत्र मिला, मंन्दाग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रखलें।

इस तैल का गण्डूष धारण करने से (कुल्ले करने से) दन्तशूल, दांतों का हिलना, दांतों का गिरना, दांतों पर पथरी जैसा मल की परत जमना (Tartar) तथा उसके साथ ही दांतों के छिलके उतरना (कपालिका), शीतार्द (कफरक्तजन्य दन्तमूलगतरोग, जिसमें मसूढ़ों से रक्त-स्राव होता है (Bleeding or spongy gums) मुख-दौर्गन्ध्य, अरुचि, मुख की विरसता (मुख का स्वाद बिगड़ना) आदि रोग दूर होते हैं।

(३३) ज्वर पर—(लघु लाक्षादि तैल)—लाख, हल्दी, मजीठ ४-४ तो. एकत्र कल्क कर १२८ तोला तिल तैल, तथा तैल से ६ गुना आरनाल (एक प्रकार की कांजी जो कच्चे या पके हुए भूसीरहित गेहूं के टुकड़ों से सन्धान विधि से तैयार की जाती है। टुकड़ों को ८ गुने जल में पकावें। आधा जल शेष रहने पर मिट्टी के घड़े में डाल मुख बन्द कर रख दें। ३-४ दिन बाद जब वह उठ आवे तब छानकर काम में लावें। यह मल भेदक, दीपक, ग्रहणी, अर्श एवं कफनाशक तथा उदावर्त, अंगमर्द, अस्थिशूल, आनाह में उत्तम हितकर है) सबको एकत्र मिला मंदाग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रख लें। इसके अभ्यङ्ग से ज्वर एवं तज्जन्य दाह और

Scanned with CamScanner

शीत नष्ट होता है। —गौ. र.।

नोट—ज्वरादि रोगों पर वृहत् लाक्षादि तैल–आगे विशिष्ट योगों में देखिये।

(३४) अस्थि भग्न–(लाक्षा गुग्गुल)—लाख, हड़ संहारी, अर्जुन की छाल, असगंध व नागबला १-१ भाग तथा शुद्ध गूगल सबके बराबर लेकर एकत्र कूट पीसकर गोलियां बनालें। मात्रा—४ रत्ती से २ मा. तक सेवन तथा भग्न स्थल पर प्रलेप करने से हड्डी का टूटना एवं संधिच्युत, अस्थि की वेदना दूर होकर वह अङ्ग दृढ़ हो जाता है। —भै० र०।

(३५)शूलों पर–(लाक्षा रसादि घृत)—लाख का रस (लाक्षा रस की विधि ऊपर प्रयोग नं० २८ की पाद टिप्पणी में देखें) दही और दूध २-२ सेर, मक्खन १½ सेर तथा चन्दन, मुलैठी, पटोल, आमला और खांड ३-३ तोला का कल्क, एकत्र मिला मन्द आंच पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान लेवें।

इस घृत की नस्य लेने से भ्रूशूल (भौंवों का शूल,) शंख शूल(कनपटी का शूल), क्षतज एवं क्षयजन्य शूल तथा दिन वृद्धि के साथ बढ़ने वाला शूल दूर होता है। —हा० सं०।

(३६) कुष्ठ पर—(लाक्षाद्युद्वर्त्तन)—लाख, सरल का गोंद या लोभान, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत सरसों, त्रिकटु, मूली के बीज व पंवाड़ के बीज समभाग चूर्ण बना लेवें। इसे खट्टी कांजी या नीबू के रस में पीसकर कुष्ठ पर मसलने से सिध्म, किटिभ तथा दाद का नाश होता है। —वं० से०।

(३७) निद्रानाश तथा रक्ताभिष्यन्द पर–मस्तिष्क की उग्रता जन्य निद्रानाश हो तो रात्रि के समय लाख का चूर्ण १ से १½ मा० तक शक्कर मिले हुए भैंस के दूध के साथ सेवन से शांत निद्रा आती है। —गां० औ० र०।

रक्ताभिष्यन्द (पित्तज नेत्राभिष्यन्द जिसमें नेत्र रक्त के समान, अति संतप्त एवं दाहकारक होते हैं) पर—लाख, मुलैठी, मजीठ, लोध, तगर व पुण्डरिया (पुण्डरीक) समभाग जल के साथ पीसकर कपड़े से निचोड़कर जो रस निकले उसे आंख में डालने से लाभ होता है। —वं० से०।

(३८) नारू तथा सर्पादि कीटकों को भगाने के लिए—लाख के साथ देशी साबुन को पानी में पीस कर गरम कर प्रलेप करने से नारू की सूजन दूर होती है। —व० चं०

लाख, भिलावा, बिरोजा, श्वेत कोयल की जड़, अर्जुन के फल व फूल, वायविडङ्ग, राल और गूगल सम-भाग (भिलावा बहुत कम) लेकर कूट कर रखलें। इसकी धूप देने से कीड़े, सांप, चूहे, मच्छर, घुण, मकड़ी, खटमल, नाली की सड़न के कीटक आदि नष्ट हो जाते हैं या दूर भाग जाते हैं। —भै० र०

नोट—मात्रा–पीपल की छाल या पत्र स्वरस १-२ तोला। क्वाथ ५-१० तोला। चूर्ण (फल व बीजों का) १-३ माशा। पीपल का दूध १ माशा से २ तोला तक। पत्र के अभाव में बरगद के पत्र लेवें।

लाख—५ से १० रत्ती या २ माशा तक। प्लीहा के विकार में लाख हानिकारक है; हानि निवारणार्थ–मस्तंगी देते हैं। इसका प्रतिनिधि बंसलोचन है। गर्भिणी स्त्री को लाख का सेवन नहीं कराना चाहिए, गर्भ नष्ट होने का भय है। लाख केवल मद्यसार (अल्कोहल) तथा आंत्रान्तर्गत क्षार में घुलनशील होती है। जो औषध किसी कारणवश आंत्र तक नहीं पहुंच पाती, उसे लाक्षा निर्मित कैपसूल में भर कर खिलाने से वह आंत्र में ठीक प्रकार से पहुंच जाती है। वहां आंत्रान्तर्गत क्षार में कैप-सूल घुल जाता है तथा औषधि अपना कार्य ठीक-ठीक करती है। औषधि का अप्रिय स्वाद रोगी को मालूम नहीं देता।

विशिष्ट योग–

(१) पीपल की घनसत्व—पीपल वृक्ष का पंचांग (पत्र, फल, मूल, छाल, जटा या दाढ़ी, जटा के अभाव में कोंपलें) लेकर कूटकर १६ गुना जल में २४ घण्टे तक भिगोने के बाद आग पर पकावें। जब एक भाग जलकर शेष रह जावे उतार कर छान लेवें और फिर वाटर बाथ पर पकावें ताकि भाप की गर्मी से अफीम

जैसा गाढ़ा हो जावे। इस सत्व को सुरक्षित रखें। यदि इसकी गोलियां बनती हों तो इस सत्व को और भी अधिक गाढ़ा कर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें या थोड़ा बंशलोचन महीन पीसकर मिलाकर गोलियां बनावें। इस प्रकार चांदी का वर्क भी चिपका सकते हैं। १ से २ गोली तक रात्रि के समय दूध के साथ सेवन से मस्तिष्क दौर्बल्य, स्मरण की निर्बलता, स्मृति भ्रंश, भ्रम, उन्माद, पीनस, जुकाम आदि के लिये अत्यन्त लाभदायक है। कास, श्वास पर २-२ गोलियां प्रातः सायं दिया करें। हृदय दौर्बल्य पर १ से २ गोली प्रतिदिन स्वच्छ जल के साथ अथवा निम्न पीपल पत्रार्क ५ तोला के साथ सेवन करावें। कोष्ठबद्धता या कब्ज हो तो १ से २ गोली तक रात्रि को दूध के साथ देवें। मूत्रदाह, उष्णवात पर इसे शर्बत (या निम्न पत्रार्क से निर्मित शर्बत) के साथ मिलाकर अथवा पीपल के हरे ७ पत्रों को खूब पीस कर ४० तोला जल में घोल छानकर उसमें मिश्री मिलाकर बनाये हुये शर्बत के साथ सेवन करावें।

इन गोलियों को प्रातःसायं दूध के साथ सेवन से प्रमेह, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन एवं नपुंसकता में भी लाभ होता है। इससे बाजीकरण भी होता है। उरःक्षत तथा राजयक्ष्मा हो तो रोग के आरम्भ में ही १-२ गोली दिन में ३ बार अर्क गाजवान के साथ सेवन करावें।

—ह. मो. अ. रोड़ी वाले की पुस्तक से साभार।

[२] पीपल पत्रार्क—इसके पत्र आवश्यकतानुसार लेकर जल में भिगोये रक्खें, तथा प्रातः भवके द्वारा अर्क खींचकर श्वेत बोतलों में बन्द कर सुरक्षित रखें।

मात्रा ५ तो. दिन में ३ बार सेवन कराने से हृदय की निर्बलता दूर होकर भ्रम आदि में लाभ होता है।

इस अर्क में २ भाग मिश्री मिलाकर शर्बत तैयार करलें तथा प्रतिदिन दो बार २ तो. इस शर्बत में थोड़ा गुलाब का अर्क तथा १॥ तो. जल मिलाकर पिलाने से हृदय को ठंडक पहुंचती है। यह हृदयानन्द शर्बत हो जाता है।

—ह. मो. अ रो.

[३] अश्वत्थासव (वंध्यत्व निवारक)—पीपल वृक्ष की अन्तर छाल २० सेर जौकुटकर २ मन पानी में २४ घण्टे भिगोकर आग पर पकावें। २० सेर पानी शेष रहने पर गल छान कर ५ सेर गुड़ उसमें घोलकर मिट्टी के चिकने मटके में भर उसमें पीपल की अन्तर छाल, पीपल की दाढ़ी, पीपल की लाख, पीपल के ताजे कोमल पत्र, तथा पके फल प्रत्येक २०-२० तो. आमला, खस, श्वेत-चन्दन, नागरमोथा, धनिया, श्वेत जीरा, बबूल की छाल, गूलर छाल, बरगद की छाल १०-१० तो. और धाय के फूल १¼ सेर सबको जौकुट कर मिलाकर एवं पात्र का मुख बन्द कर १ मास तक सुरक्षित रक्खें। पश्चात् छानकर बोतलों में भर देवें।

मात्रा—२ से ४ तो. तक, दो गुना जल मिलाकर सेवन से बन्ध्यत्व, प्रदर, प्रमेह, नपुंसकत्व, रक्त विकार, ज्वर, क्षय आदि रोग दूर होते हैं। इसे ३ या ४ मास तक नित्य नियमित सेवन करने से स्त्री का बांझपन दूर होकर पुत्रोत्पन्न होता है। ध्यान रहे, इसके सेवन काल में स्त्री को दूध का खूब सेवन करना चाहिये, अन्यथा तंदिक हो जाने की संभावना है।

स्व० मिश्र बलवन्त शर्मा, फर्रुखाबाद।

नोट—कुष्ठनाशक अश्वत्थारिष्ट आदि के प्रयोग हमारे वृ. आसवारिष्ट संग्रह ग्रंथों में देखिये।

[४] लाक्षादि घृत—लाख, कूट, वायविडंग, चोंड़, हल्दी, दारूहल्दी, छोटी इलायची, पद्माख, लोध, कमल, नागकेशर, कैथ, तूतिया, सिरस की छाल, कटसरैया तथा लिसोड़े के पत्र, इनके क्वाथ और कल्क के साथ यथाविधि घृत सिद्ध करें। यह घृत कीट, मूषक, सर्पदंश एवं अनेक प्रकार के विस्फोटक और मकड़ी के मूत्र से उत्पन्न बालकों के विसर्प तथा गण्डमाला में (स्त्रियों के लिये भी) अमृत के समान गुणकारी है।

—वं. से.

[५] लाक्षादि तैल—उक्त बाल रोग के प्रयोग नं. ३१ में जो लाक्षादि तैल का प्रयोग है, उसे ही कई ग्रंथों में महालाक्षादि तैल नाम दिया गया है। तथा कहा गया है कि यह तैल समस्त विषमज्वरों को शीघ्र ही नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त यह कास, श्वास, प्रतिश्याय, कण्डू, दुर्गन्ध, शरीर का भारीपन, त्रिक देश पीठ, एवं कमर की पीड़ा, शरीर की हड़फूटन आदि का नाशक है।

Scanned with CamScanner

महालाक्षादि तैल के अन्य प्रयोग शास्त्रों में देखें।

[६] हलुआ पीपल—इसके पके फलों को सुखाकर महीन चूर्ण कर इसके ४ भाग में असगंध चूर्ण १ भाग, व घृत ४ भाग, लेकर प्रथम घृत को मंद आंच पर रख उसमें उक्त मिश्रण को डालकर करछी से चलाता रहे जिसमें किसी प्रकार औषध जलने न पावे। फिर उसमें मिश्री ८ भाग मिला हलुवा सिद्ध करलें। बलानुसार नित्य सेवन से विशेष शक्ति वृद्धि, स्त्रियों के गर्भाशय-विकार कमर पीड़ा, मुख पाक आदि में लाभ होता है।

—स्वामी श्री सच्चिदानन्द जी।

नोट—पीपल की छाल, कोंपलें तथा इसकी लकड़ी की राख के योग से नवकिया हरताल, हिंगुल, नाग, बंग, पारद आदि की भस्में निर्माण की जाती हैं तथा पीपल की राख से स्याही बनाई जाती है। खेद है, विस्तार भय से हम यहां सबकी निर्माण विधि नहीं दे सके। पाठक अन्य ग्रन्थों में देखने की कृपा करें।

पीपल की लकड़ी का गिलास बनवाकर उसमें जल भर कर रात में धर दें। प्रातः इसे पीने से मस्तिष्क में तरावट, वीर्यपुष्ट एवं चर्म रोग नष्ट होते हैं। इस गिलास में दूध भरकर १ घंटा बाद पीने से भी उक्त लाभ होता है, तथा स्त्रियों को गर्भधारण की शक्ति पैदा होती है।

पीपल-पाकर (गया अश्वत्थ) (Ficus Rumphi)
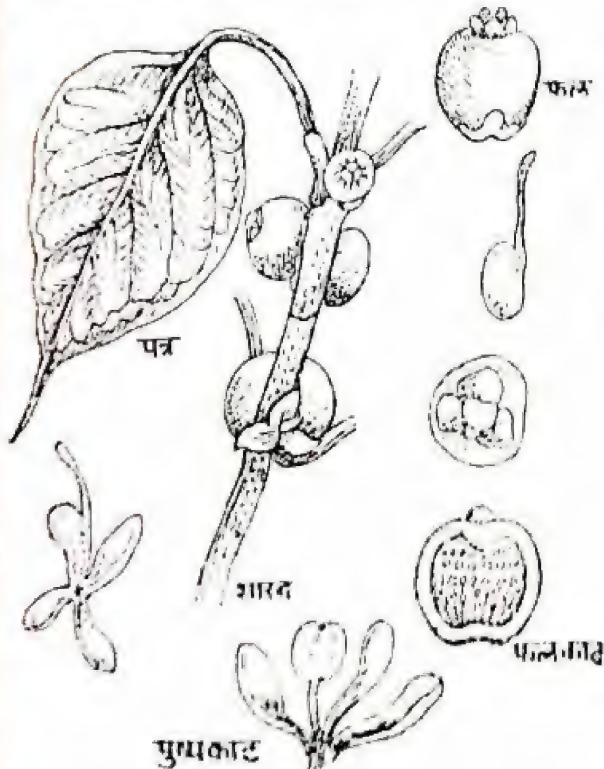
यह पीपल (अश्वत्थ) वृक्ष का ही एक भेद है। इसका भी वृक्ष कुछ बड़ा होता है। पत्र–४–६ इंची, ३-६ संयुक्त, सिरायुक्त, पत्रवृन्त २½ से ३½ इंच लम्बा; पुष्प-शाखाओं के सन्धिस्थान में पुष्प डिम्बाकृति, आभ्यन्तर कोष चिकना, पुंकेसर एक; फल-गोल, छोटा; बीज कड़े होते हैं। ग्रीष्म के प्रारम्भ में फल आते हैं तथा वर्षा काल में पकते हैं। इसकी जड़ मोटी होती है। शाखाओं में अंकुर निकलते हैं।

इसके वृक्ष बंगाल, मध्य भारत तथा हिमाचल प्रदेशों में पाये जाते हैं। इसे बेलिया पीपल कहते हैं।

नोट—इसे कहीं कहीं पारस पीपल कहते हैं। किंतु वह इससे भिन्न है। पीछे पारस पीपल का प्रकरण देखिये।

नाम–

सं.—नन्दी वृक्ष, प्ररोही, स्थाली वृक्ष, क्षयतरु इ.। हि.—पाकर पीपल। मं.—पेर। बं.—गया अश्वत्थ।

प्रयोज्याङ्ग—फल।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्वादिष्ट, कटु, तिक्त, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, ग्राही, पित्त कफ तथा रक्त विकार नाशक है।

कोंकण की ओर फल का रस कृमिरोग पर देते हैं।

श्वास रोग पर—इसके रस में हल्दी व कालीमिर्च का चूर्ण मिला कर घृत के योग से मटर जैसी गोलियां बना कर सेवन कराते हैं।

Scanned with CamScanner

पीपल पहाड़ी-दे.-पाकर में। पीपला मूल--दे.-पिप्पली में। पीला चम्पा--दे.-चम्पा पीला।

पीला बरियार (Sida Rhombifolia)

गुडूच्यादि वर्ग एवं कार्पास कुल (Malvaceae) के इस खरेंटी जैसे झाड़ीदार, सीधे १-२ फुट ऊंचे क्षुप के पत्र-२-२ इंच लम्बे; एकान्तर, लट्वाकार, चतुर्भुजाकार, दन्तुर; पुष्प छोटे छोटे, खरेंटी पुष्प जैसे किंतु इससे कुछ बड़े, पीत वर्ण के तथा श्वेतवर्ण के पुंकेशर अनेक; फल-खरेंटी के फल जैसे ही किंतु दोनों ओर दो शृंगाकार भागों से युक्त; बीज प्रत्येक फल में १–२ होते हैं। वर्षा के बाद फूल व फल आते हैं।

यह प्रायः सर्वत्र भारत वर्ष में पाया जाता है। ऊसर भूमि में अधिक होता है।

नोट —यह खरेंटी या पीतबला (जिसका सचित्र वर्णन भाग २ में खरेंटी के प्रकरण में किया है) का ही एक विशेष उपभेद है। इस उपभेद के भी कई अन्य उपभेद कहे जाते हैं; जिनमें श्वेतबला (Sida Rhomboidea) भी एक है, इसके पुष्प श्वेत वर्ण के होते हैं।

इस पीतपुष्पबला (पीला बरियार) को महाबला कहना तो ठीक है, किन्तु इसे ही सहदेवी मानना या कहना (जैसा कि भावप्रकाशकार ने इसके पर्याय में कहा है [1]) ठीक नहीं है। वास्तविक सहदेवी इससे भिन्न कुल, वर्ग की है। आगे यथास्थान सहदेवी का प्रकरण देखिये।

इसे सहदेवा कह कहते हैं, क्योंकि चरक एवं सुश्रुत में बला के भेदों में सहदेवा नाम आया है। इसे खरेंटी अथवा गंगेरन (छोटी Sida Spinosa) का एक भेद मान सकते हैं। क्षुप का चित्र खरेंटी या उक्त गंगेरन जैसा ही है।

नाम—

सं.—पीतबला, महाबला, पीतपुष्पा सहदेवा। हि०—पीलाबरियार, लाल बरियाला, खरैंटी। म०—थेरला चिकणा। गु०—श्वेतराऊबला। बं०—पीत बेड़ेला, हल्दे बेड़ेला। अं०—कंट्रीमेलो (Country mallow) येलो बार्लेरिया (yellow barlerla)। ले.—सिड़ा राम्बीफोलिया; सिडा ओरयन्टेलिस (Sida orientalis), सिड़ा कार्डिफोलिया (Sida Cordifolia)

रासायनिक संगठन–

खिरैंटी या बलाओं के भेद, उपभेदों का रासायनिक संगठन प्रायः एक समान है। इसके पत्रों में अपेक्षाकृत लुआब की अधिकता होती है।

गुण धर्म व प्रयोग–

खरैंटी अथवा छोटी गंगेरन के समान ही इसके गुण धर्म व प्रयोग हैं।

मूत्रकृच्छ में—जड़ के क्वाथ से वेदना कम होती है। क्षत या व्रण पर जड़ के स्वरस की पट्टी रखने से वह शीघ्र ठीक हो जाता है। श्लीपद में जड़ को हरताल के साथ पीस कर प्रलेप करने से लाभ होता है।

(१) उपदंश के व्रण या चट्टों को सुखाने के लिये इसकी छाल और परिपक्व पत्रों को कूटकर जल मिला अष्टमांश क्वाथ कर उससे चट्टों का प्रक्षालन करते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

(२) ज्वर पर—शीत ज्वर या चातुर्थिक ज्वर पर इसकी जड़ और सौंठ का क्वाथ सेवन कराने तथा जड़ को पुष्य नक्षत्र में लाकर रोगी के हाथ में बांधने से शीत, कंप एवं दाहयुक्त ज्वर का शीघ्र ही नाश होता है। भूत ज्वर में जड़ को विधियुक्त गले में बांधते हैं।

(३) मूत्र दोष तथा शुक्रदोष पर—जड़ को पीसकर उसमें हींग, दूध और घृत मिलाकर सेवन करावें।

(४) विद्रधि, ग्रन्थि आदि पर–इसके कोमल लाल रंग के पत्रों (कोंपलों) को खूब महीन पीसकर उसकी बड़ी सी बना फोड़े ग्रन्थि आदि पर रखकर उस पर ढीला वस्त्र पट्ट बांध कर ऊपर से ठंडा जल सिंचन करते रहने से यह शीघ्र ही पककर फूटती है, दाह, वेदना दूर होती है। अथवा इसके पत्तों को लौंग के साथ पीसकर बांधना चाहिये।

(५) अण्डवृद्धि तथा बिच्छू के विष पर—जड़ के

[1] "महाबला पीतपुष्पा सहदेवी च सा स्मृता।" —भा० प्र०।

Scanned with CamScanner

क्वाथ में रेंड़ी तेल मिलाकर पिलाने से अण्ड वृद्धि में लाभ होता है।

बिच्छू दंश के स्थान पर—जड़ को पीसकर लेप करें। —व० गु०।

(६) जीर्ण ज्वर में—जड़ के क्वाथ और कल्क के द्वारा सिद्ध किये हुए गोमूत्र का सेवन कराते हैं।

(७) प्रदर—इसकी जड़ तथा छाल को दूध के साथ पीसछानकर शहद मिला सेवन कराते हैं।

पीली (Impatiens Chinensis)

बांगेरी कुल (Geraniaceae) की इस छोटी जाति की वनस्पति के पत्र १.३ से लेकर १० सें. मी. लम्बे; पुष्प—कुछ लालिमायुक्त श्वेत वर्ण के; बीज—मुलायम, काले, चमकीले एवं संख्या में अत्यधिक होते हैं।

यह दक्षिण में मद्रास की ओर ही विशेषतः पायी जाती है।

इसे मद्रासी या तामिल भाषा में पीली या प्याली तथा लेटिन में इम्पेटिएन्स चिनेन्सिस कहते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग–

यह दाह, उष्णता एवं मूत्रकृच्छ नाशक है। मूत्रकृच्छ या सुजाक में इसका सेवन विशेष लाभदायक है। अग्निदग्ध स्थान पर इसके बाह्य प्रयोग से शांति प्राप्त होती है

पीली कपास (Cochlospermum Gossypium)

तुवरक (चालमोगरा) कुल (Bixineae) के इस छोटे ८ से १८ फीट ऊंचे वृक्ष की छाल मुलायम, चिकनी धूसरवर्ण की; पत्र–लगभग ४-७ इंच लम्बे, हथेली की ऊंगलियों जैसे ३ या ५ विभाग युक्त; पुष्प-शाखाओं के अग्रभाग पर तुर्रे जैसे लम्ब गोल ४-५ इंच व्यास के, पीले चमकीले होते हैं। ये पुष्प वृक्ष में पत्र आने के पूर्व ही आ जाते हैं। फली या डोड़ी २-३ इंच लम्बी, मोटी लगभग अण्डाकार, भीतर पीतवर्ण की रेशम जैसी मुलायम रूई से युक्त; बीज—वृक्काकार या स्क्रू के आकार के रोमश तथा मुड़े हुये होते हैं (इसलिये लेटिन में इस वृक्ष को मुड़े हुये बीज युक्त Cochlospermun नाम दिया गया है तथा Gossypium कहते हैं रूई या कपास को) इस वृक्ष पर पुष्प-जनवरी से मार्च तक तथा फल–मार्च से जून तक आते हैं। इसके वृक्ष उत्तरी भारत के शुष्क पहाड़ी प्रदेशों में तथा बिहार, उड़ीसा, गढ़वाल, बुंदेलखंड और दक्षिण में भी पाये जाते हैं।

नोट—इसमें कतीरा नामक गोंद अत्यधिक प्रमाण में निकलता है। यह श्वेत वर्ण का, मीठा डलीदार किंतु वजन में बहुत हल्का होता है, तथा पानी में डालने पर खूब फूलता है। इसमें चिपचिपापन नहीं होता।

गोंद कतीरा-गुलू (Sterculia urens) के गोंद को तथा पानी आंवले के गोंद को भी कहते हैं। (पीछे गुलू का प्रकरण भाग २ में और पानी आंवला इसी भाग ४ में देखें) किंतु प्रस्तुत प्रसंग का कतीरा गोंद तथा गुलू का गोंद भी श्रेष्ठ है। ये गोंद विदेशी ईरान व अरब देशों में पैदा होने वाले कताद (Astragalus virus or As. strobiliferus) वृक्ष के अत्यधिक प्रचलित कतीरा गोंद ट्रागा-(Tragacanth) के लगभग समान ही गुणधर्म युक्त है। तथा उसके उत्तम प्रतिनिधि हैं। उसके स्थान में इनका उपयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

नाम—

सं.—पीतकार्पास, सुवर्ण कार्पास, सुवर्ण पुष्पा। हि.—पीली कपास, गनियार, गेजरा, कुंबी, कतीरा इ.। म.—गलगल, गनेरी, कथल्या गोंद। अं.—गोल्डन सिल्क काटन (Golden silktcotton), यलो फ्लावर्ड काटन (yellow flowered cotton)।

ले.—कोक्लोस्पर्मम गोसिपियम; बोमीक्स गोसिपियम (Bomoex gossipium)।

रासायनिक संगठन–

इसके बीज में एक तैल तथा कुछ शर्करा सदृश

Scanned with CamScanner

(Saccharlne) पदार्थ पाया जाता है।

बीजों की गिरी भूनकर खायी जाती है।

प्रयोज्याङ्ग—गोंद तथा पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग—

गोंद कुछ मधुर शीत वीर्य, मृदुकर, संकोचक, अत्यल्प स्निग्ध, कफघ्न, किंचित पौष्टिक, तथा कंठ की रूक्षता, मूत्र दाह, गर्भाशय एवं मूत्राशय का क्षत गर्भाशय शैथिल्य, प्रदर, गर्भस्राव, अतिसार प्रवाहिका नेत्र विकार, विशेषतः ट्रकोमा (Trachoma) अत्यार्त्तव, सुजाक, अश्मरी, मूत्रनलिकावरोध आदि में विशेष प्रयुक्त होता है।

गर्भाशय के विकारों में यह सेलखड़ी या शंखजीरा और मिश्री के साथ दिया जाता है।

अतिसार, प्रवाहिका या जमालगोटा आदि तीव्र जुलाब के कारण होने वाले दस्तों को बन्द करने के लिए इसे दही या छेने ,के जल (Whey) या तक्र के साथ दिया जाता है।

मुख या चेहरे की त्वचा को मुलायम करने एवं झांई दूर करने के लिये इसका लेप किया जाता है।

खुजली एवं खसरे में—इसे गंधक के साथ पीस कर लेप करते हैं।

सिर या मस्तिष्क में ठंडक के लिये इसके कोमल पत्रों को पीस कर जल में घोल कर लेप करते हैं।

नोट—मात्रा—गोंद ३ से ६ मा०।

इस वृक्ष के पके बड़े पत्तों से लोहा गलाने की भट्टी के लिये धोंकनी बनाई जाती है। इसके फलों से निकलने वाली रुई के तन्तु मांझे न होने से यह वस्त्र डोरी बनाने के काम में नहीं आती; किंतु इसका उपयोग गद्दी तकिये में भरने के लिये तथा औषधि के लेपादि बनाने के लिये किया जाता है।

पीली करबीर (Tabernaemontana Dichotoma)

कुटज कुल (Apocynaceae) के इस छोटी जाति के कनेर जैसे वृक्ष की छाल मुलायम, भूरे रङ्ग की।

पत्र—चिकने, मुलायम, लम्बे।

पुष्प व फल—पीले कनेर के फूल, फल जैसे ही होते हैं। इसके वृक्ष के पत्रादि तोड़ने पर दूधिया रस निकलता है।

इसके वृक्ष विशेषतः सीलोन में पैदा होते हैं।

नोट—इस ग्रन्थ के भाग २ में जो कनेर पीली (Thevetia Nerifolia) का वर्णन है, उससे यह भिन्न है। यद्यपि दोनों एक ही कुल के हैं तथा दोनों के गुणधर्म में भी बहुत कुछ साम्य है।

नाम—

हिन्दी—विशेषतः पंजाबी में पीली करबीर। अं०—ईव्हज एपल (Eves apple)। लेटिन—टेबर्नी मोंटानाडायकोटोमा। एरुवाटेमिया डायकोटोमा (Ervatamia dichotoma)।

गुण धर्म व प्रयोग—

छाल, पत्र, बीज तथा इसका दूधिया रस विरेचक और विषैले हैं। कहीं कहीं इसके पत्र, सनाय पत्र के स्थान में रेचनार्थ काम में लिये जाते हैं।

जड़, छाल और पत्तों को पानी के साथ पीसकर व्रणों पर लगाते हैं। जड़ और छाल का उपयोग बिच्छू के दंश पर किया जाता है।

बीज—धतूरे के बीज के समान ही विषैले, मदकारक एवं संज्ञानाशक, मूर्च्छाकारक होते हैं।

पीली जड़ी देखो—पियारांगा।

पीलु छोटा (Salvadora persica)

फलादिवर्ग एवं अपने ही पीलु कुल[१] (Salvadoraceae) के प्रमुख इस मध्यम प्रमाण के ८ से १५

[१] इस कुल के वृक्षों के पत्र अभिमुख, अखंड, चर्म सदृश; पुष्प—छोटे, श्वेत या पीत; पुष्प बाह्यकोष के दल ३-५, आभ्यन्तर कोष के दल ४, पुंकेशर ४, स्त्री केशर १ तथा फल—छोटे-छोटे मांसल होते हैं।

Scanned with CamScanner

या २० फीट ऊंचे, सदैव हरे भरे क्षुप रूप वृक्ष के कांड टेढ़े मेढ़े, अनेक दुर्बल नीचे की ओर झुकी हुई शाखाओं से युक्त, छाल-खुरदरी, भीतरी कोष्ठ भाग नरम, कड़कीले, श्वेताभ पीत वर्ण का।

पत्र—अभिमुख, अण्डाकार, मोटे, मांसल, लम्ब गोल १–२॥ इंच लम्बे, १ इंच चौड़े, चिकने, दोनों सिरों पर गोल, गहरे हरे या पीताभ हरित वर्ण के, चमकीले, भंगुर, स्वाद में नमकीन, चरपरे, कुछ मधुरता युक्त होते हैं।

पुष्प—शाखाओं के अग्र भाग पर पत्र कोण से निकले हुए गुच्छों में छोटे-छोटे हरिताभ पीतवर्ण के।

फल—गोल लगभग ¼ इंची व्यास के, अत्यन्त छोटे, चमकीले, चिकने, रसयुक्त, कच्ची दशा में हरे, पकने पर गहरे लाल वर्ण के हो जाते हैं। प्रत्येक फल में एक बीज होता है। फल को मसल कर सूंघने से तीक्ष्ण गन्ध आती है।

मूल—लम्बा, गहरा, अनेक उपमूल युक्त तथा मूल की छाल भूरी, श्वेत वर्ण की। मूल या काण्ड की छाल स्वाद में चरपरी होती है। वसन्त ऋतु में पुष्प तथा ग्रीष्म में फल पकते हैं।

देश भेदानुसार इसके वृक्ष छोटे या बड़े तथा फूल व फल काल भी भिन्न-भिन्न होता है।

इसके वृक्ष—उत्तर प्रदेश में विशेषतः मथुरा के चारों ओर के वृजमण्डल में तथा पश्चिम बिहार, राजपूताना, गुजरात, पंजाब, सिंध, कोंकणादि दक्षिण भारत के प्रायः रूक्ष उष्ण एवं कुछ क्षार युक्त भूमि में, और सीलोन, बिलोचिस्थान, अफगानिस्थान, पर्शिया आदि देशों में पाये जाते है।

नोट—चरक के विरेचन, विरेचनोपग, शिरोविरेचन, ज्वरहर, कटुकस्कन्ध में तथा सुश्रुत के शिरोविरेचन में इसकी गणना की गई है।

इसकी एक जाति वृद्ध (बड़ा) पीलू नामकी होती है। इसका वर्णन आगे पीलु बड़ा के प्रकरण में देखिये।

नाम–

सं०—पीलु, गुड़फल (मधुरफल होने से), स्रंसी (सारक) इ०। हि०—पीलु, छोटा पीलू, झल, झाल, इ०। म०—पीलु, खाखीन, खारी, मीरजोली इ०। गु०—खारीजाल, बरखड़ो, वगदी (पीलुड़ी गुजराथी में मकोय को कहते हैं, पीलु को नहीं)। दं०—छोटी पीलु। अं०—टुथब्रुशट्री (Toothbrush tree) ले०—साल्वाडोरा पर्सिका, सा० विजटियाना (Salvadora wightiana)

रासायनिक संगठन–

जड़ की छाल में राल, रंजकद्रव्य, कुछ प्रमाण में साल्वाडोरिन (Salvadorine) नामक एक क्षारतत्व, एवं ट्राइमिथिलएमिन (Trimethylamine) तथा इसके क्षार में क्लोरिन (Chlorine) प्रचुर प्रमाण में होता है। फूलों में अधिक प्रमाण में शर्करा तथा वसा, रंजकद्रव्य व एक क्षारतत्व (Alkaloid) होते हैं। बीजों में एक श्वेतवसा एवं पीला रंजक द्रव्य होता है। वसारूप तैल प्रायः बड़े पीलु के बीजों में अधिक प्रमाण में होता है।

Scanned with CamScanner

प्रयोज्याङ्ग— फल, पत्र, बीज, मूलत्वक आदि ।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, कषाय, कटु, तिक्त, मधुर, कटु विपाक, उष्णवीर्य, कफवातशामक, पित्तकर, दीपन, विदाही, रक्तपित्तकारक, मूत्रल, ज्वरघ्न, स्वेदजनन, बल्य, विषघ्न तथा वातरक्त, प्लीहा, आनाह, अर्श, उदर-विकार, गुल्म, विषबाधा आदि में यह उपयोगी है । इन विकारों में शोधनार्थ इसका प्रयोग किया जाता है । विरेचक द्रव्यों के साथ सहायता रूप में इसकी योजना की जाती है ।

इसके पुष्प व फल तीक्ष्ण प्रभावकारी होने से शिरोविरेचक एवं कफ निःसारक हैं । फल प्रायः पका ही काम में लिया जाता है । फलों को एक एक खाने से जीभ में छाले, मसूढ़ों में शोथ, कंठ में खुजली होती है; किंतु कई फल एक साथ जीभ को चलाते हुए खाने से कुछ हानि नहीं होती । अधिक खाने से सिर में भारीपन, भ्रमादि होते हैं । पके हुए विशेषतः बड़े पीलू के फलों को सुखाकर खाने से किसमिस जैसे मीठे लगते हैं । पुष्प उदर शोधक, मूत्रल, कामोत्तेजक, कृमिघ्न व वातहर हैं ।

फल—पका फल त्रिदोषहर, दीपन, सारक, वृष्य, दौर्बल्यहर, रसायन, रक्तशोधक, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी एवं अवरोधनाशक है ।

प्रतिश्याय, कास तथा श्वास में शोधनार्थ फलों को या पुष्पों को कुचल कर सुंघाते हैं ।

(१) अर्श, कृमि, गुल्म तथा संग्रहणी में फलों का सेवन किया जाता है । १५ या ७ दिन तक अन्नादि बन्द करके केवल इसके ताजे फलों (बड़े पीलू के फल हों तो उत्तम) पर रहने से अर्शादि विकारों का नाश होता है । यह एक श्रेष्ठ रसायन प्रयोग है, तथा उक्त विकारों में अमृत के समान गुणकारी है । —ग. नि.

अर्श रोग में उक्त प्रकार पथ्यपूर्वक फलों का सेवन करा ऊपर से तक्र पान भी कराते हैं ।

(२) अजीर्ण या कोष्ठबद्धता पर प्रतिदिन सूर्योदय के पूर्व इसके ताजे फल खाने से कैसी भी कब्जी हो दूर हो जाती है ।

(३) विष नाशार्थ—इसके ताजे या शुष्क फलों को पीस कर भुना हुआ सुहागा मिला कर सेवन कराते हैं ।

पत्र—सनाय पत्र के समान रेचक आंत्र संकोचक, यकृत के लिये बल्य, कृमिनाशक, वेदनाहर, पीनसादि नासा रोग, अर्श, कण्डू, प्रदाह आदि नाशक, मसूढ़ों के लिये हितकर हैं मसूढ़ों से रक्तश्राव होता हो (स्कर्वी) तो पत्र रस का सेवन कराते हैं ।

(४) आमवातज वेदनायुक्त शोथ, सन्धिवात, वेदनायुक्त ग्रंथिशोथ, अर्श, विद्रधि, अर्बुदादि में—पत्तों को कूट गरम कर भीने सूती वस्त्र में लपेट कर बांधते हैं अथवा पत्तों को कूट कर कपड़े में बांध कर पोटली बना आग पर गरम कर सेंक करते हैं । तथा पत्तों पर रेंडी तैल लगा गरम कर बाधते हैं । अथवा पत्तों को कुचल कर पुल्टिस बना कर बांधते हैं । संधिवात में पत्र रस के साथ कड़वी तोरई का रस मिला कर मालिश करते हैं ।

(५) अपचन तथा उदर शूल पर–कोमल पत्तों को पीस कर थोड़ा सेंधा नमक मिला कर सेवन कराते हैं ।

(६) कफ कास तथा श्वास पर—सूखे पत्तों के चूर्ण को तम्बाखू के साथ चिलम में भर कर धूम्रपान करते हैं ।

(७) कुत्ते के काटने पर तथा विषैले कीटक दंश पर—पत्र रस ४ से ८तो० तक पिलाने से कुत्ते के विष पर लाभ होता है । विषैले कीटक दंश पर पत्तों का क्वाथ पिलाते हैं ।

(८) पशुओं के दूषित व्रणों पर—पत्तों की जलाकर की हुई राख में नर मूत्र (या गोमूत्र) मिलाकर लगाने से व्रण के कृमि नष्ट होकर व्रण शुद्ध होकर सरलता से शीघ्र ठीक हो जाता है । यह आयाडोफार्म जैसा गुणकारी है ।
—गां. औ.

(९) घोड़े की मन्दाग्नि (कब्जी) पर—पत्र रस को बाजरे के आटे और गुड़ के साथ मिलाकर लड्डू सा बनाकर खिलाते रहने से थोड़े ही दिनों में चारा अच्छी तरह चरने लगता है तथा बलवान बन जाता है ।
—गां. औ.

(१०) वात प्रकोपजन्य कमर, पीठ, हाथ पैरों में ऐंठन, हड़फूटन जैसी वेदना होती हो तो पत्तों को कूट-कर तवे पर गरम कर वस्त्र में बांध पोटली बनाकर

Scanned with CamScanner

कुछ देर सेंक करें। फिर उस पोटली से पत्तों की लुगदी को निकाल कर पीड़ित स्थान पर रख वस्त्र से १२ घंटे तक लपेट कर रखने से शीघ्र लाभ होता है। —व. गु.

(११) मुख के व्रण, छाले या चट्टों पर—पत्र रस १॥ तो. में समभाग गोघृत मिला सेवन करते रहने से ३ दिन में पूर्ण लाभ होता है। —व गु.

छाल और जड़—छाल आर्तवजनन है। मूल की छाल दाहक, स्वेदल, विस्फोटकारक, कुछ मूत्रल है।

जड़ की या कांड की छाल कुचल कर त्वचा पर बांधने से विस्फोट या फोला हो जाता है।

मूत्रकृच्छ्र तथा रजोरोध या अनार्तव में इस को छाल का फाण्ट या अर्क उत्तेजनार्थ दिया जाता है।

शाखा या मूल की छाल दन्तरोग नाशक है। सर्प दंश पर छाल को पीसकर प्रलेप करते हैं।

(१२) ज्वर पर--ज्वरावस्था की बेहोशी, प्रलाप एवं निर्बलता में चेतनावर्धनार्थ इसकी छाल को जौकुट कर दस गुना जल मिलाकर सिद्ध किया हुआ क्वाथ दिया जाता है। यह सगर्भा स्त्री को नहीं देना चाहिए। --डा० देसाई

(१३) दन्त शोधनार्थ—जड़ के टुकड़ों का ब्रुश बनाकर दांतों को घिसने से या छाल के चूर्ण का मंजन बनाकर दांतों पर घिसने से या इसकी कोमल शाखा के टुकड़ों से दतौन करने से दांत स्वच्छ, मजबूत एवं मसूड़े सुदृढ़ होते हैं।

(१४) कफ कास पर तथा मच्छरों को भगाने के लिए—इसकी कोमल शाखा का क्वाथ या फाण्ट शहद मिलाकर पिलाने से कफ कास में लाभ होता है। कफ सरलता से निकलता है।

मच्छर भगाने के लिये इसकी लकड़ी का धूआं किया जाता है।

बीज—चरपरा, विदाही, यकृत के लिये बल्य तथा रेचक हैं। बीजों के चूर्ण का लेप सर्प दंश पर करते हैं।

नोट—बीजों क तेल-विशेषत: बड़े पीलू के बीजों का तेल उपयोगी होने से इसका वर्णन आगे बड़े पीलू के प्रकरण में देखिये।

नोट—मात्रा-पत्र चूर्ण १-३ माशा तक। मूलत्वक क्वाथ ३ तो. तक। फल स्वरस ½-१ तो.। बीजका चूर्ण १ से २ माशा तक।

विशिष्ट प्रयोग-

पीलवासव का प्रयोग शास्त्रों में या हमारे बृहदासवा-रिष्ट संग्रह में देखिये। विस्तार भय से यहां नहीं लिख सकते। यह आसव अर्श, प्लीहा, गुल्म, उदर रोग एवं मन्दाग्नि नाशक, बलवृद्धिकारक है।

पीलु बड़ा (Salvadora oleoides)

पीलु कुल का ही यह बड़ा झाड़ीदार, अधिकांश में प्रायः उक्त छोटे पीलु वृक्ष के जैसा ही १२-१५ फीट ऊंचा पंजाब, सिंध, मारवाड़ आदि की ओर यह विशेष मोटा १२ फीट तक व्यास का कांड और शाखायें प्रायः छोटे पीलु वृक्ष के समान।

छाल—खुरदरी, खड़े चीरे युक्त।

पत्र—अभिमुख छोटे पीलु पत्र से कुछ अधिक लम्बे ½-¾ इंच चौड़े, सकड़े, नोकदार मोटे, गुदगीले, फीके, हरे रङ्ग के. चरपरी गंध वाले, किंतु छोटे पीलु के पत्तों की अपेक्षा स्वाद में कम नमकीन एवं कम चरपरे या मधुरता युक्त चरपरे।

पुष्प—पत्रकोण से निकली हुई सलाका पर छोटे-छोटे पीले हरे या श्वेत वर्ण के, कुछ मधुर गन्ध युक्त होते हैं।

फल—छोटे पीलु का अपेक्षा बड़े, गोल कुछ चिपटे, सिरे पर सूक्ष्म नोक वाले, पकने पर पीले रङ्ग के, स्वाद में छोटे पीलु फल की अपेक्षा कम चरपरे एवं अधिक मीठे होते हैं। पक कर सूखने पर ये फल काली मुनक्का के समान या लालिमा युक्त भूरे रङ्ग के किस-मिस जैसे स्वादयुक्त होते हैं।

बीज—प्रत्येक फल में एक बीज तेलयुक्त होता है। इसी से शीर्षोक्त इसके लेटिन नाम में ओलियोइडस

Scanned with CamScanner

(Oleoides तेल युक्त बीज वाला वृक्ष) कहा गया है। जनवरी, फरवरी मास में (कहीं-कहीं मार्च, अप्रैल में) पुष्प होते हैं तथा अप्रैल, मई में फल पाक होता है। इसके वृक्ष पंजाब, सिंध, मारवाड़, राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, महाराष्ट्र में पाये जाते हैं।

नाम–

सं.—बृहत्पीलु, वृद्धपीलु, राजपीलु, मधु पीलु इत्यादि। हिन्दी—पीलु बड़ा, जालवन। मराठी—गोड़ पीलु, खाखण, किंकण। गुजराती—मीठी जाल, मीठी पीलु। बंगाली—बड़ी पीलु। लेटिन—साल्वाडोरा ओलियोइडस, साल. इंडिका (Sal. Indica)।

रासायनिक संगठन–

छोटे पीलु के अनुसार ही है, किंतु इसके बीजों में कुछ गाढ़ा सा, चमकीला, हरिताभ पीत वर्ण का, शीघ्र जम जाने वाला वसा रूप तेल अत्यधिक परिणाम में ४४·६% तक होता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाक, रुचिकर, वृष्य, अग्निदीपक, कुछ विदाही, कामोत्तेजक, वातपित्त शामक, आम नाशक, विष नाशक है।

पत्र–उष्णवीर्य रेचक, वातहर, मूत्रल, स्वेदजनन है। इसमें छोटे पीलू की अपेक्षा नमकीन एवं चरपरापन कम होने से पत्तों का प्रयोग कफ विकारों में अधिक किया जाता है।

वात पीड़ित अङ्ग पर—पत्तों के साथ समभाग निर्गुंडी पत्र मिलाकर, थोड़ा कूटकर, मिट्टी के पात्र में गरमकर सेंक किया जाता है।

घोड़ों की कब्जी दूर करने के लिये—पत्तों का क्वाथ पिलाया जाता है। इससे उसे दस्त होकर कब्जी दूर होती है।

छाल—कड़ुवी, चरपरी, उष्णवीर्य, दाहक, उत्तेजक है। ज्वर में शिथिलता, थकावट आने पर छाल का क्वाथ उत्तेजनार्थ दिया जाता है। मासिक धर्म की शुद्धि के लिये भी यह क्वाथ दिया जाता है। इसका यह उत्तेजक धर्म अत्युत्तम है।
—डा. देसाई।

फल—लघु, दीपन, उष्णवीर्य, दीपन, वातहर, बल्य व मूत्रल है। प्लीहा वृद्धि तथा संधिवात रोगी को फल खिलाते हैं। पीछे छोटे पीलू के फलों के विषय में जो बात कही गई है वह इसके फलों के सेवन से उत्तम प्रकार होती है।

फलों के बीज–अनुलोमिक तथा विषहर हैं।

तैल—बीजों से जो तैल निकाला जाता है, उसे बम्बई की ओर या महाराष्ट्र में खाखणतेल या किंकणतेल कहते हैं। यह शोथहर, वेदना स्थापन, स्वेदल, उत्तेजक, कफवात नाशक, तथा चेतनावर्धक है।

ज्वर में प्रस्वेद लाने तथा उत्तेजनार्थ तैल का मर्दन करते हैं।

खुजली, गण्डमाला, अण्डवृद्धि तथा क्षत पर इसे लगाते हैं।

जीर्ण संधिवात में सन्धियों पर इसकी मालिश से वेदना शांत होती है। प्रसव के पश्चात् प्रसूता स्त्री के अङ्गों पर इसकी मालिश से विशेष लाभ होता है।

अर्श पर—इस तैल में बत्ती को भिगोकर गुदा में रखने से अर्श एवं उसकी वेदना दूर होती है।
—भा० भैं० र०।

पाददारी पर—तैल में मोम मिलाकर या केवल इस तैल को ही हाथ पैरों की दरारों पर भर देने से शीघ्र लाभ होता है।

सर्प विष पर इस तैल का प्रयोग किया जाता है।

इस तैल का विशेष प्रयोग साबुन या मोमबत्ती बनाने के कार्यों में किया जाता है।

नोट—पत्र, मूल, छाल, फल आदि के शेष गुणधर्म व प्रयोग मात्रादि छोटे पीलु के समान ही हैं।

पीलो आगियो [1] (Cistanche Tubulosal)

इस वनस्पति के पौधे १ से २ फीट तक ऊंचे होते हैं। यह एक परोपजीवी अर्थात् अन्य वनस्पतियों से अपना

---

[1] इस बूटी के कुल आदि के विषय में हमें विशेष परिचय न होने से, इसका उक्त वर्णन वनौषधि चन्द्रोदय से साभार संक्षिप्त उद्धृत किया जाता है।
—संपादक।

Scanned with CamScanner

आहार ग्रहण करने वाली बूटी है। इसकी गठानें जमीन के अन्दर पीलु, आक, निर्गुंडी या ऐसे ही कोई दूसरे वृक्षों की जड़ों पर पैदा होती तथा उन्हीं जड़ों से अपना रस चूसती हैं। इसकी गठानें आंबी हलदी की गठानों के समान होती हैं। गठानों का व्यास ४ से ८ इंच तक होता है। इनमें से इसके पौधे की छोटी बड़ी कई रूप में शाखायें फूटती हैं। ये गठानें व शाखायें आरम्भ में भूरे रंग की, पश्चात् बैंगनी रङ्ग की तथा अन्त में काले रङ्ग की हो जाती हैं। ये भीतर से मुलायम तथा तोड़ने से चिपकना रस निकलता है, जो आयोडिन जैसा उग्र गंधी होता है। इस रस को जिह्वा पर रखने से खारा मालूम देता है तथा जीभ की चेतना शक्ति नष्ट हो जाती है। इसके फूल पीले रङ्ग के बहुत सुन्दर एवं बगीचों की शोभा बढ़ाने लायक होते हैं। ये पुष्प २ इंच लम्बे, एक ओर से टेढ़े, नीचे नलिकाकार तथा ५ पंखड़ियों वाले होते हैं।

यह बूटी कच्छ और भुज में बहुत पैदा होती है।

नाम–

गुजराथी और कच्छी भाषा में पीलो आगियो, जोगिड़ी, पीलो जोगीड़ो, पटकुआंर। अं.—यलोब्रूमरेप (Yellow broom rape)। ले.–सिस्टेंच-ट्यूबुलोसाल।

रासायनिक संगठन के विषय में प्रोफेसर डाक्टर बेंटली ने अपने मेन्युअल आफ बोटानी नामक ग्रन्थ में लिखा है कि इसके अन्दर एक संकोच तत्व (An astringent principle) विशेष प्रमाण में पाया जाता है। इस श्रेणी के पौधों में पाया जाने वाला यह तत्व चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से विशेष महत्व का नहीं है। इस वनस्पति की जड़ें अमेरिका में 'केन्सर रूट' (Cancer root) के नाम से इसलिये इतनी प्रसिद्ध हैं कि पहले केंसर के ऊपर लेप करने के काम में ली जाती थी। उत्तरी अमेरिका में प्रसिद्ध मार्टिन्स केंसर पाऊडर (Martin's cancer powder) में यह वनस्पति प्रधान द्रव्य की तरह डाली जाती थी।

गुणधर्म व प्रयोग–

विषनाशक, व्रण पूरक है। इसकी गठान को पानी में घिसकर बिच्छू के डंक पर लगाने से विष तुरन्त उतर जाता है। बहुत से योगी लोग अपनी झोली में इसकी गठानों को रखते हैं तथा इससे सर्प और बिच्छू का इलाज करते हैं।

सर्प दंश पर इसकी गठानों को पानी में पीसकर लगाते हैं। तथा १ तोला गठान को पानी में पीस कर पिलाते हैं। जिससे वमन होकर सांप का विष हलका पड़ जाता है।

बड़े और नहीं भरने वाले दुष्ट व्रणों पर इसकी ताजी गठानों को घिसकर लगाने से वे भर जाते हैं।

पुठकंड़ा—दे. अपामार्ग।

पुण्डरिया (पुण्डरीक) (Pundaria)

नोट—यह एक संदिग्ध बूटी है। भाव प्रकाश के अनुसार इस सुगंधि द्रव्य के पुण्डरिया लोक भाषा के नाम प्रपौण्डरीक के ही हैं।

पुण्डरीक यह नाम पिण्डीतक बूटी का भी है। पीछे पिण्डीतक का प्रकरण देखिये। पुण्डरीक अति श्वेत कमल को भी कहते हैं। सुश्रुत के अनुसार पुण्डरीक एक कन्द विष का भी नाम है। सुश्रुत के कल्प स्थान अ. २ में १३ प्रकार के कन्द विषों में पुण्डरीक नाम आया है, और कहा है "पुण्डरीकेण रक्ततयम क्षणोर्वृद्धिस्तथोदरे" अर्थात् इस कन्द विष के प्रभाव से आंखों में लालिमा तथा उदर वृद्धि होती है। किंतु इस कन्द विष का कोई स्वरूपात्मक विवरण हमें नहीं मिला। रसरत्नसमुच्चय ग्रन्थ में भी जो १३ कन्द विषों का वर्णन है उसमें पुण्डरीक के स्थान में हारिद्रक कन्द विष लिया गया है।

प्रपौण्डरीक के पर्यायवाची नामों में चक्षुष्य एक नाम है। अतः कहा जाता है कि इसके स्थान में चाकसू लेना ठीक है। पीछे चाकसू का वर्णन भाग ३ में देखिये।

इस विषय में पं० श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी अपनी

Scanned with CamScanner

भावप्रकाश की टीका में लिखते हैं, कि साधारण जनता क्या वैद्य तक भी पुण्डरीक क्या वस्तु है नहीं जानते। पुण्डरीक (पुण्डरिया, पुण्डेरी) यह देखने में एक प्रकार की काण्ड की तरह की चीज है, जो इन्द्रजो की छालकी आकृति से बहुत मिलती जुलती सी है। इसको पंसारियों ने "आंख की लकड़ी" करके अधिक प्रसिद्ध कर रखा है इसलिये इस पर विश्वास भी होता है कि चक्षुष्य इसका एक नाम भी है अर्थात् नेत्रों को हितकारी। इसकी थोड़ी सी लकड़ी को निकाल कर बकरी के दूध में एक कपड़े में बांध कर भिगो देते हैं। दूध का वर्ण पीला हो जाता है इसे नेत्रों में डालते हैं इससे नेत्र पीड़ा प्रशमित हो जाती है। कई प्रकार के नेत्र रोगों में इसका व्यवहार होता है अतएव इसे आंख की लकड़ी या सभ्य लोग पुण्डरिया कहा करते हैं। वनौषधि चन्द्रोदय में लिखा है कि यह एक सुगंधित वृक्ष है। इसके वृक्ष शिमला में कालका के पास बहुत पाये जाते हैं।

नाम—

सं.—प्रपौण्डरीक, पौंडर्य, चक्षुष्य, पौण्डरीयक इ०। हि०—पुण्डरिया, पुण्डेरी, पुण्डरीक । गु.—पांडेरवा, पुण्डरिया। म०—पुण्डरीक वृक्ष। बं०—पुण्डर्या।

प्रयोज्याङ्ग—लकड़ी।

गुणधर्म व प्रयोग–

मधुर, तिक्त, कसैला, मधुर विपाक, शीतवीर्य, वीर्यवर्धक, नेत्र हितकारी, शरीर के वर्ण को उत्तम करने वाला, पित कफ नाशक है। रक्तदोष निवारक है।

(१) विसर्प पर—पुंडरीक की लकड़ी, मुलहठी, कमलकेशर, नीलोफर, नागकेशर और लोध समभाग जौकुट चूर्ण कर मात्रा २ तो. में ३२ तो. जल मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावें तथा प्रलेपार्थ—

इसकी लकड़ी, मुलैठी, खरैटी, कमलकन्द, नीलोफर, वट पत्र और छोटी दूधी, इन्हें एकत्र पीस कर घृत मिला लेप करने से विसर्प की शांति होती है।

—च. सं. चि. अ० २१

नोट—ध्यान रहे प्रलेपार्थ प्रयोग करते समय घृत थोड़ा मिलावें। किन्तु वात पित्त प्रधान विसर्प हो तो अधिक घृत मिलाना चाहिये। यदि पित्तज विसर्प हो तो पुण्डरिया, मजीठ, पद्माक, खस, लालचन्दन, मुलैठी और कमल को दूध के साथ पीस कर लेप करें।

—[illegible]

बालकों के विसर्प पर—पुण्डरिया, नीलोफर, [illegible], मुलैठी, विदारीकन्द, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, पद्माक, कमल, तेजपात, लाल कमल और कुमद, समभाग लेकर सबको दूध के साथ पीस कर लेप करें। —[illegible]

(२) उपदंश—विशेषतः वात प्रधान हो तो-पुण्डरिया, मुलैठी, धूप, सरल, अगर, देवदारु, रास्ना, [illegible] इलायची इनका लेप करने तथा इनके क्वाथ से धोने से लाभ होता है। —[illegible]

(३) नेत्र विकार पर—इसकी लकड़ी को बकरी के दूध में या स्त्री के दूध में घिसकर, थोड़ी खांड मिला कर आंख में डालने से पित्तज एवं वातज नेत्र पीड़ा नष्ट होती है। —[illegible]

(४) मुख रोग पर—पुण्डरिया, मुलहठी, [illegible] और नीलोफर समभाग मिश्रित जौकुट कर २ सेर में १२ सेर जल मिला चतुर्थांश क्वाथ कर छान लें। उसमें उक्त सब द्रव्यों का कल्क ७ तो. मिला लें तथा घृत १ सेर मिला आग पर मन्दाग्नि से पाक करें। घृत मात्र शेष रहने पर छान कर रखें। इसके सेवन से [illegible] (कफ रक्त जन्य मसूढ़ों का विकार, मसूढ़ों से रक्त स्रावादि) एवं मसूढ़ों के रोग दूर होते हैं। यह [illegible] नाशक है। —[illegible]

(५) कास पर—पुण्डरिया, मुलहठी, मकोय, [illegible] सिल, कालीमिर्च, पिप्पली, मुनक्का, छोटी इलायची तथा तुलसी की मंजरी समभाग लेकर सबको पीसकर उसकी बत्ती बना शुष्क होने पर उस पर रेशमी वस्त्र लपेट दें। इसे घृत में स्निग्ध कर एक ओर जला कर धूम्रपान करने से खांसी नष्ट होती है। धूम्रपान के पश्चात् दूध अथवा गुड़ का शर्बत पीना चाहिए।

—च. चि. अ. [illegible]

Scanned with CamScanner

पुत्रजीव—देखो जियापोता ।

पुदीना[1] (Mentha viridis)

कर्पूरादिवर्ग एवं तुलसी कुल (Labiatae) के इस वर्षायु, लताकार, सुगन्धित क्षुप के कोमल, पत्र बहुल कांड एवं शाखाएं श्वेताभ हरित वर्ण की ।

पत्र—कोमल, गहरे हरे रङ्ग के, दन्तुरधार युक्त, भालाकार या लट्वाकार, तीक्ष्णाग्र युक्त, वृन्त रहित ।

पुष्प—छोटे- फीके बैंगनी रङ्ग के, गुच्छ युक्त या मंजरी में आते हैं । पुष्प दण्ड कोमल, चारों ओर से पुष्प गुच्छ युक्त होता है । इसी में इसके बीज भी होते हैं । किंतु बीजों से प्रायः पौधा अंकुरित नहीं होता । इसकी शाखाएं लगाई जाती हैं । वसन्त ऋतु में पत्र फूटते हैं ।

पुदीना
MENTHA VIRIDIS LINN

यह भारत में प्रायः सर्वत्र बाग, बगीचों में तथा घरों में भी लगाया जाता है । हिमालय प्रदेश में कई स्थानों पर नैसर्गिक पैदा होता है । विशेषतः काश्मीर, सिंध और बंगाल में बहुत होता है ।

नोट नं० १—पुदीने की अन्य अनेक जातियां पाई जाती हैं । औषधार्थ एवं आहारोपयोगार्थ प्रस्तुत प्रसङ्ग का पुदीना या मेन्था सेटिवा (Mentha satlva) का ही विशेष प्रयोग किया जाता है । विशेषतः उद्यानों में लगाया हुआ पुदीना अधिक उपयोगी एवं उत्तम होता है । एक जाति का पुदीना दूसरे के अभाव में लिया जा सकता है । ये प्रायः परस्पर में प्रतिनिधि हैं । प्रस्तुत प्रसंग के पुदीने को पहाड़ी पुदीना भी कहा जाता है । क्योंकि यह पहाड़ी प्रदेशों में अधिक होता है ।

इसका ही एक भेद अरबी या फारसी भाषा में 'आशा' (Mentha sativa) नाम का है । इसकी शाखायें बारीक व पतली होती हैं तथा उन पर छोटे-छोटे रोमश पत्र लगते हैं । पुष्प छोटा सा गोल एवं इसके बीज राई के दाने जैसे होते हैं । गुणधर्म में यह स्वेदल, मूत्रल तथा रजः प्रवाही (अधिक मात्रा में प्रयोग करने से गर्भ-पातक) कफस्रावी, विरेचक, वातानुलोमक, कृमिनाशक, वात एवं वात कफज विकारों में उपयोगी है ।

---

[1] फारसी भाषा में इसे पूदनः कहते हैं जिसका रूपान्तर अरबी में फूतनज, फूदनज हुआ है तथा इन्हीं नामों से पुदीना, पोदीना आदि नाम संस्करण हुआ है ऐसा प्रतीत होता है ।

भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल में इसकी उत्पत्ति नहीं थी । इसी से चरकादि प्राचीन साहित्य से इसका उल्लेख नहीं मिलता । इसके विषय में सर्व प्रथम संक्षिप्त वर्णन निघण्टु रत्नाकर में मिलता है । यह निघण्टु ग्रन्थ १८५७ वि. सम्वत के लगभग रचा हुआ प्रतीत होता है । सम्भव है इस बूटी का प्रचलन इससे भी पूर्व यहां रहा हो तथा उक्त निघण्टुकार ने कुछ समय पश्चात् इसका उल्लेख किया हो तथापि अधिक से अधिक तीन सौ वर्ष पूर्व यह पौधा भारत में नहीं था यह निर्विवाद है । पर्शिया, अरबादि देशों में इसकी उत्पत्ति एवं प्रचलन अति प्राचीन काल से है तथा उधर से (पश्चिम एशिया व यूरोप से) यह पौधा यहां लाया गया है । —सम्पादक

Scanned with CamScanner

इसके अतिरिक्त (२) जंगली पुदीना (पुदिनः बर्री Mentha sylvestris) जो प्रायः जंगलों में पाया जाता है। यह गुरु, मधुर, रोचक, हृद्य, सुखदाई, मलमूत्र-रोधक, कृमिघ्न तथा कफ, कास, अग्निमांद्य, विसूचिका, अतिसार, संग्रहणी, जीर्ण ज्वर एवं मद निवारक है।

इसी का एक भेद मिशकी तारामशीह[1] (Ziziphora tenuior) है जो प्रायः पर्शिया व बलुचिस्थान में पाया जाता है। इसके पत्र छोटे, फल विपुल, महीन लोमयुक्त होते हैं। गुणधर्म में प्रस्तुत प्रसंग के पुदीना के समान होता है। गिलानी के मत में जंगली पुदीने का तेल कफ की सूजन को बिखेरता है। हर एक अंग के दर्द को दूर करता है। अर्धाङ्ग में विशेष लाभकारी है। मासिक धर्म तथा पेशाब को साफ लाता है। इसका तेल १४ माशा तक पीने से उदर का वात विकार एवं मरोड़ दूर होता है।

मेंथाक्रिस्पा (M. Crispa) तथा मेंथा इनकेना (M. Incana) इसके ही भेद विशेष हैं।

(३) जलीय पुदीना (पूदिनः नहरी Mentha Aquatica) यह प्रायः जल के स्रोतों या नहर नदी या तालाब के किनारे या जल के समीप पैदा होता है। इसमें भी उक्त पुदीने के अनुसार एक प्रभावशाली तैल पाया जाता है।

(४) नानाय-हिन्दी-फूदनज (Mentha Arvensis) यह पुदीना हिमालय के उत्तरी तथा पश्चिमी समशीतोष्ण प्रदेशों में तथा दक्षिण में कोंकण की ओर भी पाया जाता है। इसका प्रभावशाली तैल, पिपरमेंट [Mentha Piperita] के तैल जैसा ही गुणधर्म युक्त होता है। शेष गुणधर्म व प्रयोग प्रस्तुत प्रसंग के पुदीने के समान ही हैं।

(५) पिपरमेंट पुदीना [Mentha Piperita] का वर्णन पीछे पिपरमेंट के प्रकरण में देखिए।

(६) देवमंजरी—उक्त पुदीनों की जातियों से कुछ भिन्न प्रकार की यह देवमंजरी नामक बूटी वन, उपवन, पर्वत, टीला, खंदक तथा उसरीली एवं कंकरीली भूमि में पैदा होती है। यह उक्त पहाड़ी या जंगली पुदीने की ही जाति मालूम देती है। इसका क्षुप १ फुट तक ऊंचा, शाखाओं से युक्त; पत्र-पुदीना पत्र के समान १ इंच लम्बे, आध इंच चौड़े, तथा पुष्प-मंजरी और बीज भी तुलसी या प्रस्तुत प्रसंग के पोदीना जैसे होते हैं। यह अवध (अयोध्या) की ओर अधिक होती है। वर्षाऋतु में यह उत्पन्न होकर कातिक मास तक नष्ट हो जाती है, तथापि आर्द्रस्थानों पर इसे लगाकर सींचते रहने पर सदैव हरी रह सकती है। इसे देवमंजरी कहते हैं। अन्य भाषाओं के नाम हमें प्राप्त नहीं हुए।

गुणधर्म—कटु, उष्ण, चरपरी, भेदक, पित्तजनक, वातकफ नाशक, ज्वर, विषमज्वर, अर्श, कृमि, शोथ, व्रण आदि को दूर करती एवं विषघ्न है। सर्प विष को शर्तिया नाश कर जीवनदान देती है। सर्प दंश होने पर शीघ्र ही १½ तो. इसके पत्रों को ५ कालीमिर्च के साथ महीन पीस थोड़े पानी में घोलकर पिलावें, लाभ होता है। अथवा—इसका स्वरस २० तोले में प्रथम-देशी कपूर ३ मा., पिपरमेंट २ माशा, सत अजवायन १ मा. इन तीनों को एकत्र मिला द्रवीभूत हो जाने पर उत्तम सुरा ५ तोले में मिलाकर फिर उक्त स्वरस में मिला दें और उनमें कालीमिर्च १ तो. पीसकर मिलाकर शीशी में भर खूब हिलाकर रख लें। जब आवश्यकता हो, मात्रा ३ माशा पिलावें। यदि विष अधिक हो तो १५-१५ मिनिट

---

[1] इस एक वर्ष जीवी, बहु शाखायुक्त २ से ३ इंच या १ फुट ऊंची बूटी की शाखाएं जड़ के पास से ही निकलती हैं। बलूचिस्थान एवं अफगानिस्थान की ओर पुश्तु भाषा में इसे मोराई कहते हैं।

यह कफ निस्सारक, कामोद्दीपक, [आध्माननाशक, अश्मरीजन्य जलन एवं वेदना नाशक है। इसके पंचांग को सुखाकर क्वाथ बना तांद्रिक सन्निपात (टायफस फीवर) में पिलाते है। बढ़ी हुई गर्मी को शांत करने के लिये इसके पत्तों को रात के समय जल में भिगोकर प्रातः मल छान कर पिलाते हैं। ज्वर पश्चात् की अशक्ति पर इसके रस का सेवन कराते हैं। अतिसार पर इसके बीजों का चूर्ण तक्र के साथ पिलाते हैं।—यूनानी

इसे लेटिन में मेंथा पालीजियम (Menthu polygium) भी कहते हैं। अंग्रेजी में वाईल्ड थाईम (Wild thyme), फ्लीमिंट (Fleamint) कहते हैं। इसकी गन्ध से पिस्सू और मक्खियां भाग जाती हैं।

के बाद पिलावें। ईश कृपा से ३ ही मात्रा में सर्प विष नष्ट हो जाता है। सर्व प्रकार के ज्वरों पर—इसका पंचाङ्ग २ तोले और कालीमिर्च २ माशा दोनों को कूटकर २० तो० जल में पकावें। १० तो० शेष रहने पर छानकर प्रातः ५ तोले क्वाथ में २ तोले शहद मिला पिलावें तथा शेष ५ तो० को इसी प्रकार शाम को पिलावें। अथवा—इसके शुष्क पत्र ५ तो० तथा कालीमिर्च व छोटी इलायची के दाने ६-६ माशे सबको महीन पीसकर जल मिला चना जैसी गोलियां बनाकर १ दिन में ३ गोली तक देवें। अर्श पर-इसका पंचांग ५ तो., रसौत १ तो., फिटकरी भुनी हुई ३ माशा सबको महीन पीस जल मिला २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। १-१ गोली दोनों समय शीतल जल से देवें। —श्री पं० अनन्तदेव जी दीक्षित

(धन्वन्तरि के बूटी चित्रांक से)

प्रस्तुत प्रसंग के पुदीने के नाम आदि–

सं.—पूतिहा, पुदिनः; रोचनी, व्यंजन, पूतनी,पूतिका, पूतकन्या, शाकशोभन। हि०—पुदीना, पोदीना, पहाड़ी पोदीना। म०—पंदिना। गु०—फुदीनो। बं०—पुदिना। अं—स्पिअर-मिंट (Spear mlnt), टालरेडमिंट (Tall-red mint), इंडियन पेपरमिंट (Indian peppermiot)। ले०-मेंथा विरिडिस; मेंथा सेटिवा (Mentha satlva)

रासायनिक संगठन–

इसके पत्र तथा पुष्प-मंजरी में एक उड़नशील सुगंधित तैल होता है, जिसमें मुख्य तत्व थाइमोल (Thymol) रहता है, जो स्वाद एवं गन्ध में पिपरमिन्ट से सर्वथा भिन्न होता है। इसके अतिरिक्त इसमें राल, गोंद और टैनिन (कषाय सत्व) भी पाया जाता है।

प्रयोज्यांग—पत्र और तैल।

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, कफ वात शामक, रोचन, पाचन, वमन निवारक, वातानुलोमन, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, कफ निःसारक, आक्षेपहर, मूत्रल, वेदनास्थापक, दुर्गन्धनाशक, व्रणरोपण, गर्भाशय-संकोचक, स्वेदल, त्वग्दोषहर, ज्वरघ्न, विषघ्न है तथा अरुचि, अग्निमांद्य, आध्मान, अतिसार, हृद्दौर्बल्य, कास,

पुदीना

MENTHA SATIVA LINN.
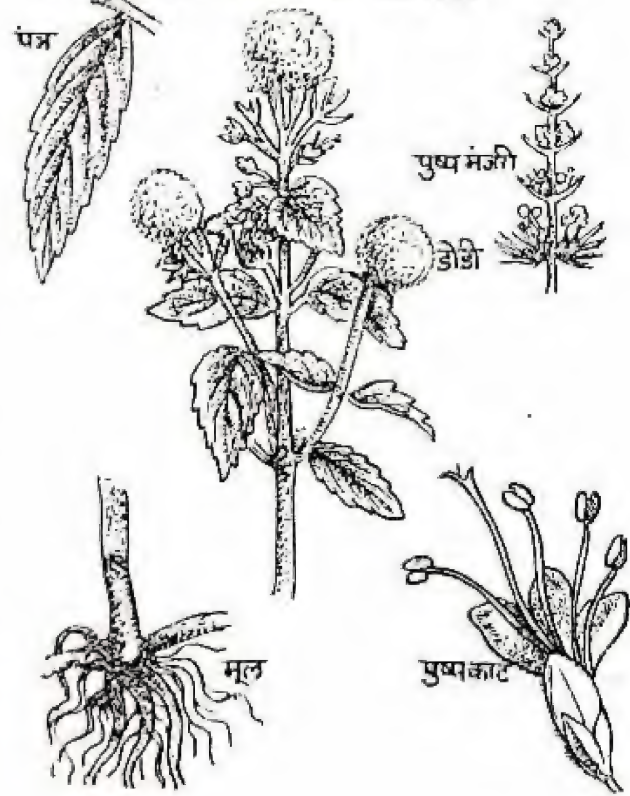
श्वास, हिक्का, मूत्रकृच्छ, चर्मरोग, ज्वर एवं ज्वरोत्तर दौर्बल्य, विषादि में प्रयुक्त होता है।

पत्र-नोट—ताजा पुदीना प्रायः सर्वत्र एवं सर्वदा बाजारों में उपलब्ध होता है। किन्तु, यदि इसका संरक्षण करके रखना हो तो ताजे पत्रों को स्वच्छ जल से धोकर छाया शुष्ककर चौड़ी मुख की ढक्कनदार शीशी में भर शुष्क स्थान पर रख देवें।

प्रायः संग्रह एवं संरक्षणार्थ पुदीना की जड़ को छोड़कर अन्य सभी कान्ड एवं पत्रादि लिये जाते हैं। अच्छी प्रकार से संग्रहीत एवं संरक्षित करके रखने पर ३-६ महीने तक प्रयोग किया जा सकता है।

प्रयोग—वेदनायुक्त स्थानों में तथा दुर्गन्धयुक्त व्रणों में पत्रों को पीसकर लेप करते हैं। मुख दुर्गन्ध नाशार्थ इसके स्वरस को जल में मिलाकर कुल्ले करते हैं। रजोरोध, कष्टार्तव, तथा प्रसूतिज्वर में इसके स्वरस

Scanned with CamScanner

का सेवन करते हैं। पीनस में स्वरस को नाक में टपकाते हैं। दाद में रस को लगाते हैं। अतीसार तथा कास में रस का सेवन करते हैं। कर्ण पीड़ा में स्वरस के साथ शहद मिलाकर कान में डालते हैं। सिरदर्द पर मधु-मिश्रित स्वरस को कनपटी पर मर्दन करते हैं। चोट तथा साधारण व्रणों पर पत्रों को पीसकर लेप करते हैं। मुख के क्षत या छालों पर–पत्तों के गाढ़े क्वाथ में रुई के फाहे को भिगोकर लगाते हैं। नाक और कान के कृमि नाशार्थ स्वरस की या अर्क की २-४ बूंदें नाक तथा कान में टपकाने से लाभ होता है। कफज शोथ पर स्वरस में सिरका मिला कर लेप करते हैं। त्वचा की कांति बढ़ाने के लिये मद्य के साथ इसको पकाकर लेप करते हैं। शरीर के काले दाग दूर होते हैं। आंत्र कृमियों के नाशार्थ इसके ताजे पत्र-स्वरस को पिलाते हैं, तथा इसकी बस्ति भी दी जाती है। छाती तथा फेफड़े में जमे हुए कफ के निष्का-सनार्थ पत्तों के साथ अंजीर को पीसकर खाने से जमा हुआ कफ निकल जाता है तथा कास, श्वास में लाभ होता है। कामला रोग में इसके सेवन से यह अपने स्वेदल गुण से दोषों को द्रवीभूत कर त्वचा के स्रोतों से बाहर निकालकर रोग शमन करता है। बिच्छू, बर्रे तथा चूहे के दंश पर पत्रों को पीसकर उसकी लुगदी रखी जाती है, जिससे विष नष्ट होकर वेदना शांत होती है। बिच्छू के विष पर इसके पत्र को या पत्र स्वरस को पान के बीड़े में रखकर या डाल कर खिलाते हैं।

(१) आमाशय या पचनसंस्थान के अग्निमांद्य, अजीर्ण, आध्मान, वमन, अतिसार आदि विकारों पर–

सिकंजबीन पोदीना[१]–पुदीना शुष्क २ तो० को ४० तो० पानी में उबालकर छानकर उसमें २० तो० नीबू रस तथा ४० तो० खांड़ मिला शर्बत की चाशनी तैयार कर लें। मात्रा २ तो० के सेवन से बढ़ा हुआ पित्त कम होता है। यह दीपक, पाचक है।

शर्बत पुदीना—पुदीना स्वरस व लाल राई प्रत्येक ६० मा, फिटकरी बारीक की हुई ४½ मा., शराब ३१ तो. ५ मा. इन सबको एकत्र कर ७० तो. जल में मंदाग्नि पर पकावें। आधा शेष रहने पर छान कर उसमें ३२ तो. ७मा. शक्कर मिला कर शर्बत की चाशनी बना लें। मात्रा ४ से ६ तो.। यह दीपक, पाचक एवं अजीर्ण नाशक है।

अर्क पुदीना—पुदीना शुष्क २० तो. को ४ सेर जल में रात्रि के समय भिगोकर प्रातः २ सेर तक अर्क खींच लेवें। मात्रा–१० तो.। उदर शूल, वमन, जी मिचलाना तथा वात शूल नाशक है। अजीर्ण, हिक्का, कोष्ठ वात दूर करता है।

अथवा ताजा हरा पोदीना २ सेर कुचल कर यंत्र द्वारा अर्क खींच लें। १ बोतल इस अर्क में १ पौंड मृतसं-जीवनी सुरा या रैक्टीफाईड स्प्रिट तथा पिपरमेंट १॥ तो. और अजवायन का सत ½ तोला मिला दें। ५ से १० बून्द तक देवें। हैजे में भी तुरन्त लाभ होता है।

कुर्स (गोली) पोदीना—पुदीना १ तो., कालीमिर्च ६ मा. तथा अजवायन, सोंठ, वायविडंग और लौंग ३-३ मा. सेंधानमक १ तो. महीन पीस कर ४–४ रत्ती की गोलियां बना लें। मात्रा–१ से २ गोली। दीपक, पाचक व अजीर्ण नाशक है। —यू. चि. सा.

पुदीना के साथ भुना जीरा और नमक मिला कर, पीस कर सेवन से अजीर्ण, अपचन, शूल तथा आध्मान में लाभ होता है।

वमन पर—पुदीना ६ मा. सेंधानमक २ रत्ती एकत्र पीस कर ठंडे ताजे जल में घोल, छान कर थोड़ा-थोड़ा बार बार पिलावें। अथवा पुदीने को पीस कर नीबू रस मिला बार-बार चटावें। यदि पित्तप्रकोपजन्य वमन हो तो इस योग में थोड़ी मिश्री या शक्कर मिला लेवें।

आध्मान तथा अतिसार में इसके स्वरस में सेंधानमक मिला कर देते हैं। उदरशूल में इसका स्वरस और अदरख रस ६-६ मा. में सेंधा नमक १ मा. मिला कर पिलाते हैं। तीव्र उदर शूल (Colic) में इसके स्वरस में

---

[१] एक प्रकार का शर्बत, जो सिरका में शहद या खांड मिलाकर बनाया जाता है। शहद से बनाई सिकंज-बीन उत्तम मानी जाती है। इसमें प्रथम शहद को आग पर रख, उसके झागों को दूर कर, फिर सिरका मिला शर्बत जैसा पाक करते हैं। खांड की बनानी हो तो खांड में चौथाई भाग सिरका मिलाकर शर्बत जैसा पाक सिद्ध कर लेते हैं। नीबू के रस से भी सिकंजबीन इसी प्रकार बनाते हैं।

थोड़ी काली मिर्च का चूर्ण और शहद मिला कर बार बार चटावें।

(२) विसूचिका या हैजा पर—इसके स्वरस १ तो० में प्याज का रस अथवा नीबू का रस ½ तो० मिला, दिन में २-३ बार पिलावें। तथा रोगी के शरीर पर इसके अर्क या स्वरस का प्रलेप भी करें।

रोगी की तृषा शांति के लिये पुदीना शुष्क खस, बड़ी इलायची ५-५ तो० तथा जल ५ सेर एकत्र मिट्टी के पात्र में डाल कर पकावें। १¾ सेर जल शेष रहने पर छान कर एक मिट्टी के साफ बर्तन में रख साफ कपड़े में ढांक देवें।

नोट—उक्त क्वाथ के छान लेने के बाद जो सीठी बचे उसे भी पुनः मटकी में ५ सेर जल के साथ पका कर उक्त विधि से क्वाथ बना कर रखलें। पहला क्वाथ समाप्त होने पर इसे थोड़ा थोड़ा पिलाना शुरू करें। इस दुबारा के क्वाथ में उक्त क्वाथ से कुछ कम गुण होता है। —अ. योग भाग १

(३) उन्माद, बेचैनी तथा हृल्लास (जी मिचलाना) आदि उपद्रव यदि आमाशय की विकृति से हों तो इसके स्वरस १० तो. को थोड़ा गरम कर उसमें ६ मा. शहद और ४॥ मा. नमक मिला कर पिलाने से आमाशय के विकृत दोष वमन के द्वारा बाहर निकल कर शान्ति प्राप्त होती है। — यूनानी

(४) कास श्वास पर—पहाड़ी पोदीना, ईरसा (नीले फूल वाली सोसन की जड़), आशा (एक प्रकार का पहाड़ी पुदीना, पीछे नोट में देखिये), तथा सौंफ १-१ तो. और कालीमिर्च ६ माशा सबका महीन चूर्ण कर उसमें शहद मिलाकर रख लें। मात्रा—३ माशा। कास, श्वास में उत्तम है, कफ निःसारक है। —यू. चि. सा.।

(५) ज्वर पर—शीत ज्वर (विषमज्वर) तथा सामान्य ज्वर हो तो पुदीना और अदरख का क्वाथ कर सेवन करावें।

अथवा ३ माशा पुदीना का थोड़े जल के साथ फांट तैयार कर उसमें थोड़ा नमक मिलाकर पिलावें। ज्वर के पश्चात् अग्निमांद्य, अपचन व अशक्ति के निवारणार्थ उक्त फाण्ट में कालीमिर्च और नमक पीसकर मिला दिया करें। इससे मुख की अरुचि भी दूर होती है। केवल उक्त फाण्ट के ही पिलाने से ज्वर एवं ज्वरजन्य गर्मी, दाह, जलन आदि की शान्ति होती है। पत्तों का बफारा ज्वर एवं प्रारम्भिक कफ प्रकोप में हितकर है।

मंथर ज्वर (टायफाईड) में पुदीना, जंगली तुलसी, कृष्णतुलसी इनका स्वरस २ तोला में मिश्री ३ माशा तक मिलाकर सेवन कराते हैं।

प्रसूति ज्वर एवं उपद्रवों पर—पुदीने का स्वरस १-२ तोला की मात्रा में देने से अच्छा लाभ होता है।

(६) शीत पित्त पर—पुदीना ६ माशा को पीसकर जल में घोल छानकर उसमें १ तोला शक्कर मिला पिलावें। यह १ मात्रा है। प्रातःसायं इसी प्रकार पिलाने से शीघ्र लाभ होता है —यूनानी।

(७) अर्बुदादि व्रणों पर—पुदीना के पत्तों का रस लगाकर ऊपर से पुदीने के ही पत्तों को बांध देने से अर्बुदादि का अति शीघ्र नाश होता है। —वृ. नि. र.

इसके पत्तों की लुगदी को व्रण, जखम पर रखकर बांधने से दूषित कृमियुक्त व्रण ठीक हो जाते हैं।

(८) स्त्री रोग पर—योषापस्मार (हिस्टीरिया) पर-इसका रस कुछ गरम कर पिलाते हैं। इससे मासिकधर्म के समय कमर व पेट में पीड़ा होना अथवा रजस्राव बिल्कुल न होना आदि कई शिकायतें दूर होती है। पुदीना में गर्भाशय को उत्तेजित करने का विशेष गुण है।

सगर्भा स्त्री को शर्बत आदि के रूप में इसको अधिक मात्रा में देने से या इसको कड़ा पीसकर वर्ति बना योनि में रखने से गर्भस्राव या गर्भपात की संभावना रहती है। वर्ति बनाकर योनि में रखने से मासिकधर्म खुलकर आने लगता है।

प्रसव के पश्चात् होने वाले प्रसूति ज्वर में इसके स्वरस को १-२ तोला की मात्रा में नित्य पिलाने से लाभ होता है, गर्भाशय को शक्ति मिलती है तथा स्तनों में दुग्ध की वृद्धि होती है। इससे स्वेद व मूत्र की भी वृद्धि होती है।

गर्भ निरोधार्थ—इसको छायाशुष्क कर चूर्ण कर

Scanned with CamScanner

रक्खें। सहवास करने से १-२ घंटे पूर्व ६ माशे से १ तो. तक यह चूर्ण जल के साथ स्त्री को पिलाने से गर्भ की स्थिति नहीं होती। इस प्रकार जब जब सहवास किया जाय इसे पिला देने से गर्भाधान नहीं होगा।

—भा. ज. बूटी।

तेल—इसका तेल स्थानीय संज्ञाहर, वेदनाहर एवं जंतुघ्न है। दन्त पीड़ा पर इसे लगाते हैं। तेल की गन्ध से मच्छर भाग जाते हैं।

यह तेल पिपरमेंट (*M.* Arvensis) के तेल के समान ही प्रभावशाली है। पिपरमेंट का प्रकरण पीछे देखिये।

नोट—मात्रा—पत्र स्वरस ½ से २ तो. पत्र चूर्ण २-६ माशा। फांट २-४ तो.। अर्क भवके से खींचा हुआ २-४ तो। तेल ½-३ बूंद।

पुदीने का अत्यधिक सेवन वृक्क तथा आंत्र के लिये हानिकारक है, काम शक्ति को घटाता है। हानि निवारक-मुलहठी का सत्व (रुब्बेसूस) तथा कतीरा है।

विशिष्ट योग–

(१) पुदीनासव या अर्क पुदीना—पुदीने के ताजे पत्र ५ तो. को रेक्टीफाइड स्प्रिट २० तो. में मिला शीशी में बन्द कर रक्खें। ८ दिन बाद यह हरे रंग का आसव तैयार हो जावेगा। फिर इसे फलालेन के छन्ने में छानकर शीशियों में भर लेवें। मात्रा ५ से दस बूंद तक। जी मिचलाना, वमन, दस्त, मरोड़ आदि विकारों को यह शीघ्र दूर करता है। क्षुधावर्धक है। हैजे में भी विशेष हितकर है। (बृहदासवारिष्ट संग्रह)

नोट—भवके द्वारा खींचा हुआ अर्क का योग पीछे आमाशय के विकारों के प्रयोग नं० १ में देखिये।

(२) शर्बत पुदीना—हरे पुदीने के स्वरस ४० तो. को आग पर चढ़ादें। फट जाने पर छान कर उसमें खांड ६० तो. मिलाकर पुनः आग पर पकावें। शर्बत की चाशनी आ जाने पर उसमें सोंठ, मिर्च, पिप्पली १-१ तो. तथा सौंफ, सुहागा (भुना हुआ), छोटी इलायची, पत्रज (तेजपात) व सेंधा नमक ६-६ माशा महीन पीस कर मिला दें तथा नीचे उतार कर शीशी में भर रक्खें। मात्रा ½ तो. से १ तो. तक। यह हैजा, उदर-शूल, संग्रहणी, मन्दाग्नि, अरुचि, कोष्ठबद्धता आदि अनेक उदर रोगों को दूर करता है।

—स्व० पं० भगीरथ जी स्वामी

नोट—शर्बत पुदीने का एक प्रयोग पीछे आमाशय के विकारों के प्रयोग में देखिये।

(३) माजून फूतंजी—आशा (पहाड़ी पुदीने का एक भेद), बाबूने के फूल, करफस बीज (अजमोद) प्रत्येक ४ तो. ८ माशा, पुदीना नहरी, पुदीना पहाड़ी, फितरासालियून (Apium petroselinum or prangos pabularia—यह अजमोद का ही भेद है, ये बीज लम्बे, काले एवं अजवायन जैसे होते हैं। इसे हिन्दी में कोमल कहते हैं। इसके क्षुप पश्चिम भारतवर्ष तथा पशिया में विशेष पैदा होते है। अंग्रेजी में पार्सले (Parsley) कहते हैं) के बीज तथा अंजुदान (हींग के वृक्षों के फल या बीज आगे हींग का प्रकरण देखें) के बीज प्रत्येक ३॥ तो. काली मिर्च ७ तो. और कासिम[1] ४ तो. ४ माशा सबको कूट छानकर, तिगुना शहद के पाक में मिलाकर माजून तैयार कर लेवें। मात्रा ७ मा. यह आमाशय तथा यकृत शूल का नाशक, कब्ज, कफज-ज्वर, जीर्ण ज्वर एवं चौथिया ज्वर में लाभप्रद है। यह वस्ति या आमाशय में जमे हुए रक्त को पिघलाकर निकाल देता है। —यू० चि० सा०।

(४) चटनी पुदीना—पुदीना, खजूर (छुहारा) काली मिर्च, सेंधानमक, काली दाख, जीरा तथा थोड़ी भुनी हुई हींग सबको नीबू के रस में पीसकर चटनी बना लें। यह चटनी स्वादिष्ट, अरुचि नाशक एवं रोचक है।

---

[1] कासिम (कासम)–यूनानी ग्रन्थानुसार यह एक छोटी जाति का क्षुप है। इसके बीज काले, ठोस व सुगन्धित होते हैं। इसकी जड़ को इस्तरगाज कहते हैं। उस्तुरगाज (असारियून) इसी का एक भेद है। इसके क्षुप विशेषतः रोम, बगदाद, अफगानिस्तान आदि के जंगलों में पैदा होते हैं। यह उष्ण व रूक्ष है, मेदे व मसाने के जमे हुए खून को बिखेरता है, मूत्रल है। इसके बीजों को ६ रत्ती की मात्रा में शराब के साथ १० दिन तक देने से वृक्कशूल दूर हो जाता है।

पुनर्नवा (लाल) (Boerhavia Diffusa)

गुडूच्यादि वर्ग एवं पुनर्नवा कुल [1] (Nyctaginaceae)के इस बहुवर्षायु, श्वेतपुनर्नवा की अपेक्षा अधिक प्रसरणशील, मृदुरोमश या चिकने, कुछ लाल रंग के २-३ फुट लम्बे क्षुप के काण्ड ०.६—०.६ मि. मि. लम्बे प्रायः ललाई लिये हुये, कड़े, पतले, गोल, पर्व संधि पर मोटे, अनेक लम्बी, पतली, लाल वर्ण की शाखाओं से युक्त; पत्र—पर्वसंधि पर छोटे-बड़े संयुक्त, चौड़े, लट्वाकार, बड़े पत्र २.५—२.७ मि. मि. लम्बे तथा छोटे पत्र १.२-१.७ मि. मि. लम्बे, अधरतल पर श्वेताभ, चिकने (श्वेत पुनर्नवा के पत्र जैसे ही किंतु कुछ पतले); पुष्प-पत्रकोण से निकले हुये पुष्पदण्ड पर गेंद या छत्रि के आकार के छोटे-छोटे गुलाबी, हलके गहरे गुलाबी या लाल रंग के पुष्प आस-पास में ४-१० की संख्या में लगभग वृन्तरहित पुंकेशर २-३; फल—६ मि. मि. लम्बे,५ धारियों से युक्त, कृष्णाभ चिपचिपे एक बीजयुक्त होते हैं। मूल—श्वेत पुनर्नवा की मूल की अपेक्षा कम मोटी किन्तु लम्बाई में अधिक मूली या गाजर जैसी सहज में ही बीच से टूट जाने वाली, लम्बाई में ६ इंच से १० इंच तक, क्रमशः ऊपर की ओर मोटी, निम्नभाग में पतली, अनेक उपमूल युक्त होती है। मूल को तोड़ने पर दूध जैसा गाढ़ा रस निकलता है। गन्ध-उग्र और कड़वी, स्वाद में प्रथम मधुरता, फिर जीभ पर चुनचुनाहट पैदा करने वाला होता है।

यह भारत के प्रायः सब प्रान्तों में, विशेषतः कंकरीली रेतीली, कड़ी या परती-जमीन में अधिक पैदा होता है बलूचिस्तान, सीलोन तथा अन्य उष्ण प्रदेशों में भी पाया जाता है।

नोट नं० १—परम खेद है, कि अति प्राचीन काल से प्रचलित यह पुनर्नवा बूटी भी आजकल संदिग्ध सी हो गई है। इसका मुख्य कारण इसका अनेक प्रकार का होना तथा सब प्रकारों को एक पुनर्नवा नाम से ही पुकारा जाता है। उदाहरणार्थ सर्वप्रथम अथर्ववेद के मं. ८ सूक्त ७ में 'या रोहन्ति पुनर्नवा' ऐसा उल्लेख आया है। चरक में 'पुनर्नवा', 'वृश्चीरः पुनर्नवा' तथा कठिल्लक ऐसे नाम भिन्न भिन्न प्रसंग में दिये गये हैं, किंतु चरक के टीकाकार चक्रपाणी ने इन सबको पुनर्नवा के प्रकार कहकर चुप्पी साध ली है। सुश्रुत और वाग्भट ने पुनर्नवा तथा 'वर्षाभू' ऐसे इसके भिन्न भिन्न दो नाम कहे हैं। 'वृश्चीर पुनर्नवा' और 'वर्षाभू पुनर्नवा' ऐसे दो प्रकार के नामवाचक संयुक्त शब्द एक ही सूत्र में दिये जाने से, ये दोनों परस्पर में भिन्न हैं ऐसा स्पष्ट बोध होता है।

चरक सू० अ ४ में स्वेदोपग, अनुवासनोपग, कासहर गणों में 'वृश्चीर पुनर्नवा' तथा वयःस्थापन गण में 'केवल पुनर्नवा' नाम दिया गया है। और सू० अ० २७ के शाकवर्ग में इसके लिये 'कठिल्लक' नाम आया है। सुश्रुत सू० अ० ३६ के विदारिगन्धादि में केवल 'पुनर्नवा' तथा सुश्रुत चि. स्था. अ. १४ में उदर रोग एवं सामान्य पिड़िकाओं में पुनर्नवा कल्क दूध के साथ सेवनार्थ कहा गया है। चि० अ० १२ में प्रमेह पिटिकादि में 'वर्षाभू' और 'पुनर्नवा' नाम दिये गये हैं; अ० २० के क्षुद्ररोग चिकित्सा में 'वर्षाभू' नाम तथा अ० २३ के गलगण्ड प्रकरण में केवल 'पुनर्नवा' अ० १८ के सूतिका रोग में भी 'पुनर्नवा' इत्यादि, वाग्भट के सू. स्था. अ. १५ के विदार्यादिगण में वृश्चीर एवं अ. ६ केसामान्य शाक वर्ग में 'वर्षाभू' नामों के उल्लेख हैं।

उक्त प्रकार से पुनर्नवा के नामकरण में गड़बड़झाला होने से यह बूटी संदिग्ध सी हो गई। आगे चलकर अमरकोष कार ने इसकी निरुक्ति कर इस उलझन या संदिग्धता को दूर करने का प्रयत्न किया है। पुनर्नवा-"पुनरभीक्ष्णं नवा, नूयते वा" जो बार-बार प्रतिवर्ष नवीन हो जाय या जो शरीर को पुनः नया बना दे। अतः

[1] इस कुल के क्षुप, द्विबीज पर्ण, बाह्याभ्यन्तर सपुटकोश, पत्र—अभिमुख, सादे उपपत्र रहित, पत्र के संयुक्त जोड़ों में एक मोटा तथा एक छोटा; पुष्प के पुंकेशर अनियत; बीजकोश ऊर्ध्वस्थ, एक खण्ड-वाला; फल—पतली त्वचा वाला तथा कोशनलिका के भीतर आवृत रहता है।

Scanned with CamScanner

इन पुनर्नवा नामधारी वनस्पति समूह में दो पुनर्नवा प्रजाति की जो वनस्पति उक्त निरुक्ति के अनुसार हैं। वे ही चरकादि संहिताकारों को पुनर्नवा होनी चाहिए। इस परंपरागत पुनर्नवा वर्ग में जिसे भाषा में लाल पुनर्नवा, सांठ, गदहपुर्ना आदि कहते हैं तथा जिसका आधुनिक वनस्पति शास्त्र (Botany) के अनुसार बोर्हेविया जाति (Boerhavia genus) में समावेश किया जाता है। वही प्राचीन संहिताकारों का पुनर्नवा निश्चित् होता है। वनस्पतियां ग्रीष्म काल में शुष्कप्राय होकर बेकार सी हो जाती है, किंतु इनके मूल, उपमूल जो जमीन में गहरे घसे हुए होते हैं, वे वर्षाकाल में पुनः अंकुरित होकर बढ़ने लगते हैं। इस प्रकार ये पुनः नवीन हो जाती हैं। इसीलिये गणमान्य विद्वानों द्वारा इसे ही पुनर्नवा नाम से मान्यता दी गई है। आर्द्र तथा छायायुक्त स्थानों में ये बारहों मास बनी रहती हैं।

"वर्षाभू" की निरुक्ति में कहा गया है "वर्षाकाले-भवति, प्रादुर्भवति" जो वर्षा काल में ही पैदा होवे, वर्षाकाल के पश्चात् जो दुष्प्राप्य हो, वर्षाकाल में भी जो सर्वत्र प्राप्त न हो। इस निरुक्ति के अनुसार आधुनिक वैज्ञानिक वानस्पतिक नामकरणानुसार ये पुनर्नवा नामधारी वनस्पतियां ट्रायन्थेमा (Trianthema) समूह की जातियों में सम्मिलित की गई है।

उक्त दोनों जाति-समूहों में इस वनस्पति की अनेक जातियां है। इनमें से प्रमुख जातियों के स्पष्ट बोधार्थ नीचे का विवरण दिया जाता है—

1 पुनर्नवा (बोर्हेविया जाति) के तीन भेद–

(अ.) बोर्हेविया डिफ्यूजा (डिफ्यूजा अर्थात् चौड़ाई में फै [illegible] हुआ)–यह इस जाति में विशेष प्रमुख होने से इसका ही वर्णन प्रस्तुत प्रसंग में किया जा रहा है। बो. रिपेन्स (B. Repens), बो. प्रोकुम्बेन्स (B. Procun bence) तथा बो. एरेक्टा (B. Erecta) इसके ही अन्य लेटिन नाम हैं।—तथा इन्हें ही पुनर्नवा, खपरा, गदहपूर्ना आदि भाषा में और 'कठिल्लक (शाक पुनर्नवा), नाम प्राचीन संहिताओं में दिया गया है।

(ब.) बोर्हेविया रेपन्डा (B. Repanda)-इस आरोहण एवं प्रसरणशील लता के पत्र संयुक्त या जोड़ों में लगभग एक समान १-३ इंच लम्बे, त्रिकोणाकार किंचित् अण्डाकार, प्रायः गहरे तरंगदार किनारे युक्त; पत्र वृन्त ½-१॥ इंच लम्बा, पुष्प लम्बी सलाकापर गुलाबीरंग के ३ से ८ तक संख्या में होते हैं। इसकी क्षुपाकार लतायें उत्तर भारत में गंगाजी के तट पर तथा दक्षिण में पश्चिम घाट और पश्चिमोत्तर प्रान्तों में; बलुचिस्थान आदि में भी पाई जाती हैं।

इसे ही शशिवाटिका, दीर्घपत्रा धन्वन्तरि निघण्टु आदि ग्रंथों में कहा गया है। तथा चरक के वयःस्थापन गण में और सुश्रुत के विदारिगन्धादि में यही 'पुनर्नवा' नाम से ली गई है।

(स.) बो. व्हर्टिसिलेटा (B. Verticillata)-चारों ओर से गोल गुच्छाकार क्षुप को लेटिन में व्हर्टिसिलेटा कहते हैं। इसके पत्र मोटे १॥ से २॥ इंच लम्बे (चौड़ाई में कुछ अधिक) पत्रवृन्त छोटा ½ से ¾ इञ्च लम्बा पुष्प लम्बी कलगी के छत्राकार गुच्छों में श्वेत गुलाबी रंग के पुष्प २ से ३ तक संख्या में, पुंकेसर ३ तक होते हैं। इसके मूल की छाल भूरी या पीतवर्ण की दुग्ध जैसे रस युक्त होती है। इसके क्षुप राजस्थान में अधिक पाये जाते हैं।

उक्त बोर्हेविया जाति के सब पुनर्नवा की मूलें यद्यपि लम्बी (दीर्घमूला) दिखाई देती हैं तथापि वे द्रव्य रचना की दृष्टि से कन्द ही हैं। क्योंकि वे दुग्ध जैसे गाढे रस से युक्त मांसल (Starchy) होते हैं। गन्ध में उग्र कटु तथा स्वाद में अल्प स्वादु, किंतु जिह्वा पर, सूरन कन्द जैसे किंतु चुनचुनाहट पैदा करने वाले हैं। इसीलिये विशेषतः उक्त (ब) में निर्दिष्ट पुनर्नवा को चरक ने वयः स्थापन गण में तथा सुश्रुत ने विदारिगन्धादि गण में श्वेत पुनर्नवा नाम दिया है, ऐसा प्रतीत होता है।

डा० देशाई तथा मद्रास और बंगाल के कविराजों ने उक्त बोर्हेविया जाति के पुनर्नवा को ही सच्ची पुनर्नवा माना है। उसमें भी बो. डिफ्युजा (जिसका वर्णन प्रस्तुत प्रसंग में किया जाता है) विशेष गुणकारी माना गया

[१] बोर्हेव नामक एक उच्च वनस्पति शास्त्री के सम्मानार्थ यह नम दिया गया है।

Scanned with CamScanner

है वैसे ही इस जाति की उक्त सब वनस्पतियों का गुणधर्म न्यूनाधिक प्रमाण में समान ही है।

II ट्रायंथेमा (Trianthema) जाति की पुनर्नवा या वर्षाभू के भेद—

(अ.) Trianthema Portulacastrum—इसे विसखपरा, पथरी, सफेद गदह पुरना, श्वेत पुनर्नवा आदि भाषामें कहते हैं। सुश्रुत और वाग्भट ने इसे ही वर्षाभू कहा है। इसका विस्तृत वर्णन आगे पुनर्नवा श्वेत के प्रकरणमें देखिये। इसके भेदों को लेटिन में ट्रायंथेमा मोनोजिना (T.monogyna) ट्रा. ओबकोरडाटा (T.Obcordata) आदि कहते हैं। ये सब भिन्न-भिन्न कुल के हैं।

(ब.) ट्रा. डेकान्ड्रा (T. Decandra), ट्रा. क्रिस्टालिना (Crystallina) ट्रा. पेन्टान्ड्रा (T. Pentandra) उक्त सब वनस्पतियों का विशेष वर्णन आगे के पुनर्नवा श्वेत में देखिये।

विशिष्ट वर्णन—ये वर्षाकाल में इंद्रगोप [बीरबहूटी] मेंढकादि के जैसे नूतन अंकुरित हो उठते हैं तथा वर्षा के बाद नष्ट हो जाते हैं। इसीलिये इन्हें वर्षा-भू कहा गया है। वाग्भट ने इसी का एक भेद शाक वर्षा-भू या कालशाक (अ० हृ० सू० अ० ६) माना है तथा अमरकोषकार ने सुनिषण्णक शाक कहा है। ये उक्त भेदों में से २ की (अ०) में कही हुई वर्षा भू होनी चाहिये। क्योंकि पुनर्नवा प्रजाति में इसी की शाक प्रायः बनाई जाती है।

केवल पुष्पों के रंग भेद से रक्त या श्वेत पुनर्नवा मानना अशास्त्रीय है। उदाहरणार्थ—कठिल्लक (शाकपुनर्नवा) को उक्त I के (अ.) में निर्दिष्ट वनस्पतियों पर स्थल भेदानुसार श्वेत या रक्त पुष्प आया करते हैं। ध्यान रहे, पुष्पों के रंग में अन्तर होने से शारीर घटना में भी भिन्नता हुआ करती है, ऐसा मानना समीचीन नहीं है। हां, उनके रासायनिक संघठन में कुछ अन्तर होना संभव है।

उक्त वर्गीकरण के अनुसार भेद I और II में कही हुई पुनर्नवा नामधारी वनस्पतियां भिन्न-भिन्न कुल की हैं। सुश्रुत ने इनकी व्याधि-भेद से योजना की है। भेद *I* की पुनर्नवा स्वादु तिक्त है तो भेद *II* की वर्षा-भू सक्षार, कटु, तिक्त है। —देखो सूत्र वाग्भट अ० ६।

आधुनिक संशोधानुसार उक्त भेद *I* के (अ) में कहा हुआ कठिल्लक या शाक पुनर्नवा (जो सर्वत्र प्रचलित है तथा जिसका वर्णन प्रस्तुत प्रसंग में किया गया है) का जड़ में पुनर्नवीन क्षारभ .०४% है तो *II* के (अ) में सूचित वर्षाभू या विषखपरे में यह क्षाराभ केवल .०१% है किंतु साथ ही साथ स्यापोनीन (Saporin) श्वेत या लाल साबूनी भी है तथा यह सारक और अर्धाङ्गोत्पादक है और उसी का भेद *II* के (ब) में निर्दिष्ट वर्षाभू (वसू) गर्भपात कारक है, ऐसा डा० बेट का मत है। सारांश यह है कि वर्षाभू वर्ग में (जिसका वर्णन आगे पुनर्नवा श्वेत के प्रकरण में किया गया है) पुनर्नवीन (Punarnavine) नामक कार्यकारी तत्व अत्यल्प तथा अन्य दोष अधिक एवं भयंकर होने से ही इस वर्षाभू वर्ग की पुनर्नवा नामधारी वनस्पति का खतरा सूचक विषखपरा नाम भाषा में रूढ़ हो गया है। अतः इन सब बातों का विचार करने से यह निश्चित होता है कि पुनर्नवा प्रजाति भेद I और वर्षा भू प्रजाति भेद *II* की वनस्पतियों के गुणधर्मों में बहुत असमानता या बहुत भेद है।

ध्यान रहे प्राचीन संहिता ग्रन्थों का रचना काल आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व का है। तब से आज तक इस परिवर्तनशील संसार में सब के रूपान्तर के अनुसार ही वनस्पतियों के भी रूप एवं जाति में काल भेदानुसार अन्तर पड़ जाना स्वाभाविक है। हम देखते हैं कि केवल स्थल भेद से भी एक ही काल में विशेषतः प्रोटीनयुक्त वनस्पति के रूप और आकार प्रकार में भेद या अन्तर होता है। उक्त भेद *I* में (अ) की पुनर्नवा (जिसका प्रस्तुत प्रसंग में वर्णन किया जा रहा है) इसी प्रकार की है। महाराष्ट्र की ओर इसके पत्र अपेक्षाकृत छोटे एवं कुछ सिकुड़े हुए से दीखते हैं। किन्तु भारत के कई भागों में यह लता के समान परिवर्द्धित तथा बड़े, मांसल, रसदार पत्रों वाली (Producing large succulent leaves) दिखलाई पड़ती है। दक्षिण की ओर इसमें कुछ ऊदे या गुलाबी रंग के पुष्प आते हैं तो उत्तर भारत में श्वेत या श्वेताभ रक्त वर्ण के। अतः केवल पुष्पों के रंग या आकृति के फेरफार

Scanned with CamScanner

से पुनर्नवा का वर्गीकरण करना असंगत एवं कठिन है तथापि पत्र शाखा और मूल को देखकर भाग I के पुनर्नवा लाल और भाग II के पुनर्नवा श्वेत या वर्षाभू की पहिचान इस प्रकार की जा सकती है—

भाग *I* के बोहिविया जाति के लाल पुनर्नवा के पत्र अपेक्षाकृत छोटे और पतले, शाखायें कुछ मजबूत, मूल जैसा कि ऊपर कह आये है। लम्बी एवं दुग्ध जैसे गाढ़े रस से युक्त, गाजर या मूली जैसे कन्दाकार, मांसल, स्वाद में प्रथम मधुर सी फिर किंचित् चुनचुनाहट पैदा करने वाली होती है। और यह लाल जाति बारहों महीने हरी प्राप्त हो सकती है। भागII के ट्रायन्थेमा जाति या श्वेत पुनर्नवा वर्षायु (वर्षाभू) के पत्र बड़े तथा चिकने, लसदार एवं रस भरे, शाखायें भी रस से भरी हुई, किंतु तीव्र टूटने वाली, मूल—दृढ़, श्वेत, किंतु कन्दाकार नहीं होती। स्वाद में चिपचिपी, फीकी, मुख में थूक (लार) पैदा करने वाली, मुख से निकाल डालने पर ५-१० मिनट में जीभ कड़ी व रूखी हो जाती है। ताजी अवस्था में कुछ मधुर, शुष्क होने पर हुल्लासकारक तथा उग्र गंध होती है। यह केवल वर्षा काल में हरी प्राप्त होती है। इसका विशेष वर्णन आगे के प्रकरण में देखिये।

नील पुनर्नवा निघन्टुओं में कही गई है किंतु आजकल देखने में नहीं आता।

प्रस्तुत प्रसंग के पुनर्नवा के नाम गुणधर्म आदि:—

नाम—

सं.—रक्त पुनर्नवा, शिलाटिका, शोथघ्नी, कठिल्लक इ.। हि.—लाल पुनर्नवा, सांठ, खट्टन ,गदह पुर्ना[1] इ.। म.—पुनर्नवा तांवड़ी, छेंटुली, खापरा, वसु इ.। गु.—राती साटोड़ी, बसेड़ो, ओरलो गोरलो, रफेड़ी इ.। बं.—पुनर्नवा। अं.-हागवीड (Hogweed), हार्स पर्सलेन (Horse purslene) ले.-बोर्हेविया डिफ्यूफा।

रासायनिक संगठन—

इसके पत्तों में शुष्कावस्था में पुनर्नवीन (Punarna-

रक्तपुनर्नवा
BOERHAAVIA DIFFUSA LINN.

क्षुप
पत्र
पुष्प
बीज

vine) नामक कार्यकारी क्षाराभ की मात्रा ०.०१% तक होती है। किंतु मूल में इस क्षाराभ की सम्पूर्ण मात्रा ०.०४% होती है (यह इसमें पाया जाने वाला एक प्रकारका हाईड्रोक्लोराइड है, जिसका नाम पुनर्नवीन रक्खा गया है)। इसके अतिरिक्त इसमें पोटासियम नायट्रेट (Potassium nitrate), सल्फेट (Sulphates), क्लोराइड (Chlorides) ६.५% एवं एक स्थिर तैल होता है।

नोट—इसके हरे पौधों में पानी का प्रमाण अधिक होने से ठीक परीक्षण नहीं हो पाता। अतः परीक्षणार्थ इसे शुष्क करलिया जाता है। इसमें मूत्रोत्पादक पोटासियम नाइट्रेट की मात्रा अधिक प्रमाण में ६.४१% तक होने से ही यह वनस्पति मूत्रल गुण विशिष्ट है। तथा

[1] गदहपूर्ना—इस्पस्त बूटी (Trifolium Pretensis) को भी कहते हैं। जो वर्षाकाल में खूब पैदा होती है, तथा आकृति में इसी पुनर्नवा की भांति होती है। किंतु इसमें फलियां आती हैं। इसकी भी पत्र-शाक ग्रामीण लोग बड़े शौक या स्वाद से खाते हैं। इसका प्रयोग कंपवात, लकवा, शोथ, कामला आदि पर किया जाता है। इसका विस्तृत विवरण इस ग्रन्थ के भाग १ में देखिये।

Scanned with CamScanner

इस गुण के कारण ही इसका प्रभावशाली असर होता है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र और मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, मधुर, तिक्त, अनुष्णवीर्य, कटु विपाक, स्वेदोपग, वातकर, वयः स्थापन, विरेचन, दीपन, मूत्रल, कफघ्न, पित्त एवं रक्तविकार नाशक, प्रभाव-शोथघ्न, अधिक मात्रा में वामक। शोथ, सर्वाङ्ग शोथ, उदर, कामला, मूत्राल्पता, पांडु, हृद्रोग, श्वास, उरःक्षत, सुजाक, नेत्र विकार, विषविकार आदि में प्रयुक्त होता है।

नोट—डाक्टर देसाई का कथन है कि इसका मूत्रल धर्म उत्तम उच्च कोटि का होने से इसके प्रयोग से मूत्र पिण्डों पर उत्तेजक क्रिया होती तथा रक्त का दबाव बढ़कर सहज ही में सरलता से, बिना कष्ट के मूत्र का प्रमाण दुगना हो जाता है। यह मूत्रजनन धर्म इसकी अनुलोमिक पूर्ण मात्रा देने पर ही प्रतीत होता है। क्योंकि यथार्थ में इसमें अनुमोलिक धर्म बहुत कम है। इसका कफघ्न गुण इसे अत्यल्प मात्रा में बार-बार देने पर दृष्टिगोचर होता है। वमन कराने के लिये थोड़े ही समय में १ या २ अनुलोमिक मात्रा देनी चाहिये। परिणाम में वमन कोष्ठ शुद्धि होकर श्लेष्मा (कफ और आम) मुख और गुदा से निकल जाता है। मात्रा अनुलोमिक ४० रत्ती दिन में ३ बार गरम जल से देवें तथा इसके साथ त्रिकटु देवें। इसमें स्वेदजनन धर्म भी अतिकम है।

हृदय पर इसकी क्रिया धीरे-धीरे अत्यल्प प्रमाण में किन्तु स्पष्ट डिजिटेलिस के समान होती है। हृदय की संकोचन क्रिया बढ़ती, धमनियों में रक्त प्रवाह जोर से होने लगता एवं रक्त का दबाव बढ़कर मूत्र का प्रमाण भी बढ़ना तथा शरीर का संचित विकारी द्रवांश निकल जाता है। इस प्रकार इससे शोथघ्न कार्य भी होता है। यद्यपि यह बच्छनाग, नागदन्ती (बड़ी दन्ती), सुरमा तथा शीतल जल में भिगोई हुई कपड़े की तह या गरम जल के सेक के समान प्रत्यक्ष शोथ को नष्ट नहीं करता तथापि उक्त प्रकार से मल मूत्र के रेचन द्वारा यह सूजन को उतारने में सफल होता है।

हृदय की निर्बलता से उत्पन्न शोथ एवं जलोदर में इसका सेवन कराने पर हृदय को बल देता है। हृदय का आकुंचन बलपूर्वक होता है तथा मूत्रल असर पहुंचकर शोथ व जलोदर में लाभ पहुंच जाता है। वैसे ही यकृद्दाली या वृक्कविकृति से उत्पन्न शोथ तथा जलोदर में भी इसके उपयोग से तुरन्त लाभ प्रतीत होता है। इसी प्रकार यह प्लुरिसी (फेफड़ों की झिल्ली की सूजन), अन्तरशोथ, सर्वाङ्गशोथ में लाभदायक सिद्ध हो चुका है। बाह्य शोथ में इसके पत्तों को कुचलकर गरम करके बांधते हैं। तथा इसे कालीमिर्च के साथ देते हैं।

अजीर्ण और हृदय रोग में—इसके पत्तों का शाक लाभदायक है। हृदय रोग में इसके साथ कुटकी, चिरायता व सोंठ मिलाकर क्वाथ बनाकर सेवन कराते हैं, शीघ्र लाभ होता है। कफयुक्त श्वास रोग तथा श्वासनलिका के शोथ में इसे बच के साथ देने से कफ ढीला होकर लाभ होता है। विशेषतः श्वास रोग में इसे बड़ी मात्रा में देने से वमन होकर शांति प्राप्त होती है। सुजाक में इसके प्रयोग से जलन कम होती तथा पेशाब अधिक प्रमाण में होकर उसका घाव धुल जाता है जिससे मूत्र नलिका की सूजन कम होजाती है।

डा. डायमाक के मतानुसार इसकी जड़ का चूर्ण दिन में दो बार चाय के चम्मच की मात्रा में देने से मृदुविरेचन होता है। पांडुरोग में पैरों में शोथ होजाने तथा हृदय दुर्बल होने की अवस्था में इसका प्रयोग लोह के साथ विशेष लाभकारक है।

मूल—ऊपर के नोट में तथा नीचे भी जहां इसके अंग का स्पष्ट उल्लेख नहीं, वहां इसकी मूल ही जानना चाहिए।

शुष्क कास में—मूल के चूर्ण में शक्कर मिलाकर देते हैं। श्वास में मूल-चूर्ण ३ माशा में हल्दी का चूर्ण ४ रत्ती मिलाकर शहद के साथ देते हैं। ऐंठन या बाइंठे पर मूल का क्वाथ ५ तोले तक देते हैं।

(१) शोथ पर पुनर्नवादि क्वाथ—पुनर्नवा, दारुहल्दी, हल्दी, सोंठ, छोटी हरड़, गिलोय, चित्रक मूल,

Scanned with CamScanner

भारंगी और देवदारु सब समभाग का जौकुट चूर्ण २ तो. को ३२ तो. जल में अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर पीने से हाथ, पैर, मुख और उदर का शोथ नष्ट होता है।

—शा० सं०।

अथवा—पुनर्नवा, गिलोय, दारुहल्दी, हरड़ और सौंठ इनके अष्टमांश क्वाथ में गोमूत्र ६ मा० तथा शुद्ध गूगल १ माशा मिलाकर सेवन से शोथ और उदर रोग (विशेषत: पेट का बढ़ जाना दूर होते हैं। —शा० सं०।

कफज शोथ पर—पुनर्नवा, सौंठ, निसोथ, गिलोय, अमलतास का गूदा, हरड़ समभाग एकत्र पीसकर ३ से ६ माशा तक की मात्रा में शुद्ध गूगल १ मा० तथा गोमूत्र १ तोला मिलाकर सेवन करें (यह १ मात्रा है) अथवा उक्त औषधों के क्वाथ में गूगल व गोमूत्र उक्त मात्रानुसार मिलाकर सेवन करें। यह योग प्रवृद्ध उरस्तोय में भी लाभदायक है। —भैं० र०।

पुनर्नवाघृत—पुनर्नवा २ सेर को १६ सेर जल में पकावें। ४ सेर शेष रहने पर छानकर उसमें पुनर्नवा का कल्क ६ तो० ८ मा० और घृत १ सेर मिला घृत सिद्ध करलें। मात्रा १ तो० सेवन से सर्व प्रकार का शोथ दूर होता है। —भैं० र०।

वातजशोथ पर—उक्त या निम्न घृत का सेवन करावें—पुनर्नवा, देवदारु, हरड़ व सौंठ समभाग मिश्रित १३ तो० ४ माशा लेकर जल के साथ पीस कल्क करें। तथा—४ सेर सूखी मूली को ३२ सेर जल में चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर इस क्वाथ और कल्क में २ सेर घृत मिला घृत सिद्ध करलें। इसे ½ से १ तोला कर सेवन करें। —ग० नि०।

शर्बत—पुनर्नवा का मूल सहित ताजा हरा पंचाङ्ग १ सेर जौकुट कर ४ सेर जल में अर्द्धावशिष्ट क्वाथ सिद्ध कर छानकर उसमें आध सेर शक्कर मिला शर्बत की चाशनी तैयार करलें और उसमें ५ तोला कलमीशोरा पीसकर मिला दें। शीशी में भर रक्खें। मात्र २॥ तोले प्रातःसायं देने से शोथ शीघ्र ही दूर होता है।

—धन्वन्तरि के गुप्त सिद्ध प्रयोगांक से।

पुनर्नवा पुट स्वेद—पुनर्नवा, नीम पत्र, सेम और फरहद की छाल इन्हें पोटली में बांध कर सेंक करने से प्रबल शोथ नष्ट होता है।

व्रण शोथ पर लेप—इसकी जड़ को बकरी के दूध से धोकर स्वच्छ कर फिर बकरी के ही दूध में पीसें। उसमें ३-४ दाने कालीमिर्च के भी डालकर खूब रगड़ कर किंचित गरम कर सुखोष्ण लेप करने से व्रण का अपक्व शोथ, १-२ दिन के लेप से अवश्य शांत हो जाता है। लेप सूख जावे तभी पुनः दूसरा लेप करें। इसे बार बार लेप करें। व्रणों के पूर्वरूप में जो शोथ होता है उस पर विशेष लाभकारी है। —धन्वन्तरि गुप्त सिद्ध प्रयोगांक।

नोट—विशिष्ट योगों में—पुनर्नवाष्टक, पुनर्नवादि चूर्ण, पुनर्नवादि लेह आदि देखें। श्वेत पुनर्नवा भी शोथ पर उत्तम कार्यकारी है। आगे का प्रकरण देखिए।

(२) जलोदर पर—इसकी जड़ १ तोला को गोमूत्र ५ तोला में पीस छानकर प्रातः सायं पिलाने से मूत्र खुल होकर लाभ होता है। पथ्य में केवल दूध और रामदाना (राजगिरा) का लावा देवें। जहां तक हो सके पानी न देवें। दूध ही देवें। अथवा पुनर्नवा मण्डूर (विशिष्ट योग में देवें) मात्रा १ मा० शहद १ तोले के साथ प्रातः सायं देवें तथा ऊपर से इसकी जड़ ६ मा० को ५ तो० गोमूत्र में पीस छानकर उसमें १ तो० शहद मिलाकर पिलाते रहें। अवश्य भयंकर जलोदर दूर होता है।

रोगी को पुनर्नवा के पत्तों को पानी में उबालकर उस पानी से स्नान कराते रहें तथा इसी पानी को प्यास लगने पर पिलाते रहें। पर पथ्य से रहना आवश्यक है।

अथवा इसका जौकुट किया हुआ चूर्ण २ तो. को २० तोले जल में पकावें। ५ तो शेष रहने पर उसमें चिरायता और सौंठ का चूर्ण २ मा. और कलमी सोरा ६ से ८ रत्ती तक मिलाकर पिलावें।

(३) विद्रधि तथा नारू पर—इसकी मूल और वरना (वरुण) की छाल इन दोनों का क्वाथ ४ तो. तक सेवन करने से अन्तर्विद्रधि (शरीर के अन्दर का फोड़ा) नष्ट होती है। —शा० सं०।

वातज विद्रधि हो तो इसकी मूल के साथ देवदारु, सौंठ, दशमूल और हरड़ मिलाकर बनाये हुए क्वाथ में गूगल या रेंडी तैल मिलाकर सेवन करें। —बं० सं०

नारू पर—मूल चूर्ण के साथ सौंठ को उसी के रस

में घोटकर बांध देवें (इस कार्य के लिए श्वेत पुनर्नवा विशेष उपयुक्त है)।

(४) यकृद्वृद्धि पर—यह विकार प्रायः बालकों को अधिक होता है। इसकी प्रथमावस्था में यदि पुनर्नवा के अर्क का अन्तः क्षेपण (इंजेक्शन) किया जाय तो लाभ सत्वर होता है। सामान्यतः इस रोग में प्रतिदिन अन्तः क्षेपण किया जाता है। अथवा पुनर्नवाष्टक के चूर्ण के साथ सरपुंखामूल और रोहितक छाल १-१ भाग मिला (अर्थात् १० द्रव्यों का) क्वाथ कर दिन में दो बार देते रहने से यकृद्वृद्धि एवं तज्जन्य शोथ दोनों निवृत्त होजाते हैं। —गां० औ० र०।

(५) कुष्ठ पर—इसकी जड़ के साथ सरपुंखा (सरफोंका) जड़, मदार (आक) की जड़ की छाल, नीम की अन्तरछाल, गूलर की अन्तर छाल, समभाग महीन चूर्ण कर मात्रा १-१ तोले, २० तोले जल के साथ मिट्टी या कलईदार पात्र में पकावें। ५ तोले शेष रहने पर छान कर १ तोला शहद मिला प्रातःसायं सेवन कराने से गलित कुष्ठ में लाभ होता है। —भा. मू. चि.।

(६) मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात तथा अश्मरी पर—इसकी जड़ और श्वेत चन्दन दोनों को समभाग एकत्र जौकुटकर २ तोला चूर्ण को ४० तोले जल में चतुर्थांश क्वाथ कर उसमें ८ से १० रत्ती तक कलमीशोरा मिलाकर पिलाते हैं। अश्मरी में भी लाभ होता है। अन्य प्रयोग श्वेत पुनर्नवा में देखिये। पत्थरबेर की पिष्टी के साथ भी इसकी मूल का प्रयोग किया जाता है।

पत्र—मूत्रकृच्छ्र में पत्तों को कालीमिर्च के साथ पीस छानकर पिलाते हैं। पत्र-रस को दूध में मिलाकर पिलाने से मूत्र की रुकावट दूर होती है। बिच्छू के विष पर-इसके पत्र और अपामार्ग की टहनियों को एकत्र पीसकर दंश स्थान पर मलते हैं। कर्णशूल में-पत्रस्वरस को गरम कर कान में डालते हैं।

(७) बाल रोग पर—पत्र-रस १० तो. के साथ २० तो. मिश्री पकावें। पकाते समय ६ माशा छोटी पिप्पली का चूर्ण मिला देवें। शर्बत की चाशनी तैयार हो जाने पर शीशी में भर रक्खें। इसे थोड़ा-थोड़ा चटाने से बच्चों की खांसी, श्वास, फेफड़ों की सूजन, प्रतिश्याय, सर्दी, लालास्राव, हरे पीले दस्त, तथा वमन में शीघ्र लाभ होता है।

(८) व्रणों पर—इसके (विशेषतः श्वेतपुनर्नवा के) पत्तों को या पंचाङ्ग को अच्छी तरह साफ कर कूटकर मेथिलेटेड स्प्रिट में डाल दें, स्प्रिट के समभाग पानी भी उसमें मिला देवें, तथा पात्र का मुख बन्द कर रख देवें। उसमें सड़ान होने पर कपड़े से छानकर छाने हुये पानी को बाष्पयंत्र द्वारा शोषित कर लें। जो शुष्क चूर्ण रहे, उसे शीशी में भर रक्खो। इसे व्रण या घाव पर छिड़कने से घाव भर जाता है। इसी चूर्ण का १ भाग, ८ भाग मेथिलेटेड स्प्रिट के साथ मिला देने से नासूर, घाव, फोड़ों पर लगाने लायक टिंचर तैयार हो जाता है।

—वैद्य ही० मो० जंगले के वनस्पति गुणादर्श से।

पत्र-शाक—श्वेत पुनर्नवा के पत्तों की शाक विशेष बनाई जाती है। रक्त पुनर्नवा के पत्तों की शाक तीक्ष्ण होती है। चिरकालीन अजीर्ण पर यह शाक लाभदायक है। हृद्रोग में भी हितकर है।

नोट-मात्रा—मूल का स्वरस ½ से १ तोला तक। पंचाङ्ग या पत्र-स्वरस १-२ तोला। मूल का चूर्ण-३ से ५ माशा तक। वमनार्थ मूल चूर्ण ५ से १० माशा तक। बीज—१ से ३ माशा। प्रतिनिधि काकमाची है।

यह वक्ष या छाती के लिये हानिकर है। हानि निवारक काहू, कतीरा, शहद है।

नूतन वृक्क-विकारों पर पुनर्नवा अति लाभदायक है। दोष-दूष्य का विचार कर इसका प्रयोग करना चाहिये। चंद्रप्रभा रस, बकुल (मोलसिरी) बीज की गिरी, पत्थर बेर का चूर्ण, सोरा, केले का क्षार आदि के साथ इसका प्रयोग सत्वर लाभकारी होता है। पुनर्नवा के फाण्ट के साथ चन्द्रप्रभा के सेवन से मूत्र में लसिका (अल्ब्युमिन) जाना, तथा शोथ दोनों विकार नष्ट होते हैं।

जब तक ताजी पुनर्नवा मिल सके तब तक इसकी ताजी जड़, पत्र या पंचाङ्ग को उपयोग में लावें। ताजी न मिलने पर इसके सुखाये हुये मूल चूर्ण या पंचाङ्ग या

Scanned with CamScanner

क्षार का उपयोग करें। लाल पुनर्नवा का क्षार उत्तम मूत्रल औषध है। श्वेत पुनर्नवा के क्षार में मूत्रल के साथ विरेचन गुण भी रहता है। अतः विचारपूर्वक प्रयोग करें। —गां. औ.र.

विशिष्ट योग–

(१) पुनर्नवादि चूर्ण—पुनर्नवा की जड़, देवदारु, हल्दी, पाठा, विल्व मूल, गोखरू, छोटी और बड़ी कटेरी, दारुहल्दी, पिप्पली, गजपीपल, चित्रक, अडूसा समभाग मिश्रित चूर्ण मात्रा—२ माशा तक। गोमूत्र में देने से नाना प्रकार के सर्वाङ्ग शोथ, उदर रोग व व्रण नष्ट होते हैं। मूत्रविकारजन्य शोथ में यह योग विशेष लाभकारी है। —भै. र.

नोट—चक्रदत्त के पाठ में गजपीपल के स्थान में गिलोय लिया गया है। शेष पुनर्नवादि चूर्ण के प्रयोग आगे के श्वेत पुनर्नवा में देखें।

(२) पुनर्नवादि क्वाथ—पुनर्नवा, देवदारु, हल्दी, कुटकी, पटोलपत्र, हरड़, नीम की छाल, नागरमोथा, सोंठ और गिलोय इनके क्वाथ में गोमूत्र तथा शुद्ध गूगल मिला कर प्रातः पीने से सर्वाङ्गशोथ, उदर रोग, कास, श्वास, शूल और पाण्डु का नाश होता है। उक्त द्रव्यों का मिश्रित चूर्ण २ तोला को ३२ तोला जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध करें, उसमें गूगल १ माशा और गोमूत्र १ तोला मिलाकर सेवन करें। —भै. र.।

क्वाथ नं० २—पुनर्नवा, दारुहल्दी, हरड़ और गिलोय का क्वाथ उक्त प्रकार से बना गोमूत्र तथा गूगल मिलाकर देने से त्वग्दोष, शोथ, उदर, पाण्डु, स्थौल्य, प्रसेक (नेत्रविकार, नजला, नेत्राभिष्यन्द आदि) एवं ऊर्ध्वजत्रुगत कफज रोग दूर होते हैं। —च. द.।

(३) पुनर्नवाष्टक कषाय (क्वाथ)—पुनर्नवा मूल, नीम की अन्तर छाल, पटोल पत्र (कड़ू परवल के पत्र या शुष्क फल), सौंठ, कुटकी, गिलोय, दारुहल्दी और छोटी हरड़ इन ८ द्रव्यों को सममाग (हम अपने अनुभवानुसार पुनर्नवा १ भाग तथा शेष द्रव्य ½-½ भाग लेते हैं) एकत्र जौकुट कर क्वाथ २ तोला चूर्ण ३२ तोला जल में क्वाथ विधि से चतुर्थांश क्वाथ तैयार कर उसको आधा प्रातः तथा आधा शाम को पिलावें।

वृक्क विकृतिजन्य मूत्र की रुकावट को तथा यकृत् एवं हृदय विकृतिजन्य सर्वाङ्ग शोथ, उदर रोग एवं [illegible] द्रवरूप से उत्पन्न कास, श्वास, पार्श्वशूल और पाण्डु को भी दूर करता है। यह क्वाथ अनुपान रूप से मण्डूर भस्म के साथ विशेष हितकर है। उदरस्तोय (प्लूरसी) में संचित दूषित जल को निराकरणार्थ भी यह दिया जाता है। यह योग शोथकारक दोषों को मूत्र, मल तथा स्वेद द्वारा बाहर निकाल कर शोथ को दूर करता है।

नोट—यह योग शार्ङ्गधर, योगरत्नाकर, भैषज्य रत्नावली आदि कई ग्रन्थों में दिया गया है। शार्ङ्गधर ने इसे गोमूत्र के साथ (४ तोला क्वाथ से गोमूत्र आधा से २ तोला तक) देने के लिये कहा है।

स्व० आचार्य यादव जी त्रिकमजी अपने सिद्धयोग संग्रह में लिखते हैं, कि इसकी यथावश्यक २-३ मात्रायें दिन में देवें। तथा यकृत, प्लीहा की वृद्धि, शोथ, उदर रोग सर्वांग शोथ एवं संधि वात में इसका प्रयोग करें। इसमें पुनर्नवा और कुटकी दो भाग लें तथा रोहेड़ा के वृक्ष की अन्तरछाल और सरफोंका मूल, व अफसन्तीन १-१ भाग और मिलावें तो अधिक गुण होता है। इस क्वाथ का, या आरोग्यवर्धनी और पुनर्नवादि मण्डूर के अनुपान रूप में प्रयोग करना चाहिए, सन्धिवात और आमवात में इस क्वाथ में चोपचीनी, असगंध, विधारा, उशवा, सुरंजान कडुवा, एरण्डमूल, सोना पाठा की छाल, इन्द्रायण की जड़ हरमल, तथा रास्ना १-१ भाग और मिला कर शुद्ध [illegible] (१-२ मा.) के साथ इसका प्रयोग करें।

(४) पुनर्नवार्क—पुनर्नवा मूल, अजवायन, विडंग प्रत्येक २० तो. एकत्र जौकुट कर १० सेर गोमूत्र में [illegible] घण्टे भिगो, वाष्प यंत्र (भवका) द्वारा ५ सेर अर्क खींच लेवें। प्रातः सायं ५ से १० तो. तक अर्क पिलावें। यह भी शोथ, उदर रोग आदि नाशक है। रोगी को केवल गोदुग्ध पर ही रहना आवश्यक है। दूध में समभाग जल मिला कर पकावें। दूध शेष रहने पर रोगी को पिलावें करें।

Scanned with CamScanner

नोट—अर्क के शेष प्रयोग श्वेत पुनर्नवा के प्रकरण में देखिये।

एक्सट्रैक्ट पुनर्नवा लिक्विड़ के स्थान में प्रयोग—पुनर्नवा मूल का क्वाथ ३ सेर में मृतसंजीवनी सुरा १० तो. मिला बोतल में भर रखें। १॥ से ६ तो. तक जल के साथ देने से शोथ, आंत्र शोथ, वातीं शोथ, पांडु,कामला, मूत्र कृच्छादि में अचूक है। —भा. नूतन योग संचय

(५) पुनर्नवादि लेह—पुनर्नवा मूल, कुटकी, दारू, हल्दी, सारिवा (सुगन्धबाला) और मजीठ १-१ सेर एकत्र जौ कुट कर, रात्रि को ४० सेर जल में भिगोकर प्रातः मंदाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर मसल कर छान लेवें। छानने पर जो चोथा रहे, उसे पुनः २० सेर जल मिला कर उबालें। १० सेर शेष रहने पर मसल कर छान लें। फिर इन दोनों क्वाथ जलों को मिला कर पकावें। करछी से चलाते रहें। शर्बत जैसा गाढ़ा हो जाने पर उसमें ३० तो. शक्कर मिला अवलेह बना लें।

मात्रा—३ मा. में २॥ तो. जल मिला कर देवें। दिन में ३-४ बार यह योग मूत्रल, यकृत्प्लीहा वृद्धिहर एवं शोथहर है। सर्वांग शोथ में भी हितकारक है।

—रसतंत्र सार से

नोट—अवलेह के शेष प्रयोग श्वेत पुनर्नवा में देखें।

(६) पुनर्नवा क्षार—पुनर्नवा का पंचाङ्ग शुष्क कर जला कर राख को आठ गुने पानी में एनामिल के पात्र में अच्छी तरह हिला कर भिगो देवें। ३ घंटे बाद ऊपर का निथरा हुआ जल दूसरे पात्र में निथार कर उस निथरे हुए पानी को एक मटकी, जिसके पेंदे में छोटा छिद्र (छोटी अंगुली की नोक के समान) कर उसमें सूत की बत्ती लगादी गई हो तथा तिपाई पर रख दीगई हो, उसमें भर कर नीचे कलईदार पात्र रख देवें। जल के टपक जाने के बाद, कड़ाही में डाल, चूल्हे पर रख, जल को सुखा लें। क्षार मात्र रहने पर खुर्च कर पीस कर रख लें। मात्रा—५ से १५ रत्ती, उचित अनुपान के साथ देने से मूत्र खुल कर होता है, शोथादि नष्ट होते है।

—सचित्रायुर्वेद से

(७) पुनर्नवादि पाक या अवलेह—शोथ, शूलादि नाशक पुनर्नवा मूल, गिलोय, देवदारु, दशमूल और सुगन्धवाला सबका महीन चूर्ण एकत्र कुल २५६ तो. तथा अदरख का स्वरस ६४ तो. और गुड़ ५ सेर मिला कर पकावें। कुछ गाढ़ा हो जाने पर उसमें सौंठ, मिर्च, पिप्पली, तज, इलायची, दालचीनी तथा चव्य का चूर्ण १-१ तो. मिला कर नीचे उतार लेवें। ठंडा हो जाने पर इसमें १६ तो. शहद मिला कर सुरक्षित रक्खें। आधा से १ तो. तक सेवन से शोथ, शूल, कास, श्वास, अरुचि आदि नष्ट होकर बल, वर्ण एवं अग्नि की वृद्धि होती है।

नोट—शेष उत्तमोत्तम पाक के प्रयोग हमारे वृहत्पाक संग्रह ग्रन्थ में देखिये।

(८) पुनर्नवा मण्डूर—पुनर्नवा मूल, निसोथ, त्रिकटु, वायविडंग, देवदारू, चित्रक, पोखरमूल, त्रिफला, हल्दी, दारु हल्दी, दन्तीमूल, चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल और नागरमोथा १-१ भाग तथा शुद्ध मण्डूर का चूर्ण या भस्म सब से दो गुना लेकर (प्रथम मण्डूर को ३ गुने गोमूत्र में पकावें, अच्छा गाढ़ा हो जाने पर उसमें उक्त पुनर्नवादि का महीन चूर्ण या भस्म मिला, नीचे उतार लेवें। खूब अच्छी तरह खरल कर गोलियां बना लेवें।

जलोदर पर—उक्त मंडूर १ मा. शहद १ तो. के साथ प्रातः सायं लेवें, तथा ऊपर से पुनर्नवामूल ६ मा. को ५ तो. गोमूत्र में पीस छानकर १ तो. शहद मिला पीवें। भयंकर जलोदर भी दूर होता है। अथवा उक्त मंडूर १ मा. प्रातःसायं ६ माशा शहद के साथ लेते रहें, और तीसरे दिन जलापा का चूर्ण ४ माशा तक शक्कर मिलाकर लेते रहने से उदर का दूषित जल दस्तों की राह निकलकर रोग दूर होगा और शोथ भी मिटेगी।

उक्त मंडूर १॥ माशा तक त्रिफला के क्वाथ या गोमूत्र के साथ लेने से तथा केवल तक्र और चावल का पथ्य-भोजन करने से सर्व प्रकार की यकृत की विकृति तथा तज्जन्य शोथ, पाण्डु, कामला रोग नष्ट होता है।

(९) पुनर्नवादि गूगल—पुनर्नवा मूल, देवदारू, हरड़ और गिलोय का चूर्ण १-१ भाग तथा शुद्ध गूगल सबके बराबर लेकर सबको (थोड़ा सा अरण्ड तैल डालकर)

Scanned with CamScanner

कूटें । १ से २ माशा तक गोलियां बनावें । इसे गोमूत्र के साथ लेने से शोथोदर, पाण्डु, स्थौल्य, कफ प्रमेह,ऊर्ध्व-जत्रुगत कफज विकार तथा त्वग्दोष दूर होते हैं—भै. र.

नोट—मण्डूर, गुग्गल, घृत तैल, आसवारिष्ट, इत्यादि शेष विशिष्ट प्रयोग श्वेत पुनर्नवा के प्रकरण में देखिये ।

पुनर्नवा [श्वेत] (Trianthema Portulacastrum)

गुडूच्यादिवर्ग एवं क्षारस कुल (Ficoideac)के इस प्रसरणशील, मांसल, अनेक द्विविभक्त शाखायुक्त क्षुप के पत्र मांसल, मृदुरोमश, रक्ताभ हरितवर्ण के, लगभग अभिमुख किन्तु प्रत्येक जोड़े में एक छोटा तथा दूसरा बड़ा, ऊपर वाला बड़ा पत्र १८ से २७ मि. मि. लम्बा, १८-३१ मि. मि. चौड़ा, तथा नीचे का छोटा पत्र ६-१८ मि. मि. लम्बा, ६-१८ मि. मि. चौड़ा, चिकना, अभिलट्वाकार, आयताकार या अण्डाकार, प्रायः लाल एवं लहरदार धार वाला; पत्रवृन्त ६-१८ मि. मि. लम्बा, आधार की ओर फैला हुआ, पतला; पुष्प – एकाकी, द्विविभक्त शाखाओं के मध्यभाग से निकले हुये, सूक्ष्मपुष्प श्वेत या गुलाबी रङ्ग के, प्रायः वृन्त रहित; पुंकेशर १०-२० । फल या बीजकोश छोटा एवं १-५ काले रंग के वृक्काकार छोटे बीजों से युक्त होता है । मूल-श्वेत रङ्ग की ताजी अवस्था में कुछ मधुराभ किंतु सूखने पर कडुई एवं हृल्लासकारक होती है ।

यह भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों में, तथा बलूचिस्तान, सीलोन एवं अन्य उष्ण प्रदेशों में पाई जाती है । यह केवल वर्षाकाल में ही पैदा होती है । शीतकाल में पुष्प फल आते हैं । फिर नष्ट हो जाती है । इसीलिए इसे 'वर्षाभू' संस्कृत में कहते हैं । यह लाल पुनर्नवा जैसी गुणमता से नहीं प्राप्त होती ।

नोट—इसकी मूल श्वेत रङ्ग की अपेक्षाकृत कुछ मोटी एवं फूल भी कुछ श्वेत होने से ही शायद इसे श्वेत पुनर्नवा कहते हैं । केवल फूल से ही इसे श्वेत पुनर्नवा मानना भ्रमोत्पादक है । कारण इसके एक ही क्षुप पर प्रायः श्वेत और लाल या गुलाबी फूल देखे जाते हैं । पीछे लाल पुनर्नवा के प्रकरण में नोट नं १ के विभाग २ में देखिये ।

नोट नं० २ —मण्डूकपर्णी (Umbellliferace) कुल के Trianthema monogyna; T. Ollcordata और T. Pentandra (जिन्हें भाषा में लाल साबुनी, साबुनजंघी, बिसखपरा, साटुडी आदि कहते हैं) ये भी प्रस्तुत प्रसंग के श्वेत पुनर्नवा के उपभेद माने जाते हैं । इनमें से छोटा सफेद पुनर्नवा कहाते हैं । इनमें T. Pentandra पांच शाखा वाला होता है, पत्र—१-१॥ इन्च लम्बे; पुष्प वृन्तरहित गुच्छों में श्वेत, गुलाबी रंग के पुंकेशर ५ ।

यह भारत के समशीतोष्ण प्रदेशों में प्रायः सर्वत्र अनुच्च प्रदेशों में तथा सीलोन में विशेष पाया जाता है ।

इसकी जड़ में साबुनी (Saponin) सदृश गुण धर्म वाला एक प्रकार का ग्लुकोसाईड पाया जाता है । यह भेदक, गर्भपातकारक एवं दाहक है । मूल ताजी अवस्था में मधुर रस युक्त है । विबन्ध में विरेचनार्थ शुष्क जड़ के चूर्ण को सोंठ चूर्ण के साथ देते हैं । कब्जी, कोष्ठबद्धता, कामला, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र तथा जलोदर में इसका क्वाथ (१ भाग मूल चूर्ण व २० भाग जल) तैयार कर २॥ से ५ तो. की मात्रा में दिया जाता है । यकृत शैथिल्य, श्वास तथा रुद्धार्तव (मासिक धर्म का बन्द होना) में भी इसका उपयोग किया जाता है । इसके पत्तों को उबाल कर शाक बना कर खाते हैं । —नाडकर्णी

नोट नं० ३—Trianthema Decandra (१० भागों में विभक्त शाखा वाला बड़ी लाल जाति का पुनर्नवा) यह सड़कों के किनारे शुष्क भूमि पर फैला हुआ होता है । पत्र १—१½ इंच लम्बे, पुष्प लगभग छत्राकार गुच्छों में पुंकेशर १०, बीज काले, मूल हाथ की उंगली जैसी मोटी होती है ।

यह भारत के दक्षिण प्रदेशों में एवं कर्नाटक में विशेष पाया जाता है । यह श्वेत पुनर्नवा के समान ही क्षारसकुल का होने से उसका ही एक भेद है ।

Scanned with CamScanner

पुनर्नवा श्वेत
TRIANTHEMA PORTULACASTRUM LINN.

नाम—

सं.–रक्तवसु, पुनर्नवी । हि.–गदावानी, भीसखुपरा । गु.—मोटी लाल जातनी साटोड़ी ।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसकी जड़ तथा जड़ की छाल मृदुरेचक है । श्वास, यकृत-शोथ एवं मासिक धर्म की रुकावट में जड़ का क्वाथ दिया जाता है । अण्डकोष की शोथयुक्त प्रदाह पर–जड़ को दूध के साथ पीसकर पिलाते हैं । अर्धावभेदक (आधा-शीशी) में इसके पत्र रस को नाक में टपकाते हैं ।
—नाड़कर्णी ।

नोट नं. ४—इसीका एक भेद Trianthema Crystalling है यह श्वेतछाल तथा लाल फूल वाला श्वेत पुनर्नवा है । इसे मरेठी में लहान नर्मा, और गुजराथी में लाल फूल वाली साटोड़ी कहते हैं । इस प्रसरणशील क्षुप के पत्र प्रस्तुत प्रसंग के श्वेत पुनर्नवा के पत्र की अपेक्षा संकड़े एवं छोटे ½—¾ इंच लम्बे पुष्प– सघन गुच्छ के भीतर पुंकेसर ५ युक्त; मूल–हाथ की छोटी अंगुली से लेकर कलाई जैसी मोटी होती है । यह मूल श्वेत वर्ण की होती तथा इसे तिरछा काटकर देखने से भीतर चक्राकार रेखायें दिखाई देती हैं । इसके क्षुप आर्द्र भूमि में अधिक पाये जाते हैं । इसके गुणधर्म प्रस्तुत प्रसंग के पुनर्नवा से मिलते जुलते हैं ।

वि. व.—प्रस्तुत श्वेत पुनर्नवा की जाति (ट्रायन्थेमा) जाति के पुष्प पर जो बाह्य आच्छादन (पुष्पबहिर्कोष Calyx) होता है, वह कटोरी के आकार का होता है । भीतर का आच्छादन नहीं होता, लाल पुनर्नवा (बोर्हेविया जाति) के पुष्प पर बाह्य और आभ्यन्तर ऐसे दो आच्छादन समान आकारके तथा एक समान मुलायम होते हैं । यह इन दोनों जातियों के पुनर्नवा में एक महत्व का अन्तर है ।

गुजराथ में प्रस्तुत श्वेत पुनर्नवा की जाति को साटोड़ी तथा लाल पुनर्नवा तथा उसकी जाति के क्षुपों को वसेड़ो (वसु) कहा जाता है ।

प्रस्तुत श्वेत पुनर्नवा के नाम गुण धर्मादि—

नाम–

सं.– वर्षाभू, श्वेतमूला, शोथघ्नी, दीर्घपत्रिका हि.—सफेद पुनर्नवा, खपरा, पथरी, सफेद गदह पुरना, इटसिट, बिषखपरा इ. । म.—वसु । गु०—साटोड़ी बं.—साबुनी । अं –स्प्रेडिंग हागवीड (Spreading hog weed) ले.—ट्रायेंथिया पोर्टयूलेक्स्ट्रम ।

रासायनिक संगठन–

पुनर्नवा (लाल) में पाया जाने वाला पुनर्नवीन (Punarnavine) नामक क्षाराभ इसमें भी पाया जाता है, जो शुष्कावस्था में ०.०१% तक होता है ।

इसके अतिरिक्त इसमें सेपोनिन (Saponin] एवं एक अन्य क्षाराभ जिसका रासायनिक सूत्र C_{32} H_{46} O_6 और N_2 है, पाया जाता है ।

Scanned with CamScanner

प्रयोज्यांङ्ग—मूल, पत्र, बीज, पंचांङ्ग (मूल का प्रयोग अधिक कार्यकर है) ।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, कटु, कषाय, उष्ण वीर्य, कफघ्न, अत्यन्त अग्निदीपक तथा शोथ, नेत्रविकार, वात, उदर रोग, पांडु ब्रघ्न (बद) आदि नाशक है ।

पत्र—मूत्रल है तथा पत्रों का उपयोग लाल पुनर्नवा के पत्र जैसा होता है । कोमल पत्तों की शाक दीपन, वात तथा कफनाशक होती है । नेत्र विकार पर–पत्र १ तो. तथा अदरख या सोंठ आधा तोला दोनों को थोड़े जल में पीस छानकर शीशी में भर रक्खें । २-२ बूंद आंखों में टपकाते रहें धुंध,जाला, फूला आदि में लाभ होगा । नेत्र विकारों पर इसकी जड़ ही विशेष उपयोग में लाई जाती है । पीछे लाल पुनर्नवा के प्रकरण में बालरोग पर जो प्रयोग नं० ७ का शर्बत प्रयोग है, वह इस श्वेत पुनर्नवा के पत्र-रस का और भी उत्तम लाभदायक होता है। योनिशूल में ताजे पत्तों को कूटकर वत्ती बना योनि में धारण करने से लाभ होता है ।

मूल—तीव्र विरेचक है। तीव्र विरेचनार्थ मूल का चूर्ण सोंठ चूर्ण के साथ २-३ बार में थोड़ा-थोड़ा देते हैं।

यकृतोदर, जीर्णमलावष्टंभ एवं तज्जन्य कण्डु आदि चर्मरोगों पर इसे देते हैं । यकृत् एवं प्लीहा की विकृति जन्य शोथ तथा अपचन जन्य शोथ युक्त श्वास रोग में और गर्भाशय की सूजन से उत्पन्न रजसम्बन्धी (मासिक धर्म) विकारों में इसके सेवन कराने से लाभ होता है। इसकी पूर्ण मात्रा १५ से ६० रत्ती तक है। किन्तु इन विकारों में इसकी पूरी मात्रा न देकर एक मात्रा के २-३ भाग कर ३-३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिए ।

—डा. वा. ग. देसाई ।

ध्यान रहे यह गर्भस्रावक है तथा नष्टार्त्तव में लाभ दायक है । —कर्नल चोपरा ।

(१) नेत्र विकारों पर—नोट–नेत्र विकारनाशक प्रयोग प्रायः पूरक और निस्सारक रूप में दो प्रकार के होते हैं । बथुआ, बकरी का दूध, घृत (गौघृत) आदि के प्रयोग पूरक हैं, ये नेत्र शक्ति को बढाते हैं। शंख, सुहागा, समुद्रफेनादि के प्रयोग निस्सारक हैं। ये नेत्र पटला-न्तर्गत कई दोषों को काट कर निकाल देते हैं। पुनर्नवा में ये दोनों (पूरक एवं निस्सारक) गुण विद्यमान हैं। इन कार्यों के लिये इसके परिवर्द्धित उत्तम पौधों की ताजी, मोटी जड़ लेनी चाहिए ।

इसकी जड़ को गुलाब जल या वाष्प जल या शुद्ध जल या मधु के साथ घिसकर रात्रि को सोते समय नेत्रों में आंजते रहने से फूला, अजकाजात (गहरे उभार वाला फूला, जो नेत्र के कृष्ण भाग पर बकरी की मैंगनी जैसा उभरा हुआ होता है Leucoma), नेत्र का काच या मोतियाबिंद आदि विकार नष्ट होते हैं। दृष्टि शक्ति बढ़ती है ।अथवा—

जड़ के टुकड़े कर नीबू के रस में २१ दिन तक भिगोकर शुष्क कर सुरक्षित रखें । इसे वाष्प जल या शुद्ध जल में घिसकर लगाते रहने से जाला, फूला, मांडा, धुन्ध, तिमिर आदि विकारों में लाभ होता है ।

नेत्र की खुजली पर—जड़ को भांगरे के रस में या दूध में घिसकर लगावें। नेत्र स्राव पर—जड़ के महीन चूर्ण को उत्तम शहद मिलाकर लगावें । इससे नेत्रों की लालिमा भी दूर होती है । फूली पर—जड़ को पीसकर गोघृत में मिलाकर लगाते हैं । रतोंधी पर—गाय के ताजे गोबर के रस में इसकी जड़ के साथ पिप्पली चूर्ण को खूब गरम कर घन क्वाथ हो जाने पर शीशी में भर रखें। इसे आंजने से लाभ होता है अथवा इसकी ताजी जड़ को बकरी के मूत्र में घिसकर आंजने से लाभ होता है।

तिमिर रोग में (दृष्टिगत द्वितीय पटल में दोषोत्पत्ति से होने वाला दृष्टिमांद्य Amaurosis इसमें आंखों के सामने काले काले चक्र दिखाई देना, धुंधला नजर आना आदि होते हैं। सूर्य ग्रहण को खुले आंखों से देखने से भी यह विकार हो जाता है)—इसकी जड़ को स्वच्छ पत्थर पर जल में घिसकर उसमें थोड़ा घृत मिलाकर आंजते रहने से लाभ होता है। साथ ही रतौंधी, धुन्ध आदि रोग भी दूर होते हैं । अथवा इसकी जड़ को बाष्प जल में घिसकर दिन में दो बार लगाते रहें। अथवा जल को तिल तेल के साथ घिसकर लगावें।

Scanned with CamScanner

वंमनी विकार—इससे आंखों की पलक मोटे-मोटे पड़ जाते हैं। कोये सुर्ख हो जाते हैं तथा विरौनी झड़ जाती हैं फिर आंखों की ज्योति झिलमिलाने लगती हैं। खुजली और जलन भी होती है। इसकी जड़ को जल में घिसकर उसका चन्दन सा निकाल कर कटोरी में समभाग घृत मिला पकावें। जल कर काला हो जाने पर उसी कटोरी में खूब घोटकर रख लेवें। इसे लगाते रहें लाभ होता है। —भा. गृ. चि.

नेत्र ज्योति बर्धनार्थ—इसके पौधे को जड़ पत्र समेत उखाड़ कर अच्छी तरह धोकर २० तो. इस पचांग को पत्थर पर पीस स्वच्छ कपड़े में छानकर रस निचोड़ लेवें। इसमें थोड़ी शक्कर मिला नित्य १ वार पीवें। १ मास तक पीने से नेत्र दृष्टि खूब बढ़ती है, शरीर में स्फूर्ति आती है। —धन्वन्तरि से

पुनर्नवा के जड़ सहित पंचांग को कूट कर रस निचोड़ कर २-२ बूंदें नेत्रों में टपकाने से नेत्रों में खूब तीव्र वेदना होती है, किंतु अन्धों की भी दृष्टि इससे खुल जाती है, उन्हें दीखने लगता है। प्रथम वार ही नेत्रों में इससे तीव्र वेदना होती है फिर पुनः दूसरे दिन नहीं होती। कुछ दिन के प्रयोग से नेत्र पूर्ण स्वस्थ हो जाते है।

इसके पंचांग के रस में काला सुरमा ३-४ दिन खरल कर शुष्क कर सुरक्षित रखें। इसे लगाते रहने से दृष्टि तीव्र होती है। इसकी जड़ को छाछ में घिसकर, लगाने से मोतियाबिन्दु में लाभ होता है। —भा. जड़ीबूटी

परवाल (आंख की बरौनी का कष्टदायक रोग)—इसकी जड़ को छाया शुष्क कर महीन चूर्ण कर उसमें थोड़ा घृत मिला बासी पानी के साथ घोटकर गोलियां बनालें। इन गोलियों को जल में घिसकर अंजन करने से आंखों में परवालों का आना बंन्द होता है। —ब. चं.

(२) फुफ्फुसावरण शोथ (फेफड़ों में पानी भर जाना प्लुरसी) पर नोट—शोथ दाहिने फेफड़े से शुरू होकर बांये फेफड़े में फैलती है तथा फेफड़ों में जमा हुआ कफ पतला पानी जैसा होने लगता है, खांसने से प्रतीत होता है कि छाती तरल कफ से भरी हुई है। स्वासोच्छ्वास में तीव्र कष्ट होता है। प्रत्येक बार खांसी के साथ मुंह भर के कफ निकलता है। किसी प्रकार चैन नहीं मिलता इत्यादि लक्षण होने पर—

इसकी जड़ के चूर्ण ३ से ६ मा. तक में नवसादर चूर्ण ४ रत्ती मिला फंकाकर गरम जल पिलावें (यह १ मात्रा है) दिन में २-३ बार तथा इसकी जड़ को सौंठ के साथ पीसकर गरम कर छाती पर लेप करें। इससे श्वास का दौरा तथा शुष्क कास में भी लाभ होता है।

अथवा—इसकी जड़, लाल पुनर्नवा की जड़, गोखरू, निर्गुण्डी पत्र और त्रिफला इन ७ द्रव्यों का जौकुट चूर्ण १-१ तो. एकत्र ४० तो. जल में पकावें, १० तो. शेष रहने पर छानकर ठंडा हो जाने पर उसमें २ तो. मधु मिलाकर सेवन कराने से दस्त साफ होगा, पेशाब खूब होगा तथा कुछ दिन के सेवन से प्लुरिसी के दोनों पार्श्वों का दूषित जल निकलकर आराम होगा। इससे रोगी को निद्रा भी अच्छी आती है। पथ्य में इसके सेवन काल में दुग्ध तथा फल ही देते रहना चाहिए।

—गुप्त प्रयोग (आ० चिकित्सा)।

अथवा—इसकी साफ की हुई ताजी जड़ को साफ खरल में घोटकर रस निचोड़ कर उसमें ½ भाग रेक्टिफाइड स्प्रिट मिलाकर शीशी में रख लेवें। मात्रा–४ बून्द से आध ड्राम तक सेवन से फेफड़े की सूजन, प्रतिश्याय, कास में लाभ होता है। —मे० मेडिका।

(३) गुल्म रोग वातज शूल, तथा प्लीहावृद्धि एवं साधारण शोथ विकार और अम्लपित्त पर—इसकी जड़ और सेंधा नमक समभाग चूर्ण कर १ से १॥ मा. की मात्रा में घृत के साथ सेवन से गुल्म में लाभ होता है।

—वृ. नि. र.।

आगे विशिष्ट योगों में आसव नं. २ देखें।

अथवा—जड़ १ तो० को पीसकर टिकिया बनाकर ५ तो० घृत में भून लो। टिकिया खूब लाल हो जाने पर निकालकर अलग कर दें। घृत को रोगी को पिलाते ही थोड़ा दर्द बढ़कर तत्काल शांत होकर वातगुल्म का विकार दूर होगा। उक्त टिकिया को वात व्याधि पर लगाने से व्याधि जाती रहती है। —स्व. पं. भगीरथ स्वामी।

Scanned with CamScanner

वातज शूल पर—इसकी जड़ के साथ अरण्ड (रेंडी) की जड़, जौ, अलसी और कपास के बीजों (बिनौले) की गिरी एकत्र कांजी में पकाकर उसकी भाफ देने से (बफारा से) शूल नष्ट होता है। —वं. से.।

अथवा—इसकी जड़ के साथ अण्डी के सूखे फल, तिल और जौ का चूर्ण समभाग लेकर कांजी के साथ अच्छी तरह पीस कर मन्दोष्ण लेप करने से शूल एवं वृद्धि शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। —ग. नि.।

प्लीहावृद्धि पर—जड़ का चूर्ण गरम दूध के साथ सौंठ का चूर्ण मिलाकर पिलाते रहने से लाभ होता है। इससे यकृत दौर्बल्य तथा स्थायी कब्ज भी दूर होता है।

साधारण शोथ विकार पर—जड़ के क्वाथ का सेवन करावें, अथवा–जड़ और सौंठ को एकत्र पीस जल में घोल छान कर सेवन करावें। तथा शोथ स्थान पर जड़ को जल के साथ पीस कर प्रलेप करें।

अम्ल पित्त पर—नित्य प्रातः इसकी ताजी १ या २ जड़ें चबा कर खायें। दुपहर में कुछ भी भोजन न करें शाम को फलाहार और थोड़ा दुग्ध लेवें। १४ दिन तक। —व. गु.

(४) आमवात तथा कामला और पांडु पर–इसकी जड़ के साथ रास्ना, संभालू और गूमा का पंचाङ्ग समभाग जौकुट कर २ तो. चूर्ण को २० तो. पानी में पकावें। ५ तो. शेष रहने पर छान कर कुछ ठंडा हो जाने पर उसमें १ तो. शहद और ६ मा त्रिफला चूर्ण मिला प्रातः सायं पिलावें। पथ्य में मकोय का शाक सौंठ नमक मिला कर खावें।

अथवा–इसकी जड़ के साथ, एरण्ड (रेंडी) की जड़ की छाल, सहेंजन की छाल, और सौंठ समभाग जौकुट कर प्रातः सायं १ तो. चूर्ण को २० तो. पानी में पका ५ तो. शेष रहने पर छान कर उसमें १ तो. शक्कर मिला कर सेवन करायें। आमवात का कष्ट जाता रहेगा।

नोट—इस विकार में रोगी को चावल, उरद की दाल तथा ठंडी वादी चीजों से बचना चाहिये। इस विकार में पुनर्नवा मण्डूर, नवायस लौह अच्छा काम करते हैं। —भा. गु. चि.

कामला में—विकृत पित्तको विरेचन द्वारा निकालने के लिये जड़ का महीन चूर्ण ४–४ मा. की मात्रा में, अन्य विरेचक द्रव्य के साथ देवें या इसकी जड़, बमासा, नागरमोथा और सौंठ इनका क्वाथ नवसादर तथा खारी नमक (Sodium sulphate) मिलाकर ४–४ घण्टे से देवें।

अथवा-केवल जड़ के चूर्ण ४ मा. को १० तो. जल में पका कर २ तो. शेष रहने पर दिन में दो बार पिलावें।

पाण्डु रोग में—जड़ को साफ कर छोटे छोटे टुकड़े करें। फिर ८ या ९ कच्चे धागों को मिला, डोरी बना कर उस में उक्त १-१ टुकड़े को थोड़े–थोड़े अन्तर से गांठ लगा कर बांध दें। २१–२२ टुकड़े बांधने पर जो माला बने उसे रोगी के गले में पहना देवें। ईश कृपा से माला बढ़ती जावेगी, व रोग घटता जावेगा पूर्ण स्वास्थ्य लाभ होने पर माला को उतार कर किसी वृक्ष पर डाल दें। —भा. ज. बूटी से

(५) प्रतिश्याय, कास, श्वास, तथा हृद्रोग पर—प्रतिश्याय (जुकाम) के कष्टों के निवारणार्थ इसकी जड़ ३ मा. चूर्ण को समभाग जल मिश्रित ४० तो. दूध में पकावें। २० तो. शेष रहने पर उसमें मिश्री २तो० मिला कर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

कास—इसकी जड़, साठी चावल (लाल चावल) और खांड का समभाग चूर्ण (६ मा०) को द्राक्षा (अंगूर) का रस (२ तो०), घृत (१ तो०) और दूध (१० तो.) में एकत्र मिला कर सेवन से रक्तष्ठीवी कास (जिसमें खांसते समय मुंह से रक्त निकलता हो) नष्ट होती है। —ग. नि.

श्वास पर—इसकी जड़ को लेकर उसीके रस में ३ दिन तक भिगो कर छायाशुष्क कर लें। इस शुष्क जड़ को पुनः लाल पुनर्नवा की जड़ के रस में ३ दिन तक भिगो कर छायाशुष्क करें। फिर इसे ३ दिन तक अपामार्ग की जड़ के रस में भिगो, छायाशुष्क कर खूब महीन पीस कर रखलें।

सेवन विधि—प्रथम दिन सायंकाल चावल पका कर खुले मुंह के बरतन में निकाल कर ऐसी जगह रखें कि रात्रि में चावल सड़ न जावें। दूसरे दिन प्रातः ६ मा.

Scanned with CamScanner

उक्त चूर्ण को ५ दाना काली मिर्च के साथ थोड़ा जल मिला खूब महीन पीस उसमें २० तो. ताजा जल मिला रोगी को पिला देवें। (दवा पीने से पहले रोगी को बिलकुल खाली पेट होना चाहिए) तथा तत्काल रात के बासी भात का पानी छान कर फेंक दें और चावल में दही मिला कर खिलावें। दही चावल में स्वाद के लिये नमक या शक्कर मिला सकते हैं। आमतौर से एक ही खुराक दवा से पूरा लाभ हो जाता है। यदि आवश्यकता हो तो १० दिन बाद १-१ खुराक रोज अर्थात दो दिन में दो खुराक दवा और दे देवें। किंतु इनके पीने के बाद दही चावल नहीं खाना चाहिए।

दवा लेने के बाद १ महीने तक लाल मिर्च, खटाई, मीठा, मिठाई, दही, चावल, मांस, मछली, अण्डे और नशे की चीजों से सख्त परहेज करें तथा प्रतिदिन १० मिनट भगवान का भजन करें।

—श्री प्यारे मोहनलाल जी जयपुर का गुप्त सिद्ध प्रयोग (धन्वन्तरि से)

अथवा आश्विन कार्तिक में इसकी जड़ ताजी गीली हो तो २ तो. सूखी हो तो १ तो. के साथ श्वेत जीरा १ तो. व ७ काली मिर्च खूब महीन पीस ५ तो. जल मिला छानकर रोगी को रवि, सोम या मंगलवार को प्रातः शौचादि से निवृत होने पर पिलादें। यह प्रयोग किसी भी मौसम में किया जा सकता है, किन्तु ६ मास में केवल एक ही बार। रोगी ने जिस कुंए या तालाब, नदी आदि के जल में उक्त औषधि घोटकर पिई हो उसी जलाशय के जल का १५ दिन तक खान, पान, शौचादि कार्यों में उपयोग करे, अन्य जल को छुए नहीं। भोजन में मसाला, मिर्च, हल्दी, तेल आदि न ले। दूध, घृत खूब ले सकता है, किंतु घृत का छोंक न लगावें।

—भा.ज. बूटी

हृद्रोग—विशेषतः हृत्पिण्ड की तीव्र धड़कन की अवस्था में जब कि रोगी बांये पार्श्व पर लेट न सकता हो लेटने से पीड़ा तथा धड़कन और भी बढ़ती हो तो इसकी जड़ ३ माशा जल १० तो. में पीस छान कर थोड़ा गरम कर पिलावें या इसकी जड़ का चूर्ण २॥ तो. को ५३ तो. जल में मन्द आग पर पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर ४-४ घण्टे से २॥ से ५ तो. तक पिलावें।

—वृ. द.

(६) विद्रधि, भगंदर तथा श्लीपद पर—विद्रधि में इसकी जड़ तथा सहिजना की छाल दोनों के क्वाथ में थोड़ा कुटकी का चूर्ण मिलाकर पिलाते रहने से विशेष लाभ होता है। साथ ही यदि पुनर्नवा मांडूर भी दिया जाय तो और भी शीघ्र लाभ होता है। —आ. वि.

भगन्दर में—प्रथम हल्दी को हुक्का के पानी में पीसकर, उसके साथ इसकी जड़ को खूब महीन पीसकर दिन में कई बार लेप करते रहने से अति कठिन भगंदर भी दूर हो जाता है। साथ ही नित्य प्रातः इसकी ३ माशा जड़ को जल में पीसकर पिलाना चाहिए। —वृ. द.

श्लीपद पर—इसकी जड़ २ तो. और सौंठ १ तो. दोनों को जौकुट कर फाण्ट या चाय के सदृश पकाकर छान कर उसमें शक्कर व दूध स्वल्प मात्रा में मिला बार-बार पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। रोगी को दही, सिरका, हरे फल, नदी, तालाब का जल, नमक, स्निग्ध पदार्थ आदि से परहेज करना चाहिए। प्यास लगने पर दूध, अर्क पुनर्नवा या मकोय का स्वरस देवें तथा पुनर्नवा का शाक खिलावें। —आ. वि.

श्लीपद (फील पांव) वाले को इसकी जड़ का नित्य लेप करना चाहिए तथा इसे तैल में जलाकर उस तेल की मालिश करना लाभदायक है तथा इसका इंजेक्शन भी इस रोग में विशेष लाभकारी है।

—सम्पादक

(७) अश्मरी, सुजाक, उपदंश, बद व्रण आदि पर—अश्मरी पर—इसकी जड़ या पंचांग लगभग १० [illegible] को ४० तो. जल में पीस छान कर उसमें १ तो. ज[illegible]र और ५ तो. मिश्री मिला ४ बार में ४-४ घंटे से [illegible]ने से पेशाब खूब होगी तथा पथरी गल जावेगी। लगभग ७ दिन सेवन करें। साथ ही इसके पत्रों की शाक बनाकर खाते रहने से विशेष लाभ होता है। पित्त तथा वा[illegible]कारक चीजों से परहेज करें। —भा. गु. नि.

Scanned with CamScanner

सुजाक (पूय प्रमेह) तथा मूत्र पिण्ड शोथ के विकार में—इसकी जड़ और तालमखाना दोनों का क्वाथ बनाकर देते हैं। पूय प्रमेह में इस क्वाथ के सेवन से प्रमेह की पीड़ा एवं मूत्र नलिका की सूजन दूर होती है।

उपदंश एवं तज्जन्य बद पर – जड़ को चिलम में रखकर धूम्रपान कराते हैं तथा उपदंश के चट्टों पर जड़ को नीमपत्र के रस में घिसकर लगाते हैं। —वू. द.

उभड़ते हुए व्रण, फोड़े पर इसकी जड़ की पुलटिस गरम कर बांधने से वह बैठ जाता है या उसका आकार छोटा हो जाता है। एक प्रख्यात् पुराने वैद्य उभरते हुए फोड़ों के स्थान परिवर्तनार्थ इसकी जड़ और प्याज समभाग पिसाकर निकलते हुए फोड़े से उस स्थान तक जहां से उसे ले जाना चाहते थे, गरम-गरम मोटा लेप करवाते थे फोड़ा स्थान बदल देता था। —आ. विकास।

व्रणादि के लिये पु० टिंचर आयडीन का प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में देखिये तथा लाल पुनर्नवा के प्रकरण में प्रयोग नं० ८ देखें।

(८) गण्डमाला, भौं और कनपटी की पीड़ा तथा कटिवेदना पर—गण्डमाला पर अर्क–इसकी जड़ २ सेर, मुण्डी (गोरख मुण्डी) वरना और कचनार की छाल १-१ सेर इनको जौकुट कर २० सेर जल में भिगोदेवें। २४ घन्टे बाद नलिका यंत्र (भवका) द्वारा ५ से ७ सेर तक अर्क खींच लेवें।

सेवन विधि—रोगी को प्रथम निम्न गण्डमाला हर योग—शिरीष बीज की गिरी का चूर्ण २० तो०, कचनार छाल का चूर्ण १० तो० इनको एकत्र ६० तो० शहद में मिलाकर १५ दिन तक रहने देवें। फिर प्रातः सायं १-१ तो० (खाली पेट) यह योग सेवन कर ऊपर से उक्त अर्क ५-५ तो० पिलावें। ४०-४५ दिन में गण्डमाला और अपची निश्चय ही दूर हो जाती है। दही, मट्ठा, दूध, उड़द, खटाई, पक्का भोजन एवं अन्य कफकारक पदार्थों से परहेज रखना आवश्यक है।

—कविराज पं० हरदयाल जी वैद्य वाचस्पति (रसतन्त्र सार से)

अथवा शुक्ल पक्ष के प्रथम सप्ताह में रविवार के दिन प्रातः स्नान कर पवित्र होकर किसी स्वच्छ स्थान से इसकी जड़ उखाड़ लावें। किंतु आपके शरीर की छाया उस पर नहीं पड़नी चाहिये। इस प्रकार लाई हुई जड़ को छायाशुष्क कर महीन चूर्ण कर शीशी में सुरक्षित रखें। प्रातः सायं १-१ मा० चूर्ण ताजे जल के साथ सेवन करावें। शीघ्र रोग समूल नष्ट हो जावेगा। यदि ग्रन्थियां फूल गई हों, तो ग्रन्थियों के शोथ पर उक्त चूर्ण को जल के साथ पीसकर उनपर लेप कर दिया करें। ग्रन्थियां भीतर ही लुप्त हो जावेंगी। यदि ग्रन्थियां पक कर पीप बहने लगी हो तब भी इस चूर्ण को पानी में रगड़ कर लेप करें सब घाव अच्छे हो जावेंगे। —भा. जड़ी बूटी

भौं एवं कनपटी की पीड़ा पर—जड़ के चूर्ण को आग पर छोड़ कर उसके धुयें की नस्य देवें तथा कलौंजी ४ तो० के चूर्ण के साथ ८ तो० पुराना गुड़ मिला ३ गोलियां बना प्रतिदिन १-१ गोली प्रातः ७ दिन खिलावें।

कटिवेदना पर—रोगी को केवल रात में बिस्तर पर या प्रातः उठते समय कमर में दर्द मालूम पड़े, तो रात्रि में सोते समय इसकी जड़ के चूर्ण को गरम जल से लेना चाहिये। —वृ० दर्पण।

(९) वीर्य दोष निवारणार्थ तथा वाजीकरणार्थ:—इसकी जड़ का घन क्वाथ बनाकर उसमें (समभाग) असगंध का चूर्ण मिला मटर जैसी गोलियां बनावें। प्रातः सायं १-१ गोली खाकर ऊपर से दूध में मिश्री मिलाकर पीते रहने से वीर्य दोष दूर होकर, शरीर की झुर्रियां दूर हो जाती हैं। यह योग अवस्था स्थापक एवं नेत्रों के लिये हितकर है। —आ. विकास।

इसकी ताजी जड़ का चूर्ण (विशेषतः जड़ की छाल का चूर्ण) २ तो० (आधुनिक मात्रा २ मा०) गोदुग्ध के साथ, १४ दिन, दो महीने, ६ महीने या १ वर्ष तक सेवन करने से वृद्ध का शरीर भी नवीन हो जाता है। —वं० से०।

इसके मूल के चूर्ण को सेंमल के जड़ के रस की भावनायें (लगभग ७ भावनायें) देकर शुष्क करलें। फिर यह चूर्ण और मोचरस का चूर्ण १-१ भाग तथा

शुद्ध गन्धक दो भाग एकत्र खरल कर रखें। मात्रा ४ रत्ती दूध दस तोला के साथ सेवन से कामशक्ति बढ़ती है। यह बाजीकरण योग है। —भैं० र०।

अथवा-इसकी ताजी सूखी जड़ और हुलहुल के बीज समभाग कूट छानकर सेमर की छाल मिला प्रातः सायं १-१ तोला खाकर ऊपर से २० तो० तक गोदुग्ध पकाया हुआ पीवें। ४० दिन के प्रयोग से शरीर हृष्ट पुष्ट होता, धातु का पतलापन दूर होकर स्तंभन शक्ति बढ़ती है।

—भा० गृ० चि०।

(१०) स्त्री रोगों पर—गर्भाशय विकार जन्य अनार्तव में इसकी जड़ और कपास की जड़ का फाण्ट देते हैं। दिन में ३ बार। गर्भाशय शूल व शोथ के शमनार्थ जड़ के क्वाथ की उत्तर वस्ति देते हैं।

सुखपूर्वक प्रसवार्थ एवं मूढ़गर्भ पर—इसकी जड़ को पानी में घिसकर स्त्री की नाभि के चारों ओर लेप कर देने से बालक चाहे जीवित हो या मृतक सरलता से बाहर आ जाता है।

यदि बालक मरा हुआ हो (मूढ़गर्भ) तथा उसका विष फैल जाने से स्त्री मूर्छित हो गई हो तथा अधिक देर हो गई हो तो इसकी ताजी जड़ ५ तो० जौकुट कर ४० तोला जल में पका १० तो० शेष रहने पर छानकर उस स्त्री को किसी प्रकार पिलादें। यह पेट में पहुंचने की देर है, फिर प्रसव होने में देर नहीं लगती। यदि वमन हो जावे तो दो घंटा बाद पुनः उसी प्रकार पिलावें। अवश्य सफलता प्राप्त होगी। —भा० ज० बूटी०।

इसकी जड़ को तैल से चिकनी कर योनि में प्रविष्ट करने से मूढ़गर्भ (मृतक बालक) तुरन्त बाहर आ जाता है या जड़ के चूर्ण को तैल में मिला योनि में लेपकरने से भी सुख प्रसव हो जाता है।

—राजमार्तण्ड में स्त्रीरोगाधिकार।

स्तनपाक-जबकि स्तन में प्रदाहयुक्त पाक होकर स्तन लाल वर्ण के हो गये हों, या घाव होकर दुर्गन्धियुक्त राध निकलती हो तो इसकी जड़ का लेप लाभकारक होता है।

(११) सर्प बिच्छू और चूहे के विष पर—इसकी जड़ों को काली मिर्च ७ दाने के साथ केले की जड़ का रस १० तो० के साथ पीसकर १ या २ बार पिलाने से जहरीले सर्पों का विष नष्ट हो जाता है।

—बूटी दर्पण।

रविवार के दिन पुष्य नक्षत्र में उखाड़ी हुई इसकी जड़ को चबाकर खाने से तथा जड़ का लेप करने से बिच्छू का विष उतर जाता है। —व० गु०।

राजमार्त्तण्डकार का कथन है कि पुष्यनक्षत्र में इसकी जड़ को उखाड़ कर जल में पीसकर पीने से एक वर्ष तक सांप और बिच्छू पास तक नहीं फटकते।

चूहे के विष पर—जड़ का चूर्ण शहद के साथ दिन में दो बार देते रहें।

(१२) चातुर्थिक ज्वर और मसूरिका—इसकी जड़ के चूर्ण को दूध के साथ पिलाने से या पान के बीड़े में रखकर खिलाने से चौथियारा ज्वर दूर होता है।

—व. गु.।

जड़ और कालीमिर्च दोनों ४ मा० लेकर शीतल जल के साथ पीसकर चेचक के दिनों में पीने से मसूरिका या शीतला होने का भय नहीं रहता। —वू. द.

पंचाङ्ग—गुल्म रोग तथा प्लीहा विकृति पर—इसके पंचाङ्ग के चूर्ण को (या जड़ को) समभाग सेंधा नमक के साथ पीसकर उसमें गोघृत मिला सेवन कराने से गुल्म और प्लीहा की शांति होती है। —व० गु०।

वृद्धावस्था में शरीर के स्वास्थ्य के लिये-इसके पंचांग के चूर्ण को दूध और शक्कर के साथ सेवन करते हैं। ऊपर प्रयोग नं० ९ देखिये।

पुष्प—शक्ति वृद्धि तथा प्रमेह नाशार्थ—इसके फूलों को शुष्क कर चूर्ण कर रख लेवें। इसे १ मा० की मात्रा में मिश्री ३ मा० मिलाकर खाने तथा ऊपर से दूध पीने से शक्तिवृद्धि होती है और प्रमेह नष्ट होता है।

—वू० द०।

नोट—मात्रा—मूल की १५ से ६० रत्ती तक।

विशिष्ट प्रयोग

(१) पुनर्नवादि लेह - पुनर्नवा, गिलोय, देवदारु और दशमूल सब समभाग मिश्रित ४ सेर जौकुट कर ३२ सेर

Scanned with CamScanner

जल में चतुर्थांश क्वाथ कर छानकर उसमें अदरख रस २ सेर तथा गुड़ ६¼ सेर मिला पकावें। लेह जैसा गाढ़ा बन जाने पर उसमें त्रिकटु, तेजपत्र, छोटी इलायची, दालचीनी, चव्य प्रत्येक का चूर्ण १। तोला मिलाकर ठंडा हो जाने पर शहद ४० तो. मिला सुरक्षित रखें। मात्रा–३ मा. से ६ मा. तक सेवन से कफज शोथ, शूल, कास, श्वास, अरुचि प्रभृति रोग नष्ट होकर बल, पुष्टि एवं अग्नि की वृद्धि होती है। श्वास जन्य हृद्रोग के उपद्रव रूप शोथ में यह विशेष लाभदायक है। —भै. र.।

(२) पुनर्नवादि क्वाथ–पुनर्नवा, कालीमिर्च, सरफोंका, सोंठ, चित्रक, हरड़, करंजत्वक्, बेलगिरी मिलित जौकुट चूर्ण २ तो. को ३२ तो. जल में अष्टमांश क्वाथ सिद्धकर सेवन से अर्श, गुल्म तथा संग्रहणी में लाभ होता है। –भै. र.।

(३) पुनर्नवादि चूर्ण–पुनर्नवा, गिलोय, सोंठ, सोया, विधारा, कचूर और मुण्डी समभाग का चूर्ण कर लेवें। २ से ४ मा. तक कांजी के साथ पीने से आमाशय गत वातविकार तथा उष्ण जल के साथ सेवन से आमवात तथा कष्टसाध्य गृध्रसी शीघ्र ही नष्ट होती है। —भै. र.।

चूर्ण नं० २–पुनर्नवा, सोंठ और देवदारु १-१ भाग, अजवायन, बायबिडंग तथा चित्रक आधा-आधा भाग और निशोथ ३ भाग एकत्र चूर्ण करें। इसे उष्ण जल या गोमूत्र के साथ लेने से प्लीहा, शोथ, अर्श और पांडु रोग दूर होता है। —ग. नि.।

(४) पुनर्नवा-अर्क—पुनर्नवा मूल १। सेर जौकुटकर १० सेर जल में ३ दिन तक भिगो रखें। पश्चात् भवके द्वारा २॥ सेर अर्क होजाता है। प्रातः सायं २-२ तो. अर्क (यह मात्रा बड़ों के लिए है) उम्र के हिसाब से मात्रा न्यूनाधिक कर लेवें। यह मूत्रल है। शोथ, पांडु, विष दोष, हृद्रोग आदि नाशक है।

बेरी-बेरी रोग (वात बलासक ज्वर) पर भी यह लाभदायक है। इस रोग से ग्रस्त एक रोगी का कथन है कि वह प्रातःसायं सौभाग्य शुण्ठी पाक २ तोला खाकर ऊपर से गरम किया हुआ गोदुग्ध पीता था तथा भोजन के घंटे-डेढ़ घंटे बाद दोनों समय उक्त अर्क लिया करता था। एक महीने में उसे पूर्ण लाभ होगया। यह रावण कृत अर्क प्रकाश का योग है। —सिद्ध मृत्युञ्जय।

अर्क नं. २–इसकी ताजी जड़ (जो अच्छी हो, सड़ी न हो) को उबलते हुए पानी से धोकर छायाशुष्क कर चूर्ण करें। १ तो. चूर्ण के साथ १ औंस मद्यार्क (रेक्टिफाईड स्प्रिट) मिला कांच की डाट वाली स्वच्छ बोतल में भर ८ दिन बन्द रखें। दिन में ३-४ बार हिला दिया करें तथा ३-४ घण्टे सूर्य के ताप में रखें। फिर फिल्टर पेपर से छान कांच की स्वच्छ बोतल में भर लें। फिर इसमें ३ गुना बाष्प जल मिलाकर अन्तःक्षेपण रूप से प्रयोग में लावें। इसकी मात्रा ३ वर्ष के बच्चों को १० बून्द, १० वर्ष तक २० बून्द और बड़े मनुष्य को ४० बून्द (२ सी. सी.) देवें। यह इंजेक्शन कुछ दिनों तक प्रतिदिन दे सकते हैं। इस बाष्प जल मिश्रित छाने हुए अर्क को स्प्रिट लेम्प पर उबाल कर पिचकारी में भर यथाविधि मांसपेशी में इंजेक्ट करें। श्वास, यकृत् वृद्धि, कामला, सर्वांग शोथ एवं जलोदर पर यह व्यवहृत होता है। —गां. औ. र.।

अथवा साफ की हुई जड़ को घोट कर उसका स्वरस निचोड़ उसमें १/८ हिस्सा रेक्टीफाईड स्प्रिट मिला डाट बन्द कर रखें। ७ दिन बाद खूब साफ कपड़े से छान लें। उस समय १/३ हिस्सा स्प्रिट और मिलाकर व्यवहार में लावें। मात्रा चार बून्द से आधा ड्राम तक है। यह खांसी, जुकाम, फेफड़ों की सूजन नष्ट करता है। –बूटी दर्पण।

अथवा–इसकी जड़ या पंचांग को कूट कर रस निचोड़ उसमें चौथा हिस्सा उत्तम देशी शराब मिला डाट बन्द कर ७ दिन रहने देवें। बाद में कपड़े से छानकर उपयोग में लावें। मात्रा १० से ३० बूंद। —गां. औ. र.।

(५) पुनर्नवासव—इसकी (श्वेत की न मिले तो लाल पुनर्नवा की) जड़ ५ सेर जौकुटकर ३२ सेर जल में पकावें। ८ सेर शेष रहने पर छान कर शुद्ध मटके (या संधान पात्र) में भर ठंडा हो जाने पर उसमें धाय के फूल १ सेर मुनक्का १ सेर ६ छटांक, तथा पुनर्नवा मूल, नीम (छाल), पटोल पत्र, सोंठ, कुटकी, गिलोय, दारुहल्दी, हरड़ बड़ी प्रत्येक का चूर्ण १०-१० तोला और शहद ५ सेर डालकर

Scanned with CamScanner

मुख बन्द कर रखदें। १ माह बाद छानकर बोतल में भर रखें।

मात्रा—१ से ४ तोला तक सेवन से हृद्रोग, पांडुरोग, शोथ, प्लीहा, गुल्म, अर्श, उदर रोग, वातविकार, कोष्ठ-बद्धता, कुष्ठ आदि दूर होते हैं।

आसव नं० २—श्वेत और लाल पुनर्नवा मूल, एरण्ड मूल, छोटी और बड़ी कटेरी, चित्रक प्रत्येक ६५ तोला एकत्र जौकुटकर ३२ सेर जल में १२ घंटे भिगो रखें। बाद में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छानकर ठंडा होने पर मधु मिश्रित पिप्पली एवं चित्रक के चूर्ण से प्रलिप्त मटके में भर उसमें शहद २ सेर और हरड़ चूर्ण आधा सेर मिला, पात्र का मुख अच्छी तरह बन्द कर १० या १५ दिन सुरक्षित धान के भूसे में दबाकर रखें। पश्चात् छानकर बोतलों में भर दें।

इसे १ से ३ तोला तक सेवन से कष्टसाध्य, अपक्व एवं भयंकर गुल्म रोग नष्ट होता है। —वृ. मा.

नोट—शेष आसवारिष्ट के प्रयोग हमारे बृहदासवा-रिष्ट संग्रह ग्रंथ में देखिये।

(६) पुनर्नवादि घृत—श्वेत और लाल पुनर्नवामूल, सरल (धूप सरल), कसौंदी, गिलोय, पटोल, कटेरी और तुलसी समभाग मिश्रित ४ सेर कूटकर ३२ सेर जल में पकावें। ८ सेर शेष रहने पर छानकर उसमें २० तोला त्रिकटु का कल्क तथा घृत और दूध २-२ सेर मिलाकर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान रखें। मात्रा १ तोला तक सेवन से कास, विषमज्वर, क्षय एवं अर्श नष्ट होता है —वा. भ. चि. अ. ३

घृत नं० २—इसके पत्र तथा आम की जड़ की छाल समभाग मिश्रित ६½ सेर कूटकर ३२ सेर जल में चतु-र्थांश क्वाथ सिद्धकर छानकर उसमें उक्त द्रव्य समभाग मिश्रित ४० तोला का कल्क तथा घृत २ सेर मिला, घृत सिद्ध कर लेवें। १ तोला तक इसके सेवन से वात कफज रोग, भयंकर शोथ, गुल्म, उदर रोग, प्लीहावृद्धि एवं अर्श नष्ट होता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है। —वं. से.

घृत नं० ३—इसके ५ सेर मूल को कूटकर १२ सेर ६४ तोला जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान-कर उसमें चिरायता, भांग, सोंठ, पुनर्नवा मूल, व देव-दारू समभाग मिश्रित ८ तोला का कल्क तथा घृत ६४ तोला मिलाकर घृत सिद्ध कर लेवें। मात्रा—६ माशा सेवन से कास, श्वास, ज्वर एवं कष्टसाध्य शोथ दूर होता है। —भै. र.

घृत नं० ४—इसकी जड़ ४ सेर कूट कर उसमें घृत और दूध २-२ सेर और मुलैठी का कल्क ४० तोला मिला घृत सिद्ध कर लेवें। १ तोला तक सेवन करें। यह पौष्टिक है, मद्यपान के कारण जिनका ओज क्षीण हो गया है,उनके लिये विशेष लाभदायक है। —रा. नि.

(७) पुनर्नवादि तैल—इसकी जड़ ५ सेर कूटकर १६ सेर ६४ तोला जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छानकर उसमें त्रिकटु, त्रिफला, काकड़ासिंगी, धनिया, कायफल, कचूर, दारूहल्दी, फूलप्रियंगु, पद्माख, रेणुका (निर्गुण्डी बीज), कूठ, पुनर्नवामूल, अजवायन, कालाजीरा, बड़ी इलायची, दालचीनी, लोध, तेजपात, नागकेशर, बच, पीपलामूल, चव्य चित्रक मूल, सोया, सुगन्धवाला, मजीठ, रास्ना व धमासा प्रत्येक १ तोला एकत्र कल्क कर मिलावें। तथा तिल तैल २ सेर मिलाकर तैल सिद्ध कर लेवें। इस तैल के मर्दन से कामला, पाण्डु, हलीमक, अरुचि, रक्तपित्त, महाशोथ, कास, श्वास, भगन्दर, प्लीहा, उदर-रोग, जीर्णज्वर आदि व्याधियां नष्ट होती हैं। —भै. र.

तैल नं० २—इसकी जड़ ४० तोला कूटकर ४ सेर जल में पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर उसमें सौंठ, खस, तगर, देवदारू, लौंग, प्रियंगु, नागरमोथा, कचूर १०-१० तो. अगर १२ तोला, तालीसपत्र ५ तो. और केशर २ तो. इन सबका कल्क और १ सेर तिल तैल मिलाकर तैल सिद्ध करें। यह वात पित्त के विकारों तथा नेत्र रोग को दूर करता है। —स्वानुभूत।

नोट—तैल के अन्य प्रयोग शास्त्रों में देखें।

(८) पुनर्नवा गूगल—इसकी तथा एरण्ड की जड़ें ५-५ सेर, सोंठ ६४ तो. सबको जौकुटकर २६ सेर ४८ तो. जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छानकर उसमें ३२ तो. शुद्ध गूगल मिला कर पकावें। गाढ़ा हो जाने पर उसमें

Scanned with CamScanner

एरण्ड तैल १६ तो., निसोथ चूर्ण २० तो., दन्तीमूल चूर्ण ४ तो., गिलोय चूर्ण ८ तो., हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पिप्पली व चित्रक चूर्ण, सेंधानमक, शुद्ध भिलावा व वायविडंग चूर्ण २-२ तो. तथा स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला और पुनर्नवामूल का चूर्ण ४ तोला मिलाकर खूब घोटकर ३-३ माशा तक की गोलियां बनालें। इसके सेवन से वातरक्त, वृद्धि रोग, गृध्रसी, तथा जंघा, उरू, पृष्ठ, त्रिकस्थान एवं बस्तिगत शूल, प्रबल आमवात दूर होता है। —भै. र.।

(९) पुनर्नवा मण्डूर–पुनर्नवा, निसोथ, त्रिकटु, वायविडंग, देवदारू, त्रिकटु, कूठ, हल्दी, त्रिफला, दन्तीमूल, चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, कालाजीरा, अजवायन, और कायफल इनका चूर्ण ४-४ तोला तथा शुद्ध मण्डूर सबसे दुगना लेकर सबको आठ गुने गोमूत्र में पकावें। पकाते समय करछुली से चलाते रहें। कुछ थोड़ा गाढ़ा होने पर उसमें समभाग गुड़ मिला पकावें। खूब गाढ़ा गोली बनाने योग्य हो जाने पर २-२ माशा की गोलियां बनावें।

तक्र के साथ सेवन से पाण्डु, कामला, हलीमक, श्वास, कास, क्षय, ज्वर, शोथ, उदर रोग, शूल, प्लीहा, आध्मान, अर्श, ग्रहणी रोग, कृमिरोग, वातरक्त व कुष्ठ दूर होता है। —भा. प्र.

(१०) लोहभस्म—लोह चूर्ण को इस पुनर्नवा के पत्र रस में खरल कर टिकिया बना शुष्क कर शराव-सम्पुट में बन्द कर गजपुट की अग्नि देवें। इसी प्रकार १० पुट देने से लोह की सिन्दूर जैसी लाल भस्म होती है। —भा. भै. र.।

(११) टिंचर आइडीन पुनर्नवा—इसकी जड़ का चूर्ण १० रत्ती, सौंठ चूर्ण ५ रत्ती, सिंगिया (बछनाग) चूर्ण और रतन जोत चूर्ण २-२ रत्ती, इन सबको २ औंस (५ तो.) मैथिलेटेड स्प्रिट में डाल कर शीशी में रखें। इससे ठीक वही काम होता है जो टिंचर आइडीन करता है। —आ. विज्ञान

पुन्नाग—दे.-सुलतान चम्पा।

पुरइन—दे.-कमल में।

पुलिचन[1] (Unona Narum)

सीताफल (सरीफा) कुल (Anonaceae) के इस झाड़ीदार क्षुप के पत्र ५-१५ सें. मी. लम्बे; २.५-३.८ सें. मी. चौड़े होते हैं। पत्तों को कुचलने से दालचीनी जैसी सुगन्ध आती है। पुष्प–कुछ गुलाबी रंग के गोल २.५ सें. मी. व्यास के होते हैं. पुष्प का गर्भभाग चिपचिपा स्निग्ध स्रावयुक्त होता है। इसकी जड़ सुगंधित होती है। इसके क्षुप–दक्षिण भारत में मद्रास प्रान्त, कोंकण, पश्चिमी घाट तथा मध्य प्रदेश के जंगली, पहाड़ी भागों में और सीलोन में पाये जाते हैं।

नाम–

म.—तामील, पुलिचन। मराठी—गुनमनिझाड़ा।

ले.—यूनोना नेरम; युवेरिया नेरम (Uvaria-Narum)।

इसकी जड़ से वाष्पीकरण यंत्र द्वारा एक क्रियाशील सुगंधित तैल निकाला जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

इसकी जड़ का तैल वात विकारों पर तथा अन्य अनेक रोगों पर व्यवहृत होता है। जड़ का फाण्ट पैत्तिक ज्वर पर देते हैं। संधिवात में पत्र को पीस गरम कर प्रलेप करते या पुल्टिस बना कर बांधते हैं।

पुलंग[2] (Heterophragma Roxburghii)

श्योनाक कुल (Bignoniaceae) के इस एक बड़ी जाति के वृक्ष की छाल गहरे भूरे रंग की; पत्र-डंठल के

[1] यह मद्रास प्रान्त की तामिल भाषा का नाम है। इसका कोई उचित हिन्दी नाम हमें नहीं मिला।

[2] यह बम्बई की ओर का मरेठी नाम है। हिन्दी नाम हमें ज्ञात नहीं हुआ।

Scanned with CamScanner

दोनों ओर ३-६ सें. मी. लम्बे होते हैं।

ये वृक्ष भारत के दक्षिण और पश्चिमी घाट में कोंकण, खानदेश एवं मध्यप्रान्त के पहाड़ी जंगलों में पाये जाते हैं।

इसे मरेठी में पुलंग, पलंग, वारस, वरसी आदि। तेगलू में—वोंदुगु। ले.—हेटेरोफेग्मा राक्सबर्घी। तालीम में—बारो काला गारु कहते हैं।

प्रयोग—पाताल यंत्र द्वारा इसका तैल निकाला जाता है, जो वेदनानाशक माना जाता है। इसकी जड़ को जल में पीस कर जहरीले सर्पदंश में पिलाते हैं।

पुष्करमूल—दे. पोहकरमूल। पूगीफल—दे. सुपारी। पूतना—दे. हरड़ में। पूतिकरंज—दे. करंज और चिलबिल में।

पूली (Hibiscus Tillaceus)

कार्पास कुल (Malvaceae) के इस छोटे वृक्ष के पत्र ७.५–१५ सें. मी. तक लम्बे; पुष्प का भीतरी भाग श्वेत गुलाबी रंग का, फल कोष छोटे आकार का; बीज प्राय: वृक्काकार भूरे रंग के होते हैं।

ये वृक्ष भारत के दक्षिण में पूर्व एवं पश्चिम घाटों में कोंकण, मद्रास प्रान्त, बंगाल, उत्तर पश्चिम हिमालय प्रदेश, बर्मा आदि के पहाड़ी जंगलों में पाये जाते हैं।

नाम–

हिन्दी—पूली, पोला, पाशे, पुलाव, पातरा, पुत्ता इत्यादि। मराठी—मोठी पोटारी, वरंगए, वरधा, भोटी, बेलसिंग, बेलीपाटा इत्यादि। गुजराती—मोटी हिरवानी, निहोटी लिखानी। बंगाली—बोला, चेलवा। तामील—वेंडाई। ते०—पेंडिली। अं०—कार्कवुड (Corkwood) लेटिन—हिबिस्कस टिलासीयस; किडिया केलिसिना (Kydla claycina)।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसमें पिच्छिल या लुवाबदार पदार्थ की विशेषता होती है। मुख की खुश्की दूर करने के लिए इसके पत्तों को चूसने से उसकी पिच्छिलता से मुख में लालास्राव होकर मुख की शुष्कता दूर होती है। ज्वर नाशनार्थ भी इसका उपयोग किया जाता है। संधिवात, कटि-पीड़ा पर इसकी जड़ को पीसकर गरम कर लेप करते हैं, या पत्तों को पीस कर पुल्टिस बना कर बांधते हैं।

पृश्निपर्णी—देखो पिठवन। पेऊं—देखो पोहकर मूल।

पेंटगुल[1] (Dalbergia sympathetica)

अपराजिता कुल (Papilionaceae) की इस बड़ी क्षुपरूप लता की विस्तीर्ण शाखाएं अतीक्ष्ण कंटक युक्त, छाल-ऊपर से काले वर्ण की, भीतर से लाल।

पत्र—इमली के पत्र जैसे होते हैं। इस लता के स्निग्ध लाल रंग के निर्यास से एक प्रकार की लाल रंग की लाख बनाई जाती है।

यह लता पश्चिमी हिमालय प्रदेशों की टेकड़ियों पर तथा दक्षिण के पहाड़ी प्रदेशों में भी विशेष पाई जाती है।

नाम–

बम्बई की ओर इसे पेंटगुल, पेंड़कुली, चिचिनो, काटोकामटो आदि कहते हैं। ले०—डालबरगिया सिंपेथिटिका।

गुण धर्म व प्रयोग–

इसके पत्र धातुपरिवर्तक एवं रक्त शुद्धिकारक रूप में व्यवहृत होते हैं। फोड़े फुंसियों पर इसकी छाल को जल के साथ पीसकर लेप करते हैं।

[1] यह महाराष्ट्र की ओर का मरेठी नाम है। इसका हिन्दी नाम ज्ञात नहीं हुआ।

Scanned with CamScanner

पेच (Daphne Oleoides)

अगुरु कुल (Thymelaeaceae) के इस बहुशाखी क्षुप के पत्र २.५–५ सें० मी० तक लम्बे तथा ५–१० मि० मी० चौड़े। पुष्प—श्वेत गुलाबी रंग के होते हैं।

इसके क्षुप उत्तरी भारत तथा पश्चिमी हिमालय में ३ से ९ हजार फुट की ऊंचाई तक और अफगानिस्थान में पाये जाते हैं।

नाम–

बम्बई की ओर तथा सिंधी में पेच। पंजाबी—माशूर, चेनीनिग्गि, गन्दालन, जीकरी, काक, कंथान इ०। डेफने ओलेआइडस।

गुणधर्म व प्रयोग–

यह विषैला है। पत्र और छाल का प्रयोग चर्म रोगों पर लेपादि के रूप में किया जाता है। फोड़े, विद्रधि, विस्फोटकादि पर पत्तों को पीसकर लेप करते हैं अथवा पत्तों को पीसकर थोड़ा तिल तेल मिला पुल्टिस बनाकर बांधते हैं। सुजाक में पत्तों का हिम पिलाते हैं।

पेठा—देखो कद्दू नं० ३ में। पेड़ का कोढ़—देखो फनस लम्बे।

पेड़ी ठगारा (Gardenia Floribunda)

मंजिष्ठ कुल (Rubiaceae) के इस साधारण वृक्षाकार सुन्दर सुशोभित पौधे के पत्र लम्बे, मोटे।

पुष्प—श्रावण मास में तगरपिण्डी के पुष्प जैसे, गुच्छों में आते हैं। पुष्पों में मीठी सुगन्ध आती है।

इसके श्वेत और लाल भेद से दो जातियां हैं। यह तगरपिण्डी का ही एक भेद है।

ये पौधे दक्षिण भारत में विशेषत: कोंकण की ओर अधिक पाये जाते हैं।

नाम–

हिन्दी, गुजराती—पेड़ी ठगारा, पिंड़ी ठगारा। ते०—ठगारा, पादिका। म०—अनन्त। ले०—गार्डेनिया फ्लोरिबन्डा।

गुण धर्म व प्रयोग–

इसके गुणधर्म व प्रयोग तगरपिंडी जैसे ही हैं। भाग ३ में तगर पिंडी का प्रकरण देखें।

वनौषधि गुणादर्श में लिखा है, कि जो गर्भवती स्त्री पूर्ण मास होने के पूर्व ही प्रसूत होती है उसकी नन्द नामक वात (अनन्तवात) मस्तिष्क में चढ़ जाने से मस्तक में जड़ता, भ्रम, दीपक का प्रकाश न दीखना, आंखों के सामने अन्धेरा, बेहोशी, मुख के जबड़ों का न खुलना आदि लक्षण होने पर इस पौधे की उत्तर दिशा की ओर गई हुई जड़ को लाकर शीतल जल में घिसकर सिर, मस्तक, छाती पर लेप करें तथा तालुस्थान पर उसका मर्दन करें। इस जड़ का एक टुकड़ा सिर की चोटी में खौंस कर रखें तथा रुग्णा की शक्ति के अनुसार इस जड़ को शीत जल में घिस कर पिलावें। पथ्य में कुलथी को पकाकर उसका पानी पिलावें तथा शेष पकी हुई कुलथी को खिलावें। लाभ होने पर मूंग और चावल खिलावें।

सर्प विष पर—इसकी जड़ और रीठे को जल में पीस छान कर पिलावें।

प्रसूता के समस्त शूल पर—इसकी जड़ तथा भारंगी मूल दोनों को उष्ण जल में पीसकर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

पेपरमिंट-देखो पिपरमेण्ट। पेवन्दीबेर-देखो बेर में। पेहंटुल (पेंहटा)-देखो कचरी।

Scanned with CamScanner

पोई (Basella Alba)

शाकवर्ग एवं वास्तूक कुल (Chenopodiaceae) की इस शाखायुक्त, स्निग्ध, लम्बी, आरोहीलता के पत्र-गोल, डिम्बाकृति, डंठल की ओर कुछ हृदयाकृति, स्थूल, मांसल, हरे १ से २ इंच व्यास के पुराने पत्र लाल चिन्ह युक्त; पुष्प-पत्रदण्ड से निकले हुये कोमल सींकपर रक्ताभ श्वेत पुष्प आते हैं। यह कोमल सींक या पुष्प दण्ड १-६ इंच तक लम्बा शाखायुक्त होता है! फल—कालीमिर्च जैसे गोल छोटे या मटर जैसे बड़े भी होते हैं। ये किंचित नुकीले होते हैं। पकने पर बेंगनी रङ्ग के हो जाते हैं। शीतकाल में पुष्प और फल आते हैं।

यह भारत में प्रायः सर्वत्र जलयुक्त स्थानों के समीप समशीतोष्ण प्रदेशों में विशेषतः दक्षिण-बंगाल, आसाम,

पोई
BASELLA ALBA LINN.
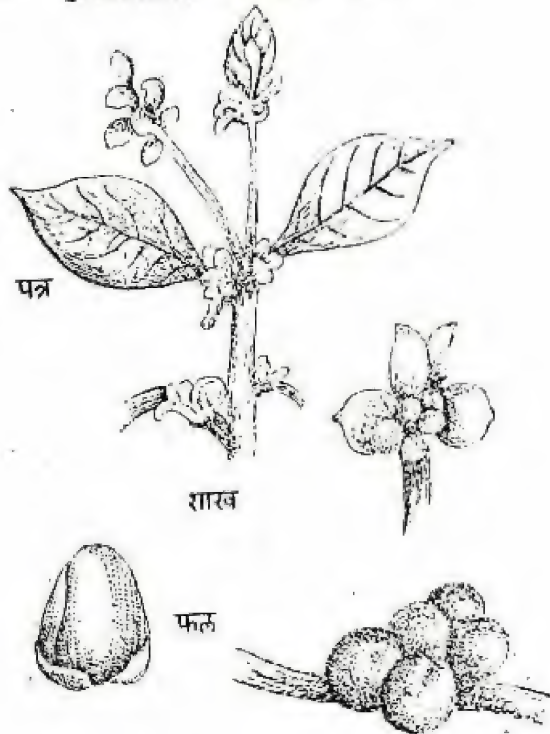
और सीलोन में पाई जाती है।

नोट—श्वेत और लाल भेद से यह दो प्रकार की है। श्वेतपोई की डंडी श्वेत तथा पत्र हरे होते हैं। इसे लेटिन में बेसेला अल्बा (Basella Alba) तथा बेसेलालुसिड़ा (B Lucida)कहते हैं। बन पोई भी इसी श्वेत पोई का एक भेद है, इसे बसेला-कार्डिफोलिया (B. Cordifolia) कहते हैं। इसके पत्र श्वेत पुनर्नवा के पत्र जैसे, किंतु कुछ छोटे और नोकदार होते हैं। यह स्वाद में चरपरी खट्टी, रुचिकर होती है। इसकी जड़ कुछ गोलाकार सुपारी जैसी होती है। गुण धर्म में यह वात कफ कारक, वृष्य, कृमिकारक एवं पित्तनाशक है। लाल पोई को बेसेला रूब्रा (Basella Rubra) कहते हैं। इसकी डंडी और पत्र दोनों लाल होते हैं। फल का रङ्ग काला, नीला होता है। प्रायः इन सबकी लतायें वृक्षों, दीवारों, छतों

Scanned with CamScanner

आदि पर कद्दू की बेल जैसी फैली हुई रहती हैं। इन सबके गुण धर्म प्रायः एक समान ही हैं।

चरक के सू. स्था. अ. २७ में, तथा सुश्रुत के सू. स्था. अ. ४६ में उपोदिका नाम से इसके गुण धर्मों का उल्लेख है।

नाम–

सं.–उपोदिका, पोतकी, मालवा, अमृतवल्लरी इ.। हि.–पोई, पोयसाग, बचलू इ.। म–मायाल, मयाल-भाजी बेलबोंड़ी, बेलगोंड इ.। गु.—पोथिनी वेल, पोई। बं.—पुंईशाक, रक्तपोई। अं–इंडियन स्पिनेच (Indian spinach), मलेबार नाईटशेड (Malebar nightshade) ले.—बेसेला अल्बा; बे. रूब्रा (B. Rubra); बे. लुसिड़ा (B. Lucida), बे. कार्डिफोलिय (B. Cordifolia)

रासायनिक संगठन–

इसमें पिच्छिल द्रव्य और लोह का परिमाण अधिक पाया जाता है।

प्रयोज्यांग—पत्र, जड़ तथा पंचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, मधुर, मधुर विपाक, स्निग्ध, शीतवीर्य, पिच्छिल, रोचक, तृप्तिजनक, कफकारक, वातपित्तशामक, मूत्रल, कंठ के लिये कुछ हानिकर, निद्राजनक, रक्तपित्तशामक, पौष्टिक, वीर्यबलवर्धक, दाह, प्रशमन, मस्तिष्क के लिये शा...कर, स्नेहन, अनुलोमन, दूषित-कफ निःसारक तथा प... है। पित्तप्रकोप, अतिसार, वातपैत्तिककास, स्वास, मू...च्छ्र, पूयमेह, फोड़े फुंसी, विद्रधि, विस्फोट आदि ...सका प्रयोग किया जाता है।

पालक के समान या पालक के स्थान में इसकी शाक का प्रयोग किया जाता है। रक्तपित्त, रक्तार्श, कोष्ठगत रूक्षता, कोष्ठबद्धता, दौर्बल्य, कृशता आदि में यह शाक विशेष उपयोगी एवं पथ्य है। शुष्क पत्तों का फाण्ट (या चाय) एक उत्तम पुष्टिप्रद पेय है। अश्मरी तथा वृक्क पीड़ा पर ताजे पत्तों को पीस छानकर पिलाते हैं। इससे शुक्रप्रमेह एवं शुक्र तारल्य और मूत्रकृच्छ्र में भी लाभ होता है। शाक घृत या तिल तैल के योग से करें कडुवे तैल से नहीं।

(१) रक्तपित्त, शुक्रदौर्बल्य, बालकों के ... विकार तथा शिश्नमणि (शिश्न के मुण्ड भाग) के प्रदाह युक्त शोथ में तथा सुजाक पर इसके स्वरस में मिश्री मिला शर्बत बनाकर पिलाते रहने से लाभ होता है।

(२) विद्रधि, विस्फोट, अग्निदग्ध, दाह, शिरःशूल, खुजली, अजीर्णजन्य शीतपित्त तथा अनिद्रा पर पत्र रस का लेप करने से लाभ होता है।

अनिद्रा तथा शिरःशूल में इसका लेप सिर पर लगाते हैं। अनिद्रा में पत्र रस पिलाते भी हैं।

(३) फोड़ों के पाकार्थ तथा व्रणों के शीघ्र पूरणार्थ पत्तों की पुल्टिस बनाकर बांधते हैं।

(४) बद गांठ पर–पत्तों को नमक, कांजी या मट्ठे के साथ पीसकर लेप करते रहने से ग्रन्थि बिखर जाती है।

(५) अग्निदग्ध स्थान पर तथा झुलसने पर–पत्र रस को मक्खन के साथ खूब घोटकर बार-बार लगाने से शीघ्र शांति प्राप्त होती है, छाला नहीं पड़ने पाता।

(६) रक्तज या पित्तज ज्वर की जलन की शांति के लिये—पत्तों को जल में पीस छानकर पिलाते हैं तथा इसके रस को शरीर पर मर्दन करते हैं।

(७) स्वाभाविक सिर दर्द (जो किसी किसी को स्वाभाविक सदैव बना रहता है) पर—इसके ताजे पत्र एवं कोमल डंठलों से प्राप्त पिच्छिल द्रव पदार्थ को स्नान के ½ घंटा पूर्व सिर पर मलने से लाभ होता है, तथा शांतिप्रद निद्रा आती है।

(८) अर्बुद (विशेषतः मर्म स्थान पर होने वाले अर्बुद) पर—इसे कांजी या तक्र में पीस उसमें थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर रात्रि में तथा दिन में ३ दिन तक गाढ़ा गाढ़ा लेप करते रहने से लाभ होता है —वं. सं.

(९) स्तम्भनार्थ—शिश्न पर इसका लेप करते हैं।

(१०) बिच्छू के विष पर—इसके ३ पत्तों को थोड़े जल के साथ पीसकर पिलाते हैं।

पैत्तिक वमन पर—इसकी जड़ का क्वाथ सेवन

Scanned with CamScanner

कराते हैं।

नोट--मात्रा-स्वरस ½ से १ तोला

शीत प्रकृति वालों के लिए यह कुछ हानिकर है। हानिनिवारक बादाम तैल और कालीमिर्च है। इसका प्रतिनिधि-पालक है।

पोखरमूल-देखो पोहकरमूल। पोदीना-देखो पुदीना।

पोनवार (Cleome Brachy carpa)

वरुण कुल (Capparidoae) के इस वर्ष जीवी १ से ३ फुट तक ऊंचे क्षुप के काण्ड एवं शाखायें कोमल रोमश; पत्र-संयुक्त, छोटे छोटे, कंगूरेदार; पुष्प-छोटे, पीतवर्ण के; फल-छोटे, लम्बे, सरसों जैसे काले बीजयुक्त होते हैं। इसके क्षुप वर्षा ऋतु में पैदा होते हैं।

ये क्षुप भारत के प्रायः उष्ण प्रदेशों में पंजाब, राजपूताना, बलुचिस्थान, सिंध आदि के मैदानों में विशेष पाये जाते हैं।

नाम–

हि०—पोनवार, पनवार। सिंधीकस्तूरी।

ले०—क्लिओमे ब्रेचिकार्पा।

इसके बीजों में एक सुगन्धित तैल पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, उष्णवीर्य संधिवात, शोथ, खुजली आदि में इसके पत्र या पंचाङ्ग को पीसकर गरम कर लगाते हैं तथा तैल की मालिश करते हैं।

पोरिया बेल०-दे० गज पिप्पली। पोला-दे०वेलीपाता। पोस्त- दे० अफीम में या खसखस में।

पोशुर[1] (Carapa Moluccensis)

भोरा कुल (Rhizophoraceae) के इस छोटे १२ मीटर ऊंचे वृक्ष का काण्ड ३०-६० सें०मी० व्यास का, छाल कई परतों वाली, बहुशाखा युक्त, पत्र १०-२५ सें० मी० तक लम्बे, गहरे हरित वर्ण के, पुष्प छोटे-छोटे श्वेत वर्ण के, फल बहुत छोटे तथा अनेक बीज युक्त होते हैं।

ये वृक्ष बंगाल, वर्मा, अण्डमान एवं अफ्रिका में अधिक होते हैं।

नाम–

बंगला में पोशुरा, पुस्सर, धुन्दुल। ले०—करपामोल्युसेंसिस।

गुण धर्म व प्रयोग–

अति तिक्त, कटु, संकोचक, कटु पौष्टिक है। उदर विकार, अतिसार शूल, विसूचिका आदि में उपयोगी है। छाल का उपयोग ज्वर में विशेष लाभदायक माना जाता है। इसके बीजों का तैल अतिसार तथा प्रवाहिका में दिया जाता है।

पोहकर मूल (Inula Racemosa)

हरीतक्यादि वर्ग एवं भृङ्गराज कुल (Compositae) का मूली के क्षुप जैसा इस ३-५ फुट तक ऊंचे क्षुप का कांड कच्ची दशा में हरा, फिर रक्ताभ कृष्णवर्ण का, ऊपर से धारीदार, खुरदरा, उप शाखायुक्त।

पत्र—चर्म सदृश किंतु सुगन्धित, ऊपर के कांड संलग्न पत्र ३-६ इंच लम्बे, कंगूरेदार। नीचे के मूल समीप के पत्र ८-१८ इंच लम्बे, ४-८ इंच चौड़े कंगूरेदार, ऊपरी भाग में खुरदरे, पृष्ठ भाग में रोमश, पत्रवृन्त

---

[1] इस बूटी के यथोचित संस्कृत या हिन्दी के अभाव में हमें यहा उसके साथ उसके कुल के बंगला भाषा के नाम देने पड़े हैं।

Scanned with CamScanner

पोखरमूल
INULA RACEMOSA, HOOK

२-३ इंच लम्बा होता है।

पुष्प—पुष्पदण्ड पर कुछ लम्बे गोल घुण्डीदार या मुकुटाकार रचनायुक्त १॥-२ इंच व्यास के, नीले, बैंगनी रङ्ग के पुष्प की बाह्य पंखुड़ियां चौड़ी, नोकदार ऊपर से त्रिकोणाकार, भीतर की पंखुड़ियां रेखाकार, नोकदार होती हैं। सूखने पर यही भीतरी भाग केवल रेखाकार या केश सदृश रह जाता है तथा इसीका निम्न भाग ही बीज रूप कृष्ण वर्ण का होता है।

मूल—कच्ची दशा में छोटी मूली के आकार की पतली, पश्चात् शनैः शनैः मोटी कई पर्तों वाली, ऊपर के पर्त मोटे, नीचे के पतले, जालीदार होते हैं। यह मूल बाह्य दृष्टि से अधिकांश में कूठ (कोष्ठ) मूल जैसी ही प्रतीत होती है। यह मूल २-३ उपमूलों से युक्त, श्याम (काले) वर्ण की, सुगन्धित, स्वाद में कटु, किंचित् चुनचुनाहट पैदा करने वाली होती है।

यह हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों में ५ से १० हजार फुट की ऊंचाई पर तथा काश्मीर, चम्बा, जम्मू आदि शीतल पहाड़ी प्रदेशों के बर्फ वाले एवं जलाशय प्रधान स्थानों पर जहां कूठ उत्पन्न होता है, प्रायः उन्हीं स्थानों पर पाया जाता है। इसके अतिरिक्त ईरान आदि देशों में भी किन्तु कम प्रमाण पैदा होता हैं। इसी का एक भेद (Inula Royleana) विशेष प्रमाण में पाया जाता है।

नोट नं० १—इस बूटी के सम्बन्ध में मतभेद लगभग गत ३०० वर्षों से चला आ रहा है। यह मतभेद प्राचीन चरकादि संहिता ग्रंथों में नहीं पाया जाता है। भारत का प्राचीन सुप्रसिद्ध एवं सुप्रचलित इस बूटी का निर्यात यहां से अन्य देशों में बहुत हुआ करता था। ऐसा इतिहास से सिद्ध होता है। अत्यधिक निर्यात होने से तथा कालचक्र से इसकी उपज की ओर या आलस्यवश इसकी असलियत की खोज की ओर दुर्लक्ष्य होने से यह संदिग्ध हो गई और इसके स्थान में कूठ (कुष्ठ) लिया जाने लगा। हमने इस बात का संक्षिप्त संकेत कुष्ठ के प्रकरण (देखो भाग २) में कर दिया है। पोहकर मूल को कूठ का ही एक भेद मान लेना या दोनों को एक समान गुण विशिष्ट मानना उचित नहीं जंचता। यदि ऐसा होता तो चरक, सुश्रुतादि प्राचीन संहिताकार कई रोगों के योगों में कुष्ठ और पुष्करमूल को भिन्न-भिन्न नहीं लिखते। कहीं-कहीं जैसे कफजमेह, श्वासरोगादि के प्रयोगों में कुष्ठ और पुष्करमूल एक साथ लिया गया है। इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि दोनों के गुणधर्मों में विशेष साम्य नहीं है। चरक में श्वासहर तथा हिक्का निग्रहण-दशेमानियों में एवं ज्वर, गुल्म, प्रमेह, यक्ष्मा, अर्श, उदर रोग, कास, हृद्रोग, शिरोरोग, वातरोग आदि के कई प्रयोगों में पुष्करमूल का उल्लेख है।

यद्यपि पोहकर मूल और कूठ दोनों कटु विपाकी एवं उष्ण वीर्य तथा कफवात शामक हैं तथापि पोहकर मूल में हृद्य एवं आम पाचन गुण की कुछ विशेषता होने से यह कास, श्वास, पार्श्वशूल, हृद्रोग आदि प्राणवह स्रोत सम्बन्धी व्याधियों में कूठ की अपेक्षा अधिक उप-

Scanned with CamScanner

युक्त है।

पोहकर मूल अनुलोमन होते हुए विशेष ग्राही नहीं, स्वाद में प्रायः तिक्त, कटु, सुगन्ध मधुर भीनी मनमोहक। स्वरूप में मोटी, ठोस, बाह्यत्वचा विशेष मोटी नहीं। आर्द्रावस्था में पीताभ रक्त वर्ण की, शुष्क होने पर बाह्य-त्वचा के हटाने पर भीतर जालीदार रचना वाली त्वचा होती है। यह शीघ्र टूटने वाला होती है, कड़ी नहीं होती।

कूठ—अनुलोमन किंतु ग्राही भी है। स्वाद में प्रायः कटु, सुगन्ध में तीक्ष्ण, उग्र एवं कम मनोनुकूल। स्वरूप में अधिक मोटी नहीं, कुछ पोली सी, आर्द्रावस्था में कृष्णाभ रक्त वर्ण की, शुष्क होने पर भी भीतरी त्वचा जालीदार नहीं तथा कड़ी होती है, शीघ्र नहीं टूटती।

प्रस्तुत प्रसंग के पोहकर मूल (Inula Racemosa) के पत्र पद्म पत्र सदृश न होने से यह शास्त्रीय पुष्करमूल तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु गुणधर्म आदि की दृष्टि से स्वर्गीय श्री यादव जी आचार्य एवं अन्य विद्वानों ने इसे ही पोहकरमूल माना है। और उनका कथन है कि डा. देसाई के मतानुसार इसे रासना मानना कदापि उचित नहीं। आगे यथास्थान रासना का प्रकरण देखिए। डा. देसाई, डा. डायमक, डा. नादकर्णी, कीर्तिकर-बसु तथा कविराज विरजाचरण जी निम्नाङ्कित नोट नं. ३ के ईरसा (Iris Germanica) को पोहकरमूल मानते हैं।

नोट नं० २—शाकवर्ग एवं हरिद्राकुल (Scitaminaceae) केमुक, केबुक (Costus Speciosus) नामक बूटी को भी पोहकरमूल कहा जाता है। इस ४-६ फुट (बंगाल की ओर ६-६ फुट) ऊंचे, सुन्दर एवं कड़े पौधे के पत्र काण्ड पर पेचदार घुमाव के क्रम से निकले हुए ६-१२ इंच लम्बे, लगभग २ से ३½ इंच तक चौड़े, आयताकार कुछ-कुछ पद्मदलाकृति के किंतु प्रायः लम्बे, कड़े एवं क्रमशः पतले नोकवाले, ऊपरी पृष्ठ भाग में चिकने, अधःपृष्ठ भाग में रेशम जैसे मृदु रोमयुक्त, तथा वृन्तरहित होते हैं। पुष्प मंजरी २-५ इंच लम्बी, अग्रस्थित, सघन, जिसमें लाल, श्वेत, नीले एवं भिन्न भिन्न रंग के छोटे-छोटे पुष्प आते हैं। पुंकेशर १॥ से २ इंच तक लम्बा

पोहकर मूल
Costus speciosus Smith

पुष्प

स्तम्भ

पत्र

होता है। फल—लाल रंग के कुछ गोलाकार त्रिकोणयुक्त होते हैं। मूल (या मूलस्तंभ) अदरक के समान आलू या अदरक जैसी गांठदार, ऊदी रंग की चपटी, कड़ी एवं भीतर सूक्ष्म तंतुयुक्त स्वाद में कटु तिक्त, गन्ध में बनफशा जैसी होती है। इसमें वर्षा के अन्त में फूल और पश्चात् फल आते हैं।

बनौषधि दर्शिकाकार श्री ठा. बलवंत सिंह जी का कथन है कि ग्रामीण प्रायः इसकी पत्तियों का शाक बनाते हैं। दक्षिण भारत में कहीं कहीं यह संभवतः कूट के नाम से लिया जाता था तथा उत्तर भारत में कहीं-कहीं अज्ञानवश लांगली के नाम से इसका उपयोग होता है। यह वस्तुतः शास्त्रकारों का केमुक है। पूर्वी प्रांतों में इसे केऊं या पेऊं भी कहते हैं।

देहरादून के शालबनों में प्रायः आर्द्र एवं छायाकार स्थानों में इसके पौधे पाये जाते हैं। बंगाल में प्रायः जंगलों

के किनारे एवं पङ्कि भूमि में यह विशेष पाया जाता है। काश्मीर तथा ईरान में भी इसकी उपज अधिक होती है। इसके कन्द का तथा पत्तों का शाक बनाया जाता है।

नाम—

स०—केमुक, पुष्कर। हि०—केमुक, केवुक, केऊं, पेऊं, पोकरमूल, कोबी। म.—पेनवा, बाल वेरवंड। बं०-केऊ, कुरा। अं०—ओरिस रूट (Orris root) ले०-कांस्टस स्पेसिओसस।

प्रयोज्यांग—मूल तथा उसके उपांग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, तिक्त, कटु, शीतवीर्य, कटु विपाक, ग्राही, दीपन, पाचन, हृद्य, वातजनक, एवं कफ, पित्त, ज्वर, कुष्ठ, कास, प्रमेह तथा रक्तविकार, कृमिनाशक, कामोत्तेजक है।

कई जगह इसके मूल का उपयोग अदरख के स्थान पर किया जाता है। मूल के उपांग या जड़ के समीप के मोटे भाग को कुचल कर जल में उबाल व छानकर उसमें शक्कर मिला कर पुनः पकाकर शर्बत बनाया जाता है। अथवा जड़ का अचार भी बनाते हैं। यह शर्बत या अचार विशेष पथ्य कर एवं स्वास्थ्य के लिए हितप्रद है।

इसके शेष गुणधर्म व प्रयोग प्रस्तुत प्रसंग के पोहकर मूल जैसे ही हैं।

नोट नं० ३—केशर कुल (Iridaceae) की ईरसा (Irls Germanica) नामक बूटी को डा० देसाई आदि ने पोहकर माना है। उनका कथन है कि बम्बई के बाजार में आइरिस रूट (Orris root) नाम से अधिकतर इसी के मूल बिकते हैं, जो उसी जाति का है। तथा गुणों की दृष्टि से इसके गुण कूठ से मिलते जुलते होने से पोहकर मूल के स्थान पर इसीका ग्रहण करना उचित है, इत्यादि। इसे लेटिन में Irls florentla, I. Verslcolor, I. Pallida भी कहते हैं।

इसका विस्तृत विवरण वनौषधि विशेषांक भाग १ के ईरसा प्रकरण में देखिये।

नोट नं० ४—कोई २ अकरकरा के १ भेद उकरा (Spilanthes Oleracea) को ही पोकर मूल मानते हैं। यह भृंगराज कुल की होते हुए भी वास्तविक पोहकर मूल से भिन्न है। इसका विवरण वनौषधि विशेषांक भाग १ के अकरकरा के प्रकरण में देखिये।

नोट नं० ५—बाजार में पोहकरमूल के नाम से इसी ही जाति के पौधे इन्यूला रायलीना (Inula Royleana) की श्वेताभ-पीतवर्ण की चिकनी मोटी सी जड़ें, जो प्रायः रूपरंग में पोहकरमूल जैसी ही किंतु कम गुणान्वित होती हैं अथवा पोहकर मूल के ऊपरी काण्ड के टुकड़े या कूठ के ऊपरी काण्ड के टुकड़े पंसारी लोग देदिया करते हैं। यहां तक तो खैर है, कुछ न कुछ लाभ करते ही हैं। किन्तु इसके स्थान में कहीं एरण्डमूल, कहीं कमलनाल के मूल टुकड़े, कहीं श्योनाक या टेटूमूल के टुकड़े, कहीं केवड़े की जड़, कहीं कुलिजन आदि का देना तथा वैद्यों का आंखें बन्द करके लेना और प्रयोग में लाना अनर्थकारी है। अतः इसे अच्छी तरह परीक्षा कर के ही लेना चाहिये।

प्रस्तुत प्रसंग के पोहकरमूल के नाम, गुणधर्मादि—

नाम—

सं०—पुष्करमूल, काश्मीर (कश्मीर में होने वाला) पौकर, पुष्कर, इ०। हि०—पोहकरमूल, पोखरमूल। म०—पुष्करमूल। बं०—पुष्कर मूल। गु०-पोकरमूल। ले०—इन्युला रेसिमोसा, इन्यूला हेलेनियम (Inula Helenium)।

रासायनिक संगठन—

मूल में एक शर्करा प्रधान (Polysaccharide) श्वेतसाररूप कर्पूर जैसा इन्यूलिन (Inulin) नामक द्रव्य (जो सुगंधित एवं कफनिःसारक होता है), तथा एक उड़नशील तैल, एक चरपरा, कड़ुवा, एवं दाहक राल जैसा पदार्थ, एवं बेंजाईक एसिड मोम आदि पाये जाते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, तीक्ष्ण, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, कटु विपाक, कफवात नाशक, पाचन, अनुलोमन, रोचक, हृद्य, रक्तशोधक, कफघ्न, जंतुघ्न, पूतिहर, शोथहर, वेदना स्थापन, आमपाचन, मूत्रल, बाजीकरण, स्वेदल, त्वग्दोषहर

Scanned with CamScanner

पौष्टिक, व्रणरोपक, ज्वरघ्न, विषघ्न, तथा जीर्ण कास, श्वास, हिक्का, पार्श्वशूल, फुफ्फुसावरण शोथ, अग्निमांद्य, अजीर्ण, आध्मानादि उदर विकार, हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, क्षय, वातविकार, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, कष्टार्त्तव, प्रतिश्याय, सामान्य दौर्बल्य, पांडु आदि में प्रयुक्त होता है। यह मस्तिष्क, नाड़ी, वृक्क तथा गर्भाशय के लिये उत्तेजक है।

शीतप्रकोप जन्य, या आम विषजन्य सर्व प्रकार के वातरोग इसके सेवन से दूर होते हैं। कण्डु प्रधान चर्म-रोग को इसके क्वाथ से धोते हैं। पामा, एग्झीमा, दाद आदि पर इसे गोमूत्र में घिसकर लेप करते हैं। क्षय कीटाणुजन्यव्रण जो बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है। प्रदाह नहीं होता उसका शोधन व रोपण इसके द्वारा सिद्ध तैल से होता है। इसे पान के बीड़े के साथ या इसके चूर्ण को पान के रस के साथ सेवन से पसली का दर्द, अदरख के रस के साथ चाटने से कफ की खांसी तथा शहद के साथ लेने से आमातिसार दूर होता है।

हृच्छूल, श्वास कास, क्षय, और हिक्का पर इसके चूर्ण (१—१½ मा०) को शहद के साथ सेवन से लाभ होता है। हृद्रोग पर भी यह लाभ करता है, निर्बलता दूर होती है। —भै० र०।

इस प्रयोग को २१ दिन तक पथ्य पूर्वक सेवन करने से शरीर की दुर्गन्ध भी दूर होती है। क्षयज व्रणों पर इसके चूर्ण को बुरकते तथा लेप भी करते हैं। छोटे व्रणों फोड़े, फुंसियों में इसके लेप से लाभ होता है। दूषित व्रण या कृमियुक्त व्रणों को इसके क्वाथ से प्रक्षालन करने से कृमि नष्ट होकर व्रण शीघ्र भरने लगता है। वेदना-युक्त शोथ, तथा पार्श्वशूल में इसके लेप से शोथ तथा पीड़ा कम हो जाती है। केश तैलों को सुगंधित करने के लिए इसका व्यवहार करते हैं।

दंतशूल तथा दांत हिलने पर इसके चूर्ण का मंजन करते तथा इसके टुकड़े को मुख में रखकर चूसते हैं। इससे मुख दुर्गन्ध तथा स्वरभंग में भी लाभ होता है। इसका मुरब्बा बनाकर सेवन से क्षुधावृद्धि होती एवं अरुचि दूर होती है।

(१) श्वास, कास और हिक्का पर—इसका चूर्ण तथा कपूर व आंवले का चूर्ण समभाग एकत्र कर शहद के साथ थोड़ा-थोड़ा दिन में ३-४ बार चटाने से कफ सरलता से निकल कर श्वास वेग शमन होता है तथा कास में भी लाभ होता है। अथवा—

इसके चूर्ण में पिप्पली चूर्ण मिला शहद के साथ चटाने से कफ निकल जाता है, व्याकुलता दूर होती, श्वास में लाभ होता तथा क्षुधा बढ़ती है। अथवा—

इसके तीन माशे चूर्ण में आधा रत्ती रससिन्दूर मिला शहद से चटाने से श्वास में विशेष लाभ होता है।

अथवा—इसके चूर्ण में समभाग सितोपलादि चूर्ण मिला कर थोड़ा-थोड़ा बार-बार शहद के साथ चटाने से श्वास में तथा जीर्ण कास में लाभ होता है।

हिक्का पर—इसके चूर्ण में चौथाई भाग देशी शुद्ध कपूर मिलाकर २ माशा तक की मात्रा में शहद के साथ चटाने से प्रबल हिचकी दूर होती हैं। अथवा—

इसके चूर्ण के साथ समभाग काली मिर्च का चूर्ण व ½ भाग जवाखार चूर्ण मिलाकर गरम जल के साथ (मात्रा ३ माशे तक) देने से हिक्का में तथा श्वास में भी लाभ होता है।

कास एवं कफज रोग पर—इसके चूर्ण के समभाग त्रिकटु, काकड़ासिंगी, कायफल, धमासा व कलौंजी का चूर्ण एकत्र मिला (३ मा० तक की मात्रा में) शहद से चटाने से लाभ होता है। —भा० प्र०।

(२) पार्श्वशूल पर—पुष्करमूल और लघुपंचमूल का बनाया हुआ क्षीर-पाक इसकी अव्यर्थ महौषधि है। यदि मुलैठी, अडूसा व भारंगी का योग साथ ही कर बकरी के दूध से सेवन किया जावे तो क्षय कास नष्ट हो जाता है। — बृ. दर्पण।

अथवा—इसका चूर्ण शहद के साथ दिन में ३ बार सेवन करावें तथा शूल स्थान पर गरम घृत या गरम तैल में रुई की पोटली डुबो डुबो कर १० से २० मिनिट तक ३ बार सेंक करते रहने से पार्श्वशूल में लाभ होता है।

(३) उदर शूल, वृक्कशूल तथा उदर दाह पर—इसके चूर्ण में आधा भाग सेंधानमक तथा ½ भाग भुनी

Scanned with CamScanner

हुई हींग मिलाकर ३ माशा तक की मात्रा में उष्ण जल से पिलाने पर उदरशूल तथा वृक्कशूल में भी लाभ होता है। अथवा—

इसके साथ बच, सोंठ व कचूर समभाग जौकुट कर अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर उसमें थोड़ा जवाखार मिला, सुखोष्ण पिलाने से उदर की कर्त्तनवत् पीड़ा शमन होजाती है। —गां. औ. र.।

उदर दाह पर—इसके साथ एरण्डमूल, इन्द्रजौ और धमासा मिला क्वाथ कर पिलाने से गुल्म के कारण होने वाली पीड़ा, उदर दाह, कोष्ठदाह दूर होता है। —वा. भ. चि. अ. १४।

(४) हृदय रोग—पोहकर मूल, बिजौरे की जड़ की छाल, सोंठ, कचूर व हरड़ समभाग पीसकर कल्ककर उसमें जवाखार, अनार का रस, घृत अथवा सेंधानमक मिलाकर सेवन से वातज हृद्रोग दूर होता है। (कल्क की मात्रा २ माशा) यह विकर्त्तिका (Colic) उदर की कर्तनवत् पीड़ा को भी नष्ट करता है। —च. चि. अ. २६।

नोट—पाठ में अम्ल शब्द होने से खट्टे अनार आदि का रस या कांजी ले सकते हैं।

अथवा—पोहकरमूल, बिजौरे की जड़ की छाल, ढाक की छाल, करंजुवा (पूतिक का अर्थ करंज है कहीं भूतीक पाठ है, जिसका अर्थ गंध तृण है) की छाल, कचूर और देवदारु, मिलित १ तो. क्वाथार्थ जल ३२ तो. अवशिष्ट क्वाथ ८ तोले छानकर उसमें सौंठ, कालाजीरा, बच, अजवायन, जौखार व सेंधानमक इनका प्रक्षेप ४-४ रत्ती देकर गरम-गरम पिलाने से हृद्रोग नष्ट होता है। —च. चि. अ. २६।

कफ प्रधान हृद्रोग, कास, श्वास में—पोहकरमूल, सौंठ कायफल, भारंगी और पिप्पली का क्वाथ लाभ करता है। —यो. र.।

अथवा—पोहकरमूल, हरड़, सौंठ, कचूर, रास्ना, बच व पिप्पली इनका चूर्ण सुखोष्ण जल के साथ पिलावें।

(५) सन्धिशूल तथा शोथ पर—इसके चूर्ण के साथ समभाग असगंध व चोपचीनी का चूर्ण मिला १ मा. की मात्रा में शहद के साथ सेवन करते रहने से कटि व तीव्र सन्धिशूल तथा शोथ दूर होता है।

इसका चूर्ण, पुनर्नवा, हरड़, दारुहल्दी व सौंठ समभाग उचित मात्रा में गोमूत्र के साथ सेवन से प्रबल शोथ रोग दूर होता है तथा गुर्दे के विकार नष्ट होते हैं। —वृ. दांप।

(६) अपतानक (आक्षेपक वातरोग का एक भेद Tetanus) पर—पोहकरमूल, तुम्बरु (नेपाली धनिया, कबाबा), हरड़, भुनी हींग, सेंधानमक व कालानमक इनका चूर्ण जौ के यूष के साथ दिन में ३ बार पिलाने से मांसपेशियों का आक्षेप एवं कफ प्रधान अपतानक रोग शमन हो जाता है। —गां. औ. र.।

(७) ज्वर—पोहकरमूल, कटेरी की जड़, चिरायता, कुटकी, सौंठ व गिलोय सबको समभाग लेकर अवस्थानुसार मात्रा कल्पना कर क्वाथकर शहद मिला पिलाने से ८ प्रकार के ज्वर, साम, निराम सभी ठीक होते हैं।

कफज्वर में—पोहकरमूल, तुलसीपत्र, छोटी पिप्पली १-१ तो० तथा करंज की गूदी ६ माशा एकत्र महीन पीस कर शहद के साथ बलाबल देखकर देने से शीघ्र लाभ होता है। —वृ. दांप।

कफ वातज एवं सन्निपात ज्वर में—पोहकर मूल, कटेरी मूल, सोंठ व गिलोय समभाग लेकर क्वाथ (अष्टमांश) सिद्धकर दिन में २ या ३ बार पिलाने से लाभ होता है। इससे कास, श्वास, अरुचि व पार्श्वशूल भी दूर होता है—(शा. सं., तथा चक्रदत्तादि ग्रन्थों का यह क्षुद्रादि क्वाथ है)।

अत्यधिक प्रस्वेद को रोकने के लिए पोहकरमूल के चूर्ण की मालिश की जाती है।

(८) बाल रोगों पर—बालक के कास रोग पर—पोहकर मूल, अतीस, काकड़ासिंगी, पिप्पली व धमासा समभाग का चूर्ण शहद के साथ चटाने से पांच प्रकार की खांसी नष्ट होती है। (मात्रा-१ वर्ष के बालक को १ रत्ती देवें)। —ग. नि.।

पोहकरमूल और अतीस का चूर्ण, उचित मात्रा में शहद के साथ या माता के दूध के साथ देने से बच्चों का ज्वर, श्वास, निमोनिया, पसली का पीड़ा आदि ठीक होते हैं।

पोहकरमूल, जावित्री व भुनी हींग की घुटी माता के

Scanned with CamScanner

दूध के साथ पिलाने से जमोघा रोग दूर होता है।

अथवा—पोहकरमूल के चूर्ण को केवल शहद के साथ देते रहने से बालक की सर्व प्रकार की बीमारी दूर होती है, फुफ्फुस पुष्ट होता है। —वृ० द०।

कृमि विकार पर—पोहकर मूल और सेंहजना के बीजों का चूर्ण शहद के साथ चटाते हैं।

बालक के कफप्रकोप में पोहकर मूल का फाण्ट शहद मिलाकर पिलाते हैं।

नोट–मूल का चूर्ण१ से ३ माशा तक बालकों के लिए १ से १० रत्ती। पित्तप्रकृति वालों को इसका अधिक मात्रा में सेवन हानिकर है। हानि निवारक—शहद, गुलकन्द, अनीसून आदि हैं।

इसका प्रतिनिधि—कूठ माना गया है।

विशिष्ट योग–

पुष्करमूलासव (क्षय, अपस्मार आदि नाशक)–पोहकर मूल ५ सेर, धमासा ३½ सेर, धनियां १½ सेर, सौंठ, मिर्च पिप्पली (त्रिकटु) तीनों एकत्र १ सेर तथा मजीठ, कूठ, कालीमिर्च, चव्य, देवदारु, वायविडंग, वच, सोंफ, पीपलामूल, नाग, भंगरैया के फूल, रास्ना, भारंगी व सोंठ प्रत्येक ८ तोले सबको कूटकर १ मन १२ सेर जल में पकावें। १३ सेर शेष रहने पर छानकर ठंडा होने पर शुद्ध मृत्तिका पात्र में भर उसमें १५ सेर गुड़, १ सेर धाय के फूलों का चूर्ण तथा कालीमिर्च, नागकेशर, निसोथ, इलायची, दालचीनी व तेजपात का चूर्ण ४-४ तोले और पिप्पली का चूर्ण १६ तोले मिला पात्र का मुख बन्दकर १ मास तक सुरक्षित रखें। फिर छानकर बोतलों में भर लेवें।

मात्रा–१ से ४ तो. तक सेवन से क्षय, अपस्मार, कास, रक्तदोष, शोथ, गुल्म तथा भगन्दर में लाभ होता है। —ग० नि०।

नोट—आसवारिष्ट के शेष प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह ग्रन्थ में देखिये।

प्याज (Allium Cepa)

हरीतक्यादि वर्ग एवं रसोन कुल (Liliaceae) के सुप्रसिद्ध इसके क्षुप २-३ फुट ऊंचे, पत्र-स्थूल, गोलाकार हरित वर्ण के लम्बे पुष्प पत्तों के मध्य भाग से निकली हरी, ३ फुट तक लम्बी शलाका (पुष्पदण्ड) के अग्रभाग पर (गुम्बज के आकार के) गुच्छों में छोटे-छोटे श्वेत आते हैं। इसी गुच्छ में इसके बीज त्रिकोणाकार काले रंग के होते हैं। नीचे मूल में गोलाकार कन्द होते हैं, जिन्हें प्याज कहते हैं। शीत काल में एवं शीत काल के अन्त में यह पुष्पित तथा बीज युक्त होता है। कुछ लोग इसके बीजों को कलोंजी मानते हैं। किंतु कलोंजी इससे भिन्न है। पीछे भा. २ में कलोंजी देखें। इसका आदि जन्म स्थान मध्य एशिया है। यहीं से यह चारों ओर फैल गया तथा अब संसार के प्रायः समस्त शीतोष्ण देशों में इसकी खेती होती है। भारत में भी यह सर्वत्र रोपा या बोया जाता है। दक्षिण भारत तथा बंगाल में वर्षा ऋतु के बाद इसके कन्द बोये जाते हैं। उत्तर भारत में प्रायः इसके बीज बोये जाते हैं।

नोट नं० १—इसकी कई जातियां हैं उनके आकार, रंग गंध, स्वाद आदि में भी भिन्नता होती है। अधिकांश जातियों के प्याज का आकार गोल एवं अण्डे जैसा होता है। कभी-कभी चपटे आकार का भी प्याज देखा जाता हैं। रंग में साधारणतः श्वेत, लाल, भूरे और पीले भी होते हैं। लाल और श्वेत रंग वाले प्याज विशेष पाये जाते है। बड़े और छोटे आकार भेद से इसके दो प्रकार हैं। बड़े और छोटे आकार वाले क्षीर पलाण्डु (पटना प्याज, पटनिहिया प्याज); छोटे श्वेत कन्द को घोड़ प्याज, तथा लाल रंग के बड़े और छोटे को राजपलाण्डु कहते हैं। औषधि कार्यार्थ प्रायः श्वेत प्याज विशेष प्रशस्त माना जाता है। बड़े प्याज की अपेक्षा छोटे प्याज में सी विटामिन कुछ अधिक प्रमाण में होता है।

गंध या दुर्गन्ध तो न्यूनाधिक प्रमाण में सभी जातियों की प्याज़ में रहती है किन्तु श्वेत बड़े प्याज में यह गंध कम प्रमाण में होती है, तथा गुण धर्म में भी लाल की अपेक्षा यह सौम्य होता है। परिपक्व प्याज की अपेक्षा कोमल

Scanned with CamScanner

प्याज में गंध कम होती है। अमेरिका के कृषि विशारदों ने एक गन्ध रहित प्याज की उत्पत्ति की है, जो अधिक प्रमाण में वहां रोपा या बोया जाता है। इसे वहां 'ग्रेनेक्स' कहते हैं। इसके खाने वाले के मुख से या श्वास से गन्ध बिलकुल नहीं आती। किन्तु यह खाने के ही काम में आता है औषधि कार्य में नहीं।

कच्चे प्याज की अपेक्षा पकाया हुआ अधिकांश में गन्ध रहित हो जाता है तथा कम उत्तेजक होता है। यदि प्याज को गरम बालू से ढ़क कर भूना जाय तो गन्ध और भी बहुत कम हो जाती है किंतु पकाये हुये या भूने हुए प्याज का सी विटामिन १० से ६५% कम हो जाता है तथा वह अति पित्तवर्धक हो जाता है।

यद्यपि कच्चा प्याज विशेष उग्रगंधी होता है तथापि वह परिपक्व या भूने हुये की अपेक्षा अधिक कृमिनाशक (Antiseptic) एवं शक्ति शाली होता है। डा० नाड़-कर्णी का कथन है कि कच्चे प्याज को अच्छी तरह कतर कर उसमें नीबू रस काली या लाल मिर्च नमक आदि सुरुचि पूर्ण मिला कर खाना शरीर के लिये विशेष लाभ-प्रद है,इससेइसका अधिक सेअधिक रस एवं व्हिटामिन्स की प्राप्ति होती है। प्याज को कतर कर थोड़ी देर छाछ में भिगो व धोकर पकाई जाय तो दुर्गन्ध नहीं आती तथा 'सी' व्हिटामिन भी नष्ट नहीं होता।

प्याज का उपयोग प्राचीन काल से औषधि तथा आहारार्थ द्रव्य रूप से होता आरहा है। चरक और सुश्रुत के सूत्र स्थानों में इसके गुण धर्म का उल्लेख है। तथा हारीत संहिता में (प्रथम स्थान अ. १६ व २३ में) 'पलाण्डु वात कफापहा' 'पलाण्डु शूल गुल्मनुत्' इत्यादि कहा गया है रक्त, पित्त, रक्तस्राव, निर्बलता आदि रोगों की चिकित्सा में चरक ने (चि. स्था. अ. १४, ४, १७, आदि में) इसका उपयोग दर्शाया है। प्याज में दुर्गन्ध, तथा कामोत्तेजक एवं रजोगुण वर्धक गुणों के कारण मनुस्मृति आदि स्मृति ग्रन्थों में प्याज का आहार रूप में उपयोग निषिद्ध किया गया है। किंतु आधुनिक कतिपय वैज्ञानिक प्रमाणों से एवं प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध हुआ है कि यह एक महान उपयोगी खाद्य द्रव्य है। 'अतिसर्वत्र वर्जयेत्' इस न्याय से इसका अत्यधिक सेवन ही अनर्थकारी होता है।
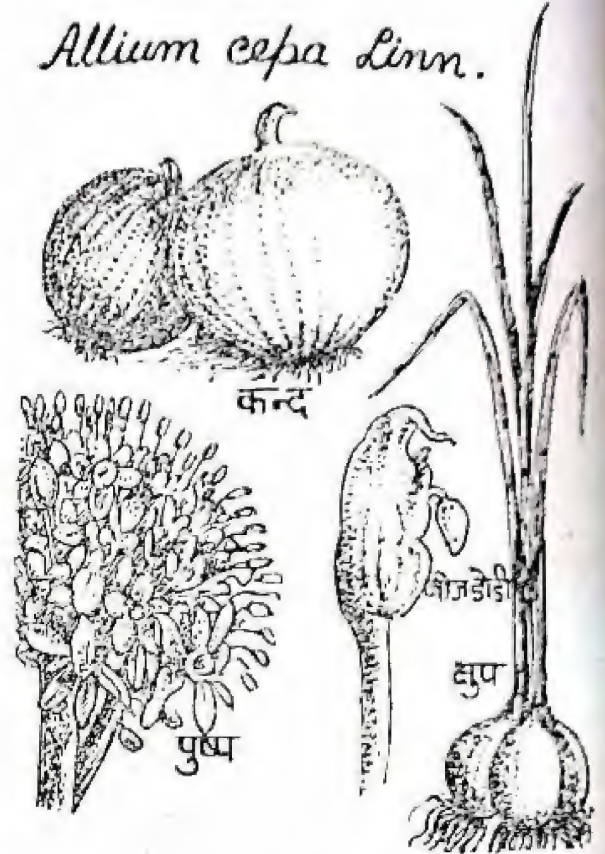
इसके अधिक व्यवहार से स्नायुविक उत्तेजना एवं अस्वा-स्थ्यकर कामोद्वेग उत्पन्न हो सकता है।

आहार के लिए खरीदते समय विशेष रूप से ध्यान रहे कि प्याज का वर्ण उज्ज्वल हो, वह ताजा हो तथा उसका सभी अंश समान रूप में गोल हो। साधारण ताप-क्रम में दीर्घ समय तक पड़ा रहने से इसका सी विटा-मिन ४७ से ८०% तक घट जा सकता है तथापि साधा-रणतः यह बहुत दिनों तक अच्छा बना रहता है। यातायात में अधिक असावधानी से भी इसकी कोई विशेष क्षति नहीं होती। इसीलिये व्यापार में यह एक प्रयोज-नीय सामग्री मानी जाती है।

नोट नं० २—जङ्गली प्याज इसकी ही जाति का है। इसका सचित्र वर्णन पीछे भाग ३ में देखिये।

नोट नं० ३—प्याज के ही कुल के एक कन्द (Allium Porrum) नामक ऊंचे, कड़े, द्विवार्षिक (दो-दो

वर्ष बाद पैदा होने वाले) पौधे के पत्र चौड़े । कन्द–अण्डाकार, पतले, प्रस्तुत प्रसंग के प्याज से कुछ मिलते जुलते किंतु उससे आकार में बहुत बड़े होते हैं ।

यह पश्चिम एशिया तथा यूरोप का मूल निवासी है । भारत और सीलोन के ऊंचे, पहाड़ी स्थानों में विशेषतः बाग-बगीचों में यह बोया जाता है ।

इसके कंदों की प्याज के सदृश ही शाक बनाई जाती है तथा शाक-दाल आदि व्यञ्जनों में स्वाद के लिए यह डाला जाता है । स्वाद में यह प्याज जैसा ही होता है ।

नाम—

पारू (यह बंगला नाम है) । अंग्रेजी में–विण्टर (Winter leech) । लेटिन में—एलियम पोरम (Alium porrum) कहते हैं ।

रासायनिक संगठन—

जलांश ७८.६%, प्रोटीन १.८%, स्निग्धता ०.१% कार्बोहाईड्रेटस १७.२%, केल्शियम ०.०५%, फासफर ०.०७% । लोहा—२-३ मि० ग्रा० प्रतिशत ग्राम; सी. विटामिन ११ मि० ग्रा० होती है तथा गन्धक ०.०६ से ०.०७२% तक पाई जाती है ।

गुणधर्म व प्रयोग—

प्याज की अपेक्षा अधिक मधुर, मृदु उत्तेजक, कफ-निःसारक, मूत्रल, व्रण रोपण है ।

इसका रस वृक्क को उत्तेजित करता तथा मूत्राशय की अश्मरी को निकाल देता है । बालतोड़ या फोड़ों को पकाने के लिये कंद की पुल्टिस बनाकर बांधते हैं । हाथ या पैरों की पाददारी (बिवाई) पर इसके कंद रस में मक्खन मिलाकर लगाते हैं, उत्तम लाभ होता है ।

नोट नं० ४—प्याज की ही जाति के एक पियाजी, प्याजी (Asphodellus Tenuifollius) नामक वर्ष जीवी पौधे होते हैं । इसके पत्र १५-३० सें. मी. तक लम्बे तथा २.५-३ मि. मी. तक चौड़े; पुष्प श्वेत वर्ण के होते हैं ।

ये पौधे भारत में प्रायः खेतों में विशेष पाये जाते हैं ।

नाम—

हिन्दी—प्याजी, बोकट, बिधर बीज इत्यादि । गु.—डुंगरी । लेटिन—एस्फोडेल्युस टिनुईफोलियस; ए० फिस्टुलोसस (Asphodellus Fistulosus)

गुणधर्म व प्रयोग—

इसके बीज मूत्रल हैं । व्रण, घाव एवं शोथ पर इसका लेप किया जाता है ।

नोट नं० ५—प्याज, करकर, लेजमा नामक केसर कुल (Iridaceae) की और एक वनस्पति (Iris Kumaonensis) होती है । इसके पत्र १०-३५ सें० मी० तक लम्बे तथा ८ मि० मी० तक चौड़े होते हैं । जड़ का कन्द मोटा एवं जमीन के नीचे फैलने वाला होता है ।

यह पश्चिम हिमालय में काश्मीर से कुमाऊं तक ८ हजार फुट की ऊंचाई पर पाई जाती है ।

इसके पत्र तथा जड़, कन्द ज्वर नाशक हैं ।

प्रस्तुत प्रसंग के प्याज के नाम, गुण धर्मादि–

नाम–

सं०—पलाण्डु (पलति रक्षति शरीरं रोगेभ्य इति जो रोगों से शरीर की रक्षा करता है), यवनेष्ट, दुर्गंध (उग्र गंध वाला), मुख दूषक । हिन्दी—प्याज, पियाज, गंडा, कांदा । मराठी—कांदा । गुजराती—डुंगली, डुंगरी, कांदो । बंगला—पेंयाज । अं०—बल्ब ओनियन (Bulb Onion) । लेटिन—ऐलियम सेपा ।

रासायनिक संगठन–

बड़े प्याज में—जल ८६%; प्रोटीन १.२%; वसा (स्निग्धता) ०.१%; खनिज पदार्थ ०.४%; कार्बोहाईड्रेट ११.६%; कैलशियम ०.१८%; फासफोरस ०.०५%; लोहा ०.७ मि. ग्रा. प्रति१०० ग्राम; विटामिन बी¹ ४० इ. यू. १०० ग्राम; विटामिन सी ११ मि. ग्राम प्रति १०० ग्राम तथा प्रति २॥ तो. १४ मि. ग्राम केलोरियां प्राप्त होती हैं ।

छोटे प्याज में—जल ८४.३%; प्रोटीन १.८%; वसा ०.१%; खनिज पदार्थ ०.३%; कार्बोहाइड्रेट १३.२%; केलशियम ०.०४%; फासफर ०.०६%;
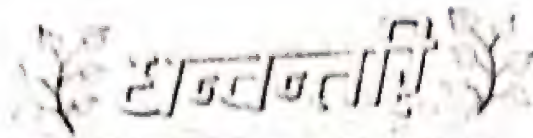
Scanned with CamScanner

लोह १.२ मि. ग्रा. प्रति १०० ग्राम; विटामिन ए २४ इ. यू. प्रति १०० ग्राम; विटामिन बी. १ ८ यू. ४० प्रति १०० ग्राम तथा विटामिन सी. ११ मि. ग्राम प्रति १०० ग्राम।

प्याज के कन्द में—जल ८७.६%; प्रोटीन ०.६%; वसा ०.२%; खनिज पदार्थ ०.८%; कार्बोहाइड्रेट ८.६%; कैल्शियम ०.०४%; फास्फर ०.०५%; लोह ०.५ मि. ग्राम प्रति १०० ग्राम होता है। प्रति १०० तोला में ५२ मि. ग्राम कैलोरियां प्राप्त होती हैं। इसके विटामिनों की ठीक जांच अभी तक नहीं हो सकी है। संक्षेप में कहा जाता है कि प्याज में कटु, उग्रगंधि, उड़नशील तैल, गंधक के सेन्द्रिय योग; बाह्यत्वक् में क्वर्सेटिन (Quercetin) नामक पीत रंजक द्रव्य; कंद में—श्वेतक्षार, शर्करा, पिच्छिल द्रव्य, केल्शियम साइट्रेट तथा क्षार ३% होते हैं। इसमें सिलापिक्रिन (Scillapicrine) सिलामेरिन (Scillamarine) एवं सिलिनाइन (Scillinine) ये तीन कार्यकारी तत्व होते हैं। बीज में एक रंगरहित स्वच्छ तैल पाया जाता है, जो औषधि कार्य में आता है।

प्रयोज्यांग—कन्द और बीज।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, मधुर, विपाक में मधुर, अनुष्ण (किंचित उष्ण वीर्य) वात-शामक, दीपन, रोचन, अनुलोमन किंचित कफ पित्त वर्धक, मूत्रल, यकृदुत्तेजक, आध्मानकारक, वेदनास्थापन, शोथहर, लेखन, व्रण शोथ पाचन, रजः स्थापनीय, त्वग्दोषहर, अमेध्य (मन के रज एवं तम गुणों को बढ़ाने के कारण), रक्तवह संस्थान उत्तेजक, स्तंभक, छेदन, कफनिःसारक (अल्प मात्रा में देने से), शुक्रजनन, वाजीकरण, आर्त्तवजनन, ओजवर्धक, दूषित पित्त निःसारक, संभोग शक्तिवर्धन, कण्डुघ्न तथा वात व्याधि (नाड़ीशूल, गृध्रसी, संधिवात, आक्षेपक) योषापस्मार, जलसंत्रास, अग्निमांद्य, विबन्ध, अर्श, कामला, गुदभ्रंश, दुर्दौर्बल्य, रक्तस्राव, कास, मासिक मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदौर्बल्य, क्लैब्य, रक्तकृच्छ्र, विसूचिका आदि पर प्रयुक्त होता है।

मेदः—प्याज शारीरिक गठन एवं सौन्दर्य वृद्धि में विशेष उपयोगी है। यह शरीर में रक्त की वृद्धि करता तथा विशेषतः स्त्री के सौन्दर्य को निखारता या विकसित करता है। शोढ़ल ने अपने ग्रंथ निघण्टु ग्रन्थ में प्याज के इस गुण की खूब अतिशयोक्ति की है।[१] उनका कथन है कि शक जाति की स्त्रियों का अनुपम एवं उज्ज्वल सौन्दर्य तथा शारीरिक गठन का निमार्ण प्याज के सेवन से ही हुआ।

क्षीर पलाण्डु (श्वेत प्याज)—गुरु, मधुर, पिच्छिल, स्निग्ध, रुचिकारक, धातुओं को स्थिर करने वाला, बल, बुद्धिवर्द्धक, कफकारक, शरीरपुष्टिकर, रक्तपित्त में हितकर है।

लाल प्याज (राजपलाण्डु)—गुरु तीक्ष्ण शीतल, पित्त नाशक, कफ निःसारक, दीपन, अतिनिद्राकर, वृष्य, स्निग्ध, है। नाड़ीशूल, व्रणशोथ में प्याज का कल्क गरम कर बांधते हैं। किलास, व्यङ्ग, न्यच्छ आदि मुख या चेहरे के विकारों में इसका स्वरस या कल्क का लेप उद्वर्तन करते हैं। वात पीड़ा, उदर शूल, आध्मान में प्याज के स्वरस में हींग व काला नमक मिला पिलाते हैं। नकसीर (नासिका से रक्तस्राव) में रस को सुंघाते या नस्य देते हैं। इसमें हारीत संहिताकार प्याज के पत्र स्वरस की नस्य का विधान करते हैं। अनिद्रा या निद्रानाश पर कच्चे प्याज को खिलाने अथवा तेज गन्ध वाले प्याज को रोगी की गर्दन के पीछे बांधते हैं। सिर दर्द में प्याज को महीन पीसकर पैरों के तलुओं पर लेप करते हैं। उदर पीड़ा में इसे भूभल में गरम कर कुचलकर रस निचोड़ उसमें थोड़ा काला नमक मिला पिलाते हैं।

मूत्रदाह या पेशाब की जलन पर—प्याज ६ माशा

१ यदुपयोगेन शकांगनानां लावण्य सारादि विनिर्मितानाम् ।
कपोलकान्त्या विजितः शशांको रसातलं गच्छति निर्विषण्णः ॥
स्निग्धाङ्गत्वं गौरता कान्तिमत्ता वन्हेर्दीप्तिश्चर्म शुद्धिवृषत्वम् ।
संप्राप्यन्ते यंत्रणोद्वेग युक्तै र्यस्याभ्यासाद्दीर्घमायुः सुखंच ॥ इत्यादि

Scanned with CamScanner

को आधा सेर जल में पका आधा जल शेष रहने पर छान कर ठंडा होने पर पिलाते हैं । गलौघ (खुनाक) में—इसे खूब पीसकर गले पर लेप करते हैं । तमाखू के विष पर या जो तमाखू नहीं खाता है उसे धोखे से पान के बीड़े में तमाखू खिला देने से जो घबड़ाहट, बेचैनी, कै आदि होती है उसके निवारणार्थ प्याज का रस १ या २ चम्मच पिला देने से शीघ्र लाभ होता है । अजीर्ण, अग्निमांद्य, प्लीहा-वृद्धि, तथा पीलिया रोग में इसे सिरके के साथ पकाकर खिलाते हैं । कोष्ठबद्धता में अनुलोमन के लिए मामूली आकार के ३ कन्दों को एक मुट्ठी भर इमली के कोमल पत्तों के साथ पीसकर चटनी बना खिलाते हैं । खुजली पर इसे शराब में पीसकर लगाते हैं ।

आमवातादि संधि विकार तथा अन्य दाह, कण्डू आदि चर्मरोगों में इसके रस को सरसों के तैल में मिलाकर मालिश करते हैं । मसूढ़ों की सूजन तथा शूल में इसे नमक के साथ चबाते हैं ।

बच्चों तथा वृद्धों के ज्वररहित कफ विकारों में यह विशेष लाभदायक है । बच्चों को कच्चे प्याज के रस में मिश्री मिलाकर कुछ गरम कर चटाते हैं तथा वृद्धों को या माताओं को इसे पकाकर देते हैं ।

डा. देसाई के मतानुसार प्याज का आनुलोमिक धर्म बहुत विश्वसनीय है । कफनिःसारणार्थ यह एक उत्तम वस्तु है। इससे कफ पतला होता है, घबराहट की कमी होती एवं नूतन कफोत्पत्ति कम होती है। इसकी यह क्रिया उस समय होती है जब इसके अन्दर रहने वाला तेल फुफ्फुस के मार्ग से बाहर निकलता है । चर्मछिद्रों से बाहर निकलते समय यह त्वचा की विनिमय क्रिया को सुधार देता है ।

इससे शरीर में वात की कमी होती, पित्त बाहर निकल जाता एवं कफ का नाश होता है । छोटे बच्चों और उनकी माताओं को होने वाले कफ विकारों में इसके प्रयोग से कफ पतला होकर निकल जाता तथा घबराहट कम हो जाती है । तरुण मनुष्यों के जीर्ण कफ रोगों में जिस प्रकार गूगल लाभ करता है वैसे ही बच्चों की मातओं के कफ रोगों में प्याज लाभकारक है । श्वास में इसके सेवन से लाभ होता है । आंत की क्रिया शक्ति को बढ़ाकर दस्त साफ लाने में और अर्श रोग एवं गुदभ्रंश में भी यह लाभदायक है । पित्त के दोषों में इसके सेवन से दूषित पित्त दस्त की राह बाहर निकल जाता है तथा उसके स्थान में नवीन, शुद्ध पित्त पैदा होता है ।

चर्म रोगों में इसका रस [illegible] [illegible] की अपेक्षा विशेष गुणकारी सिद्ध हुआ है । ग्रन्थि, फोड़े फुन्सी, यौवनपिटिका, नारू, कण्ठमाला आदि रोगों पर इसे घृत में तलकर बांधने से अथवा इसके रस को लगाने से अच्छा लाभ होता है ।

प्याज की गांठ में जो चरपरा, कड़वा, उड़नशील तैल पाया जाता है वह उत्तेजक, मूत्रल तथा कफ निस्सारक होता है । यह ज्वर, जलोदर, जुकाम और पुराने ब्रोंकाइ-टीज में उपयोगी है, कालिक उदरशूल तथा स्कर्वीरोग में भी यह लाभदायक है । बाहरी उपयोग में यह एक चर्म-दाहक पदार्थ का काम करता है जबकि प्याज को भूनकर पुल्टिस के रूप में बांधते हैं। वात पीड़ा में भी यह उपयोगी माना है। प्याज में कामोत्तेजक धर्म भी पाया जाता है। इसे कच्चा खाने से यह ऋतुस्राव नियामक भी है । जहरीले कीटक दंश पर इसका रस मसलने से उसकी जलन मिट जाती है ।

(१) कर्ण विकार पर—कर्णशूल हो तो श्वेत प्याज को चूल्हे की राख में पकाकर छीलकर उसके मध्यभाग को सुखोष्ण कान में रखने से अथवा गरम प्याज को कुचलकर निचोड़कर निकाला हुआ रस या रस को गरम कर डालने से लाभ होता है । यदि इसके साथ सिरका, अर्क गुलाब व गधे की लीद का पानी समभाग मिश्रितकर गुनगुना कर प्रयोग में लावें तो शीघ्र ही लाभ होगा । सिरका आदि के अभाव में केवल प्याज का रस ही गुन-गुनाकर कान में डालने से लाभ होता है। अथवा इसके रस में थोड़ी अफीम मिला गुनगुना कर कुछ बूंदें कान में टप-काने से तत्काल पीड़ा शांत हो जावेगी ।

—ह० मौ० म० अब्दुल्ला ।

जीर्ण कर्णस्राव (कान से पीव या राध का बहना)—रुई की फुरेरी से कान साफ कर इसका ताजा रस प्रतिदिन

Scanned with CamScanner

३-४ बूंद कान में डाला करें। यदि रोग बहुत पुराना हो गया हो तथा रोगी का रोग प्रतिशोधक शक्ति क्षीण होगई हो तो समूल रोग नष्ट होने में छः महीने का लम्बा समय भी लग जाता है किन्तु लाभ अवश्य होता है। उक्त क्षीण शक्ति को बढ़ाने के लिए रोगी को पोषक आहार (जिसमें कच्चे प्याज भी सम्मिलित हो) पर रखना चाहिए।

—श्री रामेश वेदी।

प्याज के रस की कुछ बूंद कान में डालते रहने से बधिरता भी दूर होती है।

(२) विसूचिका (हैजा) पर—इसका रस ६ माशा, लाल मिर्च का महीन चूर्ण १रत्ती, कपूर २रत्ती तथा चूने का या केले का पानी २॥ तो० एकत्र मिलाकर १५-१५ या ३०-३० मिनिट पर देते रहने से कै तथा दस्त बन्द होकर शरीर की ऐंठन भी दूर होती है। —भा. गृ. चि.

अथवा—इसके रस में चूने का पानी मिलाकर पिलाते रहें।

अथवा—प्याज २॥ तोला व कालीमिर्च ७ नग एकत्र इतना खरल करें कि छानने की आवश्यकता न रहे। फिर उसे रोगी जितना पीसके उतना जल मिला पिलादें। पेट में जाते ही प्यास व घबराहट शीघ्र ही दूर होकर दस्त कै बन्द होकर रोगी धीरे धीरे स्वस्थ होने लगता है। इस योग की दूसरी मात्रा देने की शायद ही आवश्यकता पड़ती है। इस योग में थोड़ी मिश्री भी मिला देने से इसके गुण और भी बढ़ जाते हैं। —ह. मौ. मो. अब्दुल्ला।

अथवा रोगी के मुख में १ रत्ती कपूर डालकर ऊपर से १ तो० इसका रस डाल देने से असाध्य हैजा दूर होता है।

अथवा—प्याज को खूब खरलकर निचोड़ कर निकाला हुआ रस रोगी की अवस्थानुसार प्रति १० या १५ मिनट बाद एक छोटा चम्मच बूंद-बूंद करके पिलावें। जब तक वमन बन्द न हो रस देने के अन्तर में कमी न करें। वमन न हो तथा रस पच जावे तो आधे या एक घंटे से आधी-आधी मात्रा देते रहें। वमन बिलकुल बन्द होजाने पर ४-५ घंटे बाद आधी मात्रा देना काफी होता है।

—श्री रामेश वेदी।

हैजा के दिनों में रोग प्रतिबन्धार्थ—प्याज को फोड़ कर स्थान स्थान पर घर में रख देवें। इसकी गन्ध से हैजे का प्रवेश नहीं होने पावेगा या प्याजों की माला बना कर दरवाजों पर टांग देते हैं।

हैजा के दिनों में प्याज को छीलकर महीन कतरकर कम से कम जल से धोकर उसमें उचित मात्रा में सिरका व नमक मिला ताजी पकाई हुई रोटियों के साथ खाया करें। —ह० मो० मो० अ०।

अथवा—रात्रि में भोजन के बाद इसके रस (२ तो) में चने बराबर भुनी हींग तथा सौंफ व धनियां का चूर्ण १-१ माशा मिलाकर पिया करें।

(३) आमातिसार, प्रवाहिका पर—प्रथम रोगी का पेट साधारण रेचन द्वारा साफ करें, जिसमें आंत्र में मल के सुद्दे न रहने पावें। फिर एक प्याज के भीतर आध रत्ती अफीम रख उसे भूभल में भून कर खिलावें। अथवा—इसके ६ मा० रस में आधी रत्ती अफीम मिलाकर पिलावें, दिन में २ या ३ बार। इससे रक्तातिसार भी बन्द हो जाता है। अथवा—एक प्याज को महीन कतर कर ४-५ बार जल से खूब मलते हुए धोकर उसे कांच के पात्र में अच्छा जमा हुआ गाय का ताजा दही मिलाकर खिलाने से भी आंव के साथ रक्तस्राव बन्द होता है। पथ्य में दही, चावल, मिश्री देवें। दिन में ३ बार इस योग के सेवन से भयंकर प्रवाहिका या आमातिसार ३ दिन में दूर हो जाता है।

—ब० गु०।

(४) कामशक्तिवर्धन, नपुंसकता-निवारण एवं बाजीकरणार्थ—इस कार्य के लिए श्वेत प्याज ही लेना चाहिए। प्याज रस और शहद २०-२० तो०, शक्कर १० तो० एकत्र मिला शर्बत बना लें। २½ तोला प्रतिदिन सेवन से शरीर सबल होता एवं कामशक्ति का उद्रेक होता है।

अथवा—इसका रस, शहद, मुर्गे की अण्डे की जर्दी और ब्रांडी १-१ तो० का मिश्रण प्रतिदिन लेते रहने से शरीर में अत्यन्त शक्ति का संचार होता तथा शोष रोग निवृत्त होता है। —स्व. श्री पं. ठाकुरदत्त शर्मा।

अथवा—इसका रस ६ माशा, गोघृत ४ माशा और

Scanned with CamScanner

मधु ३ माशा एकत्र मिला (यह १ मात्रा है) प्रातः सायं चाटने तथा रात्रि को दुग्ध पीने से हस्तमैथुनजन्य नपुंसकता तथा सुजाक, प्रमेह का नाश होता है।

अथवा काले उड़द की बिना छिलकों की दाल २ सेर में २ सेर प्याज का रस मिला धूप में सुखा लेवें, पुनः उसमें २ सेर रस को मिला सुखावें। इस प्रकार ४० सेर रस की भावना देकर अच्छी तरह शुष्क कर शीशी में भर रखें।

इसमें से दो तोला दाल को गाय या भैंस के ४० तो. दूध में खूब पकाकर उसमें १ तोला घृत तथा २ तोला मिश्री या शक्कर मिला प्रातः ४० दिन तक पीवें तथा शेष दाल भी खा लेवें। ब्रह्मचर्य से रहें। वीर्य सम्बन्धी समस्त विकार दूर होकर शरीर पुष्ट होता है। यह बाजीकरण योग है। —स्व. पं. भागीरथ स्वामी वैद्यराज।

शीतकाल में आधे चम्मच इसके रस में १ चम्मच मधु मिला सेवन से शरीर सबल व पुष्ट होता है।

प्याज का रस २॥ तोले, शुद्ध मधु ५ तोले एकत्र कर पकावें क्वाथ सा बन जाने पर उतार कर पिलाया करें। यदि रोगी चाहे तो दुगुनी मात्रा भी दे सकते हैं। इसकी चन्द मात्राओं से ही चेहरा सुर्ख होजाता है। अत्यन्त बाजीकरण है।

अथवा—आवश्यकतानुसार बहुत से प्याज लेकर किसी बर्तन में डालकर पात्र के मुख पर ढक्कन लगा मजबूती से बन्द कर ऐसे स्थान पर भूमि में गाड़ दें जहां गाय बांधी जाती है। ४ मास के बाद पात्र को निकाल कर उसमें से १-१ प्याज रोगी के बलाबलानुसार प्रतिदिन खिलाया करें। यह अत्यन्त वाजीकरण तथा शारीरिक बल बढ़ाने में अद्वितीय है। मात्रा उतनी ही देवें जो शीघ्र पच सके।

वाजीकरण गोलियां—संखिया दूधिया को किसी न घिसने वाले खरल में खूब महान खरलकर उसमें श्वेत प्याज का रस एक बड़ी बोतल १० दिन में खरल कर सुखा दें। फिर मूंग जैसी या उससे कुछ छोटी गोलियां बना लें। १ गोली प्रातः मक्खन में मिलाकर खिलावें। ऊपर से १ सेर तक दूध पिला दिया करें। दूध घृत का अधिक सेवन करें। अत्यन्त बाजीकरण है। रक्तशोधक, हृदयक्रिया जन्य सब दोषों का निवारक है।

—हु० मो० मो० अब्दुल्ला।

अथवा—श्वेत प्याज का रस, मधु तथा अदरक का रस ६-६ माशा और गोघृत ३ माशा एकत्र मिला प्रातः सायं लेते रहने से २१ दिन में वीर्य वृद्धि, सौंदर्य वृद्धि होती, शक्ति व स्मरण शक्ति बढ़ती तथा चित्त प्रसन्न रहता है। —व० गु०

नोट—आगे विशिष्ट योगों में कन्दर्प पाक, बाजीकरण घृत आदि के योग देखिये।

अथवा—श्वेत प्याज छोटे छोटे नीबू बराबर लाकर ऊपर का शुष्क छिलका दूर कर प्याजों को चारों ओर से सूजे से टोंच कर उन्हें एक मटकी में शहद में डुबोकर मटकी का मुख बन्द कर धान्य (चावल, गेहूं आदि की) राशि के भीतर १ महीना रखें। कोई कोई इस मटकी के गले में रस्सी बांध चूल्हे के ऊपर जहां रसोई बनाई जाती है टांग कर ५ महीने तक रखने के बाद उतार कर ६ दिन तक वैसी ही रखते हैं। पश्चात् निकाल कर प्रतिदिन १-१ प्याज प्रातः खाने से शुक्रक्षीणता दूर होकर शरीर हृष्ट पुष्ट होता है। रोगी को १ मास तक पाचक, पौष्टिक (गेहूं की रोटी, दूध, घृत, शक्कर आदि) आहार का सेवन करना चाहिए। ध्यान रहे तीव्र रेचक औषधि न लेवें। साधारण शीतल जल का एनिमा (बस्ति) ८ या १५ दिनों में एक बार ले लिया करें या २-४ तो. तिल तैल या नारायण तैल या लाक्षादि या बला तैल इनमें से यथासाध्य किसी एक तैल की सुखोष्ण स्नेहन बस्ति लेना और भी उत्तम है। सिद्ध औषधियों में बसन्तकुसमाकर, चन्द्रप्रभा, बंग भस्म, पुष्पधन्वा, गिलोय सत, प्रवाल पिष्टी आदि वैद्य की सलाह से सेवन करें। —आ. पत्रिका

आगे विशिष्ट योगों में प्याज का कल्प देखें।

(५) मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी तथा जलोदर पर—मूत्रकृच्छ्र या कष्ट से बूंद-बूंद आने वाले पेशाब के रोगियों को गरम राख (भूभल) में सेंके हुए प्याज को चीरकर मूत्राशय के ऊपर सुखोष्ण रखकर पोला पोला (कस

Scanned with CamScanner

कर नहीं) बांधने से रुका हुआ पेशाब (विशेषतः बालकों का शीघ्र ही) उतर आता है। बड़ों के लिये इस उपचार के साथ साथ ३ तो. प्याज को चीरकर ४० तो. पानी में पका २० तो. पानी शेष रहने पर छान कर, ठंडा होने पर पिलावें। दाहयुक्त मूत्रकृच्छ्र दूर होता है।

अश्मरी पर—प्याज को कतरकर, जल से धोकर उसका २ तो. रस निकाल उसमें ५ तो. मिश्री मिलाकर पिलावें। कुछ दिन प्रातः सायं या केवल प्रातः पिलाने से पथरी टूटकर पेशाब के द्वारा बह जाती है। रुका हुआ पेशाब खुल कर होने लगता है। यदि इस योग में थोड़ा कलमी शोरा और यवक्षार भी मिला लिया जाय तो बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगा।

—हृ० मौ० मो० अब्दुल्ला।

जलोदर पर—प्याज को गीली मिट्टी में लपेट कर भूसी की आग में पकाकर यदि एक रोगी को नियम पूर्वक सेवन कराया जाय तो रोग बहुत कुछ उपशमित होता है। —सचित्र आयुर्वेद से

(६) अर्श पर—कफ या वात के (वादी) अर्श हों तो प्याज को महीन कतर कर धूप में शुष्क कर गौघृत में भून लें। इसमें से १ तो. लेकर उसमें श्वेत तिल १ या २ मा० तथा मिश्री २ तो. मिला प्रतिदिन प्रातः खाकर ऊपर से गौदुग्ध पीवें।

मस्सों की पीड़ा शांति के लिये दो प्याज लेकर भूभल में दबाकर अधपका कर ऊपर से छिलकों को उतार खरल में घोटकर लुगदी को घृत में भून टिकिया बना मस्सों पर बांधने से तत्काल शान्ति प्राप्त होता है।

रक्तार्श पर—श्वेत प्याज के १० तो. रस में २॥ तो. मिश्री मिला पिलावें। दिन में १ या २ बार पिलाते रहने से लाभ होता है अथवा प्याज को भूभल में भून कर ऊपर का छिलका दूर कर उसमें मिश्री, घृत और श्वेत जीरे का चूर्ण मिलाकर खिलावें। —संकलित

(७) रक्तपित्त एवं रक्तस्राव पर—रक्तस्राव को रोकने के लिये प्याज (श्वेत) की शाक को तक्र से सद्ध कर सेवन कराने का चरकाचार्य का आदेश है। "सिद्धं पलाण्डु शाकं तक्रेण············रुधिरस्रावेप्रदद्यात् ······"।

—च० चि० अ० १४

सुश्रुत का भी कथन है—रक्तपित्त में क्षीरपलाण्डु (श्वेत प्याज) प्रशस्त है। कैयदेव निघण्टुकार का भी ऐसा ही कथन है। —सु. सू. अ. ४६

चरक के चि० स्था० अ० १४ में कहा है कि जो अति रुधिर स्राव एवं बारबार मलविसर्जन के कारण अत्यन्त निर्बल होगया हो उसे तरुण बकरे के मध्य शरीर का (हृदय के समीप का) मांस रुधिर सहित लेकर उसमें खूब प्याज डालकर पकाकर खिलावें।

अथवा—उसी उक्त स्थान में चरक जी का कथन है कि रस, शाक, यवागू आदि के साथ प्याज का अथवा केवल प्याज का ही सेवन करने से अत्यन्त बहता हुआ रक्त और वायु जीता जाता है, अर्थात् वात प्रकोप शांत होकर रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

छाजन, पामा आदि रक्तविकार पर—प्याज का रस ५ तो०, मिश्री १ तोला तथा श्वेत जीरा भूना हुआ १ मा. मिश्रित कर नित्य प्रायः पिया करें।

नकसीर (नाक से रक्तस्राव होने पर)—प्याज (या इसके पत्तों) के रस की अथवा इसके रस में डाल कर पकाये हुए भैंस या बकरी के घृत की नस्य देने से लाभ होता है।

—च०चि०अ० ४ तथा हारीत संहिता

(८) कास, हिक्का, श्वास, स्वरभंग तथा उरःक्षत पर—प्याज का क्वाथ (६ मा० प्याज को ४० तो० जल में चतुर्थांश क्वाथ) देने से दूषित कफ निकलकर कास रोगी की बेचैनी दूर होती है। इसका शर्बत भी खांसी एवं पुराने जुकाम में लाभ करता है। क्षयज कास के कष्टों को कम करता है। हिक्का के निवारणार्थ चरक में प्याज के रस का नस्य देने के लिये कहा है।

—च० चि० अ० १७।

पित्तजन्य या पित्तानुबन्धी तमक श्वास हो, तो प्याज के टुकड़े २ तो. लेकर असली मधु में डुबो डुबो कर, प्रातः सूर्योदय के पूर्व ४० दिन तक खाने से लाभ होता है।

—ब. गु.।

Scanned with CamScanner

श्वास पर—प्याज रस, नीबू रस, सहदेवी बूटी का का स्वरस प्रत्येक ४० तो०, जङ्गली अनार के छिलके का चूर्ण २५ तो०, गुलकन्द २० तो०, सोंठ चूर्ण २ तोला और उत्तम मधु १५ तो० सब एकत्र कर चीनी मिट्टी के पात्र में सुरक्षित रखें। २ तो० प्रातः सायं सेवन से शीघ्र लाभ होता है। १५ दिन का सेवन पर्याप्त है।

—डा० नरेन्द्रसिंह नेगी गुप्त योग रत्नावली।

श्वास पर जङ्गली प्याज का निम्न योग विशेष लाभदायक है (जङ्गली प्याज के प्रकरण में हम इसे नहीं दे सके)।

एक सेर जङ्गली प्याज को कद्दूकस कर किसी मिट्टी के कूंड़े में डाल ऊपर से शुद्ध सिरका दो सेर डाल पात्र का मुख मजबूत बन्द कर कपरौटी कर कूंड़े के ढेर में ४० दिन तक दबा कर रखें। फिर निकाल कपड़े से छान कर उसमें दुगुनी देशी खांड़ मिला वन्द आग पर पकावें। लेह जैसा गाढ़ा हो जाने पर, उतार कर किसी स्वच्छ कांच के पात्र में सुरक्षित रखें। १ तो० प्रातः देवें, यदि दमा रोग खुश्क हो तो ऊपर से अर्क गाजवां मिला दिया करें। यदि संभव हो तथा रोगी को कोई आपत्ति न हो तो दोनों समय (भोजन के साथ) शोरवा मुर्ग भी खिलाते रहें। केवल सात दिन के सेवन से श्वास समूल नष्ट हो जावेगा। —हृ० मो० अ० साहब।

प्याज के योग से बनी हुई गोदन्ती हरताल की भस्म भी कासादि छाती व फेफड़ों के विकार में विशेष लाभदायक है। विशिष्ट योगों में इस भस्म की प्रक्रिया देखें।

स्वरभंग पर—प्याज को आग में दबाकर भुरता बना लें। रोगी को प्रथम सुहागा दो रत्ती खिलाकर ऊपर से यह भुरता खिला देने से आवाज शीघ्र ही खुल जायेगी। —हृ० मो० मा० अ० साहब।

उरःक्षत पर—प्याज का रस ६ मा० तथा मधु व घृत ३-३ मा० एकत्र मिला नित्य प्रातः सायं लेवें और रात्रि में दूध पकाया हुआ आधा सेर तक शक्कर मिलाकर १ या २ माह तक पिया करें। —व० गु०।

प्याज का रस या कच्चा प्याज नमक के साथ खाने से यक्ष्मा में लाभ होता है। यह यक्ष्मा के कीटाणुओं का नाशक है। —लैनसेट (Lancet)

(९) यकृत, प्लीहा, पाण्डु तथा कामला पर—कम्बोडिया आदि देशों में प्याज का उपयोग यकृत के विकारों पर किया जाता है। प्लीहा वृद्धि में अच्छे ताजे प्याज लेकर ऊपर का शुष्क छिलका दूर कर प्याजों को गरम नमकीन जल में १-२ दिन तक डाल रक्खें। फिर निकाल कर सुखाकर स्वच्छ शुष्क मर्त्तवान (चीनी मिट्टी की मटकी) में उन्हें डाल कर ऊपर से इतना सिरका (जामुन का) डालें कि वे अच्छी तरह डूब जावें। इसमें नमक, काली मिर्च का चूर्ण तथा मूली के महीन टुकड़े भी मिला दें। प्लीहा वृद्धि के रोगी को यह प्याज का अचार भोजन के साथ खिलाने से लाभ होता है।—श्री रामेशवेदी जी। (यह अचार पाचक, क्षुधावर्धक, उदरशूल नाशक, आमाशय शक्तिवर्धक तथा पाण्डु और वमन पर भी हितकारी है।

अथवा—प्याज को आग से पका कर उसे रात भर ओस में रखकर प्रातः प्रतिदिन खिलाने से प्लीहा में शीघ्र लाभ होता है —संकलित।

पाण्डु (पीलिया) पर—श्वेत प्याज का रस, गुड़ तथा हल्दी का चूर्ण मिलाकर प्रातः सायं पिलाते रहने से लाभ होता है। कामला पर भी लाभदायक है।

—व० गु०

(१०) पित्तप्रकोप, अम्लपित्त, लू लगना तथा उन्माद मूर्च्छा व अपस्मार पर—श्वेत प्याज को महीन कतर कर उसमें मीठा दही और थोड़ी शक्कर मिलाकर खाने से पित्त प्रकोपजन्य विकार शांत होते हैं। इससे अम्लपित्त जन्य कण्ठ की जलन भी दूर होती है।

विशेष उष्णता के निवारणार्थ श्वेत प्याज को भून कर उसमें जीरा व मिश्री एकत्र पीसकर गोघृत २ तो० मिला सेवन करें। —व० गु०।

लू लगने पर-ताजे रस को दोनों कनपटियों पर व छाती पर धीरे-धीरे मर्दन करते हैं। तथा एक भुने हुए प्याज के साथ दूसरा बिना भुना हुआ एकत्र गहन पीस कर उसमें जीरे का चूर्ण २ मा० और मिश्री २ तोला

Scanned with CamScanner

मिला कर दिन में एक बार खिलाने से लाभ होता है।
—व. गु.।

गरमियों में लू के प्रतिकारार्थ प्याज को जेबों में रखते हैं। बच्चों के गलों में इसकी माला सी बनाकर पहिनाते हैं।

उन्माद में श्वेत प्याज के रस का नेत्रों में अंजन करते हैं। मूर्च्छा तथा हिस्टीरिया (योषापस्मार) के दौरों के समय इसके रस को नाक के नथुनों में बार-बार लगाने से या नाक के भीतर रस की १-२ बून्दें टपका देने से रोगी होश में आ जाता है।

अपस्मार (मिर्गी) के रोगी को नित्य प्रातः प्याज का रस ८ तो० तक पिलाते हैं।

(११) दूषित वायुजन्य या मलेरिया ज्वर पर—एक छोटे प्याज को बीच में से चीरकर मध्य में अफीम १ रत्ती रखकर पुटपाक विधि से पका लें। ठण्डा होने पर ज्वर से पूर्व इसे खिलावें। शीतज्वर रुक जावेगा।
–सिद्ध भेषज मणिमाला।

अथवा—प्याज दो से चार तो० को ३-५ कालीमिर्च के साथ दिन में दो बार खिलाते हैं।

(१२) नेत्र विकार पर—मोतियाबिन्द की प्रारंभिक अवस्था में—इसका रस और शुद्ध शहद १-१ भाग एकत्र कर उसमें भीमसेनी कपूर चौथाई भाग मिला रात्रि के समय २-२ सलाई नेत्रों में आंजते रहने से, उतरता हुआ मोतिया रुक जाता है। भीमसेनी कपूर के अभाव में केवल इसके रस और मधु के मिश्रण से ही लाभ हो सकता है। दृष्टिमांद्य तथा नेत्र पीड़ा भी दूर होती है।

दृष्टिविकारनाशक सुरमा—काला सुरमा ५ तो० को ३ दिन तक निरन्तर प्याज के रस में खरल कर शुष्क हो जाने पर शीशी में सुरक्षित रखें। २-२ सलाई इस सुरमे की नेत्रों में फेर लेने से दुखती हुई आंख,धुन्ध, जाला, तथा मोतियाबिन्द में भी लाभ होता है।
—ह. मौ. मु. अ. साहब

आंखों पर फुंसी (बिलनी) होगई हो तो प्याज के टुकड़े को उस पर बांधते हैं। रतौंधी पर–इसके स्वरस की २-४ बून्दें दिन में दो बार डालतें हैं।

(१३) सन्धिवात (गठिया की पीड़ा) तथा धमनी काठिन्य पर—वातरोगनाशक औषधियों में लहसुन के बाद प्याज को भी एक परमौषध माना गया है। गदनिग्रहकार का कथन है—

"लशुनानन्तरं पायोः पलांण्डुः परमौषधम्।"

गठिया वात या आमवात की पीड़ा में इसके रस में समभाग सरसों का तैल मिला कर मालिश की जाती है।

धमनी काठिन्य विशेषतः मस्तिष्क के लिये लाभकारी प्रयोग–प्याज को कद्दूकस पर (कद्दूकस प्लास्टिक का हो तो अधिक अच्छा)कसकर दोहरी तह के कपड़े से निचोड़ कर निकाले हुए रस में समभाग मधु मिला इस मिश्रण को ठण्डे स्थान में बन्द ढक्कन वाले या कार्क लगे शीशे के साफ मर्तबान में रख देवें। इस मिश्रण को दोनों समय के भोजनों से १ घंटे पहले या २-३ घंटे बाद (१ बड़ा चम्मच भर १ मात्रा) प्रतिदिन २ मास तक लेने से लाभ होता है। यदि पूर्ण लाभ न हो तो १४ दिन बाद पुनः इसी प्रकार २ मास तक लेवें।
—संकलित

(१४) दंत पीड़ा, मसूढ़ों की सूजन, चोट पीड़ा, जख्म की दाह, बदगांठ और नारू पर—दांत या दाढ़ में पीड़ा हो या मसूढ़ों में सूजन हो, तो प्याज और कलौंजी सम वजन एकत्र खूब महीन खरल कर ६–६ मा. की टिकियां बना कर १ टिकिया चिलम में रख धूम्रपान करावें। मुख की लार को नीचे मुख कर बहाते रहें। शीघ्र लाभ होगा।

चोट पीडा पर—प्याज के साथ थोड़ी हल्दी मिला, पत्थर पर पीस कर पोटली बना लें। एक कटोरी में थोड़ा सरसों तैल गरम कर, उसमें पोटली डुबो डुबो कर सुखोष्ण सेंक लगभग आध घंटे तक करें फिर पोटली के भीतर केकल्क को पीड़ा स्थान पर बांध देने से चोट जन्य पीड़ा दूर होती है। यह एक सर्व प्रचलित प्रयोग है।

जख्म की दाह शांत करने के लिये प्याज को चीर कर घृत में तल कर गरम गरम बांधते हैं।

बद गांठ पर—प्याज को बच्चे के मूत्र में पीस कर गरम कर बांधते रहने से, या प्याज के कल्क को तैल में तल कर बांधने से गांठ बिखर जाती है। यदि गांठ को पकाना हो तो प्याज को भून कर उसमें थोड़ा हल्दी चूर्ण

Scanned with CamScanner

और घृत मिला गरम कर सुखोष्ण पुल्टिस जैसा बांध दिया करें। यह सौम्य एवं उत्तम पुल्टिस है।

—ब. गु.

नारू पर—प्याज के रस १ भाग में देशी साबुन दो भाग मिला कर आग पर पकावें और पान के पत्ते पर या कपड़े पर फलाकर नारू (नहरुवा) पर बांध देवें। २-३ बार के प्रयोग से लाभ हो जाता है।

—मौ. मो. अ. साहब

(१५) स्त्री रोग और बाल रोगों पर—रुद्धार्त्तव में प्याज ५ तो० को १ सेर जल में पकावें १० या २० तो. तक जल शेष रहने पर उसमें ३तो० गुड़ मिला कर गरम गरम पिलावें। इस प्रकार कुछ दिन पिलाने से अथवा-प्याज के ५ तो. रस को गुन गुना कर रात्रि को सोते समय पिला देने से अथवा-१० तो० प्याज को कतर कर उसमें गरम मसाला मिला घृत में भून कर खिलाने से रुका हुआ मासिक धर्म होने लग जाता है।

स्तन के घाव पर २½ तो. प्याज को १० तो० मीठे तैल में डाल कर आग पर जला लेवें। फिर नीम के कुछ पत्र जलालें और दोनों को खूब घोट कर थोड़ा मोम मिला मरहम बना कर लगाते रहने से शीघ्र घाव भर जाता है।

बालकों के उदर शूल पर—प्याज को आग में सेंक कर उसका रस निचोड़ कर ३ मा० तक पिलावें।

बालक के अतिसार पर—प्याज का रस निकाल किसी पात्र में रख उसमें पीपल वृक्ष की जलती हुई लकड़ी के टुकड़े को बुझा कर कोयला निकाल महीन पीस कर शीशी में रखें। वह रस जिसमें कोयला बुझाया गया है ३ मा० पिला देने से अथवा उक्त कोयले का चूर्ण ३ रत्ती की मात्रा में सादे जल में घोल कर पिलाने से दस्त बन्द हो जावेंगे। यदि बन्द न हों अत्यधिक आते हों तो उक्त बुझाये हुये रस में उक्त कोयले का चूर्ण मिलाकर पिलावें शीघ्र बन्द हो जावेंगे।

बालक के कान में पीड़ा हो तो गरम राखमें भूने हुए प्याज के रस की २-३ बून्दे सुखोष्ण कान में डालने से पीड़ा शीघ्रही शान्त होती है। नेत्र में पीड़ा होतो इसका रस व शुद्ध मधु १-१ भाग एकत्र कर उसमें गुलाब का अर्क दो भाग मिला १-२ बून्द प्रातः सायं डालने से लाभ होता है। दवा प्रतिदिन ताजी बनाकर आंखों में डालनी चाहिये।

बालक की शीघ्रता से शरीर वृद्धि के लिये—बालक को प्याज और गुड़ प्रतिदिन खिलाते हैं।

बाल झड़ते हों या सिर में गंज हो (चाहे बालक हो या मनुष्य) तो प्याज को पीस कर शुद्ध शहद मिला लेप करते रहने से लाभ होता है।

बालक के अपस्मार पर—श्वेत प्याज को चीर कर उसका ताजा टुकड़ा नाक पर बार बार रखने या सुंघाने से अपस्मार का दौरा दूर होता है। इससे सिर दर्द में भी लाभ होता है।

—संकलित

बालकों के तालुपात या तालुकण्टक (यह विकार बालक के तालुमांस में क्रुद्ध हुए कफ के कारण होता है। इसमें तालु का भाग नीचे की ओर खिसक जाता है। शायद इसे ही मरेठी में तानेचा आजार कहते हैं) पर—श्वेत प्याज को भूनकर महीन पीस लें तथा उसमें गोघृत मिला वटी बना तालु प्रदेश पर रख ऊपर से अण्डी का ताजा पत्र रख कपड़े से बांध देवें। इस प्रकार ३ दिन करें। प्रतिदिन शाम को उक्त बन्धन को खोलकर पट्टी को दूर कर सिर स्वच्छ धोकर गोघृत तालू पर लगादें। साथ ही साथ श्वेत प्याज के रस में थोड़ा जीरे का चूर्ण व मिश्री चूर्ण मिला बालक को पिलावें।

—ब. गु.

(१६) विषैले जानवरों के दंश पर, पागल कुत्ते के काटने पर—प्याज कूटकर, शहद मिला कर काटे हुए स्थान पर लगाते हैं तथा काली मिर्च, श्वेत जीरा व स्याह जीरा समभाग २-२ मा. चूर्ण कर (कुल ६ मा. चूर्ण) खिलाते हैं। कई दिनों तक यह उपाय किया जाता है।

अथवा दंश स्थान पर प्याज को पीसकर फिटकरी मिलाकर लगाते हैं। जिसमें घाव शीघ्र न भरने पावें तथा साथ ही प्याज का रस पिलाते रहते हैं।

बिच्छू के दंश पर—प्याज को काटकर उस पर थोड़ा बुझा हुआ चूना रखकर दंश स्थान पर मलने से

Scanned with CamScanner

शीघ्र लाभ होता है अथवा—

इसके रस के साथ समभाग नौसादर मिला खरल कर बोतल में भर कर रखलें। इसका कुछ बूंदें दंशित स्थान पर लगाते हैं। इससे बर्र, शहद का मक्खा के दंश पर भी लाभ होता है।

कनखजूरा के विष पर—दंशित स्थान पर प्याज और लहसुन को पीसकर लेप करते हैं।

कहा जाता है कि प्याज का पानी में घोट कर घर में छिड़कने से सर्प, बिच्छू आदि विषैले जन्तु घर से भाग जाते हैं। —संकलित

(१६) पशु रोग—पशु का नाक से अत्यधिक कफ-स्राव होता हो तो श्वेत प्याज ७ नग व गुड़ २० तो. एकत्र मिला ३ दिन तक प्रातः खिलावें और जूने कपास की खूब मोटी बत्ती बना उसे एक छोर पर जला कर उसके नाक के सामने घुमाने से जो धूम्र निकले उसे नाक के अन्दर प्रविष्ट होने देवें। इस प्रकार केवल ३ दिन करें। —ब. गु.

बीज—प्याज के बीजों को कोई-कोई कलौंजा कहते हैं वास्तव में कलौंजी इससे भिन्न है। इस ग्रन्थ के भाग २ में कलौंजी का प्रकरण देखिये।

प्याज के बीज ऊष्ण, रूक्ष, तिक्त, लेखन, वाजीकरण, प्रमेह, दन्तकृमिनाशक, शीतल प्रकृति वालों के लिए विशेषतः काम शक्तिवर्धक (वाजीकरण) हैं।

ये गर्भाशय तथा रजःशोधक हैं। इस कार्य के लिये कांजी के साथ इनका प्रयोग किया जाता है। बाजीकरणार्थ तदुपयोगी द्रव्यों के साथ इसे मिलाकर माजून बनाकर सेवन कराते हैं।

खालित्य (गंज), व्यंग, छीप, झांई आदि पर बीजों को पीसकर शहद मिला लगाते हैं।

दाद, छाजन (जो बहुत जाड़ा व काले दाग वाली हो) में इसे सिरका के साथ पीसकर लगाते हैं। मस्सों पर इसे नमक के साथ पीसकर लगाते हैं।

मसूड़ों की सूजन, दाढ़ या दांत के दर्द पर बीजों का चिलम में रखकर धूम्रपान कराते या केवल बीजों को दाढ़ में दबाकर रखते हैं।

श्वेत कुष्ठ पर—बीजों को गोमूत्र में पीस कर लेप करते हैं।

बीजों में से जो रक्त रहित, एक प्रकार का विशुद्ध तेल पाया जाता है वह औषधि के काम में आता है।

अनिद्रा या निद्रानाश पर—बीजों का फांट या चाय बनाकर देते हैं। अधिक रोने वाले या चिड़चिड़े बच्चों को शांत करने के लिये यह फांट विशेष उपयोगी है।

नोट—मात्रा—प्याज का स्वरस १-६ तो.। बीज चूर्ण १-३ माशा तक।

अधिक सेवन से वामक, रेचक, हृदय गति अवरोधक है।

पित्त प्रकृति वालों को तृषावर्धक, प्रस्वेदकारक, स्मरणशक्तिनाशक, मस्तिष्क के लिए हानिकर है। इसका हानि निवारक अनार का रस, सिरका, नमक, मट्ठा, दही, शहद है।

अल्प मात्रा में प्याज का सेवन कफ निःसारक एवं मूत्रल होता है। अत्यधिक मात्रा में यह बेचैनी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्र रक्तता, कभी-कभी मूत्रावरोध, आंत्रप्रदाह, आक्षेप एवं हार्टफेल (हृदय स्पन्दन को बन्द कर मृत्यु) कारक होता है।

फुफ्फुस प्रदाह की तीव्रावस्था में इसका सेवन महान हानिकर होता है। वात प्रकोप, शर्करा एवं चर्म विकार में तथा ज्वररहित हृदय दौर्बल्यजन्य शोथ में इसका व्यवहार मूत्र लाने के लिये डिजिटेलिस या लवण के साथ किया जाता है। इन विकारों में इसका व्यवहार प्रायः पके गूलर फल, सौंफ, अंगूर का रस तथा शहद के साथ हुआ करता है। —आर. एन. खोरी

प्याज खाने के बाद लेमन, सन्तरा या पेपरमिंट मुख में डाल लेने से मुख या सांस से इसकी दुर्गन्ध नहीं आने पाती।

ध्यान रहे उपदंश, मूत्रकृच्छ्र तथा चर्म रोगों में इसका सेवन भोजन रूप में हानिकर है। यह उत्तेजक होने से धातु क्षीणता वालों को जहां तक हो सके इसका भोजन रूप से व्यवहार नहीं करना श्रेयस्कर है।

Scanned with CamScanner

विशिष्ट योग-

(१) प्याज का कल्प (पलाण्डु कल्प)-यह कल्प रसोन कल्प (लहसुन के कल्प) के समान ही कराया जाता है। गद निग्रहकार श्री सोढ़ल जी का कथन है कि इस कल्प में भी रसोन कल्प (लहसुन का प्रकरण देखें) के जैसा ही इसका रस पिलाते तथा खान पान की व्यवस्था होती है। नीबू का रस तथा अन्य फलों के रसों को सुगंधित कर देते तथा शराब, शहद आदि पीने के लिये देते हैं। भोजन में दूध, चावल, गेहूं की मुलायम रोटियां, जौ, मूंग, उड़द से बनाये हुए अनेक पदार्थ, अनेक प्रकार का शुद्ध मिठाइयां, आम का मुरब्बा, रायता, खजूर, अनार, अंगूर कटहल आदि देवें।

कल्प विधि के अनुसार प्याज के रस का सेवन करने से मल क्षीणता या अतिसार अन्य दुर्बलता तथा बधिरता भी दूर होती है। बल व कांतिकी वृद्धि होती, मन प्रफुल्लित एवं स्वर कोमल हो जाता है। —ग. नि. ओ. क.

(२) पलाण्ड्वासव (अजीर्ण, हैजा नाशक)—प्याज का रस १ भाग, गुड़ या खांड ८ भाग दोनों को एकत्र कर दृढ़ चिकने मृत्पात्र में भर उसमें लोह चूर्ण या लोह भस्म गुड़ या खांड़ के १६ वा भाग मिला, मुखमुद्रा कर भूसा या अन्न के ढ़ेर में १ मास तक दबा कर रक्खें। फिर छान कर बोतल में भर लें। यह आसव सिरके की भांति अत्यंत तीक्ष्ण बनेगा। मात्रा–६ मा. से १ तो. तक भोजनोपरान्त हैजा, अजीर्ण, अपच आदि में लाभप्रद है।
——स्व. मिश्र बलवंत शर्मा वैद्यराज

आसव नं० २—बालरोग नाशक—प्याज का रस १ सेर, अच्छी तरह छानकर चीनी मिट्टी क पात्र म भर उसमें शुद्ध मद्य (ब्राण्डी) २० तो. मिला पात्र का मुख बन्द कर ७ या १५ दिन सुरक्षित रखें। पश्चात् छानकर बोतलों में भर लें।

१० से ३० बूंद या ६० बून्द तक अवस्थानुसार बालक को माता या गाय के या बकरी के दूध में मिला कर पिलाने से पसली या डब्बे का रोग शीघ्र दूर होता है। बालशोष (सूखा रोग) पर भी लाभदायक है। यह बड़ों को ६० बूंद की मात्रा में दूध या जल के साथ देने से काम-शक्ति को जागृत करता है। हैजे पर भी उत्तम है।
—बृहदासवारिष्ट संग्रह।

(३) पलांडु पाक (कन्दर्पपाक)—वीर्यवर्धक—श्वेत प्याज ऊपर का छिलका निकालकर ४० तोले को कद्दूकस से कसकर २ सेर दूध में पकावें। खोया जैसा हो जाने पर २० तोला घृत में भूनकर उसमें दालचीनी १ तोला, जायफल १ नग, लौंग, केशर व जावित्री ६-६ माशा तथा कौंच बीज ४॥ तोले का महीन चूर्ण मिलावें। फिर २ सेर खांड़ की चाशनी में ये सब मिलाकर पाक जमा देवें। पाक जमने के पूर्व कुछ ठंडा होने पर उसमें मधु ८ तोला मिला देवें तथा सुरक्षित रक्खें।

२ से ४ तो. तक नित्य सेवन से नपुंसक भी वीर्यवान हो जाता है।

पाक नं० २—श्वेत प्याजों का ऊपर का छिलका दूर कर एक पात्र में रख उन पर गाय या भैंस का ताजा दूध इतना डालें कि ४ अंगुल तक प्याज के ऊपर आजावे। फिर उस पात्र को मन्द आंच पर पकावें। प्याज पक जाने पर उतार कर ठंडा होने पर समभाग गोघृत डालकर पुनः आग पर भून लेवें। नीचे उतार कर घृत के समभाग शहद की चाशनी में शकाकुल मिश्री व कुलंजन का चूर्ण ६-६ माशा मिला पाक जमा देवें या मोदक बना लें। यदि मोदक न बन सके तो अवलेह जैसा ही सुरक्षित रखें। मात्रा ५ से १० तोले तक प्रायः सायं सेवन करें। अत्यन्त वाजीकरण है, नपुंसकता नाशक है।

पाक नं० ३—प्याज का रस २० तोला तथा उत्तम असली शहद ४० तोला दोनों को पकाकर चाशनी की तरह गाढ़ाकर उसमें दालचीनी, कुलिंजन, सालममिश्री, असगंध, श्वेत मूसली व अकरकरा का महीन चूर्ण प्रत्येक १॥ तोला और केशर ६ माशा मिलाकर रख लें। मात्रा ६ माशा सेवन से मस्तिष्क की दुर्बलता दूर होती है।

नोट–शेष उत्तमोत्तम पाकों के प्रयोग हमारे बृहत्पाक संग्रह ग्रन्थ में देखें।

(४) प्याज का अचार—प्याज को छीलकर छोटे-छोटे टुकड़े बना चीनी मिट्टी के पात्र में डालकर उसमें सिरका नमक, मिरच, जीरा आदि डालकर अचार तैयार करलें।

Scanned with CamScanner

यह उदर शूल नाशक, पाचक, क्षुधावर्धक, आमाशय को शक्तिप्रद, प्लीहा, पांडु तथा वमन पर लाभकारी है।

—हृ० मो० मा० अब्दुल्ला साहब।

(५) पलांडु योग से हिंगुल भस्म—५ ता० बढ़िया रूमी सिंगरफ के एक समचौरस टुकड़े का कपड़े की पोटली सी बांधकर अरनी का छाल और पत्तों के क्वाथ से भरी हुई हांडी में दोलायंत्र का तरह लटका कर ३ दिन तक बहुत हलकी आंच पर स्वेदन करें। फिर खट्टी कांजी, गोमूत्र व नीबू के रस में क्रमशः ३-३ दिन तक हलकी आग पर दोलायंत्र में शोधन करने के बाद, उस टुकड़े को एक मजबूत चौड़े सकारे में रख उसमें चारों ओर १० तो. लौंग की लुगदी की मुण्डेर (पाल) बांधकर सकारे को चूल्हे की हलकी आग पर रखकर टुकड़े पर प्याज का रस थोड़ा थोड़ा (बूंद बूंद) टपकाते रहें। ज्यों ज्यों रस सूखता जावे त्यों त्यों नया रस डालते रहें। इसप्रकार पूरा ४ मन रस उस हिंगुल के टुकड़े पर खपा देवें। (यह जरूरी नहीं है कि रातदिन अग्नि जलते रहे, किंतु इतना आवश्यक है कि जब जब समय मिले इस क्रिया का करते हुए ४ मन रस पूरा कर देवें। यह ध्यान रहे कि जब आग जलती रहे तब हमेशा वह टुकड़ा रस से तर रहे, यदि वह सूख गया तो उसमें का पारा आग की गरमी से उड़ जावेगा)। फिर उस टुकड़े को पीस कर शीशी में रख लेवें। एक बरसात बीतने पर इसे प्रयोग में लावें।

मात्रा—१ चावल से १ रत्ती तक। वातरोग में तुलसी के रस के साथ, पित्त रोग में मक्खन के साथ, कफ के रोगों में शहद या खाने के पान (नागरवेल) के रस के साथ देने से बड़ा लाभ होता है। इसके अतिरिक्त धातु क्षीणता, प्रसूति विकार, संग्रहणी, नपुंसकता आदि विकारों में भी इससे अच्छा लाभ होता है। इसके सेवन काल में दूध, चावल, घृत और गेहूं की रोटी का ही भोजन करें। स्त्री संग का बिल्कुल त्याग करें।

—जंगलनी जड़ी बूटी।

हिंगुल भस्म नं० २—सिंगरफ रूमी १ तो० को पुख्ता न घिसने वाली खरल में प्याज के रस के साथ खूब खरल करें। यहां तक कि उसमें रगड़ते रगड़ते रस १॥ सेर तक खप जावे। फिर उसकी टिकिया बना, शुष्क कर गोघृत में भून कर पीसकर शीशी में रखें। मात्रा १ रत्ती गाय के मक्खन में लपेट कर दिया करें। यह हृदय की निर्बलता को दूर करती है तथा अत्यन्त बाजीकरण है।

उक्त भस्म बनाने के पूर्व हिंगुल की शुद्धि इस प्रकार करलें। १ तो० हिंगुल की डली को किसी बारीक मलमल के कपड़े में पोटली बांध एक साफ कढ़ाई में आधा सेर अंगूरी सिरका डाल आग पर रखें और उस सिरके के मध्य भाग में पोटली को दोलायंत्र विधि से लटकाकर मंद आंच पर पकावें। संपूर्ण सिरका शुष्क होजाने पर निकाल लें। बस शुद्ध होगया।

(६) गोदन्ती हरताल भस्म—गोदन्ती हरताल १ तो. की डली को प्याज की २० तोला लुगदी में रख कूजे में बन्दकर १० सेर उपलों की आग में फूंक देवें। शीतल होने पर निकालकर पीसकर शीशी में रखें।

मात्रा—१ रत्ती, प्रातः गाय के मक्खन में लपेट कर खिलाया करें। संग्रहणी की अद्वितीय औषधि है। इसके अतिरिक्त मरोड़, पेचिश, अतिसार, कास में भी लाभकारक है। इसे पित्तज्वर में शर्बत बनफशा के साथ, वातज्वर में शर्बत गाजवां के साथ (विशेषतः वातज्वर जो स्त्रियों को गर्भाधान के बाद हुआ करता है) अत्यन्त लाभदायक है। रक्तविकृति जन्य ज्वर में शर्बत उन्नाव के साथ दिया करें।

—हृ० मो० मो० अ० साहब।

प्याजी—दे० प्याज में नोट नं० ४। प्याजे नरगिस—दे० नरगिस में। प्रसारणी—दे० गन्धप्रसारणी।
प्राचीनामलक—दे० पानी आंवला।

प्रियंगु [फूल प्रियंगु] (Callicarpa Macrophylla)

कर्पूरादि वर्ग एवं निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) के कुछ ऊंचे गुल्माकार इस लता रूप क्षुप के मूल से ही इसकी सघन मृदु रोमश शाखायें निकली हुई, छोटी अंगुली जैसी, मोटी अधिक ऊंची बढ़ने पर अन्य वृक्षादि-

Scanned with CamScanner

का सहारा लेने वाली सहारा न मिलने पर भूमि की ओर झुक जाने वाली होने से इसे लता या कृशाङ्गी कहा जाता है। पत्र–५-१० इंच लम्बे, आयताकार या लट्वाकार, लम्बाग्र या तीक्ष्णाग्र, दन्तुर धार युक्त, ऊपरी पृष्ठ भाग चिकना, निम्न पृष्ठ तूलरोमश; पुष्प व फल-आषाढ़ श्रावण मास में पत्र कोण या पत्र वृन्त के मूल से निकली हुई १ इंच लम्बी २ इंच व्यास की बारीक-बारीक कलियों के सघन गोल गुच्छे-नन्हे नन्हे नीललोहित या गुलाबी रंग के पुष्पों से युक्त होते हैं। इन गुच्छों में ही इसके गोल बारीक फल होते हैं। ये गुच्छे पत्र वृन्त की जड़ से निकलने के कारण इसे 'पर्ण भेदनी' एवं फूलों का रंग कुछ बैंगनी होने से 'श्यामा या कृष्णा पुष्पी' कहते हैं पुष्पों के झड़ने पर बारीक फल दिखाई देते हैं। कार्तिक मास तक समस्त लतायें फलों के गुच्छों से लद कर नीचे की ओर झुक जाती हैं अतः यह फलनी, नताङ्गी कहलाती हैं। कार्तिक के अन्त एवं मार्गशीर्ष में वे ही फल बढ़ने पर अत्यन्त कोमल ज्वार के दाने जैसे या कंगनी धान्य के दाने जैसे चमकीले श्वेतवर्ण के दिखाई देने से इसे कंगनी कंगु भी कहते हैं। ये फल १२-१८ इंच व्यास के चार कोष्ठ युक्त, मांसल तथा प्रत्येक कोष्ठ में १-१ बीज युक्त होते हैं। पकने पर फल का ऊपरी पृष्ठभाग स्पंज सदृश प्रतीत होता है। उक्त फलों के गुच्छे मोतियों के गुच्छ जैसे आभूषणाकार होने से महिलाएँ इन्हें अपने कानों पर धारण करती हैं अतः इसे 'महिला प्रिया' भी कहते हैं।

इसकी क्षुप रूप लता[१] हिमालय की निचली पहाड़ियों एवं तराई भागों में नेपाल में तथा जंगलों के किनारे, घाट, खुले जंगल, परती भूमि में, देहरादून के जल प्रायः स्थानों में, विहार के अनेक स्थानों में पाई जाती है।

नोट नं० १—प्रियंगु (जो सबको प्यारी मालूम देती या प्यारी होने से जिसकी सब कामना करते एवं प्राप्त करते हैं अथवा जो स्त्रियों को विशेष प्रिय हो—"प्रियंङ्गय-यते काम्यते वा प्राप्यते इति प्रियंगुः, यद्वा प्रियं गच्छति

प्रियंगु
CALLICARPA MACROPHYLLA VAHL.

नारीणामिति") सार्थक नाम वाली यह प्राचीन सर्व प्रिय बूटी, खेद है कि आज लगभग गत ४०० वर्षों से संदिग्ध हो गई है। प्राचीन चरक सुश्रुतादि संहिता काल से लेकर भावमिश्र के समय तक यह संदिग्ध नहीं थी। चरक के मूत्र विरजनीय, पुरीष संग्रहणीय, सन्धानीय, शोणित स्थापनीय गणों में तथा विभिन्न रोगों में कल्क, क्वाथ, आसव, तेल, घृतादि लगभग ५८ कल्पों में इसकी योजना की गई है। सुश्रुत के प्रियंग्वादि, अंजनादि, एलादि गणों में तथा रोगों में यह लगभग ४८ कल्पों में प्रयुक्त हुई है। वाग्भट ने इसे प्रियंग्वादि, पित्तहर गणों में; धन्वन्तरि निघण्टु के चन्दनादि वर्ग में; कैयदेव निघण्टु के औषधीय-

[१] ध्यान रहे हम संकोचवश इसे लता रूप लिख रहे हैं। वास्तव में इसके गुल्म एवं प्रसरणशील क्षुप होते हैं। यह वास्तव में किसी का सहारा लेकर चढ़ने वाली लता या वल्ली नहीं है जब तक सम्पूर्ण शास्त्रीय लक्षण एवं गुणधर्म सम्पन्न प्रियंगु का ठीक ठीक पता नहीं लगता तब तक इसीसे काम चलाया जा सकता है। —सम्पादक।

Scanned with CamScanner

वर्ग तथा भावप्रकाश के कर्पूरादि वर्ग में यह ली गई है।

भावमिश्र के बाद या कुछ पूर्व से ही यथायोग्य अन्वेषण के अभाव तथा अन्धानुकरण के कारण यह बूटी संदिग्ध होगई और इसके विषय में, विद्वानों में मतभेद हो गया। भावमिश्र के समय में भी एक ही प्रकार के दो क्षुप या दो विभिन्न प्रकार के एक निर्गन्ध या अत्यल्पगंध युक्त एवं दूसरी गन्ध युक्त प्रियंगु का उपयोग होता रहा है, ऐसा प्रतीत होता है। इसीलिये भावमिश्र जी ने प्रियंगु और गन्धप्रियंगु ऐसे दो नाम देकर कह दिया है कि प्रियंगु के समान ही गुणधर्म विशिष्ट गंधप्रियंगु होती है "तद्वद् गंध प्रियंगुका"। यही बात केयदेवादि निघण्टुकारों ने भी कही है। इससे इन दोनों में भिन्नता सूचित होती है। बस यहीं से संदिग्धता का सूत्रपात हुआ है। और भी आगे मतभेद हुआ जो अब मुख्यत: तीन प्रकार के प्रियंगु नाम से व्यवहार किया जाता है।

एक तो वही है जिसका हम प्रस्तुत प्रसंग में वर्णन कर रहे हैं। इस की छोटी छोटी, कंगुनी धान्य जैसी पुष्पकलिकायें, बाजार में फूल प्रियंगु के नाम से मिलती हैं। निघण्टुकारोक्त इसके रूप परिचयात्मक पर्यायवाची फालिनी, लता, महि लाव्यया, कांता, कृशाङ्गी, गन्धफला, पर्णभेदनी, अङ्गनाप्रिया आदि नाम इसके लतारूप क्षुप से मिलते जुलते हैं तथा बनस्पति विशेषज्ञ एवं अन्वेषक श्री ठा. बलवन्तसिंह जी, श्री कविराज भीमचन्द्र चटर्जी द्रव्यगुण विज्ञान कर्त्ता श्री प्रियव्रत शर्मा, आचार्य, श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी आदि विद्वानों ने इसे प्रियंगु माना है। श्री भीमचन्द्र चटर्जी द्वारा लिखित (The economic botany of India) नामक ग्रन्थ में लिखा है कि 'नेपाल, चटगांव तथा पूर्व बंगाल के कुछ भागों में इसीका व्यवहार प्रियंगु के रूप में किया जाता है' नेपाल में दयालो तथा श्वेत दयालो नाम से उपयोग में लाई जाने वाली लताओं का वर्णन उपर्युक्त (प्रस्तुत प्रसंग की) लता से ठीक मिलता है। दयालो व श्वेत दयालो एक ही समान हैं, किन्तु अन्तर इतना ही है कि श्वेत दयालो गन्धयुक्त होती है एवं इसके पत्ते कुछ बड़े, अधिक श्वेत तथा स्पर्श में खुरदरे होते हैं। इससे मालूम होता है कि भावप्रकाशोक्त प्रियंगु तथा गंध प्रियंगु ये दयालो तथा श्वेत दयालो हैं। जिला गढ़वाल व अल्मोड़ा में दहिया के नाम से यह प्रसिद्ध है तथा कुमाऊं प्रांत के वैद्य इसको प्रियंगु मानते हैं। अभिनव बूटी दर्पणकार स्व. श्री रूपलाल जी वैद्य ने भी इसका अनुमोदन किया है, इसीको प्रियंगु माना है। आचार्य श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी भी इसी का अनुमोदन करते हुए अपने एक लेख में लिखते हैं, कि "देहरादून, अल्मोड़ा एवं नैनीताल की तराई की इस लता के पुष्प बड़े बड़े एवं विशेष सुगंधित होते हैं। इसको वहां के लोग 'दहया' या 'दया' कहते हैं। तराई भांवर के इलाकों में तथा माला जंगल व तराई में यह खूब पैदा होती है। इसके दो प्रकार हैं—एक तो वह जो कि घरों में लगाया जाता है, इसे वहां के लोग 'मोतिया' कहते हैं। क्योंकि इसके फूल, फल युक्त होने पर मोती जैसे हो जाते हैं। दइया या दाया यह दयिता (प्रियवल्लभा) का अपभ्रंश है। दूसरी वह जो जंगलों में होती है, पीलीभीत व उसके आसपास के लोग गोन्दनी भी कहते हैं। यह शब्द 'गुन्द्रा' का अपभ्रंश है तथा गोवन्द्रिनी का निकटतम शब्द है। इसके फल सूखकर छोटे-छोटे कंगुनी (धान्य विशेष) के आकार के गोल हो जाते हैं रंग पीला होता है। अत: गौरी, पीता, कंगु, कंगुनी आदि इसके नाम सार्थक हैं। जितने भी प्रियंगु नाम से इसके स्थान पर द्रव्य लिए जा रहे हैं वे सब (शास्त्रोक्त प्रियंगु के) इतने करीब (सार्थक) नहीं आते जितना कि यह (प्रस्तुत प्रसंग का) द्रव्य आता है। हमने तो इसे ही असली मानकर प्रयोग भी किया है और इससे लाभ मिला है। नेपाल में इसके दो प्रकार मानते हैं जिसके बीज सामान्य व छोटे होते हैं, उसे 'दयालों' तथा जिसके फल पकने पर सुगंधित व अधिक श्वेत होते हैं उसे श्वेत दयालों कहते हैं। अग्निपुराण व 'बृहत्संहिता की भी बातें इसमें मान्य होती हैं। नैनीताल, अल्मोड़ा, देहरादून, काश्मीर, नेपाल, मंसूरी में इसके क्षुप गृहों में तथा उद्यानों में लगाते हैं। इसके क्षुप की ऊंचाई अधिक से अधिक ३ फीट तक हमने देखी है। जब यह पुष्पित व फलित होता है तब देखने वाले मुग्ध होजाते है अत: यही असली प्रियंगु है।"

"इसके श्वेत सरसों जैसे आकार के क्षुद्र फलों के वृन्त भाग छोटे किंतु स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। वृन्त के

Scanned with CamScanner

आगे पुष्प बाह्यावरण का भाग फलावरण के रूप में दिखाई देता है। यह फल के ¾ भाग तक रहता है। इसमें ४ नोकदार पत्र होते हैं। वृन्त के पास से दो रेखायें फल के अग्र भाग तक जाती है। अतः इसके दो भाग हो जाते हैं। प्रत्येक भाग के पुनः दो भाग होते हैं। इस प्रकार इसका भीतरी भाग ४ खण्डों में विभक्त हो जाता है। फल के बाहर की तरफ एक पीत वर्ण का आवरण रहता है। यह इसके गूदे का भाग होता है जो पकने पर सूखकर पीत श्याम वर्ण का हो जाता है। इसके दो प्रधान खण्ड बनते हैं। प्रत्येक खण्ड में दो बीज रहते हैं। बीजों का आकार त्रिकोणाकार होता है। बाहर की ओर का भाग उन्नतोदर तथा भीतरी पृष्ठ भाग चपटा समतल होता है। ये श्यामारुण वर्ण के होते हैं। बीज का ऊपरी भाग नारङ्गी की तरह गोल बीच में दबा हुआ होता है। वजन में ५० बीजों का भार दो गुञ्जा होता है……,'।

—सचित्रायुर्वेद से साभार

नोट नं० २—स्व० आचार्य यादव जी आदि विद्वानों की मानी हुई दूसरे प्रकार की प्रियंगु वह है जिसे भाषा में महालिब, गहुला, घऊंला, खेवटी, गावल आदि, अंग्रेजी में (Perfumed cherry) लेटिन में प्रुनस महालिब (Prunus Mahaleb) कहते हैं। तरुणी कुल (Rosaceae) के इस बहुशाखी झाड़ीदार क्षुप की शाखायें सीधी फैलने वाली होती हैं।

पत्र—एकान्तर, सदल, संयुक्त, कुछ लम्बे अंडाकार, बहुधा हृदयाकार, किनारा कुछ झुका हुआ दन्तुर, छोर में अल्प नुकीले।

पुष्प—शाखाग्रोद्भूत छोटे-छोटे उन्नतोदर, सिकुड़े हुए से पीत या श्वेत वर्ण के।

फल—छोटे-छोटे अण्डाकार ¾ इंच व्यास के रोमश, फल के भीतर कड़े बीज होते हैं। जिनमें पीत धूसर वर्ण की चिरौंजी या गेहूं के आकार एवं वर्ण जैसी गिरियां (मज्जा) होती हैं। इन्हें चबाने से हाइड्रोसाइनिक एसिड (Hydrocyanic acid) की तीव्र गन्ध आती है। वैसे यह सुगन्धित होता है। इसकी मूल साधारण गोल व रोमश है।

प्रियंगु नं. २
PRUNUS MAHALEB LINN.

इसके क्षुप बलुचिस्तान, पश्चिमी एशिया व यूरोप में पैदा होते हैं।

नोट—यद्यपि आधुनिक संकुचित भारत में ये क्षुप प्राप्त नहीं होते तथापि प्राचीन वृहत्तर भारत (जिसमें बाल्हीक-बलुचिस्तान, बलख बुखारादि देश सम्मिलित थे) में ये अवश्य थे। अतः यह हमारे लिये उपेक्षणीय नहीं होना चाहिए।

हमारे ख्याल से निघण्टुकारों की गन्ध प्रियंगु इसे मानना अधिक श्रेयस्कर है। बम्बई एवं महाराष्ट्र प्रांतों तथा गुजरात में आमतौर से बाजारों में पंसारियों की दूकानों में गेंहूला, गहुला, गावल, घऊंला नामों से इसके बीजों की गिरी बिकती है। ये गिरी गेहूं के वर्ण वाली तथा स्वाद में कड़वी और सुगन्धित होती है। महाराष्ट्र में इसके साथ श्वेत चन्दन का बुरादा व कपूर

Scanned with CamScanner

कचरी का चूर्ण मिलाकर पीसकर सुगन्धित लेप या उबटन, शरीर को सुगन्धित, शांतिप्रद बनाने के लिए किया जाता है। हम समझते हैं कि चरक ने रक्तपित्त से पीड़ित व्यक्ति की दाह शांति के लिये अन्यान्य उपायों के साथ ही में (च. चि अ. ४.) चन्दन युक्त जिस प्रियंगु के लेप से उपलिप्त श्रेष्ठ स्त्रियों के स्पर्श का विधान किया है वह शायद यही गेंहुला हो। बहुत प्राचीन काल से यह उद्वर्त्तन एवं स्त्रियों के प्रसाधन कार्यार्थ उपयोग में आ रहा है आचार्य यादव जी ने अपने द्रव्यगु ण विज्ञान में लिखा है कि अलसी प्रियंगु यही है।

यह स्त्रियों के प्रसाधन कार्य में उपयुक्त होने एवं अपनी रक्त स्तम्भक क्रिया द्वारा उनके रक्तप्रदर में लाभ-दायक होने तथा पुरुषों के लिये यह बाजीकर होकर स्त्रियों को आनन्दवर्धक होने से 'अङ्गनाप्रियता' यह इसका नाम सार्थक होता है। तथा महाराष्ट्र की ओर अन्य स्थानों में भी विवाह के अवसर पर बधू को उपहार स्वरूप अन्यान्य वस्तुओं के साथ जो सुहाग पुड़ियां दी जाती है उनमें इसका प्रमुख स्थान है।

नाम—

सं—प्रियंगु, फलिनी, कान्ता, गन्धफली, अंगना प्रिया श्यामा इ.। हिं.—प्रियंगु, डइया सुमली। म.—गेहुला। बं.—मठारा। ले.—कैलिकार्पा मेक्राफाइला।

रासायनिक संगठन —

इसके कुछ बीजों में पद्मकाष्ठ में पाया जाने वाला हायड्रोसायेनिक एसिडनामक तीव्र विष रहने के कारण इसका आभ्यन्तर उपयोग सावधानी से किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें काऊमरिन (Coumarin), सलीसिलिक एसिड़ (Salicylic acid) तथा अमिग्ड़लिन (Amygdalin) ये पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त शीत वीर्य, कटु विपाक, कटु पौष्टिक, दीपन, मूत्रल, वेदनाहर है। पीड़ायुक्त अजीर्ण, आमाशय के क्षत एवं आमाशय के अर्बुद में तथा दाह ज्वर, रक्तविकार आदि में इसका प्रयोग किया जाता है।

यूनानी मत से इसके पत्ते व शाखायें कृमिनाशक, पसीने की दुर्गन्धनाशक, फल तीव्र गंधयुक्त कडुवा होता है। यह मस्तिष्क को पुष्ट एवं सीने को मजबूत करता है। वेदनानाशक, कामोद्दीपक, फेफड़ों के लिए लाभदायक, ऋतुस्राव नियामक, श्वास, खुजली में लाभदायक तथा प्रदाह को दूर करने वाला है। —ब. चं.

गर्भवती के रक्तस्राव पर—गेहुला, कमलकंद और कोमल (कच्चे छोटे छोटे) गूलरों को एकत्र चूर्ण कर दूध में पकाकर छान कर पिलावें, तथा शक्कर के साथ लाल साली चावलों का भात खायें।

अम्ल पित्त पर—इसके चूर्ण को शक्कर के साथ सेवन करें। —ब. गु.

नोट—मात्रा–२ से ५ रत्ती तक।

बनस्पति परिचयकार श्री अन्तु भाई वैद्य जी (डायरेक्टर आयुर्वेद रिसर्च इन्स्टीट्यूट) ने इसकी मात्रा १ से ४ मा० तक लिखी है। उन्होंने इसके रासायनिक संगठन में हायड्रोसेनिक एसिड़ का उल्लेख नहीं किया है तथापि इसकी मात्रा बहुत सोच विचार कर देनी चाहिए।

नोट नं० ३—तीसरे प्रकार की प्रियंगु कहाने वाली वनस्पति निम्ब कुल (Meliaceae) की Aglai Roxburghiana या Aglai Odorata है। इसे भी सं. हिं. व बंगला में प्रियंगु कहा जाता है। डा० वा० ग० देसाई ने इसका लेटिन नाम–Aglaia Priyangu दिया है।

इसका वृक्ष साधारण, २०–२४ फुट तक ऊंचा; छाल–कुछ धूसर या खाकी रंग की, चिकनी, भीतर का काष्ठ लाल वर्ण का, शीघ्र न टूटने वाला मजबूत; पत्र—पक्षाकार ३–१० इंच तक लम्बे, १॥-३½ इंच तक चौड़े, पतले, अण्डाकार, चिकने, किंचित् पीत वर्ण के, पत्रक (छोटे पत्र) १½--४½ इंच तक लम्बे, १¾-३ इंच तक चौड़े; पुष्प-पत्र कोण से निकली हुई पत्र के बराबर लम्बी मंजरियों में पुष्प गोल १ इंच व्यास के पीताभ होते हैं।

फल—कुछ गोल,जामुन या नीमके फल जैसे ¼-¾इंच व्यासके, रोमश ताजी अवस्था मेंसुगंधित किंतुसूखने पर भूरे रंगके, सिकुड़नदार तथा आकार में छोटे एवं गंधहीन हो जाते हैं। बीज—चिपटे, लगभग आध इंच लम्बे, एक ओर से उन्नतोदर ऐसे १ या २ बीज प्रत्येक फल में होते

Scanned with CamScanner

प्रियंगु
AGLAIA ODORATA LOUR.

हैं। ये स्वाद में खट्टे, कसैले, ताजी अवस्था में सुगंधयुक्त तथा सूखने पर निर्गन्ध होते हैं।

इसके वृक्ष छोटा नागपुर, पश्चिम बंगाल में मिदिनापुर के दक्षिण की ओर उड़ीसा, तथा भारत के दक्षिण में कोंकण से लेकर सीलोन तक ६००० फीट की ऊंचाई तक पाये जाते है। जावा, सुमात्रा, मलाया आदि उपद्वीपों में भी होते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसके फलों का उपयोग बहुत दिनों से प्रियंगु नाम से किया जा रहा है। शायद भावप्रकाशोक्त प्रियंगु फल (जिसका गुण धर्म गुरु, मधुर, कसैला, रूक्ष, शीतवीर्य, संग्राही, विबन्धकारक, आध्मानकारक, बल्य, कफ पित्त नाशक लिखा है) यही हो। आधुनिक शोधानुसार फल शीतल ग्राही, दाहनाशक, पुष्टिकारक है। तथा ज्वर, पित्त एवं शोथ युक्त रोगों में और कुष्ठ में भी यह उपयोगी है। फल के खाने से कष्ट एवं पीड़ादायक मूत्र विकार दूर होता है। बीज फल के समान ही गुणकारी हैं।

मात्रा—१ से ३ मा. तक।

नोट नं० ४—प्रियंगु, कंगु (कंगनी क्षुद्रधान्य विशेष) तथा मालकांगनी विषयक विचार विमर्श—

कंगु (कंगनी, कांकुन) धान्य के पर्यायवाची नामों में प्रियंगु नाम आया है। तथा भावप्रकाश निघण्टु को छोड़ कर अन्य राजनिघण्टु, धन्वन्तरि, कैयदेव निघण्टु तथा वाग्भट में भी प्रियंगु के पर्यायवाची शब्दों में कंगु नाम दिया गया है। अतः भ्रम होना स्वाभाविक है कि क्या प्रियंगु और कंगु एक ही द्रव्य हैं? या प्रियंगु के स्थान पर क्या कंगु (कंगनी) ली जा सकती है?

प्रथम प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है कि प्रियंगु का कर्पूरादि या चन्दनादि वर्ग है तथा कंगु धान्यवर्ग का एक क्षुद्र धान्य है। तथा दोनों भिन्न भिन्न कुल के हैं अतः दोनों एक ही द्रव्य नहीं है।

विशेषतः प्रस्तुत प्रसंग की प्रियंगु के फल कंगु जैसे ही होने से (कंगु फलवद्वृत्ता फला सूक्ष्म फला वा सा प्रियंगु) तथा प्रियंगु के समान ही (प्रियं सुखं गमयति) सुख देने वाली (कं सुखं गमयतीति कंगु) कंगु होने से प्रियंगु के पर्यायवाची नामों में कंगु और कंगु के नामों में प्रियंगु शब्दों की योजना की गई है ऐसा जान पड़ता है।

द्वितीय प्रश्न के समाधानार्थ इन दोनों द्रव्यों के गुणधर्म पर विचार करना होगा। चरकाचार्य जी के मत से स्पष्ट बोध होता है कि कोदों, श्यामाक (सांवा या एक प्रकार की कंगनी धान्य), नीवार (उड़िया धान), प्रियंगु (पर्यायवाची कंगु या कंगनी) आदि धान्यों के गुणधर्म श्यामाक के सदृश ही लघु,• कषाय, मधुर, शीतवीर्य, वातवर्धक, संग्राहक, शोषक, कफ, तथा पित्त शामक हैं।

—च. सू. अ. २७।

यदि यह कंगनी पित्त, दाहादि नाशक न होती तो गर्भपात में हितकारी तथा घोड़े के लिए विशेष लाभकारी

• वाग्भट ने अष्टांगहृदय में—इस तृण धान्य या प्रियंगु को टूटे अस्थि आदि को जोड़ने वाली, बृंहण व गुरु कहा है।
—अ. सू. अ. ६।

Scanned with CamScanner

एवं पुष्टिप्रद न होती (पीछे भाग २ में कंगनी का प्रकरण देखिये)। प्रस्तुत प्रसंग की प्रियंगु भी शीतल, पित्तशामक एवं रक्तपित्तादि नाशक है।

ध्यान रहे रक्तपित्त के निदान प्रकरण में कोदों आदि कुधान्यों को पित्तकारक एवं रक्तपित्तोत्पादक जो कहा है, यह केवल इसी दृष्टि से धान्य स्वयं पित्तकारक नहीं अपितु निष्पाव (सेम), उड़द, अति खट्टी छाछ, खट्टी कांजी आदि द्रव्यों के संयोग से ही ये पित्तकारी होते हैं (देखो चरक सू. अ. १४ में चक्रपाणी की टीका)।

उक्त श्यामाक, प्रियंगु (कंगनि) आदि धान्य स्वयं पित्तकारी नहीं, प्रत्युत पित्तशामक हैं। इसीलिए रक्तपित्त की चिकित्सा में चरक ने विशेषतः रक्तपित्त के आहार में इनकी योजना की है[१] वास्तव में ये धान्य उक्त प्रकार के संयोग के कारण ही रक्तपित्त में हेतु होजाते हैं। अन्यथा ये रक्तपित्तहर ही हैं (देखें उसी चरक चि. स्थान अ. ४ में चक्रपाणी की टीका)। वाग्भट ने भी रक्तपित्त के निदान में यही बात कही है देखिये अष्टांग हृदय निदान स्थान अ. ३।

अतः यह सिद्ध होता है कि यद्यपि प्रियंगु और कंगु धान्य के गुणों में साम्य है तथापि रोगी को पथ्य रूप से आहार में कंगु और औषध रूप में प्रियंगु, गन्धप्रियंगु का ही प्रयोग करना उपयुक्त है। कंगु के पर्याय में केवल प्रियंगु नाम देने से ही प्रियंगु के स्थान में कंगु धान्य का प्रयोग करना श्रेयस्कर नहीं है। ग्रंथ में जहां स्पष्ट रूप से प्रियंगु शब्द से कंगु का निर्देश किया गया हो वहीं कंगु ली जा सकती है। अन्यथा कर्पूरादि वर्ग का प्रियंगु ही लेना उचित है।

कंगु को गंध प्रियंगु मानना भी ठीक नहीं है जैसा कि किसी किसी ने मानने का आग्रह किया है। एक तो कारण यही है कि गंध प्रियंगु यह प्रियंगु का ही एक भेद विशेष है तथा कंगु (कंगनी) खेत में पकते समय उसमें जो कुछ नाम मात्र की सुगंध होती है, वह चिरस्थायी नहीं होती और वह इतनी अधिक भी नहीं होती कि उसे गंध प्रियंगु के तुल्य माना जावे।

ध्यान रहे कंगु के कई प्रकार हैं। जो चार प्रकार भावप्रकाश में काली, लाल, श्वेत व पीली कहे गये हैं। इसमें पीली कंगु श्रेष्ठ है ऐसा स्पष्ट निर्देश किया गया है। राज निघण्टुकार ने जिस कंगु के गुण वातकृत (वात पित्त करने वाली आदि) कहा है वह किसी 'वरक' नामक निकृष्ट कंगु के मालूम देते हैं। पीतकंगु ऐसी नहीं होती जिसके विषय में हमने ऊपर ऊहापोह किया है। अस्तु।

कोई-कोई संदेहवश माल कांगुनी को ही प्रियंगु कहते हैं। यद्यपि संक्षिप्त रूप में मालकांगनी को कहीं कहीं कंगुनी कहा जाता है तथापि यह कंगु या कंगनी धान्य नहीं है तथा यद्यपि लता रूप है तथापि इसके गुणकर्म प्रियंगु से भिन्न हैं। अतः प्रियंगु के स्थान में इसका ग्रहण करना अनुचित है। आगे यथास्थान मालकांगनी का प्रकरण देखिये।

कोई भ्रमवश गोंदी या गोन्दनी (लसोड़ा की एक छोटी जाति) को कोई मेंहदी के फूल को, कोई कुमुद को, तो कोई सरसों के फूल को प्रियंगु कहते हैं।

प्रस्तुत प्रसंग की प्रियंगु के नाम, गुणधर्मादि

नाम—

सं०—प्रियंगु, फलिनी, कांता, गन्धफली, श्यामा, अङ्गनाप्रिया इ.।

हि०—प्रियंगु, फूल प्रियंगु, गंधप्रियंगु, ड़इया, दहिया, सुमाली, बूढ़ी घासी इ.। बं.—मठारा। ले.—केलिकार्पा मैक्रोफाइला।

प्रयोज्याङ्ग—फल, पुष्प, पत्र, छाल।

ध्यान रहे औषधिकार्यार्थ श्यामवर्ण तथा किंचित् पांडुवर्ण की कीड़ों से न खाई हुई प्रियंगु श्रेष्ठ है। अन्यथा विपरीत लक्षणों वाली निन्दित है[२]।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, रूक्ष, तिक्त, कषाय, मधुर, कटु विपाक, शीत वीर्य, दीपन, अनुलोमन, स्तंभन, कटु पौष्टिक, दाहहर, वेदना स्थापन, दुर्गन्धनाशक, रक्तप्रसादन, कांतिजनन,

---

१ "शालिषष्टिक नीवार कोरदूष प्रशातिका। श्यामाकश्चप्रियंगुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम्। —च० चि० अ० ४।

२ या किंचित् पाण्डुरा श्यामाकीट दोष विवर्जिता। सा प्रियंगुर्मता भद्रा विपरीता तु निन्दता॥ —भै. र.।

Scanned with CamScanner

केश्य, स्वेदहर, मूत्रविरजनीय, रक्तपित्तशामक, त्रिदोष विशेषतः वातपित्त शामक, त्वग्दोषहर, स्वेदहर तथा ज्वर, मूर्च्छा, वमन, रक्तदोष, रक्तातिसार, बवथजाड्य, तृषा, भ्रांति, पैत्तिक विकार, विषबाधा, वेदना प्रशमन, बालरोग, शूल गुल्म, पैतिक प्रमेह, दौर्बल्यादि में प्रयुक्त होती है।

दाह, शिरःशूल, अतिस्वेद तथा दुर्गन्धयुक्त व्रणों में इसका लेप करते हैं।

इसके फल मधुर तथा कुछ अम्ल या खटमीठे से होते हैं। बीज वात करने वाले, आध्मानकर होते हैं। अतिसार नाशार्थ तथा बलवृद्धि के लिये फलों का सेवन किया जाता है। मूत्रनलिका के दाह में फलों को जल में भिगो कर मसल छानकर मिश्री मिला पिलाते हैं। रक्तपित्त पर फलों के चूर्ण को शहद के साथ सेवन कराते हैं।

सन्धिवात या गठिया में इसकी पत्तियों से सेंक करते हैं। शरीर के दाहनाशार्थ पत्रों का फांट सेवन कराते हैं।

(१) रक्तपित्त तथा रक्तस्राव पर—प्रियंगु, चन्दन (लाल), लोध, सारिवा (अनन्तमूल), मधूक (मुलैठी, कोई कोई महुए के फूल लेते हैं), नागरमोथा, खस तथा धाय के फूल इनके शीत कषाय को काली मिट्टी का निथरा हुआ जल तथा साठी चावलों का जल व खांड मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। यह रक्तपित्त के प्रदाह को भी दूर करता है। —च. चि. अ. ४।

अथवा—प्रियंगु, कालीमिट्टी, लोध और सुरमाकाला समभाग चूर्ण कर उसे एक दिन (१२ घंटे) अडूसे के रस में घोटकर यथोचित मात्रा में अडूसे के रस व शहद के साथ चटाने से नाक, मुख, गुदा, योनि एवं मूत्रमार्ग से निकलने वाला रक्तपित्त का रक्त रुक जाता है। शस्त्रादि के घावों के रक्तस्राव को बन्द करने के लिए इस चूर्ण को घाव में भर देने से शीघ्र लाभ होता है।—ग० नि०।

नकसीर या नासिका के रक्तस्राव पर इस चूर्ण में शहद मिला कर नस्य रूप में योजना करें। —यो. र.।

अथवा रक्तपित्त पर—प्रियंगु के फूलों का चूर्ण कर उसमें समभाग चंदन का बुरादा और खांड़ मिलाकर चावलों के धोवन में घोल छानकर पिलाने से लाभ होता है। इससे तृष्णा, दाह, तमकश्वास भी शीघ्र शांत होती है। —च० चि० अ० ४।

(२) तृष्णा, अतिसार और वमन पर—प्रियंगु, सुरमा (काला) और नागरमोथा समभाग लेकर चूर्ण कर लें। यथोचित मात्रा में शहद के साथ चाटकर ऊपर से चावलों का जल या धोवन पिलाने से उक्त तीनों विकारों में लाभ होता है। —वं० से०।

(३) कांति वर्धनार्थ—प्रियंगु, केशर, बेर की गुठली की गिरी, सुगंधवाला और लाल चंदन को पानी में पीस कर लेप करते रहने से मुख या चेहरे की कांति की विशेष वृद्धि होती है। —भा० भै० र०।

(४) बाल रोगों पर—प्रियंगु, बेर की गुठली की गिरी, नागरमोथा, व रसोत समभाग पीसकर शहद के साथ चाटने से बालकों की तृषा, वमन और अतिसार नष्ट होते हैं। —वृ० मा०।

(५) व्रणों पर—प्रियंगु, धाय के फूल, मुलैठी और लाख समभाग का महीन चूर्ण बनालें। इसे व्रण या घाव पर बुरकने से वे शीघ्र भर जाते हैं। —भा० प्र०।

अथवा तैल—प्रियंगु, धाय के फूल, लोध, कायफल, तिनिश [तिरिच्छ, सांदन] वृक्ष की छाल, समभाग एकत्र जौकुट कर कुल ४ सेर लेकर ३२ सेर जल में पकावें। ८ सेर जल शेष रहने पर छानकर उसमें तिल तैल २ सेर तथा उक्त द्रव्यों का समभाग मिश्रित कल्क १३ तोला ४ माशा मिलाकर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रखें। यह तैल विद्रधि व घाव का रोपण करता है। —ग. नि. तथा भै. र.।

नोट—मात्रा—चूर्ण १-२ माशा।

विशिष्ट योग—

प्रियंग्वादि तैल—प्रियंगु, नीलोफर, मुलैठी, त्रिफला, रसोत, लाल चंदन, श्वेतचंदन, मजीठ, सोया या सौंफ, राल, सेंधानमक, नागरमोथा, मोचरस, अनंतमूल, मकोय, बेल की छाल, गंधवाला, गज पिप्पली, पिप्पली, काकोली-क्षीरककोली (इनके अभाव में असगंध) समभाग एकत्र चूर्ण ३२ तोला का कल्क करें। इसे तिल तैल, बकरी का

Scanned with CamScanner

दूध, दही का पानी तथा दारुहल्दी का क्वाथ प्रत्येक १॥ सेर ८ तोला में मिलाकर तैल सिद्धकर लेवें। इस तैल के प्रयोग से प्रदर, योनिरोग, ग्रहणी तथा अतिसार नष्ट होता है। यह तैल गर्भरक्षक है। —भैं० र०।

प्रेम पुष्पी[1] (Passiflora Incarnata)

एरण्ड कर्कटी कुल (Passifloraceae) की इस वृक्षों तथा मकानों की दीवारों पर शीघ्र बढ़ने वाली, दीर्घ प्रकाण्डीय लता का काण्ड—काष्ठमय, कड़ा २४ से २७ फुट तक लम्बा ३-४ इंच व्यास का या मोटा।

छाल—कृष्णाभ धूसर वर्ण की, पतली, स्वाद में किंचित् कसैली।

शाखायें—६-१२ फुट तक लम्बी, लगभग ¼ इंच मोटी, हरिद्वर्ण की प्रचुर रसान्वित।

पत्र—शाखाओं पर, एकांतरिक, क्रमशः प्रायः २-२॥ इंच के अन्तर पर, ३ खण्डों में विभक्त दल, करतलाकार, गहरे हरे रङ्ग के, रसदार, संख्या में ५-७ तक, सूक्ष्माग्र, १-२ इंच लम्बे, लगभग ¾ इंच चौड़े तथा पत्र वृन्त लगभग १ इंच लम्बा, ⅙ इंच मोटा होता है। प्रत्येक पत्र के साथ एक तन्तु (Tendril), शिवलिंगी या कंदूरी की लताओं के तन्तु के समान उत्पन्न होता है। पत्र तथा शाखा का स्वाद पालक शाक जैसा होता है।

पुष्प—पुष्प की निम्नस्थ नाल लगभग १॥ इंच लम्बी, उसके ऊपर पुष्प वाह्यकोष के हरिद्वर्ण सूक्ष्माग्र ३ पत्र, इसी कोष के ऊपर हरिताभ श्वेत वर्ण की पुष्प पंखड़ियों का गोल चक्र तथा उस चक्र के ऊपर त्रिवर्णीय सूक्ष्म तंतुओं के ऊपर नीचे दो उपचक्र, जिनके तंतुओं का अग्रांश नयनाभिराम नीलवर्ण, मध्य विभाग दुग्धवत् श्वेत एवं मूलांश कृष्णाभ नीलवर्ण, पुष्प के मध्य में लट्वाकार पिण्डवत् उभार, उसके ऊपर लिंगवत् लघु दण्डिका एवं दण्डिका के मध्य में से ५ कृष्णाभ वर्ण के केशर तंतु उद्भव होते हैं, जिनके शिरोविभाग पर कुलथ कलायाकार पीत परागाच्छन्न घुण्डियों की छत्रछाया होती है तथा वे घुण्डियां हाथ की साधारण सी हरकत से घूम भी जाती हैं। लिंगाकार दंड का शिरोविभाग लट्वाकार और उसके ऊपर शिखा जैसा एक केशर तंतु, जिसका शिरोविभाग मुकलित होता है।
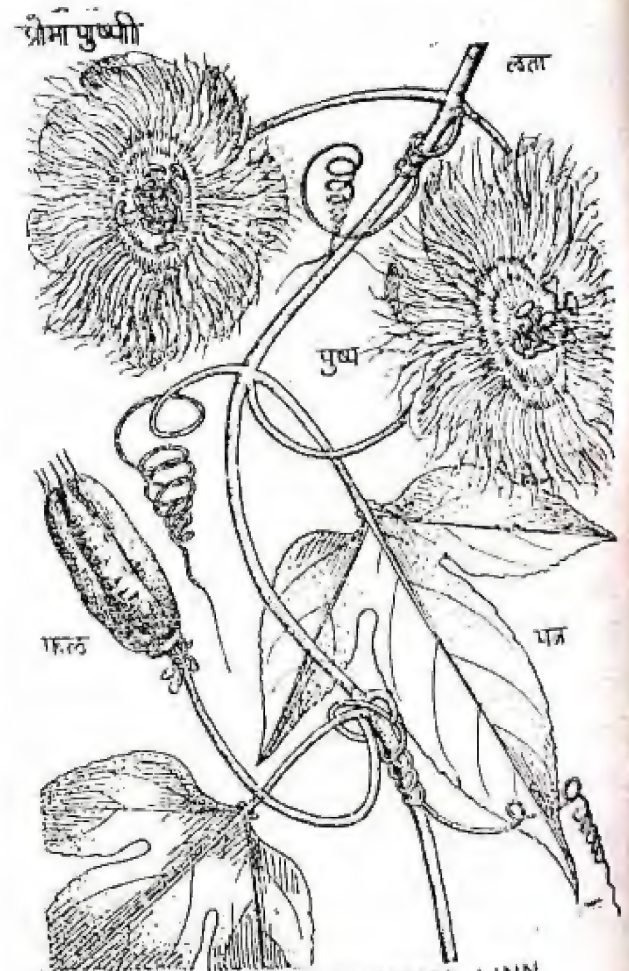
PASSIFLORA INCARNATA, LINN

[1] इस वनस्पति का पूर्ण विवरण वैद्य श्री वासुदेव आयुर्वेदाचार्य रघुनाथपुरा, जम्मू के एक लेख के आधार पर यहां दिया गया है। लेखक का कथन है कि इसका प्रेमपुष्प नाम आंगल भाषा (Passian flower) के आधार पर रक्खा गया है। पैशियन का अर्थ उत्तेजना व उत्कंठा के अतिरिक्त प्रेमार्थ में भी होता है तथा फ्लावर अर्थात् पुष्प। यह लेख आयु. महा सम्मेलन पत्रिका वर्ष ४४ अङ्क ५ में छपा है।

Scanned with CamScanner

पुष्प का व्यास लगभग २ इंच का आस्वाद अल्पगंधान्वित किंचित् मधुर होता है। पुष्प मध्याह्नकाल में तो पूर्ण विकसित किंतु सायंकाल में संकुचित होकर अपने आप को बाह्यकोष के पत्तों (Sepals) द्वारा ढांप लेता है। जून मास से सितंबर तक पुष्प आते हैं।

इस लता का मूल उत्पत्ति स्थान तो दक्षिणी अमेरिका है। किंतु इतर पाश्चात्य देशों, विशेषतः जर्मनी में भी इसकी बाहुल्यता है तथा भारतवर्ष में भी काश्मीर, कलकत्ता तथा पूना आदि की पुष्पवाटिकाओं में यह लगाई हुई उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त काश्मीर में किश्तवाड़ की उपत्यकाओं में इसकी उत्पत्ति नैसर्गिक रूप में भी होती है।

नाम—

सं.—प्रेमपुष्पी, शिवपुष्पी, शिवपोष (काश्मीरी संज्ञा शिवपोष से लेखक ने शिवपुष्प संज्ञा की कल्पना की है। इसकी शिवपोष संज्ञा किसी शैव के द्वारा दी गई है, क्योंकि इसके पुष्प के मध्य में वे चिन्ह भी विद्यमान हैं, जो शिवभक्तों की भक्ति के लक्ष्यवेध हैं, और पोष शब्द का अर्थ प्रयोग काश्मीरी भाषा में पुष्पार्थ होता है जो वास्तव में पुष्प शब्द का ही अपभ्रंश है), घड़ी फूल (यह काश्मीरी भाषा का प्रसिद्ध नाम है। इस नाम की घडंत का आधार यह है कि पुष्प का आकार जेब घड़ीवत् है)। बं०—भुमका फूल (पुष्प की आकृति उस कर्णभूषण से भी मिलती जुलती है जिसे बङ्ग भाषा में भुमका कहा जाता है)। गु.—कौरव पाण्डव (इस नाम की कल्पना का आधार भी पुष्प की प्राकृतिक रचना है। पुष्प के इन ५ केशर तन्तुओं को ५ पाण्डवों का प्रतिनिधित्व प्रदान किया है कि जिन तन्तुओं के अग्रभाग पर पीतपरागाच्छन्न कुलथ कलायाकार घुण्डियों की छत्र छाया है तथा पुष्प के उस तंतु समूह को कौरवों की सेना मान लिया है कि जिन तंतुओं ने नीचे ऊपर दो गोलाकार चक्रों का रूप धारण किया है और पुष्प पटल को कुरुक्षेत्र मान लिया है)।

अं.—पैशियन फ्लावर (Passian Flower)। ले.—पेसिफ्लोरा इनकारनाटा।

औषधि निर्माणार्थ इसका संग्रह पुष्पितावस्था से पूर्व ही अर्थात् मई के महीने में कर लिया जाता है। लेखक ने इसे न केवल पुष्पितावस्था में ही अपितु इसके पुष्पों को भी चिकित्सार्थ व्यवहार में किया है।

गुण धर्म व प्रयोग—

अवसादक, आक्षेपहर, प्रलाप निवारक, निरापद निद्राकारक तथा स्नायु दौर्बल्य, अपतंत्रक, मानसिक उत्तेजना एवं छोटे बच्चों के आक्षेपों आदि के लिये विशेष हितावह है।

(१) अनिद्रा पर—अनिद्राकारक औषधियों में जो दोष, नशे जैसा आभास होना, शरीर शैथिल्य आदि पाये आते हैं, वे इसमें नहीं है। इससे उत्तम निरापद निद्रा आती है तथा निद्रा के पश्चात् रोगी अपने को हल्का फुलका प्रतीत करता है। अनिद्रा चाहे मानसिक कारणों से हो, या शारीरिक विकारजन्य हो इसके कल्प उभय अवस्थाओं में अपना कार्य करते हैं। एतद प्रयोजनार्थ लेखक तो अधिकतर (जब श्रीनगर में रहा) इसके हिम (आगे विशिष्ट योगों में देखें) को ही व्यवहार में लाता रहा है। पाश्चात्य देशों में विशेषतया जर्मनी में अधिकतर इसके सुरासारासव (Alcoholic tincture) का प्रयोग किया जाता है जिसकी मात्रा ३० से ५० बून्द तक है। इसके हिम की एक मात्रा से कभी-कभी यदि कार्य ठीक न हो तो दूसरी मात्रा देवें।

(२) आक्षेप (Cramps) पर—यद्यपि इसके कल्प सर्व प्रकार के आक्षेपों के लिये उपयोगी है, किन्तु छोटे बच्चों के आक्षेपों (Convulsions) के लिये विशेष लाभदायक है। आक्षेपों के आवेग काल में इसका हिम ६ मा. से १ तो. तक १-१ घंटे के अन्तर से देवें, अथवा प्रेमपुष्पादि चक्रिका (आगे विशिष्ट योग देखें) १-१ रत्ती की मात्रा मेंगाता के दूध में या जल में घोलकर देवें।

(३) अपतांत्रिक (हिस्टीरिया) पर—इसके कल्प उक्त हिस्टीरिया (योषापस्मार) के लिये विशेष लाभप्रद हैं जिसके आविर्भाव का कारण कामवासना की अतृप्ति या प्रणय और प्रेम भंग हो। एतदर्थ उसका हिम दिन में २-३ बार देना चाहिये; अथवा पुष्पादि चक्रिका का

Scanned with CamScanner

२- ३ बार प्रयोग करना चाहिये।

(४) प्रलाप पर— चाहे ज्वर जन्य प्रलाप हो या किसी मानसिक विकार जन्य हो इसके प्रयोग से उभयावस्था में शांति प्राप्त होती है।

(५) शिरोव्यथा—प्रेमपुष्पी केवल सिर दर्द पर ही नहीं अपितु अन्य शारीरिक व्यवस्थाओं के लिए भी उपयोगी है। किंतु शारीरिक व्यवस्थाओं के नाशार्थ इसके हिम की पूर्ण मात्रा दिन में कमसे कम ४-५ बार देना आवश्यक है। जिस शिरोव्यथा के कारण रूप में अनिद्रा अथवा मानसिक परिश्रम हो उसकी निवृति १ मात्रा से ही हो जाती है।

(६) आक्षेपक कास—बच्चों के इस कास (काली खांसी या कुक्कुरकास) में भी दिन में ४-५ बार उसी प्रकार ही इसका प्रयोग करें, जिस प्रकार बच्चों के आक्षेप रोग में (ऊपर प्रयोग नं. २)किया जाता है।

(७) श्वास—जब आक्षेप (Spasm) के कारण श्वासावरोध हो रहा हो तो इसके हिम के २-३ बार के प्रयोग से बल्कि कई बार १ मात्रा से ही श्वासावरोध दूर हो जाता है।

विशिष्ट योग–

(१) प्रेम पुष्पी हिम–इसके काण्ड की छाल का चूर्ण ६ मा. २५ या ३० तो. शीतल जल में ७ घंटे भिगो रखने के पश्चात् उसे वस्त्र से छानकर पी लिया जाय। यही इसकी पूर्ण मात्रा है। छोटे बच्चों को दिन में ३-४ बार अथवा आवश्यकतानुसार १-१ घंटे के अन्तर से ७-८ बार तक ६ मा. तक प्रयोग कराया जा सकता है।

(२) प्रेमपुष्पादि चक्रिका—पुष्प आने से १ मास पूर्व समग्र लता को समूल काट कर गड़ासे द्वारा उसकी कुट्टीकर उसे किसी खुले पात्र में फैलाकर छायाशुष्क कर सूक्ष्म चूर्णकर लेवें। उसमें अष्टमांश सित का चूर्ण (शायद सित से लेखक का अभिप्राय सिता, मिश्री से हो।) मिलाकर मशीन यंत्र द्वारा ४-४ रत्ती की चक्रिकायें बना लेवें। मात्रा २ से ३ चक्रिका।

नोट—होम्योपैथी के साहित्य में प्रेमपुष्पी के मूलार्क (मदर टिंचर) के गुणों का जहां पर उल्लेख है, वहां उपर्युक्त इसके गुणों के अतिरिक्त कुछ और गुणों का भी उल्लेख आया है जिनमें से एक गुण यह भी है कि अहिफेनसार (मार्फिया) का जिसे व्यसन लग गया है उसके इस व्यसन से विमुक्त करने में यह (प्रेमपुष्पी) समर्थ है। इसके लिये जिन्हें इसकी लता सुलभ हो वे इसके पंचांग को रस क्रिया के रूप में परिणत कर उसे (इसके स्वरस को) किसी अफीमची की अफीम छुड़ाने के लिये व्यवहार में लाना चाहिये। जिन्हें प्रेमपुष्पी उपलब्ध न हो सके उन्हें किसी होमियोपैथिक औषधागार से इसका मदर टिंचर (Passiflora) खरीद कर अनुभव करना चाहिए।

डा० बोरिककृत होमियोपैथी मेटिरिया मेडिका में प्रेमपुष्पी के उक्त मूलार्क का वर्णन दिया हुआ है। पाठक वहां देखलें। इसकी बड़ी मात्रा ३० से ६० बूंद दिन में कई बार देनी आवश्यक है।

प्लेग नाशक जड़ी—देखो दरूनज अकरबी।

फंजियून (Tussilago Farfara)

भृङ्गराज कुल (Compositae) की इस वर्षायु प्रचुर रोमयुक्त, श्वेत वर्ण की क्षुद्र वनौषधि की छाल ऊन जैसी रोमाञ्छित।

पत्र—मूल के समीपवर्त्ती स्थान से निकले हुए, हृदयाकृति. किंचित् विभक्त, दन्तुर (कंगूरेदार), पृष्ठ भाग अत्यन्त चिकना, चमकीला, फीके हरे रङ्ग का अधोभाग श्वेत, घन रोमावृत, उभरी हुई सिराजाल युक्त।

पुष्प—पत्तों के मध्यभाग से निकले हुए लगभग ८ इंच लम्बे, गोल, रोमश ऐसे प्रत्येक पुष्प दंड पर १-१

Scanned with CamScanner

चमकीले, पीत वर्ण के, लगभग १ इंच व्यास के पुष्प आते हैं। प्रायः पत्रोद्गम से पूर्व ही पुष्प आ जाते हैं।

मूल—जमीन के भीतर फैली हुई अनेक उपमूल युक्त, चिकनी, स्वाद में कुछ कड़वी होती है।

यह बूटी पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से कुमाऊं तक ३ से १० हजार फीट की ऊंचाई तक तथा पंजाब और ईरान में विशेष पाई जाती है।

नाम -

फंजियून (इस अरबी नाम से यह यूनानी में प्रसिद्ध है)। हिंदी में—वातमान, वटमान, वरयान। अं०—कोल्ट्स फुट, एसेस फुट (Colts foot, Asse's foot)। ले०—टुसिलेगो फरफेरा।

इसमें एक रङ्गरहित तिक्त ग्लुकोसाइड पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

उष्ण, रूक्ष, तिक्त, शांतिकर, वातहर, व्रण रोपण है। इसके रोम रक्तस्रावरोधक हैं।

मूल और पत्र जीर्ण फुफ्फुस नलिका शोथ (ब्रोंकाइटीज), श्वास, छाती की पीड़ा व शोथ पर उपयोगी हैं। ये व्रण को पकाने वाले तथा [illegible] माने जाते हैं।

इसकी जड़ या पत्ते थोड़े से गुड़ में रखकर खाने से कास, श्वास, कुक्कुर श्वास में लाभ होता है। वात विकार दूर होता है।

पत्तों के धूम्रपान से भी कास श्वास में लाभ होता है, कफ ढीला होकर शीघ्र निकल जाता है। कफ में रक्त का आना भी बन्द होता है। जड़ के चूर्ण को शहद के साथ देने तथा पत्तों का क्वाथ पिलाने से फुफ्फुस के विकारों में लाभ होता है।

व्रणों पर—प्रारम्भिक अवस्था में पत्तों को बांधने से व्रण या फोड़ा बैठ जाता है। अन्तिमावस्था में बांधने से वह पक जाता है।

गीली खुजली में—पत्तों का चूर्ण लगाते हैं।

गण्डमाला के व्रणों को इसके क्वाथ से धोने से तथा इसका क्वाथ या ताजे पत्तों का रस २॥ तो. तक प्रतिदिन पिलाने से लाभ होता है।

गर्भ तथा मूढ़गर्भ पातार्थ—इसकी जड़ या पत्तों के कल्क को गर्भाशय में रखते हैं।

फंजी (Rivea Ornata)

त्रिवृत्कुल (Convolvulaceae) की इस वर्षायु, बहुत लम्बी, वृक्षारोही, सुदृढ़ लता के पत्र दूर-दूर अन्तर से लगे हुए, घुइयां (अरुई) के पत्र जैसे किंतु बहुत छोटे, गोलाकार; पुष्प–लम्बी नलिकाकार, श्वेत वर्ण के बड़े सुगंधित, रात्रि के समय विकसित होने वाले रात्रि में इनकी सुगंध दूर तक फैलती है।

फल—गोल, विधारा या समुद्र शोष के फल जैसा किंतु कुछ छोटा, किंचित् लम्ब गोल, ४ बीज युक्त होता है।

यह लता वर्षा काल में जंगलों में होती है। तथा बंगाल तथा आसाम से बेलगांव एवं मैसूर तक और मध्य प्रदेश से दक्षिण में कोंकण तक विशेष पाई जाती है।

नाम—

सं.—फंजिका, अजान्त्री, पद्मा। हि.—फंजी, कलसी लता। म.—फांजी, फांद। गु.—फांग।

अं.—गुड नाईट फ्लावर्स क्रीपर (Good night Flowers Creeper) ले.—रिविया आर्नेटा।

गुण धर्म व प्रयोग–

गुरु, कसैली, चरपरी, मधुर, स्निग्ध, वृष्य, संग्राह्य, वात पित्त शामक, कफकारी, बल्य, विष्टंभकारी, तथा हृद्रोग, कास, आमदोष आदि में प्रयुक्त होती है।

इसके पत्तों की शाक तथा पकौड़ियां बनाई जाती हैं।

Scanned with CamScanner

पैत्तिक अर्श पर—इसके पत्र रस १ तोला में बबूल की कोमल फली की लुगदी या कल्क या चूर्ण ६ मा. और थोड़ी शक्कर मिला २० तो. गोघृत के साथ प्रतिदिन प्रातः सेवन कराते हैं।

पुष्टि या बलवर्धनार्थ—इसकी जड़ को पीस कर अन्य औषधियों के साथ पौष्टिक पाकों में डालते हैं।

बिच्छू आदि विषैले कीटक दंश तथा शोथ पर इसकी जड़ व डंडी को जल में घिसकर लगाते हैं।

जंगल की जड़ी बूटी नामक गुजराती पुस्तक में लिखा है कि उक्त प्रकार से बिच्छू के डंक स्थान पर लगाने से तो यह बिच्छू के जहर का उतार ही देती है केवल इतना ही नहीं इसकी जड़ के टुकड़े का मुट्ठी में दबाकर रखने से भी जहर उतर जाता है। ये टुकड़े शहरों के बाजारों में जंगली देशी इलाज करने वाले ४-४ या ६-६ आने कीमत पर वेंचते हैं। वे लोग इस वनस्पति का नाम नहीं बतलाते। किंतु वास्तव में ये टुकड़े इसी वनस्पति के होते हैं। कुछ दिन पुराने हो जाने पर ये गुण हीन हो जाते हैं। —व. चं.

फनस देखो—कटहल।

फनस लम्बे (Agaricus Ostereatus)

संस्वेदज जाति एवं छत्रक कुल (Fungi) की यह छत्रा (कुकुरमुत्ता) प्रायः कटहल के पुराने वृक्षों पर आम, इमली, बबूल, बलूत पेड़ (Oak) पर या सड़ी लकड़ियों पर पाई जाती है।

नाम—

कटहल को दक्षिण भारत में फणस, पनस कहते हैं। उसके वृक्षों पर होने से इसे महाराष्ट्री कोंकड़ी, कच्छी भाषा में फंनस लम्बे, फनसम्बा, पनसालम्बे, फणस अलम्बी।

हि०—पेड़ का कोढ़। गु०—झाड़नो मैल। अं०—एगेरिक आफ दी ओक, टचवुड (Agaric of the oak, Touch wood) आयस्टर मशरूम (Oyster mushroom)। ले०—एगेरिकस आस्टेरीटस; ए. पालमालुस (A. Palmalus); बोलेटस क्रोकेटस (Boletus Crocatus)

इसमें एक राल, ऐन्द्रिक क्षार (Organic acid) और चिपचिपा सरेस जैसा पदार्थ (Gelatine) पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

यह संग्राही, संकोचक, लालास्राव रोधक है तथा अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, उदरशूल आदि में उपयोगी है। यह कुछ विषैली है।

अत्यधिक लालास्राव पर—इसे जल के साथ पीसकर मसूढ़ों पर लगाते हैं। बालकों के मुख के अन्दर होने वाले श्वेत छालों पर भी इसे लगाते हैं। प्रसूति के पश्चात् होने वाले अत्यधिक रक्तस्राव निरोधार्थ भी इसका प्रयोग किया जाता है।

फरंजनुष्क—देखो रामतुलसी। फरफियून—देखो थूहर नं० १ में। फरवां—देखो झाऊ तथा फरास।
फरवाह—देखो मोरवा।

फरहद (Erythrina Indica)

गुडूच्यादि वर्ग एवं शिम्बी कुल के अपराजितादि उपकुल (Papilionaceae) के इस मध्यमाकार के १०-२० फुट ऊंचे वृक्ष की छाल धूसर वर्ण की हरिताभ, पतली, साधारण पीली या श्वेत रेखायुक्त, छोटे-छोटे काले नुकीले कांटों से युक्त (ये कांटे प्रायः कोमल शाखाओं पर विशेष होते हैं)।

पत्र—पलास पत्रवत् त्रिदल, संयुक्त, ४-६ इंच के घेरे में गोलाकार या विषम चतुर्भुजाकार किंचित

Scanned with CamScanner

पारिभद्र (फरहद)
ERYTHRINA INDICA LAM.
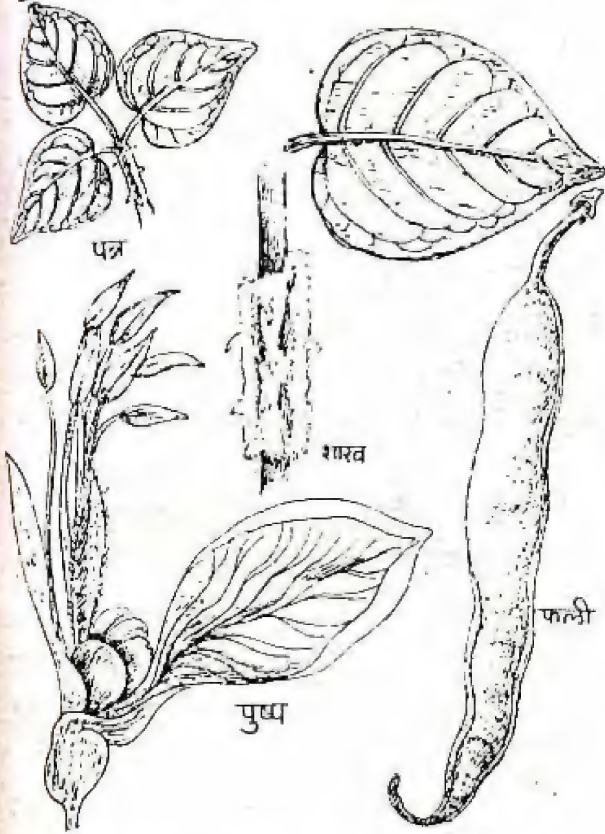
नुकीले। जिनमें से दो छोटे पत्रक पत्र दण्ड के दोनों ओर तथा एक बड़ा आगे की ओर होता है।

पुष्प—शाखाग्र भाग में या ४ इंच लंबे पुष्पदण्ड के प्रायः ६ इंच लम्बी मंजरी में अत्यन्त लाल वर्ण के सुहावने पुष्प, वसंतऋतु में पतझड़ के बाद आते हैं।

फली—सेम की फली जैसी ३-१० इंच लम्बी, चिपटी, चोंचदार, किंचित टेढ़ी, ताजी अवस्था में हरी बाद में काली पड़ जाती है।

बीज—प्रत्येक फली में बीज संख्या में ६ से ११ तक, चिकने, भूरे या लाल, अण्डाकार लगभग १ इंच से बड़े होते हैं। फली ग्रीष्मकाल में आती है।

ये वृक्ष जंगलों में प्रायः पलास वृक्षों के समीपवर्ती स्थानों में तथा ये वृक्ष शीघ्र ही बढ़ने वाले होने से प्रायः उद्यानों की बाड़ों में लगाये हुए प्रायः भारत के सब प्रांतों में कहीं न कहीं पाये जाते है। विशेषतः दक्षिणी भारत के तटवर्ती जंगलों में कोंकण, बम्बई एवं मलाबार के पहाड़ों में, बंगाल के सुन्दर वन में अधिक पाये जाते हैं।

नोट नं० १—इसी का एक उपभेद मटमैले श्वेताभ रङ्ग के पुष्पों वाला फरहद, क्वचित कहीं कहीं पाया जाता है। यह विशेष गुणकारी माना जाता है।

नं०—इसका दूसरा भेद, धवल ढाक (Ery thrina-suberosa) है। इसके वृक्ष अपेक्षाकृत छोटे, छाल मोटी कार्क वाली, पत्रक चौड़े लट्वाकार या तिर्यगायताकार एवं पुष्प का बाह्यकोष द्विओष्ठयुक्त होता है।

यह उत्तर भारत में अधिक पाया जाता है। इसे रंगरा, रंगराभी हिन्दी में तथा गुजराती में जंगरीयांखाखरी कहते हैं। इसके वृक्ष पहाड़ी भूमि में कहीं-कहीं ४० से ५० फुट तक ऊंचे भी देखे जाते हैं। पत्र, पुष्प आदि तथा गुणधर्मादि भी फरहद जैसे ही हैं।

नं० ३—बम्बई तथा मलाबार पहाड़ी पर जो इसकी जाति पैदा होती है उसे मुरा (Ery thrina stricta) कहते हैं। इसका भी उपयोग प्रस्तुत प्रसंग के फरहद जैसा ही किया जाता है। विशेषतः इसकी छाल का उपयोग पैत्तिक विकार, सन्धिवात, खुजली, जलन, ज्वर, मूर्च्छा, श्वास, कुष्ठ, अपस्मार पर किया जाता है। इसके पुष्प बिषघ्न हैं। —नाड़कर्णी

नं० ४—निघण्टु तथा प्राचीन संहिता ग्रंथों में भी जो इसके लिए पारिभद्र, निम्बतरु, पारिजात पर्यायवाची नाम दिए गए हैं उनसे भ्रम होना स्वाभाविक है। ध्यान रहे यह नीम वृक्ष से भिन्न है। इसका पारिभद्र नाम (जो नीम, देवदारु और सरल का भी है) तो इसलिए दिया गया है कि यह सर्वथा कल्याणकारी (परितः भद्रं कल्याणं करोतीति पारिभद्रः) है। नीम के समान तिक्त रसयुक्त होने से इसे निम्बतरु पर्यायवाची नाम और समुद्र तटवर्ती प्रदेशों में प्रायः अधिक पैदा होने से (पारमस्यास्तीति पारि समुद्रस्तत्र जातः पारिजातः वा पारि-जातकः) पारिजात नाम दिया गया है। किंतु हरसिंगार (पारिजात) से यह भिन्न है। आगे यथास्थान हरसिंगार का प्रकरण देखिए।

Scanned with CamScanner

कहीं कहीं देवदारु तथा सरल वृक्ष (चीड़) के लिए भी पारिभद्र शब्द की योजना देखी जाती है। किंतु ये दोनों इससे भिन्न हैं। विद्वत् समाज अधिकांश में पारिभद्र नाम से फरहद को ही ग्रहण करता है। किंतु संदर्भानुसार इसका अर्थ नीम, पारिजात या देवदार आदि भी किया जा सकता है।

सुश्रुत में पूतना प्रतिषेध नामक बालरोग में (उ. अ. ३२ पाठ ३) तथा कृमिरोग (उ. अ. ५४ पाठ २६ में) फरहद के लिए पारिभद्रक शब्द की; और उदक मेह (अ० अ० ११. ८ श्लोक) व प्लीहोदर (चि. अ. १४ के श्लोक १३) में इसी के लिए पारिजातक शब्द की योजना की गई। इसी प्रकार अन्यान्य ग्रन्थों में भी टीकाकारों ने संदर्भानुसार अर्थ लगाये हैं।

नाम–

सं—पारिभद्र, निम्बतरू, कंटकी पलाश (पलाश जैसे वृक्ष किंतु कंटक युक्त होने से) रक्त पुष्प, पारिजातक आदि। हि०—फरहद, धवल ढाक, पांगरा, पंजीरा, फराद, फालेदो, दवदव, गादफलो, पहाड़ी नीम इ.। म.–पांगारा। गु.–परारू, बांगरो, पनेरवों, पांडटवा। बं०—पालते मादार। अं०—इंडियन कोरल ट्री (Indian Coral tree) मूची बुड ट्री (Moochy wood tree) ले.—एरिथ्रिना इंडिका, ए. सुबेरोसा (Erythrina Suberosa). ए. कोरालो डेंड्रान (E. Corallodendran)

रासायनिक संगठन–

इसकी छाल में दो प्रकार की राल तथा एरिथ्रीन (Erythrine) नामक एक तिक्त विषाक्त तत्व होता है जो कुचला सत्व (Strychnine) का प्रतिविष है। यह तत्व इसकी पत्तियों में भी पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग–छाल, पत्र, पुष्प व मूल।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, कटु विपाक, कफवात शामक, रोचक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, कफनिस्सारक, मूबल, आर्तवजनन, वाजीकरण, मेदनाशक, मस्तिष्कशामक निद्राजनक, रक्त प्रसादन तथा शूल, शोथ, कृमि, अरुचि, अग्निमांद्य, विबन्ध, ज्वर, आक्षेप, कुष्ठ, अनिद्रा, कर्णरोग, फिरङ्ग, उपदंश, कास, कष्टार्तव, मूत्रकृच्छ्र, ध्वजभंग, व्रण, शोथ आदि में प्रयोजित होता है। कुचला-विष निवारक है।

छाल—इसकी छाल—कफवात शामक, ज्वरहर, कफ नि.सारक, शोथघ्न, कृमिघ्न, अतिसार निवारक, पित्तहर, शांतिदायक, मस्तिष्क के केन्द्रस्थान में यह अवसादक क्रिया द्वारा वेदनाशामक, हृदय के लिए भी अवसादक है। मज्जातन्तुओं पर होने वाली कुचला की क्रिया के विरुद्ध अपनी क्रिया द्वारा कुचला के विष की शक्ति को नष्ट करने वाली है। ऐसा डा. देसाई का मत है। यह छाल कुछ हृल्लासकारक किंतु कडुवी नहीं होती। यह ग्राही व बल्य है।

ज्वर में निद्रा लाने के लिए छाल का क्वाथ देते हैं।

कामला में–छाल का महीन चूर्ण १ तोला तक चावल के धोवन के साथ देते हैं।

वातरक्तादि रक्तविकार तथा धातु विकार में-श्वेत फरहद की छाल का चूर्ण गाय के मक्खन या घृत के साथ शक्कर मिलाकर सेवन करावें। —व. गु.।

अर्श पर—विशिष्ट योगों में पारिभद्रादि क्षार देखें।

(१) मधुमेह, उदरमेह तथा कॅंसर पर—जड़ की छाल दो तोला जौकुटकर ४० तोला जल में पकावें। १० तोले शेष रहने पर छानकर वसंतकुसुमाकर रस की एक मात्रा (१ से ३ रत्ती) के साथ प्रतिदिन प्रातः सेवन करने से शीघ्र ही मूत्रांतर्गत् शर्करा का तथा मूत्र का प्रमाण घट जाता है। —नाडकर्णी।

उदक मेह पर—छाल का क्वाथ सेवन करावें। —सुश्रुत।

कॅंसर नामक गले के व्रण पर–ताजी छाल का क्वाथ सेवन कराते हैं तथा इसी क्वाथ से प्रक्षालनादि करते हैं।

(२) नेत्र विकारों पर – छाल के अन्दर के भाग पर घृत चुपड़ कर उसे घृत के दीपक पर रखने से जो काजल जमता है उसे निकालकर आंखों में लगाने से नेत्रस्राव, नेत्रों की खुजली, नेत्र के भीतरी भाग की झिल्ली के पूययुक्त शोथादि विकार दूर होते हैं। —नाडकर्णी।

Scanned with CamScanner

नेत्राभिष्यंद में—छाल को जल के साथ पीसकर पलकों पर प्रलेप करते हैं।

नेत्रों की कफप्रकोप जन्य पीड़ा पर—इसकी जड़ की छाल का महीन चूर्ण तथा सेंधानमक चूर्ण व तिल तैल व कांजी समभाग एकत्र घोट कर रखलें। इसे आंजने से कफज पीड़ा नष्ट होती है। —ग. नि.।

(३) पूतना-ग्रह जुष्ट बालक की पीड़ा (अतिसार, ज्वर, तृष्णा, टेढ़ा देखना, रोदन, निद्रानाश तथा उद्विग्नता) निवारणार्थ—फरहद, सारिवा, ब्राम्ही, अरलू और वरुण की छाल समभाग जौकुटकर ४ तोला चूर्ण को २ सेर जल में पकाकर ४० तोले शेष रहने पर इस जल से बालक के शरीर पर परिषेचन करना चाहिये।

--सु. उ. अ. ३२ श्लोक ३।

(४) विसर्प पर–अत्यंत दाह एवं उष्णतापूर्ण विसर्प अथवा किसी भी प्रकार के पित्तरक्तप्रकोप पर—इसकी छाल का रस १-२ तोला गोदुग्ध में मिला मिश्री के साथ (या छाल का चूर्ण घी शक्कर के साथ) देने से ३-४ मात्रा में ही अपरिमित लाभ दर्शाता है।

—श्री पं. राधाकृष्ण जी द्विवेदी (र. तंत्र से साभार)।

आगे विशिष्ट योगों में–पारिभद्र तैल देखें।

पत्र–तिक्त, उष्ण, दीपन, कृमिघ्न, क्षुधावर्धक, रसायन, मृदुरेचक, मूत्रल, शोथहर, स्तन्य, आर्त्तव प्रवर्त्तक, व्रणशोधक, मूत्रविकार नाशक है।

(५) कृमियुक्त व्रणों के कृमिनाशार्थ इसके ताजे पत्तों का रस लगाते हैं।

(६) उपदंशजन्य बद (गांठ) पर–पत्तों को पीसकर पुल्टिस बना गरम-गरम बांधते हैं या गरम लेप करते हैं। उपदंशज-संधिवात तथा शोथ पर भी यह लेप लाभ करता है। पत्तों को पीस छानकर पिलाते भी हैं।

(७) कृमिरोग पर—ताजे पत्तों के २½ तोला तक रस में शहद की कुछ बूंदें मिलाकर पिलाने से गोल, चिपटे या सूत्रवत् कृमि नष्ट हो जाते हैं। इससे विरेचन होता है। -सु., वं. से.। नाडकर्णी।

(७) फिरंग, उपदंश, ज्वर, अनार्तव, कष्टार्तव, मूत्रकृच्छ्र तथा वंध्यत्व निवारणार्थ—इसके पत्तों का रस पिलाया जाता है। पत्र रस १ तो. प्रातःसायं पिलाने से मूत्रकृच्छ्र में विशेष लाभ होता है।

पत्र रस का लगातार २ या ३ मास तक सेवन कराने से मेदस्वी स्त्री का मेदा धीरे धीरे कम होकर उसे स्वाभाविक आर्तव की प्रवृत्ति होती है तथा वांझपन दूर होता है। —नाडकर्णी।

(९) जीर्ण मन्दाग्नि तथा कोष्ठबद्धता पर—इसके पत्र और आमले के पत्र समभाग जौकुट कर दो तोला चूर्ण या कल्क को ४० तोला जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराने से लाभ होता है। यह उत्तम रेचक योग है। —नाडकर्णी।

(१०) प्रसूता की गर्भाशय शुद्धि तथा दुग्ध वृद्धि के लिए—पत्तों को नारियल के जल में उबालकर, छानकर पिलाते हैं। इससे आर्तव शुद्धि एवं दुग्धवृद्धि भी होती है। —नाडकर्णी।

(११) कर्णशूल, दन्त शूल तथा अतिसार पर–ताजे पत्र रस की कान में पिचकारी देने से कर्णशूल में और पत्ररस को जल में मिला कुल्ले करने से दन्तशूल में लाभ होता है।

अतिसार विशेषतः आमातिसार पर–पत्र रस में शुद्ध रेंडी का तेल मिलाकर पिलाते हैं।

(१२) गाय, भैंसादि पशुओं की पुष्टि के लिए–इसके कोमल पत्तों के साथ तिगुना पयाल (धान के पत्ते) मिला, अच्छी तरह कुट्टी कर चावलों के भुस के साथ पानी मिला कर थोड़ा पकाकर खिलाते रहने से जानवर अच्छा पुष्ट हो जाता है, उसमें दुग्ध की वृद्धि होती है। यह विशेषतः दूध देने वाले जानवरों को खिलाया जाता है। –नाडकर्णी।

पुष्प—इसका फूल पित्त रोगनाशक तथा कर्ण पीड़ा निवारक है।

मूल—इसकी जड़ ऋतुस्राव नियामक तथा वाजीकरण है। वाजीकरणार्थ श्वेत फूल वाले फरहद की कोमल जड़ को पीसकर ताजे, ठंडे (बिना पका) दूध के साथ सेवन कराते हैं। इससे कामोद्दीपन होता है।

मधुमेह पर–जड़ की छाल २ तोले जौकुटकर ४० तो.

Scanned with CamScanner

जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छानकर नित्य प्रात: १-मात्रा वसंतकुसुमाकर रस के साथ सेवन से शीघ्र ही मूत्र में शर्करा का जाना तथा बहुमूत्र में लाभ होता है।

नोट–मात्रा–छाल का क्वाथ-२ से १० तोले तक। छाल का फाण्ट (१ भाग छाल में १० भाग जल के साथ बनाया हुआ) २ से ८ ड्राम। पत्र-स्वरस आधा-२ तोला, छाल का चूर्ण आधा से एक तोला।

विशिष्ट योग–

(१) पारिभद्र तैल (विसर्पहर)–फरहद (श्वेतफूल वाला हो तो उत्तम, अन्यथा लाल फूल वाला) के पंचांग को लेकर (पंचांग में यदि पत्र, छाल व मूल की ही प्राप्त हो जाय तो पर्याप्त है) कल्क करें। फिर उसे चौगुने नारियल के तैल में यथाविधि सिद्धकर कल्क को भी उसीमें रगड़ दें (छानने की आवश्यकता नहीं)। इस तैल को विसर्प पर लगाने से चमत्कारी लाभ होता है। चाहे सैकड़ों प्रयोगों से सफलता न मिली हो ऐसे अत्यन्त बढ़े हुए विसर्प पर भी यह तैल आश्चर्यान्वित लाभ करता है। छोटे बच्चे जिनका एक अङ्ग या सर्वांग सड़ जाता है उसे प्राय: स्त्रियां, परछावां, पल्ले की या छूत की बीमारी कहती है। उसमें स्पर्शजन्य व्रण हो जाते हैं। उस पर यह प्रयोग जादू सा प्रभाव दर्शाता है। यह अनेक वर्षों का अनुभव सिद्ध योग है। —श्री पं. राधाकृष्ण जी द्विवेदी (र. तंत्र सार से साभार)।

(२) पारिभद्रादि क्षार—फरहद (अथवा नीम)की छाल, सेहुण्ड़ (थूहर), दन्ती मूल, अर्जुन की छाल और अपामार्ग (चिरचिटा) समभाग कूट कर चूर्ण के बराबर गो मूत्र, घोड़ी का मूत्र व भैंस का मूत्र लेकर इन सब को एकत्र मजबूत मटकी में भर मुख मुद्रा कर एवं कपड़ मिट्टी कर चूल्हे पर इतना पकावें कि सब जल कर राख हो जाय। पश्चात् स्वांग शीतल होने पर अन्दर का क्षार निकाल पीस कर सुरक्षित रखें।

इसे (उचित मात्रा में) मद्य के साथ सेवन से कफज अर्श तथा शोथ और पाण्डु रोग भी नष्ट होता है। रक्तार्श हो तो इसे बकरी के दूध के साथ सेवन करावें। २, ६ या १ मास तक (आवश्यकतानुसार) सेवन करावें —ग. नि.

फरास (Tamarix Articulalta)

नोट—पीछे इस ग्रन्थ के भाग ३ में, झाऊ के प्रकरण में जिस झाऊ लाल(Tamarix Divelca)का सचित्र वर्णन दिया गया है। उसी के जाति का यह एक बागी भेद है। इसके वृक्ष झाऊ से बड़े २० से ६० फुट ऊंचे, किंतु वृक्ष से प्राप्त कीट गृह गाठें (Galls) जिन्हें माई कहते हैं अपेक्षाकृत छोटी, लगभग चने के बराबर, गोल, गंठीली, पीताभ भूरी या मटमैली रंग की होती हैं। इन्हें छोटी माई, नन्हीं माई, बम्बई की ओर मरेठी में छोटी मुई(मैन) मगिया मैन, अं.—स्माल टॅमरिस्क गॉल्स Small Tamarisk galls कहते हैं।

नाम—

हि.—फरास, फराश, लाल झाऊ, फारवा इ.।

सं.—रक्त झावुक ,महाझावुक। बं.—लाल झाऊ। ले.—टॅमरिक्स आर्टिकयुलेट; टॅमरिक्स आफिला(Tamarix Aphylla),टॅमरिक्स ओहिएन्टेलिस(Tamarix orientalis)।

इसका चित्र झाऊ के प्रकरण में देखिये। यह उत्तर भारत में नदियों के किनारे तथा पंजाब व सिंध में अधिक पैदा होता है।

इसका काण्ड–गोल, लम्बा, सीधा शाखा-श्वेताभ हरित,पत्र–झाऊ पत्र के समान, पुष्प खसखस(पोस्तदाना) जैसे श्वेत एक सींक पर ३० से ६० तक या अधिक होते हैं। मूल-मोटी,लम्बी अनेक उपमूल युक्त, भूरे रंग की पृथ्वी में गहरी गई हुई होती है।

रासायनिक संगठन—

खारी जमीन तथा समुद्र के किनारे होने वाले वृक्षों की राख में सोड़ियम सल्फेट या खारा नमक पाया जाता है। इसकी माई में माजूफल में प्राप्त होने वाला

Scanned with CamScanner

कषायाम्ल (टेनिन या टेनिक एसिड़) अधिक प्रमाण में पाया जाता है ।

गुण धर्म व प्रयोग–

शीत, रूक्ष, लेखन, शोथहर, वेदनास्थापन, रक्त-प्रसादन, यकृत व प्लीहा के लिये बल्य है । इसके प्रयोग विशेषतः झाऊ के समान ही हैं । इसकी छोटी मांई के गुणधर्म, उपयोगादि भी प्रायः झाऊ की बड़ी मांई जैसे ही हैं ।

(१) इसके पत्तों का क्वाथ या फाण्ट यकृदौर्बल्य तथा यकृच्छूल में उपयोगी है । दंतशूल शमनार्थ-पत्र क्वाथ के कुल्ले कराते हैं । इससे मसूढ़े भी दृढ होते हैं । तथा यह क्वाथ कई रक्तविकारजन्य रोगों में पिलाया जाता है ।

(२) इसके पत्तों की धूनी, अर्शांकुरों को गिराने के लिये तथा व्रणों को विशेषतः मसूरिका के व्रणों को सुखाने के लिये दी जाती है । व्रणों पर पत्तों को महीन पीस कर बुरकते भी हैं ।

(३) प्लीहा वृद्धि एवं प्लीहा शोथ पर–इसके पंचाङ्ग को जल के साथ महीन पीस कर गरम लेप करते हैं ।

(४) चेहरे की कांति बढ़ाने के लिये एवं त्वचा के दाग, धब्बे, मुख पर होने वाले विवर्ण या पैत्तिक शोथ को दूर करने के लिए पत्तों को या छाल को जल के साथ महीन पीस कर पतला लेप करते हैं । शरीर के किसी भी भाग में हुए शोथ को यह लेप विलीन कर देता है ।

(५) गर्भविरोधार्थ—इसके पत्र रस में घुंघची (गुंजा) के चूर्ण को खूब खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना कर स्त्री को ऋतु स्नान के पश्चात् ३ दिन तक १–१ गोली प्रतिदिन ताजे जल के साथ देने से गर्भावरोध हो जाता है ।

—वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य

(६) अग्निदग्ध पर—इसकी छाल की राख को लगाने से आग से जलने पर लाभ होता है । यह राख पीव को सुखाने के लिए भी उत्तम है ।

फरास की लकड़ी अधिक मजबूत नहीं होती, किंतु इसमें कभी घुन आदि कीड़े न लगने से लोग इसे मकानों की छतों में लगाते हैं ।

—वैद्य श्री मोहरसिंह जी आर्य, स्थान मिसरी ।
पोस्ट चरखी दादरी जिला महेन्द्रगढ़।

फरासियून—देखो पहाड़ी गंदना ।

फरीद बूटी[1] (Farsetia Aegyptiaca)

राजिका कुल (*Cruciferae*) की इस बूटी के १०-१२ इंच ऊंचे क्षुप प्रायः जमीन पर फैले हुए ।

पत्र –गोल, बहुत कुछ खरैंटी के पत्र जैसे किंतु छोटे नोकदार, गहरे हरित वर्ण के कुछ काले से, ऊपर मृदु श्वेत रोमाच्छादित ।

पुष्प—पीताभ गुलाबी रंग के, बहुत छोटे-छोटे, श्वेत रोमश ।

बीज—कृष्णाभ रक्तवर्ण के होते हैं ।

इसके क्षुप प्रायः जलाशयों के समीप के रेतीले स्थानों में उत्तर प्रदेश में गंगाजी के तटवर्ती प्रदेशों में तथा सिंध, पंजाब, पश्चिमी सौराष्ट्र आदि में विशेष पाये जाते हैं ।

नाम–

हि०—फरीद बूटी, फरीद मूली, मुलेई । ले०—फेरसेटिया ईजिप्टीयाका, फेर. होमिलटोनिया (Farsetia Homiltonia) ।

---

[1] यों तो पाताल गरुड़ी को प्रायः फरीद बूटी कहा जाता है (पीछे पाताल गरुड़ी का प्रकरण देखिए) । कोई-कोई खरैंटी लता (नागबला Sida Humalis) को भी फरीदबूटी कहते हैं । भाग ३ में खरैंटी लता का प्रकरण देखिये । यहां जिसका वर्णन दिया जा रहा है वह इससे भिन्न है ।

Scanned with CamScanner

गुण धर्म व प्रयोग–

मधुर, तीक्ष्ण, चेपदार (पिच्छिल), शीतवीर्य, प्रसन्नताजनक, तृष्णाशामक, ओजशक्तिवर्धक, वातविकार नाशक, अस्थि संधानक, प्रमेहहर, व्रण, नाड़ी व्रण नाशक तथा पित्तज्वर, हृत्स्पंद, वातजमूर्च्छा पर लाभदायक, ज्वरघ्न है।

(१) दूषित व्रण, नाड़ी व्रण, भगंदरादि पर–इसके पत्तों की पुल्टिस बांधते हैं तथा पत्र रस या पत्र क्वाथ से प्रक्षालन करते हैं।

(२) अस्थिभंग में पत्रों का प्लास्टर चढ़ाते हैं। पंजाब की ओर संधिवात पर इसका अधिक प्रयोग किया जाता है।

(३) पित्तजनित स्राव एवं प्रदर और प्रमेह पर–इसे ठंडाई की तरह घोट पीस तथा छान कर मिश्री मिला पिलाते हैं।

(४) स्वप्नदोष, शुक्रमेह तथा मधुमेह पर—फरीद बूटी, आमला २॥-२॥ तो., गुलाब पुष्प १। तो. और मिश्री ५ तो. सबका महीन चूर्ण कर रखें। प्रातः सायं ६-६ माशा दूध २० तो. के साथ लगातार ४१ दिन देने से अप्राकृतिक मैथुन सम्बन्धी स्वप्नदोष नष्ट होता है। शरीर में स्फूर्ति एवं ओज की वृद्धि होती है। साथ ही साथ निम्न 'विद्युत तिला' की मालिश करने से स्नायु-दौर्बल्य नष्ट होता है।

तिल तेल ४ तो. को छोटी कड़ाई में डालकर आग पर गरम करें, फिर उसमें गांजा १ तो. को पानी के साथ खूब पीसकर लुगदी बनाकर छोड़दें। पानी जल जाने पर उतार लें छानकर शीशी में रखें। रात्रि में सोते समय इन्द्री पर इसकी मालिश करें। तेल, गुड़, इमली (खटाई) त्याग करें।

यह बहुत पुराना एक हस्तलिखित पुस्तक से प्राप्त योग है। मैं कईबार आजमा चुका हूं। अनुभूत है।

मधुमेह (डाईबिटीज) पर—इसके १ सेर पंचांग को कूट पीसकर ४ सेर पानी में भिगोकर दूसरे दिन भबके द्वारा अर्क खींच लेवें। प्रातः सायं १-१ तो. अर्क भोजन के बाद पीने से मधुमेह नष्ट होता है।

—वैद्य स्वामी नारायण 'वियोगी' आयु. शास्त्री
रामद्वारा पो० छापर (राजस्थान)

नोट—मात्रा—१॥ से ६ माशा तक।

यह कफ प्रकृति वालों के लिए हानिकर है। हानि निवारक—काली मिर्च, शहद। प्रतिनिधि तुलसी बीज।

फरेन्द जामुन, फरेन्दा—देखो जामुन।

फलदू (Nauclea sessilfolia)

मंजीठ कुल (Rubiaceae) के इस बड़े वृक्ष के पत्र गहरे हरितवर्ण के, चिकने होते हैं। ये वृक्ष रामनगर, हल्द्वानी, चटगांव और बर्मा में अधिक होते हैं।

नाम–

हि०—फलदु। बं० –कुम। बरमा—टेन काला। ले०—नोक्लीया सेसिलीफोलिया।

गुण धर्म व प्रयोग–

छाल संकोचक, पौष्टिक, रक्तस्रावरोधक मानी जाती है। यह आंत्र विकार, ज्वर, अतिसार, यकृद्विकार, मसूढ़े की सूजन, गर्भाशय के परदे की सूजन तथा जिसमें कफ के साथ खून जाता हो ऐसे क्षय में यह लाभदायक है।

कम्बोडिया में इसकी लकड़ी पौष्टिक एवं शोधक मानी जाती है। इसकी छाल का शीतल निर्यास या क्वाथ प्रसूति के समय स्त्रियों को १४-१५ दिन तक दिया जाता है।

—व. चं.

फरीदवेल—देखो फरीद बूटी। फलवारा (फुलवारा, फुलेल)—देखो चिडरा। फलान्दा—देखो जामुन।

Scanned with CamScanner

फलिन्द्र (Celastrs Spinosa)

ज्योतिष्मति कुल (Celastraceae) की इस बूटी का कोई विशेष वर्णन हमें प्राप्त नहीं हुआ।

इसे हिन्दी में-फलिन्द्र, पंजाबी में-कंडियारी तथा ले० -सेलास्ट्रस स्पिनोसा कहते हैं।

औषधि कार्य में—इसके बीज लिये जाते हैं।

बीजों का धूम्र (धुंआ) दांत के दर्द के लिए उत्तम लाभकारी है।

— नाड़कर्णी

फांगला (Pogostemon Parviflorus)

तुलसी कुल (Labiatae) के प्रायः ३ फुट तक ऊंचे ताम्र वर्ण के इस क्षुप के काण्ड-प्रायः ताम्र या बैंगनी रङ्ग के, चौपहले, चिकने, चमकीले, किंचित रोमश।

पत्र—लम्बगोल, लगभग ३-६ इंच लम्बे, नोंकदार, लट्वाकार, अनियमित, कंगूरेदार या अखण्ड, काली दाख जैसी गन्ध वाले होते हैं।

पुष्प—तुर्रो में या गुच्छों में बहुत घने लटकते हुए ताम्र वर्ण के या कहीं-कहीं लाल-पीले छींटों से युक्त श्वेत रङ्ग के आते हैं। पुष्प का भीतरी भाग ३ मि. मी. तक लम्बा होता है।

फली –४ मि. मी. तक लम्बी। प्रायः इसके पुष्पों में ही बीज होते हैं, फली नहीं आती। उक्त फली वाली इसकी एक अन्य जाति है। गुणधर्म समान ही हैं।

इसके क्षुप दक्षिण में रत्नागिरी तथा कोंकण में अधिकतर ऊसर भूमि में एवं जंगलों में पाये जाते हैं। उत्तर में ४ हजार फुट की ऊंचाई तक (मालकोट में) प्रायः नालों में पाये जाते हैं।

नोट-यह जंगली तुलसी का ही एक भेद मरुवा तुलसी की छोटे पत्तों वाली एक जाति (संस्कृत में फणिज्जक नाम वाली) है। तुलसी मरुवा का प्रकरण भाग ३ में देखिये। डा० वा. ग. देसाई ने इसका संस्कृत नाम फणिज्जक ही रक्खा है।

नाम—

सं.—फणिज्जक। हि.—फांगला पागला, इ०। म.—फांगला। ले०—पोगोस्टेमन पर्विफ्लोरस, पो. परपरासेन्स (P Purpurascens), पो. प्लेक्ट्रेन्थॉइडिस P. Plectrantholdes), पो. परपरिकेलिस (P. Purpuricals)

फांगला
POGOSTEMON PARVIFLORUS BENTH.

रासायनिक संगठन—

इसमें पोगोस्टेमोनिन (Pogostemonine) नामक

Scanned with CamScanner
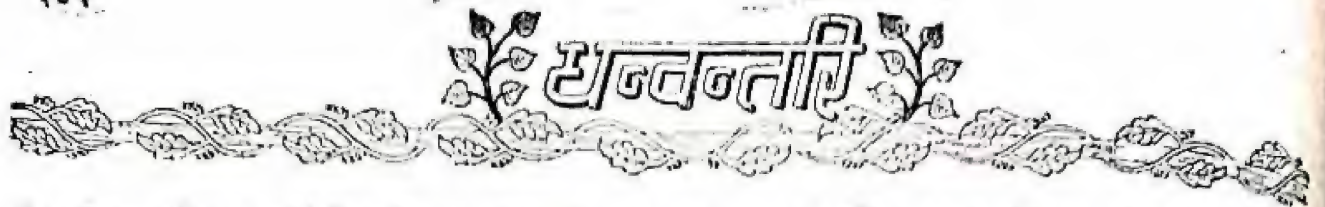
पीतवर्ण का वार्निस जैसा किंचित तिक्त स्वादवाला एक क्षाराभ (Alkaloid), तथा देवदार की सी गंध वाला इसका प्रभावकारी उड़नशील तैल, राल और एक स्तंभनकारी द्रव्य पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, तिक्त, रूक्ष, उष्ण, दीपक, तीक्ष्ण, रोचक, हृद्य, रक्त संग्राहक, उत्तेजक, वातकर, कफकारक, व्रणरोपक, अर्श, कुष्ठ, वृश्चिक,सर्पादि विष नाशक है।

(१) व्रणों पर—इसके ताजे पत्तों को कुचल कर पुल्टिस बना कर बांधने से व्रण की गंदगी दूर हो कर शुद्ध होता है। फिर स्वाभाविक ही स्वस्थ मांसाङ्कुरों की उत्पत्ति होकर व्रण भर जाता है।

व्रण या जखम के कृमिनाशार्थ इसके ताजे पत्तों को हाथों में मसलते हुए उसका रस व्रण पर टपकाने से तथा शेष लुगदी को उस पर रख कर बांधने से शीघ्र ही कृमि नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार १-२ बार प्रयोग करें पशुओं के जख्मों के लिये भी यह प्रयोग उत्तम है।

—ब. गु.

(२) मूत्राघात, तथा वातजन्य बेदना पर—इसके पत्र रस को इन्द्रिय पर लगाने तथा रस की एक बून्द मूत्र द्वार में डालने से मूत्राघात दूर होता है।

वातज वेदना पर—पत्र रस का लेप करें। —व. गु.

(३) रक्तस्राव, उदर शूल और ज्वर पर—रक्त स्राव निवारक यह एक प्रसिद्ध औषधि है, तथा गर्भाशय सम्बन्धी अत्यधिक रक्तस्राव में इसका सफलतापूर्वक उपयोग किया जाता है। इस कार्यार्थ इसकी ताजी जड़ का फाण्ट दिया जाता है।

उदर शूल तथा ज्वर पर इसका रस दिया जाता है।

(४) सर्प विष पर—तेज फुंकार करने वाले विषैले फुरसा या कपर (Achis Curlnata) नामक सर्प के विषको दूर करने के लिये इसकी ताजी जड़ का टुकड़ा जल में औटा कर ३ वार पिलाते हैं। जड़ को पानी में घिस कर दंश पर लगाते हैं। अथवा पत्तों की पुल्टिस बना कर लगाते हैं। इस प्रकार ७ दिन तक प्रयोग चालू रखते हैं। विष के उपद्रव दूर होते हैं। भ्रम चक्कर कम होते हैं। शरीर के किसी भी स्थान से होने वाला रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इस कार्य के लिये इसकी ताजी जड़ें लेना ही उत्तम होता है। —व. चं.

फांद—दे० फंजी। फाज, फाजा—दे० पद्माख।

फाफरा (Fagopyrum Esculentum)

चुक्रकुल (Polygonaceae) का यह एक पहाड़ी धान्य है, जो प्रायः पहाड़ी खेतों में पैदा दिया जाता है। इसके पौधे १-३ फुट ऊंचे; पत्र—नुकीले, त्रिभुजाकार या ताम्बूलाकार; पुष्प—श्वेत या गुलाबी रंग के होते हैं।

बीज—जिसे फाफरा कहते हैं, गेहूं से बहुत छोटे आकार के पृष्ठ भाग पर त्रिकोणयुक्त होते हैं।

यह वम्बई प्रांत में बहुत बोया जाता है। तथा अमेरिका आदि विदेशों में भी इसकी खूब खेती होती है।

नाम—

हि.—फाफरा, कासपात, कुटु ओगल। म०—कुटु। अं० —बकह्वीट (Buck wheat)। ले०—फेगोपायरम एसकुलेंटम।

दानों (बीजों) में स्टार्च अधिक प्रमाण में पाया जाता है।

इसमें गेहूं का अपेक्षा कम पोषक शक्ति है। तथापि यह भारत तथा संसार के कई स्थानों में एक सार्वजनिक महत्वका अनाज माना जाता है। भारत में कई स्थानों में उपवास, व्रतादि में इसकी पूरियां बनायी जाती हैं। रोगी को पथ्य में भी यह दिया जाता है। यह कुछ उष्ण गुणधर्म युक्त है। इसके दानों को कूट पछोड़कर ऊपर का छिलका दूर कर पीसकर रोटियां, हलुवा, लपसी आदि बनाते हैं।

नोट—इसकी ही एक जाति विशेष बनोगाल

Scanned with CamScanner

(Fagopyrum Cymosum) नामक हिमालय में ५ से ११ हजार फुट की ऊंचाई तक पैदा होती है। यह पथ्य रूप में उदरशूलादि उदर सम्बन्धी विकारों में तथा पैत्तिक अतिसार में रोगी को दी जाती है।

फारया—दे० फराग।

फालसा (Grewia Asiatica)
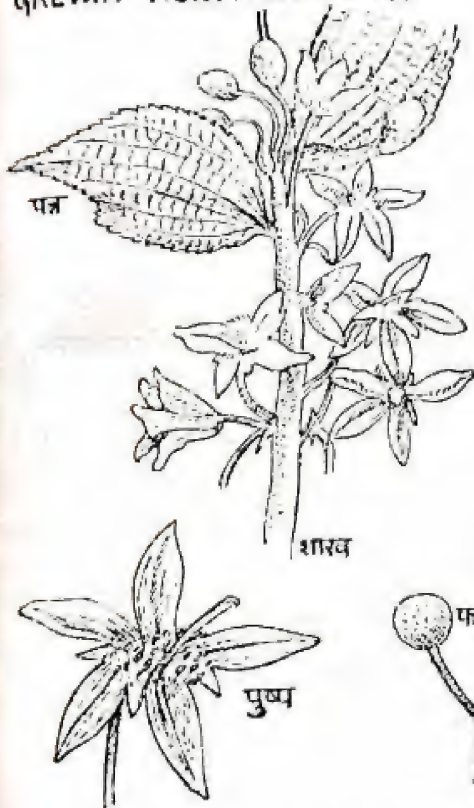
फल वर्ग एवं अपने ही परुषक कुल[1] (Tiliaceae) के प्रमुख इस २०-२५ फुट ऊंचे वृक्ष के काण्ड की छाल धूसरवर्ग की; पत्र–१-३ संयुक्त या अलग-अलग एक-एक गोल, कंगूरेदार, खुरदरे, सूक्ष्म रोमश ४-५ इंच लम्बे, २-२॥ इञ्च चौड़े, पत्रवृन्त–आधा इञ्ची; पुष्प-झुमकों में या अलग-अलग ५ पंखुडी वाले, बाह्य भाग में अल्प लोमयुक्त, पीतवर्ण के छोटे-छोटे; फल–गोल बड़े मटर या जंगली झरबेरी जैसे धूसर वर्ण के, कच्ची अवस्था में हरिताभ कत्थई रंग के, अर्ध पक्वावस्था में रक्ताभ व खट्टे, ग्रीष्मकाल में परिपक्व होने पर बैंगनी रङ्ग के मधुराम्ल होते हैं। मार्च अप्रैल मास में कहीं कहीं जुलाई-अगस्त में फूल तथा फूल के बाद एक माह में फल आते हैं।

इसके वृक्ष बिहार, बंगाल, उड़ीसा, छोटा नागपुर तथा उत्तर भारत के बाग-बगीचों में विशेष लगाये जाते हैं। छोटा नागपुर की ओर जंगलों में ये स्वयं पैदा होते हैं।

नोट—नं० १—फल भेद से इसकी दो जातियां हैं–एक का वृक्ष छोटा ५ से १४ फुट ऊंचा तथा फल स्वरस, कच्ची दशा में खट्टे व पकने पर खटमीठे होते हैं। यह अम्लवर्ग का है। यूनानी वैद्यक में यह 'फालसा-शर्बती' कहाता है।

दूसरे का वृक्ष बड़ा २५ फुट तक ऊंचा, फल–अल्प रस युक्त, कच्ची दशा में खटमीठा तथा पकने पर मीठा होता है। यह आयुर्वेद के मधुर स्कन्ध में लिया गया है। यूनानी में इसे 'फालसा शकरी' कहते हैं।

नोट—नं० २–चरक के मधुरस्कन्ध, विरेचनोपग, श्रमहर, ज्वरहर तथा आसवयोनि-फल में; और सुश्रुत के परुषकादिगण में यह लिया गया है।

नोट—नं० ३—संस्कृत में धन्वन तथा हिन्दी में जिसे धामिन कहते हैं वह इसी की एक जाति विशेष (Grewia Elastica) है। उक्त नोट नं० १ में जो प्रथम जाति कही गई है, वही यह मालूम देती है। बनौषधि विशेषज्ञ श्री बलवन्तसिंह जी अपने बनौषधि दर्शिका में लिखते हैं, कि इसके छोटे वृक्ष होते हैं, पत्तियां ३-५

[1] इस कुल के वृक्ष–क्षुप, द्विबीजपर्ण, विभक्तदल, ऊर्ध्वस्थ बीजकोष २-५ कोष्ठयुक्त, पत्र–प्रायः सादे एकान्तर और उपपत्रयुक्त; पुष्प–नियमित, पुष्प बाह्य कोष के तथा अभ्यन्तर कोश के दल ४ या ५; पुंकेशर अनेक एवं असंयुक्त; परागकोष दो थैली वाला; फल–विदारी या अष्ठिल होते हैं।

Scanned with CamScanner

इंच लम्बी एवं २-३॥ इंच चौड़ी लट्वाकार किंतु मध्य शिरा के दोनों ओर के भाग असमान, लम्बी नोक और सूक्ष्म दांतों वाली तथा आधार पर गोल या कुछ कुछ तम्बूलाकार होती हैं।

फालसे तथा धामिन की कई किस्में इस प्रांत (बिहार एवं उत्तर प्रदेश) में होती हैं जो बहुत कुछ मिलती जुलती हैं।

नाम–

सं०—परुषक (पत्र व फल रोमश एवं रूक्ष होने से) परुष, अल्पास्थि, परापरइ. । हि.–फालसा, फुरुषा, धामिन, फरसिया । म गु.—फालसा, फालसी, ध्रामण । बं.—फलूसा । अं.–एशियाटिक ग्रीव्हिया (Asiatic greevia) ले०—ग्रीविया एशियाटिका; ग्रीविया व्हेस्टिका (Grewia Vestica) ।

रासायनिक संगठन–

फल में अम्ल, शर्करादि द्रव्य तथा छाल में पिच्छिल द्रव्य होता है।

प्रयोज्यांग—फल, छाल, पत्र, मूल, बीज ।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, अम्ल, कषाय, कच्चे फल का विपाक अम्ल, पका मधुर, शीतवीर्य, वातपित्त शामक, रोचन है।

फल—कच्चा फल लघु, कसैला, अम्ल, दीपन, ग्राही, पित्तकर, यकृदुत्तेजक है। यह अग्निमांद्य, अतिसार, प्रवाहिका, यकृद्विकारादि में उपयोगी है। गले के रोगों में इसके क्वाथ से कुल्ले करवाते हैं।

पका फल—लघु, मधुर, सुस्वादु, शीतवीर्य, विष्टम्भी, तृष्णाशामक, वमनरोधक, विरेचनोपग, हृद्य, रक्तपित्त, शामक, वातनाशक, कफनिःसारक, यकृतामाशय के लिए बल्य, वृष्य, दाहहर, वातपित्तशामक, शोथहर, पौष्टिक, कामोद्दीपक, ज्वर (पित्तज्वर) नाशक, हिक्का, श्वास-शुक्रदौर्बल्य, क्षयादि में प्रयुक्त होता है। विरेचनार्थ विरेचन द्रव्यों के साथ यह दिया जाता है। ये प्रायः बीज सहित ही खाये जाते हैं। इसके शर्बत से शरीर की जलन, दाह आदि में विशेष लाभ होता है। शर्बत का योग आगे विशिष्ट योगों में देखिये।

(१) उदरशूल, पित्त विकार तथा हृद्विकार पर—अजवायन का चूर्ण खाकर ऊपर से फल के रस को थोड़ा गरम कर पिलाने से उदरशूल दूर होता है।

पित्त विकार पर—अच्छे पके हुए फलों के रस को थोड़े जल में मिला, उसमें थोड़ा सोंठ का चूर्ण और शक्कर का प्रक्षेप देकर सेवन कराने से पित्त के विकार तथा हृद्विकार में भी लाभ होता है।

इन फालसों को शक्कर के साथ खाने से भी पैत्तिक शरीर की जलन, दाह की शांति होती है।

चरक ने पैत्तिक हृद्रोग की चिकित्सा में कहा है कि हृदय के पित्त से दूषित होने पर शीतल प्रदेह एवं शीतल परिषेकनों का प्रयोग करें। तथा मुनक्का, खांड, शहद और फालसा के साथ विरेचन योग का देना हितकर है। विरेचन द्वारा शुद्धि हो जाने पर पित्त नाशक अन्न-पान रोगी को देवें। —च. चि. अ. २६

हृद्दौर्बल्य पर तथा पुष्टि के लिये—पके फल १ तो. के साथ ५ काली मिर्च के दाने तथा थोड़ा सेंधा नमक मिला घोटकर उसमें २० या ३० तो. जल मिला छानकर (प्राप्त हो सके तो कुछ नीबू का रस मिलाकर) विशेषतः ग्रीष्म काल में नित्य नियमपूर्वक लेते रहने से हृदय की दुर्बलता, धड़कन आदि नष्ट होकर शरीर में वीर्य, बल की वृद्धि होती है। गरमी की तकलीफ भी दूर होती है।

—डा० लालबहादुरसिंह चौहान
(स्वास्थ्य से साभार)

(३) वातज वमन, रक्तविकार तथा आमाशय दौर्बल्य पर—अच्छे पके मीठे फलों के रस में गुलाब जल और दूनी मिश्री मिला शर्बत बनाकर सेवन करने से इन तीनों दोषों में लाभ होता है।

(४) वमन और तृषा पर—फालसा, मुनक्का, मुलहठी, खरेंटी, महुवे के फूल, कमल, नागरमोथा और आमला सबको चावलों के पानी के साथ पीस छानकर उसमें मिश्री और शहद मिलाकर सेवन कराने से लाभ होता है। —च. चि.

(५) पित्त ज्वर तथा पित्त प्रधान सन्निपात पर—फालसा, मुलहठी, खंभारी, आमला, खरैटी, खजूर, मुनक्का, काकोली (अभाव में असगन्ध), कटेरी, महुवे के फूल, पुण्डरिया, लाल चन्दन, खस और पद्माक सबको कूटकर रात्रि को स्वच्छ जल में भिगो प्रातः मल छानकर उसमें मिश्री व शहद मिला सेवन से पित्तज्वर दूर होता है। —ग. नि.

पित्तप्रधान सन्निपात पर—फालसा, त्रिफला, देवदारु, कायफल, लाल चन्दन, पद्माक और कुटकी प्रत्येक १-१ तो. लेकर एकत्र जौकुट कर फांट या शीत कषाय बनाकर सेवन करावें। —ग. नि.

नोट—कच्चा और पका फालसा—पका फालसा गुणों में कच्चे फालसे के बिलकुल विपरीत होता है। कच्चा उष्ण एवं शारीरिक जलन या दाह को बढ़ाने वाला होता है तो पका शीतल एवं दाहशामक होता है। यह पित्त एवं दाह की तथा रक्तपित्त की शान्ति करता है।

कच्चा फालसा—शुक्र नाशक है। पका फालसा शुक्र जनक है, मूत्रल है। शरीर के दूषित मल को निकाल कर शोधन क्रिया में सहायता करता है। यह पेशाब की जलन को भी मिटाता है, पेशाब के वर्ण को स्वच्छ करता है। कच्चे में इसके विपरीत गुण है।

पका फालसा हृदय को बहुत हितकारी है, हृदय की धड़कन, वेदना आदि को नष्ट करता एवं दिल को मजबूत बनाता है। यह मस्तिष्क के लिए भी हितकर है। दिमागी खुश्की को दूर कर तरावट लाता है। मानसिक दुर्बलता को दूर करता है। कच्चे फालसे में इसके भी विपरीत गुण हैं। —स्वास्थ्य

छाल और मूल—इसकी छाल वेदनास्थापन, वातपित्तजन्य विकार, प्रमेहादि मूत्र विकार तथा गर्भाशय एवं योनि व लिंग की दाह या जलन को दूर करने वाली है।

आमवात में छाल (वृक्ष के मूल की उत्तम) का क्वाथ या फांट देते हैं तथा इसको जल के साथ पीसकर गरम कर लेप भी करते हैं। यह फांट मूत्रकृच्छ्र, रक्तमूत्रता, मूत्रदाह, मधुमेह, इक्षुमेह में भी सेवन कराते हैं।

(६) पुष्टि तथा शक्तिवर्धनार्थ—छाल का चूर्ण २ भाग तथा मिश्री चूर्ण १ भाग दोनों को एकत्र कर प्रातः सायं ६ मा. तक की मात्रा में गोदुग्ध के साथ सेवन करते हैं।

(७) शर्करा प्रमेह (मूत्रातिसार) पर—जड़ की छाल ६ मा. कूटकर २० तो. जल में पकावें। आधा जल शेष रहने पर छानकर उसमें कुलफा ५ मा. भिगोकर पीसकर लुआब निकाल (पीस छान कर) पिलावें। थोड़ी देर बाद निम्नोक्त बादाम का पेय पिलावें। बादाम की मींगी ११ नग, उसके साथ चिलगोजा ३ मा. और काली मिर्च ११ नग एकत्र घोट छानकर ३ या ४ मात्रायें बना दिन में ३ या ४ बार पिलावें।

—स्व० पं० भागीरथ स्वामी रसायन शास्त्री।

मूल—इसकी जड़ गर्भाशय संकोचक है। मूत्रकृच्छ्र तथा गठिया वात पर उपयोगी है।

(८) गर्भाशय संकोचनार्थ, सुखपूर्वक प्रसवार्थ तथा मूढ़ या मृत गर्भ पातनार्थ-जड़ या जड़ की छाल को जल के साथ खूब महीन पीसकर इसका लेप योनि मार्ग, नाभी तथा बस्ति पर किया जाता है।

(९) मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) और गठिया वात पर—जड़ या उसकी छाल जौकुट कर १४ मा. चूर्ण को २० तो. जल में रात्रि के समय भिगोकर प्रातः मल छान कर मिश्री मिलाकर पिलाते रहने से ७ दिन में मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। गुड़, चाय, मैथुन, घोड़े, ऊंट की सवारी से परहेज तथा भोजन में दलिया, खीर, खिचड़ी आदि देवें।

गठिया पर—जड़ की छाल का क्वाथ पिलाते हैं।

(१०) रक्तप्रदर पर—जड़ का छिलका १ तोला लेकर साठी चावलों के धोवन के साथ पीस छानकर प्रातः सायं सेवन से २-३ दिन में ही लाभ होता है। विशिष्ट योगों में फालसासव देखें। —ब. ग.

बीज—फालसे के बीज संकोचक, संग्राही एवं शीतवीर्य हैं।

Scanned with CamScanner

(११) रक्तातिसार या पैत्तिक अतिसार पर—इसके बीजों को जौकुट कर (३ मा. चूर्ण को १० तो. जल में) रात्रि के समय भिगोकर प्रातः खूब मसलकर लुआब निकाल मिश्री या शहद मिलाकर सेवन करें। पथ्य में–साबूदाना, गेहूं का दलिया, दही, चावल आदि देवें। गरम, तीक्ष्ण वस्तुयें, मांस, बैंगन, गुड़, शक्कर, आलु, अर्बी (घुइयां) आदि न देवें तथा विशेष चलना फिरना न करें। —एकौषधि गुण विधान से

नोट—इस योग में मात्रा हमने अपने स्वानुभव से दी है। —सम्पादक

पत्र तथा कलिका—फालसा के पत्र तथा कलिकायें वेदना स्थापन, व्रण शोधन हैं।

इनको पीसकर लेप करने से या पुल्टिस जैसा बना कर बांधने से दूषित व्रण शुद्ध होकर शीघ्र ठीक हो जाता है।

बद (गांठ) पर पत्तों को गरम कर बांधते हैं।

नोट—मात्रा–फल खाने के लिए २ से ५ तो. तक। किंतु औषधि रूप से २ से ३ तो.। स्वरस–१ से ३ तो. तक। फांट के लिये छाल १ से २ तो.।

अधिक मात्रा में फल का सेवन आध्मानकारक होता है। इसके निवारणार्थ-गुलकन्द, अनीसू (सौंफ) तथा ज्वारस या माजून कमूनी[1] (जीरा) इनमें से किसी एक का सेवन करावें।

फालसा का प्रतिनिधि–आलूबोखारा है।

विशिष्ट प्रयोग–

फालसासव (रक्तप्रदर नाशक)––फालसा वृक्ष की छाल ५ सेर जौकुट कर ५२ सेर जल में पकावें। १३ सेर जल शेष रहने पर ठंडा होने पर छान कर शुद्ध मटके में या संधान पात्र में भर उसमें मुण्डी के फल १ सेर, धाय के फूल १५ मा., मिश्री ५ सेर (चूर्ण व मिश्री का चूर्ण कर) तथा शहद ३॥ सेर मिला देवें। पात्र का मुख अच्छी तरह बन्द कर १५ से २० दिन अधिक से अधिक १ माह तक सुरक्षित रखें। पश्चात् छानकर बोतलों में भरलें। मात्रा—१ से ४ तो. समभाग जल के साथ सेवन से रक्तप्रदर शीघ्र नष्ट होता है। मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्रावरोध में भी लाभप्रद है।

—वै० रामनारायण वैद्य

(२) शर्बत फालसा—उत्तम पक्व फालसों का रस ३० तो. में खांड या शक्कर १। सेर मिला पकावें। शर्बत की चाशनी आ जाने पर उतार सुरक्षित रखें।

मात्रा—२ से ४ तोला तक जल के साथ देवें। यह आमाशय व हृदय को बलप्रद, वमन, अतिसार व तृषा को दूर करने वाला, यकृत की ऊष्मा (पित्त जन्यदाह) तथा मूत्र की जलन को नष्ट करता है। जुकाम में लाभप्रद है, दिल व दिमाग को तर एवं ताकत पहुंचाता है। पूर्ण सुविधा एवं रोगी की प्रकृति के अनुसार बर्फ के साथ या अर्क केवड़ा या अर्क गुलाब या अर्क गाजवां के साथ देने से विशेष लाभ होता है। —यू. सं.

(३) मुरब्बा फालसा—प्रथम जल को उबालकर नीचे उतारकर उसमें ४० तोले पके फालसे डाल दें। जब फालसे अच्छी तरह गल जावें तब उन्हें ठंडे जल से धोकर रखलें। फिर ३० तोले जल और १० तोले शक्कर मिला आंच पर रख दें। खूब उबाल आने पर फालसे छोड़ दें। बस, मुरब्बा तैयार है।

यह शरीर को ठण्डक पहुंचाता है, दिल व दिमाग को बलप्रद एवं तर रखता है तथा बड़ा स्वादिष्ट होता है। इसे सुगंधित करने के लिये इसमें थोड़ा केवड़ा अर्क या केवड़े का इतर मिला देवें। —स्वास्थ्य से

[1] काला जीरा भुना हुआ १४॥ तो. सुदाब पत्र (छाया शुष्क), सोंठ प्रत्येक ५ तो. १० मा., काली मिर्च ८ तो. ४॥ मा. और बूरा अरमनी (एक प्रकार का लाल वर्ण का नमक है, आरमीना देश में पैदा होता है। यूनानी में इसका अधिकतः उपयोग उदर रोगों में किया जाता है) १ तो. ५॥ मा. सबको कूट छानकर सम प्रमाण मिश्री व द्विगुण शहद की चाशनी में मिलावें। मात्रा––५ से ६ माशा, अर्क सौंफ १२ तोला के साथ लेवें।

Scanned with CamScanner

फिंदक (Corylus Avellana)

मायाफल कुल (Cupuliferae) के इस पहाड़ी झाड़ीदार वृक्ष के फलों को फिंदक कहते हैं। यह फल गोलाकार त्रिकोणयुक्त होता है। फल के भीतर की गिरी, बादाम की गिरी या मींगी जैसी ही ऊपर से लाल, पतली छाल से आच्छादित होती है तथा यह गिरी बादाम की गिरी जैसी ही मीठी एवं स्वादिष्ट होती है। औषधिकार्य में यही गिरी ली जाती है।

ये वृक्ष काश्मीर आदि हिमालय के पहाड़ी प्रदेशों में बागों की मेड़ों में विशेष लगाये जाते हैं। खेतों में बोये भी जाते हैं।

नाम—

हि.–फिंदक, बादाम काश्मीरी, बादाम कोही। ले.–कारिलस एव्हेलना। अं.– हेजल नट्स (Hazel nuts)

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, उष्ण, स्निग्ध, बल्य, बृंहण, बाजीकर, मेध्य, कफनिःसारक, आध्मान एवं वातकर, वृक्कदौर्बल्यनाशक तथा वृश्चिक विषहर है।

(१) मस्तिष्क दौर्बल्य में इसे अकेले या अन्य उपयुक्त द्रव्यों के साथ जल मिलाकर पकाकर या उबलते हुए जल में मिलाकर फाण्ट रूप में तैयार कर सेवन कराते हैं।

(२) कास, श्वास में—गिरी के चूर्ण को शहद के साथ देते हैं। कफ ढीला होकर सरलता से निकल जाता है।

(३) प्रतिश्याय (जुकाम) में–गिरी को थोड़ा भून कर कालीमिर्च के साथ खिलाते हैं।

(४) बिच्छू के दंश पर—इसे खिलाते तथा दंश स्थान पर इसे पीस कर लेप करते हैं।

नोट—मात्रा—आधा से १ तो. तक।

अधिक सेवन से यह कब्जकारक तथा सिर दर्द पैदा करता है। इसका निवारक शर्करा मधु मिश्रित विरेचनीय अवलेह है।

इसके प्रतिनिधि चिलगोजा और अखरोट हैं।

फितरा सालियून (Petroselinum Sativum)

मण्डूकपर्णी कुल (Umbelliferae) के इसके पौधे अजमोद या अजवायन के पौधे जैसे होते हैं। पत्र पुष्पादि भी तैसे ही होते हैं। इनकी शाखाओं पर जो नन्हें-नन्हें श्वेताभ कुछ पीतवर्ण के पुष्पों के छत्ते से लगते हैं, उनमें ही इसके लम्बे काले अजवायन जैसे तीक्ष्ण एवं सुगन्धित बीज होते हैं। इन बीजों को ही यूनानी में शीर्षोक्त नाम दिया जाता है। औषधि कार्यार्थ ये ही बीज लिये जाते हैं।

ये पौधे पश्चिम भारतवर्ष के बागों में बोये जाते हैं। ईरान आदि अरब देशों में अधिक पैदा होते हैं।

नोट–बम्बई की ओर बाजारों में जो फितूर सलियून या फतरा सालियून नाम से जो लम्बी लकीरदार छोटे-छोटे फल मिलते हैं, वे भी इसी जाति या कुल के पौधों के फल हैं। इन्हें यूनानी में बादियान कोही, बादियाने खताई कहते हैं। सं.–अवप्रिया। हि.–कोमल, फितूर सलियून। अं.–सिलफियम पार्सले (Silphium parsley) ले.—प्रेंगास पेबुलेरिया (Prangos Pabularia)।

ये भारत के उत्तर प्रदेशों में तथा काश्मीर व तिब्बत में पैदा होते हैं।

इसके शुष्क फलों में एक उड़नशील प्रभावशाली तथा कुछ स्थाई तेल भी होता है। इसके अतिरिक्त क्विर्सिट्रिन (Quercitrin) नामक द्रव्य विशेष प्रमाण में एवं निरिन्द्रिय क्षार, व्हेलेरिक एसिड (Valeric acid) तथा राल, कुछ क्षाराभ आदि पाये जाते हैं।

ये फल सुगन्धित, दीपन, विरेचक, विषघ्न, उत्तेजक, मेद-वात आध्माननाशक, ऋतुस्राव नियामक, कंडूनाशक, यकृत के लिये बल्य तथा प्रदर, शूल, कटिवात आदि में प्रयुक्त होता है। इसकी जड़ मूत्रल है।

Scanned with CamScanner

फलों का तथा जड़ों का फांट या क्वाथ अजीर्ण, मंदाग्नि, मूत्रविकार, मूत्राघात, अश्मरी, जलोदर, सुजाक आदि में दिया जाता है ।

प्रस्तुत प्रसंग के फितरा सालियून के नाम, गुण-धर्मादि—

नाम—

यूनानी एवं हिन्दी—फितरासालियून, करफस कोही, जंगली या पहाड़ी अजमोद । अं०—पार्सले (Parsbley) ले०—पेट्रोसिलिनम सेटिव्हम । एपियम पेट्रोसेलिनम (Apium petroselinum) । पेट्रोसिलिनम हार्टेन्स (Patro. Hortense) ।

रासायनिक संगठन—

इसकी जड़ तथा बीजों में इसका प्रभावशाली कपूर जैसा विशिष्ट गन्धी, हरिताभ पीतवर्ण का प्रवाही एवं स्वाद में तीक्ष्ण, अप्रिय ऐसा एक एपिओल (Apiol) नामक उड़नशील तेल तथा इसके अतिरिक्त स्टार्च तथा एपीन (Apiln or Appin) नामक एक ग्लुकोसाइड (शर्करा) पाया जाता है ।

गुण धर्म व प्रयोग—

ऊष्ण, रूक्ष, लेखन, कर्फान सारक, वातानुलोमन प्रमाथी, मूत्रार्तव जनन, अश्मरी नाशक, वाजीकर, यकृत वृक्क-वस्ति व गर्भाशय शोधक तथा कृच्छ्रश्वास, पार्श्व पीड़ा, शूल (विशेषतः ऐंठनयुक्त आंत्रशूल), मूत्रकृच्छ्र, निरुद्धार्तव में प्रयुक्त होता है । यह गर्भ एवं अपरा निःसारक भी है ।

उक्त विकारों में इसके बीजों का प्रयोग फांट या माजून के रूप में किया जाता है ।

नोट—मात्रा—३-५ माशा तक । अधिक सेवन से मूत्र में रक्त आने लगता है ।

हानि निवारक—कतीरा, मधु, वालछड़, सौंफ आदि हैं।

इसका प्रतिनिधि (विशेषतः उरो रोगों के लिये) हंसराज है ।

फुलकिया – देखो बिल्लीलोटन में नोट । फुलवार (फुलेल)—देखो चिउरा ।

फूट (Cucumis Momordica)

फल वर्ग एवं कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) की इसकी लता खरबूजे की लता जैसी प्रायः वर्षाकाल में पैदा होती है ।

पत्र—गोल, कटे किनारे वाले, प्रायः ५ भागों में विभक्त, बारीक कंगूरेदार ।

पुष्प—छोटे-छोटे पीले वर्ण के ।

फल—मोटे, लंबे, कच्ची अवस्था में हरे, काली धार या धब्बे वाले, पकने पर पीले व श्वेत धार या धब्बे वाले हो जाते हैं तथा तड़क या फूट जाते हैं । इसी से ये फूट कहाते हैं । ये फल स्वाद में मीठे, कुछ खट्टे से, बुबसे होते है । बीज प्रायः खीरा-ककड़ी या खरबूजे के बीज जैसे होते हैं ।

यह भारत के प्रायः सभी प्रांतों की रेतीली या रेत मिश्रित भूमि में, खेतों में बोई जाती हैं । इसके फल वजन में १ से ५ सेर तक पाये जाते हैं ।

नोट—इसकी छोटी जाति को कचरी कहते हैं । कचरी का प्रकरण भाग १ में देखिये ।

नाम—

सं०—उर्वारु, एरवारु, चित्रफला इ० । हि०—फूट, फूंट, टूटी, कंचड़ा । म०—चिभुड़, शेंदाड़, डांगर । गु०—कोठीबा, चिबड़ो । बं०—फुटी, गोमुक, काकुड़ । अं०—कुकुम्बर मोमोर्डिका (Cucumber Momordica) ले०—कुकुमिस मोमोरडिका ।

गुण धर्म व प्रयोग—

फल (अपरिपक्व) गुरु, मधुराम्ल, रूक्ष, आंत्र संकोचक, कफ पित्त शामक, वातकर तथा पका परिपक्व फल मधुर, ऊष्ण, रूक्ष, दीपन, पाचन, ग्राही, कफ वात शामक व पित्तकर होता है ।

बीज—शीतल, उष्णताशामक होते हैं ।

फूल—फूलों की कहीं-कहीं शाक बनाई जाती है ।

Scanned with CamScanner

यह त्रिदोष एवं मन्दाग्नि कारक है।

जड़—शीतवीर्य, अश्मरीनाशक है। मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी तथा दाह पर बीजों की गिरी को जल के साथ या चावलों के धोवन के साथ पीस छानकर उसमें थोड़ा लालचन्दन मिला सेवन कराते हैं।

अश्मरी में—इसकी जड़ को बासी जल में ठंडाई की तरह पीस छानकर नित्य प्रातः ७ दिन तक पिलाते हैं।

तमाखू के धूम्रपान करने वालों के लिए इसका फल हितकारी है।

फूल प्रियंगु—देखो प्रियंगु में।

फाग[फोगला] (Calligonum Polygonoides)

चुक्र कुल (Poygonaceae) के इस क्षुप के पत्र कटावदार छोटे, अत्यल्प (कई क्षुप तो पत्ररहित करील के क्षुप जैसे); पुष्प हलके गुलाबी रङ्ग के, मधुर सुगंध-युक्त तथा पुष्प के प्रायः निम्न भाग में ही इसके लम्बगोल या सरसों के फल या डोडी जैसी डोडी लगी हुई होती है। राजस्थान की ओर इस डोडीयुक्त फूलों को कच्ची दशा में फोगला कहते हैं।

नोट—वसन्तऋतु के प्रारम्भ में ही जब इसमें पुष्प आते हैं, तब उन्हें (फोगलाओं को) टहनी सहित काटकर सुखाकर अविकसित डोंडी अलग कर लेते हैं। इन्हें छाछ या दही में मिलाकर रायता बनाया जाता है। इनका शाक भी बनाते हैं। यह रायता या शाक उदर विकारनाशक, शांतिदायक, शीतल एवं कांतिवर्धक है।

पूर्ण विकसित या पक्व फोगला को घंटेचाल कहते हैं। इसके पत्र तथा ये फूल (घंटेचाल) राजस्थान की ओर ऊंटों के लिये एक उत्तम चारा या खाद्य है। उधर एक 'ऊंट फोग' नामक लतारूप फोग भी होती है जो खोंकर, कैर आदि वृक्षों पर चढ़ जाती है। यह ऊंटों को बहुत खिलाई जाती है। इसके गुणधर्म प्रायः प्रस्तुत प्रसंग के फोग जैसे ही हैं।

इसके क्षुप राजस्थान, पंजाब, सिन्ध व बलुचिस्तान में अधिक पैदा होते हैं।

नाम—

हिन्दी (विशेषतः मारवाडी में) फोग, फोगली, तिरनी इ.। ले—केलिगानम पोलीगोनाइड्स

गुण धर्म व प्रयोग—

किंचित् कटु, कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, मधुर विपाकी, ग्राही, पित्तवातशामक, दाह प्रशमन, उष्णता की बाधा लू आदि तथा दन्तविकार, अतिसार, संग्रहणी आदि पर उपयोगी है।

(१) लू लगने पर पत्तों का पीसकर लेप करते हैं।

(२) दन्तहर्ष (Odontotripsis Irritatlon in teeth) पर—इसकी टहनी को चबाने से शीघ्र ही लाभ होता है एवं दांत सुदृढ़ होते हैं।

(३) मसूढ़ों की सूजन पर—इसकी जड़ को कुचल कर थोड़ा कत्था मिला पानी में उबाल कर कुल्ले करते हैं।

(४) अतिसार पर—इसके क्षुप की जड़ के नीचे जो कीड़ों द्वारा बनाया हुआ बूर होता है, उसे दही के साथ खिलाते हैं।

(५) संग्रहणी एवं अन्य उदर विकारों पर—फोगला (अविकसित) फूलों का रायता या शाक बना कर खिलाते हैं।

फोदड़बेल—दे० बचगन्धा। फौसाम्बा—दे० फनसलम्बे।

फ्रास्ट (Populus Nigra)

वेतसकुल (Salicaceae) के इस १५-२०फुट ऊंचे वृक्ष की शाखायें अभिमुख; पत्र नोकदार, कुछ दन्तुर ५-१० सें. मी. लम्बे; पुष्प—पीले किंचित सुगन्धित; बीज रोमश होते हैं।

इसके वृक्ष पश्चिमी हिमालय, काश्मीर पंजाब में लगाये जाते हैं।

Scanned with CamScanner

नाम–

हि.—(काश्मीरी भाषा में)—फ्रास्ट; पंजाबी में—फार्श, मक्कल, प्रोस्ट, सुफेदा आदि।

रा. सं.—इसमें एक प्रकार की शर्करा, तथा पाप्युलिन (Populin), सेलिसीन (Salicin), क्रायसिन (Chrysin) व एक प्रभावशाली उड़नशील तैल पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग–

इसमें शोधक गुण की विशेषता है। रक्तार्श पर इसकी कोमल पत्तियों का लेप लगाया जाता है। इससे रक्तस्राव बन्द होता है। पत्तियों को जल के साथ पीस छानकर पिलाते भी हैं।

प्रतिश्याय, कास पर–छाल का क्वाथ दिया जाता है।

बंगाल की लकड़ी–दे० पिण्डीतक, बंज—दे. बबूल

बन्दररोटी (Notonia Grandiflora)

भृङ्गराज (Compositae) के इस छोटे-छोटे बहुवर्षायु, २–५ फुट ऊंचे क्षुप का काण्ड सीधा, मांसल, अत्यल्पशाखायुक्त; पत्र लगभग गोल (रोटी जैसे) या लम्बगोल, अखण्ड, अतिमांसल, २–५ इञ्च लम्बे, १–३ इंच चौड़े, वृन्तहीन (या अति लघु वृन्तयुक्त), निम्न-भाग में हलके नीलाभ हरित वर्ण के (पुराने होने पर पीताभ) ; पुष्प-शाखा के अग्रभाग पर गुच्छों में ¾–१¾ इंच लम्बे घुण्डीदार हलके पीत वर्ण के पुष्प आते हैं। पुष्पवृन्त ४–८ इञ्च लम्बा; कड़ा, चिकना होता है। फल छोटे बोंडी जैसे १ बीजयुक्त होते हैं।

इसके क्षुप—दक्षिण भारत में कोंकण की ओर महाराष्ट्र का उत्तरी भाग, बम्बई, कर्नाटकादि के पहाड़ी प्रदेशों में विशेष पाये जाते हैं।

नाम–

हि०—बन्दररोटी (इसके पत्र रोटी जैसे तथा बन्दरों को अधिक प्रिय होने से)। म०—बन्दररोटी, गैंदर। तेलगू—कुंदेलुचेवियाकु। ले—नोटोनिया ग्रेंडीफ्लोरा।

गुण धर्म व प्रयोग–

यह विशेषतः श्वानविष प्रतिकारक है।

पागल कुत्ते के विष के निवारणार्थ—इसका ताजा काण्ड या ताजी शाखा १० तो० तक कुचलकर ५० तो० ठण्डे जल में रात्रि के समय भिगोकर, प्रातः मसल छान कर इस छने हुए चिपचिपे हरे जल में और भी आवश्यक जल मिला एक बार में ही पिला देवें। सायं काल में इसके १० तो० काण्ड का रस निकाल उसमें आटा सान कर रोटी या बाटी बना आग पर सेंक कर खिला देवें। इस प्रकार ३ दिन के प्रयोग से लाभ हो जाता है। दंश स्थान पर कास्टिक लगा देवें। — डा० ए. गिप्सन।

डा० डायमाक आदि ने इस बूटी का प्रवाही सत्व (Extract) बनाकर पागल कुत्ते के विष पर प्रयोग किया; पश्चात् यही प्रयोग सन् १८६४ में बम्बई के अस्पतालों में अजमाया गया। १ ड्राम की मात्रा में देने पर यह सत्व अपना मृदु विरेचक गुण दर्शाता है। विशेष कोई असर प्रतीत नहीं हुआ।

कर्नल चोपरा का कथन है कि यह वनस्पति पागल कुत्ते के काटने के कारण पैदा हुए उपद्रवों पर लाभदायक है।

बंदा—दे० बांदा।

बंदाल (Luffa Echinata)

कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) की इस वर्षायु; चारों ओर प्रसरणशील १५–२० फुट लम्बी लता के काण्ड पतले पंच कोष्ठ युक्त।

पत्र—कड़वी तोरई के पत्र जैसे, किंतु छोटे, ५ कोन

Scanned with CamScanner

पत्ते दन्तुर, रोमश, दोनों ओर खुरदरे होते हैं। पत्र के समीप की काण्ड में कुछ वर्तुलाकार से तन्तु निकलते हैं। पत्र वृन्त १-२ इंच लम्बा होता है।

पुष्प—प्राय: वर्षा के अन्त में, पत्र कोण से छोटे-छोटे श्वेत वर्ण के, नर पुष्प का वृन्त ४-७ इंच लम्बा, प्रत्येक वृन्त पर ६-१२ पुष्प, मादा पुष्प वृन्तहीन होता है। ये पुष्प प्राय: कार्तिक मास में आते हैं।

फल—ककोड़े के सदृश लम्ब गोल, १—१½ इंच लम्बे, मोटे ½ इंच व्यास के सघन कड़े रोम (या कोमल कंटक) युक्त; कच्ची दशा में हरित वर्ण के, पकने या सूखने पर पीताभ या भूरे रंग के हलके पीले से भीतर जालीदार हो जाते हैं। फल के मुख पर सूक्ष्म ढक्कन सा होता है, जो शीत काल में फल पक कर शुष्क हो जाने पर, स्वयमेव खुल कर गिर पड़ता है, तथा फल के भीतर के रेशे वाले ३ छिद्रों से इसके बीज निकल पड़ते हैं। फल में बीज छोटे-छोटे, बहुत से प्राय: संख्या में १६ चपटे नरम गोल होते हैं। ये बीज फल का कच्ची दशा में श्वेत, तथा पकने पर पीताभ कृष्ण वर्ण के होते हैं। बीज का ऊपरी कड़ा छिलका दूर कर देने पर भीतर भूरे श्वेत रंग का स्निग्ध मगज दिखाई देता है। फलों को बंदाल डोड़ा, मरेठी में कांटे इंद्रायण कहते हैं।

मूल—इसकी जड़ें सच्छिद्रकन्द के समान कटु रसयुक्त एवं उग्रगन्धी होती हैं।

इस लता के पांचों अङ्ग तिक्त होते हैं, फल-विशेष तिक्त होता है। बाजारों में पंसारियों के यहां इसके शुष्क फल तथा बीज मिलते हैं।

यह लता भारत के अनेक प्रान्तों में वर्षा काल में खेतों की बाड़ पर या वृक्षों पर फैली हुई प्राप्त होती है। यह पश्चिमोत्तर भारत, गुजरात, सिंध, बम्बई, पूर्व बंगाल

बिहार, उत्तर प्रदेश आदि में विशेष होती है।

नोट—चरक के वमन और फलिनी गणों में, तथा सुश्रुत के उभयतोभागहर वा ऊर्ध्वभागहर गण में यह लिया गया है। चरक और सुश्रुत में ज्वर, कामला, मूषिक विषादि के प्रयोगों में इसकी योजना की गई है। शार्ङ्गधर जी इसे शरीर संशोधक द्रव्यों [1] में श्रेष्ठ मानते हैं "देह संशोधनं तस्याद्देवदाली फलं यथा।"

नोट नं० २—इसकी एक पीले फूल वाली भी जाति होती है (निघण्टुओं में लाल फूल वाली जाति का भी उल्लेख है जोकि आजकल दुष्प्राप्य है) जिसके फल

[1] जो द्रव्य आमाशय में स्थित संचित एवं प्रकुपित दोषादि मलों को वमन द्वारा, (मुख व नाक के मार्ग से) तथा वैसे ही आंत्र स्थित मलों को विरेचन द्वारा (गुदा व मूत्र मार्ग से) स्वस्थानों से बाहर निकालते हैं, तथा रक्तस्राव सेचन भी करते हैं, उन्हें संशोधन या शोधन द्रव्य कहते हैं। उदाहरणार्थ प्रस्तुत प्रसंग का देवदाली।
—शार्ङ्गधर-प्रथम खण्ड अ. ४।

ध्यान रहे इस प्रकार के ऊर्ध्वभाग एवं अधोभागहर (उभय गुण भूयिष्ठ) संशोधक द्रव्य पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि-तत्वों से संघटित होने के कारण प्राय: कटु, तिक्त, कषाय रस प्रधान एवं लघु, तीक्ष्ण गुण युक्त व उष्ण वीर्य हुआ करते हैं।

Scanned with CamScanner

अपेक्षाकृत कुछ बड़े तथा कम काँटे वाले होते हैं। इसे लेटिन में लुफा ग्रेव्हिओलेन्स (*Luffa Gravolens*) कहते हैं। यह भी कम प्राप्त होता है। ध्यान रहे कड़ुवी तोरई के (Luffa Amera) भी फूल पीले होते हैं तथा लता का स्वरूप आदि भी बंदाल लता के जैसा ही होता है और दोनों के गुणधर्म भी प्रायः एक समान हैं। बंदाल के अभाव में इसे उपयोग में लिया जा सकता है। इस ग्रन्थ के भाग २ में कड़ुवा तोरई का प्रकरण देखिये।

नोट नं० ३—किसी ने बंदाल को ही बन्दा या बांदा मान लिया है। ध्यान रहे बांदा इससे भिन्न परोपजीवी वनस्पति है। आगे बांदा का प्रकरण देखें।

नाम–

सं०—देवदाली, जीमूत, गरागरी, देवताड़क, कंटफला इत्यादि। हिन्दी—बंदाल, बिंदाल, घगरबेल, बिंदाली, सोनैया, देवदाली, डगरकाचरी, घुसरायन, घुसराना, कुकुरलता, सनखकरा, सोनकसार, वन घड़ैल इत्यादि। म०—देवडांगरी, देवदाली। गु०—कुकड़वेल। बं०—देवताड़ा, घोषालता, पीतघोषा। ते०—पानिबिरा। अं०—ब्रिस्टली लुफा (Bristly Luffa)। ले०—लुफा एकिनाटा।

रासायनिक संगठन—

बीजों में एक तेल होता है जो विशेष कड़ुवा नहीं होता। इसके अतिरिक्त पंचांग में एक तिक्त सत्व (इन्द्रायन या कड़वी तोरई के सत्व *Colocynthin* कालोसिंथिन जैसा) प्रभावकारी होता है जो वमन एवं विरेचनकारी है। शेष मुख्य द्रव्य इन्द्रायन में पाये जाने वाले द्रव्यों के समान ही है।

प्रयोज्यांग—फल तथा पंचांग।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, विपाक में कटु, उष्णवीर्य, तीव्र विरेचक, त्रिदोष (विशेषतः कफपित्त) हर, वामक, रक्तशोधक, कृमिघ्न, शोथहर, कफनिःसारक, मूत्रल, गर्भाशय संकोचक, गर्भनिःसारक, आर्तवजनन, कुष्ठघ्न, शिरोविरेचन, लेखन, व्रणशोधन एवं रोपण है। अल्प मात्रा में देने से दीपन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक है। अतः अग्निमांद्य, रक्त विकार, मूत्रकृच्छ्र, कष्टार्तव, यकृद्विकार, कामला, हिक्का, कास, अर्श आदि पर यह अल्प मात्रा में प्रयोजित होता है तथा जलोदर, पांडु, आंत्रिक पैत्तिक शूल, यकृत्प्लीहा वृद्धि, आमवात, फिरंग, सर्प, चूहा, कुत्ते आदि के विषों एवं सर्वाङ्ग शोथादि में बड़ी मात्रा में संशोधनार्थ इसका शीतकषाय, टिंचर आदि रूप में प्रयोग किया जाता है। किंतु यदि इस प्रयोग से अतिसार शुरू हो जावे तो प्रयोग बंद कर दिया जाता है।

डा० देसाई के मतानुसार यह उत्तम किंतु अति प्रबल औषधि है। इसका उतार घी भात है। कामला में फल की मात्रा मट्ठे के साथ देते हैं तथा पंचाङ्ग के क्वाथ से स्नान कराते हैं। इस रोग में १ रत्ती जाली के चूर्ण का नस्य कराने पर नाक में से बहुत पीला पानी का स्राव होकर पित्त प्रकोप दूर हो जाता है। यकृद्वृद्धि, प्लीहा वृद्धि जन्य जलोदर पर यह कड़वी तोरई के समान हितकारी है। अर्श रोग में वेदना एवं शोथ के शमनार्थ इसके पंचांग के क्वाथ से स्नान कराते या कपड़े को भिगाकर शरीर पोंछते हैं जिससे दुर्गन्ध कम होकर ज्वर कम हो जाता है। २१ दिवस के बिगड़े हुये मन्थर ज्वर में इससे विशेष लाभ होता है। इससे भ्रम भी कम हो जाता है।

अपीनस (पीनस दुर्गन्धित चिरकालीन नासास्राव (Atrophic rhinitis) घ्राणशून्यता एवं नासा के अन्य अवरोधक विकारों में इसे गोघृत मिलाकर नस्य देने से लाभ होता है। इससे अपस्मार में भी लाभ होता है।

(१) कामला, पांडु, प्रतिश्याय, शिरःशूल पर नस्य– इसके दो फलों को लेकर ऊपरी छिलकों को दूर कर भीतर के जालीदार भागों को १ तो. जल में कांच के स्वच्छ पात्र में सायंकाल के समय भिगा रातभर खुले स्थान में (ओस में) रख देवें। प्रातःसूर्योदय से कुछ पूर्व ही पात्र में ऊपर का निथरा हुआ स्वच्छ जल (यदि फल न मिले तो इसके पंचांग का ही कुचलकर जल में भिगोकर प्रातः

Scanned with CamScanner

खूब मसल छानकर लिया हुआ स्वच्छ जल) को दोनों छिद्रों में टपकावें ।

प्रथम रोगी को पलंग पर सीधा चित्त लिटाकर उसकी गरदन नीचे की ओर लटका कर (अर्थात् कन्धों के नीचे तकिया लगा दें, जिससे सिर कुछ नीचा हो जाय) उक्त हिमकषाय स्वरस की बूंदें नासिका में टपकावें, जिसे रोगी श्वास के द्वारा ऊपर खींचें तथा कुछ समय तक वैसा ही लेटा रहे। यदि ऊपर को खींचते समय ही छींकें आने लगें तो उठ बैठे। छींकों के साथ नासिका से पीला दूषित पानी बहने लगता है। उसके बह जाने पर मस्तिष्क हलका एवं ताजा हो जाता है, नेत्रों का पीलापन दूर हो जाता है। यदि एक बार में समस्त पीलापन दूर न हो तो दो दिन बाद या ७ दिन बाद पुनः उक्त विधि से नस्य देवें। इस प्रकार ३-४ बार के नस्योपचार से पूर्ण लाभ हो जाता है। ध्यान रहे नस्य को ऊपर खींचते समय दवा कंठ में लगने पर एकाध दिन कुछ दर्द करता है, तथा नासिका में जलन होती है जो गोघृत के नस्य से शांत हो जाती है। मुख का स्वाद कडुवा हो गया हो तो गरम जल से कुल्ले कर लेवें। यदि मस्तिष्क-शून्य या भारीपन या दर्द मालूम हो तो गाय का घृत थोड़ा सुखोष्ण नासिका में टपका देवें या रोगी ऊपर की ओर नस्य की तरह सूंघ लेवें। घृत इसके उपद्रवों को शांत कर देता है।

उक्त औषधि के नस्योपचार से कफजन्य सिर पीड़ा अर्द्धावभेदक (आधाशीशी), शिरो एवं नासागत दूषितकृमि उन्माद विकार, अपस्मार, पीनस में भी लाभ होता है। सिर में एक तरफ दर्द हो तो उसी ओर की नासापुट में इसकी बूंदें २ से ८ तक टपकावें दोनों ओर दर्द हो तो दोनों पुटों में टपकावें। इससे कुछ देर बाद प्रथम छींकें आकर नासिका द्वारा कुछ पीला सा तरल कफ निकलने लगता है जो २-३ दिन बाद स्वयंमेव बन्द हो जाता है। सिर दर्द तो उसी समय सदा के लिये दूर होजाता है तथा उक्त अन्य विकार एवं नेत्र विकार भी नष्ट हो जाते हैं। प्रतिश्याय या बिगड़े हुए जुकाम से उत्पन्न सिर पीड़ा पर यह रामबाण प्रयोग है।

यदि किसी को नासिका या मुख से इस प्रयोग के कारण रक्तस्राव होने लगे या चक्कर आने लगें तो गोघृत का नस्य देकर रोगी को लेटा देवें। फिर आध घण्टे बाद पकाकर ठण्डा किया हुआ मिश्री मिला हुआ दूध पिला देवें।

ध्यान रहे इस नस्योपचार के दिनों में रोगी को हल्का पथ्य, दूध, या दूध-साबूदाना या घृत मिश्रित मूंग की दाल की पतली खिचड़ी का सेवन करावें। लालमिर्च, गरम मसाला आदि बिल्कुल न देवें।

कामला रोग के लिए यह नस्य प्रयोग अप्रतिम है। इससे एलोपैथी में असाध्य मा[illegible] जाने वाला संस्पर्शज कामला (Infec[illegible]ive type of jaundi[illegible]e) भी दूर हो जाता है। किंतु पुनः ध्यान रहे रोगी की सहनशक्ति का विचार कर यह प्रयोग करना उचित है।

पांडु कामला पर—उक्त नस्य प्रयोग के साथ ही साथ बंदाल सत्व को गुड़ के साथ खिलाते हैं। सत्व विधि आगे विशिष्ट योगों में देखिये।

यदि केवल पांडुरोग हो तो उक्त प्रकार से इसके हिम का या फलों के रस का नस्य (फल के अभाव में बीजों के चूर्ण का नस्य) देवें तथा इसके पंचांग का रस ३ माशा समभाग शहद मिला सेवन करावें। अथवा पंचांग का ४ माशा चूर्ण दूध या जल के साथ १ माह तक सेवन करावें। फल के चूर्ण की या पंचांग के या बीज के चूर्ण की नस्य देने की मात्रा ½ रत्ती है।

(२) रुद्धार्त्तव में आर्त्तव प्रवृत्ति के लिए तथा मूढ़-गर्भ पातनार्थ—इसके पके हुए शुष्क फल और बीज २॥ तो., रेंडी बीज की गिरी तथा पुराना गुड़ ५-५ तोले लेकर प्रथम गुड़ में थोड़ा जल मिला चाशनी कर उसमें उक्त शेष द्रव्यों का चूर्ण मिला कर जामुन जैसी लम्ब गोल बत्तियां बना लेवें इसे गर्भाशय या योनिमार्ग में धारण करने से बन्द हुआ मासिकधर्म पुनः आने लगता है। ध्यान रहे यदि गर्भाशय या गर्भाशय के मुख पर शोथ हो तो इस प्रकार के तीव्र उपचारों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। तथा अधिक निर्बल एवं नाजुक प्रकृति की रुग्णा के लिए भी विचारपूर्वक सौम्य उपचार करना चाहिए।

—रसतंत्रसार।

Scanned with CamScanner

अथवा—केवल इसके पंचांग के स्वरस में रुई भिगो कर या रुई की बत्ती बना स्वरस में भिगोकर गर्भाशय के मुख पर दिन में दो बार रखने से ही ७ या १४ दिनों में आर्तव प्रवृत्ति होने लगती है। किन्तु गर्भिणी पर तथा निर्बल स्त्री पर यह प्रयोग न करें। अन्यथा गर्भपात हो जाता है। मूढ़ गर्भ के पातनार्थ यह प्रयोग किया जा सकता है।

(३) अर्श तथा गुदभ्रंश पर–अर्श नाशार्थ–इसके फल व जिमीकन्द (भूरण) के सम भाग चूर्ण की मात्रा ४ मा. तक जल के साथ सेवन करावें। —भा. भै. र.

वातार्श में–इसके पंचांग का टिंक्चर या अर्क (विधि आगे विशिष्ट योगों में देखो) यथोचित मात्रा में प्रातः सायं सेवन से तथा पंचांग के क्वाथ से मस्सों को धोते रहने से २१ दिन में पूर्ण लाभ होता है।

यदि भवके से खींचा हुआ अर्क हो तो १ तोले की मात्रा में देवें। —बृ. द.।

मस्सों के नाशार्थ—इसके फल, चित्रक और इंद्रायन की जड़ समभाग लेकर पानी के साथ पीसकर अंगूठे के समान वर्त्ति बना गुदा में रखने से मस्से नष्ट होते हैं। —ग. नि.।

अथवा—इसके फल, कड़वी तुम्बी व इन्द्रायण समभाग चूर्ण कर गुड़ में मिला बत्ती बना गुदा में रखने से अर्शाङ्कुरों का समूह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। —भा. भै. र.।

इसके फल को कांजी और सेंधानमक के साथ पीसकर लेप करने से या फल को गोरोचन के साथ पीस लेप करने से या इसके क्वाथ या हिम से मस्सों का प्रक्षालन करते रहने से अथवा इसके शुष्क फलों के चूर्ण को निर्धूम अंगारों पर डालकर उसके धूम्र से मस्सों को सेंकते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

अथवा—इसके पंचांग के स्वरस में कड़वी तोरई व कालीमिर्च के चूर्ण को पीसकर लेप करने से मस्सों की पीड़ा दूर होती है। तथा कुछ समय तक निरंतर लेप करते रहने से मस्से गिर पड़ते हैं। —बृ. द.।

इसके फल या पंचाङ्ग को गुड़ मिलाकर मकोय के रस में पीस गुटिका सी बना गुदा पर रख कर बांधने से तीव्र पीड़ा शीघ्र दूर होती है। —ग. नि.।

इसके पंचाङ्ग के क्वाथ का बफारा देते रहने से अर्श तथा वात के अन्य विकारों पर लाभ होता है। —भा. भै. र.

इसके पंचांग के क्वाथ से शौच के समय गुदा को धोते रहने से अर्श तथा गुदभ्रंश (कांच निकलना) में लाभ होता है। —भा. भै. र.

(४) ज्वरों पर—इसके फल के चूर्ण को १ मा. की मात्रा में ठंडे जल के साथ सेवन से शीत ज्वर शीघ्र दूर हो जाता है। —भा. भै. र.

इसके पंचाङ्ग के क्वाथ से शरीर प्रक्षालन करने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है। शरीर की दुर्गन्ध दूर होती है। ज्वर का वेग बढ़ता नहीं, बाकी उपद्रव नष्ट होते हैं।

कफ ज्वर में कफ गाढ़ा हो जिससे श्वासावरोध व दम घुटने की सी शिकायत हो तो अन्य कफ निःसारक औषधियों के साथ इसके फल का चूर्ण देवें।

विषम ज्वर में—इसके पंचांग का चूर्ण और [illegible] चूर्ण ५–५ तो० लेकर दोनों को ४० तो० जल में कर २० तो० घृत में पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान कर रखें। इस घृत का शरीर पर मर्दन करने से विषम ज्वर नष्ट होता है। अनुभूत है। —

शीत ज्वर आने के पूर्व—इसके पत्तों पर [illegible] चुपड़ कर उन पर थोड़ा सोंठ का चूर्ण बुरका कर आग पर गरम कर, रोगी के हाथ पैरों पर खूब [illegible] बांधने से ज्वर रुक जाता है। —

पित्त प्रधान ज्वर में—फलों के या पंचाङ्ग के [illegible] या हिम का सेवन दिन में ३ बार कराते हैं। इससे [illegible] कफ विकार भी दूर हो जाते हैं।

मंथर ज्वर में—फल के मध्य भाग को पानी में पीस कर शरीर पर मर्दन करें। —

शीताङ्ग सन्निपात में तथा विशूचिकादि में [illegible] अङ्ग को उष्ण करने के लिये इसके फल के चूर्ण [illegible] समभाग भुने हुए अरहर का चूर्ण मिला मालिश [illegible]

तान्त्रिक सन्निपात की बेहोशी दूर करने के लिये इस के सत्व या महीन चूर्ण को आक के दूध की भावना देकर नस्य देवें। इसी प्रयोग से सर्प दंश की बेहोशी भी दूर होती है। —वू० र०

स्वेद प्रवर्त्तनार्थ—फल का महीन चूर्ण देह पर मालिश करते हैं। —वू० द०

(५) कोष्ठबद्धता (विबन्ध) पर—इसके पंचाङ्ग का चूर्ण ४ मा० हरड़ ८ मा० का चूर्ण दोनों को २ तो० मुनक्का के साथ घोट कर शहद मिला गोली बना कर अवस्थानुसार योग्य मात्रा में सेवन कर ऊपर से दुग्धपान करें। इससे आंतों में पका हुआ मल निकल कर पेट का भारीपन दूर होता है। पथ्य—दूध चावल।

—वू० द०

इसका फल, अमलतास का गूदा और गुड़ समभाग लेकर तीनों को खूब महीन पीस कर बत्ती बनावें। इसे गुदा में रखने से आम मल निकल कर देह शुद्ध हो जाती है। आम के साथ बत्ती भी बाहर निकल आती है, उसे पानी से धोकर पुनः लगा लेवें (या दूसरी बत्ती बना कर रखें)। इस प्रकार बार-बार लगाने से सब आंव निकल जाती है। देह शुद्ध एवं निरामय हो जाती है। यह प्रयोग आम प्रवाहिका में अत्यन्त उपयोगी है। —भा० भै० र०

(६) जलोदर तथा यकृत्प्लीहा वृद्धि पर—विशेषतः मलेरिया के कारण उत्पन्न यकृत्प्लीहा वृद्धि के उपद्रव रूप जलोदर में इसके फल या पंचाङ्ग चूर्ण के १ भाग में ८० भाग उबला हुआ जल मिलाकर बनाया हुआ फांट सुखोष्ण २॥ से ५ तो. की मात्रा में प्रतिदिन ३ बार नाइट्रोहायड्रोक्लोरिक एसिड (Nitrohydro chloric acid) मिलाकर देने से अनुभव में आया है कि प्रबल मूत्ररेचन होकर जलोदर में लाभ होता है।

—नाडकर्णी

केवल यकृत या प्लीहा की (या दोनों की) वृद्धि हो तो इसके पंचांग का टिंचर या अर्क (इसकी विधि एवं मात्रा विशिष्ट योगों में देखो) दिन में २-३ बार देते रहने से लाभ होता है। किंतु इससे अधिक दस्त आने लगें तो अर्क का सेवन कुछ दिन के लिये बन्द कर पुनः थोड़ी मात्रा में चालू करें।

बालकों के यकृत विकार एवं प्लीहा वृद्धि पर भी यह कम मात्रा में रोग की प्रारम्भावस्था में देने से मल मूत्र का रेचन होकर बहुत लाभ होता है। —नाडकर्णी

(७) उपदंश, श्वास और शोथ पर—उपदंश पर—इसके २ या ३ फलों का जल में रातभर भिगोकर प्रातः मल छान कर सेवन करावें। —वू. द.

श्वास रोग में—इसके ५ फलों को २ सेर जल में पकावें, २० तो. शेष रहने पर छान कर उसमें फिटकरी २ तो. तथा नीला थोथा २ तो. पीसकर मिलावें और पुनः आग पर रखें। जल शुष्क हो जाने पर शेष सत्व को सुखाकर शीशी में सुरक्षित रखें। मात्रा—१ जव या उड़द बराबर (½ रत्ती से कम) लेकर बीजरहित मुनक्का में प्रातः सायं देवें तथा भोजन में केवल हलवा देवें। इससे श्वास का तीव्र वेग शांत होता है तथा धीरे धीरे पूर्ण लाभ होता है।

—श्री मोहरसिंह वैद्याचार्य (रसायन के श्वास रोगांक से साभार)

शोथ पर—पांडु रोग की या कफवातजन्य सूजन हो तो इसके पंचांग के चूर्ण के साथ कूट व चित्रक का चूर्ण समभाग मिला उसमें ४ भाग गोमूत्र मिलाकर पकावें। कुछ गाढ़ा हो जाने पर गुनगुना लेप करें तथा उक्त मिश्रण में ८ भाग पानी मिला और पकाकर उससे स्नान करावें।

इसके पत्तों तथा फलों का बफारा देने से शोथ रोग में लाभ होता है। आगे विशिष्ट योगों में टिंचर का प्रयोग देखें। —वू० द०

(८) चर्म रोगों पर—इसके फलों के या पंचांग के स्वरस में सुहागा पीसकर लगाने से दाद में, बावची घोट कर लगाने से श्वेत कुष्ठ में तथा केवल स्वरस के लगाने से सिध्म (सेहुंवा) और उकवत में लाभ होता है।

—वू. द.

कुष्ठ पर—फल के महीन चूर्ण को यथोचित मात्रा (पुस्तक में मात्रा २ मा. लिखी है) में उष्ण जल के साथ

Scanned with CamScanner

सेवन करने तथा रोज थोड़ी देर धूप में बैठने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है। --भा. भै. र.

अथवा--इसके पत्र, फल और मूल का शुष्क कर चूर्ण करें। फिर उसमें आक एवं सेहुण्ड के दूध का ७-७ भावनायें देवें। इसमें से चूर्ण २ माशा प्रतिदिन खांड़ के साथ सेवन से ३ मास में गलित प्रायः कुष्ठ भी अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

दाद, खुजली, विचर्चिका, श्वेत कुष्ठ आर सिध्म (छीप या सेंहुवा) के नाशार्थ--इसके फलों के रस में तिल तैल मिलाकर प्रातःकाल मालिश करें और ३ प्रहर बाद पोंछ डालें तथा इस योग को पिया भी करें (ध्यान रहे यह योग तीव्र रेचक है। सावधानीपूर्वक सेवन कराना चाहिये)। —भा. भै. र.।

श्वेत कुष्ठ पर—इसका फल आर अंकोल समभाग लेकर चूर्ण बनावें तथा जल में घोंटकर लगभग छोटे बेर के बराबर की गोलियां बना लें। १ गोली खांड़ के साथ सेवन करें तथा दवा सेवन के दो प्रहर पश्चात् उड़द का बना हुआ आहार लेवें। इस प्रकार ८ दिन के सेवन से लाभ हो जाता है। —भा. भै. र.।

(९) हैजा पर—इसके पंचांग के हिम में हींग फुलाई हुई ३ रत्ती, कपूर देशी ४ माशा, कत्था ४ माशा आर अफीम १ मा. मिलाकर (हिम उतना ही लेवें, जितने में गोली बन जावें) १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। नीबू के रस के अनुपान से सेवन कराने से आसन्न मृत्यु को दूर करती है। —बू. द.।

(१०) दन्त और दाढ़ के कृमि एवं शूल पर—इसके पंचांग के स्वरस में रुई का फाहा भिगोकर दर्द के स्थान पर दवा देने से दूषित पानी निकलना शुरू होता है। उस समय लार टपकाना चाहिए। कुछ ही समय में शूल नष्ट हो जाता है। इसी तरह कुछ दिन करने से कृमि नष्ट हो जाते हैं। इसके सत्व का उपयोग करने से भी यही लाभ होता है। —बू. द.।

नोट—ध्यान रहे इसका स्वरस, विशेषतः फल का स्वरस लगाने से दांत या दाढ़ निकल पड़ते हैं। भारतीय जड़ी बूटी नामक पुस्तक में लिखा है कि इसके फल को कुचलकर निकाला हुआ ताजा रस अंगुली से दाढ़ के चारों ओर लगाकर दाढ़ को खींच लेने से बिना किसी कष्ट और पीड़ा के दाढ़ निकल आती है। एक महात्मा का कथन है कि इसके फल को मुख में डालकर चबाने से ही ५-६ मिनट में ही तमाम दांत गिर गये। यह प्रयोग शत प्रतिशत (दांत या दाढ़ निकालने के लिए) सत्य और सफल है।

(११) कर्णशूल पर—इसके फल ५ तोले का क्वाथ बना छानकर उसमें १० तोला तिल तैल मिलाकर पकावें। बाद उसमें मोरपगी नामक बूटी अथवा मरवा का चूर्ण डालकर शीशी में भर रखें। इसकी बूंद कान में डालने से कर्ण शूल तत्काल शमन होता है। —बू. द.।

(१२) व्रण, फोड़े पर—यदि व्रण में कीड़े पड़ गये हों तो इसके स्वरस में रुई का फाहा भिगोकर रखने से कृमि नष्ट हो जाते हैं। (व्रणों को इसके क्वाथ, फाण्ट या शीत कषाय से धोते हैं। शरीर में अत्यधिक व्रण होगये हों तो इसके स्वरस का सेवन भी कराते हैं)।

इसके फलों को पीसकर फोड़े पर बांधने से वह फूट जाता है। —बू. द.।

(१३) विषों पर—पागल कुत्ते के विष में इसके रेसे सहित फल का गूदा २० तोले जल में एक घड़ी भिगोना एवं मसलछान कर शक्ति के अनुसार ५ दिन तक प्रातः पिलाना चाहिए। इससे वमन विरेचन होकर विष निकल जाता है। वर्षा ऋतु निकल जाने तक पथ्य रखना चाहिए। कैसे ही विष पर यह योग लाभ करता है। —बू. द.।

अथवा—इसके पंचांग का क्वाथ ७ दिन तक प्रातः सायं सेवन कराने से लाभ होता है।

सर्प विष पर—इसके फलों को जल में भिगोकर या पीस छानकर विष की अधिकता और शक्ति के अनुसार साधारणतः १ से २ रत्ती तक पिलावें। वमन, रेचन होकर विष निकल जावेगा। मनियारी सांप और गोह के विष में भी इसे इसी प्रकार देना चाहिये। उतार-घृत पिलावें। —अगदतंत्र।

चूहे के विष पर—इसके फल के साथ मैनफल, बच व कूठ गोमूत्र में पीसकर, दही मिलाकर पिलाने से सर्व

Scanned with CamScanner

प्रकार के चूहों का विष दूर होता है। —वृ. द.।

चूहे के विष पर—इसके पंचाङ्ग का क्वाथ भी पिलाते हैं।

(१४) पशुरोग पर—पशुओं के विशेषतः घोड़ी के बच्चों के पेट में जब कीड़े पड़ जाते हैं तो इसका स्वरस पिलाने से कीड़े गिर जाते हैं। तथा पशुओं के जख्म में कीड़े हो जाने पर इसके पत्तों की लुगदी बांध देते हैं।

—वृ. द.।

मूल—इसकी जड़ कड़वी, रेचक, कफ, शूल, कृमि, वातगुल्म, वातरोग, अर्श, कामला आदि पर प्रयुक्त होती है।

(१५) रात्रि ज्वर में—इसकी जड़ के टुकड़े को कान में बांधने से ज्वर का आक्रमण रुक जाता है। —ब. गु.।

(१६) उपदंश में-जड़ १ रत्ती पान में रखकर चबाने से उपदंश के व्रण नष्ट होते हैं। —वृ. द।

(१७) फोड़ा, फुन्सी पर-जड़ को सिरके में पीसकर लेप करते हैं।

(१८) विषैले जंतुओं के विषों में—जड़ को जल में घिसकर लेप करते हैं।

चूहे के विष पर—इसे घिसकर दंश स्थान पर लेप करते हैं तथा इसके रस को पिलाते हैं।

पुष्प—इसके फूल रेचक, कृमिनाशक, आर्तव प्रवर्तक, शूल, ज्वर आदि नाशक हैं।

(१९) उदर कृमि पर—इसके ५ फूलों को थोड़े जल में घोटछानकर पिलाने से पेट के कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

(२०) आर्तव प्रवृत्ति के लिये—इसके ५ फलों को पीसकर वत्ती बना स्त्री के भग में रखने से (लगभग ७ बार रखने से) रजः प्रवृत्ति होने लगती है। —वृ. द.।

इससे गर्भवती स्त्री का गर्भ गिर जाता है।

(२१) ज्वर पर—इसके कोमल पुष्प, कुटकी और गिलोय सत्व १-१ तो. इसका महीन चूर्ण कर कालीपाढ़ल के रस में घोटकर रखें। १॥ माशा की मात्रा में शहद के साथ सेवन से कामला ज्वर, मलेरिया ज्वर दूर होता है, तथा दस्त साफ होता है। —वृ. द.।

(२२) शिरःशूल पर—शुष्क फूलों के कपड़छन चूर्ण में लौंग का चूर्ण मिलाकर सूर्योदय से पूर्व ही नस्य देने से पीड़ा शांत हो जाती है। इस पर घृत मिश्रित लिट्टी का पथ्य देना चाहिए। —वृ. द.।

(२३) आमातिसार पर—फूलों को पीसकर गुड़ मिला वत्ती बनावें। इसे गुदा में रखने से उदरस्थ समस्त आम निकलकर शरीर शुद्ध एवं स्वस्थ हो जाता है।

यदि उक्त बत्ती नीचे सरक जावे या गिर पड़े तो उसे पुनः ऊपर चढ़ा देना चाहिये। —भा. भै. र.।

बिच्छू के दंश पर फूलों को पीसकर लगाते हैं।

बीज—कटु, सारक, गुल्म, कृमि, कफ, शूल, अर्श, कामला, गंडमाला आदि नाशक हैं।

(२४) अर्श पर—इसके बीज और सेंधा नमक समभाग लेकर दोनों को कांजी (या तक्र) के साथ पीसकर अर्श के मस्सों पर लेप करने से वे नष्ट होजाते हैं।

अथवा बीजों का पाताल यंत्र द्वारा तैल निकालकर अर्श के मस्सों पर लगाते रहने से १५ दिन में वे पीड़ा-दायक मस्से समूल नष्ट हो जाते हैं। फिर कभी उस रोगी को या उसकी सन्तान को (पितृदोष से) नहीं होते।

—भा. भै. र.।

बीजों का चूर्ण और गुड़ दोनों को मकोय के रस में पीसकर लेप करने से अर्श की वेदना तत्काल दूर होती है।

(२५) गण्डमाला (कंठमाला) पर—बीजों को जल के साथ पीस छानकर उसके १ या २ बून्द रस में ४ बूंद मनुष्य का मूत्र मिला कान में डालें। —ब. गु. (यहां मनुष्य मूत्र के स्थान में गो मूत्र ले सकते हैं)।

(२६) पागल कुत्ते के विष पर—बीजों को बलाबल देखकर जल में पीसकर पिलाने से कुत्ते का काटा हुआ यदि पागल भी होगया हो तो वमन होकर अच्छा होजाता है। —वृ. कु.।

(२७) चूहे के विष पर—इसके बीज तथा कड़वी तोरई और सिरस के बीज इनके चूर्ण में मैनफल का चूर्ण मिला दही के साथ पान कराकर वमन कराने से चूहे का विष दूर हो जाता है। —वृ. द.।

नोट मात्रा—फल के मध्य भाग का चूर्ण १-२ रत्ती

Scanned with CamScanner

किन्तु संशोधनार्थ १-१॥ मा. । पत्र-स्वरस ६ मा. । टिंचर १०-२० बूंद ।

अधिक मात्रा में वातक—अतिवामक एवं पीतवर्ण का विरेचक प्रायः हैजे जैसी अवस्था करने वाला आंत्र एवं आमाशय के लिए हानिकारक, अवसादक (हार्टफेल भी हो सकता है) गर्भपातकारक है । हानि निवारणार्थ घृत, मक्खन, बादाम आदि स्निग्ध द्रव्य देवें ।

विशिष्ट योग–

आसव या टिंचर-देवदाली—इसके १० तो० मोटे चूर्ण में २० गुना मद्य (६०%) मिला कर बोतल में भर मुख बन्द कर ७ दिन तक रक्खें । प्रतिदिन बोतल को ३-४ बार हिला दिया करें । पश्चात् छानकर रख देवें । मात्रा १० से २० बून्द तक । यह २० बूंद देने पर विरेचक होता है । और भी अधिक मात्रा देने से वमन और प्रबल विरेचक है । यकृत, प्लीहा वृद्धि पर यह अति लाभकारी है ।

हृदय की शिथिलता जन्य शोथ जो प्रथम हाथ पैरों पर प्रकट होकर ऊपर को चढ़ती है, उस पर यह टिंचर दिन में ३ बार थोड़ा जल मिलाकर देते रहने से विरेचन एवं मूत्रल गुणों द्वारा शोथ को दूर कर देता है । किंतु ध्यान रहे, यदि वृक्क विकार होने से प्रथम मुख पर सूजन आदि हो तो इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये ।

—गां. औ. र. ।

अथवा—इसके ४० तो० फलों को १६० तो० जल में खूब खरल करें, ४ प्रहर बाद उसमें ८० तो० और भी जल मिला कपड़े से छानकर २ घंटे बाद जल को निथार लेवें । नीचे तलैटी में जो भूरे रंग का सत्व मिले उसे शुष्क कर मद्यार्क (रेक्टिफाईड स्प्रिट) ४० तो० में मिला बोतल में भर मुख बन्द कर रख दें । २३ दिन बाद उसमें ६० तो० अल्कोहल (मद्य) और मिलावें तथा १५ तो० शहद डाल दें । पुनः काग बन्द कर २७ दिन रखने के बाद छानकर काम में लावें । मात्रा १० से २० बून्द उष्णोदक के साथ देवें । यह प्रतिश्याय, कास, नवज्वर, कामला, गुल्म, शोथ, कृमि, अर्श, हिक्का, श्वास, आमवात एवं क्षयनाशक है ।

—श्री पं० शालिग्राम जी शर्मा वैद्यराज
—(बृ० आसवारिष्ट संग्रह)

(२) अर्क-देवदाली—इसके पंचाङ्ग को कूट कर यदि २० तो० चूर्ण हो तो उसमें ४ सेर जल मिला कम से कम २४ घंटे भिगो रखने के बाद बकयंत्र या भवका यंत्र द्वारा २ सेर अर्क खींच कर सुरक्षित रखें । मात्रा १ तो० । यह अर्क शूल, वातगुल्म, कफविकार, अर्श एवं वात नाशक है, रेचक है ।

प्रतिदिन सायंकाल में इसके पीने से प्रातः दस्त खुलकर आता है, रुचि बढ़ती है, क्षुधावृद्धि होती है। प्रातः सायं १-१ तो० अर्क लेने से पांडु, कामला, गुल्म, शूल, वात कफज्वर शीघ्र नष्ट होते हैं ।

वातार्श में यह अर्क प्रातः सायं २१ दिन सेवन से तथा इसके पंचांग के क्वाथ से मस्सों को धोते रहने से लाभ होता है ।

क्षय ज्वर वाले को यह अर्क नित्य सेवन कराने से विशेष लाभ होता है । किंतु ध्यान रहे हीन बल वाले तथा जिसे दस्त आने आरम्भ हो चुके हों, उसे कदापि इसका सेवन नहीं कराना चाहिये । —वृ. द. ।

(३) हिम और फाण्ट देवदाली—इसके दो फलों के चूर्ण को ५० तो० जल में रात्रि के समय भिगोकर प्रातः छान लेवें । इस हिम की मात्रा २½ से ५ तो० तक दिन में ३ बार ।

फाण्ट के लिये दो फलों को उबलते हुए ५० तो० जल में डाल कर ढक देवें । आधा घंटे बाद छान लेवें । उपयोग हिम के समान । इसके अतिरिक्त यह दुष्ट विषाक्त जखम या व्रण को धोने में महोपकारक है । सिर दर्द में इस फाण्ट का नस्य कराया जाता है ।

(४) क्वाथ-देवदाली—इसका जौकुट किया हुआ ताजा पंचांग १ तो० को १ सेर जल में पकावें । आधा जल शेष रहने पर उतार कर छान लेवें । मात्रा ढाई से ५ तो० दिन में २ या ३ बार । यह आमाशय पौष्टिक एवं उत्तम मूत्रल है । अपचन, अग्निमांद्य और मलावरोध पर लाभदायक है । —गां. औ. र. ।

Scanned with CamScanner

(५) स्वरस-देवदाली—इसके दो फलों के ऊपर के वक्कल तथा भीतर के बीजों को दूर कर केवल जालीदार भाग को २ से ४ तो० तक स्वच्छ जल में भिगोकर किसी पत्थर या कांच के प्याले में रख देवें। १ घंटा बाद जल को मल छान कर कांच की शीशी में रखें। यह स्वरस ७ दिन तक काम दे सकता है। किन्तु तत्काल का बनाया हुआ अधिक लाभदायक होता है। इसका नस्य कामला, पांडु आदि में देते हैं। पुराना बिगड़ा हुआ शुष्क प्रतिश्याय में इसकी दो से ५ बूंदें दोनों नथुनों में या एक में ही डालने से प्रतिश्याय बहकर नष्ट हो जाता है। यदि प्रथम बार में सम्पूर्ण कफ न निकले तो तीसरे दिन पुनः प्रयोग करें।

—धन्वन्तरि।

(६) सत्व-देवदाली—फलों का छिलका एवं भीतर के बीज दूर कर देवें। शेष भाग को किसी पत्थर के खरल में जल के साथ १२ घंटे मर्दन कर जाली को निचोड़ जल से धोकर फेंक दें। फिर धुले हुए जल को और खरल के जल को मिला २४ घंटे तक स्थिर रख ऊपर का जल नितार कर फेंक दें। शेष नीचे के सत्व को छायाशुष्क कर महीन पीस शीशी में रख लेवें। यह सत्व ६-७ महीने तक काम में आ सकता है।

—बृ. द.।

(७) देवदाली कल्प—इसके पंचांग के रस में चांदी और सुवर्ण के वर्कों को खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। १-१ गोली नित्य दुग्ध के साथ सेवन करें। पाचन हो जाने पर दूध और साठी चावल का भात खावें। खट्टा, खारा पदार्थ न खावें, इस प्रकार एक महीने के सेवन से अपूर्व बल, वीर्य एवं आयु की वृद्धि होती है।

अथवा—शुक्ल पूर्णिमा को पुष्प योग एवं शुभ दिन देखकर विधिपूर्वक बलिदान देकर इसके पंचांग का रस समभाग घृत और मधु के साथ ७ दिन तक लेने से मनुष्य मेधावी होता है तथा महीने भर सेवन करने से दीर्घायु होता है। यदि रविवार से आरम्भ कर नित्य ३ माह तक सूर्य के सामने दूध के साथ इसका रसपान करें तो तेजस्वी तथा आयु की विशेष वृद्धि होती है।

—औषधि कल्पना (ब. गु.)

कल्प नं० २—इसके उत्तम फलों को पीस कर (१ से दो रत्ती की) गोलियां बना तेज धूप में शुष्क कर रखें। प्रतिदिन १ गोली गुड़ में लपेट कर रोगी (विशेषतः श्वेत कुष्ठ रोगी) को खिलावें। और उसके शरीर पर तिल तैल की मालिश कर एक या दो पहर तक तेज धूप में बैठावें, यहां तक कि उसका शरीर तपने लगे। थोड़ी देर बाद उसे खूब अच्छी तरह से वमन विरेचन होंगे। इस प्रकार १४ दिन तक सेवन से श्वेत कुष्ठ के स्थान पर छाले श्वेत या लाल वर्ण के पड़ जावेंगे। ये छाले ३ दिन बाद फूटकर उनसे मवाद निकल कर शरीर शुद्ध हो जावेगा। इसके थोड़े दिन बाद ही त्वचा का रङ्ग ठीक हो जाता है। इस प्रयोग से ७ सप्ताह में श्वेत कुष्ठ अवश्य ही नष्ट हो जाता है। पथ्य में उड़द, कुलथी तथा तिल तैल में बना हुआ कुलथी का शाक तथा बटक सेवन करावें।

—भा. भै. र.।

कल्प नं० ३—इसके पचांग का छायाशुष्क चूर्ण नित्यप्रति उचित मात्रा (ग्रन्थ में १ तो० मात्रा कही है) में मधु और घृत मिला कर अथवा इस चूर्ण को हरड़ के क्वाथ के साथ अथवा इस चूर्ण के साथ समभाग पुनर्नवा चूर्ण मिलाकर जल के साथ सेवन करने से वृद्धावस्था नहीं आती, अर्थात् दीर्घायु प्राप्त होती है।

—भा. भै. र. से संक्षिप्त।

(८) देवदाली प्रयोग—समुद्रफेन, चिरायता, नीम का पंचांग, आमला, भांगरा, बावची, हरड़, बहेड़ा, असगन्ध, पुनर्नवा, संभालु, देवदारू, गिलोय, इन्द्रायण की जड़, गोरखमुन्डी, श्वेत सहजने की छाल तथा ढाक की जड़ और फल सब समभाग और देवदाली का पंचांग सबके बराबर लेकर चूर्ण बना लेवें। इसे उचित मात्रा में १ मा. तक (ग्रन्थ में मात्रा ४ मा. कही है) शीतल जल के साथ सेवन कराने तथा उचित हल्का भोजन पथ्य रूप में देने से वातरक्त, गुल्म, कुष्ठ, प्लीहा, भगन्दर, यकृद्दोष, जलोदर, वातविकार आदि रोगों का नाश होता है।

—भा. भै. र.।

(९) संशोधनवटी—इसके पके हुए शुष्क ३ फलों को लेकर भीतर की जाली व बीजों को दूर कर केवल

ऊपर के कांटेदार टप्पर का चूर्ण कर लें। फिर लगभग १ तोला मुनक्का को धोकर, (भीतर के बीजों को फेंक कर) चटनी की तरह पीस उसमें उक्त चूर्ण मिला कर १४ गोलियां बना लेवें। ४-४ रत्ती की गोलियां बन जाय उतनी मुनक्का लेनी चाहिये।

मात्रा—१-१ गोली कच्चे (या पका कर ठंडे किये हुए) गोदुग्ध के साथ प्रातः तथा रात्रि को निगल लेवें। बस्ति लेने के लिये ४ गोली को गोदुग्ध या जल में घोल कर बस्ति देवें।

जीर्णज्वर, मन्दज्वर, सिरदर्द और कामला को दूर करने में यह वटी अतिलाभदायक है। आमाशय एवं अंत्रगत मलों का शोधन कर रोगों को दूर करती है। प्रथम दिन ही वमन विरेचन सौम्यरूप से होता है, फिर नहीं होता। क्षय की प्रारम्भिक अवस्था में भी इसका उपयोग सफलतापूर्वक होता है। बृहदान्त्र में आम, उदरकृमि एवं मलसंग्रह हो जाने से सिर में भारीपन निरन्तर बना रहता है, आलस्य आता है, स्मरण शक्ति का ह्रास होता है। इस पर कई रोगी बार-बार जुलाब लेते रहते हैं, जिससे अन्त्र अतिशिथिल हो जाता है, तथा शरीर भाररूप भासता है। ऐसी दशा में वटी मिश्रित गोदुग्ध की बस्ति देने से उदरशुद्धि होती है, और पाचनक्रिया सबल बन जाती है इत्यादि। संक्षेप में जब मल, आम, कृमि, कफ या पित्त आदि का संग्रह होता है, या पचनेन्द्रिय संस्थान में कीटाणु प्रवेश होकर उनकी वृद्धि हो जाती है तब यह गुटिका आशीर्वाद के समान उपयोगी है।

—रसतन्त्रसार से साभार (संक्षेप में)

(१०) लोहद्रुति—देवदाली की भस्म को मनुष्य के मूत्र की २१ भावनायें देकर सुखा लेवें। फिर कांत लोह को तपा कर लालकर उसमें इसका प्रक्षेप देने से लोह द्रुत हो जाता है। नर मूत्र के स्थान में गोमूत्र भी लिया जा सकता है। कांत या तीक्ष्ण लोह को मूषा में तपाकर लाल करने के पश्चात् उसमें इसका प्रक्षेप देवें। लोह पानी जैसा द्रवित हो जाता है —रस रत्न समुच्चय।

देवदाली के अभाव में कड़वी तोरई की भस्म को गोमूत्र की २१ भावनायें देकर इसी प्रकार लोहद्रुति की जाती है। —र. र. स.

अथवा—देवदाली के रस से ७ दिन तक गंधक को भावितकर सुखा लेवें। फिर लोहे को तपाकर लाल हो जाने पर उसमें गन्धक डालने से लोहा पारद के समान द्रवित हो जाता है। —र. र. स.।

वंसलोचन—देखो वांस में।

वकपुष्पी (Vandellia Erecta)

तिक्त कुल (Scrophulariaceae) इस मृदु, चिकने, रोमश ४-८ इंच ऊंचे छोटी जाति के क्षुप की शाखायें मूल से ही निकली हुई।

पत्र—वृन्त रहित या अत्यल्प वृन्तयुक्त ३-३ इंच लम्बे, चना के पत्र जैसे, अग्र भाग में क्रमशः संकड़े, नुकीले, वृन्त के समीप मोटे।

पुष्प—१-२ इंच लंबे मृदु पुष्पदण्ड पर श्यामाभ श्वेत वर्ण के, ३ पंखड़ीयुक्त, वृन्त समीप नलिकाकार।

बीजकोष या फल—गोल छोटे-छोटे होते हैं। वर्षा के अन्त में फूल व फल आते हैं।

इसके क्षुप काश्मीर से आसाम तक तथा समग्र बंगाल, मध्य भारत एवं दक्षिण भारत में पाये जाते हैं।

नाम—

हि० म० बं०—वक पुष्पी, बक पुष्प। लै०—वेंडिलिया एरेक्टा, वेंडिलिया पायक्सिडेरिया (Vandellia Pyxidaria maxim)

गुण धर्म व प्रयोग -

यह पूयमेह (सुजाक) एवं बालातिसार नाशक है। सुजाक में-इसका स्वरस घृत के साथ दिया जाता है। बालकों के हरे पीले अतिसार पर इसका स्वरस विशेष लाभकारी है।

Scanned with CamScanner

बकायन—देखो नीम (महा)बकायन। बकार—देखो अग्नियून। बकुल—देखो मौलसिरी। बखमा—देखो विखमा।
बखिया मेला (बकिया मेला)—देखो अर्खार। बखुर इ. मरियम—देखो हाथजोरी (हथजोड़ी)।
बगुआ—देखो मुंगस काजुर।

बच (नं० १) [Acorus Calamus]

हरीतक्यादि वर्ग एवं सूरण कुल[1] (Araceae) के इस सदैव हरित ३-५ फुट ऊंचे आड़ी टेढ़ी शाखा युक्त क्षुप के पत्र मूल स्थान से उत्पन्न अभिमुख, चिकने, चमकीले, हरे, नोकदार, ईख या बाजरे के पत्र जैसे ३-६ फुट लम्बे, ३/४-१। इंच चौड़े किनारे तरङ्गदार, मध्य में मोटे होते हैं।

पुष्प—इसका पीताभ श्वेत वर्ण का पुष्पकोष बाह्य आच्छादन युक्त होने से स्पष्ट दिखलाई नहीं देता। यह पुष्पकोष ६ से ३० इंच लम्बा ३/४ इंच व्यास का तथा मंजरी पुष्पकोष के भीतर २-४ इंच लम्बी आधा-पौन इंच व्यास की किंचित मुड़ी हुई एवं परागकोष पीला होता है।

फल (बीजकोष)—त्रिकोणाकार, शुण्डाकार, पार्श्व युक्त, दो खंड वाला, मांसल एवं बहुबीजयुक्त होता है।

मूल या कन्द—भूमि में अदरक जैसा प्रसरणशील, मध्यमांगुलि जैसा स्थूल, खुरदरा, ५-६ पर्व वाला (षड्ग्रन्था) या अनेक पर्वयुक्त (शतपर्विका), प्रत्येक पर्व (गांठ) के चारों ओर सघन रोमश (गोलोमी, लोमशा), जटा सदृश चारों ओर प्रसरणशील (जटिला), अरुण वर्ण का, उग्रगन्धी होता है (उग्रगंध तो इसके सर्वाङ्ग में होता है किन्तु मूल में अधिक होता है)। वर्षाकाल में फूल तथा पश्चात् फल आते हैं। इसकी मूल को ही बच कहते हैं तथा यही औषधिकार्य में ली जाती है।

एशिया खण्ड का मध्य भाग तथा पूर्वी यूरोप के आनूप देशों में तथा भारत के युक्त प्रांत के सजल, दल-दल एवं रेतीले स्थानों में आसाम, मनीपुर, नागापहाड़, काश्मीर, बर्मा तथा सीलोन में प्रायः सर्वत्र नैसर्गिक होते हैं तथा बोई भी जाती है।

नोट नं० १—मुख्यतः इसकी दो जातियां हैं—(१) घोड़ा बच या भारतीय बच जिसका वर्णन प्रस्तुत प्रसंग में किया जा रहा है और (२) श्वेत या खुरासानी बच इसे पारसीक बच, बाल बच भी कहते हैं। इसका वर्णन आगे बच नं० २ देखिये।

इसी प्रसंग में भावप्रकाशकार ने मलय बचा (महा भरीबचा[2]) या कुलिजन का तथा द्वीपान्तर बचा या चोपचीनी का भी वर्णन किया है। इनको इस ग्रन्थ में कुलिजन और चोपचीनी के प्रकरणों में देखिये।

नोट नं० २—चरक के विरेचन, लेखनीय, अर्शोघ्न, तृप्तिघ्न, आस्थापनोपग, शीतप्रशमन, संज्ञास्थापन, तिक्त-स्कन्ध, शिरोविरेचन गणों में तथा शोधन योग, दो प्रकार के ब्राह्मरसायन, ऐन्द्री रसायन, त्रिफला रसायन, एवं हरीतक्यादि रसायनों में और ज्वर, गुल्म, प्रमेह, कुष्ठ, राजयक्ष्मा, उन्माद, अपस्मार, उदर रोग, अर्श, ग्रहणी, हिक्का, श्वास, कास, अतिसार, तृषा रोग, विष विकार, उदावर्त, अश्मरी, पीनस, हृद्रोग, मुख रोग, कर्णस्राव, ऊरुस्तंभ, वात रोग, योनिरोग, स्तन्य विकार आदि के प्रयोगों में इसका उपयोग किया गया है। सुश्रुत के पत्रादि, पिप्पल्यादि, मुस्तादि, ऊर्ध्वभागहर गणों में एवं अनेक रोगों में इसकी योजना की गई है।

---

[1] कई लोग इसे बच कुल (Aroideae) की ही प्रमुख बूटी मानते हैं। इस कुल का भी परिचय सूरण कुल जैसा ही है। जमीकन्द का प्रकरण देखिये।

[2] महामारी बच के विषय में नोट के 'बच-सुगन्धा' के प्रकरण में देखिये।

Scanned with CamScanner

बच
ACORUS CALAMUS LINN.
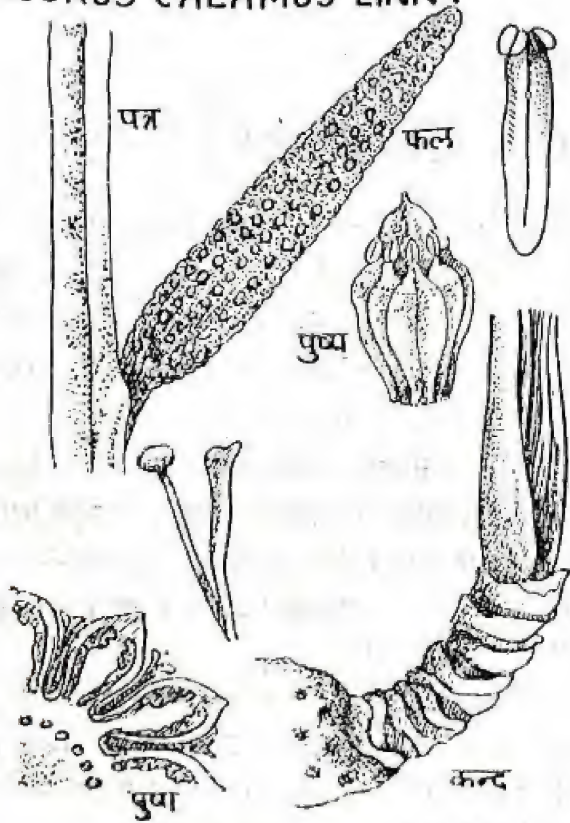
नोट नं० ३—बाजारों में कई स्थानों पर बच के नाम से श्वेत वर्ण की लकड़ी या कुलिंजन की जड़ें बेची जाती हैं। असली बच में जो एक विशेष प्रकार की उग्रगन्ध होनी चाहिए यह इनमें नहीं पाई जाती।[1] ध्यान रहे उग्रगन्ध युक्त, किंचित लाल वर्ण तथा ग्रन्थि युक्त बच ग्राह्य है; किंतु इन गुणों के होते हुए भी यदि इसका अन्तर्भाव शुभ्र वर्ण का हो तो अग्राह्य है।

नोट नं० ४—सुगन्ध बच (सिधौल या चंद्रमूला) का वर्णन आगे 'बच सुगन्ध' के प्रकरण में देखिये।

प्रस्तुत प्रसंग के बच (घोड़ बच) के नाम आदि—

नाम–

सं०-बचा (वाक्शक्ति वर्धक होने से), उग्रगन्धा, षट्ग्रन्था, गोलोमी (गौ के शरीर के रोम समान रोमयुक्त), शतपर्विका (अनेक पर्वयुक्त) क्षुद्र पत्रा (पतली पत्ती वाली), मंगल्या (भूत बाधा निवारक), जटिला, लोमशा, उग्रा इत्यादि। हि०–बच, घोरबच, घोड़ बच, गोर बच्च, बरजा इ०। म०—वेखंड। गु०–बज, घोड़ाबज। बं०–बच, घोड़ाबच। अं०—स्वीट फ्लेग (Sweet flag)। ले०—एकोरस कैलेमस, एकोरस ओडोरिटस (Acoruslodoratus)।

रासायनिक संगठन —

इसकी मूल त्वचा में एक उड़नशील सुगन्धित पीत-वर्ण का तैल १.५ से ३.५% तक पाया जाता है जिसमें प्रधानतः एसारिल एल्डिहाइड (Asarylaldehyde) नामक एक तत्व होता है। इसके अतिरिक्त एकोरिन (Acorin) नामक मधु के समान पतला, तिक्त, ग्लुकोसाइड, एकोरेटिन (Acoretin) नामक राल जैसा पदार्थ, केलामाईन (Calamine) नामक रवेदार क्षाराभ, युजिनोल (Eugenol) एसारोन (Acarone), कैफीन (Caffeine) एवं अधिक प्रमाण में श्वेतसार (स्टार्च) तथा किंचित प्रमाण में कषाय द्रव्य (टेनिन) पाये जाते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—मूल।

गुण धर्म व प्रयोग –

लघु, तीक्ष्ण, सर, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, कटु-विपाक, प्रभावमेध्य एवं कफ वात शामक पित्त वर्धक, दीपन, तृप्तिघ्न, वमन, हृल्लासकर, अनुलोमन, लेखन, कफ निस्सारक, आस्थापनीय, हृदयोत्तेजक, जिह्वा-जाडचहर, संज्ञा स्थापन, कंठ्य, वेदनास्थापन, मूत्रल, मलमूत्र शोधक, गर्भाशय संकोचक, स्वेद जनन, शूल प्रशमन, धातुक्षीण कारक, ज्वरघ्न, अल्प मात्रा में कटु पौष्टिक तथा अग्निमांद्य, अरुचि, विबन्ध, आध्मान, उन्माद, अपस्मार, पक्षाघात, अर्श, कृमि, उदरशूल, विविधत्वग्दोष, मेदोरोग, वातविकार, बालरोग, अपतन्त्रक, भूतबाधा, श्वास, कास, कंठरोग, जीर्णातिसार, संग्रहणी, मन्दज्वर, विषमज्वर, कर्णरोग, अश्मरी आदि में इसका

१ अत्युग्रापि सरागापिग्रन्थिलावापि सम्मता। अन्तः शुचित्यमात्रेणबचा ग्राह्यत्यमुच्यति॥ —भै. र.

Scanned with CamScanner

उपयोग किया जाता है। अधिक मात्रा में यह वामक है।

डा० देसाई के मतानुसार—जुकाम एवं श्वास नलिका दाह पर इसका क्वाथ गुणदायक है। इसके सेवन से शोथ वृद्धि रुक जाती है, तथा कंठ में से कफ निकल कर आवाज म सुधार होता है। जुखाम को हरण करने वाली जो अन्यान्य औषधियों में बच्छनाग और अफीम है, ये दोनों विष हैं। बच के समान उनको निर्भय रूप से व्यवहृत नहीं कर सकते। इसके उपयोग में हानि का भय नहीं है इसकी क्रिया अफीम के समान श्लैष्मिक कला पर होती है। इसका टुकड़ा मुख में रखने से त्रासदायक शुष्क कास व कण्ठ शोथ का ह्रास होता है। कम मात्रा में देने से कफ का निःसरण होता है। फिर भी इसके साथ अन्य कफ निःसारक औषधि देनी चाहिये। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों एवं बालकों को यह अधिक अनुकूल है। इसके सब धर्म स्पष्ट प्रतीत होते हैं। फिर भी यह प्रधान गुण दायक औषधि नहीं मानी जावेगी यह दूसरे दर्जे की औषधि है। इसे विरेचन औषधि के साथ सुगन्ध लाने व बल देने के लिये मिलाते हैं।

अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, अपतंत्रक एवं सन्निपात में इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है। अपस्मार में शहद के साथ प्रातः सायं दिया जाता है। उन्माद में कूष्माण्ड के रस के साथ देते हैं। पक्षाघात में वधिर अङ्गों पर इसका मर्दन किया जाता है।

यह गर्भाशय का भी कुछ कुछ आकुंचन कराता है। इस हेतु से प्रसव होने के पूर्व उत्पन्न वेग को बल देने के लिए इसे केशर व पीपलामूल मिला कर देते हैं। प्रसूता को इसे देने से आमाशय की क्रिया सुधरती और अपचन दूर होता है। अपचन जनित दस्त भी कम हो जाते हैं। यह बालकों की पेचिस एवं उदरवेदना पर अति लाभ प्रद है। बालकों को इसे सेंक (भून कर) कर देते हैं। इससे उदर कृमि भी गिर जाते हैं। उदर रोग में यह प्रशस्त औषधि है। संधि शोथ, वर्षा से भीगने पर अंगों में वेदना, सरदी आदि रोगों में इसे सेवनार्थ तथा बाह्योपचारार्थ (मर्दनार्थ) भी काम में लाते हैं। —गां. औ. र.

डा० मुईदिन शरीफ के मतानुसार यह वामक, अधिक उबाक लाने वाला (प्रभावशाली), आक्षेपनिवारक, शांति दायक, उदरवातहर, उत्तेजक और कृमिनाशक है। अपने वमनोत्पादक धर्म में यह इपिकाक की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली एवं उपशामक होने से प्रवाहिका, रक्तातिसार आदि उदर सम्बन्धी कई विकारों में उपयोगी होती है। वामक औषधि की अपेक्षा इसमें विशेषता यह है कि अल्प मात्रा में (केवल १५ रत्ती की मात्रा में) सफलतापूर्वक वमन लाने का काम कर देती है। इसे ३५ ग्रेन की मात्रा से अधिक नहीं देनी चाहिये। ४० ग्रेन की मात्रा में यह एक बहुत उग्र एवं घातक रूप धारण कर लेती है यह तमक श्वास के दौरे को रोकने के लिये उत्तम औषधि है। इस रोग में इसको पहिली मात्रा में १५–२० ग्रेन तक देना चाहिये, जिससे १-२ वमन होकर रोगी को शांति मिल जाती है। उसके पश्चात् २ या ३ घंटे के बाद १० ग्रेन की मात्रा में कफनाशक औषधि की तरह दिन में ३ या ४ बार देते रहने से थोड़े दिनों में ही श्वास का रोग दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त श्वास नलिका प्रसेक (Bronchlal catarrh) या कफ युक्त कास, हिस्टीरिया, स्नायु शूल तथा कुछ विशेष प्रकार के अजीर्ण रोगों में भी यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। यह टिंचर या शीत निर्यास या फाण्ट रूप से भी काम में ली जा सकती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वमनकारक, आक्षेप निवारक, एवं शांतिदायक है। पुराने अतिसार के लिये यह एक प्राचीन औषधि है। सन् १८७५ ई० में इन्हर्स नामक विद्वान ने जीर्ण संग्रहणी पर इसका प्रयोग सफलता पूर्वक किया। हेनरी और ब्राउन ने सन १९२२ में इसकी परीक्षा की और वे इस परिणाम पर पहुंचे कि इसके अन्दर रहने वाले टेनिक के कारण से इसकी सब क्रियायें होती हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कोई भी ऐसा दूसरा उपादान जो दस्त रोकने वाला एवं संकोचक हो, नहीं है। यह वनस्पति आस्ट्रिया, जर्मनी, हालेंड, हंग्री, इटली, नारवे, रूस, स्वीडन और स्विट्जरलेंड के फार्माकोपियाओं में सम्मत मानी गई है। —चि. चं.

यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में उष्ण और खुश्क है। यह मृदुरेचक, कफ निस्सारक, ज्वर नाशक, मस्तिष्क को

Scanned with CamScanner

शांतिदायक और ऋतु स्राव नियामक है। शारीरिक साधारण अशक्ति, मुख शोथ, दन्तशूल, सूजन,यकृत व छाती के दर्द, गुर्दे की तकलीफों में लाभकारी है। गाढ़े और जमा हुए दोषों को पतला करती, कफ व रक्त में गरमी पैदा करती, सुद्दों को बिखेरती, कांति बढ़ाती, कफ प्रकोप से देह में खिचाव होने लगे, तो इसका लेप करने से लाभ होता है। अर्धाङ्ग व सुन्नवात में भी यह हितावह है। स्मरणशक्ति बढ़ाने के लिए इसे शहद के साथ दिया जाता है। इसे खूब बारीक पीस कर सुरमे की तरह आंजने से कफ प्रकोपज नेत्रों का जालाएवं धुन्ध मिट जाती है। इसे मुख में रख कर धीरे धीरे चबाते रहने से कफ जन्य तुतलापन एवं जिव्हा का मोटापन दूर होता है। इसके सेवन से सर्दी की खांसी दूर होती, क्षुधा प्रदीप्त होती, पथरी गल जाती, एवं शक्ति बढ़ती है। इसे केशर और घोड़ी के दूध के साथ पीस स्त्री यदि गर्भाशय में रख कर पुरुष संग करे, तो उसको गर्भ धारणा होती है। गर्भाशय में इसे रखने से मासिक धर्म खुल कर हो जाता है। यह कामशक्तिवर्धक भी है चेहरे की रंगत निखारने तथा किलास एवं छीप या झाई मिटाने के लिए अकेले या अन्य उपयोगी औषधियों के साथ इसका लेप करते हैं।

—यूनानी द्रव्य गुण

सन्धिवात, आमवात, पक्षाघात आदि में इसका लेप करते हैं। कर्णनाद, कर्णशूल में इसका स्वरस कान में डालते हैं। शूलयुक्त अर्श में इसके साथ भांग और अजवायन समभाग मिलाकर, आग पर डालकर धूनी देते हैं।

वातकफजन्य कास, प्रतिश्याय, कंठशोथ, मुख क्षत, छाले व स्वरभेद में इसका टुकड़ा मुख में रखकर चूसते हैं।

तृषा या प्यास की अधिकता में इसका टुकड़ा मिश्री के साथ मुख में रखते हैं।

शुद्धिकरण—अभ्यन्तर सेवनार्थ बच को क्रमशः गोमूत्र, गोरख मुण्डी के क्वाथ और पंचपल्लव (आम, जामुन, कैथ, बिजौरा व बेलपत्र) के क्वाथ में पकाकर गोमूत्र की भाफ से स्वेदित करने से वह शुद्ध हो जाती है।

—वं. से.।

(१) मूत्रावरोध पर—मूत्र किसी कारण से साफ न होता हो तो इसका चूर्ण मात्रा २ रत्ती लेकर दूध और शक्कर के साथ पीने से मूत्र की रुकावट दूर होती है। अथवा इसके चूर्ण को १ मा. तक शहद के साथ चटाते हैं। अथवा चूर्ण को दूध व जल की लस्सी के साथ पिलावें।

(२) वाणी शुद्धि के लिये—बच, मुलैठी,सेंधा नमक, हरड़, सोंठ, अजमोद, कूठ, पिप्पली और जीरा समभाग का चूर्ण कर घृत के साथ सेवन से वाणी शुद्ध होती है।

—वा. भ. उ. अ. १.

(३) दन्तरोग—बच, अजवायन, चित्रक, सेंधानमक, सोंठ और संभालू समभाग लेकर पानी के साथ पीस मन्दोष्ण कर मुख में धारण करने से अथवा इन्हीं द्रव्यों के क्वाथ से ५०० कुल्ले करने से दन्त रोग नष्ट होते हैं।

—हा. सं.

अथवा—इसका चूर्ण २ तोला,उत्तम चाक मिट्टी २० तो० और शहद २० तो० लेकर प्रथम चाक और शहद को एकत्र मिला लेवें। फिर उसमें इसका चूर्ण, गुलाब की शुष्क पत्ती का सूक्ष्म चूर्ण ४ मा० तथा चन्दन तैल १० बून्द, लौंग तैल २० बून्द और इलायची तैल २० बून्द मिलाकर शीशियों में या टयूबों में भर रक्खें। प्रातः मंजनार्थ यह उत्तम टूथपेस्ट है। इससे दांत सुदृढ़, स्वच्छ, चमकीले होते व मुख सुगन्धित होता है।

—भा. नूतन योग संचय से

बच और तिल को मुख में रखकर चबाते रहने से दांतों का हिलना बन्द होता है।

मज्जातन्तु (वातनाड़ियां या वातरोग) के विकारों में—

(४)अपस्मार (मृगी) पर—इसका चूर्ण ४-६ रत्ती की मात्रा में दिन में दो बार शहद से चटावें। १२ दिन तक पथ्य में केवल दूध और चावल देवें। जीर्ण अपस्मार रोग भी अच्छा हो जाता है।

इसके चूर्ण में शहद मिलाकर मटर जैसी गोलियां बना २-३ गोलियां रोगी को सेवन कराना विशेष सुविधाजनक है।

—आयुर्वेद निबन्ध माला

Scanned with CamScanner

नस्य के लिये—इसके टुकड़ों को ७ दिन तक घृत में भिगोकर ८ वें दिन पाताल यंत्र द्वारा इसका तैल या अर्क निकाल कर जब-जब रोग का दौरा हो रोगी की नाक में २-२ बून्द टपकाने से एकदम चेतना आ जाती है। इसी प्रकार कई बार के नस्य से धीरे-धीरे यह रोग दूर हो जाता है।

उक्त अर्क के अभाव में इसका खूब महीन किया हुआ चूर्ण मलमल कपड़े के टुकड़े में बांधकर पोटली बना इसे बार-बार जोर से सुंघाते रहने से मस्तक का विकृत कफ नष्ट होकर रोग की शांति हो जाती है।

अथवा इसका चूर्ण व शंखकीट ४-४ रत्ती दिन में २ बार मधु से २१ दिन सेवन करावें।

(५) मूर्च्छा—किसी भी कारण से मूर्च्छा आगई हो तथा रोगी लकड़ी जैसा पड़ा हो तो उसके नासापुट (नथनों) में इसका महीन चूर्ण एकाध रत्ती फूंक देने से तुरन्त छींक आकर वह सचेत हो जावेगा। इस चूर्ण या उक्त पोटली के सुंघाने से मस्तकशूल भी कम हो जाता है।

अथवा—इसके चूर्ण में मैनसिल और लहसुन मिला अंजन कराने से शीघ्र मूर्छा दूर होती है।

बालकापस्मार–नीचे बाल रोगों में देखिये। योषितापस्मार पर निम्नोक्त उन्माद रोग के अनुसार उपचार करें।

(६) मस्तक शूल (सूर्यावर्त्त या अर्धमस्तक शूल) पर—जुकाम के कारण शूल हो तो एमोनियाकार्ब की अपेक्षा इसके चूर्ण के नस्य से या पोटली सूंघते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है। इसके चूर्ण में समभाग पिप्पली चूर्ण मिला पोटली बनाकर बार-बार सुंघाने से महा दुखदाई आधा सिर का दर्द दूर हो जाता है। यदि मलावरोध हो तो इसके चूर्ण का उदर सेवन भी करावें।

(७) उन्माद रोग पर—बच और कुलिंजन का चूर्ण समभाग एकत्र कर ४ से १२ रत्ती तक की मात्रा में दिन में दो बार शहद से चटावें। साथ ही साथ ऊपर अपस्मार पर इसकी नस्य विधि के अनुसार नस्य देवें। योषितापस्मार पर तथा भूतोन्माद पर भी यह उपचार लाभदायक है तथा साथ ही विशेषकर इसकी धूप रोगी के आसपास खूब करनी चाहिए।

अथवा – बच का चूर्ण ४ रत्ती की मात्रा में दिन में दो बार पेठे (कूष्मांड) के रस के साथ देते रहने से वात एवं पित्तप्रकोपज उन्माद दूर होते हैं। साहस करना, जोर जोर से चिल्लाना, निद्रा न आना आदि लक्षण युक्त उन्माद पर लाभ हो जाता है। —गां. औ. र.।

अथवा उन्माद रोगी को इसका चूर्ण ४ से ८ रत्ती की मात्रा में गोघृत ½ तो० और दूध १० तो० में एकत्र मिला दिन में दो बार सेवन करावें। निद्रा लाने के लिये इसका और पीपलामूल का चूर्ण १-१ रत्ती गुड़ दो रत्ती के साथ रात्रि में खिलावें।

अथवा – इसका चूर्ण थोड़ी सी कूट के चूर्ण के साथ मिलाकर दूध के साथ लेने से तथा पथ्य में केवल दूध भात का आहार लेने से हठीले उन्माद में भी लाभ होता है। डा० पी. मोतीलाल का कथन है कि बच के साथ ब्राह्मी को मिलाकर इसका प्रयोग सुदीर्घ काल तक किया जाय तो चाहे जैसा पागलपन दूर हो जाता है।

—ब० चं०।

(८) स्मरणशक्ति वर्धनार्थ—बच, ब्राह्मी और शंखपुष्पी समभाग चूर्ण कर ब्राह्मी के रस की ३ भावनायें देकर शुष्क कर रखें। इसे सारस्वत चूर्ण कहा जाता है। मात्रा ½ से १ मा० तक मधु एवं घृत के साथ कुछ दिन सेवन करने से ज्ञान तन्तुओं की निर्बलता, स्मरणशक्ति का ह्रास, वाणी की जड़ता आदि दूर होकर बुद्धि का विकास होता है। अपस्मार तथा उन्माद में भी यह लाभकारी है।

नोट–सारस्वत चूर्ण का अन्य प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में देखिये। ब्राह्मी घृत भी बच के योग से बनाया जाता है ब्राह्मी के प्रकरण में यथा स्थान इसे देखिये। विशिष्ट योगों में बचादि घृत देखिये।

अथवा—केवल बच के चूर्ण को ही मधु अथवा दूध के साथ अधिक दिनों तक सेवन करने से ही धारणाशक्ति की वृद्धि होती है।

(९) पक्षाघात तथा अर्दित पर— पक्षाघात की प्रार-

Scanned with CamScanner

भिक अवस्था में जो अङ्ग सुन्न व बधिर हो जाय उस पर वच और अजवायन (या सौंठ) को महीन पीस कर प्रातः सायं मर्दन करते रहने से धीरे-धीरे सुधार हो जाता है। प्रतिबार उक्त द्रव्यों को ताजा पीस कर तत्काल ही मर्दन करना चाहिये। हैजे की प्रबल अवस्था में शरीर शीतल हो जाने पर भी यह मर्दन प्रयोग लाभकारी है।

अथवा—इसके चूर्ण को ४-८ रत्ती की मात्रा में दूध २० तो० में पका मीठा मिलाकर दोनों शाम पिलावें। और इसके चूर्ण को सरसों के तैल में मिला कर मालिश करें।

अर्दित (मुंह का लकवा) में बच व सौंठ के समभाग चूर्ण को मधु मिला कर प्रातः सायं चटाने तथा पथ्य में शहद का शर्बत पिलाने से लाभ होता है।

पचनेन्द्रिय के विकारों पर—

(१०) अग्निमांद्य पर—इसका महीन चूर्ण दो रत्ती प्रतिदिन प्रातः सायं शहद के साथ देते रहने से लाभ होता है। क्षुधा बरावर लगने लगती है।

(११) आध्मान पर—पेट वायु के कारण फूल गया हो, दस्त न होते हों तो इसका चूर्ण ४ से ८ रत्ती तक समभाग सौंफ का चूर्ण मिलाकर घृत और शक्कर के साथ सेवन करने से दस्त होकर पेट उतर जावेगा। अथवा इसका चूर्ण १ या २ रत्ती में कालानमक ४ रत्ती मिलाकर सेवन से शीघ्र लाभ होता है।

अथवा–बच, हींग भुनी हुई, गज पिप्पली, कालीमिर्च, सौंठ, हरड़, काला नमक, अतीस सब समभाग चूर्ण कर लेवें। १ से २ मा० तक की मात्रा में जल के साथ सेवन से अग्निमांद्य, आध्मान, कोष्ठबद्धता आदि विकार दूर हो जाते हैं।

(१२) उदरशूल, गुल्म व अतिसार पर—शूल हो तो इसका महीन चूर्ण ४ रत्ती, ५ तो० तक्र (मठा) के साथ थोड़ा नमक मिलाकर सेवन करें अथवा बच, काला नमक, हींग, कूठ व इन्द्र जौ समभाग का चूर्ण कर ८ रत्ती से १२ रत्ती तक की मात्रा में उष्ण जल के साथ सेवन से सर्व प्रकार के शूल नष्ट होते हैं।

अथवा–बच, हरड़, हींग, सेंधा नमक, अम्लवेत, जवाखार और अजवायन समभाग का चूर्ण ४ से १२ रत्ती तक की मात्रा में उष्ण जल के साथ प्रति दिन २ या ३ बार ७ दिन तक सेवन से गुल्म तथा उपद्रव युक्त शूल नष्ट होता है अग्नि दीपन होती है।

—भै. र.

अथवा–बच, इन्द्र जौ, कूठ, चित्रक, पिप्पली, सौंठ, पाठा, कुटकी, अजवायन, पटोल, सेंधा नमक, अतीस, हपुषा (हाऊबेर), वनयवानी (अजगन्धा), कचूर और पोखरमूल समभाग का महीन चूर्ण बना १ तो० तक की मात्रा में उष्ण जल से लेते रहने से गुल्म, कुक्षिशूल तथा हृद्रोग नष्ट होता है।

—ग. नि.

अतिसार—आमातिसार हो तो बच, धनियां और जीरे का क्वाथ दिन में ३ बार पिलाने से लाभ होता है। रक्तातिसार भी दूर होता है।

अथवा–बच, बेलगिरी, पिप्पली, सोंठ, पटोल, कूठ, अजमोद और वायविडंग समभाग का चूर्ण उष्ण जल से लेने से आमातिसार दूर होता है। मात्रा २-३ माशा तक।

—वं. से.

वातातिसार में—बच, अतीस, नागरमोथा और इन्द्रजौ समभाग का क्वाथ या फांट के सेवन से अथवा इन द्रव्यों के चूर्ण (२ मा० तक) के सेवन से उत्तम लाभ होता है।

—वं. से. और यो. र.

कफातिसार में—बच, त्रिकटु, पाठा, कूठ, व कुटकी समभाग का चूर्ण (१ से २ मा.) उष्ण जल के साथ सेवन से लाभ होता है।

—ग. नि.

(१३) अम्लपित्त और कृमि पर—अम्लपित्त में-इसके चूर्ण को (२-४ रत्ती) मधु या गुड़ के साथ लेते रहने से छाती में जलन, खट्टी डकार, भोजन के बाद उदर में भारीपन आदि दूर हो जाते हैं।

—गां. औ. र.

अथवा–इसका चूर्ण और खाने का सोड़ा २-३ रत्ती भोजन के बाद लेवें। शीघ्र लाभ होता है।

उदर कृमि पर—बच, अजमोद, वायविडंग, ढाक के बीज, कचूर, हींग और निसोथ समभाग चूर्ण कर अथवा उष्ण जल में पीसकर (उचित मात्रा में) पीने से कृमि

Scanned with CamScanner

नष्ट होकर निकल जाते हैं। —हा. सं.

अथवा इसके चूर्ण को भुनी हुई हींग के साथ देने से कृमि निकल जाते हैं।

बालकों के कृमि पर–नीचे वाल रोगों पर प्रयोग देखिये।

पौधों के कीटकों को भगाने के लिए इसके हिम, फांट या क्वाथ को पौधों पर छिड़कते हैं।

स्वारेन्द्रिय के विकारों पर—शीत या ठंड के कारण गला बैठ जाना, गले में खुजली तथा खांसी होना, शीत से छाती का भर जाना, जीर्ण शुष्क कास जो विशेषतः कंठ के विकार से उत्पन्न हो गई हो जैसे कि गवइये लोग या व्याख्याताओं के गले में विकार, गला रुंध जाना, आवाज बैठ जाना तथा नित्य शुष्क खांसी आना आदि हो जाते हैं। इन विकारों पर केवल इसका टुकड़ा ही मुख में रखकर जो लार निकले उसे गले के नीचे धीरे-धीरे उतारते रहने से सहज ही में गले की खुजली सुर्खी दूर होकर आवाज साफ हो जाती है तथा खांसी भी नष्ट होती है। यह गले को साफ कर कंठ (वाणी, वाचा) को मधुर बनाती है, इसी गुण का द्योतक संस्कृत में इसका नाम 'वच' है।

कंठ में वच की क्रिया इस प्रकार होती है। प्रथम यह आभ्यन्तरिक त्वचा में चेतना उत्पन्न करती है, जिससे लालोत्पादक पिण्ड अपना कार्य खूब तेजी से करने लगते हैं अर्थात् लार का प्रवाह प्रारम्भ होने से कंठ-नलिका में आर्द्रता फिर से पूर्ववत् कायम हो जाती है, खुजलाहट शांत हो जाती है और खांसी भाग जाती है।

(१४) अथवा वच, नवसादर, बहेड़ा, मुलहठी, कत्था और कचनार की छाल समभाग महीन चूर्ण कर शहद या शक्कर की चाशनी में इसकी गोलियां या टिकियां बनाकर १-१ गोली मुख में रखकर चूसते रहने से खांसी में लाभ होता है, कंठ या आवाज साफ हो जाती है।

अथवा शुष्क कास पर इसके चूर्ण २॥ तोला को जल ४० तो. में पकावें। १० तो. शेष रहने पर छान कर २-२ तो. की मात्रा में दिन रात्रि में ४-५ बार पिलाने से सूखी खांसी, आध्मान तथा उदरशूल में भी लाभकारी है।

मस्तक या श्वास नलिका में सर्दी भिद गई हो तथा कफ के कारण छाती जकड़ गई हो, पार्श्व में तथा छाती में पीड़ा हो (ऐसे लक्षण प्रायः इन्फ्लुएंजा में होते हैं) तो इसका चूर्ण गरम पानी में पकाकर छाती, मस्तक एवं नासिका पर उसी का गरम गरम लेप करें। कुछ इसके चूर्ण का नस्य देवें तथा शहद के साथ थोड़ा-थोड़ा चटावें। तुरन्त लाभ होते देखा गया है। कई डाक्टर लोग इसका चूर्ण १० ग्रेन की मात्रा में गरम दूध में डालकर इस प्रकार के विकारों पर देते हैं।

(१५) कंठशूल तथा गलशुण्डी शोथ (कौवे-काग या घांटी की सूजन Uvulitis) पर—इसका महीन चूर्ण ५ रत्ती तक गरम दूध के साथ पिलाने से गले में चिपका हुआ कफ ढीला होकर निकल जाता है, दर्द दूर होता है।

वच, अतीस, पाठा, रास्ना और कुटकी समभाग का क्वाथ बनाकर पिलाने से गल शुण्डिका नष्ट होती है। —वृ. मा.

प्रतिश्याय (जुकाम) के निवारणार्थ–इसके महीन चूर्ण की पोटली बना सूंघते रहने से तथा चूर्ण को १॥ या दो रत्ती की मात्रा में पान के साथ खाने से विशेष लाभ होता है।

नोट—श्वास तथा श्वास नलिका प्रसेक पर पीछे डा० मुईदिन शरीफ का मत देखिए।

जननेन्द्रिय पर वच का प्रभाव—वच में जननेन्द्रियोत्तेजक एवं कामोद्दीपक गुण भी कुछ प्रमाण में हैं।

(१६) गर्भवती स्त्री के वात प्रकोप जन्य उदरवात, अफारा, मलमूत्रावरोधक, मल की गांठें बनना, व्याकुलता आदि विकारों पर–इसके ४ रत्ती चूर्ण के साथ लहसुन १ रत्ती मिलाकर २० तो० दूध में पकाकर उसमें हींग भुनी आधा रत्ती तथा किंचित् काला नमक डालकर पिलावें। दिन में १ या २ बार।

(१७) सुखपूर्वक प्रसवार्थ—इसे जल के साथ पीस उसमें थोड़ा एरण्ड तेल मिलाकर नाभी के नीचे गर्भा-

Scanned with CamScanner

शय पर गाढ़ा लेप करने से बिना कष्ट के प्रसूति [जचकी] हो जाती है।

प्रसूती के समय गर्भ यदि आड़ा हो गया हो, स्त्री को अत्यन्त ही कष्ट हो तो वच ६ मा. और केशर १ मा. को गधी के दूध [अभाव में बकरी या गाय के दूध] में खरल कर लम्बी सी बत्ती बनाकर योनिमार्ग में रखवाने से तुरन्त बिना कष्ट के प्रसव हो जाता है।

(१८) कष्टार्तव पर—मासिक धर्म के समय कष्ट होता हो तथा कमर में पीड़ा बनी रहती हो तो १-१ मा. बच का फांट पिलाया जाता है। इससे संधियों का दर्द दूर होता है और रजःस्राव बिना कष्ट होता है।

—गां. औ. र.

(१९) अण्डकोष और आंत्र वृद्धि – बच और थोड़ी सरसों को जल में पीस प्रतिदिन प्रातः लेप करने और कोपीन बांधते रहने से अण्डकोष में उतरी हुई वायु निकल जाती है। —गां औ. र.

अथवा–केवल बच को थोड़े जल में पीसकर लेप करते रहने से अण्डकोष की सूजन दूर होती है।

आंत्रवृद्धि हो तो इसके क्वाथ में एरण्ड तेल मिला २१ दिन तक नित्य १ बार पिलावें।

(२०) स्वप्नदोष या शुक्र प्रमेह पर—इसके दो रत्ती चूर्ण को कबाबचीनी (शीतलचीनी) चूर्ण ४ रत्ती के साथ दूध या जल में मिलाकर सेवन कराते हैं। अथवा बच १ भाग व त्रिफला ३ भाग एकत्र महीन चूर्ण कर समभाग पुराना गुड़ मिला ४-४ रत्ती की गोलियां बना प्रातः सायं १-१ गोली ठंडे जल से लेवें।

(२१) शोथ पर—सूजन शरीर के किसी भी भाग पर हो यह उत्तम काम देती है। इसे जलाकर राख कर उसे एरण्ड के तेल में घोटकर शोथयुक्त स्थान पर मालिश करने से अवश्य लाभ होता है। संधिवात की सूजन भी इससे नष्ट होती है। इसे जलाकर राख न करते हुए केवल इसके चूर्ण को ही एरण्ड या सरसों के तेल में अच्छी तरह मिलाकर मालिश करने से और भी उत्तम लाभ होता है।

डाक्टरों का कथन है कि संधिवात या गठिया के अथवा किसी प्रकार के चोट से उत्पन्न पीड़ायुक्त शोथ पर इसके चूर्ण को काजू के तेल में या काजू से बनी हुई शराब या स्प्रिट के साथ मालिश करने से विशेष लाभ होता है।

(२२) ज्वरों पर—ज्वर पर भी इसका अच्छा उपयोग होता है जिस शीत या विषम ज्वर पर सिंकोना तथ कुनैन से कुछ भी लाभ नहीं होता था उस पर पहले के डाक्टर लोग बच को सिंकोना के साथ देते थे। डाक्टरी में पूर्वकाल में 'वारवर्ग टिंक्चर' नामक औषधि ज्वर पर दी जाती थी, उसमें बच का योग रहा करता था। जहां पर कुनैन से लाभ नहीं होता वहां पर इस टिंक्चर का प्रयोग किया जाता था। डा० नाडकर्णी का कथन है कि बच में कालानुसारी विकारों को नष्ट करने की शक्ति है अतः वह कालानुवेगी विषम ज्वरों (तिजारा, चौथियारा, एकतारा आदि) पर दिया जाता है (Acorus Calamus is an antiperiodic, and it is given in tertian fevers)। जीर्ण ज्वर पर भी इसका प्रयोग किया जाता है, ऐसा डा० भिड़े एल० एम० एण्ड एस० का कथन है।

विषम ज्वर पर हमने इसका निम्नप्रकार से यशस्वी प्रयोग किया है—बच तथा चिरायता का चूर्ण समभाग लेकर १ से १½ मा० की मात्रा में दिन में ३ बार शहद के साथ रोगी को चटाया; तथा बच का व हरड़ का चूर्ण घृत में मिलाकर आग पर डाल रोगी को वस्त्रों से औढ़ा कर उसका धूप दिया गया। दूसरे दिन रोगी का ज्वर दूर होगया। विशेष कर बालकों के ज्वर पर यह बहुत शीघ्र ही लाभदायक प्रयोग है।

ध्यान रहे ज्वरावस्था में बच के प्रयोग से स्वेद आता है और पेशाब अधिक उतरता है, किन्तु स्वेद आने के लिये कपड़े ओढ़ लेना चाहिए। शीत ज्वर में इसे कुनैन, कांटेदार करंज की भूनी हुई गिरी और चिरायता आदि प्रयोजक द्रव्यों के साथ देने से हड्डी हड्डी में होने वाली पीड़ा दूर होती है, तथा ज्वर शीघ्र उतर जाता है। जीर्ण ज्वर में बच के योग से मस्तिष्क और वातनाड़ियों को उत्तेजना मिलती है। बालकों को दांत आने

Scanned with CamScanner

के समय जो ज्वर आता है, उस पर भी बच हितावह है।

—डा० देसाई (गां. औ. र.)

ज्वर में यदि अधिक पसीना आता हो तो बच, अजवायन और सोंठ समभाग का एकत्र चूर्ण कर शरीर पर मालिश करने से अवश्य शांत हो जाता है। —हा.सं।

कफ—वातज (विषम) ज्वर में बच, कुटकी, पाठा, अमलतास का गूदा और कुड़े की छाल के क्वाथ में पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन से लाभ होता है। मलावरोध भी दूर होता है। —वा. भ. चि. अ. १

कफज ज्वर (तथा शूल, प्रतिश्याय और पीनस) में दोष पाचनार्थ बच, अजवायन, त्रिफला और सोंठ का क्वाथ बनाकर रात्रि के समय पिलावें। —हा. सं.।

विषम ज्वर में ज्वर चढ़ने से पूर्व इसके ४ रत्ती चूर्ण के साथ काली मिर्च के दो दाने (चूर्ण कर) मिला कर शहद के साथ देने से ज्वर वेगपूर्वक नहीं चढ़ने पाता।

(२३) व्रणों पर—बच में बड़े से बड़े जखमों को भर देने की शक्ति है। यदि व्रण या जखम कई दिनों का होगया हो, कीड़े पड़ गये हों, दुर्गन्ध आती हो तो इसका महीन किया हुआ चूर्ण तथा कपूर का चूर्ण समभाग एकत्र कर उसमें भर देवें। यदि कपूर का चूर्ण ठीक तरह से न होता हो तो इसके चूर्ण में कपूर का तैल मिला कर व्रण में अच्छी तौर से कपास के फाहे के साथ भर देवें। सब कीड़े नष्ट होकर व्रण शीघ्र ही भर जावेगा।

अपक्व व्रण अथवा नासूर में बच की भस्म को दूध में मिला कर लगाते हैं।

मुख क्षत पर—बच का टुकड़ा मुंह में रखने से क्षत नष्ट हो जाता है। कण्ठ की सूजन भी दूर होती है।

कण्ठमाला (अपची) पर—(बचादि तैल)—

बच, हल्दी, लाख, कुटकी तथा श्वेत चन्दन ४-४ तो. लेकर एकत्र पीसकर कल्क बना लेवें। फिर क्वाथार्थ उक्त द्रव्यों को (श्वेत चन्दन के स्थान में लाल चन्दन लेवें) ६४-६४ तो० एकत्र कूट कर ३२ सेर जल में अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर छान लेवें।

दो सेर तैल में उक्त कल्क और क्वाथ मिलाकर तैल सिद्ध कर छान लेवें। इसे (३ से ६ मा. तक) पिलाने से अपची (कण्ठमाला भेद) नष्ट हो जाती है।

—वा. भ. उ. अ. ३०।

नोट—आगे विशिष्ट योगों में बचादि घृत देखें।

(२४) विषों पर—यदि उदर में किसी अशुद्ध पदार्थ के या विष वगैरह के चले जानेसे, जी मिचलाता हो तो तुरन्त बच का चूर्ण ३ या ४ मा. और नमक २ मा. से ६ मा. तक लेकर २० से ४० तो० तक सुखोष्ण जल में मिलाकर पिला देने से वमन होकर सब विकार बाहर निकल जाता है, शांति प्राप्त होती है। उक्त जल का कुछ अंश अन्त्र में जाता है। एक बार शौच होकर वह भी शुद्ध हो जाता है। आमाजीर्ण में भी इससे लाभ होता है।

डा० नाडकर्णी का कथन है कि बच में कई विषों को निवारण करने की शक्ति है ऐसा माना गया है। अतएव (विष जन्य) किसी भी सांघातिक विकारों में तथा सर्पदंश में भी इसका सेवन सहूलियत से किया जाता है।

धतूरे के विष पर—बच का चूर्ण कुछ अधिक मात्रा में सुखोष्ण जल के साथ देते हैं, अथवा बच का फाण्ट पिलाते हैं। भोजन में दही भात देते हैं।

जमालगोटे के विष पर—बच को भून कर १० रत्ती भस्म को जल के साथ पिलाने से विष एवं तज्जन्य उपद्रव दूर होते हैं। अथवा चिरायता या मुलैठी के साथ इसका सेवन कराते हैं।

नोट—शेष स्थावर विषों पर तो गरम जल के साथ नमक मिलाकर इसके चूर्ण को पिलाते हैं। वमन के द्वारा सब विष बाहर निकल पड़ता है। किंतु यदि विष शरीर में भिद गया हो, रक्त में प्रविष्ट होगया हो तो यह उपचार कुछ काम नहीं देता। उस अवस्था में तो मृतसंजीवनी आदि औषधि का प्रयोग करना चाहिए।

चूहे के विष पर—बच के चूर्ण को चावल के धोवन के साथ प्रतिदिन प्रातः देते हैं तथा पथ्य में दूध भात का आहार देते हैं। ७ दिन में विष नष्ट हो जाता है।

—गां. औ. र.।

Scanned with CamScanner

नोट—कहा जाता है कि सर्प बिच्छू आदि विषैले जीव वच के पास नहीं आते। वच की गन्ध से सर्प मूर्च्छित हो जाता है।

(२५) बाल रोगों पर—छोटे बालकों को अशुद्ध, सदोष दूध पिलाने के कारण से (माता के प्रज्ञापराध के कारण–जैसे प्रसव के बाद योग्य समय तक ठीक ठीक ब्रह्मचर्य का पालन न करने से या खाने पीने से ठीक परहेज न रखने से उसका दूध दूषित हो जाता है, जिसका परिणाम बालक को भोगना पड़ता है) एक प्रकार का बालापस्मार या बालधनुर्वात हो जाता है (इसे महाराष्ट्र में आंकड़ी की बीमारी कहते हैं)। यदि बच्चे को कोई अन्य बीमारी नहीं है और वह अकस्मात मूर्च्छित हो जावे, मुख से फेन आने लगे तथा उसको अङ्गों में ऐंठन शुरू हो तो समझना होगा कि वह इसी अपस्मार से ग्रस्त है। दिन में कई बार इसका दौरा बालक के शरीर में होता है। अज्ञजन इसे भूतप्रेत की बाधा मान कर फूंक की क्रिया करवाते हैं, किन्तु उससे कुछ भी लाभ न होते देखकर वैद्य या डाक्टर के पास दौड़े जाते हैं।

इस रोग पर वच अच्छा कार्य करता है–१ या २ वर्ष के अन्दर का बालक हो तो केवल १ या २ रत्ती इसका महीन चूर्ण माता के या गौदुग्ध के साथ पिलावें तथा इसका चूर्ण घृत में मिलाकर उसके मस्तक एवं सर्वाङ्ग में मालिश करें। और चूर्ण का धूप (चूर्ण को आग पर डालने से जो धुवां उठे उस पर बालक को थोड़ी थोड़ी देर तक पकड़े रखें) देवें। उक्त चूर्ण, दूध के अभाव में उत्तम शहद के साथ भी चटा सकते हैं।

छोटे बच्चों के पेट में कृमि (किरम) हों तो इसे २ रत्ती तक दूध के साथ घिसकर ३-४ दिन पिलाने से कृमि नष्ट हो जाते हैं। तथा कृमियों की नई उत्पत्ति बन्द हो जाती है। बालकों को दूध की वमन होती हो तो भी इसे दूध में घिसकर दिया जाता है। बालकों के लिये वच एक उत्तम घरेलू औषधि है।

बालकों के ज्वर, अतिसार, खांसी आदि पर—इसे खूब महीन पीसकर ३ साल पुराने गुड़ में मिला छोटी मटर जैसी गोलियां बना माता के दूध से १-१ गोली प्रातः सायं देने से लाभ होता है। बच्चों की पसली चलने पर (डिब्बा रोग) भी यह विशेष हितकारी है।

श्वासावरोध (बच्चों की छाती में कफ के जम जाने से श्वासावरोध होकर वह व्याकुल हो जाता है) पर—इसे महीन पीस कर गोमूत्र में मिला गरम कर बालक के उरःस्थल, कण्ठ और पीठ पर धीरे धीरे मर्दन कर गरम वस्त्र पहना देवें और इसे दूध में घिसकर पिलावें।

तालु पात (तालु कण्टक, इसमें तालुमांस में कफ-प्रकोप से तालु नीचे की ओर खिसक जाती है। इसे मस्तुलुंग जल क्षय भी कहते हैं) पर—वच को थोड़े जायफल के साथ दूध में या घृत में घिसकर तालु स्थान पर लेप करें तथा गोदुग्ध में बारासिंगा को घिसकर पिलावें।—व. गु.

बालशोष [सूखा रोग] पर [वचाद्य तैल]—वच, आमला, तगर, काकोली [अभाव में असगंध] और चोरक [गठिवन के प्रकरण में देखें तथा चित्र भाग ३ में देखें] ४-४ तोले एकत्र जल के साथ पीसकर तिल तैल २ सेर में यह कल्क तथा बकरे का मूत्र और सुरा [शराब] ४-४ तोले मिलाकर धीमी आग पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लेवें। इसकी मालिश से बच्चों का शोष रोग नष्ट होता है। —ग. नि.।

बालकों के समस्त रोगों पर—वच और खिरेंटी मूल का महीन चूर्ण ४-४ तोले लेकर एक सेर तिल तैल में मिला कांच के पात्र में भरकर पात्र का मुख बन्द कर ७ दिन तक धूप में रखकर छान लेवें। इसकी मालिश से समस्त बाल रोग नष्ट होकर बालक पुष्ट होता है। —भा. भै. र.।

दन्तोद्गम के समय होने वाले विकारों के नाशार्थ [बचादि घृत]–बच, छोटी बड़ी कटेरी की जड़, पाठा, अतीस, कुटकी, नागरमोथा और कालीमिर्च २०-२० तोले लेकर एकत्र कूटकर १६ सेर जल में पकावें। ४ सेर जल शेष रहने पर छान लेवें। कल्कार्थ उक्त द्रव्यों को १¼ १¼ तो. लेकर जल के साथ पीस लेवें। १ सेर घृत में उक्त क्वाथ व कल्क मिलाकर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान लें।

इसे ३ मा. तक, मात्रा में [दुग्ध के साथ] सेवन

Scanned with CamScanner

कराने से दांत सरलता से निकल आते हैं तथा कोई विकार नहीं होते हैं। —ग. नि.।

दंतोद्भेद के समय बच्चों को इसे चबाने के लिये देते हैं। स्कन्दग्रह गृहीत या स्कन्दापस्मार गृहीत बाल रोग विशेष में बच और हींग समभाग चूर्ण कर बालक के शरीर पर मर्दन करने से लाभ होता है। —वं. से.

अथवा बच्चे के गले में बच, हरड़, श्वेत वच (या दोनोंमी) तागे में पिरोकर धारण कराने से तथा उसके शरीर में इनका चूर्ण मर्दन करने से लाभ होता है। —वृ० नि० र०

(२६) कर्ण रोग पर—वेदनायुक्त कर्णस्राव हो, राध बहती हो तो प्रथम बच के चूर्ण को तिल के तेल में पकावें। खूब पक जाने पर नीचे उतार कर चूर्ण के समभाग ही उसमें कचूर का चूरा मिलाकर अच्छी तरह ढंक कर रख दें। ठंडा हो जाने पर छान लें। २-४ बूंदें प्रातः सायं कान में डालते रहने से तथा कानों को साफ करते रहने से लाभ होता है।

अथवा इसके चूर्ण को सरसों तेल में पकाकर डालते रहने से कान का व्रण रोपण होकर पूय का बहना बन्द हो जाता है। कृमि नष्ट हो जाते हैं। केवल इसके चूर्ण को ही कान में डालने से कर्ण कृमि नष्ट हो जाते हैं तथा पूयपाक हुआ हो तो वह भी ठीक होता है।

नोट—मात्रा—१-५ रत्ती। वमनार्थ ५-१५ रत्ती।

यह पित्त प्रकृति वालों के लिये हानिकर है। अधिक मात्रा में शिरःशूल, हृल्लास आदि पैदा करता है। हानि निवारणार्थ सौंफ, सिकंजबीन या नीबू का शर्बत देते हैं।

इसका प्रतिनिधि जीरा व रेवन्दचीनी है। ऊनी या गरम कपड़ों को कीटकों से बचाने के लिये इसका चूर्ण उन पर बुरक कर रखने से कीटक नष्ट हो जाते हैं। अन्य नाना प्रकार के सूक्ष्म जन्तुओं का भी यह नाशक है। सिर के बालों में जूं पड़ गये हों अथवा जानवरों के शरीर में किलौनियां हो गई हों तो इसका चूर्ण लगाने से या चूर्ण का क्वाथ कर सिर तथा जानवरों के के अङ्ग में लगाने से तुरन्त ही उनका नाश हो जाता है।

केशवर्धक चूर्ण या तैलादि के प्रयोगों में इसके पत्तों का अर्क या स्वरस डाला जाता है।

विशिष्ट योग—

(१) सारस्वत चूर्ण—कूठ, असगंध, सेंधा नमक, अजमोद, श्वेत जीरा, काला जीरा, सौंठ, मिर्च, पिप्पली, पाठा, शंखपुष्पी प्रत्येक १-१ भाग तथा बच सबके बराबर लेकर एकत्र चूर्ण कर ब्राह्मी के रस की भावनायें देकर शुष्क कर चूर्ण कर रखें। मात्रा—८ से १२ रत्ती तक घृत और मधु में मिला ७ दिन तक सेवन करने से बुद्धि, मेधा, धृति, स्मृति, सम्पत्ति तथा कविता शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती है। मेधा व मति से हीन लोगों के लिये ब्रह्मा ने इस योग का पूर्वकाल में निर्माण किया था। —भै० र०

नोट—उक्त प्रयोग उचित पथ्य परहेजपूर्वक ७ दिन सेवन कर ७ दिन बन्द रखें। पुनः ७ दिन सेवन करें। इस प्रकार ४० दिन सेवन करने से विशेष लाभकर है।

(२) बचादि चूर्ण—बच २ भाग, बिड़ नमक (एक प्रकार का नौसादर Ammonium chloride यह पशुओं की विष्ठा, मूत्रादि से तथा ईंट के भट्टे से से भी प्राप्त किया जाता है) ३ भाग, हरड़ ६ भाग, सौंठ ४ भाग, हींग (भुनी हुई) १ भाग, कूठ ८ भाग, चित्रक ४ भाग, अजवायन ५ भाग। इनके चूर्ण को एकत्र मिश्रित कर रखें। १ से २ मा० तक की मात्रा में शहद, गरम जलादि उचित अनुपान के साथ सेवन से शूल, आध्मान, उदर रोग, गुल्म, अर्श, श्वास, कास, ग्रहणी, पांडु आदि रोग नष्ट होते हैं। यह अग्नि को प्रदीप्त करता है। —भै० र०

(३) बचादि घृत नं० १—बच, गिलोय, कचूर, हरड़, शंखपुष्पी, बायबिडंग, सौंठ और अपामार्ग (मूल) २०-२० तो० जौकुट कर १६ सेर जल में पकावें। ४ सेर शेष रहने पर छान लेवें। कल्कार्थ उक्त द्रव्य १-१ तो० लेकर जल के साथ पीस कल्क बनालें। १ सेर घृत में उक्त क्वाथ और कल्क मिलाकर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान कर रखें।

Scanned with CamScanner

मात्रा १ तो० के सेवन से मेधा, स्मृति, वाचाशक्ति तथा अग्नि की वृद्धि होती है। —बा० ग० उ० अ०१

वचादि घृत नं० २—वच, कचूर, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, सौंठ, हरड़, अतीस, नागरमोथा और इन्द्र जौ २०-२० तो० एकत्र कूटकर ६४ सेर जल में पकावें। १६ सेर जल शेष रहने पर छानलें। कल्कार्थ उक्त द्रव्यों का चूर्ण २-२ तो० तथा सौंठ, मिर्च, पिप्पली का चूर्ण ४-४ तो० एकत्र जल के साथ पीसकर उसमें शहद ३ सेर तक मिलालें। फिर २ सेर क्वाथ व कल्क को मिला मन्दाग्नि पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान कर रखलें।

१ तो. तक सेवन एवं पथ्यपूर्वक रहने से जार्ण (बहुत पुरानी) गण्डमाला भी नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त यह घृत कास, श्वास, प्रतिश्याय और मुत्र के रोगों में भी हितकारी है। —वं० से०

बच (श्वेत) नं २[1] (Paris Polyphylla)

सूरण कुल[2] (Araceae or Aroideae) के इस अल्पायु क्षुप के काण्ड ३ इंच से ३ फुट तक ऊंचे।

पत्र—आयताकार या ऊपरसे भालाकार, लम्बी नोक वाले, संख्या में ४-६, पत्र वृन्त आधा इंच लम्बा।

पुष्प—के पुट पत्र (Sepal बाह्य कोष की प्रायः हरी पंखड़ी) १-४ इञ्च लम्बे, लटवाकार या भालाकार, लम्बाग्र, संख्या में ४-६, दलपत्र पीले।

फल—हरे, चिकने, बीज प्रायः ½ लम्बे, लाल रंग के होते हैं। इसके मूल या कन्द बहुवर्षायु, श्वेताभ एवं ग्रन्थिल होते हैं। औषधि कार्य में मूल (कन्द) ही लिये जाते हैं।

इसके पौधे हिमालय के समशीतोष्ण प्रान्तों में, शिमला से भूटान तक ६-१० हजार फुट की ऊंचाई पर पाये जाते हैं। चकरौते के आस पास छायादार स्थानों में कहीं कहीं ये पौधे पाये जाते हैं। —(व. दर्शिका)

नोट—हिमालय प्रदेशों में होने से इसे संस्कृत में हैमवती कहते हैं। इसका एक भेद खुरासानी बच (पारसीक वचा) है, जो ईरान (पर्शिया) की सजल, रेतीली भूमि में प्रचुरता से पैदा होती है। तथा भारत के हिमांचल प्रदेशों में एवं काश्मीर, खुरासान, कूच विहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश में भी पैदा होती है।

इसकी मूल या कन्द का रंग गहरा श्वेत, कुछ कलौंछा (कालापन) लिये हुए, तथा गन्ध अति उग्र होती है। औषधि कार्यों में इसका अधिक उपयोग किया जाता है। किंतु गुणों की दृष्टि से घोड़ बच (जिसका वर्णन बच नं० १ में किया गया है) का व्यवहार विशेष हितकारी होता है। बाजार में कहीं कहीं इसके स्थान में ईरसा की जड़ें मिलती हैं (जो गुण धर्म में प्रायः इसी के समान हैं) या कहीं-कहीं अन्य श्वेत लकड़ियां भी इसमें मिली हुई होती हैं। अतः इसे अच्छी तरह परीक्षा कर लेना चाहिए।

नाम—

सं०—शुक्ल वचा, पारसीक वचा, हैमवती। हि०—बच (श्वेत), बाल बच, खुरासानी बच, दूधिया बच, मीठी बच, सतुआ (नैपाली)। म.—पांढ़रे वेखण्ड गु.—धोला बज, बालावज, खुरासानी बज। बं—खोरासानी बच, शादावच। ले.—पेरिस पोलिफायल्ला।

---

१ इसका लेटिन नाम संदिग्ध है। यह नाम वनौषधि विशेषज्ञ श्री ठा० बलवंत सिंह जी द्वारा रचित वनौषधि दर्शिका में हमें प्राप्त हुआ है। यह नाम अन्य किसी ग्रन्थों में नहीं मिलता। द्रव्य गुण-विज्ञान के रचयिता श्री प्रियव्रत शर्मा जी ने इसका लेटिन नाम Iris Versicoior दिया है। किन्तु कई ग्रन्थकारों ने, तथा हमने भी यह नाम एवं Iris Germanica व Iris florentna ये नाम केशर कुल (Iri dacea) की ईरसा बूटी को (जो पोहकरमूल का ही एक भेद है) दिया है। भाग १ में ईरसा बूटी तथा भाग ४ में पोहकर मूल देखिये।

२ श्री ठा० बलवंत सिंह जी इसे रसौन या पलाण्डु कुल (Liliaceae) की मानते हैं।

Scanned with CamScanner

रासायनिक संगठन—

इसमें एक उड़नशील तैल, स्टार्च, राल तथा कुछ टेनिक पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाक, कफवातशामक, दीपन, पाचन, पित्तसारक, अनुलोमन, कफनिःसारक, रक्तशोधन, शोथहर, वेदनास्थापन, आर्तवजनन, मूत्रल, शीतप्रशमन आदि गुण धर्म व प्रयोग सब प्रायः पूर्व प्रसंग के बच नं० १ के जैसे ही हैं। यह विशेषतः वातनाशक एवं वीर्यजनक है।

(१) प्रदर पर—इसका चूर्ण ४-६ रत्ती तक दिन में ३ बार (प्रातः सायं दूध के साथ व दोपहर में जल के साथ) देने से २-४ दिनों में ही नया रक्त प्रदर दूर हो जाता है।

(२) सन्धिक सन्निपातादि में (बचादि क्वाथ)—बाल बच, पित्त पापड़ा, कैवांच बीज, कटसरैया, गिलोय, अतीस, देवदारु, नागरमोथा, सोंठ, विधारामूल, रास्ना, गुड़गूलर, बड़ी दन्ती की जड़, एरण्डमूल तथा शतावर का क्वाथ सन्धिक सन्निपात, सन्धियों की जकड़न, वेदना, टांग या जांघों की जड़ता, क्लम, भ्रम एवं पक्षाघात को नष्ट करता है। —भै. र.

विशिष्ट योग—

बचा रसायन योग (कल्प प्रयोग)—प्रथम वमन-विरेचनादि द्वारा शरीर की शुद्धि कर कल्प चिकित्सा निमित्त निर्मित कुटी में प्रविष्ट होकर होम करने के बाद १ तोला श्वेत बच के कल्क को दूध में घोलकर सेवन करें। इसके पच जाने पर दूध, घृत और भात का आहार करें। यह कुल ४८ दिन का कल्प प्रयोग है। प्रथम १२ दिन के सेवन से श्रवणशक्ति की वृद्धि होती है। द्वितीय १२ दिन के सेवन से स्मृति, तृतीय १२ दिन में धारणा शक्ति एवं चौथे १२ दिन में सर्व दोषों की निवृत्ति, तेज दृष्टि तथा पूर्णायुष्य की प्राप्ति होती है।

नोट—श्वेत बच के स्थान में बच नं.१ (घोड़वच) का कल्प प्रयोग करना हो तो इसके जौकुट किये हुए १ तोले तक चूर्ण (ग्रन्थ में मात्रा ८ तोला दी है जो सम्प्रति के व्यवहार के लिए अत्यधिक है) का क्वाथ कर दूध के साथ युक्त प्रकार के पथ्यादि पालनपूर्वक विधि से सेवन करने से भी उक्त लाभ होता है।

—सुश्रुत चि० स्था. अ. २८।

वच के क्वाथ और कल्क के साथ सिद्धि का भी एक प्रयोग है। इसमें गोघृत को बच के क्वाथ एवं कल्क के साथ १०० बार पकाना पड़ता है। इस सिद्ध घृत के साथ स्वर्ण भस्म और बोल के बीजों का चूर्ण मिला सेवन करने से पुष्टि, मेधा, आयु, आरोग्य एवं सौभाग्य की वृद्धि होती है। गण्डमाला, अपची, श्लीपद और स्वरभंग रोग दूर होते हैं।

नोट—ध्यान रहे रसायन कार्यार्थ उक्त प्रकार के कल्पों में शास्त्रों में जो मात्रायें लिखी हैं; वे सम्प्रति के निर्बल व्यक्तियों के लिए असह्य हैं। अतः जो लो[illegible] जैसे द्रव्यों को रसायन के लिए सेवन कराना चाहें वे उन[illegible] मात्रा इस तरह वृद्धि क्रम से बढ़ावें जैसे अफीम खाने वाले अफीम की मात्रा बढ़ाते हैं। अर्थात् शनैः शनैः बढ़ाने से फिर अधिक मात्रा भी सह्य हो सकती है।

उपर्युक्त मात्रा में श्वेत बच को घृत (या शुद्ध तिल तैल) के साथ ६ मास तक सेवन से मन और शरीर के सर्व विकार दूर होकर शरीर अत्यन्त सुन्दर हो जाता है, स्मरण शक्ति बढ़ती एवं वाणी निर्मल हो जाती है। सूर्य तथा चन्द्रग्रहण के समय श्वेत वच चूर्ण का या उक्त बच के द्वारा सिद्ध किए गये घृत का उचित मात्रा में दूध के साथ सेवन से तत्काल बुद्धि सतेज, तीव्र होती है।

अपस्मार (मृगी रोग) ग्रस्त रोगी को इसका सेवन शहद के साथ मात्रा धीरे धीरे बढ़ाते हुए रसायन विधि (कल्पविधि) से सेवन करावें तथा दूध घृत और चावल का पथ्यान्न देवें। —संकलित।

बचगन्धा—दे० बचगन्धा।

Scanned with CamScanner

बच सुगन्धा [चन्द्रमूला] (Kaempferia Galanga)

हरिद्राकुल (Scltaminaceae) के इसके पौधे कचूर के पौधे जैसे भारत के दक्षिण के प्रदेशों में प्रचुरता से बागों में लगाये हुए पाये जाते हैं। इसकी मूल या जड़ें ग्रन्थियुक्त सुगन्धित होती हैं। पत्ते भी कचूर जैसी सुगन्धयुक्त होते हैं।

नाम–

सं०—सुगन्ध बचा, चन्द्रमूलिका। हि०–बच सुगन्ध, सिधौल, चंन्द्रमूला, बिलायतीकचूर। म. गु.–कपूर कचरी (वास्तविक कपूर कचरी इससे भिन्न है)। बं०–चन्द्रमूला, हुमुल। ले०—कैंपफेरिया गेलंगा।

नोट—यह कचूर की ही एक जाति विशेष है। भावप्रकाश निघण्टु की सुगन्धयुक्त [महाभरी] बच जिसे कुलिजन का ही एक भेद माना गया है तथा जो उसकी अपेक्षा हीन गुण वाला कहा गया है, वह वास्तव में कचूर का ही एक बड़ा भेद नरकचूर [Zingiber zerumbet] है। उसका वर्णन नरकचूर के प्रकरण में पीछे देखिये।

रासायनिक संगठन—इसके मूल प्रदेश में एक प्रभावशाली सुगन्धित पतला उड़नशील तैल होता है। पत्तों में भी इसी प्रकार का तैल होता है। इसके अतिरिक्त एक क्षाराभ [Alkaloid] स्टार्च, गोंद, बसा तथा एक श्वेत स्फटिक पदार्थ और कुछ खनिज द्रव्य पाये जाते हैं।

प्रयोज्यांग—मूल और पत्र।

बच सुगन्ध
KAEMPFERIA GALANGA LINN.

पुष्प

पत्र

कन्द

गुण धर्म व प्रयोग–

दीपन, पाचन, मूत्रल, उत्तेजक, कफ निःसारक, कासश्वास हर है।

कास श्वास पर —इसकी जड़ के टुकड़े पान के बीड़े में रख कर चबाने से लाभ होता है। मुख सुगंधित होता है।

कफ कास तथा फुफ्फुस के विकारों पर—मूल का चूर्ण शहद के साथ चटाने से विशेष लाभ होता है।
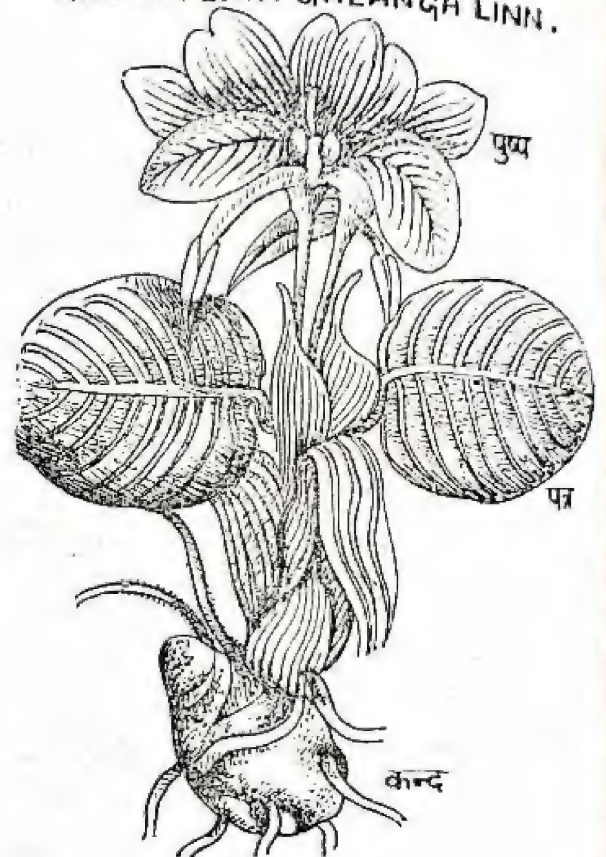
घ्राणेन्द्रिय [नासिका] के अवरोध पर–इसकी जड़ को मिलाकर पकाये हुए तैल का नस्यादि प्रयोग किया जाता है।

प्रायः सुगन्धित-प्रसाधनों को तैयार करने में इसका विशेष प्रयोग किया जाता है।

सिर के बालों को सुगंधित करने के लिए इसके पत्तों को पीसकर लगाते हैं।

सुगन्धार्थ इसकी जड़ों के टुकड़ों को गले में धारण किये जाने वाले हारों में या मालाओं में पिरोते तथा वस्त्रों में भी रखते हैं।

बचेटा—दे० भिण्डी में।

Scanned with CamScanner

बचो (Rubia Tinctorum)

मंजिष्ठ कुल [Rubiaceae] की इसकी अनेक शाखायुक्त प्रसरणशील लता मंजीठ की लता जैसे ही पत्रादि युक्त होती है

यह काश्मीर, सिंध, बलोचिस्थान आदि में अधिक पैदा होती है।

नाम–

हिन्दी (पंजाबी में) बचो। म तथा सिंधी में–मानिथ। अं.—माड्डर (Madder)।

रा. संगठन–इसमें मुंजिस्टी (Munjisti) नामक एक ग्लुकोसाइड पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग–मूल पत्र और बीज।

गुण व प्रयोग–

कटु, मूत्रल, संकोचक, पौष्टिक, ऋतुधर्म नियामक, तथा यकृत प्लीहा के विकार, पाण्डु, वेदनायुक्त शोथ आदि में उपयुक्त होता है। शेष गुणधर्म व प्रयोग मंजीठ जैसे हैं। यह मज्जातन्तु संस्थान (Nervous system) के तथा मूत्रेन्द्रिय सम्बन्धी विकारों में विशेष कार्यकारी है।

बछनाग[1] (काला) (Aconitum Ferox)

विषवर्ग एवं अपने वत्सनाभ कुल (Ranunculaceae) के प्रमुख इस बहुवर्षायु १-३ फुट ऊंचे क्षुप के पत्र गोलाकार (तरबूजे के पत्र जैसे किंतु छोटे) ५-७ भागों में विभक्त, कंगूरेदार ३-६ इन्च लम्बे, डंडी पर अभिमुख या विषमवर्ती, अग्रभाग तथा किनारों पर रोमश कुछ मोटे, चमकीले, ऊपर से हरे, नीचे से किंचित पीले होते हैं।

पुष्प—काण्ड के दोनों ओर सीधे ६-१२ इन्च लम्बे पुष्प-दण्डों पर ये पुष्प मटर के पुष्प जैसे हलके मैले रंग के १–१½ इन्च लम्बे बाह्यकोष के दल नीचे रोमश पुष्पवृन्त-१-२ इन्च लम्बा;

फल—(डोंडी) हुलहुल के समान लम्बे गोल आधा व पौना इन्च लम्बे, विषम एवं कटे हुए किनारे वाले कांटेदार छोटे और मोटे होते हैं।

बीज— काले, चिकने, नोंकदार पक्षयुक्त होते हैं।

जड़ (कन्द) या मूल – १–४ इंच लम्बी ½ से १ इंच तक मोटी गाजर जैसी (गोदुमाकार), सीधे बल में झुर्रीदार (शास्त्रों में कहा हुआ बछड़े की नाभी का आकार कुछ-कुछ इसमें मिलता है), टूटे हुए रेशे या शाखाओं के चिह्नों से युक्त, ऊपर से कालापन लिए हुए

---

[1] यह नाम संस्कृत के वत्सनाभ (बछड़े की नाभी) शब्द का अपभ्रंश है। इसके कन्द का आकार बछड़े की नाभी जैसा होता है। इसका लेटिन तथा अंग्रेजी नाम एकोनाइटम (Aconitum) और एकोनाइट (Aconite) यूनानी शब्द 'अकूनीतून' से व्युत्पन्न है। जिसका अर्थ होता है बिना मिट्टी के पैदा होने वाला। बछनाग का पौधा ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों की चट्टानों पर उगता है तथा बर्फ से ढका रहता है। बर्फ गलने के बाद अधिकता से पाया जाता है। फैरोक्स (Ferox) का अर्थ है अतिविषमय क्षुप।

इस बछनाग की अनेक उपजातियां हैं। भारतवर्ष में इसकी जितनी जातियां पैदा होती हैं उनमें प्रस्तुत प्रसंग का बछनाग मुख्य माना जाता है। इसका विशेष वर्णन ऊपर के नोट्स में देखिये, यूरोप व अमेरिका में विशेषतः श्वेत बछनाग (A.Napellus) अधिक पैदा होता है, तथा उसीका उपयोग अधिकता से किया जाता है। इसका वर्णन आगे के प्रकरण में देखें।

इस कुल के क्षुप के वर्णविन्यास मूलोद्भव एकान्तर या क्वचित् अभिमुख, पुष्प पूर्ण द्विदल अधःस्थकोष, पंखड़ियां प्रायः ५ और रङ्गीन पुंकेशर अनियत, स्त्रीकेशर अनेक एवं असयुक्त; मूल प्रायः कन्द, क्वचित् सूत्रवत् इस कुल में प्रायः क्षुप और कहीं लतायें होती हैं।

Scanned with CamScanner

भूरे रंग की भीतर से किंचित् श्वेत वर्ण की, स्निग्ध, चमकीली, गन्धरहित (या एक विशेष प्रकार की अल्प गन्ध युक्त), स्वाद में पहले मीठी, फिर कुछ कड़वी प्रतीत होने वाली तथा चिनचिनाहट व सुन्नता पैदा करने वाली होती है। इसी जड़ या कन्द को बछनाग कहते हैं। बसन्त ऋतु के प्रारम्भ में ही जब इसके पौधे पर नूतन पत्र नहीं आते तब ही जड़ों को खोद कर सुखा लेते हैं। अधिक दिनों तक पड़े रखने पर यह बिल्कुल काले रंग की हो जाती है तथा वर्षाकाल में यह बहुत मीठी तथा सींग जैसी हो जाती है। इसे हाथों पर मसलने से ऊदा रंग चढ़ जाता है।

इसके क्षुप हिमालय की चोटियों पर तथा नेपाल में और सिक्किम से गढ़वाल तक १० से १४ हजार फुट की ऊंचाई पर पाये जाते हैं। भारत के दक्षिण में खानदेश व सतपुड़ा के जंगलों में भी यह पाया जाता है।

नोट नं० १—आयुर्वेद के ग्रन्थों में कहा है कि 'जिसका कन्द गोस्तनाकार तथा ५ अंगुल से बड़ा न हो, गोस्तन से अधिक स्थूल भी न हो और पाण्डुर वर्ण का हो वही वत्सनाभ है।' —र० र० स०

भावप्रकाशकार प्राचीन ग्रन्थों का प्रमाण देते हुए कहते हैं कि 'जिसके पत्र संभालू के पत्र समान हों तथा कन्द का आकार वछड़े की नाभी के समान हो तथा जिसके समीप अन्य पौधों या वृक्षों की वृद्धि न हो सकती हो उसे वत्सनाभ विष समझना चाहिए।' —भा. प्र.

ध्यान रहे उक्त प्रकार का बछनाग या प्रस्तुत प्रसंग का काला बछनाग असली आजकल प्रायः दुर्लभ है। आधुनिक बछनाग में निम्नाङ्कित ४ जातियों का मिश्रण पाया जाता है। (१) मोहरा, मौराविष (Aconitum Deinorrhizum) यह बगदाद, बशाहरा में पैदा होता है। इसमें स्युड़ा कानोटिन (Pseudo conitine) नामक चमकदार विषैला तत्व ८६% पाया जाता है। (२) गोवारी नेपाली (A. Balfourii) जो नेपाल, गढ़वाल और कुमाऊं में पैदा होता है। इसमें उक्त विष ४% होता है। (३) बिख, कालो बिखोमा डोंघी (A. Spicatum) और (४) कालो बिखमो (A. Laciniatum) ये दोनों ही श्वेत बछनाग (Napellus) के एक प्रकार के भेद हैं। इन दोनों में जो बिखाकोनीटिन (Bikha conitine) नामक विषैला तत्व होता है वह चमकीला नहीं होता। ये दोनों सिक्किम और भूटान में पाये जाते हैं।

इन सबका रासायनिक संगठन एवं प्रभाव या कार्य प्रायः काले बछनाग के समान ही है। इनके अतिरिक्त (A. Lycoctonum और A. Palmatum) नामक दो जातियों का भी मिश्रण रहता है। ये दोनों पूर्वी हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों में गढ़वाल से मनीपुर तक पाये जाते हैं। ये दोनों प्रायः निर्विष (या अत्यल्प विषयुक्त) होते हैं। इनमें से बिखमा (A. Palmatum) कुनैन जैसा अत्यन्त कड़ुवा होता है। इसका उपयोग आंत्र पीड़ा, अतिसार व वमन के विकारों में तथा आंत्रगत कृमिनाशार्थ—काली मिर्च के साथ किया

बछनाग (काला)
ACONITUM FEROX . WALL.
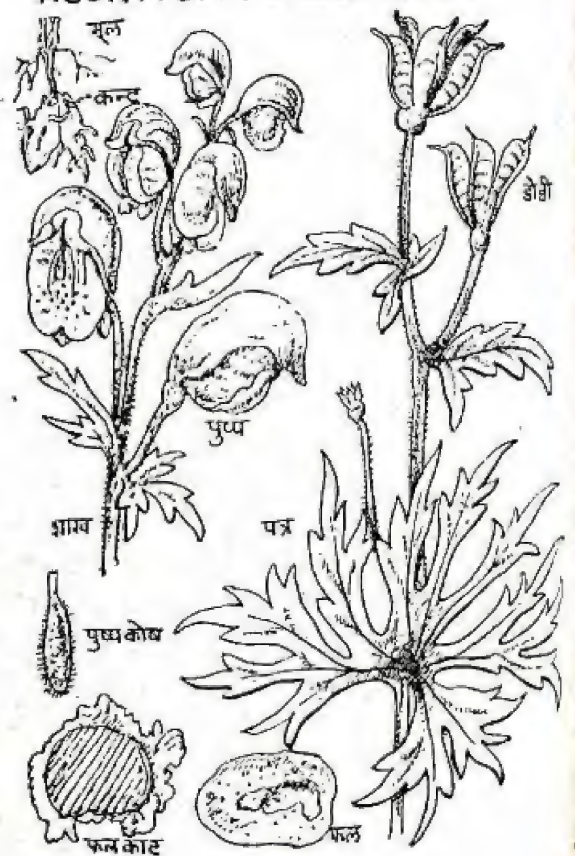
जाता है। गठिया, सन्निपात में इसका लेप करते हैं।

बाजार में मिलने वाले बछनाग इस प्रकार की कई जड़ी बूटियों का मिश्रण होने से असली का पता लगाना कठिन हो जाता है। —नाड़कर्णी

नोट नं० २—मीठा तेलिया—नाम से जो बछनाग बाजारों में मिलता है वह प्रायः अमृतसर (पंजाब) से आता है। वहां के बड़े-बड़े वनस्पतियों के व्यापारी एक बड़ी कढ़ाई में गोमूत्र या महिष मूत्र भरकर उसमें एक मन मूत्र में ३-४ सेर के प्रमाण में कसीस घोल डालते हैं। जब कसीस विलीन हो जाता है तब २-३ दिन में सब मिश्रण का रंग काला हो जाने पर उसमें बछनाग (विशेषत: Aconitum Napples या दूधिया बछनाग) जो वहां पर चम्बा, पांगी, कस्टवाल, भद्रवा, कुल्लू आदि हिमालय के पर्वतीय भागों से वे लोग मंगवाते हैं। उसके छोटे बड़े टुकड़े डाल दिये जाते हैं जो उसी में ८-१० दिन पड़े रहने के बाद टुकड़ों को तोड़कर देखने से भीतर बाहर एक जैसा काला रंग हो गया हो तब बड़ी-बड़ी डेग या कढ़ाई में छोड़कर उबाल देते हैं। उबालते समय उसमें १ मन में ४० तोला के प्रमाण में तेल डालते हैं। ४-५ घंटे पका लेने के पश्चात् उसे निकाल कर धूप में सुखाया जाता है। पूर्ण रूप से शुष्क हो जाने पर बेचने के लिए दुकानों पर लाकर मीठा तेलिया, सिंगी [मोहरा या काला बछनाग नामों से बेचा जाता है। यह क्रिया मैंने अमृतसर में प्रत्यक्ष देखी है।

—हि० मो० जंगली के
सचित्र गुणादर्श से साभार

उक्त प्रकार के संस्कार द्वारा काला बछनाग या मीठा तेलिया बना देने से लाभ केवल इतना ही होता है कि उसमें कीड़ा नहीं लगने पाता और न उसे पुनःशुद्ध करने की आवश्यकता होती है। यह जितना अधिक वजनदार व नवीन हो उतना ही अच्छा माना जाता है।

नोट नं० ३—बछनाग का विशेष उल्लेख चरक सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रन्थों में नहीं प्राप्त होता। मालूम होता है कि इसका उपयोग उस समय अत्यल्प किया जाता था किंतु गत कई शताब्दियों से इसका उपयोग ज्वर, उदर विकार आदि रोगों में प्रचुरता से किया जा रहा है। यह अत्युग्र विष होते हुए भी युक्तिपूर्वक इसके हितकारी गुणों को जान कर इसे अत्यन्त लाभकारी औषधि का रूप दिया जाता है वह भी अमृत के समान कार्यकारी हो जाता है। अतएव इसे विष और अमृत ऐसी परस्पर विरोधी संज्ञायें दी गई हैं। इससे सिद्ध होता है कि जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो औषधि रूप कार्य न करे। इसीलिए कहा है —जगत्येवमनौषधम्।

नोट नं० ४—निघण्टु में कहीं-कहीं पीला और लाल बछनाग का उल्लेख है। पीला बछनाग शायद A.Lycoctonum हो जिसके विषय में हमने ऊपर नोट नं० १ में उल्लेख किया है। अथवा यह हल्दी बछनाग (ममीरा) हो। आगे ममीरा का प्रकरण देखिये। अथवा यह हारिद्र (हलदुआ) विष हो।[1]

लाल बछनाग को भी जंगले ने Aconitum Variegatum कहा है। हमें यह लेटिन नाम अन्यत्र नहीं प्राप्त हुआ। अस्तु

प्रस्तुत प्रसंग के बछनाग के नाम गुण धर्मादि—

सं.—वत्सनाभ, विष, अमृत, महौषध। हि.—बछनाग (काला), मीठा विष, मीठा तेलिया, सिंगिया, विष डकरा, सिंगी मोहरा। म.—बचनाग। गु.—बजनाग, सीगंडियों बछनाग। बं.—काठ विष। अं.—इंडियन एकोनाईट (Indian Aconite) ले.—एकोनाइटम फेरोक्स।

रासायनिक संगठन—

इसमें क्षारीय सत्व एकोनाईटिन (Aconitine) ०.९७ से १.२३% तक मुख्य है। इसके गुणों का मुख्य आधार यही सत्व है। इस सत्व के सदृश ही स्यूडो एको-

[1] हारिद्र या हलदिया, हलदुआ विष की गांठें हल्दी की गांठ जैसी, हल्दी के रंग की होती हैं। जड़ नोकदार गोल व बड़ी, भीतरी भाग पीला, ऊपर से कुछ काला पोरिये चिकने एवं कटुक व्याप्त होते हैं। यह महा भयंकर विष है।

Scanned with CamScanner

नाईटिन या नेपोलिन (Pseudo Aconitine or Naptalline) नामक एक विषाक्त तत्व भी पाया जाता है जो आधा सेर मूल में लगभग ४ मा. निकलता है। इसके अतिरिक्त पिके कोनाइटीन (Picraconitine), एकोनाइन (Aconine), एकोनिटिक एसिड (Aconitic Acid), श्वेतसार (Starch), बेंजिल एकोनिन (Benzyo aconine) तथा होमोनेपेलिन (Homonapelline) नामक तत्व भी अल्प मात्रा में होते हैं।

प्रयोज्यांग—मूल।

शोधन विधि—

आयुर्वेदानुसार इसका शुद्धिकरण एवं मारण इस प्रकार किया जाता है (किंतु बाजारू मीठा तेलिया जिसके विषय ने ऊपर नोट नं० २ में कहा गया है, उसकी शुद्धि की आवश्यकता नहीं है तथापि संतोषनार्थ अन्य अशुद्ध बछनाग के जैसी उसकी भी शुद्धि की जाती है) एलोपैथी, होमियोपैथी में इसकी कोई शुद्धि नहीं की जाती। इसीलिये उनके टिंचर आदि प्रयोग बड़े ही तीव्र होते हैं एवं अवसादक प्रभाव वाले होते हैं।

शुद्धिकरण—इसके चने जैसे छोटे-छोटे टुकड़े कर गोमूत्र में ३-४ दिन भिगो रखने के बाद (गोमूत्र नित्य ताजा लेना चाहिए) जल से धोकर गोदुग्ध में १ पहर तक स्वेदन करते हैं। इन टुकड़ों में सुई आरपार चली जाय तो उसे शुद्ध हुआ मानते हैं।

अथवा दोला यन्त्र विधि से प्रथम त्रिफला क्वाथ में और फिर बकरी के दूध में स्वेदित करने से भी यह शुद्ध हो जाता है। अथवा केवल गोदुग्ध में ही २-३ घंटे तक स्वेदित करने से भी यह शुद्ध होता है।

मारण विधि—शुद्ध बछनाग में समभाग सुहागा मिलाकर खरल करने से या शुद्ध बछनाग में समभाग सुहागा और दोगुना काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर खरल करने से विष मर जाता है। कोई विकार या हानि नहीं पहुंचाता। —र. सा. सं. और आ. प्र.

उक्त प्रकार से शोधन तथा मारण से इसका विषैला प्रभाव विशेषतः अवसादक प्रभाव अधिकांश में कम होकर उसमें उत्तेजक गुण की वृद्धि होती है।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, उष्ण, मधुर विपाक, तीक्ष्ण, कषैला, मादक, योगवाही, सूक्ष्म, व्यवायी, विकाशी, विशद, अपाकी है। यह अपने रूक्ष गुण से वात को, उष्ण गुण से पित्त व रक्त को कुपित करता है। तीक्ष्ण गुण से बुद्धि को भ्रमित एवं मर्म व बन्धन को छिन्न भिन्न करता है। सूक्ष्म गुण से शरीर के सब अवयवों में दृढ़पूर्वक प्रविष्ट होकर उनकी क्रियाओं को विघटित करता है। आशुगुण से अति शीघ्र ही अपने प्रभाव को दर्शित तथा व्यवायी गुण से प्रकृति को नष्ट करता है। विकाशी गुण से शारीरिक वातादि दोष रसादिधातु और मल मूत्रादि के समूह को फैलाता है। विशद गुण के द्वारा अत्यन्त दस्तों को लाता है। लघु गुण के कारण बहुत कठिनाई से वश में आता है तथा अपाकी गुण के कारण बहुत दुर्जर एवं बहुत दीर्घकाल तक क्लेशदायक होता है। यह श्वेत बछनाग की अपेक्षा अधिक विषाक्त है।

किन्तु शुद्ध किया हुआ तथा विधिपूर्वक सेवन किया हुआ यह रसायन, बलकारक, वात कफ, कुष्ठ, वातरक्त, अग्निमांद्य, श्वास, कास, यकृत, प्लीहा, उदर रोग, भगंदर, गुल्म, पांडु, शूल, शोथ, पक्षाघात, नाड़ी दौर्बल्य, ज्वर, कंठ रोग, मधुमेह, शुक्रमेह, अर्श, व्रण आदि पर लाभकारी है। यह कफघ्न, त्रिदोष विशेषतः वातकफ शामक, बृंहण, वीर्यवर्धक, वेदनास्थापन, हृदयोत्तेजक, मूत्रल, स्वेदजनक, शुक्र स्तम्भक तथा आर्तवजनन है।

शरीर के भिन्न भिन्न संस्थानों पर होने वाले इसके प्रभाव—रक्तवह संस्थान तथा श्वसन संस्थानों पर—अधिक मात्रा में इसे देने से प्रारम्भ में हृदयपेशी उत्तेजित होकर हृदयस्पन्दन एवं बल की वृद्धि होती है, रक्त दबाव भी बढ़ जाता है फिर हृदय की शिथिलता के अनुरूप प्रथम रक्त दबाव गिर जाता है तथा संचालक नाड़ी केन्द्र (Vasomotor Centre) मृत सा बन जाता है। परिणाम में हार्दिकताल पूर्णांश में टूटकर हृदय बन्द हो जाता है।

किंतु शुद्ध किया हुआ यह अल्प (औषधि) मात्रा में लेने से नाड़ी की गति एवं बल तथा रक्त का दबाव

Scanned with CamScanner

आदि बढ़ गये हों तो कम होते हैं। ध्यान रहे यह रक्त में शीघ्रही प्रवेश करता है तथा रक्ताभिसरण पर इसकी अति प्रबल क्रिया होती है। डिजिटेलिस के समान यह हृदयपेशी को और हृदय में जाने वाली वात नाड़ियों का उत्तेजक है। प्रारम्भ में वातनाड़ियों को अधिक उत्तेजना मिल जाने से हृदय की गति मन्द होती है। हृदय का विश्राम काल बढ़ता है फिर रक्त दबाव कम हो जाता है। तत्पश्चात् (मात्रा अधिक हो तो) हृदय अनियमित कार्य करने लगता तथा नाड़ी बिगड़ती है। श्वासोच्छ्वास क्रिया मन्द होती है तथा यह वृक्क और त्वचा द्वारा मूत्र एवं स्वेद के साथ बाहर निकलता है।

—डा० वा० ग० देशाई

"जिन-जिन अवस्थाओं में डिजिटेलिस व्यवहृत होता है, उन-उन अवस्थाओं में बछनाग विधेय है। अर्थात् हृत्पिण्ड में से रक्तनिःसरण में प्रतिबन्ध होने और हृत्स्पंदन अधिक कम हो जाने पर डिजिटेलिस के समान यह भी निषिद्ध है। यदि हृदय के अलिन्द निलय खण्डों के प्रवेश एवं निर्गमन द्वारों में कुछ विकृति न हो केवल हृत्पेशी की स्थूलता या हृदय खण्ड के प्रसारण के हेतु से हृत्स्पंदन बढ़ा हो किसी प्रकार की वैधानिक विकृति न हो तो इसका उपयोग विशेष लाभकारी होता है। वातज हृत्स्पंदन (Nervous palpitation) पर—एलोपैथी में टिंक्चर एकोनाईट १ बून्द टिंक्चर डिजिटेलिस २ बून्द, टिंक्चर बेलाडोना २ बून्द तथा इन्फ्युजन जेंशियानी कम्पोजिटा ४ ड्राम तक ऐसी एक मात्रा ४-४ घंटे बाद देने से विशेष लाभ होता है।—मे. मेडिका। यह डिजिटेलिस की अपेक्षा विशुद्ध अवसादक है एवं इसके प्रयोग में डिजिटेलिस के समान विपत्ति की भीति भी नहीं है।

हृदयावरण प्रदाह (Pericardit) रोग में अत्यन्त घबड़ाहट एवं अत्यधिक वेदना होने पर इसके द्वारा आशु उपकार होता है। एवं मस्तिष्क, फुफ्फुस, श्वास नलिका आदि यान्त्रिक प्रदाह तथा ज्वररोग में हृत्स्पंदन व नाड़ी वेग के लाघवार्थ इसका प्रयोग किया जाता है। एवं विविध प्रकार के रक्तस्राव और रक्त संचालन में वेगाधिक्य होने पर यह वेग का ह्रास कर लाभ पहुंचाता है।"

—(डा. राधागोविन्दकर)।

हृद्दौर्बल्य में इसका प्रयोग होता है। गला, श्वासनलिका, फुफ्फुस, हृदय आदि के शोथ में इसे देने से विकार रुक जाता है तथा व्याधि शांत हो जाती है। कास और श्वास में भी यह दिया जाता है।

आभ्यन्तर नाड़ी संस्थान—"वातनाड़ी शूल (Neuralgia) तथा वातनाड़ियां और मांशपेशियों से सम्बन्ध वाली वेदनात्मकक्रिया उपस्थित होने पर इसका बाह्योपचार के साथ उदर सेवन भी कराया जाता है है। आक्षेप सह मुख मण्डल की नाड़ियों के शूल(Tic doulourcux) पर भी यह अच्छा लाभ पहुंचाता है।"

"इसके सेवन से आमाशय की नाड़ियां शून्य होती हैं तथा आमाशय रस व श्लेष्मा कम होते हैं। इसलिये आमाशय की पीड़ा, दाह एवं सगर्भ की वान्ति के निवारणार्थ यह दिया जाता है। अल्प मात्रा में यह आमाशय की पचनक्रिया बढ़ाता है।"

"वातनाड़ियों के शूल में यह विशेष लाभकारी है। इस रोग में प्रथम स्थानिक प्रयोग करना चाहिये अर्थात् वेदना स्थान पर विषगर्भ तैल का मर्दन करें। उतने से लाभ न होने पर महावात विध्वंसन रस (इसमें बछनाग होता है) का आभ्यंतरिक प्रयोग भी करें। मुखमण्डल और भ्रूप्रदेश के वातजशूल पर इसका इंजेक्शन विशेष लाभदायक होता है। धनुर्वात में इसे पूर्ण मात्रा में बार-बार देने से मांसपेशियों की उग्रता का दमन होकर वे शिथिल बनती है एवं रोग शमन हो जाता है। पक्षाघात तथा अन्य नाड़ी दौर्बल्य की अवस्थाओं में यह उपयोगी है।"

—डा० राधागोविन्दकर।

नाड़ीदौर्बल्य के कारण उत्पन्न बहुमूत्र, शय्यामूत्र आदि विकारों को यह दूर करता है।

तापक्रम—"ज्वर की यह प्रसिद्ध औषधि है। विशेषकर शोथ वेदना युक्त ज्वर (Inflammatory fevers) में प्रदाह और ज्वर को दूर करने वाली औषधियों में बछनाग, पारा और सुरमा (एन्टीमनी) मुख्य हैं। इन तीनों का यथायोग्य मिश्रणकर सकते हैं। ऐसे प्रदाहिक

Scanned with CamScanner

ज्वर के दमनार्थ बछनाग युक्त (आनन्दभैरव, त्रिभुवनकीर्ति, अश्वकंचुकी) के समान अन्य औषधि नहीं है। समयानुसार प्रयोग करने पर इसका फल अति आश्चर्यकारक मिलता है। बहुत थोड़े समय में ही प्रदाह निःसन्देह दमन होता है। प्रदाह के प्रारम्भ काल में ही प्रयोग करने पर इसका फल उत्तम प्रकाशित होता है। (मूत्र व पसीना आता है, नाड़ी की गति कम होती तथा शोथ, पीड़ा व ज्वर कम होता है)"

"ध्यान रहे, यदि प्रदाहवश यान्त्रिक विधान नष्ट हो गया हो तथा रस रक्तादि घनीभूत हो गये हों तो उनका प्रतिकार बछनाग से नहीं होता। फिर भी इससे प्रदाह का दमन होकर आगे होने वाली अधिक हानि से रक्षण होता है।"

"प्रदाह जीर्ण होने पर रोगी अत्यन्त दुर्बल होता है। विशेषतः यदि हृदय का स्पन्दन क्षीण हो तो सावधानता पूर्वक प्रयोग करना चाहिये। अन्यथा विपत्ति उपस्थित होती है। सामान्य प्रदाह, गलग्रन्थि प्रदाह, कण्ठक्षत, कर्णमूल प्रदाह, उत्कट प्रतिश्याय, स्वरयंत्र प्रदाह, जिसमें मुर्गे की सी आवाज निकलती है (Catarrhal croup) आदि की प्रथमावस्था में ही इसके द्वारा प्रारम्भ की जाय तो १-२ दिन के भीतर ही रोग का प्रतिकार हो जाता है। यद्यपि घातक कीटाणुजन्य फुफ्फुस प्रदाह, फुफ्फुसावरण प्रदाह, विसर्प (Erlsipelas) आदि प्रबल रोगों में इस तरह सत्वर लाभ नहीं होता तथापि इसका फल अवश्य ही मिलता है। वर्तमान में डाक्टरी में भी फुफ्फुसावरण प्रदाह (Pleurisy), उदर्य्याकला प्रदाह और गलग्रन्थि प्रदाह पर इसका विशेष रूप से उपयोग हो रहा है।"

आम प्रधान नाना प्रकार के ज्वरों में बछनाग प्रधान (मृत्युंजय रस) आशुकारिक, आमवातिक ज्वर की महौषधि है। इसके द्वारा शारीरिक उत्ताप, और वेदना का शीघ्र ह्रास होता है, शीघ्र आरोग्य लाभ होता है। इस हेतु से आयुर्वेद ने ज्वरों पर बछनाग का अत्यधिक उपयोग किया है। यह आभ्यन्तरिक और बाह्य प्रयोग में व्यवहृत होता है।

बछनाग द्वारा आमवात की चिकित्सा में विशेष यह होता है कि आमवातज हृदयावरण प्रदाह प्रायः नहीं होता एवं रोग शमन होने पर अति शीघ्र संपूर्ण आरोग्य की प्राप्ति होती है। सब सन्धियां थोड़े ही दिनों में स्वाभाविक नमनशील बन जाती हैं। जीर्ण आमवात में स्थानिक प्रयोग द्वारा शीघ्र लाभ होता है, इसके अतिरिक्त तीव्रावस्था का शमन होने पर भी बछनाग (गदमुरारी) का आभ्यन्तरिक प्रयोग कर सकते हैं।

संक्रामक ज्वरों की आक्रमणावस्था में इसका उपयोग सफलतापूर्वक होता है, किंतु इसकी सबल क्रिया हृदय व रक्ताभिसरण पर होकर हृदय को हानि न पहुंचे इस बात का सर्वदा सम्हाल रखना चाहिये। अतः मात्रा सर्वदा कम देनी चाहिये।

मोतीझरा (Typhoid Fever) तथा अन्य प्रकार के ज्वरों पर बछनाग (लक्ष्मी नारायण रस, संजीवनी वटी) अति उपकारक है। इन ज्वरों की प्रथमावस्था में ज्वर के उत्ताप को कम करने तथा नाड़ी की तेज गति का ह्रास करने, एवं शनैः शनैः लीन विष को जलाने के लिए इसका प्रयोग कदापि निष्फल नहीं होता। आयुर्वेद में सविराम ज्वर (Intermittent fever) पर बछनाग प्रधान औषध (शीतभंजी रस) का उपयोग होता है। डाक्टरी में भी जब कुनाईन निष्फल जाती है या रोगी की अवस्था कुनाईन देने योग्य नहीं होती, तब बछनाग का आश्रय लेते हैं। इससे ज्वरीय उत्ताप की कमी होती, नाड़ी मन्द, सबल व पूर्ण होती है; जिह्वा मलरहित बनती, पचन क्रिया नियमित होती; शांत निद्रा आती है; पेशाब बढ़ जाता है, तथा प्रस्वेद आकर बाहर निकल जाता है।

सूतिका ज्वर में बछनाग(प्रतापलंकेश्वर रस) उत्कृष्ट औषधि है। योग्यमात्रा में देना चाहिए। मात्रा अधिक हो जायगी तो रक्त संचालन क्षीण हो जायगा, लाभ के स्थान पर हानि होगी। यदि नाड़ी क्षीण या सविराम हो तो इसका प्रयोग तत्काल बन्द कर देवें। (ऐसी अवस्था में सूतिकारी एवं सूतिकाभरण हितावह है।) नाड़ी क्षीणता और असमता होने पर यदि न सम्हाला जाय तो

Scanned with CamScanner

नाड़ी सूत्रवत् हो जाती है तथा प्रस्वेद अधिक आकर हाथ पैर शीतल हो जाते हैं। फिर अति निर्बलता होती है।

'मस्तिष्क में विष संग्रह होकर होने वाले सन्यास (Apoplexy) में नाड़ी पूर्ण व प्रबल हो तो इसका (सूतराज का) उपयोग अच्छा होता है। इससे रक्त संचय का ह्रास होकर लाभ होता है। मधुमेह में संन्यास हो तो इसके अनुपान रूप से नारियल का जल देवें एवं पीने के लिए सोड़ा मिश्रित जल देवें। यकृत के पित्तस्राव की अधिकता से उत्पन्न विविध प्रकार के विकार (Biliousness) में यह (मृत्युञ्जय आदि औषधि, निसोत आदि विरेचक द्रव्यों के साथ) व्यवहृत होता है। लसीकामेह (पेशाब के साथ शुभ्र प्रथिन Albuminuria जाना) में शारीरिक उत्ताप अधिक हो तो इसका (त्रिभुवन कीर्ति का) प्रयोग करना चाहिए एवं वृक्कों के प्रदाह में भी यह लाभदायक है।'

तमक श्वास (ज्वर सह) में इसके द्वारा सन्तोषजनक फल प्राप्त होता है। रोगी विशेषतः शिशु हो, प्रारम्भ में प्रतिश्याय से पीड़ित हो, बार बार छींकें आती हों फिर प्रदाह क्रमशः विस्तृत होकर श्वासनलिका पर्यन्त फैला हो एवं गल क्षत हो गया हो तथा रोग की जीर्णावस्था में तमक श्वास उपस्थित हुआ हो और कभी कभी प्रतिश्याय के लक्षण भी होते हों तो ऐसा तमक श्वास का रोगी आजीवन बार बार प्रतिश्याय से पीड़ित होता रहता है तथा साथ ही ज्वर भी आता रहता है। ऐसी स्थिति में इसके प्रयोग से प्रदाह व ज्वर का दमन होकर सरलता से श्वास रोग का निवारण होता है।

तरुण प्रतिश्याय के प्रारम्भ में कम मात्रा में इसके योग (नागगुटिका, आनन्दभैरव आदि) अमोघ कार्यकारी हैं। प्रतिश्याय के साथ कण्ठ नलिका में वेदना होने पर इसके साथ सूची बूटी (बेलाडोना) का प्रयोग करना विशेष लाभदायक है। नियमित समय पर बारंबार छींकें आना और जुकाम होना इस विकार में नासिका के ऊपर बछनाग मिश्रित प्रवाही मलहम (Liniment) की मालिश की जाती है।

मासिक धर्म कष्टपूर्वक आने और ज्वर सहवर्ति होने पर बछनाग (अश्वकंचुकी) अल्प मात्रा में दिन में दो बार देना महोपकारक है। शीतलता आदि से सहसा रज का संग्रह हुआ हो तो बछनाग देने से रजो निःसरण योग्य होता है एवं शीतलता के आघात से ज्वर रोग में द्रुताक्षेप हुआ हो तो अल्प मात्रा में इसे देने से उपकार होता है।'

'पूयमेह की प्रबलावस्था, तीव्र मूत्राशय प्रदाह एवं मूत्र नलिका के संकोच का निवारण करने के लिये बछनाग (त्रिभुवनकीर्ति) थोड़ी मात्रा ने दो बार देना चाहिए।'

'अर्धावभेदक (Sick-headache or Migraine) होने पर, निश्चित समय पर शिर में बार बार एक ओर दर्द होता है साथ में प्रतिश्याय, वमन और वात वेदना होती है, उस पर १ रत्ती गांजा या भांग के साथ बछनाग (त्रिभुवन कीर्ति या सूतराज) का प्रयोग करने पर बिलक्षण लाभ होता है।'

'धनुर्वात में बछनाग (कालकूट) पूर्ण मात्रा में बार बार देने से मांसपेशियों की उग्रता का दमन होकर वे शिथिल बनती हैं और रोग शमन हो जाता है।'

—स्व० डा० राधागोविंदकर-
गां० औ० र० से साभार

डा० बोस, म्हसकर और केस के मतानुसार यह द्रव्य उदर में जाकर सबसे पहिले हृदय की गति को धीमी करता फिर रक्त के दबाव को हलका करता है। पश्चात् यह परिवर्तीय रक्त बहाव को तेज करता है। तदनन्तर हृदय की गति कुछ तेज होती एवं रक्त भार भी बढ़ता है। इसे गो मूत्र में शुद्ध कर लेने पर यह हृदय की गति को घटाता है। यदि गोमूत्र के स्थान पर गौदुग्ध में इसे शुद्ध किया जाय तो उपरोक्त परिवर्तन और भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

यूनानी मतसे यह चौथेदर्जे में उष्ण व खुष्क है ज्वरघ्न, वेदनास्थापन, स्थानीय स्वापजनन, मूत्रार्त्तवजनन, प्रायः कफज एवं सौदावी रोगों में लाभकारक और त्वक संशो-

Scanned with CamScanner

भक है। शुद्ध किया हुआ बहुत थोड़ी मात्रा में देने से कुष्ठ और सफेद दाग में लाभ पहुंचाता है। यह कामशक्ति बढ़ाता है। प्रायः वाजीकर तिलाओं में भी यह डाला है। उत्तेजक होने के कारण यह अंग के भीतर उत्तेजना पैदा करता है जिससे उसकी ओर रक्त परिभ्रमण तीव्र हो जाता है, और अंग पोषण का हेतु बनजाता है। यह अन्त में सुन्नता पैदा करता है। अतः ऐसे रोगी को जिसका अंग स्पर्शासहिष्णु हो, इस प्रकार के तिला गुणदायक होते हैं। यह आमाशय, यकृत व मस्तिष्क को शक्ति देता है, खून को साफ करता, कफ को निकाल देता तथा वायु को बिखेरता है। अर्द्धांग वायु, जलोदर, जबान का तुतलाना, दांतों का दर्द, और आंख की बीमारियों में भी लाभदायक है किंतु इन सब कामों में इसका उपयोग सावधानी से करना चाहिए। इसका लेप जख्म को फायदा पहुंचाता है।

(१) ज्वरों पर—शुद्ध बच्छनाग, सुहागे की खील, जवाखार सज्जीखार, वंगभस्म और काली मिर्च का चूर्ण समभाग लेकर एकत्र नीबू के रस में खरल कर १–३ रत्ती की गोलियां बना लेवें। यह रस कामधेनु ग्रन्थ का सर्वज्वरहरो रस है। यह समस्त ज्वरों का नाशक है।

अथवा—शुद्ध बच्छनाग, सुहागा खील, पंचलवण, त्रिफला, त्रिकटु, अभ्रक भस्म, हिंगुल और शुद्ध गंधक समभाग लेकर प्रथम हिंगुल की कज्जली करें। फिर उसमें शेष द्रव्यों का महीन चूर्ण मिला एकत्र खरल कर १ से ४ रत्ती की गोलियां बना लें। यह जीर्ण हठी ज्वर, जिसका उत्ताप १०१ से १०२ तक सदैव बना रहता है उसे शीघ्र नष्ट करता है।

—नाड़कर्णी

सन्निपात ज्वर पर—शुद्ध बच्छनाग चूर्ण १ भाग, काली मिर्च चूर्ण ३ भाग और अरने उपलों की भस्म १६ भाग एकत्र अच्छी तरह खरल कर रखें। ४–५ रत्ती की मात्रा में अदरख रस के साथ देने से लाभ होता है। यह भस्मेश्वर चूर्ण है।

—भा. प्र.

नोट—ज्वर तथा सन्निपात ज्वरों पर मृत्युञ्जय रस, त्रिभुवन कीर्ति, सूचिका भरण आदि के प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में देखिये।

शूल पर—शुद्ध बच्छनाग, बच, भारंगी, नागरमोथा, व वायविडंग १-१ तो० तथा त्रिफला, त्रिकुट के प्रत्येक द्रव्य २-२ तो० सब का चूर्ण एकत्र खरल कर उसमें सब के बराबर गुड़ मिलाकर उर्द जैसी या चने जैसी गोलियां बना लेवें। इसे उष्ण जल के साथ (या शुण्ठी चूर्ण युक्त रेंडी तैल, हींग और काला नमक के अनुपान से) लेने से कफजशूल तथा कफ के रोग दूर होते हैं।

—र० चं०।

वातज शूल हो तो—शुद्ध बच्छनाग, जवाखार, कौड़ी भस्म, सेंधानमक, और त्रिकटु समभाग का चूर्ण पान के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें। यह वातज शूल को नष्ट करती है। —यो. र.।

इसे समीर शूलेभहरिः रस कहते हैं।

आठों प्रकार के शूलों पर—शुद्ध बच्छनाग, त्रिकटु, पीपलामूल, बच, चित्रक, हींग, जीरा, काला जीरा, सबके समभाग चूर्ण को नीबू के रस और अदरक के रस की १-१ भावना देकर कालीमिर्च जैसी गोलियां बना लें। यह सूर्यप्रभा नाम की वटी, प्रातः मन्दोष्ण जल के साथ सेवन से अष्ट प्रकार के शूल नष्ट करती है। —यो. र.।

अथवा— अशुद्ध बछनाग का दो तोले का टुकड़ा लेकर उसे कढ़ाई में डाल दें और उसमें १० सेर जल तथा आक के पत्र, फूल व जड़ के छोटे छोटे टुकड़े डाल कर आग पर पकावें, ६-७ सेर तक पानी के जल जाने पर कढ़ाई को नीचे उतार कर उक्त बछनाग के टुकड़े को निकाल लें जो मोम की भांति हो गया होगा। सूख जाने पर महीन पीसकर सुरक्षित रखें। आवश्यकता के समय १ रत्ती तक गरम जल से देवें। कैसा भी उदरशूल हो प्रायः एक ही मात्रा देने से दूर हो जाता है।

—एकौषधि गुणविधान से साभार

(३) शोथ पर बछनाग का शोथघ्न गुण विशेषतः बालकों में स्पष्ट प्रतीत होता है। वृद्धों की सूजन पर इसका बिलकुल असर नहीं होता। बालकों की किसी भी प्रकार की सूजन के प्रभाव में उदाहरणार्थ गले के श्वासनलिका के, फुफ्फुस के, फुफ्फुसावरण के, हृदय के, आंत्र के, तथा संधि आदि के शोथों की प्रारम्भावस्था में

Scanned with CamScanner

ही तथा पूयमेह, कर्णपूय, विद्रधि आदि विकारों पर १८ वर्ष की आयु तक इसके प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। इसकी एक मात्रा देने से जो लाभ मिलता है, उसकी अपेक्षा एक मात्रा के ८ भाग कर, थोड़ी-थोड़ी देर के अन्तर से सेवन कराने से अधिक लाभ होता है।

शोथ स्थान पर—बछनाग के साथ सोंठ और पुनर्नवा-मूल को गोमूत्र में पीसकर लेप करते हैं। अथवा—बछनाग और अकरकरा २-२ भाग और सेंधानमक ५ भाग सबको एकत्र थोड़े पानी के साथ पीसकर गरमकर आमवात या हाथ पैर की संधिशोथ पर लेप करते हैं। अथवा बच्छनाग के तैल की मालिश करते हैं।

गण्डमाला, कण्ठमाला, बद तथा कांख बिलाई पर—बछनाग, चित्रकमूल और हल्दी समभाग लेकर पानी के साथ पीसकर लेप करते रहने से ७ दिन में गण्डमाला अवश्य फूट जाती है। फूट जाने पर उसपर अमलतास की जड़ को चावलों के पानी में पीसकर लेप करें तथा उसी की नस्य देवें। —यो. र.।

अथवा—बछनाग को नीबू के रस में घिसकर लेप करते रहने से भी लाभ होता है।

बद पर—बछनाग, और कुचला एकत्र जल में घिस-कर लेप करने तथा उस पर कागज चिपकाकर जूनीईंट के टुकड़ों को खूब गरम कर वस्त्र में गूड़कर सेंक करते हैं।

कांख बिलाई (कांख की वेदना, शोथयुक्त ग्रन्थि) पर—इसे पानी में घिसकर लेप करते हैं।

(५) कफ, कास, श्वास पर—कफान्तक रस—शुद्ध बच्छनाग १ तो०, हल्दी १४ तो०, सुहागे का फूला और पिप्पली १०-१० तोला सबके चूर्ण को एकत्र मिलाकर बोतल में भर लेवें। १-१ रत्ती तक की मात्रा में दिन में ३बार कत्था-चूना लगे हुए ताम्बूल के बीड़े के साथ लेने से कफ सरलता से बाहर निकल जाता है तथा नई उत्पत्ति रुक जाती है। कास व श्वास रोग में लाभ होता है।

—रस. तन्त्रसार

अथवा शुद्ध बछनाग १ भाग, सुहागा की खील २ भाग और काली मिर्च चूर्ण १२ भाग एकत्र खरल कर रखें। १ से ४ रत्ती या ८ रत्ती तक (शहद के साथ) देने से कफ का नाश और अग्नि की वृद्धि होती है। यह हुताशन रस है। —यो. र.

अथवा (वत्सनाभाद्या गुटिका)—शुद्ध बछनाग २ भाग, त्रिकटु ५ भाग, चित्रक मूल २ भाग, हरड १२ भाग और शुद्ध गूगल २४ भाग लेकर गूगल में अन्य समस्त द्रव्यों का महीन चूर्ण मिला खूब खरल कर २ से ४ रत्ती तक की गोलियां बनालें। १-१ गोली मुख में रखकर रस चूसने से कफ अति शीघ्र नष्ट होता है। —ग. नि.

अथवा [कफकेतु रस]—शुद्ध बछनाग, अकरकरा और समुद्रफल १-१ भाग तथा कालीमिर्च चूर्ण २ भाग सबका महीन चूर्ण अदरक के रस में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। इनके सेवन से कफ रोगों का नाश होता है।

अथवा शुद्ध बछनाग, सुहागा खील, पिप्पली, काली-मिर्च, अदरक और कौड़ी की भस्म समभाग एकत्र खरल कर लेवें। १ या २ रत्ती की मात्रानुसार शहद से सेवन करने से कफ, कास, श्वास एवं शीत वायु का नाश होता है। —भा. वै. र.

नोट—भै० रत्नावली का कफकेतु रस भी उत्तम लाभदायक है।

अथवा अशुद्ध बछनाग १ तो०, सुहागा भूना हुआ, पिप्पली १०-१० तो० तथा हल्दी १४ तो० सबका महीन चूर्ण करलें। २ रत्ती चूर्ण को फिटकरी भस्म २ रत्ती मिला शहद के साथ दिन में ३ बार देने से किसी भी प्रकार के श्वास में (जीर्ण तमक श्वास एवं महाश्वास को छोड़कर) लाभ होता है। रोगी को प्रातः १० बजे बेसन (चने का), हल्दी,गुड़ या खांड तथा घृत समभाग का विधिवत हलुवा बना सेवन करावें। सायं ५ बजे हल्का एवं पुष्टिकर भोजन कर टहलना चाहिए। ध्यान रहे हलुवा खाने के बाद अथवा बीच में २ घंटे तक जल नहीं पीना चाहिए। इसके लिये यह आवश्यक है कि

Scanned with CamScanner

प्रातः शौच जाने से पूर्व इच्छासे कुछ अधिक प्रमाण में जल पीवें। इससे कोष्ठ साफ होकर हलुवा खाने के बाद प्यास भी नहीं लगेगी तथा रोग निवारण में भी सहायता मिलेगी। कोष्ठबद्धता हो तो मधुयष्ठादि चूर्ण या पंचकोल चूर्ण देवें। जिसको पाचक पित्त की कमी से वरावर कोष्ठ-बद्धता बनी रहती है उसे भोजन के बाद द्राक्षासव या अग्नितुण्डी बटी देनी चाहिए।

—श्री सुरेशचन्द्र शर्मा गौड़, प्र. चिकित्सक राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, मोहनगढ़ (राजस्थान)
(अ. योगमाला से साभार)

एलोपैथिक में—टिंचर एकोनाइट २ बूंद, स्प्रिट्स-क्लोरोफार्माइ ५ बूंद; सेलिसीन १ ग्रेन, और एक्वा कैम्फोरी ½ औंस तक मिश्रण कर, ऐसी १ मात्रा २-२ घण्टे के अन्तर से दिन में ४ बार प्रयुक्त करें। कफ या साधारण प्रतिश्याय की प्रारंभिक अवस्था में इसका प्रयोग उपयोगी है। —म. मेड़िका।

श्वास कुठार रस—शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील १-१ तो., कालीमिर्च १० तो० तथा सोंठ और पिप्पली २॥-२॥ तोले लेकर प्रथम पारे गंधक की कज्जली कर उसमें शेष द्रव्यों का महीन चूर्ण मिला अच्छी तरह खरल कर लें। तथा जल के साथ घोटकर २ से ५ रत्ती तक की गोलियां बना लें। उष्ण जल या कटेरी के क्वाथ के साथ लेने से कफज श्वास, पांच प्रकार की कास, शिरोरोग शीघ्र नष्ट होते हैं। भै. र।

(६) प्लीहा तथा कण्ठशालूक (टांसिलस) पर—(प्लीहार्णवो रस)—शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध हिंगुल, शुद्धगन्धक, सुहागा खील, अभ्रक भस्म ४-४ तो० का महीन चूर्ण तथा पिप्पली व कालीमिर्च चूर्ण २-२ तो० सबको एकत्र थोड़े जल के साथ खूब खरल कर १ से २ रत्ती तक की गोलियां बना लेवें। १-१ गोली को हारसिंगार के पत्तों का रस औरशहद के साथ सेवन से ६ प्रकार के प्लीहा के विकार शीघ्र ही नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त यह प्रयोग ज्वर मन्दाग्नि, कास, श्वास, वमन, भ्रम (चक्कर आना) को भी दूर करता है। इससे विषम ज्वर के मौलिक कारण नष्ट होकर प्लीहा के विकार दूर होजाते हैं। यह योग छोटे बालकों नहीं देना चाहिये। —भै० र०।

कण्ठशालूक पर एलोपैथिक प्रयोग—टिंक्चर एकोनाईट १ बूंद, लाइकर अमोनिया साइट्रेटिस २ ड्राम, सोडियाइ साइट्रेटिस २ ग्रेन, स्प्रिटस् अमोनिया एरोमेटिक्स् १० बूंद, एक्वाआरेन्शाइ क्लोरिस १ औंस तक ऐसी १-१ मात्रा औषधि प्रत्येक तीसरे घंटे पर प्रयुक्त करें। तीव्र-कण्ठशालूक (Acute tonsIllitis) में उपयोगी है।

—म• मेड़िका।

(७) वात व्याधियों पर—(समीरपन्नग रस)-शु० ब०, अभ्रक-भस्म, शुद्ध गन्धक, त्रिकटु, शु. पारदऔर सुहागे की खील समभाग लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली कर उसमें अन्य द्रव्यों का महीन चूर्ण मिला, भांगरे रस की ७ भावनायें देकर शुष्क कर सुरक्षित रखें। मात्रा एक रत्ती अदरक के रस के साथ अथवा सोंठ, मिर्च पिप्पली व मिश्री के चूर्ण के साथ सेवन से कष्टसाध्य वातव्याधियां नष्ट हो जाती हैं। इसकी नस्य से मूर्छा दूर होती है।

—यो० र०।

वातजशूल पर—(समीरशूलेभहरिः) शुद्ध बच्छनाग कौड़ी भस्म, जवाखार, सेंधानमक, और त्रिकटु सबके सम-भाग चूर्ण को पान के रस में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें। सेवन से वातज शूल नष्ट होता है।

—यो० र०।

वातज पीड़ा के निवारणार्थ—बछनाग के २॥ तोले चूर्ण को आधा सेर अलसी के तेल में मिलाकर पकाकर मालिश करें।

अथवा—एलोपैथिक योग मर्दनार्थ—क्लोरोफार्माइ एकोनाइटाइ १औंस, क्लोरो फार्मम बेलाड़ोना १ औंस और लिनिमेंटम् कॅफोरी १ औंस का एकत्र मिश्रण मर्दन के लिए एक उत्तम योग है। वातजशूल, तथा संधिशूल में यह बहुत लाभ करता है।

(८) त्वचा के विकारों पर—बछनाग और श्वेत कनेर की जड़ १६-१६ तो० दोनों का चूर्ण गोमूत्र में पीस कर कल्क करें। फिर १२८ तो० सरसों तैल और ५१२ तो. गोमूत्र तथा उक्त कल्क एकत्र मिला मंद आंच पर पकावें। पाक होने पर नीचे उतारकर तुरन्त तैल निकाल

Scanned with CamScanner

लेवें।

इस तैल के मर्दन से चर्मदल, सिध्म, पामा विस्फोट (Pemphigus) कृमि और किट्टिभकुष्ठ (Dry eczema) का नाश होता है।

—रसतंत्रसार से।

विसर्प तथा उकौत पर—बच्छनाग, कुचला, और नीलाथोथा दही में घिसकर १४ दिन लगावें। —ब. गु.।

दाद पर—बच्छनाग का महीन चूर्ण तथा अफीम समभाग, एकत्र ब्रांडी [शराब] में गाढ़ा पीसकर रख लें। यह दाद पर लगाया जाता है।

—नाडकर्णी।

सर्व प्रकार के कुष्ठ पर—बच्छनाग, बरनेकी छाल, हल्दी, चित्रक, गृहधूम, कालीमिर्च और दूर्वा इनका चूर्ण तथा आक और सेंहुंड [डंडा थूहर] का दूध समभाग एकत्र पीस लें। इसके लेप से समस्त प्रकार के कुष्ठ दूर होते हैं।

—ग. नि.।

(९) राजयक्ष्मा तथा नपुंसकता पर सर्वसुन्दर रस—शुद्ध बच्छनाग ३ माशा का चूर्ण कर शुद्ध पारद १ भाग व शुद्ध गन्धक दो भाग की कज्जली कर सबको एकत्र खरल करें। फिर अदरख व चित्रक के रस की १-१ भावना देकर शराब सम्पुट में बन्द कर वालुका यंत्र में पकावें। स्वांग शीतल हो जाने पर औषधि को निकाल पीसकर रख लें। मात्रा १ रत्ती पिप्पली चूर्ण और शहद के साथ सेवन से राजयक्ष्मा और वातज रोगों का नाश होता है। पथ्य में मधुर पदार्थ, शालीचावल, मूंग, घृत, दूध, मस्तु, घृत-पक्व पदार्थ जिसमें अधिक क्षार या हींग न हो तथा शीतल पदार्थ हितकारी हैं। भोजन थोड़ा-थोड़ा २-३ बार करें। तेल, बेलफल, करेला, राई, सत्तू और काम क्रोधादि से बचना चाहिये।

—भा. भै. र.।

हब्बमुफीद—शुद्ध बच्छनाग ६ मा० और श्वेत मिर्च ६ मा. दोनों के चूर्ण को एक बारीक कपड़े में पोटली बनाकर बकरी के १। सेर दूध में लटका कर पकावें। दूध का खोया हो जाने पर ज्वार के समान गोलियां बना लेवें। प्रातः सायं ४-४ गोली बकरी या गधी के दूध से प्रयोग करें। यक्ष्मा में अत्यन्त उत्तम है। कास तथा ज्वरनाशक है।

—यू. चि. सा.।

नपुंसकता और ध्वजभंग पर—भैंस के गोबर में तथा गोदुग्ध में पकाकर शुद्ध किया हुआ बच्छनाग का टुकड़ा १ तोला को पोटली में बांधकर १०० तोला गोमूत्र में डोला यंत्र विधि से पकावें। चौथाई रह जाने पर विष को पोटली से निकाल गाय दूध से धोकर छाया शुष्ककर पुनः उसे ठीक तौल कर उसके बराबर शुद्ध पारा व शुद्ध गंधक भी तौल लेवें। पारा गन्धक की कज्जली में विष का चूर्ण और तीनों से आधा वजन कालीमिर्च चूर्ण मिला खूब खरलकर शीशी में रखें। मात्रा १ रत्ती तक मक्खन के साथ मिला देवें। शीघ्र ही नपुंसकता दूर होगी।

—गुप्तयोग रत्नावली से।

ध्वजभंगहर लेप—बच्छनाग, हड़ताल तबकी, सुहागा प्रत्येक ३॥ मा., कूठ कड़वी १ तोला, तिल तैल २ तो० चूर्ण योग्य द्रव्यों का महीन चूर्ण कर एकत्र मिला चमेली के ताजे पत्र स्वरस २० तो० में इतना खरल करें कि स्वरस शुष्क हो जावें।

इसे शिश्न पर (मुण्ड तथा नीचे सीवन का भाग छोड़कर) रात्रि के समय लेप कर ऊपर से बंगला पान या एरण्ड पत्र बांध दिया करें। शिश्न में दृढ़ता पैदा होती है।

—यू. चि. सा.।

आगे विशिष्ट योगों में तिला बच्छनाग देखिये।

(१०) कर्ण विकार—शुद्ध बच्छनाग को गोमूत्र में घिसकर कान में डालने से कर्णशूल, कर्णस्राव तथा कान की खाज का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

—भा० भै० र०।

अथवा बच्छनाग के समभाग बच को लेकर दोनों को तिल तैल में पकाकर तैल कान में डालते रहने से कानों की शुद्धि हो जाती है।

कर्णमूल शोथ पर—इसे नीबू के रस में घिसकर लेप करते हैं।

बधिरता पर—इसके एक छोटे से टुकड़े को कान में रखते रहने से कर्णान्तर्गत् वात का शोषण होकर तथा कानों में मर्यादित उष्णता की वृद्धि होकर थोड़ी देर के लिये बहिरापन दूर हो जाता है। जब चाहे तब टुकड़े को निकालकर पुनः आवश्यकतानुसार उसे कान में रख

Scanned with CamScanner
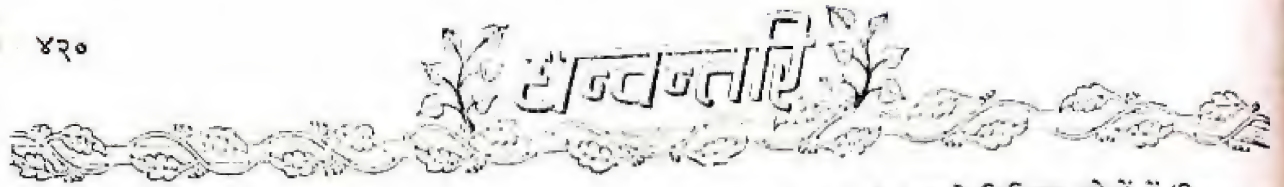
सकते हैं। इससे कर्ण वेदना भी दूर होती है।

अथवा—बछनागयुक्त त्रिभुवनकीर्ति या मृत्युञ्जय रस की ४-६ गोलियों को दो चम्मच भर तैल में गरम कर सुखोष्ण तैल मात्र को कान में डालते रहने से भी उत्तम लाभ होता है। —संकलित।

नोट—मात्रा चूर्ण $\frac{1}{5}$ रत्ती से १ रत्ती तक कम से कम मात्रा १ से २ चावलभर। टिंचर (१ भाग में ८ भाग मद्यसार मिलाकर बनाया हुआ) की मात्रा २ से ५ बून्द तक।

रसायन रूप सेवन विधि का विशेष विचार आगे विशिष्ट योगों में विष कल्प देखिये।

शारीरिक निर्बलता अत्यन्त हो, रक्त दबाव की अतिन्यूनता हो तथा शिरदर्द, मांसपेशियों की शिथिलता एवं दुर्बलता, हृदय एवं फुफ्फुस के रक्त संचालन में व्याघात आदि लक्षण हों तथा क्रोधित, पित्तप्रकृति, जन्मतः नपुंसक, राजयक्ष्मा पीड़ित, क्षुधातुर, तृषातुर, श्रम से पीड़ित, मार्ग चलने से थका हुआ और सगर्भा स्त्री इनमें से किसी को भी बछनाग या बछनाग मिश्रित औषधि नहीं लेनी चाहिए।

८० वर्ष से अधिक आयुवाले वृद्ध को तथा ४ वर्ष से कम आयु वाले बालक को इसका सेवन नहीं कराना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो बहुत सावधानी पूर्वक करावें।

मर्मस्थान के रोगी को भी यह नहीं देना चाहिए तथा मर्मस्थानों पर इसका लेप आदि भी बहुत विचारपूर्वक करना चाहिए।

पथ्यापथ्य—विष सेवन करने वाले व्यक्ति को लाल-मिर्चादि चरपरे पदार्थ, खट्टे पदार्थ, तैल, नमक, दिन में सोना, धूप में फिरना, आग तापना या आग के सामने बैठना आदि का त्याग करना चाहिए। इनके अतिरिक्त रूखा भोजन और अजीर्ण भी हानिकारक है। विष रोगी व्यक्ति यदि रूखा भोजन करता है तो उसकी दृष्टि में भ्रम, कान में पीड़ा तथा वातजन्य आक्षेपक आदि विकार हो जाते हैं। विष सेवन पर अजीर्ण होने पर मृत्यु की सम्भावना है। अतः भोजन अत्यल्प प्रमाण में करना उचित है। आगे विशिष्ट योगों में 'विष कल्प' योग देखिये।

विष प्रकोप (लक्षण तथा उपाय)—

प्रमादवश मात्रा से अधिक इसके सेवन से निम्नानुसार ८ वेगों की प्राप्ति होकर मृत्यु हो जाती है-(१) कम्प। (२) आक्षेप या कम्प की अधिकता। (३) दाह। (४) पतन। (५) मुंह में झाग आना। (६) विकलता। (७) मूर्च्छा और (८) मृत्यु अथवा अधिक मात्रा में सेवन से कुछ मिनटों के बाद ही मुख एवं अन्न मार्ग में तीव्र झुनझुनी एवं दाह, आमाशय में भी तीव्र दाह पैदा होती है, वमन आता है। अत्यधिक स्वेद आने से त्वचा आर्द्र शीतल झुनझुनी युक्त एवं शून्य हो जाती है। नाड़ी मन्द और अनियमित होती है। नेत्र की तारकायें विस्फारित, नेत्र स्तब्ध होते हैं। श्वास कष्ट होने लगता है। अवसाद और मूर्च्छा होने लगती है। कभी कभी आक्षेप भी आते हैं। अन्त में श्वास या हृदय की गति रुकने से मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा—चूर्ण ४ मा.। टिंचर एकोनाइट ६० बूंद। घातक काल $\frac{1}{2}$ से ४ घंटे तक।

उपचार—आधुनिक प्रणाली के अनुसार स्टमक पम्प द्वारा आमाशय का प्रक्षालन करावें। एतदर्थ टैनिकाम्ल के १ प्रतिशत का घोल अथवा पाशविक चारकोल (Animal charcoal) का जलीय विलयन काम में लाया जाता है। पोटाशियम आयोडाइड के साथ आयोडीन का पानी में घोल बनाकर उससे भी आमाशय प्रक्षालन कर सकते हैं।

अथवा बकरी का दूध उतना पिलावें कि वमन हो जाय। फिर बकरी का दूध जब उदर में स्थिर रहे तब समझलें कि विष उतर गया। (२) हल्दी खिलाकर चौलाई का रस पिलावें। अथवा जदवार (निर्विषी) को दूध के साथ देवें अथवा आमाशय प्रक्षालन और वमन कराने के बाद गोघृत में १-१ मा. सुहागा की खील मिलाकर २-२ घंटे से पिलावें या अर्जुन की छाल का चूर्ण गोघृत और मधु से देवें। इसके अतिरिक्त कस्तूरी या जद्वार दूध में घिसकर चटावें।

Scanned with CamScanner

नव्य मतानुसार विष यदि आमाशय में हो तो उक्त प्रकार से आमाशय प्रक्षालन के बाद हृदय के लिये पौष्टिक और उत्तेजक औषधि दी जाती है। शराब डिजिटेलिस, स्ट्रिकनीन आदि काफी आदि पिलाते हैं। शारीरिक ऊष्मा के रक्षार्थ अभ्यंग, बफारा या सेंक करावें। आवश्यकतानुसार कृत्रिम श्वासक्रिया अथवा ओषजन (Oxygen) की व्यवस्था करें। एट्रोपीन का इंजेक्शन $\frac{1}{120}$ रत्ती की मात्रा में देवें इत्यादि।

अथवा रससिंदूर, चन्द्रोदय आदि से जीवनीय शक्ति की रक्षा करें।

विष आंत्र में चला गया हो तो एरण्ड तेल पिलावें। अफीम की वस्ति भी दी जाती है। प्रथम वस्ति द्वारा आंत्र को साफ कर फिर अफीम पिचकारी द्वारा गुदा से चढ़ाया जाता है। हाथ पैर शीतल हों तो हाथ, पैर और उदर पर राई की पट्टी लगावें। या विद्युत चिकित्सा से भी हृदय को शीघ्र लाभ पहुंचता है।

विशिष्ट योग–

(१) विषकल्प—रसायन रूप से इसका सेवन करना हो तो प्रथम ७ दिन तक एक तिल जितना सेवन करें (विशेषत घृत या दूध से)। फिर प्रति सप्ताह १ तिल जितना बढ़ाते रहें। इस प्रकार ३ सप्ताह तक बढ़ावें। फिर ३ तिल परिणाम में लेते रहें। आगे मात्रा न बढ़ावें। इस प्रकार ७ सप्ताह तक सेवन करने पर छोड़ने के समय विपरीत क्रम से १-१ तिल घटाते हुए त्याग करें। इस कल्प के सेवन से सर्व प्रकार के रोगों का नाश होकर देह दृढ़ बन जाती है।

इस कल्प का सेवन विशेषत: शीत और वसन्त ऋतुओं में करना चाहिए। ग्रीष्म, वर्षा एवं दुर्दिन में नहीं करें। गम्भीर व्याधि में, पैत्तिक प्रकृति में नहीं करें।

विष सेवन काल में—दूध, घृत, मिश्री, शहद, गेंहू, चावल, काली मिर्च, सेंधा नमक, द्राक्षा, मधुर शीतल पानक, ब्रह्मचर्य, शीत देश, शीत काल, शीतल जल आदि पथ्य हैं। इनमें से कोई वस्तु रोग के हेतु से अपथ्य हो, या स्वभाव विरुद्ध हो, तो उसका त्याग करें।

विष-सेवन का पूर्ण कल्प हो जाने पर भी सर्वदा पथ्य पदार्थों का ही सेवन करना हितकारी है। अति चरपरे अति नमकीन तथा तैल आदि सेवन, इन सबका आग्रह पूर्वक परित्याग करना चाहिये।

ध्यान रहे अजीर्ण से पीड़ित व्यक्ति को इस कल्प का सेवन कदापि नहीं करना चाहिये मृत्यु की संभावना है।

—गां. औ. र.

नोट—इस कल्प का विस्तृत वर्णन रसरत्न समुच्चय ग्रन्थ में अ. २९ में देखिये।

(२) वत्सनाभासव-(टिंचर) ज्वर, शोथादि पर—शुद्ध बछनाग चूर्ण १ भाग में मद्य (७० से ९०% वाली) १० भाग मिला, बोतल में भर, दृढ़ काग लगा कर ३ या ७ दिन रक्खा रहने देवें। बीच बीच में हिलाते रहें पश्चात् फलालैन से छान कर सुरक्षित रखें। मात्रा ३ बूंद से ८ बूंद तक।

ज्वर नष्ट करने में श्रेष्ठ है। तीव्र ज्वर में सेवन से स्वेद आकर तत्काल कम हो जाता है। शोथ रोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह, स्त्रियों के रजोरोध, तथा कुक्षिशूल आदि रोगों में भी लाभप्रद है। किंतु हृदय के रोगों में इसका व्यवहार कदापि न करें।

—बृहदासवारिष्ट संग्रह

(३) तिला बछनाग—बछनाग अकरकरा और सिन्दूर १-१ तो., आक का दूध ४ तो, गाय का मक्खन १० तोला लेकर चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का चूर्ण कर आक के दूध और मक्खन के साथ एकत्र कढ़ाई में डाल कर नीम की लकड़ी में तांबे का पैसा लगाकर उससे ४ दिन तक खूब घोटकर फिर कुछ दिनों तक पड़ा रखें जिससे कि उसकी तेजी कम हो जाय।

इस तिला में से २ मासा तक लेकर रात के समय शिश्न पर सावन और सुपाड़ी छोड़ कर मालिश करें; और ऊपर से पान बांध देवें। प्रातः गरम पानी से धो डालें। यदि शीत काल हो तो मालिश के पूर्व तिला को कुछ गरम कर लिया करें। इसके प्रयोग से कुछ ही दिनों में शिश्न के नसों की कमजोरी, बांका टेढ़ापन, हस्तमैथुन एवं अन्य कुटेवों से पैदा हुई नपुंसकता मिट जाती है,

Scanned with CamScanner

तथा काम शक्ति जागृत होती है। —ब. चं.

नोट–बछनागप्रधान-मृत्युंजय रस,दुग्धवटी, अग्निकुमार रस, अमृत वटी, आनन्द भैरव, कल्पलता वटी, ज्वर मुरारी, पंचवक्त्र, रामबाण, सौभाग्यवटी, त्रिभुवन कीर्ति, कफकेतु, शीत भंजी, विष गुटिका, अमृतमंजरी, प्रतापलंकेश्वर, सूचिकाभरण रस, हुताशन रस, विष तैल, विषगर्भ तैल आदि आदि के प्रयोग शास्त्रों में देखिये। विस्तार भय से यहां नहीं दिये जा सकते।

बछनाग [श्वेत या दूधिया] (Aconitum Napellus)

इसके बहुवर्षायु छोटे छोटे पौधे होते हैं, जिनमें कन्दाकार जड़ें लगती हैं। हर अगले वर्ष में पूर्ववर्ती जड़ का खाद्य पदार्थ पौधे की वृद्धि में व्यय हो जाता है, तथा उसके मूलस्तंभ (Root Stock) की पार्श्ववर्त्ती कलिका (Lateralbud) से नया पौधा तैयार होकर उसमें नई जड़ पैदा होती है। जंगली पौधों में इस प्रकार की प्रायः एक, किंतु लगाये हुये पौधों में कई जड़ें पाई जाती हैं। इसके जंगली पौधे प्रायः १॥ से २ फुट तक ऊंचे होते हैं, किन्तु लगाये हुए पौधे अपेक्षाकृत अधिक (३-४॥ फुट तक) ऊंचे होते हैं। काण्ड के अधः भाग के पत्र प्रायः सवृन्त तथा ऊपरी भाग के अवृन्त होते हैं। पुष्पागम के पूर्व पौधे के सिरे पर छत्रक सा (Tuft) बनता है। जिस पर गाढ़े बैंगनी रंग के पुष्प आते हैं।

मूल—इसकी जड़ें आकार में प्रायः अभिशंक्वाकार (Obconical) होती हैं। ऊपरी भाग अधिक चौड़ा, नीचे की ओर उत्तरोत्तर कम चौड़ी होती हैं। ये जड़ें प्रायः ४-१० सेंटीमीटर तक लम्बी, तथा ऊपरी सिरे पर व्यास में १–३ सें० मी० बाहर से ये गाढ़े भूरे रंग की होती हैं। इनमें एक विशिष्ट हल्की गन्ध, तथा स्वाद में प्रथम मधुर किंतु बाद में चुनचुनाहट एवं शून्यता की प्रतीति होती है।

नोट—इस बछनाग के स्वयंजात पौधे यूरोप, उत्तरी अमरीका तथा एशिया के पहाड़ी प्रान्तों में पाये जाते हैं। इंग्लेंड में इसकी खेती होती है अतः व्यावसायिक प्रयोजनार्थ इसकी जड़ों का संग्रह यूरोप व अमेरिका में जंगली पौधों से तथा इंग्लेंड में लगाए हुए पौधों से किया जाता है। इन जड़ों को साफ कर सुखा लिया जाता है जो औषध्यर्थ प्रयुक्त होती हैं।

इसके विशिष्ट लेटिन नाम (Napellus) का अर्थ है छोटा शलगम। इसके कन्द का आकार छोटे शलगम की तरह होता है। इसके पुष्प का आकार पुराने जमाने के इसाई–पादरी (Monk) की टोपी के आकार के जैसे होने से अंग्रेजी में इसे मान्क्सहुड (Mouk's hood) कहते हैं। पहले इसके जहरीले प्रभाव का उपयोग 'भेड़िया' चीता आदि जंगली जानवरों को मारने के लिये किया जाता था, अतः इसे अरबी में 'खानिकुज्जीब' तथा 'खानिकुन्नमिर' और अंग्रेजी में 'Woolf's bane' कहते

बच्छनाग

Aconitum Napellus Linn.
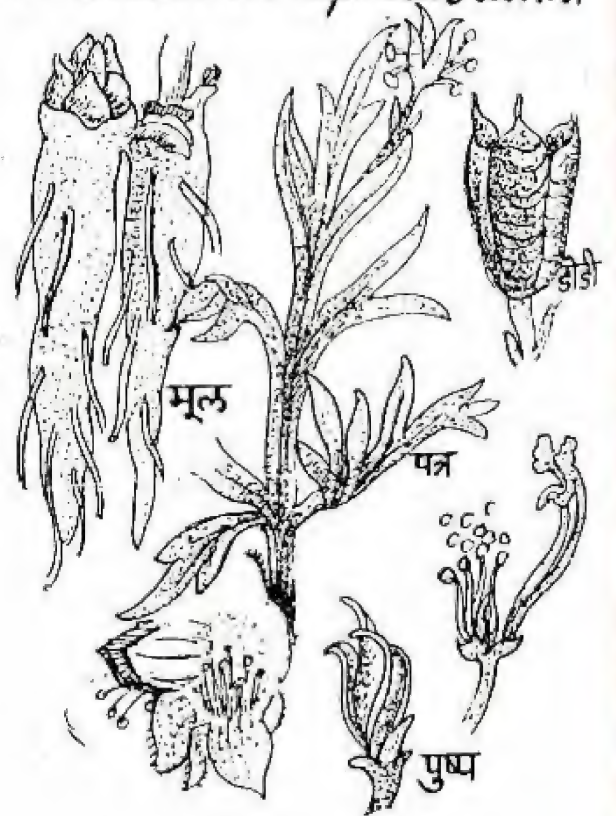
—ग० गेडिका से है।

इसकी जड़ों का आयात भारतवर्ष में यूरोप तथा अमेरिका से होता है।

नोट नं० २—उक्त विदेशी श्वेत बछनाग का एक भारतीय उपभेद श्रृङ्गीविष (Aconitum Chasmanthum) है। पश्चिमी हिमालय प्रदेश में चित्राल एवं हजारा से लेकर काश्मीर तक ७ से १२ हजार फुट की ऊंचाई पर इसके स्वयंजात (जंगली) पौधे पाये जाते हैं।

इस द्विवर्षायु छोटे-छोटे पौधों की जड़ें भी कन्दाकार किन्तु युग्म (एक साथ दो-दो) रूप में सींग जैसी होती हैं। इसलिए शायद इसे श्रृङ्गी विष कहा गया है। ये जड़ें उक्त विदेशी जड़ों की अपेक्षा छोटी, तोड़ने पर शीघ्र टूटने वाली, २.५ से ४.५ सें० मी० लम्बी तथा १.२ से १.८ सें० मी० चौड़ी, बाहर से भूरी या काली तथा झुर्रीदार स्वाद एवं गंध में विदेशी जैसी ही होती हैं। गुणधर्म में ये दोनों एक समान होने से परस्पर में प्रतिनिधि हैं। काले बछनाग के विष की अपेक्षा इन दोनों का विष कम प्रभाव वाला होता है।

नोट नं० ३—कहीं २ कुछ लोग भ्रमवश या जानबूझ कर भी इस दूधिया बछनाग को ही कलिहारी [Gloriosa superba] मानते हैं। तथा कलिहारी के स्थान में इसका उपयोग करते हैं। किन्तु ऐसा करना भयंकर भूल है। इस ग्रंन्थ के भाग ३ में कलिहारी का प्रकरण देखिये।

नाम–

सं०—श्रृङ्गी विष। हि०—श्वेत बछनाग, दूधिया बछनाग, सींगिया, मीठा जहर, मोहरी, लाहोरी बछनाग, बनवलनाग, इ०। म०—पांढ़रा बछनाग। गु०—नागपुरी बछनाग। बं—कटविष। अं०—मांक्सहुड़ [Monk's hood], वुल्फबेन [Wolf bane]। ले०—एकोनाइटम नेपेलस; एको चेसमेंथम [Aconitum Chasmanthum]।

रासायनिक संगठन—

इसमें औसत रूप से ०.५% इसके क्षाराभ (अल्कलायड्स) पाये जाते हैं। किन्तु यह प्रतिशत मात्रा उत्पत्ति स्थान तथा संग्रहकाल के भेद से बदलती रहती है। इस प्रकार इसके भिन्न-भिन्न नमूनों में यह मात्रा ०.२ से १.५% हो सकती है। इसमें एकोनाइटीन (Aconitine) यह प्रधान सक्रिय क्षारोद है। इसके अतिरिक्त स्टार्च तथा एकोनाइटिक एसिड भी होता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

इसके गुणधर्म प्रायः अत्यधिक प्रमाण में काले बछनाग के जैसे ही किन्तु विशेष सौम्य हैं। आभ्यन्तरिक उपचारार्थ यह काले बछनाग की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है। अल्प मात्रा में बार-बार देने से यह उत्तम वेदना शामक एवं शोधन कार्य करता है। मधुमेह, बहुमूत्र, तंतुमेह, स्वप्नदोष आदि विकारों में यह बहुत गुणकारी है। इसके सेवन से मूत्र और मूत्र में शक्कर की मात्रा दिन प्रतिदिन कम होती है। यह आमवात, संधिवात, वातरक्तादि रोगों में भी उत्तम लाभप्रद है। यह उत्तम शोथघ्न है। टॉसिलस [कण्ठशालूक, कंठस्थ ग्रन्थियों का आशुकारी प्रदाहयुक्त शोथ] आदि विकारों को यह शीघ्र दूर करता है। ऐलोपैथिक टिंचर एकोनाईट आदि के योग इसी बछनाग के द्वारा बनाये जाते हैं। डा.मुइद्दीन शरीफ का कथन है कि कुछ वर्ष पहले मैंने स्वयं इस दूधिया बछनाग को थोड़ी मात्रा में सेवन किया है। मैं यह निश्चित कह सकता हूं कि इस [भारतीय श्वेत] बछनाग का प्रयोग इतना हानिकर नहीं हैं जितना यूरोपीय बछनाग का। यह भारत की अत्यन्त उपयोगी औषधियों में से एक है। मधुमेह या डायबिटीज रोग में इससे बहुत लाभ होता है। जिस दिन से इसका प्रयोग आरम्भ किया जाता है उसी दिन से अधिक मूत्र का जाना बन्द हो जाता है तथा शक्कर भी कम हो जाती है। अनैच्छिक वीर्यस्राव तथा मूत्रस्राव पर भी इसका बहुत ही अच्छा प्रभाव होता है।

औषधि गुणधर्म शास्त्रकार स्व० पं० गुणे शास्त्री जी का कथन है कि आनन्दभैरव रस में काले बछनाग के स्थान पर श्वेत बछनाग लिया जावे तो उदकमेह, पिष्टमेह शनैर्मेह आदि कफज प्रमेहों पर अच्छा लाभ पहुंचता है।

Scanned with CamScanner

विशिष्ट प्रयोग

माजून बछनाग—बछनाग दूधिया ६ मा०, हरड़ काली व चित्रक ३-३ तो. तथा पिप्पली १।। तो. इन सब को कूट छान कर गोघृत में चिकनाकर १६।। तो. शहद मिला लेवें। इस माजून को १।। से ३ मा. तक की मात्रा में सेवन करने से श्वेत कुष्ठ, नील कुष्ठ, श्वास आदि रोगों में लाभ होता है। मनुष्य की सर्वाङ्गीण शक्तियां बढ़ती हैं। इसके सेवन से पूर्व विरेचन द्वारा उदर शुद्धि की आवश्यकता है। —व. चं.

बजगुरिया—देखो शिवलिंगी। बजरबट्टू—देखो मदनमस्त जंगली। बज्रदन्ती—देखो रतनजोत।

बजरठ (Quercus Lamellosa)

मायाफल कुल (Cupulifrae) के सदैव हरे भरे रहने वाले इसके बड़े-बड़े वृक्ष आकार प्रकार में जैतून के वृक्ष जैसे नेपाल, सिक्किम, भूटान और मनीपुर में पाये जाते हैं।

इसे नेपाल की ओर बजरठ, शालशी, बदग्रट इत्यादि तथा लेटिन में क्युरकस लेमेलोसा कहते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसकी छाल और फल संकोचक, संग्राही हैं। अतिसार, रक्तश्राव आदि में उपयोगी हैं।

बट—देखो बरगद।

बट्टल (Launaea Nudicaulis)

भृङ्गराज कुल [Compositcae] की इस छोटी जाति की वनस्पति के पत्र ५-२५ सें. मी. तक लम्बे तथा २.५-७.५ सें. मी. तक चौड़े, भांगरा के पत्र जैसे होते हैं।

इसे पंजाब की ओर बट्टल, दुधलक, तारीभा तथा लेटिन में-लानिया न्युडिकालिस कहते हैं।

गुण धर्म प्रयोग—

यह शांतिदायक है इसके पत्तों को ठंडाई की तरह पीसछानकर या शर्बत बनाकर पीते हैं।

बच्चों के ज्वर पर—पत्तों को पीसकर सिर पर लेप करते हैं।

बटपत्री—देखो पखानभेद नं० २। बटदला—देखो बटदला।

बटवासी (Gouania Leptostachy)

बदरकुल [Rhamneae] के इस झाड़ीदार बेर जैसे छोटे-छोटे वृक्ष की शाखायें मुलायम, चमकीली तथा पास-पास लगी हुई।

पत्र—५-१० सें. मी. तक लम्बे तथा ३.८-६.३ सें. मी. तक चौड़े होते हैं।

पंजाब के कांगड़ा से कुमाऊंतक के प्रदेशों में और आसाम की पहाड़ियों पर ३ से ४ हजार फुट की ऊंचाई तक इसके क्षुप पाये जाते हैं।

इसे पहाड़ी भाषा में बटवासी। उड़िया में—खांटा तथा लेटिन में—गानिया लेप्टोस्टेचिया कहते हैं।

गुण धर्म प्रयोग—

यह व्रण नाशक है। व्रणों पर इसके पत्तों की पुल्टिस बनाकर बांधते हैं।

बटसिंजल (Rhamnus Purpureus)

बदर कुल (Rhamnaceae) के झाड़ीदार वृक्ष की छाल मुलायम, भूरे रंग की; पत्र-चमकीले; पुष्प-कुछ

Scanned with CamScanner

हरिताभ श्वेत वर्ण के होते हैं।

पश्चिम हिमालय के प्रदेशों में मुर्री से कुमाऊं तक, ६ हजार फुट की ऊंचाई पर इसके वृक्ष विशेष पैदा होते हैं। इसे पंजाब की ओर बटसिजल, कारु, मिमारिरा, किंजी, चेतरगी, ताम्द्रा, तुनानी आदि तथा लेटिन में-रेमनस परपुरीयस कहते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसका फल रेचक गुणविशिष्ट है। यह वरेचनार्थ किाम में लिया जाता है।

बड़—दे० बरगद।

बड़हर (Artocarpus Lakoocha)

फलादिवर्ग एवं वट कुल (Urticaceae) के इस २०-३० फुट ऊंचे वृक्ष की छाल खुरदरी, फटी हुई सी, काले या धूसर वर्ण की भीतरी काष्ठ भाग कड़ा, बाहर से श्वेत, भीतर से पीला; शाखाऐं छोटी बहुत कोमल, नाजुक, रोमश होती हैं। पत्र—वट या बादाम के पत्र जैसे अण्डाकृत, ५-१२ इंच लम्बे, २-६ इंच चौड़े, अग्रभाग में मोटे एवं क्रमशः नोकदार; पत्र में सिरायें ८-१० जोड़ी से; पत्रवृन्त-१॥ इंच लम्बा होता है। कोमलछाल तथा पत्रों को काटने से एक प्रकार का दूधिया रस निकलता है। पुष्प—वसन्त तथा वर्षा ऋतु में पीत वर्ण के गोलाकार, एक लिंगी; फूल—गोल, गांठदार, ऊपर से उभारदार, कच्चे में हरे पकने पर पीले, मखमली, भीतर से कटहल जैसे रेशाओं एवं बीजों से युक्त होते हैं। बीज—अनेक, लम्बे कटहल के बीज जैसे किन्तु छोटे श्वेतवर्ण के होते हैं। अतः इसे संस्कृत में क्षुद्र-पनस (फणस) कहते हैं। फल भी दो बार (वसन्त तथा वर्षा में) आते हैं। किंतु वसन्त में अधिक आते हैं तथा उत्तम होते हैं। फलों का परिपाक वर्षा में ही होता है।

इसके वृक्ष भारत के उष्ण प्रान्तों में विशेषतः संयुक्त प्रदेश, समग्र बंगाल तथा कुमाऊं की तराई में, ब्रह्मदेश, एवं दक्षिण में पश्चिमीघाट, कर्नाटक, गोवा आदि में अधिक पैदा होते हैं तथा लगाये जाते हैं।

नाम—

सं.—लकुच, लिकुच, ग्रन्थिफल, क्षुद्रपनस, डहु इ०। हि०—बड़हर, बड़हल, भद्रा, दहेओ, धावा। म०—क्षुद्र-फणस, वटारफल, ओटंबा, लाहू, लोवी। गु०—क्षुद्र फनस। बं०—डेलो, मादार, लकुच। अं०—मंकीफ्रुट [Monkey fruit] लै०—आर्टोकार्पस लकूचा।

प्रयोज्यांग—फल, छाल, बीज और दुग्ध।
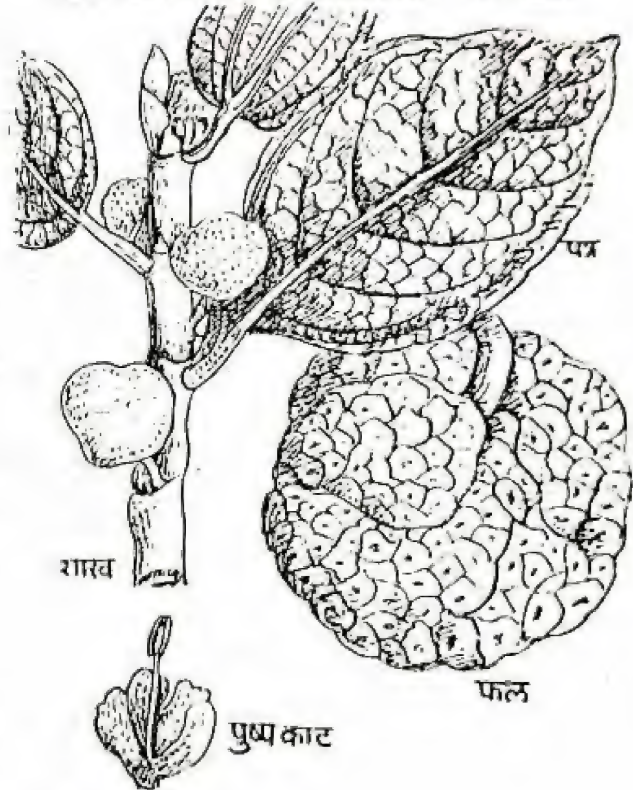
गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, रूक्ष, मधुर, अम्ल, कषाय, अम्लविपाक, उष्ण-वीर्य, आनाहकारक है।

कच्चाफल—उष्ण, गुरु, अम्ल, मधुर, विष्टंभी, त्रिदोष प्रकोपक, अग्निमांद्यकर, रक्तदूषक, नेत्रों को हानिकर, वीर्यनाशक, ज्वरकारक है।

पका फल—मधुर, अम्ल, वातपित्तशामक, कफवर्धक, रोचन, यकृत पुष्टिकर, रक्तदूषक, अवृष्य, कुछ अग्निवर्धक,

Scanned with CamScanner

रक्तपित्तकारी, नेत्रों को हानिकर है। वातपैत्तिक विकारों में, अरुचि, अग्निमांद्य आदि में प्रयुक्त होता है।

फलों की साग, तरकारी बनाई जाती है तथा खटाई के काम में आते हैं। पके फलों का रायता, अचार भी बनाते हैं जो खाने में स्वादिष्ट एवं लाभकारी है। किन्तु ध्यान रहे दूध के साथ इसका महान विरोध है। जब तक खाया हुआ बड़हर पच न जावे तब तक दूध या दूध की बनी हुई कोई चीज का सेवन नहीं करना चाहिए। इसके फूलों की भी कहीं कहीं साग बनाई जाती है।

इसके वृक्ष की छाल ज्वरघ्न है। छाल का क्वाथ दिया जाता है। बीज–रेचक है। इसका दूधिया रस भी रेचक है। बंगाल की ओर इसके १ या २ बीज अथवा इसका दूधिया रस विरेचनार्थ काम में लाते हैं। बच्चों को इस रस की १ या २ बूंद तथा बड़ों को ८-१० बूंद विरेचनार्थ देते हैं।

उरः क्षत, क्षय रोग में रक्तस्राव निवारणार्थ बीजों को सुखाकर तथा भाड़ में भुना कर, १-१ बीज प्रातः सायं ताजे जल के साथ खाने से,क्षय रोग में मुख से रक्त आना बन्द हो जाता है। —स्व. भगीरथ स्वामी।

व्रणों पर—लिकुचादि तैल बड़हर का तथा हल्दी का स्वरस ४०-४० तो. (स्वरस के अभाव में बड़हर और हल्दा २०-२० तो० लेकर दोनों को जौकुट कर ४ सेर पानी में पकावें। १ सेर पानी शेष रहने पर छान लें) २० तो० तिल तैल में १ सेर गो मूत्र तथा उक्त स्वरस अथवा क्वाथ और राल, गूगल, तथा सेंधानमक १-१ तो. मिला कर मन्द आग पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान लेवें।

यह तैल व्रणों को शुद्ध करता है और भरता है।
—भा. भै. र.

अथवा—इसके वृक्ष की छाल को पीस कर लगाते रहने से वृण की शुद्धि होती है, मवाद निकल जाता है फोड़े, फुंसी और पैर की पाददारी (बिवाई) पर छाल का महीन चूर्ण लगाते हैं।

नोट—मात्रा–क्वाथ-५-१०तो०। दूधिया रस १-३ मा०, बीज-१-४ मा०।

यह कफ प्रकृति तथा मैथुन शक्ति के लिये हानिकारक है। इसका हानि निवारक अदरख है।

इसका फल, फलों में निष्कृटतम माना गया है—
"लकुचं फलानाम् (अहिततमम्)" च. सू. अ.२७

बतीस—देखिये अतीस।

चिकित्सा-परामर्श

बवासीर, श्वास (दमा), लकवा-अधरंग, मृगी, सफेद दाग और पुरुषों के रोगों पर हमारे २५ वर्ष के अनुभवपूर्ण इलाज से अवश्य लाभ उठावें। जिस वैद्य के पास इनमें से किसी रोग के रोगी चिकित्साधीन हों वह वैद्य पत्र व्यवहार करें। उसके ही चिकित्सालय में उनके द्वारा ही हमारे इलाज की व्यवस्था कर दी जायेगी। रोगी अपने रोग का हाल लिखकर हमसे परामर्श या दवा मंगा सकते हैं। औषधि व्यवस्था नामक पुस्तक मुफ्त मंगायें। मेरे अनुभूत योग भी मंगा सकते हैं। उत्तर के लिए १५ पैसे के टिकिट भेजें विशेष पत्र द्वारा पूछें।

वैद्यराज-मोहरसिंह आर्य, स्थान मिसरी
डा० चरखदादरी जिला महेन्द्रगढ़ (हरियाणा प्रदेश)

Scanned with CamScanner

धन्वन्तरि

[वनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग]

वर्ष ४१ अङ्क ३
मार्च १९६७

Scanned with CamScanner
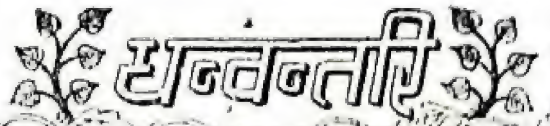
बथुआ (Chenopodium Album)

शाक वर्ग एवं अपने वास्तूक कुल[१] (Chenopodiaceae) का यह एक प्रधान पत्र शाक है। इसके १-३ फुट ऊंचे क्षुप के पत्र-आकार में छोटे बड़े, त्रिकोणाकार नुकीले कई प्रकार के कटे हुए स्थूल, स्निग्ध, हरित वर्ण के ४-६ इंच लम्बे होते हैं। इसकी डंडियों के अन्त में हरिताभ बारीक पुष्प तथा बीज कोषों के गुच्छे, गोलाकार लगते हैं। बीज-कुलफा के बीजों से, छोटे-छोटे कालेरंग के होते हैं। शीत काल में पुष्प और फल आते हैं। इसके पौधे कार्तिक मास के अन्त तक जौ, गेंहूं, चना, मटर के खेतों में स्वयंमेव पैदा हो जाते हैं।

यह प्रायः समस्त भारतवर्ष में तथा हिमालय प्रदेश में ४॥ फुट की ऊंचाई तक खेतों में बहुलता से बिना बोये पैदा होता है।

नोट—प्रस्तुत प्रसंग के इस हरे पत्तों वाले सर्वत्र पाये जाने वाले बथुवा के अतिरिक्त, इसकी एक बड़ी जाति के पत्र बड़े होते हैं जो कुछ पुष्ट होने पर लाल रङ्ग के हो जाते हैं। इसे निघण्टु में "गौड़वास्तुक" नाम दिया गया है। इस बड़े या लाल बथुये को अंग्रेजी में 'पर्पलगूजफूट (Purplegoose foot) तथा लेटिन में चेनोपोडियम पर्प्युरासेन्स (Chenopodium Purpurascens), चेनो विरडे (Ch. Viride) कहते हैं। यह लाल पत्र वाली बड़ी जाति शाक सब्जी के उद्यानों में; आलू के खेतों में कहीं-कहीं देखी जाती है। इसके पौधे बगीचों में ५-५ फुट तक ऊंचे होते हैं। यह बंगाल और बिहार के मध्य भाग में बहुत पैदा होता है। बथुआ के इन दोनों जातियों के गुणधर्म एक समान हैं किंतु इस बड़ी जाति में पारे की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। आगे विशिष्ट योग देखें।

पत्र शाकों में यह एक विशेष महत्वपूर्ण अतीव स्वास्थ्यप्रद शाक है। आयुर्वेदानुसार निम्न पांच शाकों को छोड़कर सभी शाक अन्य अनेक लाभ करते हुये भी प्रायः नेत्रों के लिये हानिकारक होते हैं—वास्तूक (बथुआ), जीवन्ती (डोडीशाक), मत्स्याक्षी (मछेछी, गुड़री साग-इसका संक्षिप्त वर्णन भाग तीन में जल जम्बुआ के प्रकरण में देखिये), मेघनाद (चौलाई) और पुनर्नवा ये पांच शाक अन्यान्य लाभों के साथ-साथ नेत्रों के लिये हितकर होते हैं।[२]

नोट नं० २—हरित पत्र वाली छोटी बथुआ की ही एक जाति विशेष पश्चिम उत्तर प्रदेश के खेतों में खरतुआ, खत्तुआ नाम की होती है। यह आकार-प्रकार में बथुआ जैसी ही गेहूं, जौ आदि के खेतों में स्वयंमेव पैदा होती है। यह बहुत ही उष्ण गुणविशिष्ट है।

नोट नं० ३—जिसमें 'चेनोपोडियम' नामक प्रभावशाली तैल की विशेषता होती है, ऐसा एक विदेशी बथुआ (C. Ambrosioides) और होता है। उसका वर्णन आगे के प्रकरण में देखिये।

नाम—

सं.—वास्तूक (वासयति लोकनेति, (जो लोगों में जीवन संचार करें), क्षारपत्र, शाकराट, यवशाक (जव, गेहूं आदि के खेतों में होने वाला) इ०।

हि०—बथुआ, बाथु, चिल्लीशाक।
म०—चाकवत, चिविल।
गु०—टांको, बथवो, चीला।
बं०—बेतोशाक, बाथुसाग।
अं०—व्हाईट गूज फूट (Whitegoose foot)।
ले०—चेनोपोडियम एल्बम; चेनोपोडियम ओलिडम

[१] इस कुल के क्षुप के पत्र एकान्तर, कभी-कभी अभिमुख, उप पत्ररहित, पुष्प छोटे, हरितवर्ण, पुंकेशर ५, बीज कोश-अण्डाकार या गोलाकार, एक कोष्ठीय होते हैं।
बथुया यह शब्द संस्कृत के वास्तूक शब्द का अपभ्रंश है।

[२] शाकं सर्वमचक्षुष्यं चक्षुष्यं शाक पंचकम्। जीवन्ती वास्तु मत्स्याक्षी मेघनाद पुनर्नवा।
—शा. नि. शाकवर्ग।

Scanned with CamScanner

बड़ा बथुआ
CHENOPODIUM ALBUM LINN.

(ChenoPodlum Olldum)।

नोट—हंस के पैर के जैसे जिसके पत्र हैं, ऐसी वनस्पति को 'चेनोपोडियम' कहते हैं।

रासायनिक संगठन–

इसमें एक प्रभावशाली तैल; ८०.६%जल; ३.३% खनिजद्रव्य विशेषतः पोटाश; ४.७%प्रोटीन; ०.४% वसा; ३.७%कार्बोहाइड्रेट; ०.१५%कैलशियम; ०.०८%फासफोरस; ४.२ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम लौह; तथा प्रचुर प्रमाण में क्षाराभ (अलब्युमिनायड) एवं अन्य नायट्रोजन का मिश्रण पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पंचांग तथा बीज।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, स्निग्ध, मधुर (किंचित् क्षारीय), कटु विपाक, शीतवीर्य, त्रिदोष (विशेषतः वातपित्त) नाशक, रोचन, तृष्णाशामक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, पित्त सारक, मलमूत्र शुद्धिकर, नेत्रहितकर, शोणितास्थापन, कफनिःसारक, मूत्रल, शुक्रल, बल्य, स्वर्य, तथा अरुचि, अग्निमांद्य, अजीर्ण, विबन्ध, कृमि, प्लीहाशोथ, उदररोग, कामला, यकृद्वृद्धि, अर्श, ज्वर, रक्तपित्त, उरःक्षत, जीर्णकास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, सामान्य दौर्बल्य आदि में प्रयुक्त होता है। प्रायः इन सब विकारों में इसका शाक पथ्यकर एवं हितकारी है। उष्ण प्रकृति वालों के लिये यह विशेष हितकर है। बड़ा या लाल बथुआ के भी गुण इसी प्रकार हैं, किंतु यह कुछ कब्ज करता है। दिल को ताकत देता, कफ पित्त व रक्त के उपद्रवों को दूर करता है।

पाठा आदि शाकों की तुलना करते हुए चरकाचार्य जी का कथन है कि पाठा (पाढ़), शुषा (कासमर्द, कसौंदी), शटी (कचूर), वथुआ व सुनिषण्णक (चौपतिया या मेथी) इनके पत्तों का शाक (बथुए को छोड़कर) ग्राही और त्रिदोषनाशक होता है। बथुए में विशेषता यह है कि यह मल को लाने वाला और त्रिदोषनाशक है।

—चरक सू० अ० २७।

बथुए में अनेक प्रकार के लवण एवं क्षार पाये जाते हैं। क्षार दाहक, लेखन तथा द्रावक होने से इसमें किसी भी प्रकार के रोगजन्तु जीवित नहीं रह सकते। यह पेट के कीड़ों को मारकर निकाल देता है और नये रक्तकणों का निर्माण करता है। कारण यह है कि इसमें लोहे के अंश भी वर्तमान हैं। यही कारण है कि उससे तिल्ली और जिगर भी ठीक हो जाते हैं। रक्तपित्त एवं कफदोषों का शामक होने से रक्त तथा कफगत कीटाणुओं का भी इससे नाश होता है। यक्ष्मा, मलेरिया, कालाजार, कुष्ठ, सुजाक आदि दुर्दान्त रोगों के कीटाणुओं पर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

यह जैसे भीतरी कीटाणुओं को नष्ट करता है वैसे ही बाहरी कीटाणुओंपर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इसे उबाल कर इसका रस ठंडा कर उससे बालों को धोने से जूंआं, लीख तथा अन्य संक्रामक रोगों के कीटाणु तत्काल मर जाते हैं। साथ ही बाल भी स्वच्छ हो जाते हैं।

सड़े, गले और फूले हुए व्रणों पर इसे उबाल कर

Scanned with CamScanner

सुहाता हुआ बांधने से व्रण कृमिरहित होकर शीघ्र सूख जाते हैं और सूजन पिचक जाती है।

दांतों में दर्द होने पर इसे उबाल कर उसके गर्म रस से कुल्ला करना चाहिए। दांत के कीड़े नष्ट होकर पीड़ा शांत हो जाती है।

भोजन में बथुआ का उपयोग—

इसका सर्व प्रसिद्ध उपयोग शाक, रायता आदि बनाना है। किंतु इसमें एक बात ध्यान देने की है कि बथुए का पानी फेंका न जावे, उसे शाक में ही सुखा लिया जाय तो सर्वोत्तम है। लोग प्रायः बथुआ उबालकर पानी फेंक देते हैं तथा उसे खूब दबा दबाकर जलशून्य कर डालते हैं फिर उसे कढ़ाही में डालकर चूल्हे पर खूब भुनते हैं। इस प्रक्रिया से वे इसके लाभ से सर्वथा वंचित रह जाते हैं। उत्तम तरीका यह है कि इसे उबालते समय पानी उसी में जला देना चाहिए उसे फेंका न जावे। इसके पानी ही में तो गुण हैं। अनेक प्रकार के आवश्यक लवण एवं क्षार तो उसी में रहते हैं जो कि स्वास्थ्य के लिये बहुत ही आवश्यक हैं। इसे फेंक देने से तो केवल फोक ही हाथ लगता है। जिसमें गुण अत्यन्त स्वल्प मात्रा में शेष रहता है।

जब बथुआ उबलते-उबलते सूख जाय तब उसे नीचे उतार कर उसमें नमक, हरे मिर्च, लहसुन तथा कड़ुवा तेल मिलाकर स्वस्थ व्यक्ति को खाना चाहिए।

अस्वस्थ व्यक्तियों, विशेषकर रोगियों तथा बच्चों के लिए कालीमिर्च, सौंठ, पिप्पली समभाग पीसकर मात्रानुसार मिलाना चाहिए। इसके पश्चात् सेंधा या सादा नमक पीसकर उसमें डाल देवें। लहसुन भी डाला जासकता है। तेल नहीं डालना चाहिए।

उदर कृमि रोग वाले व्यक्ति, अर्श रोगी, प्रमेह रोग वाले, बरवट, तिल्ली तथा जिगर रोग वालों को दोनों समय उक्त प्रकार से बथुए का भरता बनाकर सेवन कराना चाहिए। कार्तिक से लेकर चैत्र तक निरन्तर सेवन करने से अवश्य स्वस्थ हो जावेंगे। हां इसके साथ अन्य पथ्याचारों का पालन आवश्यक है। बथुआ केवल औषधि का काम देगा।

सर्वोत्तम उपयोग तो दाल में डालकर पकाना है। ऐसा करने से बथुए का पूरा स्वरस काम में आ जाता है। लोग अपनी बिगड़ी हुई जिह्वा के स्वाद के लिये इसके पानी को फेंक कर शाक बनाते हैं। रायता में भी इसका उत्तम प्रयोग होता है। किन्तु रायता के लिये भी उबालते समय उसके स्वरस को उसी में सुखा लेना चाहिए। भोजन में बथुआ के अन्य उपयोग विशेष लाभ-दायक नहीं है।

—आचार्य श्री विजयमित्र शास्त्री
(सचित्रआयुर्वेद से साभार)

पैत्तिक कास तथा क्षय में—इसे बादाम तेल में पकाकर खाना लाभप्रद है।

गरमी की सूजन पर—इसके उबाले हुए पत्तों का लेप करते है।

अग्निदग्ध के दाह शमनार्थ—इसके स्वरस का लेप करते हैं।

मूत्रकृच्छ्र में–इसके स्वरस में मिश्री मिलाकर पिलाते हैं या पत्तों के उबाले हुए पानी में मिश्री मिलाकर पिलावें।

शीतला (चेचक) रोग में—वमनार्थ इसके रस में शहद मिलाकर पिलाते हैं।

यकृत व प्लीहा वृद्धि पर—इसके पंचाङ्ग का क्षार विधि से क्षार बनाकर तक्र के साथ सेवन कराते हैं।

नाड़ी व्रण या नासूर में—इसके पत्तों के साथ तमाखू के फूलों को पीसकर घृत मिलाकर लगाते हैं। प्लीहा विकार में इसका शाक लहसुन के साथ खाते हैं।

(१) कृमि रोग पर—इसका शाक लगातार ३ मास (कार्तिक, अगहन, पूष) तक विधिवत् बनाकर सेवन करने से उदर कृमि आदि प्रायः सर्व प्रकार के कृमि नष्ट हो जाते हैं अथवा इसे उबाल कर रस निकाल रस में नमक मिला प्रातः सायं पिलावें।

(२) कब्जी, अश्मरी और प्लीहा पर—पत्तों को जल में उबाल और छानकर उस जल में शक्कर मिला पीने से दस्त साफ होता है। गुर्दे तथा मसाने की पथरी

Scanned with CamScanner

टूट जाती है ओर प्लीहा की सूजन बिखर जाती है।

—यूनानी

(३) शोथ पर—इसे उबाल कर उसमें सौंठ का चूर्ण मिलाकर या बिना सौंठ का चूर्ण मिलाये भी वैसे ही शोथ स्थान पर बांध देने से सूजन दूर हो जाती है।

(४) श्वेत कुष्ठ तथा खाज, दाद आदि चर्म विकारों पर—दो मास तक दोनों समय इसका शाक खाया जावे और साथ ही सहजने के बीज और तूतिया दोनों को पानी में घिसकर श्वेत कुष्ठ के दागों पर लेप किया जावे तो निश्चय ही इस रोग से छुटकारा मिल जाता है।

—भा. ज. बूटी

अथवा—बथुए को उबाल कर उसके मन्दोष्ण जल से खाज, दाद, कुष्ठादि रोगग्रस्त भाग को अच्छी तरह धोवें। साथ-साथ इसके शाक का सेवन करें एवं अन्य पथ्यों का भी पालन करें तो अवश्य लाभ होता है।

बथुए को उबाल कर उसका रस १ सेर निकाल उसमें २० तो० तिल तैल मिलाकर मन्द आग पर पकावें। तैल शेष रहने पर शीशी में रख लें। यह तैल कुष्ठादि सर्व चर्म रोगों पर लगाने से लाभप्रद है।

अर्श पर—अर्श रोगी को बथुए को पकाकर रस निचोड़ कर उस रस में नमक, कालीमिर्च मिला हींग का छौंक दिये हुए तक्र के साथ भोजन के पश्चात् यथायोग्य मात्रा में सेवन करते रहने से अर्शजन्य वेदना दूर होती है दस्त साफ होता है।

(६) वात विकार पर—वात रोग में यह सदा सेवनीय है। पत्तों को उबालकर पर्याप्त घृत की छौंक देकर यथायोग्य मात्रा में भोजन के साथ सेवन करने से रक्त की शुद्धि एवं वृद्धि होकर वात विकारों में लाभ होता है।

[illegible]तजन्य पीड़ा पर—पत्तों को उबाल कर किंचित सें[illegible]क मिला गरम-गरम बांधने से लाभ होता है।

[illegible]) नेत्र विकारों पर—आंखें आई हों, पीड़ा हो या [illegible] में शोथ हो तो इसे उबाल कर उसकी लुगदी नेत्रों [illegible]ने से बहुत लाभ होता है। इसके शाक को भी [illegible] आवश्यक है।

रतौंधी पर—इसका स्वरस निकाल कर नेत्र में डालने से लाभ होता है।

बीज—बथुए के बीज समशीतोष्ण, ग्राहक, रेचन एवं मूत्रल हैं।

आमाशय की शुद्धि तथा दूषित पित्त निस्सारणार्थ बीजों के चूर्ण को नमक, गरम जल और शहद के साथ पिलाते हैं।

(८) यकृच्छोथ, जलोदर, कामला, मूत्रकृच्छ्र और पैत्तिक ज्वरों में इसे अकेले या अन्य उपयुक्त द्रव्यों के साथ इसका सीरा या क्वाथ बनाकर पिलाते हैं।

यकृत में ग्रन्थि या गठान पड़ जाने से पीलिया या कामला हो जाय तो ७ मा. बीजों को प्रतिदिन २१ दिन तक देने से गांठ बिखर जाती है, पीलिया दूर होता है।

(९) प्रसवकष्ट पर—१॥ तो० बीजों को ४० तो० जल में पकाकर आधा शेष रहने पर छान कर पिलाने से कष्ट का निवारण होता है। इसके पिलाने से प्रसव के पश्चात् या गर्भपात के बाद जो छोड़ कभी-कभी पेट में रह जाता है वह भी निकल जाता है। रुका हुआ मासिक धर्म भी इससे खुलकर साफ हो जाता है। कब्ज और अर्श में भी यह प्रयोग लाभप्रद है। ध्यान रहे यह प्रयोग गर्भघातक है अतः गर्भवती स्त्रियों को बहुत सोच विचार कर इसे देवें।

(१०) पैत्तिक शोथ तथा रक्तपित्त पर—बीजों को पानी में पीसकर शहद मिलाकर लेप करने से पैत्तिक शोथ दूर होता है। इससे त्वचा की शुद्धि भी होती है।

रक्तपित्त में—बीज चूर्ण को शहद के साथ चटाते हैं।

नोट—मात्रा—स्वरस १-२ तो०। बीज चूर्ण ३-६ माशा।

बथुआ अधिक मात्रा में खाने से वायुकारक है। इसका निवारक गरम मसाला है। इसका प्रतिनिधि पालक है।

विशिष्ट योग—

(१) यशद मारण या भस्मीकरण—यशद (जस्त)

Scanned with CamScanner

को कड़छे में डालकर आग पर रखें और थोड़ा-थोड़ा बथुआ का पानी (रस) डालते रहें। जब यह फूल जाये तो निकाल कर बथुए के पानी में खरल करें, जिस कदर यह पानी उसमें जज्ब (शोषित) होगा, उत्तम है। यह नेत्र रोग में उत्तम है, मोतियाबिन्दु को रोकता है।

—यू. चि. शा.

(२) बथुए से पारद—इसके ताजे क्षुप को साफकर पत्थर के खरल में कूटपीस कर कपड़े से निचोड़ कर रस निकाल बड़ी-बड़ी खरलों में डाल शीतल स्थान पर टिकिया बना डमरू यन्त्र में रख नीचे ४॥ घंटे आग जलावें। ऊपर के पात्र पर भीगा हुआ कपड़ा रखें। फिर शीतल होने पर खोल कर देखें। ऊपर के पात्र में पारा लगा होगा। इसे एकत्र करें। यद्यपि यह मात्रा में कम प्राप्त होता है, किंतु होता है निर्मल। इससे चन्द्रोदय आदि रसौषधियां बहुत श्रेष्ठ निर्माण होती हैं।

—श्री पं० माधवप्रसाद जी शर्मा वैद्यराज

(रसायन से साभार)

बथुआ (विदेशी) (Chenopodium Ambrosioides)

बथुआ के ही कुल के इस बहुशाखी तीक्ष्ण कपूर जैसे सुगन्धयुक्त कोमल रोमश ५ फुट तक ऊंचे क्षुप के काण्ड रेखांकित, पत्र लम्बे, दन्तुर, नोकदार २॥-३॥ इंच लम्बे, ½-१ इंच चौड़े आयताकार-भालाकार; पत्र-वृन्त छोटा; पुष्प-छोटे-छोटे गुच्छों में; फल-गोलाकार ५-६ समूहबद्ध शाखाओं में लगते हैं। बीज-वृक्काकार, चिकने, रक्ताभ भूरे या काले चमकदार होते हैं। शीतकाल में पुष्प और फल आते हैं। बीज-तेज यूकलीप्टस जैसे सुगंधयुक्त तथा स्वाद में तिक्त चरपरे होते हैं।

यह मूलतः दक्षिण अमेरिका मेक्सिको का निवासी है। किन्तु अब समग्र बंगाल की पड़ित, ऊसर भूमि में; तथा सिलहट, दक्षिण भारत में बम्बई, मद्रास आदि प्रांतों में खूब पैदा होता है। देहरादून के आसपास खेतों में या ऊसर भूमि में इसके क्षुप समूहबद्ध होकर उगते हैं।

नाम—

सं.—सुगन्धवास्तूक चंडिल। हि०—बथुआ (विदेशी) चिल्ली। म०—चन्दनबटवा। गु०—चंदनबेटो। बं.—चन्दनवेतो। अं०—मेक्सिकन टी (Mexican tea) अमेरिकनवर्म सीड (American wormseed)। ले.- चेनोपोडियम एम्ब्रोसिओड्स।

रासायनिक संगठन—

आर्द्र ताजी अवस्था में इसमें ८१.५६ जलीय अंश होता है। शुष्कावस्था में ईथरसत्व (Ether extract) ५.१४%, क्षाराभ (Albuminoids) १८-१८%, नाइट्रोजन २.९१%, घुलनशील कार्बोहैड्रट्स ५६.२३%, काष्ठमय तंतु ७.३१% तथा राख या क्षार भाग १०.१४% पाये

Scanned with CamScanner

जाते हैं।

इसके फल या बीजों से जो प्रभावकारी सुगन्धित चेनोपोडियम नामक उड़नशील, फीका, पीला या चमकदार पीले रंग का तेल निकाला जाता है, उसमें हैड्रोकार्बन (Hydrocarbons) सायमीन (Cymene), एक टर्पिनीन (Turpinine), कुछ निम्न कोटि का वसामय क्षार (Ftatty acids) मुख्यतः बुटिरिकक्षार (Butyric acid) तथा लगभग ०.१% मेथिल-सेलिसिलेट (Methyl salicylate) आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

नोट—भारतीय बथुआ के बीजों का तेल इस तेल की अपेक्षा निम्न कोटि का होता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

क्षारयुक्त, अम्ल, मधुर विपाक, बल्य, त्रिदोष नाशक है। इसके पत्र और कोमल डंठलों का साग बनाया जाता है। प्राचीन काल में अमेरिका के आदिवासी लोग घरेलू इलाज की तरह इसके पत्तों और बीजों के काढ़े का प्रयोग आंत्रकृमिनाशार्थ किया करते थे।

इसका तेल आंत्रकृमि विशेषतः अंकुशकृमि (हुकवर्म) नाशार्थ—अब काम में लिया जाता है। इसे १० बूंद की मात्रा में देने से इन कृमियों का नाश हो जाता है। यह तेल गाय, बैल आदि पशुओं के भी आंत्र कृमिनाशार्थ दिया जाता है। यह तेल बल्य, आक्षेपनिवारक, स्नायु-सम्बन्धी विकारनाशक भी है।

इस तेल के अभाव में इसके बीजों का चूर्ण भी इन कृमियों के (इस अंकुशकृमि ग्रस्त रोगी का मुख पीला और शरीर दुर्बल हो जाता है, ऐसे कृमि के) नाशार्थ दिया जा सकता है तथा रोगी स्वस्थ हो जाता है। किन्तु ध्यान रहे बीजों के चूर्ण की अपेक्षा इसका तेल ही इस कार्य में विशेष समर्थ है।

वदजरी धामुन (Eriolaena Quinquelocularis)

मुचकुन्द कुल (Sterculiaeae) के इसक छोटी जाति के वृक्ष बम्बई प्रांत, कोंकण, पश्चिम घाट और मद्रास की ओर विशेष पाये जाते हैं।

इसे बम्बई की ओर वदजरी धामुन, बुजारी दामुव ले० में इरियोलेना क्विंकेलोकुल्लेरिस कहते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग–

यह व्रण नाशक है।

इस वृक्ष की जड़ की पुल्टिस बनाकर व्रणों पर बांधने से शीघ्र लाभ होता है। व्रणों का शीघ्र रोपण होता है।

बधारा (Gmelina Asiatica)

निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) के इस गंभारी जैसे सुन्दर झाड़ीदार वृक्ष की छाल पीताभ श्वेत; पत्र २.३-८ सें० मी० लम्बे, १.२-२.५ सें० मी० चौड़े; पुष्प बहुत सुन्दर पीतवर्ण के होते हैं।

दक्षिण भारत में ट्रावनकोर, कारोमंडल कोस्ट, मद्रास तथा सीलोन में इसके स्वयंजात वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। अन्यत्र भी बाग, बगीचों में सौन्दर्य वृद्धि के लिए ये लगाये जाते हैं।

नाम–

सं०—गोपामुद्रा। हि०—बधारा, भेंदरा। म०—लहाण शिवन, सिवनी। गु०—नटकेमरनुझाड़। ले.—मेलिना एसियाटिका, में. पार्विफ्लोरा (Gmelina Perviflora)।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार की मधुशर्करा (ग्लुकोसाईड) पायी जाती है।

प्रयोज्याङ्ग—जड़, पत्र आदि।

गुण धर्म व प्रयोग–

कटु, तिक्त, सुगन्धित, संकोची, पिच्छिल, शांतिदायक, धातुपरिवर्त्तक, मूत्रल, कोमोद्दीपक, कफनिःसारक, संधिवात, कटिवात, उपदंश, प्रमेह, सुजाक आदि मूत्राशय विकार

Scanned with CamScanner

नाशक है।

सुजाक, मूत्रकृच्छ्र आदि मूत्राशय के विकारों पर इसके पत्र, कोमल डण्ठल, जड़ आदि को शीतलजल के साथ पीस छानकर पिलाते हैं।

नोट—इसके शेष गुण धर्म प्रयोगादि प्रायः गंभारी (जिसे बृहत्पंचमूल में लेते हैं) जैसे ही हैं। गंभारी का प्रकरण भाग २ में देखिये।

बन अजवायन—दे. अजवायन जंगली (भाग १ में)
बन इन्द्रायण—दे. इन्द्रायण छोटा (भाग १ में)

बन उड़द (Teramnus Labialis)

गुडूच्यादि वर्ग एवं शिम्बी कुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) की इसकी लता साधारण उड़द की लता जैसी, जंगलों में झाड़ियों पर लिपटती हुई (चक्रारोही) बढ़ती है। वर्षाऋतु में अधिक पाई जाती है।

पत्र—½-1½ लम्बे, त्रिपर्ण संयुक्त, ऊपरी भाग में रोमश, निम्न भाग धूसर वर्ण; पत्रक-अण्डाकार १-२इंच लम्बे रोमश होते हैं।

पुष्प—१-४ इंच लम्बे पुष्प दण्ड पर गुलाबी, नीलारुण या श्वेत वर्ण के गोल पुष्प होते हैं।

फली—पतली १-२ इंच लम्बी, कुछ टेढ़ी, रोमश ६ से १० तक बीजयुक्त होती हैं।

बीज—ताजी अवस्था में लाल, सूखने पर काले पड़ जाते हैं।

शीत काल विशेषतः कार्तिक, अगहन में फूल और पौष, माघ में फली आती है।

यह प्रायः समस्त भारत में पहाड़ी या जांगल प्रदेशों में विशेषतः बंगाल तथा दक्षिण भारत में अधिक पैदा होता है।

नोट—चरक के जीवनीय, शुक्रजनन, मधुर-स्कन्ध गणों में तथा सुश्रुत के काकोल्यादि, बिदारी गंधादि गणों में यह लिया गया है।

नाम—

सं.—माषपर्णी, सूर्यपर्णी, कांबोजी, हय पुच्छिका, पाण्डुलोमशपर्णी, कृष्णवृन्ता, महासहा इ.। हि.—बन-

Scanned with CamScanner

बन उड़द
TERAMNUS LABIALIS SPRENG.
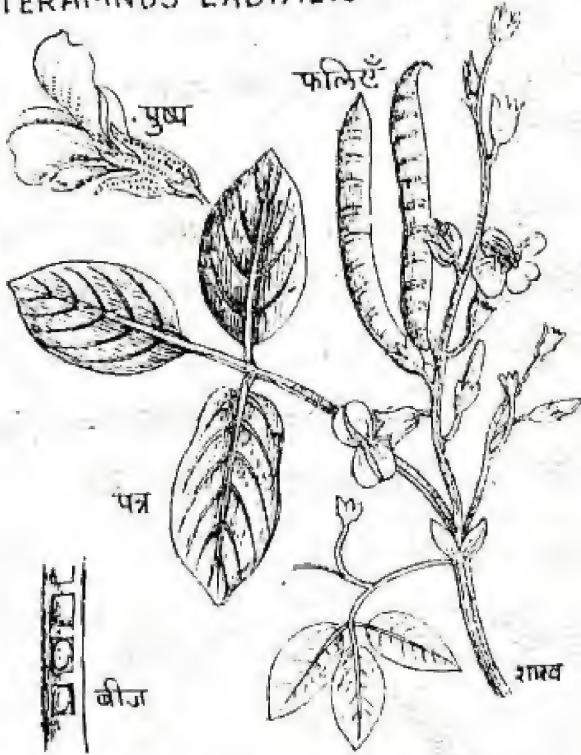
उड़द, जंगली उड़द, मषवन, माषोनी। म.—रान उड़द। गु.—जंगली अड़द। बं.—माषानी, बन कलाई।

ले.—टिरेन्नस लेबिएलिस; ग्लायसीन लेब्रिएलिस (Glycine Labialis)

प्रयोज्याङ्ग—पंचाङ्ग तथा मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, तिक्त, मधुर-विपाक, शीत-वीर्य, वात पित्तशामक, कफवर्धक, दीपन, स्नेहन, अनुलोमन, ग्राही, रक्तशोधक व वर्धक, रक्तपित्त शामक, शोथहर, कामोद्दीपक, कांतिवर्धक, स्तन्य, केश्य, शुक्रजनन, दाह-प्रशमन, ज्वरघ्न तथा जीवनीय है। अर्दित, पक्षाघात, आमवात, संधिवात आदि वातव्याधियों में तथा पैत्तिक विकार, उदरशूल, विष्टम्भ, ग्रहणीविकार, शुक्रमेह, क्षय रोगादि में प्रयुक्त होता है।

वातिक प्रदर में—इससे सिद्ध तैल का पिचु धारण कराने से लाभ होता है।

नोट—मात्रा-चूर्ण १-३ मा.। क्वाथ-५-१० तो.।

विशिष्ट योग—

वाजीकरणार्थ—

बन उड़द, तथा इसकी जड़, और मिश्री, सिंघाड़ा, जौ, कौंच की जड़, मुलैठी, विदारीकन्द, तालमखाना, व चिरौंजी समभाग लेकर चूर्ण बना लेवें। मात्रा १ तो. तक, इसमें ६ गुना घृत और इतना ही शहद मिला कर रात्रि को सोते समय चाटें तथा उसके बाद भूमि पर पैर न रखें (भूमि पर पैर इसको चाटते समय तथा पश्चात् २-३ घंटे तक नहीं रखना चाहिये। इसे इस प्रकार सेवन से बल व उत्साह की वृद्धि होती तथा यथेष्ट वाजीकरण होता है। —ग. नि.

चरकाचार्य का विधान है, कि जो गौ बन उड़द (या साधारण उड़द) के पत्तों पर पली हो, प्रथम बार ही प्रसव हुआ हो, चार थन हों, जिसका बछड़ा सदृश ही वर्ण का हो और जीवित हो, लाल अथवा काले वर्ण की हो सींग ऊंचे उठे हुए हों, नम्र हो [मारती न हो] ईख या अर्जुन वृक्ष के पत्ते खाती हो, जिसका दूध गाढ़ा हो, उसका दूध अकेला ही चाहे उबाला गया हो या कच्चा ही हो, अथवा खांड़, मधु और घृत मिला कर पीने से उत्तम वृष्य है (इस दूध में अन्य शतावर, विदारीकंद आदि वीर्यवर्धक द्रव्य मिलाने की आवश्यकता ही नहीं है। वह स्वयं ही उत्तम वीर्यवर्धक है। —च. चि. अ. २

बन ककड़ी—दे० पापरी नं० २। बनकपास—दे० कपास में देवकपास तथा काकतुण्डी नं० १।

बन काकड़ा (Podophyllm Rhizana)

यह दारु हरिद्राकुल [Berberidaceae] का एक प्रकार [या जाति] का विदेशी गिरिपर्पट है। पापरी नं० २ का ही एक भेद विशेष है। इसके क्षुप, पत्र, फल, मूलादि पापरी नं० २ के जैसे ही होते हैं।

Scanned with CamScanner

यह उत्तरी अमेरिका में बहुत पैदा होता है। भारत में भी काबुल के पहाड़ों से लेकर हिमालय पर्वतमाला में गढ़वाल तक ८ से १२ हजार फुट की ऊंचाई तक पाया जाता है।

इसे वनकाकड़ा, वनवकरी, वीरवकरी तथा पहाड़ी भाषा में ओभाकुगु, मोगा, कुगची आदि कहते हैं।

इसके गुणधर्म प्रयोगादि पापरी नम्बर २ के जैसे ही हैं।

बन कांगनी (Setaria Glansa)

यव कुल [Gramineae] की एक प्रकार की घास है। यह वर्षाऋतु में प्रायः सर्वत्र पैदा होती है। इसके ऊपर एक बारीक रुंए वाली मंजरी सी लगती है, जो कपड़ों में तथा पशुओं की पूंछों पर चिपक जाती है। इसे कहीं-कहीं कुत्री या कुत्ता घास भी कहते हैं। इस घास को ताजी हरी दशा में पशु खाते हैं। इसके पत्ते कांगनी के पत्र जैसे होते हैं।

इसकी बड़ी मंजरी वाली ऐसी तीन जातियां हैं। इनमें से मझली मंजरी वाली औषधि कार्यार्थ उत्तम होती है। इसके पौधे २ से ३ फुट तक ऊंचे होते हैं।

नाम–

सं.-पण्यगन्धा, कंगुनी पत्रा। हि०–वनकांगनी, वन कांगनी, बांदरा, गीदड़ मुच्छा, बांदरी। म०–भाड़ली, बराती, कोलर। गु.–कुत्री पूंछी, कुटेली, कुचीरी, चीपटी।

ले०–सेटेरिया ग्लेंसा; से. ग्लाका [setaria Glauca]

गुण धर्म व प्रयोग–

गुजरात की ओर सर्पविष निवारणार्थ यह एक उत्तम बूटी सिद्ध हुई है।

'जंगलनी जड़ी बूटी' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "हमने सर्प दष्ट व्यक्ति को इसका रस पिलाया, दंशस्थान पर मसला और आंखों में आंजा, किंतु उससे विशेष लाभ नहीं हुआ। तब पुनः दूसरी बार इसका रस निकाल कर उसमें शुद्ध जमालगोटा (जयपाल) का एक बीज थोड़ा घिसकर उसकी आंख में आंजने से आश्चर्यजनक रूप से ५ मिनट के अन्दर उसका विष उतर गया। जमालगोटे को आंजने से उसके नेत्रों में भयंकर जलन हुई किंतु २-४ बार घृत के आंजने से शांत हो गई। इसी प्रकार दूसरे कई सर्प के काटे हुए लोगों पर इस घास के रस का प्रयोग किया गया और उससे उनको लाभ हुआ। जहां पर केवल इसके रस से लाभ न हुआ, वहां जमालगोटे को इसके रस में घिसकर नेत्रों में आंजने से निश्चित्-रूप से सफलता हुई।"

इस रस को देने की क्रिया इस प्रकार है–ताजी हरी इस घास को कूट कर रस निकाल कर सर्प दष्ट व्यक्ति के आयु का विचार कर २ से १० तो० तक पिला देवें तथा दंश स्थान पर इस रस का मर्दन करें और इस रस में जमालगोटे का बीज घिसकर आंख में आंजें। जब तक जहर पूर्णतया दूर न हो जावे, तब तक यह उपचार बारम्बार चालू रखना चाहिये।

ध्यान रहे घास सदैव हरा नहीं मिलता। अतः सदैव के प्रयोगार्थ इस घास को पकने पर हरी हालत में काटकर छाया शुष्ककर लेवें। आवश्यकता के समय इसे कूट कर क्वाथ बना कर उपयोग में लावें। अथवा मौसम के समय इसका १ सेर रस निकाल कर उसमें २० तो० रेक्टीफाइड स्प्रिट मिला कर रख लेवें और आवश्यकतानुसार इसका उपयोग करें।

मूत्रकृच्छ (सुजाक) पर भी यह बड़ी लाभदायक है। इसके बीज का चूर्ण ३ मा० की मात्रा में ४ तो. बकरी के मूत्र के साथ, दिन में दो बार ७ दिन तक सेवन करने से कुछ दिनों में यह रोग दूर हो जाता है।

प्रमेह में–बीज चूर्ण ६ मा० की मात्रा शक्कर के साथ दिन में ३ बार लेने से लाभ होता है।

दाद पर—इसका रस चुपड़ने से लाभ होता है।

बन कुम्हड़ा—दे. बिदारी कन्द में।

Scanned with CamScanner

बनकाहू (Launaea Pinnatifida)
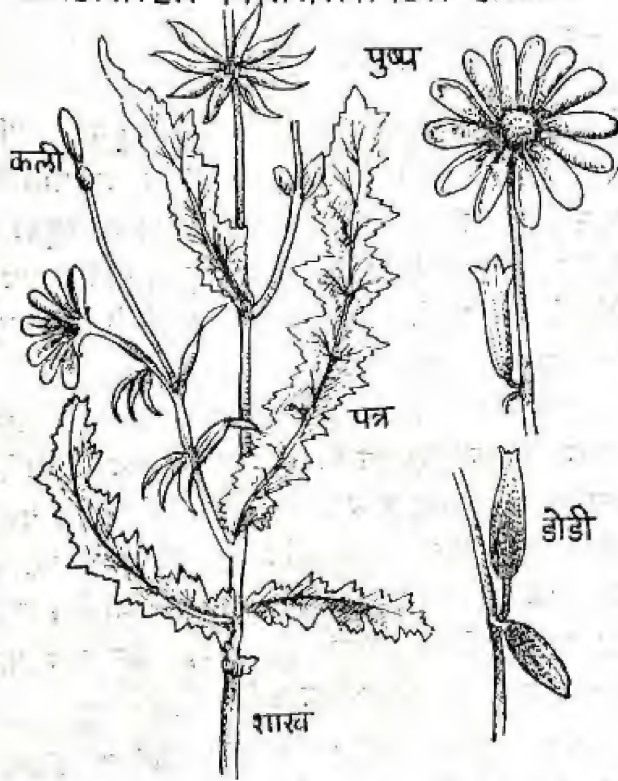
भृंगराज कुल (Compositae) की जमीन पर प्रसरणशील इस वनौषधि के पत्र थोड़े थोड़े अन्तर पर गुच्छों में या अलग अलग कतरनदार साथ ही साथ इसकी जड़ें भी थोड़े थोड़े अन्तर पर मांसल पीतवर्ण की होती हैं। पुष्प सुन्दर पीले रंग के फल डोंडी रूप में आते हैं।

यह प्रायः सर्वत्र रेतीली भूमि में देखी जाती है। बंगाल से सीलोन तथा मद्रास से मलाबार तक समुद्र के तटवर्ती प्रान्तों में विशेष होती है।

नाम—

सं.—गोलोमिका इ.। हि.—बनकाहू, पाथरी। म.—माथरड़ी, भोपाथरी। गु०—भोंपात्री।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, ग्राही, शीतवीर्य, स्तन्य तथा प्रायः भांगरे के समान गुण धर्म वाला है। स्तनों में दुग्ध वृद्धि के लिये इसके स्वरस में मुलैठी मिलाकर देते हैं। कास पर भी लाभ करता है। इसके पत्तों की शाग चर्म रोग, यकृत वृद्धि तथा अजीर्ण में लाभकर है। इसका रस ४ रत्ती की मात्रा में बालकों के लिये निद्राकारक है। गठिया वात पर इसके रस को करंज तैल के साथ मिला कर मालिश करते हैं। इसके पत्तों को पीस कर मस्तक पर लेप करने से सिर दर्द दूर होता है। ज्वर में भी कमी होती है। काहू के प्रकरण में भी देखिये।

वन कुलथी—दे. चाकसू। वन कोष्ठ—दे. बहुफली। बन केला—दे. केला में।
वन केवांच—दे. केवांच में। बनखारा—दे. भाटिया।

बनखोर (Aesculus Indica)

अरिष्टक कुल (Sapindaceae) के इसके वृक्ष रीठे के वृक्ष जैसे; छाल-संकुचित धारियों से युक्त; पत्र-लम्बे, गोल हरे; पुष्प-छोटे छोटे लम्बे;।

फल—लम्ब गोला कार के ३ बीजों से युक्त।

बीज—गहरे बादामी रंग के चमकीले होते हैं।

ये वृक्ष काश्मीर आदि हिमालय के प्रदेशों में विशेष पैदा होते हैं।

नाम—

हि.—बनखोर, कनोर, कंडार, गुगु। पहाड़ी भाषा में—हनुदुन, किशिग, पंगर आदि। ले.—इस्क्यूलस इंडिका।

गुण धर्म व प्रयोग—

वातनाशक, उदर शूल नाशक। इसके बीजों का तैल आमवात, गठिया आदि वात विकारों में मालिश के

Scanned with CamScanner

काम में आता है। उदर शूल विशेषतः घोड़ों के तीव्र उदरशूल (Colic) में इसका फल खिलाया जाता है।

बन गोखुरू (Tribulus Alatus)

यह छोटे गोखरू का ही एक जाति भेद है। इसके क्षुप छोटे गोखरू के ही क्षुप जैसे होते हैं। इसके फल एक ओर मोटे,तथा दूसरी ओर संकुचित एवं पंखदार होते हैं। इसमें दो बीज होते हैं।

नाम—

बन गोखरू, वाखरा, गोखुरे कलान, लतक, हसक इ. सं.—त्रिकुन्द्री। अं.—विंगेड़ कालट्राप्स (Winged Caltrops)। ले.—ट्रिब्युलस एलेटस।

यह पश्चिम भारतवर्ष में सिन्ध, कच्छ, पंजाब, बलूचिस्थान, पश्चिम मारवाड़ के रेगिस्थान आदि में विशेष पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

अनुलोमन, विबन्धनाशक, क्षुधावर्धक, ऋतुस्राव नियामक, प्रदाहशामक होता है। प्रसूता को इसके फलों का फाण्ट या पेया बना कर पिलाने से गर्भाशय के विकार दूर हो जाते हैं। शेष गुण धर्म व प्रयोग छोटे गोखरू जैसे ही हैं।

बन चांद (Flagellaria Indica)

स्वकुल (Flagellariaceae) की इस ऊंचे वृक्षों पर चढ़ने वाली लता का काण्ड प्रायः १ इंच मोटा शाखायें गोलाकार, चिकनी, प्रशाखायें पालक या ककड़ी की शाखायें जैसी।

पत्र—६-१० इंच लम्बे वृन्तहीन, वृन्तस्थान में पत्र का भाग गोलाकार, बहुशिरा विशिष्ट।

पुष्प–श्वेत वर्ण के पुष्प काण्ड की प्रशाखा ६-१२ इंच लम्बी।

फल–गोल लाल रंग में, चिकने होते हैं।

यह सुन्दर बन से चिटगांव तक, तथा समुद्र के तटवर्ती स्थानों में पाया जाता है। वर्षा में पुष्प व शीत के अन्त में फल आते हैं।

इसे हि. बं. व तेलगु में बन चांद, बन चन्द्र कहते हैं इसके पत्र-संकोचक तथा व्रणों को अच्छा करने वाले होते हैं।

बन गोभी (Cole Wort)

राजिका कुल (Cruciferae) के जिस पान गोभी (बन्दगोभी, करमकल्ला) का वर्णन भाग २ में कर आये हैं उसी का यह एक जंगली भेद है। इसका वर्णन पान गोभी नं० १ के प्रकरण में देखिये।

यहां इसके कुछ चमत्कारिक प्रयोग दिये जाते हैं।

(१) व्रण पूरणार्थ—इसकी ५ तो० पत्तियों को पीस कर टिकिया बना १०तो० अलसी के तैल या नीम के तैल में पका कर जला देवें। फिर उसमें १ तो० कपूर मिला, घोट कर रख लेवें। इसे रुई में तर करके व्रण या घाव पर रखने से वह शीघ्र भर जाता है।

—भा० गृ. चि.

(२) सुजाक पर—इसकी १ तो० पत्ती को २० तो० जल में पीस छान कर ६ मा० जवाखार और ५ तो० शक्कर मिला केवल दो बार पिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

(३) नेत्र पीड़ा पर—इसकी पत्तियों को साफ कर थोड़ी गुलाबी फिटकरी, मिला पानी से पीस कुछ गरम कर, टिकिया सी बना, आंख पर रख कपड़े बांध देवें दर्द दूर होजाता है। यह गरमी से हुई नेत्र पीड़ा पर लाभप्रद है।

—भा. गृ. चि.

(४) अर्धावभेदक (आधे सिरका दर्द) पर—इसका पत्र रस ६ मा० तक, प्रातः सूर्योदय के पूर्व कान में डालने से शीघ्र लाभ होता है।

बनचालिता (Leea Crispa)

द्राक्षा कुल (Vitaceae) के इस वर्ष जीवी, सरल, सीधे क्षुप की शाखायें नीचे झुकी हुई।

पत्र—शाखा के दोनों ओर ४-१२ इंच लम्बे, १½-३½ इंच चौड़े, पक्षाकार, अग्रभाग में क्रमशः नोकदार किनारे दन्तुर।

पुष्प—हरिताभ श्वेत वर्ण के गुच्छों में;

फल—छोटे, गोल, बेर जैसे काले, मांसल, मुलायम होते हैं।

यह पूर्व बंगाल, त्रिपुरा, सिक्किम, बर्मा की ओर बहुत पैदा होता है।

नाम—

बंगाल की ओर इसे बनचालिता, बन चेल्ट तथा लेटिन में लीआ क्रिप्पा कहते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

यह व्रणनाशक है। बंगाल को ओर इसकी जड़ का उपयोग नारू पर किया जाता है। व्रण या जख्मों पर इसके पत्तों का लेप किया जाता है। नारू पर जड़ के रस को लगाया जाता है।

बनचिल्ला—देखो चिलबिल। बनजीरा—देखो कालीजीरी। बन तमाखू[1]—देखो तमाखू जंगली।

× बन तमाखू लोबेलिया (Lobelia Herba) इस ग्रन्थ के भाग ३ में जिस जंगली तमाखू का वर्णन गया है उससे यह भिन्न है। (Campanulaceae) कुल में इस द्विवर्षायु या बहुवर्षायु पौधे का काण्ड ा (पोला) ऊपर की ओर शाखाओं में विभक्त। पत्र—एकान्तर, भालाकार, हलके रंग के २-१० इंच लंबे इंच चौड़े, अग्र भाग में नोकदार किनारे सूक्ष्म दन्तुर, अल्प वृन्तयुक्त। पुष्प—श्वेत रंग के, पुष्प के वृन्त में गाढ़े बिन्दुओं के रूप में एक पीला चिपचिपा द्रव जमा हुआ; फल—द्विकोष्ठीय, फूला हुआ सा लम्बगोल है। यह पौधा स्वाद में अत्यन्त तीक्ष्ण एवं क्षोभक है।

ये पौधे दक्षिण भारत में पश्चिमी घाट की पर्वत श्रेणी में बम्बई से ट्रावनकोर तक दो से ७ हजार फुट ऊंचाई तक नैसर्गिक पैदा हुए पाये जाते हैं। कोंकण, दक्षिण का पठार, नीलगिरी एवं मलाबार तथा मैसूर में भी विशेष पाये जाते हैं।

Scanned with CamScanner

बन तुलसी —देखो तुलसी बर्बई। बन धनियां—देखो धनियां तथा जल धनियां में। बन्दा—देखो बांदा। बन्दाल—देखो बन्दाल। बन्धुक—देखो रंगन। बन नीबू—देखो नीबू जंगली। बनपवन—देखो पखानभेद नं० १। बनभाट—देखो बहुफली में। बन पालक—देखो पालक तथा जंगली पालक में।

बनफशा (viola Odorata)

अपने बनफसा कुल[२] (Violaceae) के इस प्रमुख १॥-३ इन्च ऊंचे, छत्ते जैसे छोटे-छोटे, हरित वर्ण के क्षुप की छोटी-छोटी पतली, कमजोर, सुर्खी रङ्ग की शाखायें होती हैं।

पत्र—गोल (ब्राह्मी पत्र जैसे), हृदयाकृति, किनारे कटे हुए, लम्बाई चौड़ाई में १ इंच तक (क्षुप के जमीन से बाहर आने पर प्रारम्भ में ही इसके छोटे बड़े पत्र संख्या में ४ से लेकर ८-६ तक एक ही स्थान से निकल आते हैं। ऊपर को इसकी कोई खास शाखायें पैदा नहीं होती। पत्र तथा पुष्प वृन्त की लम्बाई ही शाखारूप में दिखाई देती हैं। दोनों ओर गुलाबी रङ्ग की सी आभायुक्त, अग्र एवं दोनों पार्श्व भागों पर तथा पुष्प-दण्डिका पर सूक्ष्मरोमश पुराना होने पर पत्र का रङ्ग पीताभ गुलाबी किंचित् हरिताभ हो जाता है।

पुष्प—२-३ इंच लम्बी रोमश पुष्प दण्डिका पर ५ पंखुड़ी वाले ½ इंच की लम्बाई चौड़ाई में फैले हुए, गुलाबी आभा युक्त नील श्वेत वर्ण के गुच्छों में सुगंधित पुष्प आते हैं। पुष्प की प्रथम पंखड़ी के अर्ध भाग तक स्पष्ट काली ५-७ से १०-१५ तक रेखायें दिखलाई पड़ती है। शेष ४ पंखड़ियों में ये काली रेखायें नहीं होतीं। यह इसके पुष्प की खास पहिचान है।

फल या बीजकोश—पुष्पों की पंखड़ियों का गोल निम्न भाग ही इसका बीजकोष है।

मूल—इसकी जड़ कुछ मोटी सी बांकी, टेढ़ी, गांठदार १-२ इंच लम्बी, पीली या गुलाबी आभायुक्त होती है। इसी जड़ से इसका क्षुप उदय होता है।

वर्षाकाल में इस क्षुप को पहचानना कुछ कठिन सा हो जाता है किंतु शीतकाल में पत्तियां कुछ कम हो जाती हैं। फल पक जाते हैं। ये गोल गोल दण्डिका में लगे हुए भूमि पर बिखरे हुए दीख पड़ते हैं।

स्वाद में पुष्प चबाने पर प्रथम किंचित मीठे, चिकने, लुआबदार होते हैं। पत्र चबाने पर कुछ सुगन्ध युक्त किंचित कसैले, मधुर तथा पश्चात् किंचित् झन-झनाहट सी पैदा होती है। जड़ का स्वाद तीव्र कसैला एवं

इस पौधे की जड़ को छोड़कर शेष भाग अक्टूबर-नवम्बर के मास में संग्रह किया जाता है तथा छाया शुष्क कर रख लिया जाता है। इसमें लोबेलीन (Lobeline) नामक क्षार द्रव्य या अल्कालाइड कम से कम ०.८% पाया जाता है, यह इसका विशेष प्रभावशाली तत्व है।

यह इंडियन तथा ब्रिटिश फार्माकोपिया की एक प्रसिद्ध औषधि है। इसका प्रयोग श्वसन संस्थान के रोगों में अधिक किया जाता है। तमक श्वास, श्वासकृच्छ्र एवं आक्षेपज कास में इससे लाभ होता है। तमकश्वास में इसका प्रयोग ब्रोमाइड एवं आयोडाइड के साथ करने से शान्ति मिलती है। मारफीन या अफीम के विष प्रकोप पर या अन्य रोगों में श्वसन केन्द्र की अवसादन अवस्था में सत्व लोबेलीन का प्रयोग इंजेक्शन द्वारा या टिंचर लोबेलिया ईथेरिन का प्रयोग १० बूंद की मात्रा में करने से लाभ होता है।

नोट—इंजेक्शन द्वारा यह ⅙ ग्रेन की मात्रा में; टिंचर ५ से १५ बूंद; चूर्ण १-३ ग्रेन।

ध्यान रहे यह हृदय को अवसादित करता है। इससे हृदय गति दुर्बल एवं कम होती है। अतः दुर्बल हृदय वाले रोगियों पर इसका प्रयोग न करना चाहिए या सावधानी से करें।

[२] इस कुल के छत्ते जैसे क्षुप सपुष्प, द्विबीजपर्ण, विभक्त दल।
पत्र—एकान्तर, वृक्काकार।
पुष्प—रङ्गीन, सुगंधित, अनियमित, पुष्प बाह्यकोश के दल ५ छोटे बड़े, पुंकेशर ५ होते हैं।
बनफशा को कोई कोई ब्राह्मी या मण्डूकपर्णी का एक भेद मानते हैं।

Scanned with CamScanner

झन-झनाहट युक्त होता है ।

इसके क्षुप प्रायः कंकरीली कड़ी जमीन पर अल्मोड़ा, नैनीताल, गढ़वाल, काश्मीर, नेपाल, मंसूरी, टेहरी, एवं पश्चिमी हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों में ५ से ६ हजार फुट की ऊंचाई पर तथा नीलगिरी पहाड़ पर तथा ईरान, अफगानिस्तान में, विशेषतः उक्त पहाड़ी प्रांतों में देहाती खेतों की मटवार, चीड़ के जंगलों में, शुष्क व ढालवां भूमि में अधिक होते हैं तथापि इसका आयात ईरान से विशेष होता है और यही असली माना जाता है। इसके पुष्प नीले रंग के सुगन्धित होते हैं। भारतीय काश्मीर, नेपालादि में होने वाले बनफ्शा के पुष्प श्वेताभ पीले होते तथा विशेष सुगन्धित नहीं होते ।

नोट नं० १—इसका प्रयोग यूनानी में अत्यधिक होता है। पुष्पों को 'गुल बनफ्शा'; पत्तों को 'वर्ग बनफ्शा'; जड़ को 'बीख बनफ्शा' (बाजार में प्रायः इस नाम से 'ईरसा' की जड़ें मिलती हैं। ईरसा का प्रकरण भाग १ में देखिये); और बिना फूलों के इसके शुष्क पंचांग को केवल 'बनफ्शा' कहते हैं।

निघण्ट आदि आयुर्वेदीय ग्रन्थों में इसका विशेष उल्लेख नहीं मिलता तथापि वैद्य लोग इसका आदर पूर्वक उपयोग करते हैं। तथा आधुनिक विद्वानों ने इसका सूक्ष्मपत्रा, ज्वरापहा, नीलपुष्पा आदि संस्कृत नाम रख दिया है।

औषधिकार्यार्थ विशेषतः इसके पुष्प काम में आते हैं। इसके अभाव में पंचाङ्ग लिया जाता है। ६ माह पश्चात् इसके पुष्पों का रङ्ग श्वेत पड़ जाता है तथा वे गुणहीन हो जाते हैं। इसका पंचाङ्ग जो काश्मीर या मध्य एशिया की तरफ से आता है, वह बाजारों में कश्मीरी या बागे बनफ्शा के नाम से मिलता है। इसका क्षुप वसन्त ऋतु में पुष्पित होने पर फूल तोड़कर संग्रह करना विशेष गुणप्रद है।

नोट नं० २—भारतीय बनफ्शा के मुख्यतया निम्नाङ्कित तीन भेद हैं—

(१) Viola serpens (वायोला सरपेंस)–जिसे पहाड़ी भाषा में बंगा या ठंगट कहते हैं। इसका क्षुप छोटा, तथा
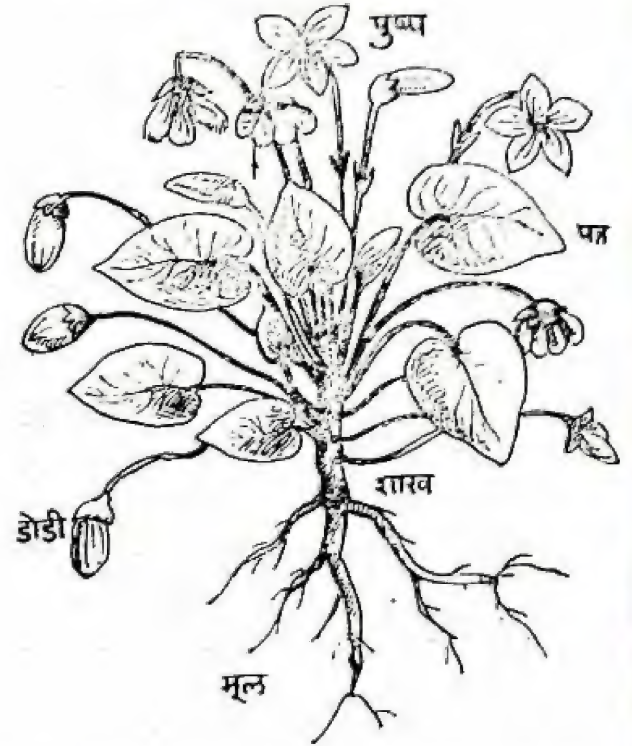
काण्ड अनेक लम्बे, पतले, चिकने भूमि पर पसरे हुये एवं कुछ ऊपर को उठे हुए पत्र–ताम्बूलाकार या लट्वाकार, गोल, १–१½ इञ्च व्यास के, किंचित् अनीदार नोकीले, दन्तुर, अधः पृष्ठ भाग में रोमश; पत्र वृन्त-पत्र की लम्बाई से अधिक लम्बे, अग्रभाग में रोमश; पुष्प-गोल, व्यास में आधे से तिहाई इंच के हलके नीले या नील-लोहित वर्ण के कहीं-कहीं श्वेत वर्ण के लम्बी दो टहनियों पर आते हैं। फल—चौथाई इंच लम्ब गोल एवं बीज बहुत कम होते हैं।

इसके क्षुप प्रायः तर जङ्गल, झाड़ियों में हिमालय खासिया एवं नीलगिरी पहाड़ों के समशीतोष्ण साधारण प्रदेशों में तथा सीलोन में अधिक पाये जाते हैं।

इसके गुणधर्म प्रस्तुत प्रसंग के बनफ्शा जैसे ही हैं तथा बाजार में पाये जाने वाले बनफ्शा में इसका मिश्रण रहता है। प्रस्तुत प्रसंग के काश्मीर की ओर से आने वाले असली बनफ्शा का ही यह एक भेद है। पंजाब में

Scanned with CamScanner

इसके द्वारा एक प्रकार का 'रोगन—बनपशा' नामक तैल तैयार किया जाता है।

(२) दूसरा भेद 'वायोला सिनेरिया [Viola Cineria], पहाड़ी भाषा में 'ठुंगटु' है। इसका क्षुप बहुत ही छोटा, जो ग्रीष्म काल में प्रायः शुष्क हो जाता है। इसका काण्ड छोटा चिकना १—६ इंच तक लम्बा; पत्र छोटे-छोटे बर्छी के आकार के, चौथाई या आधा इंच व्यास के; पत्र-वृन्त चौथाई या आधा इंच लम्बे; पुष्प गोल, नन्हें-नन्हें चौथाई इंच व्यास के तथा फल भी बहुत छोटे होते हैं। यह पंजाब और सिंध की सूखी पहाड़ी भूमि पर अधिक पाया जाता है।

इसके गुणधर्म भी उक्त नं० १ के समानही हैं। तथा इन दोनों के पुष्पों का उपयोग प्रस्तुत प्रसंग के बनपशा के पुष्पों जैसा ही किया जाता है। बाजारों में इन सब का मिश्रण ही पाया जाता है।

(३) तीसरा तृण जाति का बिहार, उत्तर प्रदेश आदि की सूखी भूमि पर पसरा हुआ पाया जाने वाला देशी बनपशा है। इसके काण्ड पतले, ग्रन्थियुक्त होते हैं तथा प्रत्येक ग्रन्थि से इसके तन्तु निकल कर भूमि में घुसते हुए बढ़ते जाते हैं। पत्र छोटे-छोटे किंचित् गोलाकार, अन्त का मध्य भाग कुछ दवा हुआ सा होता है। पुष्प—बारीक व श्वेत होते हैं। यह उक्त बनपशा से हीनगुण वाला है। इसके पंचांग का मिश्री मिला हुआ फाण्ट शर्दी, खांसी तथा जुकाम में दिया जाता है।

—बूटी-दर्पण।

प्रस्तुत संग्रह के बनपशा के नाम गुण धर्मादि:—

नाम—

सं०—नीलपुष्पा, सूक्ष्मपत्रा, कामपुष्पा, बनपसा, ज्वरापहा।

हि०—बनपशा, दरकुनुचारा।

म० गु०—बनप्सा।

बं०—बनोशा।

अं०—वाईल्ड या स्वीट व्हायोलेट (Wild or sweet violet)।

ले०—वायोला ओडोराटा।

रासायनिक संगठन—

इसके मूल और पुष्प में वायोलिन [Vio ine] नामक एक द्रव्य पाया जाता है जिसके गुणधर्म प्रायः इपिकाक के क्षाराभ इमेटिन (Emetine) के सदृश होते हैं। पुष्पों में इसके अतिरिक्त एक प्रकार का उड़नशील तैल, वायोला क्वर्सिट्रिन [Vi lin Quercetri] नामक पीत द्रव्य, अनेक रंजक द्रव्य, शर्करा तथा मेथिल सैलिसिलिकईस्टर [Meth,l sali yli ester] नामक एक ग्लुकोसाइड होता है।

प्रयोज्यांग—पुष्प और पंचांग।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, तिक्त, मधुरविपाक, शीतवीर्य [वास्तव में यह योगवाही है शीतवीर्य होते हुए भी कफ या शीत रोगों पर गुणप्रद है], वातपित्त शामक, कफनिःहारक, पित्तहर, अनुलोमन, रेचन, दाहशामक, रक्तरोधक, श्वासहर, शोथहर, रक्तपित्तशामक, स्वेदजनन, तथा ज्वरघ्न है।

पुष्प—संकोचक, शीतल, स्नेहन, मृदुकर, स्वेदल, मूत्रल, मृदुरेचन, कफ विकारों में, योनिभ्रंश, गुदभ्रंश आदि में उपयोगी हैं। तृष्णा, आमाशय एवं यकृत के पैत्तिक विकार, दाह, विबन्ध आदि विकारों पर पुष्पों का गुलकंद[१] दिया जाता है। गुलकंद का योग आगे विशिष्ट योगों में देखें।

गर्मी के दिनों में लू के निवारणार्थ इसका सेवन करते हैं। मलावरोध निवारणार्थ गुलकन्द के स्थान में फूलों का चूर्ण भी दिया जाता है। बच्चों के सिरदर्द में फूलों का रस पिलाते हैं। इसके पिलाने से नींद भी आराम के साथ आती है। निद्रानाश के विकार में पुष्पों को सुंघाते तथा उनको पीसकर सिर पर लेप करते हैं। गरमी से होने वाला आंखों का दर्द, सूजन व जलन इसके लेप से

---

[१] यह गुलकन्द विशेषतः ईरान व अरबस्थान से आता है। किन्तु यह लम्बे समय तक नहीं टिकता, खराब या गुणहीन हो जाता है।

Scanned with CamScanner

दूर हो जाती है। गले की सूजन में पुष्पों को भिगो कर मल छान कर पिलाने से लाभ होता है, इससे गर्मी की खांसी भी मिट जाती है, तथा आमाशय की जलन शांत हो जाती है। इसके ताजे फूल विष विकार पर भी लाभ-दायक हैं। फूलों को व पत्तों को सूंघने से सिर दर्द दूर होता है।

फूलों के शर्बत का उपयोग कफ प्रकोप, क्षय, कास, क्षतकास, श्वास, स्वरभंग, मूत्ररोग, पित्तज्वर, तथा जीर्ण-ज्वर पर उत्तम होता है। आगे विशिष्ट योगों में शर्बत का प्रयोग देखें। फूलों से खमीरा, चाय, तैल आदि के प्रयोग भी आगे विशिष्ट योगों में देखिये।

(१) कोष्ठबद्धता तथा सिर दर्द पर—पुष्पों का महीन चूर्ण कर उसमें समभाग खांड मिला लेवें। इसे १ तोला की मात्रा में उष्ण जल के साथ सेवन करें।
—यू. चि. सा.।

पंचांग—स्वेदल, ज्वरघ्न, शीतल, कफनिःसारक, वामक तथा किंचित् विरेचक है।

पैत्तिकशोथ, शिरःशूल, अर्बुद, कैंसर आदि में पंचांग का लेप करते हैं। इससे पीड़ा और स्राव कम हो जाता है।

रक्तपित्त, रक्तार्श, रक्तप्रदर में इसका क्वाथ देते हैं। प्रतिश्याय, कास, फुफ्फुसशोथ (ब्रांकाइटिस), इन्फ्लुएंझा, निमोनिया आदि पर पंचांग का फाण्ट या क्वाथ मुलैठी, गावजवां आदि के साथ देते हैं। ध्यान रहे क्वाथार्थ अधिक नहीं उबालना चाहिए अन्यथा वह गुणहीन हो जाता है।

(२) रक्तार्श, अत्यार्तव या शरीर के अन्य अंगों से होने वाले रक्तस्राव के निवारणार्थ पंचांग के क्वाथ का सेवन उत्तम द्राक्षासव के साथ करने से लाभ होता है।

(३) प्रतिश्याय, कास, प्रतिश्यायजन्य ज्वर, हाथ पैर में दर्द, कंठ वेदना पर—इसके फांट के साथ कलमी-सोरा देते हैं। चाहे रोग नया हो या पुराना कफ गाढ़ा हो या पतला सब पर इसका फांट हितकारक है अथवा इसके चूर्ण को सेंधा नमक, पिप्पली (या अन्य सुगन्धित द्रव्य) और शहद मिलाकर देवें। दिन में २ या ३ बार कफ पतला होकर निकल जाता है।

नया प्रतिश्याय हो तो रात्रि में शयन के पूर्व दूध में बनफ्शा और कालीमिर्च मिला गरम कर गुनगुना पिला देने से जुकाम दूर होता है या चाय के साथ बनफ्शा, तुलसी और काली मिर्च मिलाकर पिलावें। रोगी को रात्रि में भोजन न देवें।
—गां. औ. र.

साधारण सर्दी (जुकाम) और खांसी में-पंचांग में कालीमिर्च मिला अदरक के रस के साथ पीस गोलियां बनाकर सेवन करें।

यदि कफ बहुत बढ़ गया हो तो इसके फूल १। तो. कूट पीस कर उसमें समभाग शक्कर मिला गरम जल के साथ फांक लेवें। इससे कफ दूर हो जाता है।

क्वाथ, फांट, चाय के प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में देखिये।

(४) अर्बुद तथा कैंसर पर—बनफ्शा का क्वाथ, फांट, खमीरा आदि के रूप में उदर सेवन के साथ २ बाह्य लेप रूप से भी उपयोग किया जाता है। इससे विद्रधि (Abcess) दूर तो नहीं होती, किंतु वेदना और स्राव कम हो जाता है। प्रक्षालनार्थ इसका पंचांग और रक्त (लाल चन्दन) का क्वाथ बनाकर विद्रधि या कैंसर को धोना चाहिए।
—डा. वा. ग. देसाई

(५) पैत्तिक शोथ, अपस्मार तथा सिरदर्द पर—इसके क्वाथ के सेवन से अपस्मार (बस्तिदाह, सुजाक) में लाभ होता है तथा क्वाथ में जौ का चून मिलाकर लेप करने से गरमी की सूजन नष्ट होती है तथा इस लेप से सिर की पीड़ा दूर होती है। इस लेप से छाती का गन्दापन नष्ट होता है व गरमी का जुकाम दूर होता है।
—बूटी दर्पण

(६) कंठ शोथ पर—इसका चूर्ण ६ मा. लेकर ५ तो. जल में पकावें। पकाते समय ६ मा. नमक मिला लेवें। अच्छी तरह पक जाने पर नीचे उतार कर फुरहरी से गले में लगाने से लाभ होता है।

पंचाङ्ग का अर्क सन्धिवात, कफ विकार आदि में प्रयुक्त होता है। विशिष्ट योगों में अर्क योग देखें।

मूल—इसकी जड़ प्रभावशाली वामक है। यह प्राय:

इपिकाक के प्रतिनिधि रूप में अथवा इपिकाक के साथ मिलाकर दी जाती है। २० से २५ रत्ती की मात्रा में इसकी जड़ का चूर्ण शक्तिशाली वामक वस्तु का काम करता है। यह विरेचक भी है।

इसे वमनार्थ प्रयोग करने पर प्रथम बहुत जंभाइयां आती हैं तथा वमन होने के बाद कुछ दस्त भी होते हैं। किंतु वमनार्थ इसका प्रयोग कनिष्ट कोटि का है।

बीज—इसके बीज विष नाशक हैं। बिच्छू के विष पर हितकर हैं।

नोट—मात्रा—५-७ मा. तक। स्वेद जननार्थ तथा कफघ्न कार्यार्थ पंचांग का चूर्ण ५-१० रत्ती तक। रक्त-स्तम्भनार्थ १५-२० रत्ती।

यदि ज्वर के साथ अतिसार हों तथा चेचक की बीमारी में और गर्भवती स्त्री को इसका प्रयोग हितकारक नहीं होता। किंतु पुष्पों का शर्बत गर्भवती को गर्भाशय शुद्धि के लिए योग्य विधिपूर्वक दिया जा सकता है।

इसे अधिक मात्रा में लेने से बेचैनी तथा हृदय में कमजोरी होती है, मतली आने लगती है क्षुधा मन्द होती है। अर्श रोगी के लिये भी अधिक मात्रा हानिकारक है। इसे देर तक सूंघने से मस्तिष्क को नुकसान पहुंचता है।

हानि निवारक—गुलाब के फूल, मुलहठी सत, बिही और अनीसून हैं।

प्रतिनिधि—गुल नीलोफर, खुब्बाजी के पत्र तथा गावजवान हैं।

विशिष्ट योग—

(१) फाण्ट बनफशा—५ तो. बनफशा पंचांग के चूर्ण को ५० तोले उबलते हुए जल में भिगोकर ढक देवें। २ घण्टे बाद छानकर रख लेवें। यह स्वेदजनन तथा कफ-निःसारक है।

अथवा इसके पंचांग या पत्र ४ माशा को २० तोले उबलते हुए जल में डालकर पात्र को नीचे उतार ५-१० मिनिट तक पात्र के मुख को बन्द कर छानकर उसमें थोड़ा दूध व मिश्री मिला गरम-गरम, घूंट-घूंट पिलावें। दिन भर इसी प्रकार इसे बार-बार बनाकर पिलाते रहें, अन्य कुछ भी खाने को न देवें। शीघ्र एक ही दिन में नजला, जुकाम दूर होता है।

फाण्ट गुलबनफशा—इसके पुष्प २० तोले को ४० तो. उबलते हुए जल में २४ घण्टे पड़ा रहने देवें। पश्चात् साफ वस्त्र से छानकर उसमें आधा सेर दानेदार साफ शक्कर बोतल में भर रक्खें। यह ग्रीष्मऋतु की गरमी, पेट की कब्जियत, कोष्ठबद्धता तथा चर्मरोग नाशक है। शर्बत बनफशा के समान ही इसके गुण और मात्रा हैं। यह शर्बत से अधिक गुणदायक है। ४-५ दिन से अधिक न रखें। —धन्वन्तरि बूटी चित्रांक से।

(२) क्वाथ-बनफशादि—बनफशा, अडूसा पत्र, मुनक्का, सोंठ, पिप्पली और उन्नाव समभाग लेकर जौकुटकर अष्टमांश क्वाथ सिद्धकर इसमें १ भाग बंशलोचन का चूर्ण मिलाकर १ से १॥ तोले तक सेवन करने से प्रतिश्याय, खांसी, शर्दी आदि पर लाभकारी है। —धन्वन्तरि।

अथवा बनफशा, तुलसी पत्र, सोंठ व बड़ी इलायची ४-४ मा. कूटकर सबको ३० तोले जल में पकावें। चौथाई शेष रहने पर छानकर उसमें थोड़ी मिश्री मिलाकर पीने से जुकाम में लाभ होता है।

अथवा—बनफशा, सौंफ १-१ तोला, सौंठ और सनाय, ६-६ माशे को १६ तोले जल में ढक्कन ढककर मदाग्नि पर पकावें। ८ तो. (आधा) जल शेष करने पर छानकर उसमें १ तो० शक्कर मिला पिला देवें तथा रोगी को गरम कपड़ा ओढ़ा देवें। इससे १ घंटे में प्रस्वेद आकर बढ़ा हुआ ज्वर कम हो जाता तथा शौच आकर उदर शुद्धि भी हो जाती है। यदि प्यास लगे तो निवाया जल पिलावें। शीतल जल न देवें। नये विषय ज्वर में (विषम ज्वर की प्रारंभिक अवस्था में) उदर शुद्धि एवं आम पाचनार्थ इस क्वाथ का सेवन दिन में १ या २ बार करावें।

नोट—उदर क्रूर हो या अधिक मलावरोध हो तो सनाय १ तोले मिलावें। अथवा छने हुये क्वाथ में अमलतास का गूदा १ तो० मिला पुनः छानकर शक्कर मिलाकर पिलावें। कोई कोई इस क्वाथ में हरड़ मिलाते हैं किन्तु वह लाभदायक नहीं। ज्वरावस्था में हरड़ ठीक नहीं।

Scanned with CamScanner
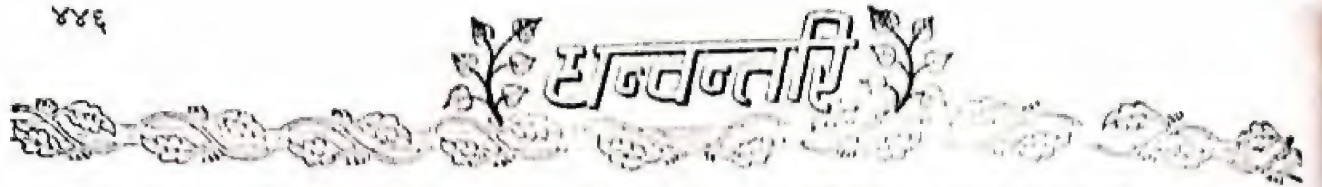
हरड़ मिलाने से कुछ विष प्लाहा और रक्त में प्रविष्ट हो जायगा । —गां० औ० र० ।

अथवा–गुल बनपशा या बनपशा२० तोला, हर्र, सौंठ, पिप्पली व सनाय १-१तो. इनके जौकुट चूर्ण को १½ सेर जल में पकावें । ७ तोले शेष रहने पर मिश्री ३ तोले मिलाकर सुखोष्ण पीने से कोष्ठबद्धता दूर होती है । ४-५ दस्त हो जाते हैं । मलेरिया ज्वर, इन्फ्लुएँजा, चर्मरोग, कुष्ठ, उप-दंश, श्वास कास आदि पर यह उपयोगी है। दस्त व स्वेद के उपरांत यह काढ़ा पिलाना ठीक नहीं । —धन्वन्तरि ।

(३) अर्क बनपशा—बनपशा को ८ गुने गरमजल में रात्रि के समय भिगोकर प्रातः अर्क खींच लेवें । मात्रा २½ से ५ तो., जीर्णज्वर मंथरादि (टायफाईड) मुद्दती ज्वरों में हितावह है ।

प्रवाहिका में—अर्क पूर्ण मात्रा में देने से लाभ पहुंचता है । मात्रा पूर्ण होने से उबासी आती है, थकावट मालूम पड़ती है । अतः रोगी को आराम करने को कहें ।

—गां. औ. र. ।

नोट—इसके पुष्पों का अर्क-संधिवात तथा कफविकार में प्रयुक्त होता है। वह स्वादिष्ट एवं सुगंधित होने से मिठाई तथा अन्य भोजन के पदार्थों में भी मिलाया जाता है ।

अर्क नजला—इसके पुष्पों के साथ उन्नाव, सपस्तान (लसूड़े), खतमी बीज, खुब्बाजी बीज और नीलोफर पुष्प समभाग, बिहीदाना आधा भाग, गेहूं का छिलका सबके समान लेकर सबको ४ दिन तक १६ गुने जल में भिगो रखें । फिर आधा भाग अर्क निकाल लेवें । मात्रा—१० तो. अर्क को शर्बत बनपसा २ तो. के साथ प्रयोग करें । कास, श्वास, जुकाम में बहुत उत्तम है । —यू. चि. सा.

(४) शर्बत बनपशा पुष्प—पुष्प (पुराने न हों) १ पौंड को उबलते हुये २½ पौंड जल में २४ घण्टे भिगो कपड़े से छानकर जल निकाल लें । दबाकर न निचोड़ें । उसमें ७ पौंड शक्कर मिला पकायें । शर्बत की चाशनी आने पर उतार कर रखलें । मात्रा–बच्चों के लिए १ से ४ ड्राम (४ माशा से १६ माशा) यह बालकों के उदर शुद्धि के लिये गर्मी के दिनों में देते हैं । इस शर्बत का रंग स्वाद और सुगन्ध मनोहर है ।

—डा. वा. देसाई ।

नोट—बड़ों के लिए मात्रा–२ से ४ तो. तक । कफज ज्वर, कास, श्वास, प्रतिश्याय, शिरः शूल में उत्तम है । विशेषतः ग्रीष्म ऋतु की उष्णता से कोष्ठबद्धित बालकों के लिये सुगम रेचन है । इससे उदर की सर्व शिकायतें दूर होती हैं, बालक तन्दुरुस्त रहते हैं । बच्चों तथा बड़ों को श्वास, कास, सर्दी, जुकाम पर हितकारी है । इसका असर श्वासनली व फुफ्फुसों पर विशेष पड़ने से क्षय, श्वास व जमे हुए कफ को ढीलाकर हृदय को बलदाता व रक्त शुद्धकारी होने से पुष्टिकर भी है । ग्रीष्म ऋतु के लिए महान शक्तिप्रद, शीतल व ज्वरनाशक है ।

श्वास, ज्वर, कोष्ठबद्धता दूर करने के लिये इसे थोड़ा थोड़ा गरम कर सेवन करें । हृदय को शांति देने, घबराहट, उदासीनता, भ्रम, लू लगने तथा गर्मी की उत्तेजना पर इसमें नीबू का रस, ठंडा जल या दूध मिला कर उपयोग करें ।

कोष्ठबद्धता निवारणार्थ इसकी १ मात्रा में ३-४ बून्द बादाम का तैल मिला कर सेवन करें ।

मासिक धर्म की विकृति व बीमारी के बाद की कमजोरी के लिये इसमें अङ्गूर का शर्बत या द्राक्षासव समभाग मिला सेवन करें ।

गर्भाशय की शुद्धि के लिये भी यह उपयोगी है। स्त्री सगर्भा हो, तो भी इसे दे सकते है । सगर्भा को तीसरे और पांचवे और ७ वे मास में इसे १॥ तो० तक (या आध औंस) की मात्रा में प्रतिदिन १ बार या कम मात्रा में प्रातः सायं दो बार जल के साथ देते रहने से गर्भाशय की उष्णता तथा उपदंश आदि का विष नष्ट होकर नीरोग संतान की उत्पत्ति होती है । यह शर्बत उतना ही बनावें, जितना दो मास तक चले । दीर्घ काल तक यह नहीं टिकता गुणहीन हो जाता है ।

शर्बत गुल बनपशा (उत्कृष्ट):—इसके फूल २५ तो. को साफ कर रात भर उत्तम गुलाब जल में डुबो रखें । प्रातः फूलों के ५ भाग कर, १ भाग फूलों को ३ सेर जल में उबालें । २ सेर ५० तो. जल शेष रहने पर, मल छान

Scanned with CamScanner

कर जल निचोड़ लें, पुष्प फेंक दें तथा इसी जल में पुष्पों का दूसरा भाग मिला पकावें। २ सेर ३० तो. जल शेष रहने पर उतार कर मल छान निचोड़ कर पुष्प फेंक दें व इसी जल में तीसरे भाग के पुष्पों को डाल पकावें। २ सेर ५ तो. शेष रहने पर नीचे उतार मल छान निचोड़ पुष्पों को फेंक कर ४ थे भाग को इस जल में पकावें। २५ तो० पानी जल जाने पर उक्त प्रकार से छान कर, ५ वां भाग पकावें और वैसा ही करें। अन्त में ५ वे भाग का जल छान कर उसमें लगभग ३० तो. खांड़ मिला गाढ़ा करें। शर्बत बन जाने पर उतार छान कर ठंडा कर शीशी में रख लें। इसे १ से २ तक दिन में ३ बार वैसे ही चटावें कलेजे की जलन या गर्मी के लिए इसमें जल मिला कर देवें। यह शर्बत विशेष प्रभावशाली है।

यह जुकाम, नजला को दूर करता, कब्ज मिटाता, नेत्र पीड़ा, यकृत की कमजोरी, पेशाब की जलन आदि में विशेष लाभकारी है। जिस ज्वर में अतिसार वमन हों ऐसे ज्वर में लाभदायक है। —(घर का डाक्टर)

शर्बत बनफ्शा (पंचाङ्ग पुष्प रहित) —बनफ्शा ५ तो० को ८ गुने जल में रात्रि को भिगो कर, दूसरे दिन पकावें। अष्टमांश क्वाथ शेष रहने पर गाढ़े कपड़े में डाल कर लटका देवें। दबाकर न निचोड़ें। जो जल टपके उसमें २० तो० शक्कर मिला शर्बत की दो तार की चाशनी करलें। यह पित्तज्वर में अति हितावह है। मात्रा-१ तो० दिन में ३ बार देवें।

—सि० भे० म० माला

(५) चाय बनफ्शादि—गुल बनफ्शा २ तो०, अडूसा पत्र, तुलसी पत्र (शुष्क), ताम्बूल (नागरबेल) के पत्र १-१ तो० त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल ६-६ मा०) १॥ तो०, लौंग, जायफल, जावित्री, बड़ी इलायची के बीज, तेजपात, व दालचीनी ३-३ मा० सबका जौकुट चूर्ण २॥ तो० को ४० तो० खौलते जल में पकावें। २० तो० शेष रहने पर उतार छान कर उसमें दुग्ध उबला हुआ १० तो० और शक्कर ४ तो० मिला, रात को सोते समय गरम गरम सेवन से प्रतिश्याय, पसली की पीड़ा, श्वास कष्ट, गले का दर्द, इन्फ्लुएंजा, निमोनिया आदि पर लाभ होता है। ध्यान रहे, इसके सेवनोपरान्त कपड़ा ओढ़ कर लेट जाना व खूब पसीना आने देना चाहिये। प्रतिश्याय में यह उपचार प्रतिश्याय के तीसरे दिन करना ठीक है। इसे प्रथम दिन ही देना ठीक नहीं। इन्फ्लुएंजा में यह बहुत ही उपयोगी है।

(६) खमीरा बनफ्शा—बनफ्शा पुष्प १५ तो० को रात्रि के समय ३ सेर जल में भिगो प्रातः पकावें। १ सेर जल शेष रहने पर छान कर उसमें १॥ सेर खांड मिला पुनः पाक करें, थोड़ा शीतल होने पर कड़ाही में डाल कर घोटें। मात्रा-२ से ४ तो० तक अर्क गावजवां १२ तो० के साथ देवें। यह खमीरा मस्तिष्क में तरावट कारक, विबन्धनाशक, वक्ष एवं छाती के रोगों, कास, नजला, पार्श्व शूल, उदर शूल आदि में लाभप्रद है। यह पित्त को सारक करता है। मृदुसारक है।

अथवा—इसके पुष्पों की पंखड़ियां आध सेर लेकर १॥ सेर खांड मिला कर खूब मसलें (हाथों से खूब मलें) या कड़ाही में खूब घोटें, तथा थोड़ा थोड़ा अर्क गुलाब छिड़कें। जब एक जीव हो जाय, तो ३ दिन तक धूप में रखें, तथा प्रतिदिन मल दिया करें। अच्छी तरह एक हो जाने पर शीशे के पात्र में भर रखें। मात्रा २ तो० रात्रि के समय योग्य अनुपान से देवें। यह मस्तिष्क के लिये शांतिदायक है, पित्त को रेचन द्वारा निकालता है तथा वात कफ, सन्निपात एवं वात पित्तसन्निपात में लाभप्रद है।

—यू. सि. सा.

खमीरा बनफ्शा सनाई—बनफ्शा पत्र तथा सनाय पत्र प्रत्येक ½ सेर लेकर ८ गना जल में पकावें। ⅓ शेष रहने पर १० सेर खांड मिला कर पाक करें। मात्रा २ तो०। विबन्ध नाशक, उत्तम रेचक है।

—यू० सि० सा०

(७) पाक बनफ्शा—बनफ्शा ३½ तो०, मीठे बादाम की गिरी ३ तो०, बीज कासनी १०½ मा०, मगज बीज खीरा ककड़ी, मगज बीज लौकी व तज (दालचीनी) प्रत्येक १७½ मा० और मुलैठी ३॥ मा० सबको पीस छानकर ३० तो० शक्कर को ३० तो० अर्क गावजवां में मिला चाशनी तैयार कर उसमें उक्त चूर्ण मि॰। पाक

Scanned with CamScanner

जमा देवें । यह यूनानी 'माजून बनफशा' है ।

३॥ मा० की मात्रा में सुखोष्ण गुलाब जल से सेवन करने से भयानक से भयानक पित्तविकार नष्ट होते हैं । यह शुष्क कास की परमौषधि है ।

नोट—इसके अतिरिक्त अन्य उत्तमोत्तम पाकों के प्रयोग हमारे 'बृहत् पाक संग्रह' ग्रन्थ में देखिये ।

(८) तैल बनफशा—इसके ताजे फूलों में तिलों या बादाम के मग्ज को बसाकर निकाला हुआ तैल (रोगन बनफ्शा) मस्तिष्क स्नेहन एवं निद्रार्थ सिर में लगाया जाता है ।

अथवा—फूलों को जल के साथ पीसकर उसकी लुगदी के साथ शुद्ध तिल तैल मिलाकर तैल सिद्ध कर लेवें । इसे बालों पर लगाने से बाल गिरना बन्द होता, छाती पर मर्दन से खुजली व खांसी में लाभ होता, श्वास रोगी को यह तैल ७ मा० की मात्रा में कई दिनों तक पिलाने से लाभ होता है । गरमी के कारण यदि बच्चों को नींद न आती हो या उनको आक्षेप (अपस्मार) हो तो इस तैल को नाक में टपकाने से लाभ होता है ।

—व. चं० ।

(९) हब्ब (बटी) बनफशा—बनफशा पुष्प, गुलाब पुष्प ७-७ मा०, रबुल सूस (सत मुलैठी) २ मा०, निसोथ व सकमूनीया (एक प्रकार का राल युक्त गोंद बाजार में इसी नाम से मिलता है) ४॥ मा., गारीकून, (चलनी में छाना हुआ) ३॥ मा० सबको कूट छान कर ताजे जल से घोटकर बटी बना लें । मात्रा ७ मा०, चार घड़ी रात्री रहे जल के साथ लेवें । प्रातः पाचक योग का प्रयोग करें । यह वक्ष व मस्तिष्क के कफज स्राव का शोधन करती, सांस फूलने में, सिर दर्द व नेत्र विकारों में लाभप्रद है ।

—यू. चि. सा. ।

(१०) कुरस (टिकिया) बनफशा—बनफशा ३५ मा., सकमूनीया भुना हुआ ४॥ मा., मुलैठी सत, गोंद कतीरा व निशास्ता प्रत्येक ३॥ मा० सबको महीन कर ईसबगोल के लुआब में घोट कर कुरस बनावें । मात्रा ४॥ मा० । यह निमोनिया, कास, छाती की रूक्षता व रक्तपित्त में उत्तम है । पित्त को दस्तों द्वारा निकालता है ।

कुरस बनफ्शा मुसहल—बनफशा पुष्प ३५ मा०, निसोथ, मस्तंगीरूमी, गुलाब पुष्प प्रत्येक १७॥ मा, सत मुलैठी १२। मा०, सकमूनीया भुना हुआ १॥ मा०, कतीरा सफेद १॥। मा० सबको कूट छानकर जल से घोटकर टिकिया बना लेवें । मात्रा ८ मा० ६ रत्ती, शर्बत बनफशा के साथ सेवन से आंत्रशूल नष्ट होता है । कास, श्वास, कफज्वर में अत्यन्त उत्तम है विरेचक है । यू. चि. सा. ।

(११) गुलकन्द बनफशा—इसके ताजे पुष्प २० तो. को ६० तो० खांड में हाथ से मसल कर ७ दिन तक धूप में रखने से गुलकन्द तैयार हो जाता है । प्रतिदिन २ तो० की मात्रा में योग्य अनुपान के साथ लेवें । मस्तिष्क का शोधन करता है, आन्त्र को शुद्ध करता है ।

—यू. चि. सा. ।

(१२) कैरूती (लेप) आरद जोवाली—बनफशा, चन्दन श्वेत, जौ का आटा, खतमी बीज, बाबूना पुष्प, नाखूना, गेहूं की भूसी, सबको महीन करें और मोम को तैल बनफशा में पिघला कर उसमें उक्त चूर्ण को मिला घोटकर एक जीव करें । यदि शोथ को शीघ्र पकाना हो तो उक्त चूर्ण में बाकला और मेथी का आटा भी मिला दें । छाती तथा पीड़ा स्थान पर मर्दन कर सेंक करें ।

यह निमोनिया में उपयोगी है, शोथ व पीड़ा को दूर करता, कफ को खारज करता (निकलता) है ।

—यू. चि. सा. ।

बनबकरी—देखो पापरी नं० २ । बनबैंगन—देखो कटेरी बड़ी तथा पापरी नं० २ । बनबेर—देखो उन्नाव ।
बनभटा—देखो कटेरी बड़ी । बनभिण्डी—देखो भिण्डी में । बनमटर—देखो मटर में ।
बनमल्लिका—देखो मोगरा में । बनमिर्च—देखो दादमारी नं० २ ।

बनमूंग (Phaseolus Trilobus)

गुडूच्यादि वर्ग एवं शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) की इस मूंग की लता जैसी वर्ष

Scanned with CamScanner

जीवी या अधिक काल तक स्थायी रहने वाली लता के कांड प्रसरणशील (जंगलों में कहीं-कहीं वृक्षों पर चढ़ी हुई) १-२ फुट लम्बे, चिकने या रोमश होते हैं।

पत्र--संयुक्त, त्रिपर्ण, रोमश (ग्राम्य मूङ्ग के पत्तों से बड़े व चौड़े); पत्रक-अंडाकार या विषम चतुर्भुजाकार प्रायः बहुत परिवर्तनशील तथा प्रायः वृन्त से लम्बाई में छोटे।

पुष्प--बड़े पुष्पदण्ड के मंजरी के अग्रभाग पर गुच्छों में पीत या किंचित लाल रङ्ग के होते हैं।

फली--चपटी, पतली १-२ इंच लम्बी, चिकनी।

बीज--प्रत्येक फली में ६ से १२ तक श्वेताभ बीज होते हैं।

मूल--कन्द जैसी स्थूल होती है। शीतकाल में फूल व फली आती है।

इसके बीजों को प्रायः गरीब लोग खाने के काम में लाते हैं। बीजों से तैल भी निकाला जाता है।

बनमूंग
PHASEOLUS TRILOBUS AIT.

यह लता भारत के प्रायः सब प्रांतों में विशेषतः दक्षिण कोंकण, गोवा, बंगाल आदि के जंगलों में या गांवों में अधिक पैदा होती है।

नोट—चरक के जीवनीय, शुक्रजनन तथा मधुर स्कन्ध में और सुश्रुत के काकोल्यादि विदारगन्धादि गणों में यह ली गई है।

नाम–

सं०—मुद्गपर्णी, काकपर्णी, सूर्यपर्णी, मार्जारगंधिका इत्यादि। हिन्दी—बनमूंग, मुगवन, मुगनी, लाटिया, रखालकलमी इत्यादि। मराठी—रानमुग, मुगणवेल। गुजराती—जंगली मग, अड़वाऊ मग। बंगाली - मुगानी। लेटिन—फसिओलसट्रिलोबस; फेसि. पासिफ्लोरस (Phaseolus Pauciflorus)

प्रयोज्यांग—पंचांग, मूल, बीज।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, मधुर, तिक्त, मधुर विपाक, शीतवीर्य, त्रिदोष (विशेषतः वात पित्त) शामक, दीपन, अनुलोमन, ग्राही, रक्त शोधक, चक्षुष्य, वृष्य, दाह प्रशमन, जीवनीय, विषघ्न तथा रक्तपित्त, शोथ, ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, अर्श, कृमि, शुक्रमेह, क्षय, वातरक्तादि रक्तविकार में प्रयुक्त होता है।

ज्वर (विषम ज्वर) में पंचांग के क्वाथ का प्रयोग करते हैं। जीर्ण ज्वर में पुष्टि तथा निद्रार्थ पत्र का क्वाथ देते हैं। शोथ, क्षत, नेत्र विकार आदि में इसका लेप करते हैं। आंखें आना, नेत्र शोथ तथा नेत्रमांद्य पर पत्ती को कुचल कर पुल्टिस बांधते हैं।

रक्त प्रदर में—पंचांग के क्वाथ में तिल तैल को सिद्ध कर शुद्ध वस्त्र को इस तैल में भिगोकर योनि में पिचु धारण कराते हैं।

बीज—इसके बीजों को गोमूत्र में एक दिन भिगोकर दूसरे दिन उसी गोमूत्र में खूब महीन घोट पीसकर लेप या मर्दन करने से खाज, खुजली आदि चर्म विकार दूर होते हैं।

उपदंशजन्य त्वग्विकार में बीजों का तैल लगाते हैं।

Scanned with CamScanner

मूल—इसकी जड़ का चूर्ण चूहे के विष पर शहद के साथ सेवन कराते हैं ।

नोट—मात्रा—क्वाथ ५-१० तोला । चूर्ण १-३ माशा ।

बन मेथी (Melilotus Indicum)

हरीतक्यादि वर्ग एवं शिम्बी कुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) के इस २-३ फुट ऊंचे क्षुप की शाखायें पतली, सूक्ष्म खाकी वर्ण के रोमों से युक्त ।

पत्र–½–¾ इंच तक लम्बे प्रत्येक सींक पर इसके पत्र ३-३ किंचित् अण्डाकार दन्तुर रहते हैं, जिनके मध्य भाग का पत्र १-१॥ इन्च लम्बा, तथा अन्य दो पत्र छोटे समवर्त्ती रहते हैं ।

पुष्प–पुष्पदण्ड घनसन्निबद्ध तथा प्रत्येक दण्ड पर छोटे छोटे ६ से १२ संख्या में बैंगनी रंग की आभा युक्त लाल पुष्पों का गुच्छा लगता है ।

फली–¾ से १¾ इंच तक लम्बी, सीधी, किंचित् त्रिकोणाकार तथा संख्या में ६ से १० तक बीजों से युक्त होती है । शीतऋतु में फूल व फल आते हैं ।

इसके क्षुप समग्र बंगाल, उत्तर प्रदेश पश्चिम प्राय द्वीप आदि स्थानों में निसर्गतः स्वयं पैदा होते हैं ।

नोट नं० १—बागों या खेतों में बोई जाने वाली सर्व साधारण मेथी का भी एक भेद ऐसा होता है, जो पंजाब काश्मीर की ओर स्वयमेव जंगलों में पैदा होता है । इसे भी बनमेथी कहते है । मेथी का प्रकरण देखिये ।

नोट नं० २—बन मेथी या जंगली मेथी बला चतुष्टय (खरेंटी आदि) के एक भेद को भी कहते हैं । गगेरन (छोटी) का प्रकरण भाग २ में देखिए ।

नोट नं० ३—प्रस्तुत प्रसंग की बन मेथी का ही एक भेद मेलिलोटस अल्बा (Melilotus Alba) है । इसे श्वेत बन मेथी चितलिगी, अंग्रेजी में व्हाईट मेलिलांट (White melilotकहते) हैं । इसके पौधे १-२ फुट ऊंचे पत्र–मेथी के पत्र जैसे; पुष्प-श्वेत वर्ण के, तथा फली–बहुत छोटी प्रायः दो बीजों से युक्त होती है ।

यह पंजाब, उत्तर भारत तथा सिंध में बहुत पैदा होती हैं । यह पशुओं का एक प्रकार का चारा है ।
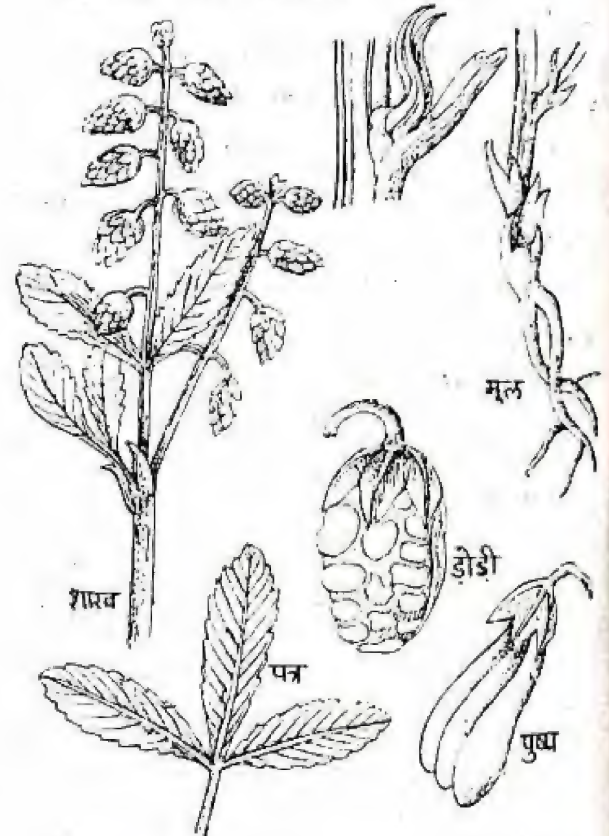
इसमें काऊमेरिन (Coumarin) नामक एक सत्व पाया जाता है । यह ग्राही तथा निद्राकारी होता है । दूध देने वाले पशु को यह हरा ताजा काट कर खिलाया जाता है । यह परिपक्व या शुष्क हो जाने पर आध्मान, उदरशूल पैदा करता है ।

नोट नं० ४–इसी कुल व जाति के कद्लय (Desmodium triflorum) को भी बन मेथी, जंगली मेथी कहते हैं । इसके पौधे, पत्रादि मेथी के जैसे ही होते हैं । पुष्प १ से ५ तक गुच्छों में आते हैं ।

यह भारत के उष्ण प्रान्तों में–दक्षिण भारत में अधिक पैदा होता है ।

Scanned with CamScanner

नाम–

हि.—कद्लय, कुदालिया, चामियाद, मरारा ।

म०—रानमेथी ।

बं.—कोड़लिया, कूललिया ।

गु.—भीणो पानडियो ।

ले.—डेसमोडियम ट्रायफ्लोरम ।

गुण धर्म व प्रयोग–

दुग्धवर्धक, पाचक, व्रणरोपक है। इसकी जड़ मेद-नाशक, बल्य, मूत्रल है। इसका उपयोग पैत्तिक विकारों पर किया जाता है।

स्तनों में दुग्धवर्धनार्थ पत्तों को गोदुग्ध में नित्य प्रातः पीस छानकर पिलाते हैं।

बच्चों के अजीर्ण जन्य आमातिसार तथा आक्षेप पर भी इसका प्रयोग होता है।

व्रणरोपणार्थ ताजे फलों का या पंचांग का रस निकाल कर लगाने से अच्छे न होने वाले, व्रण, नासूर, क्षत आदि में लाभ होता है।

इसका ताजा रस बच्चों की खांसी में भी दिया जाता है।

नोट नं० ५—इसी कुल व जाति के क्रोटालेरिया आल्बिडा (Crotalaria Albida) नामक पौधे को भी बनमेथी कहते हैं।

इसके पत्र रेशमी चमकीले होते हैं एवं सर्वांग मेथी के पौधे जैसा ही होता है। यह भी भारत के उष्ण प्रांतों में पैदा होता है। इसे लेटिन में क्रोटालेरिया मान्टेना (Crotalaria Mortena) भी कहते हैं। इसकी जड़ विरेचनार्थ काम में ली जाती है।

प्रस्तुत प्रसंग की मेथी के नाम गुण धर्मादि नाम–

सं०—बनमेथिका।

हि.—बनमेथी, जंगली मेथी, सिंजी।

म.—भिर, अवतुल मुल्क।

बं.—बनमेथी।

अं०—स्वीट क्लोवज (Sweet Cloves)।

ले.—मेलीलोटस इंडिकम; मेली. पार्विफ्लोरा (Melilotus purviflora) ट्रायफोलियम इंडिकम (Trifolium Indicum)।

गुण धर्म व प्रयोग–

इसके बीज अवरोध निवारक, ग्राही तथा उदरशूल, अतिसार एवं आंत्र के विकारों में लाभदायक हैं। बच्चों के अतिसार में इसकी लप्सी बनाकर देते हैं। कष्टार्तव तथा आमवात में भी यह दिया जाता है। यह रक्तशोधक माना जाता है और गण्डमाला में भी इसका व्यवहार किया जाता है। इसके पंचांग को पीस कर पुल्टिस जैसा बना कर सूजन के ऊपर बांधते हैं।

वनदिया–दे० संजीवनी।

बन लौंग (Jassieua suffruticosa)

शृङ्गाटक (सिंघाड़ा) कुल (Onagraceae) के इस वर्ष जीवी ४-६ फुट ऊंचे, सीधे, बहुशाखायुक्त क्षुप के पत्र डिम्बाकृति ३ इंच लम्बे ¾ इंच चौड़े, रोमश नोंकदार पत्र-वृन्त-छोटा;

पुष्प—४ पंखुड़ीयुक्त पीतवर्ण के ८ सिराओं से युक्त गोलाकार आकार प्रकार में लौंग के फूल जैसे बीजकोष (फल) १-२ इंच लम्बा रोमश होता है। शीतकाल में फूल व फल आते हैं।

इसके क्षुप बंगाल आदि प्राय. समस्त भारत में जलाशय के किनारे विशेषतः पैदा होते हैं।

नाम–

सं—भू लवङ्ग, जल लवङ्ग। हि.—बनलौंग। म.—पानलवंग। बं.—बनलुङ्ग, लालबनलुङ्ग। अं. प्राईम रोज विलो (Primerose willow), वाटर क्लोव्ह (Water Clove)। ले.—जूसिया सफ्रूटिकोसा; जूसिया व्हिलोसा (Jussieua villosa)।

Scanned with CamScanner

गुण धर्म व प्रयोग–

संकोचक, वातनाशक, रक्तसंग्राहक बड़ी मात्रा में देने से आनुलोमिक, मूत्रल है।

रक्तस्राव पर—इसके पंचाङ्ग को पीस कर मट्ठे के साथ देने से रक्तातिसार, रक्तामातिसार, कफ के साथ रक्त जाना आदि किसी भी अङ्ग से होने वाले रक्तस्राव में लाभ होता है।

इसकी जड़ या छाल का क्वाथ दीपन, पाचन, ग्राही, मूत्रल, कृमिघ्न, ज्वरनाशक तथा मेद वृद्धि नाशक है। यह कुछ विरेचक भी माना जाता है।

क्वाथ की मात्रा—२॥ से ५ तोले तक दी जाती है
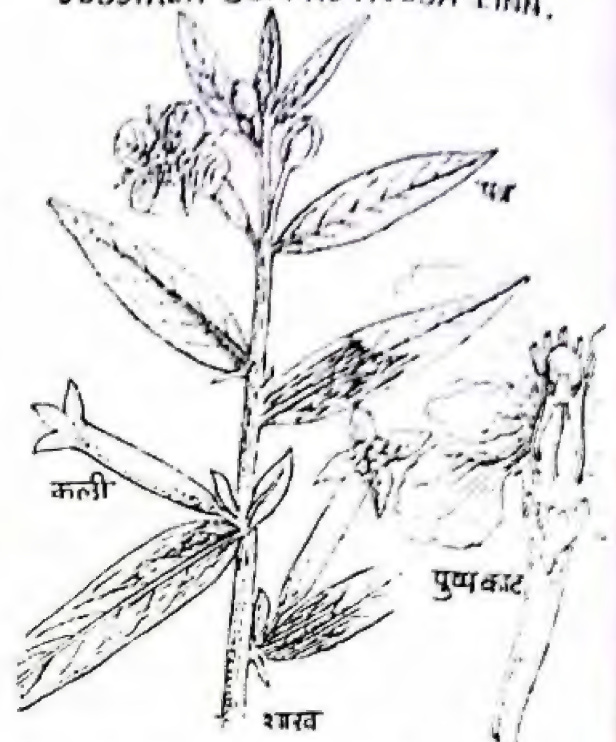
बन वार-दे.–वायविडंग में। बनवासी-दे –वाराहीकन्द। बनशेम्पगा-दे.–वनशेम्पगा। बन सन-दे.–झुनझुनिया। तथा सन के प्रकरण में। बन सेवती-दे.–गुलाव सफेद। बन हल्दी-दे.–आमा हल्दी तथा हल्दी के प्रकरण में

बनापू (Terminalia Coriacea)

हरीतकी कुल (Cembretaceae) के इस बड़े ऊंचे वृक्ष के।

पत्र—२५ सें. मी. तक लम्बे व ११ सें. मी. तक चौड़े होते हैं।

पुष्प—छोटे छोटे पीत वर्ण के;

फल— पीताभ कपिश (भूरे) रंग के होते हैं।

ये वृक्ष मद्रास प्रान्त एवं दक्षिण भारत के शुष्क पहाड़ों पर पैदा होते हैं।

नाम–

बनापू यह इसका कनाड़ी भाषा का नाम है।

अं.—लीथेरी मुरडाह (Leathery murdah)।

ले.— टर्मिनालिया कोरियासिया।

गुण धर्म व प्रयोग–

केस, महस्कर आदि डाक्टरों के मतानुसार इसकी छाल में प्रभावशाली हृदयोत्तेजक गुण है। –व. चं.

बनोगाल-दे -फाफरा में। बबई द.-तुलसी-बबई (बर्बरी)।

बबूल (Acacia Arabica)

बटादि वर्ग एवं शिम्बी कुल के अपने ही बब्बूल उप-कुल[1] (Mimosaceae) के प्रमख इस मध्यम प्रमाण

[1] इस कुल के वृक्षों के पत्र-संयुक्त, पक्षाकार; पुष्प कन्दुकाकार, सूक्ष्म, समूह में, दल–समान, समीप, तलभाग में जुड़े, फली–चपटी, संधिस्थान पर फटने वाली होती है।

Scanned with CamScanner

बबूल

ACACIA ARABICA WILLD.

के लगभग २५-३० फुट ऊंचे वृक्ष की शाखायें कंटक युक्त सघन झुकी हुई;

छाल—धूसर वर्ण की विकीर्ण, खुरदरी।

पत्र—संयुक्त, बहुत छोटे, इमली पत्र जैसे किंतु छोटे १०-२० जोड़े में; कांटे श्वेत १-३ इञ्च लम्बे, जोड़े में;

पुष्प—पीत वर्ण के गोल, छोटी घुण्डी जैसे अल्प सुगन्धित, फली-३-६ इञ्च लम्बी, आध इञ्च चौड़ी, चपटी, टेढ़ी, श्वेत वर्ण की ८-१२ बीजों से युक्त, बीजों के बीच-बीच में फली दबी हुई।

बीज—चपटे, गोल, धूसर वर्ण के होते हैं। श्रावण भाद्रपद मास में फूल, चैत्र मास में फली लग कर, ग्रीष्म में पकने लगती है। इस वृक्ष के काण्ड से रक्ताभ श्वेत वर्ण का निर्यास (गोंद) निकलता है। यह गोंद स्वयंमेव या काण्ड में क्षत करने से भी निकलता है। गोंद का संग्रह औषध कार्यों किया जाता है।

इसके वृक्ष भारत में प्रायः सर्वत्र विशेषतः काली मिट्टी वाले कड़ा जंगल प्रदेशों में अधिकता से होते हैं। उष्ण भूमि में प्रायः ३ हजार फुट की ऊंचाई पर नहीं पाये जाते हैं।

नोट नं० १-बड़े और छोटे के भेद से इसके दो प्रकार हैं। प्रस्तुत प्रसंग में बड़े का ही वर्णन है। इसे ही कीकर भी कहते हैं। इसका काण्ड २ से १५ फुट तक व्यास का होता है। छोटे प्रकार के बबूल (Acacia senegal) के वृक्ष १० से १५ फुट ऊंचे, काण्ड १ इंच या १ फुट से ४ या ५ फुट के व्यास का होता है। इसकी फलियां अपेक्षाकृत छोटी २-३ इंच लम्बी, गोलाकार ६-८ बीज युक्त, कोमल दशा में हरी तथा शुष्क दशा में कुछ काली हो जाती हैं। इसमें प्रायः फूल अधिक एवं विशेष सुगन्ध युक्त लगाते हैं। इसे खोर कुमटा कहते हैं। गुण धर्म में ये दोनों प्रकार के बबूल प्रायः एक समान हैं।

एक और प्रकार का बबूल बंगाल की ओर अधिक पाया जाता है। इसके पत्र व फली का रङ्ग काला, फूल अत्यधिक आते हैं, किंतु गन्ध अच्छी नहीं होती। यह औषधि कार्यार्थ गुणहीन माना जाता है।

नोट नं० २-एक विलायती बबूल होता है। इसके वृक्ष छोटे-छोटे, झाड़ीदार, शाखायें खूब फैली हुई; पत्र साधारण बबूल के पत्र जैसे ही होते हैं। ये बागों में शोभा के लिये लगाये जाते हैं। इसका विशेष वर्णन इसी प्रकरण के अन्त के नोट में देखिये।

नाम—

सं०-बबूल, किङ्किरात, युग्मकंटक, दृढ़ारूढ़ (शाखायें सुदृढ़ होने से), मालाफल (फली अनेक खण्डरों से युक्त माला सदृश होने से) पीत पुष्प इ.। हि.-बबूल, कीकर, किकर, भरकट इ.। म.-बाभूल। गु.-बावल, बावलिया बं.-बावला। अं.-अकेसिया ट्री (Acacla tree) ले.-एकेशिया अरेबिका; मिमोसा अरेबिका (*Mimosa Arabica*); अकेसिया फेरुगिनी (Acacia Ferruginea); अकेसिया सेनेगाल (Acacla senegal)

Scanned with CamScanner

रासायनिक संघठन–

इसकी छाल में अत्यधिक कषाय द्रव्य (टेनिन) पाया जाता है। फली में २२.४°/₀ टेनिन होता है। गोंद में अरेबिक एसिड़, कैल्शियम, मैगनीसियम, पोटासियम, कुछ मेलिक एसिड़ (Malic acid) तथा शर्करा, आर्द्रता १४./· और क्षार ३.४°/₀ पाया जाता है।

प्रयोज्यांग–छाल, फली, पत्र, गोंद, बीज, कांटे एवं पुष्पादि पंचांग।

गुण धर्म व प्रयोग–

गुरु, रूक्ष, कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य, कफ पित्त शामक, रक्तरोधक, व्रणरोपण, स्तम्भन, संकोचक, कफघ्न, दाहप्रशमन, विषघ्न तथा कास, चर्मविकार, दाह, पैत्तिक-विकार, आमातिसार, रक्तातिसार, वात, प्रमेह आदि में प्रयुक्त होता है।

औषधिकार्यार्थ—छाल (अन्तरछाल) कम से कम ७ वर्ष के जूने पुराने वृक्ष की लेनी चाहिये, तथा उस छाल को ताजी ही उपयोग में न लावें या छाया शुष्क कर ३ माह तक सुरक्षित रखने के बाद काम में लावें। पत्ते ताजे, कोमल लेना चाहिये। फली—जब तक इसके बीज कड़े नहीं हो जाते तब तक वह विशेष गुणयुक्त होती हैं; अतः औषधि कार्यार्थ ताजी कोमल फली ही लेवें। गोंद को अच्छी तरह सुखाकर साफकर काम में लेना चाहिये।

छाल–विशेष संकोचक, गुरु, कषाय, कफपित्तशामक, कृमिघ्न, कास, (ब्रांकाइटिस), अतिसार, रक्तातिसार, पित्तविकार, दाह, अर्श, प्रदर, धातुपतन, जलोदर, उदर, शोथ, कुष्ठ आदि विकारों में उपयोगी है।

यह कसैली व बल्य है। ओक बार्क (ओक Oak) नामक सदाहरित बड़ा वृक्ष यूरोपादि शीत प्रदेशों में होता हैं। भारत में इसका एक भेद (बबूल नामक वृक्ष है) ओक वृक्ष की छाल के प्रतिनिधि स्वरूप बबूल की छाल का उपयोग होता है तथा कहीं कहीं अस्पतालों में उसके स्थान में इसी का व्यवहार होता है। डालचन्दराय का कथन है कि फिटकरी या सफेदा के धावन (लोशन) की अपेक्षा अधिक संकोचक इसका लोशन होता है। आमातिसार में गुद की संवरणी कला की दुर्बलता या शैथिल्य में इसे देकर लाभ हुआ है। इसका निर्यास (शीत कषाय) शीतल, स्निग्ध, पोषक है। जठराग्नि में पचकर यह शर्करा नहीं बनता, अतः सोमरोग या मधुमेह में सेवनीय है। यह श्लेष्मधराकला की उत्तेजना से होने वाले कास, गलक्षत, आंत्रगत श्लेष्मदोष, रक्तातिसार, श्वेतप्रदर, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्रादि विकारों में सेवनीय है। विषजन्य अतिवमन या अतिरेचन में इसका क्वाथ उपयोगी है।

-डा० आर. एन. खोरी।

मुखपाक–मसूढ़ों से रक्तस्राव, कंठ पीड़ा, दन्तविकार में छाल के क्वाथ से कुल्ले कराते हैं।

कुष्ठ में––छाल का हिम नित्य दो बार ३ तो० पिलाते हैं।

गुदभ्रंश में—छाल के क्वाथ से प्रक्षालन कराते हैं। प्रमेह तथा विष विकार में–इसके क्वाथ का सेवन कराते हैं। मुख रोगों में (पारद विष जन्य मुखपाकादि) कुल्ले या मुख प्रक्षालनार्थ इसकी छाल के साथ थोड़ी या समभाग (६-६ माशा) आम वृक्ष की छाल मिला ५० तो० जल में आधा घंटा उबाल कर काम में लाना विशेष लाभदायक है। चिरकालिक या जीर्ण अतिसार में तथा मधुमेह में इसका फांट या क्वाथ (लगभग ४ तो० छाल में ५० तो० जल मिलाकर बनाया हुआ) ५ तो० तक की मात्रा में दिन में दो बार दिया जाता है।

वमन तथा विष विकार शमनार्थ––छाल का चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर २-२ तो० की मात्रा में ३-३ घंटे में देने से लाभ होता है, मुख के छालों पर–इसका चूर्ण मुख में बुरकने से लाभ होता है।

(१) जलोदरादि उदर रोगों पर—छाल को जौकुट कर आठ गुने जल में मन्द आंच पर पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान पुनः पकाकर खूब गाढ़ा करलें। इसे २-३ माशा की मात्रा में (या इसकी जंगली बेर जैसी गोलियां बनाकर) प्रतिदिन प्रातः तक्र के साथ सेवन से तथा केवल तक्र पर ही संयम के साथ रहने से जलोदरादि सर्व प्रकार के उदर विकार अवश्य ही

Scanned with CamScanner

नष्ट हो जाते हैं।   —बं. से.।

(२) कास, श्वास पर—छाल ५ तो. तथा जल १० तोले दोनों को लोह खरल में खूब कूटकर निचोड़ कर जो रस निकले उसे २½ तो. तक दिन में दो बार सेवन से सर्व प्रकार की खांसी दूर होती है। इसका इन्जेक्शन भी देते हैं। —अथवा

छाल १ से ३ तोले तक को २० तो. जल में फांट या चतुर्थांश क्वाथ कर छानकर सुखोष्ण दिन में दो बार पीने से जीर्ण कासादि सब प्रकार की कास में लाभ होता है। इसी क्वाथ में शहद ३ मा. मिलाकर सेवन से श्वास में भी लाभ होता है। अथवा—

छाल १६ मा. जल १६० माशे, कालीमिर्च १ मा. मुलैठी तथा बबूल का गोंद २-२ मा. और मिश्री ४ मा. इनका अवलेह विधि से अवलेह बनाकर सेवन से कास व श्वास में शीघ्र लाभ होता है।

(३) स्त्री रोग योनिशैथिल्य पर—छाल १ भाग को जल १० भाग में रात्रि के समय भिगोकर प्रातः आग पर उबालें। आधा जल शेष रहने पर उसे छान बोतल में भर लें। पेशाब करने के बाद स्त्री इस जल से अपनी योनि को धो लिया करे। ऐसा करने से कुछ ही दिनों में योनि कुमारी बालिका के समान हो जायगी। —यू. मत ब. चं.।

योनि शूल में—छाल का चूर्ण ३ मा. फांककर ऊपर से गरम जल २ तो. प्रातः सायं पीवें।

श्वेत प्रदर में—छाल का क्वाथ यथायोग्य मात्रा में पिलावें तथा इस क्वाथ (क्वाथ में थोड़ी फिटकरी मिला कर) की उत्तर वस्ति देना विशेष उपयोगी है। इस क्वाथ से गर्भाशय च्युति में भी उत्तम लाभ होता है। गर्भाशय के अनेक विकार इससे दूर होते हैं।

प्रसूति ज्वर आदि सूतिका विकार पर—छाल १ तो. (विलायती बबूल की) तथा कालीमिर्च दो या तीन दाने एकत्र महीन पीस कर गो दुग्ध के साथ सेवन करावें। पथ्य में केवल बाजरे की रोटी और गोदुग्ध देवें। १५-२० दिनों तक यही क्रम रखने से भयंकर सूतिका रोग अवश्य नष्ट होता है। —डा. रेवरेण्ड जोन गंगाराम वृक्ष-विज्ञान।

(४) मुखरोग, मसूढ़ों के विकार तथा दंत रोग पर—इसकी छाल के साथ इमली वृक्ष की, नीम की तथा पीपल वृक्ष की छालों को एकत्र जल के साथ पीसकर लेप करने से उत्तम लाभ होता है। अथवा—इसकी छाल के क्वाथ में फिटकरी मिलाकर कुल्ले करने से मुख एवं मसूढ़ों की सूजन आदि विकारों में, मुख रोगों में तथा दंत रोगों में विशेष लाभ होता है।

अथवा—इसकी छाल १ तो., नौसादर, कालीमिरच, अकरकरा, और गेरू ३-३ माशा एकत्र महीन पीसकर नित्य मंजन करने से मसूढ़ों के एवं दांतों के विकार दूर हो जाते हैं।

(५) कंठरोग तथा नेत्रविकार पर—गलौघ या वलय नामक कंठगतरोग जिसमें रक्तयुक्त, कफ जन्य, तीव्र ज्वर-युक्त, गले में चारों ओर वलयाकार (छल्ले के आकार का) बृहत्गलशोथ होने से अन्न जल का तथा उदान वायु का अवरोध होता है। यह प्रायः असाध्य माना गया है। इस पर भी इसके छाल के क्वाथ का सुखोष्ण गण्डूष मुख में कंठ तक दिन में कई बार ५-१० मिनट तक धारण करते रहने से लाभ होता है।   —आरोग्य मंदिर।

नेत्र विकार—नेत्रों के भीतर नेत्र कलागत रोहिणी (Conjunctival) में पीड़ायुक्त शोथ होने पर (Conjuntivitis), छाल के रस को स्त्री के दूध में मिलाकर नेत्रों में डालने से लाभ होता है।   —नाड़कर्णी।

पत्र—उष्ण, रोचक, मलरोधक, कास, वात, कफ, अर्श, अतिसार, नेत्र विकार, अस्थिभंग आदि विकारों में उपयोगी है।

रक्तस्राव, अग्निदग्ध तथा जख्मों पर पत्र का चूर्ण बुरकते हैं। पत्रों का शीत निर्यास कफ के साथ होने वाले रक्तस्राव को बन्द करता है। स्वप्नदोष में नित्यप्रातः टहल कर आने के बाद पत्तियों को चबाकर दूध या जल पीने से लाभ होता है।

कुत्ते के विष पर—पत्र रस में गोघृत और कस्तूरी मिला पिलावें या केवल पत्र रस को ही ४ तो. तक ३ दिन तक पिलावें।

(६) मूत्रावरोध, मूत्राघात, उपदंश तथा स्तंभनार्थ—इसके कोमल पत्र और गोखरू १-१ तो० तथा कलमी

Scanned with CamScanner

सोरा ६ मा. एकत्र जल के साथ अच्छी तरह महीन पीस कर पिलाने से मूत्रावरोध दूर होता है। यदि प्राप्त हो सके तो भैंस के कान का मैल पानी में मिलाकर पेडू पर इसके लेप कर दें तो और भी उत्तम है।

—हृ. भो. मो. अब्दुला साहब।

सुजाक पर पत्र २ तो० जल में भिगोकर दूसरे दिन प्रातः पीस व छान कर उसमें घृत २ तो० मिला गरम कर पिलावें। इसी प्रकार दूसरे व तीसरे दिन भी पिलावें। चौथे व ५ वें दिन घी न मिलावें तथा गरम न करते हुए ठंडा ही पिलावें। इस उपचार से सुजाक निर्मूल हो जावेगा। —अथवा।

इसकी कुछ कोमल पत्तियों के साथ शक्कर व काली-मिर्च को पीस छानकर रोगी को पिलावें। अथवा—

पत्र १ तो० के साथ लाल फिटकरी १॥ मा० मिला खूब महीन पीस कर ४० तो० जल में छानकर उसमें देशी खांड की बनी हुई मिश्री मिला प्रातः बिना कुछ खाये इसे पी जाया करें। कुछ दिनों में ही पूर्ण लाभ होगा।

इसके पत्र १ तो० रात्रि के समय जल में भिगोकर बाहर ओस में रख दें। तथा प्रातः जल को छानकर पीने से जुकाम की जलन शांत होती है।

अथवा—इसके पत्र व गोखरू १-१ तो० जौकुटकर १० तोला जल में भिगो दूसरे दिन प्रातः मल छान पीने से भी लाभ होता है, शरीर की दाह दूर होती तथा कुछ दिन के सेवन से चर्म रोग भी दूर होता है।

अथवा—पत्र चूर्ण में समभाग मिश्री मिला ६ मा. की मात्रा में कुछ दिन सेवन करने से उपरोक्त लाभ होता है।

उपदंश के व्रणों पर इसके पत्र चूर्ण को बुरकने से या लेप करने से लाभ होता है।

वीर्य स्तम्भनार्थ—पत्र रस में मोटे कपड़े को ७ बार भिगो एवं शुष्क कर कपड़े से छोटा टुकड़ा काटकर दूध में मल कर दूध को पीवें।

—संकलित।

(७) नेत्र-विकार पर—नेत्र शोथ, स्राव एवं नेत्र पीड़ा हो तो इसके कोमल पत्तों के रस का लेप करने से आघातजन्य या किसी भी कारण से हुई नेत्रों की सूजन तथा जल का बहना दूर होता है।

केवल स्राव ही अधिक होता हो तो पत्तों का घन-क्वाथ कर उसमें किंचित शहद मिला आंजने से या सेक करने से लाभ होता है।

नेत्र में पीड़ा हो, अर्जुन (नेत्र के श्वेत भाग में रक्त बिन्दु) हो तो पत्तों को पीस उसकी लुगदी बना घृत में गरम कर नेत्र के ऊपर रखने से पीड़ा एवं अर्जुन रोग की शांति होती है।

आंखें आई हों या उसमें दाह हो तो पत्तों को पीस कर नेत्रों पर गाढ़ा लेप करें।

उत्संग पिडिका (बिलनी) जिसके नेत्र पलक पर बार-बार पिड़िका उठती हों तो इसके २० तोला पत्रों को १। सेर जल में पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर छान कर सुरक्षित रखें। प्रातः सायं या बार-बार इसे पलकों पर लगाते रहने से पुनः यह विकार नहीं होने पाता। इस प्रयोग से बाम्हनी या खोरावायु विकार (जिसमें पलकों के बाल गिरकर पलकें लाल-लाल हो जाती हैं) भी दूर हो जाता है।

नेत्रों के सर्व विकारों पर—इसकी हरी पत्ती १ सेर (कांटा कचरा रहित साफ कर) जल १० सेर, पपड़खार (लोटियासज्जी व सेंधा नमक) १०-१० तो० एकत्र मिला पकावें। ४ सेर जल शेष रहने पर उतार कर मलकर छान लें। फिर इस जल को पीतल के कलईदार पात्र में डालकर पकावें। आधे से अधिक पानी जल जाने पर उसमें १ सेर शक्कर मिला मन्द आंच पर रख शहद जैसी चाशनी बना लें।

ध्यान रहे—चाशनी पतली रहने से सड़ जाती है; कड़ी हो जाने पर अंजन में उपयोगी नहीं होती। अतः नेत्रों में इसकी सलाई फिराने से औषधि नेत्र में फैल जाय ऐसी चाशनी होनी चाहिये। सलाई से इसे आंजने से नेत्रों की लाली, स्राव, मल (कीच अधिक) आना, राध वा पीप बहना, कुकूणक (कोथ, कोथई), शोथ आदि विकार दूर होते हैं। छोटे-छोटे (१ मास के) बालक और बड़ों सबके लिये हितकर है।

—रसतंत्रसार से साभार।

Scanned with CamScanner

अथवा कोमल पत्र २० तो० को ४० तो० जल में पकावें। आधा जल शेष रहने पर अच्छी तरह मलकर छान लें। फिर उसमें हुक्के का कीट, अफीम व शुद्ध नीलाथोथा (फुलाया हुआ) ४-४ रत्ती एकत्र खरलकर मिलावें और आग पर चढ़ाकर चलाते रहें। शहद जैसा गाढ़ा होने पर उतार कर उसमें उत्तम मधु २॥ तो., पुनर्नवा मूल का महीन चूर्ण १ तो० मिला खूब चलाकर कांच के पात्र में रख लें। प्रातः सायं इसे नेत्रों में आंजने से नेत्रस्राव, ढरका, मांडा, फूली व अर्जुन रोग दूर होकर दृष्टिमांद्य भी नष्ट होती है, दृष्टि तेज होती है।

—श्री रामचंद्र मिश्र, वैद्य, ब्रह्मपुर (शाहाबाद)
(धन्वन्तरि से)

कोमल पत्तों को घिस कर रस निकाल कर नेत्रों में टपकाने से अथवा स्त्री के दूध के साथ आंख पर बांधने से नेत्र पीड़ा व शोथ दूर होती है।

(८) मुख के विकारों पर—इसके पत्तों के साथ देवदार के पत्र और त्रिफला चूर्ण समभाग एकत्र जौकुट कर चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर इस क्वाथ के कुल्ले करने से मुख पाक, मसूढ़ों की सड़न, सूजन आदि एवं दांतों के सर्व विकार शीघ्र ही नष्ट होते हैं। तथा पारद विष जन्य मुख से निरंतर लालास्राव एवं भयंकर मुखपाक आदि विकार भी निश्चयपूर्वक शीघ्र ही दूर हो जाते है।

—आरोग्य मंदिर।

(९) अतिसार तथा अम्लपित्त पर—कोमल पत्तों को थोड़े से श्वेत जीरा व अनार की कलियों के साथ जल में पीस छानकर उसमें गरम किये हुए ईंट के टुकड़े को बुझाकर पिलाने से लाभ होता है। विशेषतः बच्चों के दंतोद्गम के समय होने वाले अतिसार में यह उपचार करते हैं।

इसकी १ तो० पत्तियों के साथ १ रत्ती अफीम घोट कर पिलाने से अतिसार का दर्द आराम होता है।

विशेषतः बड़ी जाति के बबूल की पत्तियों का रस पीने से सब प्रकार के अतिसार नष्ट होते हैं। इसकी १ तो० पत्तियों को जल में घोटकर पिलावें; रक्तातिसार आदि सब प्रकार के अतिसार में लाभ होता है।

कफातिसार में इसके पत्र और दोनों जीरे समभाग एकत्र चूर्ण कर लें। नित्य रात्रि के समय १। तो० चूर्ण, उष्ण जल के साथ सेवन से लाभ होता है।

—भा० भ० र०।

अम्लपित्त के विकार में रात्रि के समय इसके पत्रों के ५ तो० क्वाथ में आम का गोंद १ मा० मिलाकर रख दें। प्रातः इसे मल छान कर पिलावें।

—संकलित।

(१०) श्वासरोग, मेदरोग तथा हृदय की धड़कन व हिक्का पर—श्वास का कैसा भी जोर का दौरा हो ताजे पत्तों का रस २॥ तो० तक पीने से लाभ होता है। इस प्रकार २-२ घंटे से बार-बार पिलाने से पूर्ण शांति प्राप्त होती है। तथा श्वास रोगी इसका बराबर व्यवहार करते रहें तो श्वास विकार पूर्णतया दूर हो जाता है। पत्तों के अभाव में इसकी छाल को ही मुख में रखकर चबाते रहने से भी लाभ होता है।

मेदस्वी (स्थूल) व्यक्ति को अत्यधिक स्वेद आता हो तो पत्तों को पानी में पीसकर शरीर पर मलें, फिर इसी प्रकार हर्र को पीसकर मलने के बाद स्नान कर लेने से अधिक पसीने का आना शीघ्र ही रुक जाता है।

—यो. र.।

हृदय की कमजोरी एवं धड़कन पर—पत्तों को जल में भिगोकर रातभर रखने के बाद प्रातः यथाविधि भत्रके द्वारा अर्क खींच लेवें। ५ या १० तो० तक इस अर्क के सेवन से लाभ होता है।

—संकलित।

पत्तों की लुगदी के योग से बनाई गई अकीक भस्म का प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में देखिये।

हिक्का पर—ताजे पत्र १ तो० व सुपारीनग १ एकत्र कूट गोली बना चिलम में इसका धूम्रपान करें, तत्काल लाभ होता है।

(११) स्त्री रोग पर तथा गौरवर्ण की संतति के लिये:—

रक्तप्रदर पर—इसके कोमल पत्तों को थोड़े जल के साथ खूब गाढ़ा पीसकर (पतला न करें), पानी से भरे कोरे मटके के चारों ओर लेप कर रातभर बाहर ओस

Scanned with CamScanner

में रखें। प्रातः खुरच कर छायाशुष्क पीसकर रख लें। ½ से १ तो० में समभाग शक्कर या मिश्री मिला सेवन करावें। ३ दिन के इस प्रयोग से पूर्ण लाभ होता है। —ब. गु.।

यदि आमाशय से रक्तस्राव होता हो तो पत्तों को कालीमिर्च और शक्कर के साथ पीस छानकर पिलावें।

गुल्म पर—पत्र ५ तो., जल ६० तो. तथा सेंधा नमक ३ माशा एकत्र पकावें। २० तो. जल शेष रहने पर छान कर पिलावें। ७ दिन में पूर्ण लाभ होता है। दुर्बल को कम मात्रा में देवें। इससे स्त्रियों के रक्तगुल्म तथा किसी भी व्यक्ति के साधारण पैत्तिकगुल्म पर लाभ होता है। सन्तान गौरवर्ण की होने के लिये कोमल पत्र छायाशुष्क कर महीन चूर्ण कर लें। गर्भ रहने के बाद प्रतिमास १५ दिन तक २-२ माशा चूर्ण जल के साथ ले लिया करें। —संकलित

(१२) व्रण, जख्म एवं शोथ व बिच्छू के दंश पर—पत्र २० तोला तथा हल्दी ५ तो. दोनों का खूब महीन चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को करञ्ज के तैल में मिलाकर लगाने से दुष्ट व्रण भी नष्ट हो जाते हैं।

किसी भी वस्तु से कट जाने पर जख्म हो जाय तो इसके छायाशुष्क पत्र (पत्र के अभाव में कोमल फली) का चूर्ण और कोड़िया लोभान समभाग दोनों का महीन चूर्ण बनालें। जख्म पर थोड़ा नारियल या तिल तेल लगाकर ऊपर से इस चूर्ण को बुरकते रहने से शीघ्र लाभ होता है, जख्म में राध या पीव नहीं होने पाती।

—श्री बच्चूलाल वैद्य पो० बांसुरा जि० सीतापुर

इसके ताजे हरे पत्तों को पीस कर लेप करने से व्रण का शीघ्र रोपण होता है। इससे पैत्तिक या गरमी की सूजन भी दूर होती है।

बिच्छू के विष पर—इसकी पत्तियों को मुंह में दांतों से चबाकर मुख में बनाये रखें। जिसे बिच्छू का दंश हो उसके शरीर के जिस ओर दंश हुआ हो उसी ओर के कान में मुख लगाकर जोर से फूंक लगाते रहें या दोनों कानों में फूंक लगावें तथा चबाई हुई पत्तियों की दंश स्थान पर टिकिया भी बना बांध देवें। विष उतर जाता है।

—श्री बटुकराय कन्हैयालाल मु० पो० मरसीया जि० अमरेली (सौराष्ट्र)

खर्वा (वर्षाकाल में ऊंगलियों की सन्धियों में सड़ान होकर खर्वा हो जाता है) पर—इसकी पत्ती के साथ मेंहदी की पत्ती पीसकर लगाते हैं। शीघ्र लाभ होता है।

फली—इसकी फली के गुणधर्म प्रायः छाल जैसे ही हैं। कोमल कच्ची फली को शुष्क कर चूर्ण में दोगुनी शक्कर या मिश्री मिलाकर शीघ्रपतन, स्वप्न दोषादि वीर्य के विकारों पर दूध के साथ सेवन कराते हैं। कोष्ठबद्धता पर फली का चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर पिलाते हैं। पश्चात जितने पान खाये जावेंगे उतने ही दस्त होकर लाभ होता है।

(१३) वीर्य स्तम्भनार्थ तथा स्तन एवं योनि शैथिल्य पर—एक गज मोटा खादी का कपड़ा लम्बाई चौड़ाई में बराबर लाकर इस प्रकार फैला रखें जिसमें सिकुड़न न रहे। फिर बबूल की कच्ची, कोमल फलियों को कूटकर उसका चेपदार रस निचोड़ कर उस कपड़े पर लेप करें। प्रातः तथा संध्या को प्रतिदिन ऐसा ही लगातार २० दिन तक करने के बाद कपड़े पर दो अंगुल का मोटा लेप जम जाय तब उस कपड़े में से ५-६ माशा तक वजन का कपड़ा काट कर १ पाव से १ सेर गोदुग्ध में पकावें तथा छानकर शक्कर मिला पिलावें। इससे अपूर्व स्तम्भन शक्ति बढ़ती है। यदि स्त्री सेवन करे तो श्वेत प्रदर व योनि शैथिल्य दूर होता है, योनि संकुचित होती है।

नोट—कोई-कोई उक्त कपड़े पर रस की १४ पुटें देकर उसके १४ भाग कर १-१ टुकड़े को १ पाव दूध में शक्कर मिला मसल तथा छान कर सेवन करते हैं।

यदि उक्त कपड़े का छोटा सा टुकड़ा स्त्री अपने योनि में रखे तो योनि तङ्ग हो जाती है। यदि इस कपड़े की चोली (तंग ब्लाऊज Blouse) बनाकर स्त्री अपने स्तनों को उससे कसे रखे तो स्तनशैथिल्य दूर होता है। फलियों के क्वाथ में कोई भी स्वच्छ कपड़ा भिगोकर योनि में रखते रहने से भी योनि तंग हो जाती है। योनि के सर्व

Scanned with CamScanner

विकार दूर होते तथा दुर्गन्ध भी दूर होती है।

स्तम्भनार्थ अन्य योग—कच्ची कोमल फलियां को ३ गुने जल में (यदि फली १ सेर हो तो ३ सेर जल) पकावें। जल सूख जावे और फलियां बिल्कुल नरम हो जावें तब उन्हें खूब घोट पीसकर ४-४ माशा की गोलियां बना लेवें। नित्य १ गोली दूध के साथ सेवन करने से स्तम्भन शक्ति की वृद्धि होती है। —संकलित

(१४) प्रमेह व श्वेत प्रदर पर–फली निर्बीज छाया शुष्क ½ सेर, उटंगन के बीज, वंशलोचन, शीतलचीनी, गोखरू छोटा, बीज तालमखाना, शुक्तिभस्म, शतावर, छोटी इलायची बीज, बिदारीकन्द श्वेत, गोखरू बड़ा, श्वेत चन्दन बुरादा, प्रवाल भस्म, और आंवले का छिलका ३-३ तोला, मिश्री ६० तोला सबका महीन चूर्ण (कपड़छन चूर्ण) एकत्र घोटकर रखें। यह मेहमिहिर चूर्ण, प्रमेह नाशक एवं वीर्य पुष्टिकारक है। मात्रा ३ से ६ माशा तक अनुपान दुग्ध।

अथवा—निर्बीज, कोमल छायाशुष्क फलियों के महीन चूर्ण १ भाग में ½ भाग गोंद बबूल चूर्ण तथा समभाग मिश्री या शक्कर मिलाकर रखें। नित्य प्रातः ६ मा. चूर्ण खाकर २० तो. गौदुग्ध गरम किया हुआ अथवा धारोष्ण दुग्ध शक्कर मिलाकर पीने से वीर्य गाढ़ा होता है, प्रमेह दूर होता है तथा बल वृद्धि होती है। इससे स्त्रियों के श्वेत प्रदर में भी लाभ होता है।

अथवा निर्बीज कोमल फली तथा बबूल की कोंपल व गोंद तीनों समभाग चूर्ण कर ४ से ६ माशा की मात्रा में लेवें। ऊपर से दूध पीवें। वीर्य का पतलापन, स्वप्नदोष, शुक्रमेह, इत्यादि दोष दूर हो कर वीर्य शुद्ध, गाढ़ा व श्वेत बनता है।

नोट—स्वप्नदोष, प्रमेहादि पर मोदक प्रयोग विशिष्ट योगों में देखिये।

(१५) पांडु (पीलिया) व अर्श पर—छाया शुष्क कोमल फली का चूर्ण १ तो. तक में प्रवाल भस्म (बबूल के योग से बनी हुई आगे विशिष्ट योग देखें) १ से ३ रत्ती तक मिलाकर मिश्री के साथ सेवन करावें।

अथवा फली के चूर्ण के साथ समभाग मिश्री या खांड का महीन चूर्ण मिला रखें। मात्रा १ माशा से १ तो तक प्रात ताजे जल के साथ सेवन करावें।

अर्श पर—केवल फली के चूर्ण को ६ माशा की मात्रा में ताजे जल के साथ सेवन करते रहने से दोनों प्रकार के अर्श पर लाभ होता है।

नोट—इसके बीजों के प्रयोग आगे प्रयोग नं. २९ में देखिये।

(१६) कृशता तथा नेत्र विकारों और दन्त पीड़ा पर—कृशता पर आगे विशिष्ट योगों में 'बबूल रसायन' योग देखिये।

नेत्र विकार पर–ताजी कोमल फलियों (लगभग दो सेर) को कूट पीसकर रस निचोड़ लेवें। इस रस में देशी शुद्ध कपूर २ माशा तथा पोदीना अर्क (या पेपरमेंट) १ माशा मिलाकर थोड़ी देर धूप में रखकर छान कर शीशी में भर रखें। इसकी २-४ बूंद नेत्रों में टपकाने से नेत्रस्राव, नेत्राभिष्यन्द तथा नेत्रदाह में लाभ होता है।

पलकों के बाल झड़ते हों तो इसकी कच्ची फलियों के चेपदार रस को पलकों पर लेप करते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है। नये बाल उत्पन्न हो जाते हैं।

दन्त पीड़ा पर—फलियों का छिलका और बादाम के छिलकों को एकत्र मिलाकर जलावें। काली राख बना उसमें थोड़ा नमक मिला मंजन करने से लाभ होता है।

गोंद - स्निग्ध, मधुर, कषाय, मधुर विपाक, शीतवीर्य, वातपित्त शामक, ग्राही, वृष्य, बल्य, मूत्रल, कोष्ठगत रूक्षता निवारक, अस्थिसंधानक, रक्तस्राव निवारक, तथा मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदौर्बल्य, रक्तातिसार, रक्तपित्त, प्रमेह, मधुमेह, प्रदर आदि में प्रयुक्त होता है।

एलोपैथी में प्राय. इसके गोंद का ही विशेष व्यवहार होता है। इसे लेटिन में अकेसिई गम्माइ (Acaciae gummi) तथा अंग्रेजी में गम अकेसिया, गम सनेगल, गम अरेबिक (Gum Acacia, Gum Arabia. Gum senegal) आदि कहते हैं।

बबूल के बड़े वृक्षों का गोंद विभिन्न आकार प्रकार के अनियमित टूटे हुये बड़े अश्रुवत टुकड़ों के रूप में होता है, जिन पर सूक्ष्म दरारें होती हैं, तथा सूखने पर भंगुर

Scanned with CamScanner

होता है। टुकड़े को तोड़ने पर टूटा हुआ तल भाग चमकदार होता, एवं भिन्न भिन्न टुकड़ों में भिन्न भिन्न रङ्ग का या रखने पर कालान्तर में विभिन्न प्रकार के रङ्ग दीखते हैं। यह गन्धहीन एवं स्वाद में लुआबदार होता है

छोटे बबूल (A. Senegal) के गोंद के टुकड़े गोलाकार या अण्डाकार तथा विभिन्न लम्बाई के अश्रुवत्, तथा व्यास में ½ से ६ सेंटीमीटर तक होते हैं। ये हलके पीले रंग के अपारदर्शक प्रायः गन्धहीन एवं स्वाद में उक्त गोंद जैसे ही होते हैं। इसके टुकड़े जल में घुलने पर उक्त गोंद के समान विशेष लसदार नहीं होते, और न जल के नीचे इसका अधः क्षेप (Gummy deposit) ही होता है। ये दोनों प्रकार के गोंद अल्कोहल (९५ %) में नहीं घुलते।

बल एवं वीर्य वर्धनार्थ इसका पाक सेवन करते हैं। प्रसूता स्त्री को भी यह दिया जाता है। अतिसार, रक्तातिसार में इसका पानी पिलाते हैं, इससे आमाशय तथा आंत्र पीड़ा भी दूर होती है।

अस्थार्त्तव में—भूना हुआ गोंद व गेरू प्रत्येक ४॥ माशा दोनों को पीसकर प्रातः जल के साथ देते हैं।

अतिसारयुक्त ज्वर में—इसके चूर्ण में कुनाईन मिलाकर देते हैं।

उष्णताजन्य सिर दर्द पर—इसे जल में फुलाकर लेप करते हैं।

(१७) स्वप्नदोष, नपुंसकता तथा मधुमेह एवं स्वप्न दोष पर – गोंद से दुगनी शक्कर लेकर दोनों को महीन पीसकर उसमें थोड़ा जल मिला ६-६ माशा की गोलियां बना शुष्क कर सुरक्षित रखें। १-१ गोली प्रातः सायं सेवन से स्वप्नदोष, प्रमेह, वीर्य का पतलापन आदि वीर्य विकार दूर होते हैं।

नपुंसकतानाशक वाजीकरण योग—१ सेर गोंद के छोटे-छोटे टुकड़े कर मिट्टी के पात्र में आग पर रखें, ऊपर से श्वेत प्याज के रस के छींटे देकर भूनते जावें। ३० तोला तक रस शुष्क हो जाने पर नीचे उतार महीन पीसकर उसमें समभाग मिश्री या खांड मिलाकर सुरक्षित रखें।

प्रातः सायं १-१ तोला चूर्ण गोदुग्ध के साथ सेवन से पुंसत्वहीनता दूर होती, पतला वीर्य गाढ़ा होता, अतिस्तंभन होता तथा प्रमेह भी दूर होता है।—संकलित।

मधुमेह पर—बबूल की छाल तथा गोंद में यह एक विशिष्ट गुण है कि इनके प्रयोग से शरीर के रक्त में शर्करा नहीं बनने पाती।

मधुमेही यदि कुछ दिन नियमपूर्वक गोंद को घृत में भूनकर, प्रात सायं ६-६ माशा तक खाते रहें, तथा पथ्य में शर्करायुक्त, मिष्टपदार्थ न खावें तो विशेष लाभ होता है।

रक्त प्रदर, रक्तातिसार, रक्तार्श तथा श्वेतप्रदर पर—घृत में भुने हुए गोंद का चूर्ण २ माशा में गेरू १ माशा मिलाकर दूध के साथ सेवन से रक्तप्रदर, रक्तातिसार रक्तार्श में लाभ होता है।

रक्तार्श में १ तोला गोंद को १ तोला घृत में धीमी आंच पर तवे पर फूले बनाकर (घृत में भूनने से अच्छी तरह फूल जाने पर) नीचे उतार उसमें १० तोला जल तथा मिश्री २ तोला मिलाकर पेया बना प्रातः ७ दिन तक पिलाने से रक्तार्श का रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इससे मुखपाक में भी लाभ होता है।

श्वेत प्रदर पर—गोंद ॥ तोला को रात्रि के समय १० तोला जल में भिगोकर प्रातः उसमें किंचित् शहद मिलाकर पिलावें। —संकलित।

(१८) अतिसार तथा ग्रहणी पर—अतिसार (पेचिस) में—गोंद का महीन चूर्ण ६ माशा को १० तो. गेहूं के आटे में गूंद कर रोटी पका कर खिलाने से, रुक रुक कर दर्द के साथ दस्त आने पर विशेष लाभ होता है

अथवा—गोंद ६ माशा को १० से २० तोला जल में फाण्ट या चाय की तरह पेया बनाकर सुखोष्ण थोड़ा-थोड़ा (चाय की तरह १-१ चम्मच) पिलावें। स्वाद के लिये थोड़ी मिश्री मिला सकते हैं।

ग्रहणी या संग्रहणी में-घृत में भुना हुआ गोंद का चूर्ण २ मा. में बेल के कच्चे फल का चूर्ण समभाग मिला जल के साथ दिन में ४ बार देवें। -संकलित।

Scanned with CamScanner

(२०) शुष्क कास, छाती की पीड़ा, गले की जलन में—गोंद को मुख में रखकर चूसते रहने से लाभ होता है।

यदि कास के साथ श्वास भी हो, तो गोंद का ३० व ४० रत्ती तक चूर्ण को मक्खन में मिलाकर चटावें।

शुष्क कास (सूखी खांसी) पर—गोंद और खांड़ दोनों को समभाग महीन पीसकर थोड़े जल के साथ छोटे बेर जैसी गोलियां बना, छायाशुष्क करलें। इसे मुख में रखकर २-३ बार चूसते रहने से ही लाभ होता है।

गोंद के साथ, छायाशुष्क पीपल वृक्ष के पत्तों को महीन पीसकर जल मिला बेर जैसी गोलियां बना कर चूसने से लाभ होता है। —संकलित।

खांसते समय या वैसे भी थूक के साथ रक्त आता हो, तो गोंद चूर्ण ४॥ माशा को २½ तोला गौ घृत में १ या २ बार मिलाकर ७ दिन तक चटाते रहने से निश्चय ही लाभ होता है, रक्त आना बन्द हो जाता है।

बालकों की खांसी पर–गोंद ३ माशा, अफीम १ मा. तथा गेहूं का मैदा ३ मा. सबको पीस कर जल से मूंग के दाने जैसी गोलियां बना शीशी में सुरक्षित रखें। १ से २ वर्ष की आयु वाले बालकों को २ गोली २ से ४ वर्ष के बालक को ४ गोली, इस प्रकार आयु के अनुसार मात्रा बढ़ाते जावें। दूध पीने वाले को माता के दूध के साथ बड़े को जल में घिसकर पिलावें। इस योग से बालकों की साधारण खांसी तो क्या? काली खांसी भी दूर हो जाती है। यह अनेक बार का परीक्षित, विश्वसनीय योग है।

—हृ. मो. म. अब्दुला साहब।

(२१) सुजाक (पूयप्रमेह) पर—अच्छे साफ गोंद को स्वच्छ जल में घोलकर पतला पानी सा बना (अधिक जल मिला खूब पतला करें जिसमें चिपकन न रहे) इस गोंद के पानी की पिचकारी करने से मूत्र की जलन, सूजन पीप आना आदि शीघ्र ही बन्द होकर बहुत लाभ होता है। पिचकारी प्रातःसायं दो बार देवें।

(२२) नासूर (नाड़ी व्रण), बद की ग्रन्थि, अग्निदग्ध-व्रण तथा पाद दारी पर–गोंद तथा सिरका १-१ तो. और उत्तम शहद ६ मा. इनको एकत्र खरल में घोट कर कपड़े पर लगा नासूर या घाव पर लगाते रहने से पुराने से पुराना नासूर भी ठीक हो जाता है।

–गुप्त प्रयोग (आ. चिकित्सक)।

बद की गांठ पर–गोंद के गाढ़े लुआब को सर्प की कैंचुल पर चुपर कर बांधने से लाभ होता है। —व. गु.।

अग्निदग्ध पर – आग से जले हुये स्थान पर गोंद को जल में घोलकर लेप करने से तत्काल जलन शांत होकर घाव दूर हो जाता है।

पाददारी (बिवाई फटना)–गोंद को जल में गाढ़ा घोलकर बिवाई में भरकर ऊपर कपड़ा या कागज लगा देने से शीघ्र लाभ होता है। —संकलित।

(२३) गोंद के कुछ एलोपैथिक प्रयोग–गोंद का प्रधान उपयोग फार्मेसी में विशेषतः आभ्यन्तर प्रयोग के एमलसन्स बनाने में किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग जल में न घुलने वाली औषधियों का निलम्बन (Suspension) बनाने में तथा अनेक प्रकार की टिकियां, टेबलेटस, गोलियां एवं मुख गुटिका (Troches), मुख चक्रिका (Lozenges) आदि के निर्माण में किया जाता है।

इसके अतिरिक्त सोडियम क्लोराइड के साथ इसका सिरागत इन्जेक्शन अत्यधिक रक्तस्रावजन्य आत्यायिक अवस्था में किया जाता है। इससे रक्तभार का स्तर सहसा गिरने नहीं पाता जिसके परिणामस्वरूप सम्भावी स्तब्धता (Shock) का निवारण होता है।

(१) म्युसिलेजो अकेसिई (Mucill acae)—इसमें गोंद ८ औंस (८०० ग्राम), क्लोरोफार्म वाटर १२ फ्लुइड-औंस (६०० मि० लि०) होता है। प्रथम गोंद को थोड़े जल में मिलाकर बन्द पात्र में क्लोरोफार्म जल में मिला कर रख देते हैं। घुल जाने पर छानकर प्रयोग में लाते हैं।

(२) पल्विस ट्रागाकान्थी कम्पोजिटस (Pulv.trag.Co) यह शुद्ध किया हुआ गोंद का चूर्ण है। इसमें २० %गोंद होता है। मात्रा (B. P. dose) १० से ६० ग्रेन।

(३) सिरप्स अकेसिई (Syr. Acae.)। यह गोंद का

Scanned with CamScanner

शर्बत है। मात्रा—६० से २४० बूंद।

ये गोंद के आफिशलस योग हैं। उपरोक्त इन्जेक्शन का प्रयोग नान-आफिशयल है।

पुष्प–बबूल के फूल–किंचित् उष्ण, विबन्ध कारक हैं तथा रक्तपित्त, ज्वर, प्रमेह, अर्श आदि नाशक हैं। इसका अर्क ज्वर तथा उष्णता निवारक है। रक्तपित्त में पुष्पों को सुंघाते हैं। श्वेत प्रदर में फूलों की बत्ती, गुटिका आदि योनि में धारण कराते हैं। इसका क्वाथ रक्तातिसार में, इसका हिम रक्त की वमन में लाभकारी है।

कामला (पीलिया) में—फूलों को पीसकर समभाग शक्कर मिला नित्य २-४ तो. तक खिलाते हैं।

दाद (दद्रु) में—फूलों को पीसकर सिरके में मिला लगाते हैं।

(२४) सुजाक और पांडु पर—फूल २ तो. किसी मिट्टी के कोरे कोजे में डालकर २० तो. जल में भिगो दें। प्रातः रगड़ छानकर उसमें २ तो. चीनी (मिश्री मिलाना उत्तम) मिला पिलाया करें। कई दिनों तक सेवन से पूर्ण लाभ होता है। अथवा–

फूलों को कपड़े पर मसलने पर नीचे जो पीला चूर्ण छनकर जितना गिरे उसे सम्हाल कर एकत्र कर उसमें दोगुना वंसलोचन तथा बंसलोचन से दुगुनी चीनी मिला पीस सुरक्षित रखें। मात्रा ६ से १ तोला तक, प्रतिदिन शर्बत बजोरी अथवा दूध की लस्सी के साथ दिया करें। थोड़े ही दिनों में कुर्रा तक दूर हो जावेगा।

पाण्डु रोग पर–छाया शुष्क फूलों को खरलकर उसमें समभाग मिश्री अथवा लाल खांड मिला लेवें।

प्रतिदिन प्रातः आधा से १ तो. तक ताजे जल से लेवें। अति शीघ्र पांडु दूर होता है।

—हु० मौ० म० अब्दुल्ला साहब।

(२५) कर्ण स्राव तथा मुख के छालों पर–इसके फूलों को दो गुने तिल तैल में डालकर आग पर चढ़ावें। जब फूल बिल्कुल जल जावें तब छानकर शीशी में रखें। इसे थोड़ा गरमकर कान में २-४ बूंद डाला करने से कान से मवाद का आना शीघ्र ही बन्द हो जाता है।

मुख के छालों पर–पुष्प चूर्ण को शहद मिलाकर मुख के भीतर जीभ आदि पर लगाने से लाभ होता है।

कांटे और-बीज बबूल के कांटे व्रण नाशक, पूयघ्न, हिक्का निवारक, अपस्मार आदि नाशक हैं।

(२६) हिक्का पर—इसके कांटे २ तो. जवकुट कर ४० तो. जल में पकावें। १० तो. जल शेष रहने पर नीचे उतारकर उसमें १ तो. शहद मिलाकर पिलाने से प्रबल से प्रबल हिक्का (हिचकी) रोग शीघ्र ही दूर होता है।

यह योग मूत्राघात में भी विशेष लाभ करता है।

(२७) अपस्मार [मृगी] पर—बबूल के वृक्षों पर पत्र व शाखाओं के मध्य में कभी कभी कांटों की गांठ सी पाई जाती है। [इसमें टूटे हुए लगभग आध से १ इन्च के कांटों के टुकड़े परस्पर में एकत्र जुड़े हुए होते हैं। संभव है कोई कीड़ा इन कांटों को कुशलतापूर्वक तोड़कर अपने रहने के लिए गोल नोकदार घर बनाता हो। यह कांटों का गांठ खोजने पर मिल जाती है। इसमें केवल कांटे ही होते हैं]। इनको छायाशुष्क कर तथा जौकुट कर रख लेवें। इस चूर्ण को चिलम में रखकर अपस्मार ग्रस्त रोगी यदि धूम्रपान करे तो यह रोग सदैव के लिये दूर हो जाता है।

—संकलित।

बीज–स्तंभक, अस्थिसंधानक तथा स्नायु [नारू] आदि नाशक हैं।

(२८) वीर्य स्तम्भनार्थ–बबूल के कच्चे बीज १ भाग में ३ भाग [बीज १ सेर हो तो ३ सेर] जल मिला पकावें। जल शुष्क हो जाय तथा बीज बिलकुल गल जावें तब पीसकर ३-३ माशा की गोलियां बना छायाशुष्क कर रखें। १-१ गोली प्रातःसायं थोड़े दूध के साथ ४० दिन तक लेवें।

(२९) नारू पर–बीजों को गोमूत्र में भिगो देवें। फूल जाने पर उसी गोमूत्र के साथ ही पीसकर नहरुआ की पीड़ा के स्थान पर लेप करने से शोथ एवं पीड़ायुक्त सर्व प्रकार के स्नायुक (नारू) रोग नष्ट होते हैं। (यह प्रयोग लगातार ७ दिन करना चाहिये)।

—यो. र.।

(३०) अस्थि संधानक योग–टूटी हुई हड्डी जुड़ने के लिये बीजों के या पंचांग के चूर्ण (२ से ६ माशा तक)

Scanned with CamScanner

शहद के साथ (दिन में ३ बार) ३ दिन तक चटावें ।
—भा० प्र० ।

नोट-इस योग में बकरी का दूध मिलाकर कोई कोई मिलाते हैं ।

लकड़ी-बबूल की ताजी कोमल लकड़ी की दातौन करते रहने से दांतों के कई विकार नष्ट हो जाते हैं ।

(३१) मंजन—लकड़ी के कोयलों का महीन चूर्ण ३॥ तो. में फिटकरी १ तो. व कपूर आधा तोले दोनों का चूर्ण मिला (कपूर के साथ थोड़ा पिपरमेंट मिला देने से तरल द्राव होने पर उसे ही मिलाना श्रेष्ठ है) शीशी में भर रक्खें । इसका मंजन करते रहने से दांतों के पायोरिया आदि विकार दूर होते हैं । दांत स्वच्छ एवं निरोगी रहते हैं ।

पंचांग [छाल,पत्र, फली, फूल व गोंद]-बबूल का पंचांग – प्रमेह, मधुमेह, पूयमेह, श्वेतप्रदर आदि नाशक है । [फलीबीज रहित लेवें] ।

(३२) प्रमेह, मधुमेह,वीर्य क्षीणता और सुजाक पर—

पंचाङ्ग समभाग लेकर छायाशुष्क कर महीन चूर्ण बना लें । चूर्ण के समभाग खांड या शक्कर मिलाकर सुरक्षित रखें । ½ से १ तो० तक की मात्रा में, प्रातः सायं गाय के २० तो० दूध के साथ सेवन करते रहने से शीघ्र ही उक्त विकार दूर होते हैं । प्रमेह के लिये विशेष लाभप्रद है । वीर्य गाढ़ा होता है तथा बल की वृद्धि होती है ।

अथवा पंचाङ्ग २ से ४ मा० तक को नित्य प्रात. जल के साथ ठंडाई की भांति घोट छान कर पीते रहने से भी धातु का पतलापन, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, प्रमेह, प्रदर आदि विकार दूर होते हैं ।

सुजाक (पूयमेह) हो, तो—पंचाङ्ग चूर्ण ५ तो० में ४० तो० जल मिला रात भर रखें। प्रातः आग पर पकावें, अष्टमांश जल शेष रहने पर, उसमें शीतलचीनी व यवाखार २-२ मा० मिलाकर छानकर १ तो० खांड मिलाकर पिलावें । इस प्रकार दिन में ३ बार क्वाथ बनाकर सेवन से शीघ्र ही पूर्ण लाभ होता है ।
—भा० गृ० चि०

(३३) गुद भ्रंश तथा अस्थि सन्धानार्थ—

गुद भ्रंश पर-पंचाङ्ग में से केवल छाल, पत्र और फली लेकर उसके साथ धाय के पुष्प सब समभाग, लेकर जौकुट कर ५ तो० चूर्ण को ५ सेर पानी में पकावें । आधा पानी शेष रहने पर उतार कर किसी खुले बर्तन में डाल दें । पानी गुनगुना (सुखोष्ण) होने पर गुदभ्रंश वाले बालक को आध घण्टा तक उस पानी में बिठावें तथा इसी से गुदा को धोया करें । कई दिनों के प्रयोग से अवश्य आराम हो जायेगा । —ह. मो. म. अब्दुला साहब

अस्थि संधानक प्रयोग ऊपर प्रयोग नं० ३० देखिये ।

नोट—पचाङ्ग से बनाई हुई रस क्रिया (अकाकिया) का योग आगे विशिष्ट योगों में देखिये ।

बबूल की जड़-गर्भाशय एवं आमाशय विकार, दन्त विकार आदि नाशक है ।

(३४) गर्भाशय तथा आमाशय के विकारों पर—जड़ (छाल के सहित) का क्वाथ (अष्टमांश) तैयार कर सेवन कराने से लाभ होता है । —संकलित

दन्त विकारों पर मंजन—जड़ का छिलका ५ तो० तथा कत्था, सुपारी, संगजराहत १-१ तो०, कालीमिर्च व सौंठ १-१ मा. सबको महीन पीस लेवें । इसमें कई हकीम मस्तंगी १ तो० और नागरमोथा २ तो० मिलाते हैं ।

रात्रि के समय इसको दांतों पर मल कर सो रहें; कुल्ले न करें प्रातः कुल्ले कर के दांत साफ करें या प्रातः इस मंजन को दांतों पर मल दो घण्टे बाद कुल्ले कर साफ करते रहने से दांतों के लिये उत्तम है, खून बन्द करता है ।
—यू. चि० सा.

बन्दा—कीकर का बन्दा गर्भधारक है ।

बबूल के बड़े वृक्ष(कीकर) में ४-५ गज की दूरी पर एक फोड़ा सा निकलता है इसे कीकर का बन्दा कहते हैं। इसे लेकर छायाशुष्क कर, महीन पीस कर रख लें । स्त्री, ऋतु धर्म से निवृत्त होने के बाद ३ दिन तक लगातार इसे ३ मा० की मात्रा में सेवन करे,औरफिर पति के समीप जावे अवश्य सगर्भा होगी । किंतु स्त्री में प्रदर रोग, मासिक धर्म का अनियमित होना आदि कोई विशेष दोष न होवें । यदि होवें तो प्रथम उसकी चिकित्सा कर इस प्रयोग का सेवन करें । —भा. ज. बूटी

Scanned with CamScanner

अर्श पर—जैसे अन्य पेड़ों पर अन्यान्य वृक्षों के बान्दा पैदा होते हैं तैसे ही कीकर में भी होता है। उसके १ इंच का टुकड़ा काट कर तावीज (रक्तार्श हो तो ताम्र के तथा वातार्श हो तो चांदी के तावीज) में रविवार को मौन होकर, सूर्योदय से पूर्व स्नान कर भर कर रोगी की कमर में बांध दें। इसके बँधे रहने से यावज्जीवन अर्श नहीं होगा। —वैद्यरत्न श्री पं० तारादत्त जी त्रिपाठीब्रह्मकुटी भीमताल, नैनीताल (उ० प्र०)

नोट मात्रा—क्वाथ ५-१० तो.। पत्र कल्क २-४ मा० फली चूर्ण ३-६ मा०। छाल चूर्ण-३-६ मा०। बीज कल्क २-४ मा०। गोंद-३-६ मा० या १ तो० तक।

अधिक सेवन से आंत्र, आमाशय, छाती एवं फुफ्फुस के लिये हानिकर है। हानि निवारक बनफ्सा, कतीरा, मधु, है। प्रतिनिधि-अमरूद की छाल है।

गोंद—अधिक मात्रा में लेने से कब्ज करता है। हानि निवारक कतीरा, बेदाना, गुलाब और चन्दन है। इसका प्रतिनिधि-ढाक का गोंद, कतीरा, धावडे का गोंद है।

विशिष्ट योग-

(१) अकाकिया—यह यूनानी शब्द है, जिसका अर्थ है कीकर। मिश्र देश में कर्ज नामक कंटीले वृक्ष केफल को अकाकिया कहते हैं। कर्ज यह कीकर का ही एक भेद है। कीकर की कच्ची फलियों से या पत्र, छाल, फली, पुष्प के रस को शुष्क कर तैयार की गई वस्तु विशेष को अकाकिया कहते हैं।

कच्ची फली, पत्रादि को कूट कर रस निकाल छान-कर, मन्द आग पर पका कर गाढ़ा कर लें। फिर इसे शुष्क कर, टुकड़े कर लेवें। ये हरिताभ लाल वर्ण के भारी दृढ़ एवं प्रियगन्धयुक्त, स्वाद में मधुर, कसैले लुआ-बदार होते हैं।

कोई कोई छाल, फलियों, पुष्पों आदि को या अलग-अलग ५ सेर तक लेकर, जौ कुट कर १० सेर जल में भिगो २४ घंटे बाद आग पर पका कर छान पुनः छने हुए जल का घनक्वाथ कर छायाशुष्क कर लेते हैं। किंतु ध्यान रहे यह या उपरोक्त रस क्रिया लोह पात्र में नहीं करना चाहिये।

गुण धर्म व प्रयोग—

यह शीत, रूक्ष, अतिसंकोचक, रक्तस्थापक, बल्य, मृदुताजनक, वेदना शामक, तथा अतिसार, रक्तातिसार प्रवाहिका, सुजाक, प्रमेह, श्वेत प्रदर, नासूर, जीर्णवस्ति प्रदाह, शोथ आदि नाशक, दृष्टिशक्तिवर्धक, रक्तस्राव निरोधक, आंत्र विकारोंमेंश्रेष्टतर लाभदायी तथा बालों को काला करने वाला है।

शुक्र प्रमेह, स्वप्नदोष तथा श्वेत प्रदर में इसका सेवन कराते हैं। पैत्तिक शोथ एवं नेत्राभिष्यन्द में इसका लेप करते हैं। मुख पाक व गुदभ्रंश में इसका महीन चूर्ण बुरकते हैं। अग्निदग्ध में इसे अण्डे की सफेदी में मिलाकर लगाते हैं। अतिसार में इसे १॥ मा० की मात्रा में खिलाते हैं, तथा जल में घिस कर पेट पर लेप करते हैं। यदि विशेष लाभ न हो तो इसे पानी में घोल कर वस्ति देते हैं। सर्व प्रकार के अतिसार में अवश्य लाभ होता है। प्रवाहिका पर इसके साथ सम भाग जला हुआ कागज प्रत्येक ९ मा० हड़-ताल पीली और लाल की भस्म प्रत्येक १३॥ मा० लेकर सबको बारतंग के स्वरस (बारतंग का प्रकरण आगे भाग ५ में देखें) १¼ सेर में खरल कर टिकिया बनावें। यदि थोड़े प्रमाण में पूय (पीब) युक्त प्रवाहिका हो तो २-३ रत्ती खाकर चावलों का मांड़ पीवें यदि अधिक प्रमाण में पीप आ रही हो तो इसे पानी में घोल कर वस्ति करें। यह जीर्ण प्रवाहिका तथा पीप आने में लाभप्रद है।

—यू० चि० सा०

(२) बब्बूलारिष्ट (बब्बुलासव)—बबूल की छाल १० सेर जौकुट कर ५१ सेर १६तो. जल में पकावें। चतुर्थांशशेष रहने पर छान कर ठंडा कर १६ तो० उसमें गुड़ ५ सेर, धाय पुष्प चूर्ण ६४ तो०, पिप्पली ८ तो., जायफल शीतल चीनी, बड़ी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, लौंग, काली मिर्च ४-४ तो. चूर्ण कर सबको मिला कर संधान पात्र में भर मुख संधान कर, जमीन में या जौ के ढेर में गाड़ दें। १ मास बाद निकाल कर ऊपर के स्वच्छ जलांश को लेकर, छान लें तथा बोतलों में भर रखें। १ से ४ तो० तक (आवश्यकतानुसार सेवन करें। इसका विशेष विवरण तथा बबूल के भिन्न भिन्न आसवों के प्रयोग हमारे

Scanned with CamScanner

बृहदासवारिष्ट संग्रह में देखिये ।

आसव कीकर फली—बीज रहित हरी फलियां ५सेर, जौकुट करें, हरड़,अजवायन पुराना गुड़ ३–३ सेर,लोहचूर्ण १ सेर तथा जल ४० सेर लेकर सबको संधान पात्र में भर, मुख मुद्रा कर, जमीन में गड्ढा खोद कर पात्र रख दें। २१ दिन बाद, निकाल छान कर रख दें ।

मात्रा—४ तो. तक । यह संग्रहणी, अर्श व बहुमूत्र रोग नाशक है । इस पर गेंहू, चावल व घृत पथ्य है ।

(३) अर्क बबूल—इसकी छाल १० सेर (जोकुट की हुई) गुड़ ३५ सेर ३६ तोला इन दोनों को २॥ मन जल में एक मटके में डाल जमीन में गाड़ दें । जब लाहन उठ जावे तो ३० सेर अर्क निकाल उसमें लौंग ६ माशा, जावित्री, जायफल, दालचीनी, छोटी इलायची व खस १-१ तोला, चन्दन श्वेत २ तो., गुलाब पुष्प ५ तो. इनका चूर्ण मिला रखें । दूसरे दिन प्रातः २० सेर अर्क इसका खींच लें। फिर इस अर्क में उक्त द्रव्यों का चूर्ण आधा भाग डालकर रखें और प्रातः पुनः इसका १२ सेर अर्क निकाल लें । यदि इतर गुलाब ३ माशा भवका यन्त्र में डालकर अर्क निकालें तो और उत्तम है। मात्रा ५ तो के सेवन से उन्माद (खफकान), हृदय की धड़कन, क्षीणता दूर होती है। —यू. चि. सा.

अर्क नं० २—छाल ५ सेर, किशमिश, गुड़ प्रत्येक २॥ सेर लहसुन, लौंग ६-६ तो. ऊरगरकी १ तो. चन्दन श्वेत ११ मा , बनफशा जड़, नागरमोंथा ६-६ मा., नारङ्गी का छिलका, बहमन श्वेत, बहमन सुर्ख, शकाकल मिश्री, तमालपत्र, दालचीनी, गावजबान १-१ तो., खस २ तो., केशर ६ मा., अम्बर ३ मा. लेकर अम्बर और केशर को अलग रखकर सबको ८ गुना जल में भिगो मटके में बन्द कर जमीन में ७ दिन गाड़ रखें । फिर उसमें ८ गुना जल डालकर जल से आधा अर्क खींच लेवें। केशर व अम्बर की पोटली नलिका के मुख पर बांधें। मात्रा ५ तो. भोजनोपरान्त। यह दीपक, पाचक तथा बलवर्धक है ।
—यू. चि. सा.

अर्क बबूल पुष्प—पुष्प बबूल १ सेर. चमेली व मोतिया के फूल २-२ तो., गुलाब, नीलोफर, गुल गाव-जवां १०-१० तो. इनमें ७ सेर जल मिला, विधिवत् अर्क खींच लेवें। यह हृद्य है, दिल को प्रसन्न और बल-वर्धक है। —संकलित

(४) बबूल रसायन योग—बबूल की फली और बावची के बीज समान भाग लेकर चूर्ण बना लेवें। १॥-२ मा. की मात्रा में दूध के साथ लेने से कृश व्यक्ति स्थूल हो जाता है। यह योग शरीर कम्प और शोथ में भी उपयोगी है। इसे १ महीने तक सेवन करने से बुद्धि मेधा व स्मृति की वृद्धि होती है, वलिपलित का नाश हो जाता है। —वं. से.

(५) बबूलादि गुटिका—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गंधक २ भाग, पिप्पली ३ भाग, हरड़ ४ भाग, बहेड़ा ५ भाग, अडूसा ६ भाग और भारङ्गी ७ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली कर उसमें शेष द्रव्यों का चूर्ण मिला सबको बबूल के रस की २१ भावनायें देकर सुखाकर शहद के साथ घोंटकर १ से १॥ मा. की गोलियां बना लेवें। इसके सेवन से ५ प्रकार की खांसी, ऊर्ध्व श्वास तथा कफ नष्ट होता है। —भा. भै. र.

बबूल गोंद वटी—गोंद बबूल ६ मा., मिश्री १ तो., कपूर १ मा., इलायची छोटी २ मा., नमक १ रत्ती के चूर्ण को नीबू स्वरस २ तो. में घोटकर छोटी छोटी गोलियां बना लेवें। (कोई-कोई इसमें नमक नहीं डालते) यह गोलियां रुचिकारक हैं। इससे वमन, जिह्वा की जड़ता, मुख शोष, पिपासा भी दूर होती है।
—सि. भै० मणिमाला

(६) पाक गोंद—बबूल का गोंद ५ तो., उड़द की दाल धुली हुई का आटा २० तो. इन दोनों को ४० तो. घृत में भून पीस कर रखलें तथा बिनोला की मींग, नारियल गिरी और पुराने काले तिल ५-५ तो., बादाम गिरी २ तो. सबको महीन कर १ सेर शक्कर की चाशनी में मिला पाक जमा देवें या २॥ तो के मोदक बनालें ।

प्रातः सायं दूध के साथ २ से २॥ तो. तक सेवन से शरीर पुष्ट होता है। शीघ्रपतन, धातुक्षीणता, शुक्रमेह,

नपुंसकता आदि वीर्यविकार शीघ्र दूर होते हैं।

नोट—और भी उत्तमोत्तम पाकों के प्रयोग हमारे 'पुष्टपाक संग्रह' ग्रन्थ में देखिये।

(७) मोदक मापफली रस—बीज रहित इसकी फलियों को कूटकर रस निकाल उसमें उड़द के साबित दाने इतने डालें कि जिनसे रस १२ अंगुल ऊपर रहे। धूप में रखदें। रस शुष्क हो जाने पर हाथों से मसल कर ऊपर के छिलके दूर कर पत्थर के खरल में महीन कर तथा गोघृत में भूनकर अच्छी तरह चूर्ण कर उसमें आवश्यकतानुसार बादाम गिरी, पिश्ता तथा खांड आदि मिला मोदक २ से ४ तो तक के बनालें। प्रतिदिन प्रातः १-१ मोदक सेवन से प्रमेह, स्वप्नदोष, वीर्य का पतलापन धातु क्षीणता तथा कटिपीड़ा आदि रोग दूर होते हैं। —ह. मौ. अब्दुल्ला साहब

अथवा उर्द की दाल धुली हुई को मिट्टी के पात्र में रख उस पर फलियों का रस डाल दें। सब दाल भीग जाने पर छाया शुष्क करलें। पुनः पूर्ववत् भिगोदें। ऐसे ७ बार भिगो तथा शुष्क कर दाल को महीन पीस कर उसमें अर्ध परिमाण में जायफल का चूर्ण तथा सब से दूनी खांड मिला मोदक बना लें। नियमपूर्वक प्रातः सायं दो तोला की मात्रा में दूध या जल के साथ कम से कम २७ दिन सेवन से अत्यन्त भयंकर प्रमेह, स्त्रियों का श्वेत प्रदर भी दूर होता है। —संकलित

(८) छाल क्वाथ से बनी हुई गोधूमपंजीरी—बबूल की छाल को जल में पकाकर उसमें गेहूं को भिगो छाया शुष्क कर पिसवाकर उसमें उचित मात्रा में घृत, गोंद, खांड तथा मेवा मिलाकर पंजीरी बनालें। प्रतिदिन प्रातः इसका नाश्ता (कलेवा) करें। इससे कटि पीड़ा में पूर्ण लाभ होता है। प्रमेह, शीघ्रपतन, श्वेतप्रदर में भी उपयोगी है। वीर्य गाढ़ा होता है।

—ह० मौ० म० अ० साहब

(९) हलवा या अवलेह या माजून गोंद—गोंद ४० तो० को घृत २ सेर में भूनकर घृत को पृथक् करलें। फिर असगंध, पुरानी काली, सोंठ १७-१७ मा०, लौंग जायफल ३१-३१ मा०, दालचीनी, पान की जड़, कबाबचीनी, जावित्री, अकरकरा १४-१४ मा० इन सबको कूट छानकर उक्त घृत में मिला कर खांड ३ सेर का पाक कर उसमें उक्त भुना हुआ गोंद मिला चमचे से चलावें। हलवा सा हो जाने पर नीचे उतार उसमें उक्त चूर्ण मिश्रित चूर्ण मिला लेवें।

१ से तीन तो० तक सेवन से पुंसत्व शक्ति बढ़ती, कटिपीड़ा नष्ट होती, आमाशय की बल वृद्धि होती है। इस योग को ज्वारस विक्रमाजीत कहते हैं।

—यू० चि० मा०।

(इस योग में कंकोल ५२॥ मा० लेने को लिखा है, सदेहास्पद होने से हमने उसे नहीं लिया है)।

हलवा नं० २—गोंद और सिंघाड़े का आटा २०-२० तो० दोनों को २० तो० घृत में भूनकर उसमें पिश्ता, बादामगिरी, चिलगोजा तथा छोटी इलायची के दाने ५-५ तो०, दालचीनी, सोंठ ४-४ मा०, तोदरी लाल, बहमनश्वेत ६-६ मा०, सेमल की मूसली १ तो० व पिप्पली १ मा० इन सबको महीन कर मिला दें। १॥ सेर खांड की चाशनी में इसे मिलाकर हलवा या अवलेह बना लेवें।

यह शीतकाल में सेवनीय है, पुरुषों के वीर्य सम्बन्धी विकारों में लाभप्रद हैं। मात्रा २ से चार तो०।

हलवा नं. ३—गेहूं का मैदा ५ तो. को २० तो० घृत में मन्दी आंच पर भून लें। जब कुछ लाल होने पर आवे तो उसमें गोंद और आंवले का चूर्ण ५-५ तो० मिला कर उसमें तुरन्त ही २० तो० शक्कर जल में घोलकर मिला दें। गाढ़ा हो जाने पर उतार लें। नित्य प्रातः २ तो० हलवा खाकर ऊपर से २० तो० गरम दूध लेलें। बल, वीर्य व मैथुन शक्ति बढ़ती है।

(१०) गोंद की बरफी—गोंद २० तो० को ऐसा कूट लेवें कि वह चूरा न होने पावे। फिर कड़ाई में ४० तो० घृत गरम कर उसमें थोड़ा-थोड़ा गोंद डालते जावें। गोंद खूब फूल जाने पर निकाल लें। इस प्रकार सब गोंद फूल जाने पर २० तो० शक्कर की दो तार की चाशनी बना उसमें गोंद मिलाकर नीचे उतार लेवें। इसे करछी से अच्छी तरह चलाकर थाल में घी चुपड़ कर जमा दें।

Scanned with CamScanner

दिन में ३ बार २-२ तो० की मात्रा में दूध के साथ सेवन से अशक्ति, प्रमेह, प्रदर, प्रसूतरोग, वीर्य का पतलापन आदि विकार दूर होते हैं। —संकलित।

(११) श्यामकेश रसायन—बबूल की फलियां ४ सेर (वे ऐसी हों जिनमें भलीभांति रस पड़ चुका हो किंतु बीज कड़े न हुए हों) लेकर मटके में डालकर उसमें २० सेर जल और आधा सेर लोहे का चूर्ण ऊपर से डाल दें तथा २० दिन तक धूप में रखें। तीसरे दिन बबूल की लकड़ी से हिला दिया करें। २१ वें दिन ऊपर से जल को निथार कर बोतलों में भर रखें।

नित्य प्रातः ७॥ तो० से १५ तो० तक बलाबल के अनुसार सेवन कराने से केश काले स्याह हो जावेंगे। यह बालों को श्वेत होने से रोकता है तथा श्वेत हुए बालों को काला बनाता है। यदि वर्ष में १ महीना इसका सेवन कर लिया जावे तो बाल शीघ्र श्वेत न होंगे। इसके अतिरिक्त यकृत दौर्बल्य, प्रमेह, शीघ्र पतन, स्वप्नदोष में भी लाभप्रद है। —हृ० मौ० म० अब्दुला साहब।

(१२) चांदी भस्म—चांदी का चूरा या वर्क ३ मा. को पक्के खरल में डालकर उसपर बबूल की फलियों का दूध (चेंपदार रस) अथवा पत्तों को कूट कर निकाला गया रस २० तो० डालकर रगड़ते रगड़ते शुष्क कर गोली सी बना कूजे में बन्द कर २५ सेर उपलों की अग्नि निर्वात स्थान में देवें। इस प्रकार ३ पुट में उत्तम भस्म होती है।

मात्रा ६ मा०, मक्खन के साथ सेवन से अर्श व प्रमेह में उत्तम लाभ होता है। —भा. ज. बू.।

(१३) ताम्र भस्म - ताम्र का चूरा ६ मा० पक्के खरल में डालकर उस पर बबूल की कोंपलों का स्वरस डालकर १ प्रहर तक खरल कर मिट्टी के कूजे में कपरोटी कर केवल २ सेर उपलों की आग देवें। इसी प्रकार २७ बार पुट होने पर उच्च श्रेणी की प्रतिभाशाली भस्म तैयार होगी, जो वीर्य की वृद्धि के लिये एक अक्सीर का काम करती है। पुंस्त्व शक्ति को बढ़ाती, दूध व घृत को पचाती तथा मरणासन्न व्यक्ति को खिलाने से शीघ्र आराम करा देती है। मात्रा १ चावल से ६ मा० तक मक्खन या मलाई में लपेट कर दिया करें।

(१४) अकीक भस्म—शुद्ध लाल अकीक २ तो० को बबूल पत्र की ३० तो० लुगदी में रखकर शराव संपुट में कपरोटी कर शुष्क होने पर २० सेर उपलों की आग में फूंक देवें। इस प्रकार ३ बार करने पर अत्युत्तम कोमल भस्म होगी। इसे अर्क केवड़े से अत्यन्त महीन पीस कर रखलें। हृदय की निर्बलता, धड़कन आदि के लिये अति लाभदायक है। मात्रा १ रत्ती, गुलकन्द या मक्खन में लपेट कर दिया करें।

(१५) प्रवाल भस्म—शाखा प्रवाल २ तो० को इसकी लुगदी २० तो० में रख सराव संपुट एवं कपरौटी कर २० सेर उपलों की आग देवें तथा महीन पीस कर रख लेवें। यह पांडु, हृदय दौर्बल्य, और प्रमेह पर लाभप्रद है। मात्रा १ से ३ रत्ती।

(१६) गोदन्ती भस्म—गोदन्ती हरताल की ५ तो० डली को इसकी २ तो० लुगदी में रख सराव सम्पुट कर १५ सेर उपलों की आग देवें तथा शीतल होने पर निकाल लें। श्याम वर्ण की भस्म होगी। महीन पीसकर रखलें। मौसमी ज्वरों के लिए तथा अन्य ज्वरों के लिए भी साधारणतया लाभप्रद है। मात्रा १ से ३ रत्ती तक अर्क सौंफ या ताजे जल के साथ दिया करें। दिन में ३ बार।

बिलायती बबूल (Parkinsonia Aculeata)

उक्त बबूल के कुल का ही यह बिलायती बबूल १०-१५ फुट ऊंचा होता है। कांड–पीताभ हरित वर्ण का अनेक लम्बी ४ इन्च से १ फुट तक मोटी, कंटीली शाखाओं से युक्त होता है। बारहों महीने हरे पत्तों और सुन्दर पीले पुष्पों से भरे हुए ये वृक्ष बहुत सुन्दर दिखाई देने से बाग बगीचों में आसपास लगाये जाते हैं। पत्र

Scanned with CamScanner

उक्त बबूल के पत्र जैसे प्रत्येक सींक पर ३० से ६० तक।

वृन्त–कुछ पीताभ, गन्ध में अप्रिय, स्वाद में कुछ कड़वे।

पुष्प—पत्रकोण से निकली हुई ½ से ६ इञ्च लम्बी शलाका पर सुशोभित उक्त बबूल के पुष्प जैसे, पुष्पवृन्त पतला हरिताभ पीत वर्ण का ½-¾ इञ्च लम्बा, पुष्प, गन्ध में गुलाबास के पुष्प जैसा होता है।

फली उक्त बबूल के फली जैसी, ३-६ इञ्च लम्बी कुछ चौड़ी, नोकदार, चिकनी, ३-६ बीजयुक्त होती है।

बीज—लम्ब, गोल, कच्ची दशा में फीके हरे रंग के, पकने पर कृष्णाभ भूरे रंग के, कड़े, चिकने, चमकीले, गन्ध में उग्र, स्वाद में चने के स्वाद जैसे होते हैं। कच्चे बीजों में कुछ मिठास होने से बालक बड़े स्वाद से खाते हैं। पकी हुई फलियों को सेंक कर बीजों को निकाल कर खाते हैं। अधिक खाने से ये कब्जी करते हैं।

नोट—ये अमेरिका के मूल निवासी वृक्ष भारत में भी कई स्थानों की पीड़ित जमीन पर पैदा हुए पाये जाते हैं।

नाम—

हिन्दी—विलायती बबूल या कीकर। मराठी—केसरी बाबुल। गुजराती – रामबबूल, परदेशी बावल। लेटिन—पार्किन सोनिया एक्युलिआटा।

गुण धर्म व प्रयोग—

ग्राही, पौष्टिक और शोथघ्न है। रक्तविकृतिजन्य शोथ पर—मूल की छाल को सोंठ के साथ पीस कर लेप करते हैं।

प्रमेह पर—इसके कांड की अन्तर छाल को कूटकर रात्रि के समय जल में भिगो प्रातः मल छान कर थोड़ी शक्कर मिला पिलाते हैं।

फोड़े फुन्सी पर—पत्तों को पीस कर लगाते हैं।

—जयकृष्ण इन्द्रजी कृत 'वनस्पति वर्णन' से संक्षिप्त

बभनैटी—देखो भारंगी।

बरगद (Ficus Bengalensis)

वटादिवर्ग एवं अपने वटकुल[1] (Urticaceae) के प्रमुख इस दीर्घायु बड़े ऊंचे क्षीरी वृक्ष के कांड की गोलाई २०-३० फुट तक; शाखाएं बहुत दूर तक चारों ओर फैली हुई; शाखाओं से तन्तु या वरोह निकल कर जमीन की ओर लटकते हुए तथा जमीन में मूलरूप से लग जाते हैं।

छाल –श्वेत, धूसर, मोटी।

पत्र—गोलाकार मोटे ४-८ इञ्च लम्बे, २-५ इन्च चौड़े, पृष्ठ भाग में ४-५ संयुक्त सिराओं से युक्त कोमल दशा में लाल फिर हरे पत्र वृन्त-१-२ इन्च लम्बा उपपत्र ¾ से १ इंच लंबे कोमल दशा में हरे फिर रक्ताभ होकर शीघ्र गिर जाने वाले होते हैं। इसके नूतन पत्र शृङ्ग या सींग जैसी नुकीली कलिकाओं में लिपटे हुए निकलते हैं अतः इसे शृंगी या श्रृंगी कहते हैं। पुष्पकर्णिका (पुष्पाधार) पत्र कोण से निकल कर फल का रूप धारण करलेती हैं। ये कर्णिकाएं २-२ जोड़ से पास-पास ही आधी से १ इन्च लम्बी उतनी ही चौड़ी, कोमल दशा में हरी भूरी, पकने पर लाल हो जाती हैं। कर्णिका के तले में हलके पीले पुष्प पत्र ३ इन्च चौड़े होते हैं। नर एवं मादा पुष्प कर्णिका के भीतर अणुवीक्षण यन्त्र से देखने पर (मादा फूल के ऊपर नरफूल) दिखाई देते हैं।

मूल या इसकी जड़ें–मोटी, कड़ी, बहुत लम्बी चारों ओर को दूर तक फैली हुई तथा मूल की छाल रक्ताभ, दृढ़, स्वाद में कसैली होती है। इस वृक्ष के प्रत्येक भाग में

---

[1] इस कुल के वृक्षों के पत्र—एकान्तर, उपपत्र युक्त; पुष्प–छोटे व कर्णिका के भीतर एकत्र जमे हुए नतोदर स्तबक के रूप में, बाह्याभ्यन्तर संयुक्त कोश बीजकोश एक खण्डवाला होता है।

Scanned with CamScanner

दूधिया रस होता है, जो चोट मारने से या तोड़ने से निकलता है।

पुष्प या फल बसंत ग्रीष्म में तथा फलों का पाक वर्षा में होता है।

इसके वृक्ष समस्त भारत में पाये जाते हैं। हिन्दूधर्म या वैदिक धर्मशास्त्रानुसार पीपल वृक्ष के जैसा ही यह श्रेष्ठ, पवित्र एवं पूजनीय है।

नोट नं० १—चरक के मूत्रसंग्रहणीय, कषाय-स्कन्ध तथा गर्भस्थापन विधि में और सुश्रुत के न्यग्रोधादि-गण में इसका उल्लेख है। भावप्रकाश में यह क्षीरी वृक्षों एवं पंचवल्कल में लिया गया है। वड़, पीपल, गूलर, पारस पीपल और पाकर इन पांचों वृक्षों की छाल को पंचवल्कल कहते हैं। तथा ये ही क्षीरी वृक्ष कहाते हैं।

वट (बरगद)

FICUS BENGALENSIS LINN.
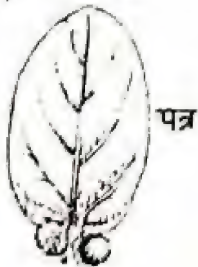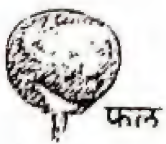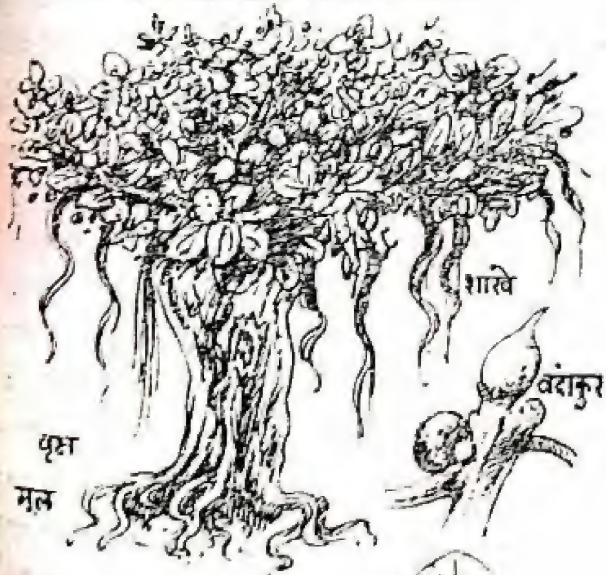
नोट नं० २—राजनिघण्टुकार ने इसका एक भेद 'नंदीवट' का उल्लेख किया है। नदियों के किनारे होने वाले इसके वृक्षों को नंदीवट कहते हैं तथा इसके गुणधर्म के विषय में कहा है कि यह कसैला, मधुर, शीतल एवं गुरु है। तथा पित्त, ज्वर, तृषा, दाह, वमन और श्वास नाशक है। इसके गुण धर्म व प्रयोग प्रस्तुत प्रसंग के बरगद के जैसे ही हैं।

नाम—

सं०—वट (वटति वेष्टयति मूलेन वृक्षान्तरम्—जो अपनी जड़ों से अन्य वृक्षादि को वेष्टित कर लेता है), वहुपाद (अनेक जटा रूपी पैर होने से), रक्त फल, शृङ्गी, न्यग्रोध (न्यक् अधोदेशे रूयंताए, वर्षादि रोधनात्, धूप, वर्षादि को नीचे गिरने से रोकने वाला) आदि।

हि०—बरगद, बड़, बोड़ा इ.।

म०—वड़।

गु.—वड़, बड़लो।

बं.—वट गाछ।

अं.—बैनियन ट्री (Banyan tree)

ले.—फाइकस बंगालेन्सिस, फाइकस इण्डिका (Ficus Indica)।

रासायनिक संगठन—

छाल तथा कोमल पत्र कलिका (शुङ्ग) में टैनिन १०%, मोम व एक प्रकार की रबड़ (काउचक Coutchouc) होता है। फूल में तैल, अलब्युमिनायड, कार्बोहाइड्रेट, तन्तु व भस्म या क्षार ५ से ६%होते हैं।

प्रयोज्याङ्गः—छाल, दूध, पत्रकलिका एवं पत्र, फल, जटा एवं जड़, शाखा, लकड़ी।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, रूक्ष, कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य, कफपित्त-शामक, ग्राही, स्तंभक, आंत्र संकोचक, रक्तरोधक, वर्ण्य, कांतिवर्धक, रक्तशोधक, वेदनास्थापन, चक्षुष्य, व्रणरोधक, मूत्रसंग्रहणीय, दाहप्रशमन, शुक्रस्तंभक, गर्भाशयशोथहर, तथा अतिसार, रक्तविकार, रक्तपित्त, विसर्प, तृष्णा, वमन, मूर्च्छा, योनिविकार, रक्त व श्वेतप्रदर

Scanned with CamScanner

आदि में प्रयुक्त होता है।

छाल—कसैली, शीतवीर्य, पौष्टिक, स्तंभक, दाह-तृषाहर, कफघ्न, शोथहर, वर्ण्य (वर्णकारक), मूत्रल, व्रणसंधानक, भग्नास्थियोजक, विसर्प, प्रदरादिनाशक है।

छाल का फांट (१ भाग में १० भाग जल मिलाकर बनाया हुआ) रक्तान्तर्गत शर्करा एवं मधुमेह, प्रमेह नाशक, पौष्टिक, अतिसार, रक्तस्राव, रक्तामातिसार सुजाक आदि नाशक है। रक्त तथा श्वेतप्रदर में छाल के क्वाथ की उत्तरवस्ति देते हैं। मसूढ़ों की सूजन, मुखपाक तथा जलन में इसकी छाल के साथ पीपल की छाल मिलाकर बनाये हुए क्वाथ के कुल्ले कराते हैं।

(१) श्वेत प्रदर तथा गर्भस्राव पर— छाल के क्वाथ के साथ लोध के कल्क (२½ से ५ तोला तक क्वाथ में लोध का कल्क ३ मा० तक) मिलाकर (उसमें थोड़ा शहद भी मिलाते हैं), दिन में दो बार देते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है। योनि से स्राव बहुत अधिक हो तो इसकी छाल के क्वाथ में सूक्ष्म मुलायम कपड़े को ३-४ बार भावित कर (वस्त्र को ३-४ बार भिगोकर शुष्क कर) उसे योनि में धारण करावें।

—चरक. चि. अ. ३०।

नोट—यदि उक्त क्वाथ में लोध्र कल्क मिला पिलाया न जा सके, तो केवल इस क्वाथ में लोध कल्क मिलाकर योनिप्रक्षालन करने से भी लाभ होता है।

—वाग्भट।

गर्भस्राव या गर्भपात पर—छाल चूर्ण ४ मा. की मात्रा में दूध की लस्सी के साथ सेवन कराते हैं। यह प्रदर को भी नष्ट करता है। दुष्ट प्रदरादि योनि रोगों में पंचवल्कल (ऊपर नोट नं. १ में देखें) के क्वाथ की उत्तर वस्ति देते हैं। योनि में व्रण हो तो पंचवल्कल से सिद्ध किये हुये तैल का फोहा रक्खा जाता है।

(२) प्रमेह तथा मधुमेह पर—प्रमेह में छायाशुष्क ताजी छाल के महीन चूर्ण में समभाग खांड मिलाकर ४ मा. की मात्रा में प्रातः सायं जल के साथ सेवन करें। यदि शुक्रप्रमेह हो, बार बार वीर्यस्राव होता हो तो इसके चूर्ण में खांड न मिलावें, वैसे ही ४ मा० की मात्रा में प्रातः सायं सुखोष्ण दूध के साथ दिया करें।

मधुमेह में जौकुट किये हुये छाल के २ तो० चूर्ण को ४० तो० जल में पकावें। २ से ४ तो० तक जल शेष रहने पर उतार कर ठंडा होने पर छान कर सेवन करावें। इस प्रकार पथ्यपूर्वक १ महीने तक प्रातः सायं सेवन से पूर्ण लाभ होता है। —संकलित।

(३) ज्वर, अतिसार तथा वातार्श पर—मौसमी ज्वर में १ तो० छाल को ४० तो० जल में पकावें। १० तो० जल शेष रहने पर उसमें १ मा० नमक मिलाकर पिलावें। इसी प्रकार दिन में तीन बार गरम-गरम चाय की भांति पिलाने से मलेरिया आदि मौसमी ज्वर दूर हो जाते हैं।

अतिसार में—छाल (विशेषतः जड़ की छाल) के चूर्ण को ३ मा० की मात्रा में दिन में ३ बार चावलों के धोवन के साथ या ताजे कूप जल के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

वातार्श (वादी बवासीर)में छाल २ तो० को ४० तोले जल में पकावें। आधा जल शेष रहने पर छानकर उसमें गो घृत और खांड १-१ तोला मिला सुखोष्ण सेवन से कुछ दिनों में लाभ हो जाता है। —संकलित।

(४) स्मरणशक्तिवर्धनार्थ—छायाशुष्क छाल के महीन चूर्ण में दुगनी खांड या मिश्री मिलाकर रखें। ६ मा. की मात्रा में प्रातः सायं पकाये हुये सुखोष्ण गोदुग्ध ४० तो० के साथ सेवन करें। खट्टे पदार्थों से परहेज रखें। इससे गन्दे विचारों का आना एवं स्मरणशक्ति की दुर्बलता दूर होती है। दुग्ध ४० तो० न लिया जा सके तो २० तो० ही ले सकते हैं। —संकलित।

(५) बाल रोग पर—इसकी छाल के साथ गूलर, पीपल वृक्ष, पिलखन (पाकर) वेत और जामुन की छाल तथा मुलैठी, मजीठ, लालचन्दन, खस व पद्माख इनमें से जितनी चीजें मिल सकें वे सब समभाग लेकर जल के साथ महीन पीसकर लेप करने से बालक के दाह, खुजली, सुर्खी, विस्फोटक, तथा वेदनायुक्त व्रण नष्ट होते हैं। विशेषतः बालकों के शिर तथा बस्ति प्रदेश में होने

Scanned with CamScanner

वाले विसर्प के लिये यह योग अधिक लाभप्रद है।
—बं. से.।

(६) मसूरिका तथा विसर्प पर—मसूरिका वातज हो तो इसकी छाल के साथ पिलखन (पाकर) की छाल, सिरस की छाल, गूलर की छाल और मजीठ समभाग मिश्रित के चूर्ण को घृत में मिलाकर लगाने से लाभ होता है। —बं. से. व यो र.।

ग्रन्थि-विसर्प (विसर्प में उपद्रव रूप ग्रन्थियों का होना)-इसके लिये नीचे जड़ या जटा के प्रयोगों में देखिये।

रक्तज विसर्प (यह एक प्रकार की रक्तविकृति जन्य शोथ Phlegmon है) पर—इसकी छाल के साथ गूलर, पीपल वृक्ष, पाकर, बेत, लिसोडा के वृक्षों की छाल तथा श्वेत चन्दन, मजीठ, मुलैठी, जिमीकन्द (सूरण) और गेरू के समभाग मिश्रित चूर्ण को सौ बार धुले हुए घृत में मिलाकर लेप करने से दाह, पाक, पीड़ा, स्राव एवं शोथयुक्त, आगन्तुक व रक्तज विसर्प नष्ट होता है।
—(बं. से तथा यो. र)

(७) व्रण, शोथ, अर्बुद तथा दंत रोग पर—व्रण में कृमि होगये हों दुर्गन्ध आती हो, तो छाल के क्वाथ से नित्य धोते रहें तथा उसमें इसके दूध की कुछ बून्दें दिन में ३ बार डालते रहें, कृमि नष्ट होकर व्रण ठीक हो जाता है।

व्रण शोथ पर—इसकी छाल के साथ गूलर, पीपल, पाकर और बेत की छाल का मिश्रित महीन चूर्ण को घृत में मिला लेप करने से व्रण की सूजन दूर होती हैं।
—यो. र.

अर्बुद (रसौली) में—प्रथम कूठ व सेंधा नमक को बड़ के दूध में मिला कर लेप करें, तथा ऊपर इसकी छाल का पतला टुकड़ा बांध दिया करें। इस प्रकार दिन में २ बार उपचार करने से ७ दिन में बढ़ा हुआ अर्बुद दूर हो जाता है। —गां० औ० र०

दन्त विकार पर मंजन—छाल के साथ, कत्था और काली मिर्च इन तीनों का खूब महीन चूर्ण बना, प्रतिदिन मंजन करते रहने से दांत का हिलना, मैल दुर्गन्ध आदि विकार दूर होकर, दांत स्वच्छ एवं श्वेत होते हैं।
—संकलित

दूध—बरगद का दूध वेदनाशामक, व्रणरोपक, कामोद्दीपक, पौष्टिक, शोथ, अर्श, सुजाक, नासिका रोग आदि में प्रयुक्त होता है।

व्रण, क्षत, विपादिका (पाददारी), संधिशोथ, आमवातजकटिवेदना, वंक्षण शोथ, ग्रन्थि शोथ, कण्ठमाला, कर्णस्राव, दन्तशूल, नेत्राभिष्यन्द, अर्श, शुक्र नामक नेत्रविकार में दूध को लगाते, टपकाते या लेप करते हैं।

नोट—दूध संग्रह की विधि-दूध निकालने के लिये शाम को जाकर इसकी जाड़ी टहनी में एक कील ठोक कर खड्डा कर उस पर गुड़की डली की कारी (डांड) लगा दें। प्रातः जल्दी उठकर अंधेरे में (हाथ में बैटरी टार्च का प्रकाश लेकर) जाकर उस कारी को हटा कर उसमें एक कटोरी (खड्डे के मुख से सटा कर कुछ नीचे की ओर) मांड़ लें। जितना भी दूध उस खड्डे में होगा, कटोरी में इकट्ठा हो जावेगा। एक एक कोंपल को तोड़ कर भी इसका दूध निकाला जाता है। किंतु इसमें काफी समय लग जाता है (तथा कोंपलें व्यर्थ बरबाद होती हैं) एक कोंपल में से २-३ बून्द से अधिक दूध नहीं निकलता। ध्यान रहे सूर्योदय होने पर या धूप निकलने पर नहीं निकलता।

—वैद्य श्री अम्बालाल जोशी जोधपुर

(८) वीर्य का पतलापन, शीघ्रपतन, प्रमेह, अर्शादि विकारों पर—इसका दूध प्रतिदिन प्रातः सूर्योदय के पूर्व प्रथम दिन १० बून्द की मात्रा में बतासों में भर कर या ३ माशे खांड या शक्कर के साथ मिलाकर सेवन करें। जैसे-जैसे यह अनुकूल होता जाय, तैसे-तैसे इसकी थोड़ी थोड़ी मात्रा १-१ बून्द बढ़ाते जावें। लगभग २० दिन तक बढ़ा कर फिर घटाते हुए प्रथम दिन की मात्रा पर आजावें, तथा सेवन बन्द कर देवें। इस प्रयोग से उक्त सर्व विकार दूर होकर सुजाक, मूत्र दाह, श्वास, कास, मस्तिष्क, यकृत हृदय के विकार भी नष्ट होते हैं। सर्व प्रकार के अर्श दूर होते हैं।

स्वप्नदोष निवारणार्थ—कबाबचीनी के चूर्ण में इसके दूध की ५ बार भावनायें देकर, शुष्क कर रखलें। प्रातः सायं २ मा० की मात्रा में शहद के साथ सेवन करें।

Scanned with CamScanner

मस्तिष्क विकार नाशार्थ एवं स्मरणशक्ति वर्धनार्थ—इसके दूध की १–१ रत्ती की गोलियां बना उन पर चांदी का वर्क लगा कर रख लें। प्रातः २ गोलियां बादाम या खसखस की थोड़ी ठंडाई के साथ सेवन से भ्रम या चक्कर आना उठते बैठते आंखों में अन्धियारी छा जाना आदि विकार दूर होते हैं।

यदि १–१ गोली प्रातः सायं केवल गो दुग्ध के साथ लिया करें तो स्मरणशक्ति की विशेष वृद्धि एवं सुविचारों की स्फुरणा होती है।

प्रमेह आदि नाशक योग प्रथम दिन प्रातः इसके दूध की १ बून्द को बताशा में डालकर खावें। दूसरे दिन दो बताशों पर २ बून्दे, तीसरे दिन ३ बताशों पर ३ बून्दें, इस प्रकार प्रतिदिन बून्दें तथा बताशे २१ दिन तक बढ़ाते चले जावें। फिर उसी प्रकार कम करना प्रारम्भ कर १ बून्द व १ बताशा पर लाकर छोड़ देवें। यह प्रमेह की विशेष औषधि है। इससे स्वप्न दोष दूर हो कर वीर्य की वृद्धि होती है। —संकलित

मूत्रकृच्छ्र तथा सुजाक में भी उक्त योग लाभदायक है।

(९) नेत्र विकार पर—मोतियाबिन्द की प्रारंभिक अवस्था में इसकी २–२ बून्दे सलाई से लगभग २ महीने तक प्रातः सायं नेत्र में डालते रहने से लाभ होता है। जाला धुंध आदि विकार तो शीघ्र दूर होते हैं।

अथवा निम्नांकित सुर्मा बना लें—काला तथा श्वेत सुर्मा २॥ तो० को इसके दूध में खरल कर शीशी में सुरक्षित रखें। रात्रि के समय इसमें से ३-३ सलाई आंखों आंजते रहने से जाला, धुन्ध, लाली, नेत्रस्राव, दृष्टिमांद्य आदि विकार दूर हो जाते हैं।

नेत्र के शुक्र या फूला रोग पर—इसके दूध में शुद्ध देशी कपूर को घोट कर आंजते रहने से बहुत बड़ा हुआ फूला भी नष्ट हो जाता है। —चक्रदत्त

नेत्र के घाव या जखम पर—सर्व प्रथम नेत्र को फिटकरी के गरम, सुखोष्ण घोल (फिटकरी को पानी में घोल कर गरम कर) से दिन में ५ बार सेंक करें, फिर बड़ के पत्तों को तोड़ने से जो दूध निकले उसकी १-१ बून्द, दिन में दो बार डालें। रात्रि में सोते समय नीबू के पत्तों पर भी चुपड़ कर आंख पर बांध देवें। इस प्रकार कुछ दिनों तक (लगभग २-३ मास तक) उपचार करने से, आंख का घाव ठीक हो जाता है, तथा आंख पूर्ववत् हो जाती है। —संकलित

(१०) अतिसार, कर्ण विकार, कुष्ठ, व्रण तथा दाद दांत आदि विकारों पर—

अतिसार में—इसके दूध को नाभि के छिद्रों में भरने तथा उसके आस पास लगाने से लाभ होता है।

कर्ण कृमि—कान में कीड़े हो गये हों तो बकरी के ३ मा. दूध को कुछ गरम कर उसमें इस दूध की ३ बून्दे मिला कर डालते रहने से ३ दिन में सब कृमि नष्ट हो हो जाते हैं।

अथवा केवल इसके ही दूध की कुछ बून्दे कान में डालने से कर्ण कृमि तथा कान की फुंसी नष्ट होती है।

कुष्ठ पर—रात्रि के समय इसके दूध का लेप करने तथा उस पर इसकी छाल का कल्क बांधने से ७ दिन में कुष्ठ एवं रोमक (कुष्ठ रोगजनक रक्तज आभ्यन्तरकृमि) बढ़ कर चाहे हड्डी तक भी पहुंच गये हों) शान्त हो जाते हैं। —वं. से.

व्रण—चाहे जितने कीड़े पड़ गये हों, उनका जाल सा बिछा हुआ दीखता हो, तो भी प्रातः दुपहर और रात्रि के समय इसका दूध लगाने से नष्ट हो जाते हैं। —वैद्य मनोरमा

साधारण व्रण पर इसके दूध को लगाने से शीघ्र रोपण होकर ठीक हो जाते हैं।

नासूर—(नाड़ी व्रण) हो, तो इसके दूध में सांप की केंचुली की भस्म मिला उसमें पतले कपड़े को या रूई की बत्ती को तर कर भीतर देने से शीघ्र १० दिन में लाभ हो जाता है। अर्बुद की प्रारम्भिक दशा में इस योग के लेप से ही शीघ्र लाभ होता है। —संकलित।

बद गांठ पर—इसका दूध लगाने से, यदि गांठ पकने वाली नहीं है तो बैठ जाती है। यदि दोष बढ़ कर वह फूटने योग्य हो गई हो तो शीघ्र ही फूट जाती है। इन्हीं दोनों विशेष गुणों के कारण बद गांठ पर इसके दूध

Scanned with CamScanner

का प्लास्टर लगाया जाता है, जो कि निश्चित रूप से लाभदायक प्रमाणित होता है। यही दूध लगाते रहने से बाद में गांठ का घाव भी भर जाता है।

—आ. विकास

डाढ़ का दर्द तथा दन्त कृमि पर—डाढ़ के दर्द पर इसका दूध लगाने से दूर होता है। दांतों से दुर्गन्ध आती हो, उसमें गढ़े पड़ गये हों, कृमि हों तो इसके दूध में एक रुई की फुरेरी भिगो कर छिद्र में रख देने से दुर्गन्ध दूर होकर दांत ठीक हो जाते हैं। दन्तकृमि नष्ट हो जाते हैं।

यदि किसी दांत को निकालना हो तो उस दांत पर इस दूध को लगाने से बिना कष्ट के दांत निकल आता है किंतु सावधानी रखनी चाहिए अन्य दांतों पर न लगने पावे।

गठिया, चोट व मोच पर—यह दूध लगाने से पीड़ा शीघ्र ही कम हो जाती है।

तालू कण्टक या तालू के नीचे की ओर धंस जाने पर—(यह विकार प्रायः बालकों को होता है) इसके दूध को मिट्टी की टिकिया पर लगाकर तालू पर बांधने से या लेप से तालू ऊपर यथास्थान आ जाता है।

वड़ के शुङ्ग (कोंपल) या कोमल पत्र कलिका और पत्र—शुङ्ग (कोमल पत्र कलिका) ग्राही, गर्भस्थापक, कफनाशक, व्रण, कुष्ठ आदि विकारों पर प्रयुक्त होते हैं। ये गलित कुष्ठ में उपयोगी हैं। नीचे शुङ्गों के तथा वड़े पत्तों के प्रयोग एक साथ दिये जाते हैं। शुष्क पत्र स्वेदल हैं।

स्वप्नदोष तथा गर्मी सुजाक में कोंपलों का हिम पिलाते हैं। अतिसार में इनका सेवन दही के साथ कराते हैं। मासिक धर्म अधिक आता हो या नकसीर में अधिकता हो तो कोंपलों का सेवन दूध की लस्सी के साथ या केवल हिम के रूप में करने से लाभ होता है। कोंपलों का क्वाथ ग्राही एवं शीतल होने से रक्तप्रदर आदि में दिया जाता है।

[११] गर्भ स्थापनार्थ—पुंसवन कर्म के विधान में चरक का कथन है गोशाला में उत्पन्न हुए वटवृक्ष की पूर्व तथा उत्तर दिशा की दो शाखाओं से दो उत्तम पत्रांकुर (शुङ्ग) लेकर उत्तम बढ़िया उड़द के साथ अथवा श्वेत सरसों के दो दानों के साथ (पीसकर) दही में मिलाकर पुष्य नक्षत्र में पिलावें। —च० शा० ८, अ० ८।

आगे उसी उक्त स्थान में चरक जी कहते हैं कि जिसे गर्भपात की आशङ्का हो उसे वड़ की कोंपल (छाल या जटा) को जल में घोंट छानकर पिलावें। गर्भिणी के चौथे महीने में यदि खून दिखाई देवे तो उसे कोमल शैया पर लिटाकर वट आदि के शीत निर्यास से नाभी के नीचे सब जगह अभिषेक करें। वट के पत्रांकुरों से या नव पल्लवों से सिद्ध किये हुए दूध या घृत को [१ या २ तो. की मात्रा में] पिलावें तथा इस घृत का योनी में पिचुधारण करावें। या इसके कोंपलों को [या वट के अंकुरों को] पीसकर या क्वाथ कर बकरी के दूध के साथ पिलावें। कोंपलों के क्वाथ में दूध मिश्री मिलाकर पिलावें। यथा संभव इन उपचारों को शीघ्र ही प्रयोग में लाने से गर्भपात की संभावना नहीं रहती है।

अथवा—पुष्य नक्षत्र एवं शुक्ल पक्ष में लाये हुए कोंपलों का चूर्ण ६ मा. की मात्रा में स्त्री रजस्वला होने पर प्रातः जल के साथ ४-६ दिन तक देने से अवश्य गर्भधारणा होती है।

—गां. औ. र।

अथवा—कोंपलों को पीसकर बेर जैसी २१ गोलियां बनाकर प्रतिदिन ३ गोलियां घृत के साथ सेवन करावें।

—व गु.।

गर्भस्राव या पात होने पर—इसके दो कोमल पत्रों को २० तोले गोदुग्ध में समभाग जल मिलाकर पकाकर दूध मात्र शेष रहने पर पत्रों को दूर कर पिलाते हैं। योनि शैथिल्य में कोंपल के स्वरस में वस्त्र भिगो योनि में पिचु प्रतिदिन १ बार १५ दिन तक धारण करावें।

(१२) वमन, तृषा तथा वमन विरेचनादि शोधन कर्म के उपद्रवों पर और उरःक्षत पर—वमन और तृषा के नाशार्थ—इसकी कोंपलों के साथ श्वेत दूर्वा (दूब घास) लोध, अनार की कली और मुलहठी समभाग लेकर एकत्र पीस शहद में मिला चावलों के धोवन के साथ सेवन से वमन और प्यास की शांति होती है।

— वं. से.

वमन विरेचन के अतियोग से होने वाले उपद्रवों पर—

Scanned with CamScanner

इसकी कोंपलों के योग से तैयार की गई पेया (द्रव से ६ गुना या १४ या १५ गुना जल डाल कर पतली, फेन के समान कुछ गाढ़ी लसदार चावल सहित औटाई हुई चीज को पेया कहते हैं) को शहद मिलाकर पिलावें तथा मलसंग्राहक औषधियों से पकाया हुआ दूध एवं भोज्य पदार्थ देवें । —च. चि. अ. ६

पित्त विकार वाले रोगी को यदि बहुत अम्ल, उष्ण, तीक्ष्ण या नमकयुक्त वस्ति दी गई हो तथा इसके उपद्रव रूप में गुदामार्ग में क्षोभ, दाह, शोथ आदि विकार हों । गुदा से अनेक वर्ण का विदग्ध हुआ रक्त एवं पित्त आने लगे तथा इस कष्ट से बार बार मूच्छित हो तो बट आदि के कोमल पत्तों को कुचल कर इससे दूध को सिद्ध कर उसमें घृत मिला ठण्डा कर वस्ति देवें ।

—च. चि. अ. ७

उरःक्षत पर—क्षतज कास या उरःक्षत में क्षतदोष के हटने तथा कफ के बढ़ने पर यदि छाती (फुफ्फुस) में दलने की तरह पीड़ा हो तो इसके ताजे गीले कोंपलों को समभाग मनसिल के साथ पीसकर रेशमी वस्त्र को उसमें लिप्त कर बत्ती बना तथा घृत में भिगोकर रोगी को धूम्रपान करावें और मांस भोजी हो तो तीतर के मांस रस से भोजन करावें । — च. चि. अ. १८

(१३) वीर्यक्षीणता, वीर्य का पतलापन, मूत्रकृच्छ्, सुजाक. गुर्दे की जलन एवं अशक्ति, प्रमेह आदि पर—कोंपलों को छायाशुष्क कर, कूट छानकर समभाग मिश्री मिला ७ दिन प्रातः निराहार ½ से १ तो तक की मात्रा में दूध की लस्सी के साथ सेवन कराते हैं अथवा पत्तों का घन क्वाथ कर (पत्तों को कढ़ाही में जल के साथ भिगोकर ३ दिन बाद जब जल में लाल रंग आने लगे तब आग पर चढ़ावें । चतुर्थांश जल शेष रहने पर पुनः पकाकर घन क्वाथ कर लेवें) ४-४ रत्ती की गोलियां बना २-२ गोली दूध के साथ देते हैं ।

सुजाक पर विशेष योग—इसके २ तो. कोंपल या कोमल पत्रों को कुचल कर रात्रि के समय ४ तो जल में भिगो प्रातः मल छान कर उसमें थोड़ी मिश्री मिला पिलावें । तथा सुजाक शीघ्र ही दूर होता है. पेशाब की जलन शांत होती है ।

प्रमेह पर—इसके ताजे कोमल पत्ते ४० तो., बहुफली २० तो. दोनों को खूब ठण्डाई की भांति घोट छान कर कलईदार पात्र में पकावें । गाढ़ा हो जाने पर नीचे उतार कर उसमें थोड़ा तवाखीर (या वंशलोचन) या इमली के बीजों की गिरी का चूर्ण मिलावें जिसमें गोलियां आसानी से बनाई जा सकें । १-१ रत्ती की गोलियां बना कर १ गोली से २ गोली तक खाकर ऊपर से ताजा गो दुग्ध पीवें । इससे प्रमेह, स्वप्नदोष, धातुक्षीणता आदि विकार दूर होते हैं ।

अथवा—

इसके पके पीले पत्ते लगभग २० या ३० सेर तक लेकर घड़ों में भर कर उनमें जितना जल आ सकता हो भर कर २४ घण्टे बाद लोहे की कढ़ाई में डाल कर आग पर खूब पकावें । जब पत्ते जल जावें तथा जल आधा रह जावे तब नीचे उतार ठण्डा होने पर खूब मल छान कर उस जल को पुनः पकाकर गाढ़ा हो जाने पर उसमें बहुफली का चूर्ण ५ तो. तक मिलाकर बेर जैसी गोलियां बना प्रातः सायं जल के साथ लेवें । यदि इस योग में वंशलोचन, इमली के बीजों का चूर्ण १ से २ तो. तक मिला लिया जावे और १ माशा तक की गोलियां बनावें तो विशेष गुणकारी हो जाता है । प्रथम कुछ दिन १ गोली फिर २ और ३ गोलियों तक सेवन करावें । २१ दिन के सेवन से प्रमेह समूल नष्ट हो जाता है ।

अथवा—पके पीले २॥ सेर पत्तों को १५ सेर जल में भिगो ३ या ४ दिन बाद पकावें । चतुर्थांश शेष रहने पर पत्तों को मसल कर जल को छानकर पुनः पका गाढ़ा हो जाने पर नीचे उतार कर उसमें गिलोय सत और बंग भस्म ३-६ माशा तथा छोटी इलायची बीज २ माशा पीस कर मिलावें । २-२ रत्ती की गोलियां बना प्रातः सायं १-१ गोली गोदुग्ध या जल के साथ सेवन करावें ।

अत्यार्त्तव पर—इसके २ तो. कोमल पत्तों को १० से २० तो. जल में घोटकर प्रातः सायं पिलाने से शीघ्र ही लाभ होता है ।

पुरुष या स्त्री के मूत्र में रक्त जाता हो तो भी उक्त

Scanned with CamScanner

शोथ से लाभ होता है। —संकलित

(१४) रक्तपित्त, रक्तातिसार तथा रक्तार्श पर—कोंपल या पत्तों को १ से २ तो. तक पीसकर पुदीने में शहद व शक्कर मिलाकर सेवन कराने से रक्तपित्त में लाभ होता है।

रक्तातिसार पर—दस्त के साथ या दस्त के पूर्व या पश्चात् रक्तस्राव होता हो तो इसकी २ तो. कोंपलों को शीत रात्रि के समय २० तो. जल में भिगोकर प्रातः छानकर जल में १० तो. घृत मिला पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर २ से २॥ तो. तक घृत में शहद व शक्कर मिलाकर सेवन से रक्तातिसार में लाभ होता है। रक्त-प्रदर में भी यह लाभदायक है। श्वेतप्रदर में छायाशुष्क पत्तों का चूर्ण शक्कर मिलाकर सेवन करावें।

रक्तार्श पर—इसके कोमल पत्र २॥ तो. को २० तो. जल में घोट छानकर पिलाने से रक्तस्राव होता हो तो २-३ दिन में ही बन्द हो जाता है। कुछ दिनों तक निरन्तर प्रयोग करने से पूर्ण लाभ हो जाता है। अर्श के मस्सों पर इसके पीले पत्तों की भस्म को सरसों के तेल में मिला लेप करते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

अथवा—इसकी १ तो. कोपलों को पीसकर १० तो. बकरी के दूध में समभाग जल मिलाकर पकावें। दुग्धमात्र शेष रहने पर छान कर सेवन कराते रहने से रक्तपित्त, रक्तार्श तथा रक्तातिसार में भी लाभ होता है।

अतिसार—साधारण किंतु पक्व अतिसार हो तो इसकी कोंपलें ६ मा. को १० तो. जल में घोट छान कर थोड़ी मिश्री मिलाकर पिलाने या कोपलों को जल में घोट छान कर पिलाने तथा ऊपर से मट्ठा पिलाने से आंत्र की उग्रता शमन होकर बन्द हो जाता है। —संकलित

(१५) जुकाम (प्रतिश्याय) या नजला, हृदय की धड़कन, हृल्लास (जी मिचलाना) तथा निद्राधिक्य पर—

जुकाम पर चाय—इसके कोमल लाल रंग के पत्तों को छायाशुष्क कर थोड़ा जौकुट कर डिब्बे में बन्द कर रखें। इसमें से ५ या ६ माशा लेकर ४० तो. जल में पकावें। लगभग १० तो. जल शेष रहने पर छान कर उसमें यथावश्यक दूध व शक्कर मिलाकर चाय की भांति प्रातः सायं (दोनों समय ताजा बना) पीने से जुकाम व नजला दूर होकर मस्तिष्क की दुर्बलता भी नष्ट होती है।

हृदय की धड़कन पर—इसके कोमल शुष्क हरे पत्र १ तोला को १५ तो. जल में खूब घोट छानकर उसमें थोड़ी मिश्री मिला प्रातःसायं पिलाने से लाभ होता है।

हृल्लास (मितली)—साधारण कोमल हरे पत्र २ तो. को जल में (घोटते समय इसमें ७ नग लौंग के मिला लें) छान कर (रोगी की इच्छानुसार थोड़ी शक्कर भी मिला सकते हैं) १-१ या २-२ घूंट १५-१५ मिनट के अन्तर से पिलावें। जी का मिचलाना बन्द होता है।

निद्राधिक्य पर—इसके कड़े हरे छायाशुष्क पत्तों का जौकुट चूर्ण १ तो. को १ सेर जल में यथाविधि क्वाथ कर उसमें १½ माशा नमक मिलाकर प्रातःसायं पिलावें। कुछ दिनों के प्रयोग से निद्राधिक्य (हर समय ऊँघते रहना) दूर होता है —ह. मौ. मो. अब्दुल्ला साहब

(१६) ज्वर में पसीना लाने के लिये—इसके पके हुये पीले रङ्ग के ३ नग पत्तों को, धान की खीलों को जल में मिलाकर बनाये हुये घोल में मिलाकर पकावें। १/६ अंश जल शेष रहने पर छानकर सुखोष्ण पिलावें। इसमें थोड़ी काली मिर्च भी मिला लेवें तो और उत्तम है।

(१४) व्रणों पर तथा अग्निदग्ध, भगन्दर, नासूर, बद, शोथ, खुजली पर-

व्रण, घाव, फोड़े फुंसी—इसकी कोपलो को दही में भिगोकर मिट्टी के कूजे में भर कपड़मिट्टी कर गजपुट में फूंक कर भस्म को घावों में भर देने से; अथवा इसके पके हुये पत्तों को जलाकर उसकी भस्म में मोम और घृत मिला मलहम जैसा बनाकर घावों में लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

यदि कोई घाव ऐसा हो कि जिसमें टांके लगाने की आवश्यकता हो तो उस घाव का मुख मिलाकर जिससे कि खाल के दोनों सिरे निकट आ जावें इसके पत्ते गरम कर उस पर रख कर वस्त्रपट्ट को इस प्रकार बांध देवें कि पट्टा खिसके नहीं। ३ दिन के पश्चात् खोलकर देखते

Scanned with CamScanner

पर घाव बिना टांके लगाये ही भरा हुआ मिलेगा।

फोड़े फुंसियों पर—पत्तों को गरम कर बांधने से वे शीघ्र ही पक कर फूट जाते हैं। पीवदार फोड़ों पर पत्तों का पुल्टिस बनाकर बांधने से जब वे पक कर पीले पड़ जावें, तब इसके पत्तों को चावलों के साथ औटाकर देने से वे फूट कर शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। अथवा उक्त प्रकार से गजपुट में की हुई भस्म को घृत में मिलाकर लगाने से फोड़े फुंसियों का शमन होता है।

अग्निदग्ध पर—शरीर का कोई भाग आग से जल जाये तो इसके कोंपल या कोमल पत्रों को गाय के दही में पीसकर लगाने से शांति प्राप्त होती है।

भगन्दर तथा नासूर पर—घाव होने से पूर्व पिडिका अवस्था में ही भगन्दर पर—इसके पत्रों के साथ, जूनी से जूनी ईंट का चूर्ण, सोंठ, गिलोय तथा पुनर्नवामूल का चूर्ण समभाग मिलाकर जल में पीसकर लेप करने से लाभ हो जाता है। —बं. से.।

नासूर (नाड़ी व्रण) पर—इसकी कोंपलें तथा कोमल पत्रों को पीसकर जल में छान लेवें। इस जल में समभाग तिल तैल मिलाकर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रख लेवें। दिन में २-३ बार इसे लगाते रहने से पूर्ण लाभ होता है। यही तैल भगन्दर पर भी लाभकारी हो सकता है।

बद पर—इसके पत्तों पर तिल तैल चुपड़ कर गरम कर बांधते रहने से बद ग्रंथि पक कर फूट जाती है, तथा कुछ दिनों में ठीक हो जाती है।

शोथ या सूजन पर—पत्तों पर घृत चुपड़ कर गरम कर बांधने से लाभ होता है।

खुजली पर—इसके ½ सेर पत्तों को कुचल कर ४ सेर पानी में रात्रि समय भिगोकर प्रातः पकावें। १ सेर पानी शेष रहने पर मल छानकर ठंडा होने पर इस पानी में ½ सेर सरसों का तैल मिला पुनः पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रख लें। इस तैल की मालिश से सूखी तथा गीली दोनों प्रकार की खुजली दूर होती है।

(१८) मुख की कान्ति वर्धनार्थ तथा व्यङ्ग, काले दाग, गंज, केशविकार नाशार्थ—इसके पके हुये पीले पत्तों के साथ, रेणुका (निर्गुण्डी बीज), फूलप्रियंगु, मुलैठी, कमल पुष्प, लोध, केशर, लाख तथा इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण समभाग लेकर सबको जल के साथ पीसकर लेप करने से मुख कान्तिमान हो जाता है। —भा. भै. र.।

अथवा—इसके पीले पके पत्तों के साथ चमेली के पत्ते, लाल चन्दन, कूठ, काला अगर, और पठानी लोध समभाग सबको जल के साथ पीसकर लेप करने से मुहांसे व्यङ्ग (झांई) तथा नीलिका (स्याह छीप, झाई यह श्याम वर्ण का मण्डलाकार व्यङ्ग है जो मुख के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों पर होता है। Pl yriasis nigra) का नाश होता है, तथा कान्ति बढ़ती है।

—शा. सं.।

अथवा मुख की झांई या व्यङ्ग नाशार्थ—इसके कोमल पत्र या कोंपलों के साथ कूठ, लोध, मजीठ, फूलप्रियंगु, मसूर, श्वेत और लाल चन्दन समभाग मिश्रित चूर्ण को दूध में मिलाकर उबटन करने से झांई, व्यङ्ग दूर होकर कांति की वृद्धि होती है। —भा. भै. र.

अथवा—इसके कोमल पत्तों को (या जटा को) मसूर के साथ पीसकर लेप करते रहने से व्यङ्ग दूर हो जाता है। —भा. प्र.

गंज पर—इसके पत्तों को अलसी के तैल में भूनकर (या पत्तों की भस्म को अलसी तैल में मिलाकर) मलते रहने से सिर के बाल उग आते हैं।

केश विकार (केशों का श्वेत होना, झड़ना आदि) पर—इसके कोमल पत्तों को जल में धोकर साफ कर पीसकर रस निचोड़ लेवें। जितना रस हो, उसके समभाग सरसों का शुद्ध तैल मिला मन्द आंच पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर बोतलों में भर रखें। इस तैल को लगाते रहने से केशों के विकार दूर होकर वे सुदृढ़ होते हैं। —संकलित

जटा और जड़—बड़ की जटा व जड़ शीतल, रक्तस्राव रोधक, रक्तशोधक, कामोद्दीपक, मूत्रल, मूत्रकृच्छ्र, सुजाक, उपदंश, पित्त विकार, रक्तातिसार, यकृत शोथ, स्तनशैथिल्य, चर्मरोग, व्रण, प्रमेह आदि विकारों पर उपयोगी है।

Scanned with CamScanner

स्तनशैथिल्य, चर्मरोग तथा व्रणों पर जटा का लेप करते हैं। रक्तशुद्धि के लिये–जड़ या जटा के कोमल तन्तु का क्वाथ अकेले या मधु मिलाकर सेवन कराते हैं, यह योग सार्सापरेला जैसा रक्तशोधक है। सुजाक में भी लाभ करता है। बहुमूत्र में जड़ की छाल का क्वाथ देते हैं। स्तन शैथिल्य में—जटा के बारीक अग्रभाग के पीले व लाल तन्तुओं को पीसकर लेप करते हैं। रक्त प्रदर में—जटा के अंकुर १ तो. को गोदुग्ध १० तो. में पीस छानकर दिन में ३ बार पिलाते हैं। दांतों की कमजोरी या हिलने पर—जटा को ऊपर से अच्छी तरह धोकर दतौन कराते हैं। नकसीर पर—जटा का चूर्ण ३ मा. तक, दूध की लस्सी के साथ पिलाते हैं।

(१९) वमन, तृषा तथा अतिसार पर—

वमन पर—जटा के तन्तु [अंकुर] ६ माशा को जल में घोट छानकर पिलावें इसमें रक्त की वमन भी बन्द होती है। अथवा—जटा की भस्म को जल में कुछ देर भिगोकर ऊपर के जल को निथार कर पिलावें। अथवा जटा की भस्म को शहद से चटावें।

तृषा पर—जटा के अंकुर, मुलैठी व पिप्पली समभाग चूर्ण कर शहद मिला गोलियां बनालें। १-१ गोली मुख में रखने से चिरकालीन तृषा की शांत हो जाती है।

—यो. र.।

अथवा–जटा के अंकुर, मुलैठी, कूठ, नीलोफर, धान की खील व खांड इनका चूर्ण समभाग लेकर जल के साथ एकत्र पीसकर गोलियां बना १-१ गोली मुख में रखने से प्रवृद्ध तृषा भी शीघ्र नष्ट होती है। –यो. र. तथा ग.नि.

अतिसार—इसकी जड़ की छाल छायाशुष्क चूर्ण कर [३ मा. की मात्रा में दिन में ३ बार) गाय के तक्र के साथ (या चावलों के धोवन या केवल कूप जल के साथ सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है।

—भा. भै. र.।

अथवा—जटा को जल के साथ पीस रस निचोड़कर १ तो० रस में शहद २ मा. मिलाकर दिन में ३ बार पिलावें।

(२०) प्रमेह, धातुस्राव, स्वप्नदोष, मूत्रकृच्छ, उपदंश तथा विसर्प पर—जटा को ३ माशा तक जल के साथ घोट छानकर सेवन करने से या जटा के चूर्ण को प्रातः सायं ४-४ माशा तक ताजे जल के साथ सेवन से प्रमेह, धातुस्राव एवं स्वप्न दोष का निवारण होता है।

आगे विशिष्ट योगों में बलवर्धक प्रयोग देखिये।

मूत्रकृच्छ तथा सुजाक पर–जटा का महीन चूर्ण ६ माशा के साथ कलमी सोरा, श्वेत जीरा, छोटी इलायची के बीज प्रत्येक का महीन चूर्ण २-२ माशा मिलाकर जल में घोटकर एक ही गुटिका बना प्रातः इसे धारोष्ण गोदुग्ध के साथ सेवन करें। आवश्यकतानुसार इसकी मात्रा कम की जा सकती है। यह मूत्रकृच्छ एवं उष्णवात (सुजाक) में हितकर है।

यदि सुजाक में पूय विशेष आता हो, जलन विशेष न हो तो इसकी छायाशुष्क जड़ की छाल के चूर्ण को प्रातः सायं ३ मा. की मात्रा में शर्बत बजोरी या साधारण ताजे जल के साथ देते रहने से पूयस्राव बन्द होकर पूर्ण लाभ होता है।

उपदंश पर–इसकी जटा के साथ अर्जुन की छाल, हरड़, लोध व हल्दी समभाग जल में पीस कर लेप लगाने से उपदंश के व्रण नष्ट होते हैं। इन्हीं द्रव्यों के चूर्ण में १-१ भाग रौप्य माक्षिक और रसौत का चूर्ण मिलाकर लगाने से भी उपदंश व्रण नष्ट होते हैं। —भा. भै. र.।

विसर्प पर—इसकी नवीन कोमल जटा के साथ (या जड़ की छाल के साथ) केले के वृक्ष के स्तम्भ का मध्य भाग तथा कमल कन्द को एकत्र पीसकर शतधौत घृत को मिलाकर लेप करें। जिस रोगी के शरीर की अन्दर से शुद्धि हो जाने पर भी त्वचा व मांस में विकार अवशेष हों उसके लिये अथवा पहले से ही जो रोगी अल्प विकार वाला हो उसके लिए बाह्यचिकित्सा रूप में यह लेप बहुत अच्छा है। —च. चि. अ. २१।

नोट—बंगसेन तथा योगरत्नाकर में उक्त योग के कमल कन्द के स्थान में गुञ्जा (घुंघची) लिया गया है। तथा कहा है कि यह लेप ग्रन्थि विसर्प नाशक है।

(२१) व्यङ्ग, गंज तथा केश लम्बे होने के लिये—व्यङ्ग या चेहरे पर नीले काले धब्बे या दाग हो जाने पर

Scanned with CamScanner

इसकी कोमल जटा के साथ मसूर की दाल का दूध में पीस कर प्रातः तथा रात्रि के समय मर्दन करते हुए लगाते रहने से कुछ दिनों में दाग निकलकर मुंह की कांति बढ़ती है। —भा. प्र.।

गंज पर–इसकी जटा और जटामांसी का चूर्ण २॥ तो. तिल तैल ४० तो. तथा गिलोय का स्वरस २ सेर सबको एकत्र मिला धूप में रख दें। जलांश के शुष्क हो जाने पर तैल को छान लेवें। इसकी मालिश से गंज (इंद्र-लुप्त) दूर होकर बाल निकल आते हैं। —वृ. मा.।

केश लम्बे होने के लिये--इसकी जटा और काले तिल समभाग खूब महीन पीसकर सिर पर लगाकर आध घंटे बाद कंघी से केशों को साफकर ऊपर से भांगरा और नारियल की गिरी दोनों को पीसकर लगाते रहने से बाल कुछ दिन में लम्बे हो जाते हैं। —पं. भगीरथ स्वामी।

फल और बीज--बड़ के फल शीतल, ग्राही, वृष्य, बल-वर्धक, मूत्ररोधक हैं तथा प्रमेह बहुमूत्रादि में उपयोगी हैं।

प्रमेह में फलों को खिलाते हैं।

(२२) वीर्यविकार नाशार्थ तथा बलवृद्धि के लिये और बहुमूत्र पर–इसके अच्छे पूर्ण पक्व लाल वर्ण के फलों को वृक्ष से तोड़ लेवें। जमीन पर पड़ा हुआ न लेवें और न इनमें लोहे का स्पर्श होने पावे। वृक्ष से उतारे हुए फलों को कपड़े पर हवादार स्थान में छायाशुष्क कर पत्थर के खरल में महीन चूर्ण कर लेवें। किंतु लोहे की किसी वस्तु का स्पर्श न हो। चूर्ण के समभाग मिश्री का चूर्ण मिला सुरक्षित रखें। ६ माशा की मात्रा में प्रातःसायं मुखोष्ण दुग्ध के साथ सेवन से वीर्य का पतलापन, शीघ्र स्खलित होना आदि विकार दूर होकर बलवृद्धि होती है। वीर्य सन्तानोत्पत्ति में समर्थ हो जाता है। जिन्हें केवल वीर्य दुर्बलता से दुर्बल सन्तान पैदा होती हो वे दम्पती ३ ४ मास तक इस योग का सेवन करें तो अवश्य बलिष्ट संतान होती है। —फलों से इलाज (रसायन)

अथवा--इसके पके फलों के साथ ही पीपल के फलों को शुष्क कर महीन चूर्ण कर इसमें से २॥ तो. चूर्ण को समभाग घृत में भूनकर उसमें २॥ तो. शक्कर और १० तो. गौदुग्ध मिला हलुवा बनाकर प्रातः सायं कुछ दिन सेवन से तथा इसके ऊपर बछड़े वाली गाय का दूध पीने से विशेष बलवृद्धि होती है। यदि स्त्री पुरुष दोनों सेवन करें तो रज वीर्य शुद्ध होकर सुन्दर सन्तानोत्पत्ति होती है। --भा. गु. नि।

प्रमेह में–पके फलों के चूर्ण को १-२ तो. की मात्रा में दूध के साथ देते हैं।

बहुमूत्र पर—फलों के बीज (जो फल के भीतर खसखस सदृश होते हैं) लेकर महीन पीस कर प्रातःसायं (१ या २ मा०) गौदुग्ध से लेवें। निरन्तर सेवन से लाभ होता है। —संकलित।

शाखा तथा लकड़ी बड़ी की छोटी छोटी कोमल शाखाओं का शीत निर्यास या हिम कफ के साथ स्राव में उपयोगी है। इसकी नरम शाखाओं के फाण्ट में शक्कर या बतासा मिलाकर सेवन से रक्त की वमन बन्द होती है। कोमल लकड़ी से दातून करते रहने से दंतशूल पायो-रिया आदि में लाभ होता है। दांत व मसूढ़े मजबूत होते हैं।

(२३) रक्तार्श पर—छायाशुष्क इसकी लकड़ी को जलाकर उसके कोयलों को महीन पीस प्रातः सायं ३ मा. की मात्रा में ताजे जल के साथ देते रहने से लाभ होता है।

अर्श के मस्सों पर उक्त कोयलों के चूर्ण को लगभग २१ बार जल से धुले हुए गाय के मक्खन में मिला मलहम सा बनालें तथा प्रातः सायं शौच क्रिया के बाद मस्सों पर लगाया करें; बिना कष्ट के मस्से दूर हो जाते हैं। मक्खन के अभाव में सरसों का तेल मिला सकते हैं।

नोट मात्रा—क्वाथ २॥ से ५ तो। पंचांग चूर्ण—३-६ माशा। बीज चूर्ण—१-३ माशा। दूध—२ से १० बूंद। अधिक मात्रा में यह आमाशय और आंत के लिये हानिकर है। हानि निवारणार्थ–शक्कर, शहद या कतीरा

प्रतिनिधि —इसका प्रतिनिधि गूलर है।

विशिष्ट योग–

(१) न्यग्रोधादि चूर्ण—बड़ा गूलर, पीपल वृक्ष, अरलू, अमलतास, असन (पीतशाल), आम, कैथ, जामुन, चिरौंजी वृक्ष, अर्जुन, धव और महुआ इनके

Scanned with CamScanner

वृक्षों की छाल तथा मुलहठी, लोध, बरने की छाल, फरहद (या नीम) की छाल, परवल पत्र, मेढ़ासिंगी, दन्तीमूल, चित्रक, अरहर की जड़, करंजफल, त्रिफला, कुड़ा छाल (या इन्द्र जौ) और शुद्ध भिलावा सबका समभाग चूर्ण कर लेवें। १ से ३ माशा की मात्रा में शहद के साथ चाटकर ऊपर से त्रिफला क्वाथ पीवें। इससे मूत्र शुद्ध होकर समस्त प्रमेह एवं मूत्रकृच्छ्र का नाश होता है। इसके सेवन से प्रमेह पिडिकायें नहीं निकलतीं, बढ़ी हुई मेद कम होने लगती है। प्यास भी शांत होती है, बहुमूत्र में अच्छा लाभ होता है। —भै. र.

(२) न्यग्रोधादि घृत—बड़ा गूलर, पीपल वृक्ष, पाकर और शाल इनकी छाल तथा फूल प्रियंगु, ताड़ फल का गूदा, जामुन की छाल, चिरौंजी वृक्ष की छाल, पद्माख व असगन्ध समभाग मिश्रित १ सेर लेकर जौकुट कर सबको १६ सेर दूध तथा ६४ सेर जल मिला मन्द आग पर पकावें। दूध शेष रहने पर छान कर उसका दही जमाकर उससे घृत निकाल लें। उरःक्षत तथा वीर्य क्षीणता वाले रोगी को इसे (१ या २ तो. की मात्रा में) शाठी चावलों के भात के साथ घृत मिलाकर खिलाना हितकारक है। —ग. नि.

नोट—न्यग्रोधादि घृत का अन्य प्रयोग भैषज्य रत्नावली में देखलें। वह प्रदरादि कई रोगों का नाशक है। प्रयोग लम्बा होने से विस्तार भय से यहां नहीं दिया गया।

(३) बलवर्धक योग—बड़ की जटा, लज्जावन्ती के बीज, श्वेत मूसली, सालममिश्री, सत्यानाशी की छाल, सिंघाड़े का आटा, इमली के बीज तथा ईशबगोल की भुसी १-१ तो. सबको महीन पीसकर चूर्ण में बंग भस्म २ तो. को मिला खूब खरल कर रखलें। प्रातः सायं ६ माशा की मात्रा में फांक कर ऊपर से गौदुग्ध पिलावें। इससे सर्व प्रकार के प्रमेह, प्रदर, कफ व वात के विकार, यकृत प्लीहा के विकार, मसाने या गुर्दे की व्याधियां आदि नष्ट होकर शरीर बलिष्ट होता है। मस्तिष्क के विकार भी दूर होते हैं। सेवन काल में गर्म पदार्थ न लें। संयमपूर्वक रहें।

योग नं० २—बड़ की कोमल शाखाएं, कोंपलें और फल १०-१० तो. लेकर जौकुट कर कढ़ाई या लोहे के ढक्कनदार पात्र में ६० तो. जल डालकर ७ दिन पड़े रहने दें। फिर सबको अच्छी तरह उसी जल में मसल कर सौंफ को निकाल कर फेंक दें और जल को आग पर चढ़ावें। साथ ही उसमें ब्राह्मी, गोखरू, समुद्रशोख ४-४ तो. व लाजवन्ती के बीज २ तो. कूट छानकर मिलाकर धीमी आग पर धीरे धीरे पकाते हुए गाढ़ा हो जा[illegible] नीचे उतारते ही उसमें बड़ का दूध ४ तोला तक [illegible] मिलालें। ठण्डा हो जाने पर चांदी के वर्क मि[illegible] रखलें।

प्रातः सायं ३ माशा की मात्रा में गौदुग्ध से लेवें। गुण उपर्युक्तानुसार ही हैं।

योग नं० ३—इसकी जटा व कोमल पत्तों के साथ त्रिफला प्रत्येक २॥-२॥ तो. तथा ब्राह्मी शुष्क ५ तो. सबका महीन चूर्ण कर उसमें ५ तो. इसी का (बड़ का) दूध और आवश्यकतानुसार शहद मिला मटर से कुछ बड़ी गोलियां बनालें। प्रातः सायं २-२ गोली गौदुग्ध या ताजे जल के साथ लेवें। गुण उपर्युक्तानुसार ही हैं।

योग नं० ४—इसकी लाल-लाल कोमल जटाओं का अग्र भाग लेकर थोड़ा चूने का पानी मिला खूब घोट कर रस निचोड़ व छान कर पकावें। थोड़ा दूध का छींटा देकर मैल उतार कर साफ होने पर चीनी मिट्टी के पात्र में डालकर पानी वाले पात्र के मुख पर रख आग पर रखें, जिसमें उसे केवल जल की वाष्प की गरमी पहुचे। अफीम के जैसा गाढ़ा हो जाने पर १-१ रत्ती की गोलियां रखलें। प्रतिदिन प्रातः २ गोली भैंस के ताजे २० तो. तक पकाये हुए दूध के साथ सेवन करें। प्रमेह, स्वप्नदोष आदि वीर्य विकार दूर होकर वीर्यवृद्धि होती है। —संकलित

(४) वटजटासव—प्रमेहादि नाशक।

इसकी कोमल जटाएं २ सेर जौकुट कर १२ सेर जल में पकावें। ४ सेर जल शेष रहने पर छानकर संधान पात्र में भर ठंडा होने पर उसमें शहद ३ सेर, मिश्री २॥ सेर, धाय पुष्प चूर्ण २० तो., नाग केशर, काली मिर्च

Scanned with CamScanner

और प्रियंगु का चूर्ण ८-८ तो. मिला पात्र का मुख अच्छी तरह बन्द कर रखें। २१ या ३० दिन बाद छानकर बोतलों में भर रखें। १ से ४ तो. तक की मात्रा में सेवन से प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, रक्तार्श में लाभ होता है। स्त्रियों की अत्यधिक रज.स्राव की अवस्था में इसके सेवन से आशातीत लाभ होता है।

योग नं० २—वटदुग्धासव—इसके दूध एक भाग में आधा भाग मृतसंजीवनी सुरा मिलाकर, कांच की बोतल में भर अच्छी तरह मुख मुद्रा कर ७ दिन तक सुरक्षित रखने के बाद छान कर रखलें।

१० से २० बून्द तक की मात्रा में, धारोष्ण दुग्ध के साथ सेवन से प्रमेह, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, बहुमूत्र, रक्तार्श तथा स्त्रियों का सोमरोग नष्ट होता है। शोथ व्रण पर इसे शतधौत घृत में मिलाकर लगाने से अपूर्व लाभ होता है। भगन्दर नासूर पर इसे मनुष्य के नाखून की भस्म में मिलाकर लगाने से, तथा कंठमाला, कुष्ठ, दाद पर इसे बावची के चूर्ण में मिलाकर प्रलेप करने से लाभ होता है।

नोट—इसके एवं अन्य आसवारिष्टों के प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह ग्रन्थ में देखिये।

(५) हिंगुल भस्म—(बाजीकरणार्थ) हिंगुल (शिंगरफ) की २ तो की डली को मिट्टी के दो सरावलों में रख ऊपर से बड़ का दूध ६ तोला डालकर कपड़मिट्टी कर शुष्क कर, ऊपर से आधा सेर कण्डा लपेट कर सुरक्षित स्थान में आग दें। स्वांग शीतल होने पर खोल कर देखें। श्वेत रंग की वजनी भस्म होगी। ½ से १ रत्ती तक की मात्रा में मक्खन या मलाई के साथ सेवन करें अत्यन्त बाजीकरण है।

—संकलित

नोट—इसके योग से चांदी, सीसा, हड़ताल आदि की भस्में बनाई जाती हैं। विस्तार भय से तथा वे भस्में संशयास्पद होने से यहां देना उचित नहीं है।

बरंजासिफ—देखो बिरंजासिफ। बरतुली—देखो बेलन्तर।

सेंक करने को

बिजली का हीटर
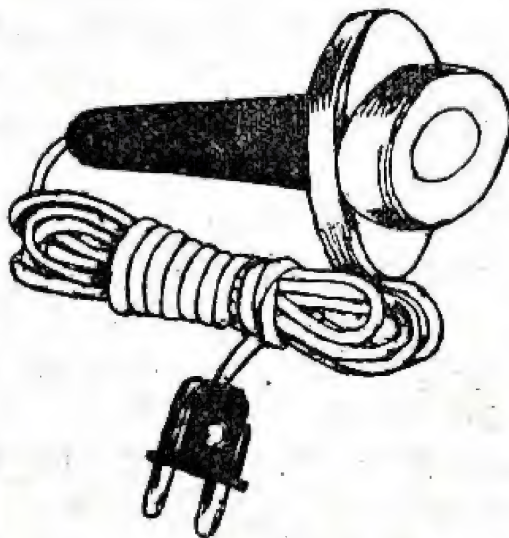
इस मशीन (हीटर) से आप बिजली द्वारा किसी भी स्थान की सिकाई कर सकते हैं। जिस प्रकार से चोट लगने पर पोटली से या रुई से सिकाई करते हैं उसी प्रकार से इसकी गर्मी पहुंचती है। अंगीठी जलाने आदि किसी प्रकार का झंझट नहीं। बिजली में लगाकर तुरन्त सिकाई कर सकते हैं। इसको इस प्रकार से बनाया गया है कि चारों ओर से बन्द रहता है जिससे किसी भी प्रकार का झटका लगने का डर नहीं। प्रत्येक चिकित्सक के लिए प्रतिदिन के उपयोग की वस्तु है। ए. सी. एवं डी. सी. दोनों प्रकार की बिजली से चल सकता है। मू० २१.०० पोस्ट पैकिंग व्यय २.५० एवं सेलटैक्स प्रथक।

दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ)

Scanned with CamScanner

वनौषधि-विशेषांक (चतुर्थ भाग)

की

सन्दर्भ-सूची

(अकारादि क्रमानुसार)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

प

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

भ, म

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

ह, क्ष, त्र

Scanned with CamScanner

हम सभी एक सामान्य और सुखी जीवन चाहते हैं। परेशानियां और मुश्किलें नहीं चाहते। ● एक सुखी परिवार में कितने बच्चे होते हैं? आज १०० में ७० से भी ज्यादा ऐसे माता-पिता हैं, जिनके तीन बच्चे हैं और अब वे चौथा बच्चा नहीं चाहते*। जमाना अब बदल गया है। अब वो दिन नहीं रहे, जब कि माता-पिता अपनी खुशी के लिये ज्यादा बच्चे पैदा करना जरूरी समझते थे। ● आज परिवार को छोटा रखने के लिये अनेक तरीके हैं।

*सूत्र : मैसूर, उत्तर प्रदेश, बिहार व बंगाल में किया गया जनसंख्या अध्ययन

सलाह और मुफ्त सेवा के लिये

परिवार कल्याण केन्द्र में जाइये।

DA 66/197

INDEX

LATIN AND ENGLISH NAMES

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

क्या आप रोगी हैं ?

यदि आप या आपके मित्र रोगी हैं और चिकित्सा कराते कराते परेशान हो गये हैं तो अपने रोग का पूरा हाल लिखकर पत्र द्वारा भेजियेगा। धन्वन्तरि के प्रधान सम्पादक श्री वैद्य देवीशरण गर्ग वैद्योपाध्याय अनुभवी और सफल चिकित्सक हैं। आपके पत्र को ध्यान से पढ़ेंगे और विचार कर औषधिव्यवस्था मुफ्त कर देंगे। यदि आप चाहेंगे तो आपके रोगानुकूल औषधियां भी भेज दी जावेंगी और आप शीघ्र अपने रोग से छुटकारा पा जायेंगे। इस प्रकार पत्र द्वारा औषधियां प्राप्त कर सैकड़ों हजारों रोगियों ने लाभ उठाया है, आप भी वैद्य जी के अनुभव से लाभ उठाइये।

२.०० फाइल बनाने का शुल्क

भेजने पर आपके नाम की प्रथक् फायल बनाकर आपका पत्र व्यवहार पृथक् रखा जायगा, जिससे कि पुन: दवा मंगाने पर आपके पूर्व पत्रादि वैद्य जी के समक्ष रखने में तथा आपके पत्र का उत्तर देने में आसनी और शीघ्रता हो सकेगी। अपने रोग की दशा लिखकर भेजते समय ही २.०० मनियार्डर से भेजना चाहिये। फायल नम्बर लिख दिया करें तो बड़ी सुविधा रहेगी।

नोट—रोग लक्षण संक्षिप्त लिखते हुये पत्र लिखें, अधिक गाथा लिखकर पत्र लम्बा न करें। समयाभाव से लम्बा पत्र पढ़ने तथा उत्तर देने में असमर्थ रहेंगे।

पता—व्यवस्थापक चिकित्सा-विभाग

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

Scanned with CamScanner

संस्थापित १८९८

धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़ (अलीगढ़)
की

प्रामाणिक आयुर्वेदिक औषधियां
एवं
चिरपरीक्षित सफल पेटेंट औषधियां
(केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिए)

हम गत ७० वर्षों से शास्त्रोक्त-विधि से अत्युत्तम द्रव्यों द्वारा योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों की देख-रेख में पूर्ण प्रभावशाली आयुर्वेदिक औषधियों का निर्माण कर भारत के प्रतिष्ठित चिकित्सकों को उचित मूल्य पर सप्लाई करते हैं। हम अपनी औषधियों का अन्य फार्मेसियों की तरह धुआंधार प्रचार नहीं करते हैं। लेकिन हमारी औषधियां अपने गुणों के कारण उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रचार प्राप्त करती हैं। आपसे भी साग्रह निवेदन है कि हमारी औषधियों को एक बार व्यवहार करके उनकी परीक्षा अवश्य करें।

आवश्यक निवेदन

इस समय हर प्रकार की वस्तुओं की उत्तरोत्तर मंहगाई के कारण विवशतः हमको औषधियों के भाव बढ़ाने पड़े हैं तथा आगे भी कब बढ़ाने पड़ जायें, नहीं कहा जा सकता। अस्तु जब जैसा भाव होगा उसी के अनुसार औषधियां भेजी जायेंगी।

Scanned with CamScanner

नियम

१–कमीशन

अ. १५.०० से कम मूल्य की दवा मंगाने पर कोई कमीशन नहीं दिया जायगा ।

आ. ५५.०० तक की दवा मंगाने पर १२॥ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा ।

इ. ५५.०० से अधिक मूल्य की दवा मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा ।

ई. १००.०० से अधिक मूल्य की दवा मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा तथा मालगाड़ी का किराया कार्यालय देगा ।

उ. ५०.०० से अधिक नैट-मूल्य (कमीशन कम करके) की केवल रस रसायन मूल्यवान् औषधियां मंगाने पर पोष्ट-व्यय कार्यालय देगा ।

२–आर्डर देते समय—

अ. आदेशपत्र में औषधियों का नाम, उनका नम्बर, तोल पैकिंग की तोल तथा मूल्य सभी बातें स्पष्ट लिखें । नीचे मूल्य का जोड़ लगायें तथा उपयुक्त नियमानुसार जो कमीशन बनता हो उसको भी लिखें । यदि आप एजेंट हैं तो एजेंसी-नम्बर भी लिखें ।

आ. हर पत्र में अपना पूरा पता तथा पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखें ।

इ. पार्सल पोस्ट से भेजी जाय या रेल से, सवारीगाड़ी से भेजी जाय या मालगाड़ी से यह विवरण अवश्य लिखना चाहिये ।

ई. आर्डर देते समय चौथाई मूल्य अथवा कम से कम ५.०० एडवांस मनिआर्डर से अवश्य भेजें तथा आदेशपत्र में मनिआर्डर का नम्बर व तारीख दें ।

३—दवा भेजते समय पैकिंग करने में पूर्ण सावधानी रखी जाती है और प्रायः टूट-फूट नहीं होती । किन्तु अगर किसी कारण कोई टूट-फूट हो जाती है तो उसका जिम्मेदार कार्यालय नहीं है ।

४—पार्सल मंगाकर वी० पी० लौटाना अनुचित है । एक बार वी. पी. वापिस आने पर कार्यालय पुनः उस ग्राहक को वी. पी. न भेजेगा तथा खर्चा लेने का हकदार होगा । यदि बिल में कोई भूल है तो वी. पी. छुड़ाकर पत्र डालकर उसका सुधार करालें ।

५—हमारे यहां उधार का लेना-देना नहीं है । बीजक का रुपया बैंक या वी. पी. से लिया जाता है ।

६—सभी ग्राहकों को २ प्रतिशत सैलटैक्स अवश्य देना होगा ।

७—ग्राहकों को पार्सल का बारदाना, पैकिंग व्यय, पोस्टव्यय, स्टेशन पहुंचाई आदि सभी खर्च पृथक देने होते हैं ।

८—धन्वन्तरि कार्यालय के किसी भी विभाग का कोई भी झगड़ा अलीगढ़ की अदालत में तय होगा ।

९—नियमों में अथवा औषधियों के भावों में किसी भी समय सूचना दिये बिना परिवर्तन करने का कार्यालय को पूरा अधिकार है ।

सभी ग्राहकों से

केवल दो प्रतिशत सेलटैक्स

केन्द्रीय सरकार के नए नियम के अनुसार हम अपने सभी ग्राहकों–एजेंटों से चाहे वे उत्तर प्रदेश से बाहर के हों वही दो प्रतिशत बिक्रीकर लेंगे । हमको सी-फार्म लेने की भी अब आवश्यकता नहीं है ।

उत्तर प्रदेश से बाहर के हमारे बहुत से ग्राहकों तथा एजेंटों ने बिक्रीकर अधिक लग जाने के कारण हमारे यहां से औषधियां मंगाना बंद कर दिया था । अब उन ग्राहकों से निवेदन है कि आवश्यकतानुसार औषधियों का आर्डर देकर पूर्ववत् हमको सेवा का अवसर देते रहें । हम सभी ग्राहकों से केवल दो प्रतिशत बिक्रीकर लेंगे ।

व्यवस्थापक–धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ जिला अलीगढ़

Scanned with CamScanner

शास्त्रोक्त औषधियों

के परिवर्द्धित भाव

कूपीपक्व रसायन

	१ ग्राम	१० ग्राम
सि. मकरध्वज नं. १	५.५५	५५.००
सि. मकरध्वज नं. २	४.०५	४०.००
सि. मकरध्वज नं. ३	३.०५	३०.००
सि. मकरध्वज नं. ४	३.५५	३५.००
सि. मकरध्वज नं. ५	२.५५	२५.००
सि. मकरध्वज नं. ६	२.०५	२०.००
सि. चन्द्रोदय नं. १	९.०५	९०.००
अनुपान मकरध्वज	०.६५	६.००
रस सिंदूर नं० १	१.८५	१८.००
रस सिंदूर नं० २	१.६५	१६.००
रस सिंदूर नं० ३	१.३५	१३.००
मल्ल चन्द्रोदय	५.५५	५५.००
मल्ल सिंदूर	१.३५	१३.००
ताल सिंदूर	१.३५	१३.००
ताम्र सिंदूर	१.३५	१३.००
शिला सिंदूर	१.३५	१३.००
स्वर्णवङ्ग भस्म	०.५५	५.००
मृतसंजीवनीरस	०.५०	४.५०
रस कर्पूर	१.६५	१६.००
रस माणिक्य	०.४०	३.५०
समीरपन्नग रस नं० १	३.२५	३२.००
समीरपन्नग रस नं. २	१.३५	१३.००
पंचसूत रस	१.३५	१३.००
स्वर्णभूपति रस	३.२५	३२.००
व्याधिहरण रस	१.७५	१७.००

भस्में

	३ ग्राम	१० ग्राम
अभ्रक भस्म नं. १	१३.६०	४५.००
अभ्रक भस्म नं. २	१.४५	४.२५
अभ्रक भस्म नं. ३	०.८०	२.२५
अकीक भस्म	१.१०	३.५०
कपर्द (कौड़ी) भस्म	०.४०	०.६०
कांत लोह भस्म	०.८०	२.२५
कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म	०.४०	१.००
गोदन्ती हरताल भस्म	०.३५	०.७०
जहरमोहरा भस्म	०.९०	२.७५
तबकी हरताल भस्म	२.७५	९.००
ताम्र भस्म नं० १	२.१५	७.००
ताम्र भस्म नं० २	१.३०	४.०५
ताम्र भस्म नं० ३	०.९०	२.७५
नाग भस्म नं० १	१.२०	३.५०
नाग भस्म नं० २	०.७०	२.०५
प्रवाल भस्म नं० १	२.००	६.५०
प्रवाल भस्म नं० २	०.८५	२.५०
प्रवाल भस्म नं० ३	०.८५	२.५०
प्रवाल भस्म नं० ४	०.८०	२.२५
प्रवाल भस्म चंद्रपुटी	०.८०	२.२५
वङ्ग भस्म नं० १	१.००	३.१०
वङ्ग भस्म नं० २	०.८०	२.२५
वैक्रांत भस्म	२.२५	७.२५
मल्ल (संखिया) भस्म	२.२५	७.२५
मृगशृङ्ग भस्म (श्वेत)	०.३०	०.६०
माणिक्य भस्म	२.८५	९.००
मांडूर (कीट) भस्म नं० १	०.३५	०.८०
मांडूर भस्म नं० २	०.३०	०.६०
मुक्ता भस्म नं० १	३६.००	१२०.००
मुक्ता भस्म नं० २	२७.००	९०.००
यशद भस्म	०.६०	१.७५
रौप्य भस्म नं० १	४.३०	१४.००
रौप्य भस्म नं० २	३.८५	१२.५०
लोह भस्म नं० १	२.५०	८.००
लोह भस्म नं० २	०.६५	१.८५
लोह भस्म नं० ३	०.५०	१.१५
स्वर्ण भस्म	६०.००	×
स्वर्ण माक्षिक भस्म	०.७५	२.३०
शंख भस्म	०.३०	०.५५
[illegible] लोह भस्म	१.६०	४.५०
शुक्ति (मोतीसीप) भस्म	०.३०	०.७०
संगजराहत भस्म	०.३५	०.८०
त्रिवंग भस्म नं० १	१.६०	४.५०
त्रिवंग भस्म नं० २	०.६०	१.१५

पिष्टी

	३ ग्राम	१० ग्राम
प्रवाल पिष्टी	०.८०	२.२५
मुक्ता पिष्टी नं० १	३३.००	११०.००
मुक्ता पिष्टी नं० २	२४.००	८०.००
अकीक पिष्टी	०.८०	२.२५
जहरमोहरा पिष्टी	०.८०	२.२५
कहरवा पिष्टी	३.०५	१०.००
मुक्ताशुक्ति पिष्टी	०.३०	०.५५
माणिक्य पिष्टी	१.८५	६.००
वैक्रांत पिष्टी	१.८५	६.००

शोधित द्रव्य

	१०० ग्राम	१० ग्राम
शुद्ध गन्धक आमलासार	४.००	०.५०
शुद्ध वच्छनाग	६.००	०.७०
शुद्ध विषबीज (वस्त्रपूत)	८.५०	०.९५
शुद्ध जयपाल	४.००	०.६०
शुद्धताल (हरताल)	१२.००	१.३०
शुद्ध भल्लातक	५.००	०.६०
शुद्ध शिला (मंशिल)	१२.००	१.३०
शुद्ध ताम्र चूर्ण १ किलोग्राम		३६.००
शुद्ध लोह (फौलाद)	,,	७.००
शुद्ध धान्याभ्रक (शुद्ध बधाभ्रक)	,,	६.५०
शुद्ध मांडूर	,,	३.००

Scanned with CamScanner

पर्पटी

	१ ग्राम	१० ग्राम
ताम्र पर्पटी नं०१	१.००	९.००
ताम्र पर्पटी नं २	०.५०	४.५०
पंचामृत पर्पटी नं १	१.००	९.००
पंचामृतपर्पटी नं० २	०.५०	४.५०
विजय पर्पटी (स्वर्णमुक्ता घटित)	३.५०	३४.००
बोल पर्पटी नं० १	०.८०	७.००
बोल पर्पटी नं० २	०.५०	३.५०
रस पर्पटी नं० १	१.००	९.००
रस पर्पटी नं०२	०.६०	५.००
लोह पर्पटी नं० १	१.००	९.००
लोह पर्पटी नं० २	०.६०	५.००
श्वेत पर्पटी	×	०.५०
स्वर्ण पर्पटी नं०१	३.५०	३४.००
स्वर्णपर्पटी नं० २	२.५०	२४.००

नोट—नं० १ की पर्पटी विशेष शुद्ध-पारद से निर्मित है तथा नं० २ हिंगुलोत्थ पारद द्वारा निर्मित हैं। नं० १ की पर्पटी की मात्रा कम और गुण अधिक होने से व्यवहार में अधिक लेते हैं।

बहुमूल्य रस रसायन गुटिका

	१ ग्राम	१० ग्राम
आमवातेश्वर रस	१.८०	१७.००
वृ० कस्तूरीभैरव रस	२.९०	२८.००
कस्तूरी भैरव रस	२.५०	२४.००
कस्तूरी भूषण रस	२.६०	२५.००
वृ० कामचूड़ामणि रस	१.६०	१५.००
कामदुधा रस	१.३०	१२.००
कामिनीविद्रावण रस	१.५०	१४.००
कुमारकल्याणरस	५.१०	५०.००
कृष्णचतुर्मुख रस	२.१०	२०.००
चतुर्मुख चिंतामणि रस	२.९०	२८.००
जयमंगल रस (स्वर्णयुक्त)	३.८०	३७.००
प्रवाल पञ्चामृत रस	१.५०	१४.००
पुटपक्वविषमज्वरांतक लोह	१.९०	१८.००
वृ० पूर्णचन्द्र रस	२.५०	२४.००
बसन्तकुसुमाकर रस	३.६०	३५.००
वृ०वातचिंतामणिरस	३.९०	३८.००
ब्राह्मीवटी नं० १ (स्वर्णमुक्तायुक्त)	४.१०	४०.००
मृगाङ्कपोटली रस	९.७०	९६.००
मधुमेहांतक रस	१० गोली	३.१०
मधुरांतक वटी (मौक्तिक वटी)	१.५०	१४.००
महाराजनृपतिबल्लभ रस	१.२०	११.००
महा लक्ष्मीविलास रस (नारदीय)	१.५०	१४.००
महाराज वङ्ग भस्म	१.३०	१२.००
योगेन्द्र रस	४.९०	४८.००
रसराज रस	३.५०	३४.००
राजमृगांक रस	३.६०	३५.००
वृ० लोकनाथ रस	०.६०	५.००
श्वासचिन्तामणिरस	२.१०	२०.००
श्वासकासचिन्ता. रस	३.६०	३५.००
स्वर्ण बसन्तमालती नं०१	३.६०	३५.००
स्वर्ण बसन्त मालती नं०२ (शास्त्रीय)	२.२०	२१.००
सर्वाङ्गसुन्दररस	३.१०	३०.००
संग्रहणी कपाट रस नं. १	४.१०	४०.००
सूतशेखर रस नं. १ (स्वर्णयुक्त)	१.८०	१७.००
हिरण्यगर्भ पोटली रस	३.९०	३८.००
हेमगर्भ रस	४.१०	४०.००

रसायन गुटिका

	१० ग्राम	५० ग्रा.
अग्निकुमार रस	०.८०	३.५०
अजीर्ण कण्टक रस	०.९५	४.२५
अग्नितुण्डी वटी	०.८५	३.७५
आनन्दभैरवरस (लाल)	१.५०	७.००
आनन्दोदय रस	१.९०	९.००
आदित्य रस	१.५०	७.००
आमलकी रसायन	१.२०	५.५०
आरोग्यवर्धिनी वटी	१.२०	५.५०
इच्छाभेदी रस	१.४०	६.५०
इच्छाभेदीवटी (गोली)	१.५०	७.००
उपदंशकुठार रस	०.९५	४.२५
एकांगवीर रस	५.००	२४.५०
एलादि वटी	०.७०	३.००
एलुआदि वटी	०.७०	३.००
कर्पूर रस	५.७०	२८.००
कनकसुन्दर रस	१.२०	५.५०
कफकुठार रस	१.७०	८.५०
कफकेतु रस	०.९५	४.२५
कामधेनु रस	२.५०	१२.००
कामदुधा रस नं. २	२.५०	१२.००
कांकायन गुटिका	०.८०	३.५०
कीटमर्द रस	०.८०	३.५०
क्रव्यादि रस	४.५०	२२.००
कृमिकुठार रस	१.६०	७.५०
खैरसार वटी	०.७५	३.२५
गंगाधर रस	२.१०	१०.००
गन्धक वटी	०.८०	३.५०
गन्धक रसायन	१.९०	९.००
गर्भविनोद रस	१.२०	५.५०
गर्भपाल रस	२.५०	१२.००
गर्भचिन्तामणि रस	३.५०	१७.००
गुल्म कुठार रस	१.४०	६.५०
गुल्म कालानल रस	१.६०	७.५०
गुड़ पिप्पली	०.८०	३.५०
गुड़मार वटी	०.७०	३.००
ग्रहणी गजेन्द्र रस	३.७०	१८.००
ग्रहणीकपाट रस नं० २	२.९०	१४.००
ग्रहणीकपाट रस (लाल)	४.३०	२१.००
घोड़ाचोलीरस (अश्वकञ्चुकी रस)	१.२०	५.५०

Scanned with CamScanner

	१० ग्राम	५० ग्राम
चन्द्रप्रभा वटी	१.२०	५.५०
चन्द्रोदय वर्ती	१.००	४.५०
चन्द्रकलारस	१.६०	७.५०
चन्द्रांशु रस	१.६०	८.००
चन्द्रामृत रस	१.२०	५.५०
चित्रकादि वटी	०.८०	३.५०
ज्वरांकुश रस	१.१०	५.००
जयवटी	१.६०	८.००
जलोदरारि वटी	१.३०	६.००
जातीफल रस	२.६०	१४.००
तक्रवटी	१.५५	७.२५
दुर्जलजेता रस	१.१५	५.२५
दुग्धवटी नं. १ (अहिफेन युक्त)	६.००	२६.००
दुग्धवटी नं. २	१.५५	७.२५
नवज्वरहर वटी	१.५५	७.२५
नष्ट पुष्पान्तक रस	४.३०	२१.००
नृपतिवल्लभ रस	१.६०	८.००
नाराच रस	१.३०	६.००
नित्यानन्द रस	१.४०	६.५०
प्रतापलंकेश्वर रस	१.३०	६.००
प्रदरारि रस	१.५०	७.००
प्रदरान्तक रस	२.४०	११.५०
प्लीहारि रस	१.३०	६.००
प्राणेश्वर रस	३.५०	१७.००
प्राणदा गुटिका	०.७५	३.२५
पञ्चामृत रस नं० १	१.८०	८.५०
,, ,, नं० २	२.१०	१०.००
पाशुपत रस	१.३०	६.००
पीपल ६४ प्रहरी	४.३०	२१.००
वृ० शङ्ख वटी	१.१०	५.००
वृ० नायकादि रस	०.६५	४.२५
बहुमूत्रांतक रस	५.००	२४.५०
बहुशाल गुड़	०.८०	३.५०
बालामृत रस (वटी)	५.७०	२८.००
ब्राह्मी वटी नं० २	२.२०	१०.५०
वातगजांकुश रस	२.२०	१०.५०

	१० ग्राम	५० ग्राम
विषमुष्टिकावटी	०.६५	४.२५
वैताल रस	२.६०	१४.००
व्योषादि वटी	०.७०	३.००
महामृत्युञ्जय रस [रक्त]	२.१०	१०.००
,, [कृष्ण]	२.१०	१०.००
मकरध्वजवटी ५०० गोली		३६.००
महागन्धक रस	२.१०	१०.००
मरिच्यादि वटी	०.७०	३.००
महाशूलहर रस	१.८०	८.५०
महावातविध्वंस रस	३.७०	१८.००
मार्कण्डेय रस	१.३०	६.००
मूत्रकृच्छ्रांतक रस	४.३०	२१.००
मेहमुद्गर रस	१.५०	७.००
रक्तपित्तान्तक रस	१.८०	८.५०
रस पीपरी	३.१०	१५.००
रामवाण रस	१.३०	६.००
लवंगादि वटी	१.००	४.५०
लशुनादि वटी	०.७०	३.००
लघुमालती वसंत	३.१०	१५.००
लक्ष्मीविलास रस	२.५०	१२.००
लक्ष्मीनारायण रस	३.७०	१८.००
लाई (रस) चूर्ण	१.३०	६.००
लीलावती गुटिका	१.३०	६.००
लीलाविलास रस	२.१०	१०.००
लोकनाथ रस	२.३०	११.००
श्वासकुठार रस	१.३०	६.००
शंखवटी	०.७०	३.००
संशमनी वटी	१.३०	६.००
शिरोवज्र रस	१.५०	७.००
शिलाजीत वटी	२.१०	१०.००
शीतभञ्जी रस (वटी)	२.४०	११.५०
शूलवज्रिणी वटी	१.५०	७.००
शूलगजकेशरी रस	२.६०	१४.००
शृंगाराभ्रक रस	२.३०	११.००
समीरगज केशरी	५.७०	२८.००
स्मृतिसागर रस	४.३०	२१.००
सन्निपात भैरव रस	१.६०	८.००

	१० ग्राम	५० ग्राम
संजीवनी वटी	०.७०	३.००
सर्पगंधा वटी	२.३०	११.००
सिद्ध प्राणेश्वर रस	१.३०	६.००
सूत शेखर रस	३.५०	१७.००
सूरण मोदक वृ०	०.७०	३.००
सौभाग्य वटी	१.३०	६.००
हिंग्वादि वटी	०.७०	३.००
हृदयार्णव रस	३.१०	१५.००
त्रिपुर भैरव रस	१.५०	७.००
त्रिभुवनकीर्ति रस	१.२०	५.५०
त्रिविक्रम रस	३.५०	१७.००

लोह-माण्डूर

	१० ग्राम	५० ग्राम
अम्लपित्तांतक लोह	२.३०	११.००
चन्दनादि लोह (ज्वर)	१.५०	७.००
चन्दनादिलोह (प्रमेह)	१.८५	८.७५
ताप्यादिलोह	३.६०	१७.५०
धात्री लोह	१.३०	६.००
नवायस लोह (लोह—भस्म से निर्मित)	१.००	४.५०
प्रदरारि लोह	१.६०	७.५०
प्रदरान्तक लोह	१.६०	८.००
पुनर्नवादि मांडूर	१.००	४.५०
विडङ्गादि लोह	१.१०	५.००
विषम ज्वरांतक लोह	१.८०	८.५०
यकृत हर लोह	१.६०	७.५०
शोथोदरारि लोह	२.१०	१०.००
सर्वज्वरहर लोह	१.८०	८.५०
सप्तामृत लोह	१.५०	७.००
त्र्यूषणादि लोह	१.५०	७.००

गुग्गुल

	१० ग्राम	५० ग्राम
अमृतादि गुग्गुल	०.७०	३.००
कांचनार गुग्गुल	०.६०	२.५०
किशोर गुग्गुल	०.६०	२.५०
गोक्षुरादि गुग्गुल	०.६०	२.५०
पुनर्नवादि गुग्गुल	०.६०	२.५०
वृ० योगराज गुग्गुल	१.४५	६.७५

Scanned with CamScanner

	१० ग्राम	५० ग्राम
योगराज गुग्गुल	०.५०	२.००
रसाभ्र गुग्गुल	१.३०	६.००
रास्नादि गुग्गुल	•.६०	२.५०
सिंहनाद गुग्गुल	०.६०	२.५०
त्रियोदशांग गुग्गुल	०.६०	२.५०
त्रिफलादि गुग्गुल	०.६०	२.५०

अरिष्ट-आसव

	६२६ मि.लि. (१ बोतल)	४५५ मि.लि. (१ पौंड)	२२७ मि.लि. (८ औंस)
अमृतारिष्ट	३.२५	२.८०	१.५०
अर्जुनारिष्ट	३.३५	२.८५	१ ५५
अरविंदासव नं० १	६.००	७.६०	४.००
केशरयुक्त	११४ मि.लि. (४ औंस)		२.१५
अरविंदासव नं० २	३.७५	३.१०	१.९०
अशोकारिष्ट	३.३५	२.८५	१.५५
अभयारिष्ट	३.३५	२.८५	१.५५
अश्वगंधारिष्ट	३.७५	३.१०	१.७५
उशीरासव	३.२५	२ ८०	१.५०
कनकासव	३.२५	२.८०	१.५०
कुमारी आसव	३.३५	२.८५	१.६०
कुटजारिष्ट	३.४०	२.९०	१.६५
खदिरारिष्ट	३.१५	२.८०	१.५०
चन्दनासव	३.१५	२.८०	१.५०
दशमूलारिष्ट नं० १ (कस्तूरी सहित)	६.००	५.००	२.६०
दशमूलारिष्ट नं० २ कस्तूरी रहित)	३.६०	३.००	१.७०
द्राक्षासव	३.६०	३.००	१.७०
द्राक्षारिष्ट	३.६०	३.००	१.७०
देवदार्व्यारिष्ट	३.३५	२.८५	१.६०
पत्रांगासव	३.३५	२.८५	१.६०
पिप्पल्यासव	३.३५	२.८५	१.६०
पुनर्नवासव	३.१५	२.८०	१.५०
बल्लभारिष्ट	५.७५	४.७५	२.४५
बबूलारिष्ट	३.१५	२.८०	१.५०
बासारिष्ट	३.६०	३.००	१.७०
बालरोगांतकारिष्ट	४.१०	३.४०	१.८०
बिडङ्गासव	३.२५	२.८०	१.५०
रक्तशोधिकारिष्ट	३.७५	३.१०	१.७५
रोहितकारिष्ट	३.१५	२.८०	१.५०
लोहासव	२.९५	२.६०	१.४५
सारस्वतारिष्ट नं० १ (स्वर्ण युक्त)	×	×	७ २५
सारस्वतारिष्ट नं० २	४.१०	३.४०	१.८०
सारिवाद्यासव	३.६०	३.००	१.७०

अर्क

अर्क उसवा	४.१०	३.४०	१.८०
दशमूल अर्क	२.५०	२.२५	१.२५
द्राक्षादि अर्क	३.१०	२.८०	१.५०
महामंजिष्ठादि अर्क	२.५०	२.२५	१.२५
रास्नादि अर्क	२.५०	२.२५	१.२५
सुदर्शन अर्क	२.८०	२.५०	१.३५
अर्क सौंफ	२.७५	२.४५	१.३५
अर्क अजवायन	२.७५	२.४५	१.३५
अर्क पोदीना	२.८०	२.५०	१.३५

क्वाथ

दशमूल क्वाथ १ किलोग्राम १.७५
१०० ग्राम ०.२५
२० ग्राम की १०० पुड़ियां ७.:०

दार्व्यादि क्वाथ १ किलो ५.००
१२५ ग्राम की ८ पुड़िया ५.२५

देवदार्व्यादि क्वाथ १ किलो. ४.२५
१२५ ग्राम की ८ पुड़िया ४.५०

बलादि क्वाथ १ किलोग्राम ३.००
१२५ ग्राम की ८ पुड़िया ३.२५

महामंजिष्ठादि क्वाथ ५.००
१२५ ग्राम की पुड़िया ५.२५

महारास्नादि क्वाथ १ किलो ५.००
१२५ ग्राम की ८ पुड़िया ५.२५

त्रिफलादि क्वाथ १ किलो ४.२५
१२५ ग्राम की ८ पुड़िया ४.५०

Scanned with CamScanner

चूर्ण

	१ किलोग्राम	५० ग्राम		१ किलोग्राम	५० ग्राम		१ किलोग्राम	५० ग्राम
अग्निमुखचूर्ण	१४.००	०.९५	जातीफलादि चूर्ण	२८.००	१.६५	लवङ्गादि चूर्ण	२४.००	१.५०
अविपत्तिकर चूर्ण	१२.५०	०.९०	तालीसादि चूर्ण	२१.००	१.३०	लवणभास्कर चूर्ण	१०.५०	०.६०
अजीर्णपानक चूर्ण	१७.००	१.१०	दशनसंस्कार चूर्ण	१७.००	१.१०	सारस्वत चूर्ण	१४.००	०.९५
उदरभास्कर चूर्ण	१६.००	१.०५	नारायण चूर्ण	१४.००	०.९५	सामुद्रादि चूर्ण	१६.००	१.०५
एलादि चूर्ण	२१.००	१.३०	निम्बादि चूर्ण	१४.००	०.९५	शृङ्ग्यादि चूर्ण	१७.००	१.१०
कपित्थाष्टक चूर्ण	१२.५०	०.९०	प्रदरान्तक चूर्ण	१४.००	०.९५	सितोपलादि चूर्ण	३५.००	२.००
कामदेव चूर्ण	१६.००	१.०५	पञ्चसकार चूर्ण	११.००	०.८०	(असली वंशलोचन से बना)		
गंगाधर चूर्ण	१४.००	०.९५	प्रदरारि चूर्ण	१४.००	०.९५	महासुदर्शन चूर्ण	११.००	०.८०
चन्दनादि चूर्ण	१४.००	०.९५	पुष्यानुग चूर्ण	१४.००	०.९५	हिंग्वाष्टक चूर्ण	२०.००	१.२५
ज्वर भैरव चूर्ण	१४.००	०.९५	यवानीखांडव चूर्ण	१४.००	०.९५	त्रिफलादि चूर्ण	६.००	०.७०

तैल-घृत

	४५५ मि.लि. (१ पौंड)	११४ मि.लि. (४ औंस)	५७ मि.लि. (२ औंस)		४५५ मि.लि. (१ पौंड)	११४ मि.लि. (४ औंस)	५७ मि.लि. (२ औंस)
आंवला तैल	६.५०	१.७०	०.९०	महाविषगर्भ तैल	१०.५०	२.७५	१.४५
इरमेदादि तैल	९.००	२.४०	१.३०	बैरोजा का तैल	१४.००	३.६५	१.९५
कटफलादि तैल	१०.५०	२.७५	१.४५	महामरिच्यादि तैल	९.००	२.४०	१.३०
कन्दर्प सुन्दर तैल	११.५०	३.००	१.६०	महामाष तैल	११.००	२.९०	१.५०
काशीसादि तैल	८.५०	२.३०	१.२५	मोम का तैल	१७.००	४.३५	२.२५
किराततादि तैल	८.५०	२.३०	१.२५	राल का तैल	१६.००	४.१०	२.१०
कुमारी तैल	९.००	२.४०	१.३०	लाक्षादि तैल	१०.००	२.६०	१.३५
ग्रहणीमिहिर तैल	१०.००	२.६०	१.३५	शुष्कमूलादि तैल	९.००	२.४०	१.३०
गुडूच्यादि तैल	९.००	२.४०	१.३०	षड्बिन्दु तैल	१०.५०	२.७५	१.४५
महाचन्दनादि तैल	११.००	२.९०	१.५०	हिमसागर तैल	११.००	२.९५	१.५०
चन्दनबलालाक्षादि तैल	११.००	२.९०	१.५०	क्षार तैल	१६.००	४.१०	२.१०
जात्यादि तैल	११.००	२.९०	१.५०	अर्जुन घृत	१७.००	४.४०	२.२५
दशमूल तैल	१०.००	२.६०	१.३५	अशोक घृत	१७.००	४.४०	२.२५
दार्व्यादि तैल	११.००	२.९०	१.५०	अग्नि घृत	१७.००	४.४०	२.२५
महानारायण तैल	१०.००	२.६०	१.३५	कदली घृत	१८.००	४.७५	२.४०
पिप्पल्यादि तैल	१०.००	२.६०	१.३५	कामदेव घृत	२०.००	५.१५	२.६५
पिंड तैल	११.५०	३.००	१.६०	दूर्वादि घृत	१७.००	४.४०	२.२५
पुनर्नवादि तैल	९.००	२.४०	१.३०	धात्री घृत	१७.००	४.४०	२.२५
ब्राह्मी तैल	८.५०	२.३०	१.२५	पंचतिक्त घृत	१४.५०	३.६५	१.८५
बिल्व तैल	११.००	२.९०	१.५०	फल घृत	१७.००	४.४०	२.२५
विषगर्भ तैल	९.५०	२.५०	१.३०	ब्राह्मी घृत	१७.००	४.४०	२.२५
भृङ्गराज तैल	१०.५०	२.७५	१.४५				

Scanned with CamScanner

	४५५ मि.लि. (१ पौंड)	११४ मि.लि. (४औंस)	५७ मि.लि. (२औंस)
महाविन्दु घृत	१७.००	४.४०	२.२५
महात्रिफलादिघृत	१८.००	४.६५	२.४०
भृंगीगुड़ घृत	१७.००	४.४०	२.२५
सारस्वत घृत	१७.००	४.४०	२.२५

नोट—सभी शीशियां पिल्फर कैप से सुन्दर पेक की जाती हैं।

क्षार-सत्व-द्राव

	१०० ग्राम	१० ग्राम
वज्रक्षार	३.५०	०.४५
अपामार्ग क्षार	३.५०	०.४५
इमली क्षार	३.५०	०.४५
वासा क्षार	४.२५	०.५५
कटेरी क्षार	४.२५	०.५५
कदली क्षार	३.५०	०.४५
तिल क्षार	४.२५	०.५५
मूली क्षार	५.००	०.६०
ढाक क्षार	३.५०	०.४५
आक क्षार	५.००	०.६०
केतकी क्षार	३.५०	०.४५
चना (चणक) क्षार	४.२५	०.५५
यव क्षार	२.५०	०.३५
गिलोय सत्व	४.००	०.५०
नाड़ी क्षार	५.००	०.६०

शंखद्राव ११४ मिलिलिटर (४औंस) ११.५०
,, २८ मिलिलिटर (१औंस) ३.००

अवलेह

च्यवनप्राशयावलेह १ किलोग्राम ८.००
४५० ग्राम शीशी में ४.००,
२५० ग्राम शीशी में २.२५,
१२५ ग्राम शीशी में १.३०

	१ किलोग्राम	२५० ग्राम
कुटजावलेह	१३.००	३.४५
कण्टकारीअवलेह	११.००	२.६५
कुशावलेह	१३.००	३.४५
वांसावलेह	११.००	२.६५
ब्राह्मी रसायन	१४.००	३.७०
आर्द्रक खण्ड	१४.००	३.७०

	१ किलोग्राम	१२५ ग्राम
सुपारी पाक	१४.००	२.००

विषमुष्टिकावलेह ५० ग्राम ६.७५

मधुकाद्यवलेह १७५ ग्राम (१५ तो) ४.००

मलहम

	८ औंस	२ औंस
जात्यादि मलहम	५.००	१.४०
पारदादि मलहम	७.००	१.६०
अग्निदग्धव्रणहर मलहम	४.५०	१.२५
दशांग लेप	५.००	१.४०

बहुमूल्य द्रव्य

	१० ग्राम
असली कस्तूरी नंबर १	१२५.००
कस्तूरी काश्मीरी उत्तम	६०.००
अम्बर	३६.००
गोलोचन	६०.००
केशर काश्मीरी मोंगरा	४०.००
चांदी के वर्क	१०.००
केशर चूरा (औषधि निर्माण के लिये उत्तम)	१६.००

भस्म निर्माणार्थ

अकीक दाना	५० ग्राम	२.००
वैक्रान्त खड़	१० ग्राम	२.००
अकीक खड़	,,	१.००
माणिक्य (याकूत)	,,	२.००
जहरमोहरा खताई		१.००
नीलम खड़		२.००
खर्पर (खपरिया)		२.००
पिरोजा खड़		२.००
कहरवा		३.५०
पुखराज खड़		३.००

नोट—बहुमूल्य द्रव्य एवं भस्म निर्माणार्थ द्रव्यों के भाव नेट हैं। इन भावों पर किसी को कमीशनादि नहीं दिया जायगा। इन भावों में घट बढ़ होना भी संभव है। आर्डर सप्लाई के समय जो भाव होगा वह लगाया जायगा।

Scanned with CamScanner

केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिये—

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा निर्मित

अनुभूत एवं सफल पेटेण्ट दवायें

हमारी ये पेटेण्ट औषधियां ७० वर्ष से भारत के प्रसिद्ध वैद्यराजों और धर्मार्थ औषधालयों द्वारा व्यवहार की जा रही हैं। अतः इनकी उत्तमता के विषय में किसी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिए।

मकरध्वज वटी

(अर्थात् निराशबन्धु)

आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति में सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं आशुफलप्रद महौषधि सिद्ध मकरध्वज नम्बर १ अर्थात् चन्द्रोदय है। इसी अनुपम रसायन द्वारा इन गोलियों का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त अन्य मूल्यवान एवं प्रभावशाली द्रव्यों कोभी इसमें डाला जाता है। ये गोलियां भोजन को पचाकर रस, रक्त आदि सप्त धातुओं को क्रमशः सुधारती हुई शुद्ध वीर्य का निर्माण करतीं और शरीर में नव-जीवन व नव-स्फूर्ति भर देती हैं। जो व्यक्ति चन्द्रोदय के गुणों को जानते हैं वे इसके प्रभाव में सन्देह नहीं कर सकते। वीर्य विकार के साथ होने वाली खांसी, जुकाम, सर्दी, कमर का दर्द, मन्दाग्नि, स्मरण शक्ति का नाश आदि व्याधियां भी दूर होती हैं। क्षुधा बढ़ती व शरीर हृष्ट-पुष्ट और निरोग बनता है। जो व्यक्ति अनेकों औषधियां सेवन कर निराश हो गये हैं उन निराश पुरुषों को यह औषधि बन्धु तुल्य सुख देती है। इसीलिए इसका दूसरा नाम निराशबन्धु है।

चालीस वर्ष की आयु के बाद मनुष्य कोअपने में एक प्रकार की कमी और शिथिलता का अनुभव होता है। ऐसा रोग प्रतिरोधक शक्ति में कमी आ जाने केफलस्वरूप होता है। मकरध्वज वटी इस शक्ति को पुनः उत्तेजित करती और मनुष्य को सबल व स्वस्थ बनाये रखती है। मूल्य—१ शीशी (४१ गोलियों की) ३.५०, छोटी शीशी (२१ गोलियों की) १.८५

कुमारकल्याण घुटी

(बालकों के लिये सर्वोत्तम मीठी घुटी)

इसके सेवन करने वाले बालक कभी बीमार नहीं होते किंतु पुष्ट हो जाते हैं। यह बालकों को बलवान बनाने की बड़ी उत्तम औषधि है। रोगी बालक के लिये तो संजीवनी है। इसके सेवन से बालकों के समस्त रोग जैसे ज्वर, हरे-पीले दस्त, अजीर्ण, पेट का दर्द, अफरा, दस्त में कीड़े पड़ जाना, दस्त साफ न होना, सर्दी, कफ-खांसी, पसली चलना, सोते में चौंक पड़ना, दांत निकलने के रोग आदि सब दूर हो जाते हैं। शरीर मोटा-ताजा और बलवान हो जाता है। पीने में मीठी होने से बच्चे आसानी से पी लेते हैं। मूल्य—१ शीशी आध औंस (१४ मिलि. लिटर) ०.३१, ४ औंस (११४ मि. लि.) की शीशी सुन्दर कार्डबक्स में २.००, २ औंस (५७ मि. लि.) की शीशी सुन्दर कार्डबक्स में १.१०

कुमार रक्षक तैल—इसको बच्चे के सम्पूर्ण शरीर पर धीरे-धीरे रोजाना मालिश करें। आध घण्टे बाद स्नान करायें। बच्चे में स्फूर्ति बढ़ेगी मांसपेशियां सुदृढ़ हो जायेंगी, हड्डियों में ताकत पहुंचेगी। मूल्य १ शीशी ४ औंस (११४ मि. लि.) २.५०, छोटी शीशी २ औंस (५७ मि. लि.) १.३५

ज्वरारि—कुनीन रहित विशुद्ध आयुर्वेदिक, ज्वर-जूड़ी को शीघ्र नष्ट करने वाली सस्ती एवं सर्वोत्तम महौषधि है। जूड़ी और उसके उपद्रवों को नष्ट करती है। मूल्य—दस मात्रा की शीशी १.५०, बीस मात्रा की बड़ी शीशी २.८०, पचास मात्रा की पूरी बोतल ५.००

कासारि—हर प्रकार की खांसी को दूर करने वाली सर्वत्र प्रशंसित अद्वितीय औषधि है। यह वासा पत्र क्वाथ एवं पिप्पली आदि कास नाशक आयुर्वेदिक द्रव्यों से निर्मित शर्बत है। अन्य औषधियों से साथ इसको अनुपान रूप में देना भी उपयोगी है। सूखी व तर दोनों प्रकार की खांसी को नष्ट करने वाली सस्ती दवा है। मूल्य—बीस मात्रा की शीशी १.४०, ५ मात्रा की शीशी ०.६०, १ पौंड (४५५ मि. लि.) ४.५०

Scanned with CamScanner

कामिनी रक्षक—बार-बार गर्भस्राव हो जाना, बच्चों का छोटी आयु में ही मर जाना, इन भयङ्कर व्याधियों से अनेक सुकुमार स्त्रियां आजकल पीड़ित हैं। यदि कामिनी रक्षक को गर्भ के प्रथम माह से नवम माह तक सेवन करावें तो न गर्भस्राव होगा और न गर्भपात। बच्चा स्वस्थ, सुन्दर और सुडौल उत्पन्न होगा मूल्य-२ औंस (५७ मि. लि.) की १ शीशी २.५० रु०

शिरोविरेचनीय सुरमा—जिनको जुकाम रुकने के कारण सिर में दर्द हो इस सुरमा को सलाई से हल्का-हल्का नेत्रों में आंजें। थोड़ी देर ही में आंख व नाक से बलगम निकलना प्रारम्भ हो जायगा और सभी कष्ट दूर होंगे। पुराने सिर दर्द में पथ्यादि क्वाथ व शिरोवज्र-रस भी साथ में सेवन कराने से शीघ्र लाभ होगा। मूल्य-१ ग्राम की शीशी ७५ नये पैसे

वातारि वटी—वातरोगनाशक सफल और सस्ती दवा है। १-२ गोली प्रातः सायं गरम जल या रास्नादि क्वाथ के साथ लेने से सभी प्रकार की वात व्याधियां नष्ट होती हैं। मू०—१ शीशी (५० गोली) २.५०

करंजादि वटी—ये गोलियां मलेरिया के लिये उत्तम प्रमाणित हुई हैं। १ शीशी (५० गोली) १.०० रु०

कासहर वटी—हर प्रकार की खांसीके लिये सस्ती व उत्तम गोलियां हैं। दिन में ५-७ बार अथवा जिस समय खांसी अधिक आ रही हो १-१ गोली मुंह में डाल रस चूसें, गला व श्वास-नली साफ होती है। कफ बन्द हो जाता है। मूल्य-१ शीशी (१० ग्राम) ६० न. पै.

निम्बादि मलहम—यह मलहम फोड़ा फुन्सी व घावों के लिये अत्युत्तम है। निम्बक्वाथ से घाव या फोड़ों को साफ कर इस मलहम को लगाने से वे शीघ्र ही भरते हैं। नासूर तक को भरने की इसमें शक्ति है। मूल्य—१ शीशी आध औंस ६० न. पै., २०० ग्राम का १ पैक ८.५० रु.

बल्लभ रसायन—किसी भी रोग से किसी भी प्रकार का रक्तस्राव होता हो तो यह विशेष लाभ करता है। रक्त को बन्द करने के लिए अव्यर्थ औषधि है। मूल्य १ शीशी २ औंस की २.०० रु.

रक्तबल्लभ रसायन—इससे ज्वर के साथ होने वाला रक्तस्राव बन्द होता है। ज्वर को दूर करने और रक्त को बन्द करने के लिये अव्यर्थ है। १ शीशी आध औंस (१४ मि. लि.) १.०० रु.

सरलभेदी वटी—जिनको नित्य ही कब्ज की शिकायत रहती हो और कई-कई बार दस्त जाना पड़ता हो उन्हें १-२ गोली रात्रि में सेवन करने से नित्य प्रातः दस्त साफ हो जाता है तथा कार्य करने में उत्साह बढ़ता है, मूल्य १ शीशी (३१ गोली) १.५० रु.

गोपाल चूर्ण—जिनकी प्रकृति पित्त की हो उन्हें इसके सेवन से दस्त साफ होता है। जिनको मलावरोध हो उन्हें इसमें से ३ मासे रात को सोते समय गुनगुने जल के साथ या गरम दूध के साथ फंका देने से सुबह दस्त हो जाता है। १ शीशी (२ औंस) १.००

मृदुविरेचक चूर्ण—यह मृदु विरेचक है। जिन्हें मलावरोध रहता हो और अनेक औषधियों से न गया हो भोजनोपरांत ३-३ मासे गुनगुने पानी से फंकायें। यदि पेट में खुरचन सी मालूम पड़े तो थोड़ी सौंफ चबा लें। इसके १५ दिन के सेवन से मलावरोध नष्ट हो जाता है। मूल्य १ शीशी १.००

आंवनिस्सारक वटी—प्रातःकाल गुनगुने जल के साथ तीन गोली तक सेवन कराने से गुदा के द्वारा आंव निकलने लगती है। आंव निकालने के लिये यह एक ही वस्तु है। यदि पेट में दर्द ऐंठा करे तब चिन्ता नहीं करें क्योंकि आंव निकलते समय प्रायः ऐसा होता है। मूल्य १ शीशी १ तोला (१० ग्राम) १.२५ रु.

मुंह के छालों की दवा—इसको छालों पर बुरककर मुंह नीचे करदें, लार गिरने लगेगी, दिन रात में छाले नष्ट होजायेंगे। मू. १ शीशी (आध औंस) ०.८० रु.

कर्णामृत तेल—कान में सांय-सांय का शब्द होना, दर्द होना, कान से मवाद बहना आदि सभी कर्ण-रोगों के लिये उत्तम तैल है। आध औंस (१४ मि. लि) ०.८०

बालोपकारक वटी—बालक बेहोश हो जाता है, हाथ पैर ऐंठ जाते हैं, मुख से लार (झाग) देने लगता है, दांती बन्द हो जाती है। बालक की ऐसी हालत में यह अक्सीर प्रमाणित होती है। १ शीशी (३१ गोली) २.५०

मधुरौल—मधुमेह बहुमूत्र व सोमरोग में भी यह लाभप्रद है। मूल्य १० गोली ३.०० रु

पायरिया मंजन—इस मंजन के नित्य व्यवहार

Scanned with CamScanner

से दांतों में खून जाना, मवाद जाना, टीस मारना, पानी लगना आदि दूर होते हैं। मूल्य १ शीशी १.००

नयनामृत सुरमा—नेत्र-रोगों के लिये उपयोगी सुरमा है। चांदी या कांच की सलाई से दिन में एक बार लगाने से धुंधला दीखना, पानी निकलना, खुजली नष्ट होती है। मू. ३ माशे (२.९२ ग्राम) की शीशी ७५ न०पै.

अग्नि संदीपन चूर्ण—अग्नि को उत्तेजित करने वाला मीठा व स्वादिष्ट चूर्ण है। भोजन के बाद ३-३ माशे लेने से कब्ज दूर हो रुचि बढ़ेगी। १ शीशी (२औंस) ०.७५

मनोरम चूर्ण—स्वादिष्ट, शीतल व पाचक चूर्ण एक बार चख लेने पर शीशी समाप्त होने तक आप खाते ही रहेंगे। गुण और स्वाद दोनों में लाजबाब है। १ शीशी (२ औंस) ०.७५, छोटी शीशी (१ औंस) ०.४५ रु०

अग्निबल्लभ क्षार—इसके सेवन से अग्निप्रज्वलित होती व खाना हजम होता है। भूख न लगना, दस्त साफ न होना, खट्टी डकारों का आना, पेट में दर्द तथा भारीपन होना, तबियत मचलाना, अपान वायु का बिगड़ना इत्यादि शिकायतें दूर होती हैं। जल-दोष नहीं सताता संग्रह करने योग्य महौषधि है। क्योंकि जब किसी तरह की शिकायत हुई चट अग्निबल्लभक्षार सेवन करने से उसी समय तबियत साफ हो जाती है। १ शीशी (२ औंस) का मूल्य १.२५

ग्रहणी रिपु—यह ग्रहणी रोग के लिये अव्यर्थ है। १ शीशी आध औंस ३.५० रु०

खाजरिपु—गीली तथा सूखी खाज के लिये अक्सीर है। मूल्य १ शीशी (२ औंस) १.२५ छोटी शीशी ०.७० रु०

दाद की दवा—यह दाद की अक्सीर दवा है। दाद को साफ करके किसी मोटे वस्त्र से खुजलाकर दवा की मालिश करें। स्नान करने के बाद रोजाना वस्त्र से अच्छी प्रकार पोंछ लिया करें। १ शीशी ७५ न० पै०

नेत्रबिन्दु—दुखती आंखों के लिये अत्युपयोगी। मू. आधा औंस (१४ मि.लि.) ०.८८, १।४ औंस ०.५० रु०

आनन्दवटी—३२ गोली की १ शीशी २.५०

स्वप्नोजित वटी—३०.गोली का १ शीशी २.५०

स्वप्नोजित चूर्ण—१ औंस की शीशी २.५०

नारी सुखदा वटी—३० गोली की १ शीशी २.००

हमारे सफल सैट

स्त्री रोगहर सैट—स्त्री सुधा-स्त्रियों के लिये सर्वश्रेष्ठ प्रसिद्ध लाभकारी औषधि, मूल्य १ बोतल ५.५० १ शीशी २.५०। मधुकाद्यवलेह—स्त्री सुधा के साथ इसे सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। १ शीशी ४.०० पूरा सैट १५ दिन सेवन योग्य औषधियों का मूल्य ८.००

हिस्टीरियाहर सैट-१५ दिन की तीन दवाओं का मूल्य १०.००

निर्बलताहर सैट--मकरध्वज वटी, तैल व पोटली तीन दवायें २० दिन व्यवहार करने योग्य मूल्य ९.०० रुपया

धन्वन्तरि तैल—मुरदार नसों पर मालिश के लिए १ शीशी ३.५० रुपया

धन्वन्तरि पोटली—सिकाई करने के लिये १ डिब्बा मूल्य ३.५०

श्वेतकुष्ठहर सैट—इसमें श्वेतकुष्ठहर अवलेह, वटी व घृत तीन औषधियां हैं। इन तीनों औषधियों के विधिवत् अधिक दिन सेवन करने से श्वेत कुष्ठ अवश्य नष्ट होता है। मूल्य १५ दिन की तीनों औषधियों का ८.००

रक्तदोषहर सैट—इसमें धन्वतरि आयुर्वेदीय सालसा परेला, तालकेश्वर रस, इन्द्रवारुणादि क्वाथ—ये तीन औषधियां हैं। इनके सेवन से सभी प्रकार के रक्तविकार तथा चर्मरोग नष्ट होकर शरीर सुडौल बनता है। मूल्य १५ दिन की तीन दवाओं का ९.००, पोस्ट व्यय ४.००

अर्शान्तक सैट—इसमें वटी, मलहम तथा चूर्ण तीन औषधियां हैं। इनके प्रयोग से दोनों प्रकार के अर्श नष्ट होते हैं। अर्श से आने वाला रक्त २-१ दिन में बन्द हो जाता है। मूल्य १५ दिन की तीनों दवाओं का ६.००

वातरोगहरसैट—इसमें वातरोगहर तैल, रस, अवलेह ये तीन औषधियां हैं। इन तीन औषधियों के व्यवहार से जोड़ों का दर्द, सूजन, अंग विशेष की पीड़ा पक्षाघात आदि समस्त वात व्याधियों में लाभ होता है। १५ दिन सेवन योग्य तीनों औषधियों का मूल्य १०,००

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

Scanned with CamScanner

नवीन सुपरीक्षित औषधियां

नीचे कतिपय सुपरीक्षित औषधियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं। ये औषधियां सैकड़ों हजारों रोगियों पर सफलतापूर्वक व्यवहार करने के बाद ही हम अपने ग्राहकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं आपसे निवेदन है कि इन औषधियों को अपने रोगियों पर निःसंकोच व्यवहार करें।

धन्वन्तरि काला दन्त मंजन—

विशुद्ध आयुर्वेदीय द्रव्यों से निर्मित यह काला दन्त-मंजन नित्य व्यवहार करने के लिए बड़ा उपयोगी है। दांतों को चमकीला बनाता है, मुख की दुर्गन्धि को दूर करता है, मसूड़ों को सुपुष्ट बनाता है। एक बार व्यवहार करने पर आप इसे सदैव व्यवहार करना पसन्द करेंगे। मूल्य १ शीशी १.२५

निद्राकारक तैल—

किसी रोग के कारण या मानसिक चिन्ताओं के कारण निद्रा न आने पर इसकी मालिश सिर तथा बालों में धीमे-धीमे कीजिए—मिनटों में निद्रा आजायगी तथा रोगों व चिन्ताओं से छुटकारा मिलेगा। मूल्य २ औंस की १ शीशी २.८०, १ पौंड २०.००

शोथ शार्दूल तैल—

इस तैल की मालिश करने से शोथ किसी भी प्रकार का हो तत्काल लाभ होगा। एक बार अवश्य परीक्षा करें। मूल्य २ औंस की १ शीशी २.५०

शूलहर टिकिया—

दर्द गुर्दा के लिए अक्सीर। जलते हुए अंगारों पर १ या २ टिकिया रखकर उसका धुआं जहां दर्द हो वहां लगावें। दर्द तुरन्त बन्द होगा। मूल्य १० टिकियों की शीशी १.८०

डब्बानाशक वटी—

बालकों के पसली चलने (बाल न्यूमोनियां) के लिए अक्सीर औषधि। मूल्य ३० गोली की १ शीशी १.५०

सौन्दर्यवर्धक चूर्ण (उबटन)—

चेहरे की कील, मुंहासे आदि से रक्षा करने वाला तथा सुन्दर-सुवर्ण बनाने वाला अनुपम उबटन है। कन्याओं तथा सौंदर्य-प्रेमी महिलाओं के लिए अत्युपयोगी चूर्ण है। मूल्य १ शीशी १.५०

चन्द्रप्रभावर्ति—

आंख की फूली के लिए उत्तम। इसके लगाने से आंख का जाला, धुन्ध, पानी ढलना, खुजली होना आदि नेत्र विकार नष्ट होते हैं। नियमित अधिक समय तक व्यवहार करने से फुली भी नष्ट होती है। सुपरीक्षित दवा है। मूल्य—५० ग्राम ८.००, १० ग्राम १.८०

जुसांदा (जुकामनाशक क्वाथ)—

बिगड़े जुकाम के लिए अति उत्तम क्वाथ है। जुकाम भयानक रोग है इसकी उपेक्षा करने से अनेक भीषण रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस क्वाथ की ४-५ मात्रा ही संपूर्ण विकार नष्ट करती है। २०-२० ग्राम की १० पुड़ियां १.६०

द्राक्षावलेह—

सूखी कास को दूर करने के लिये थोड़ा-थोड़ा चटावें। तुरन्त ही लाभ होगा। १२५ ग्राम की शीशी ३.२५

सोमकल्पासव—

यह श्वास तथा स्वर-यन्त्र के सभी रोगों के लिये अत्युपयोगी एवं सुपरीक्षित है। मूल्य १ बोतल ५.५०, १ पौंड ४.२५, १ पाव २.५०

Scanned with CamScanner

असली एवं पूर्ण विश्वस्त

निम्न वस्तुयें बाजारों में अधिकांशतः नकली तथा निम्न कोटि की मिलती हैं। ये वस्तुयें ऐसी हैं जिनकी आवश्यकता प्रत्येक वैद्य एवं औषधि निर्माता को होती है। नकली उपादानों से निर्मित औषधि लाभ क्या कर सकेगी यह आप भी भलीभांति जानते हैं। अतएव हम अपने ग्राहकों से आग्रह करते हैं कि इन वस्तुओं को आप पूर्ण विश्वस्त होने का विश्वास रखते हुए हमसे मंगाइयेगा और रोगियों को लाभ पहुंचाइयेगा।

रुदन्ती फल

राजयक्ष्मा में उपयोगी इन फलों को हमने संग्रह करा रखा है। आप भी मंगा कर अपने रोगियों को दें तथा लाभ उठायें। मूल्य— १ किलोग्राम–४०.००

●

पूर्ण विश्वस्त

सर्वोत्तम शिलाजीत नं० १

सूर्यतापी

शिलाजीत पत्थर मंगा कर हम अपनी देखरेख में अत्युत्तम शिलाजीत निर्माण करते हैं। किसी भी प्रकार की शंका न करते हुए आवश्यतानुसार शिलाजीत हमारे यहां से मंगाइयेगा। मूल्य–१ किलोग्राम १००.००
५० ग्राम ५.१५ १० ग्राम १.२०

●

शहद

अत्युत्तम एवं विशुद्ध शहद जंगलों से संग्रह कराया जाता है। किसी भी प्रकार की मिलवट नहीं होगी किन्तु भी पिल्फरप्रूफ कार्क द्वारा सुन्दर आकर्षक किया जाता है। मूल्य—१ पौंड (४६७ ग्राम) ४.५०
१० तोला (११७ ग्राम) १.५०

●

गिलोय सत्व

जङ्गलों में आदमी भेजकर बहुत बड़ी तादाद में गिलोय सत्व तैयार कराते हैं। पूर्ण विश्वस्त गिलोय सत्व हमसे मंगाइये। मूल्य—१ किलोग्राम २२.००
१० ग्राम ०.३०

कस्तूरी केशर आदि

पूर्ण विश्वस्त एवं उचित मूल्य पर निम्नि द्रव्य हमसे मंगाकर व्यवहार करें।

कस्तूरी नं. १ सर्वोत्तम	१० ग्राम	१२५.००
कस्तूरी काश्मीरी उत्तम	,,	६०.००
केशर काश्मीर	,,	४०.००
केशर चूरा (औषधि निर्माण हेतु उत्तम)	,,	१२.००
अम्बर अत्युत्तम	,,	३६.००
गौलोचन असली	,,	६०.००
कहरवा	,,	३.५०
खर्पर (खपरिया)	,,	२.००
नीलमखड़	,,	२.००
जहरमोहरा खताई	,,	१.००
वैक्रान्त खड़	,,	२.००
पुखराज खड़	,,	३.००
अकीक दाना	५० ग्राम	२.००
अकीकखड़	,,	१.००

सर्पगंधा

उन्माद एवं अन्य मस्तिष्क विकृतियों के लिए यह जड़ी सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुकी है एवं इसकी प्रसिद्धि के कारण ही इसकी मांग अधिक होने के कारण नकली जड़ी भी बाजार में चल रही हैं। सर्वोत्तम असली सर्पगंधा हमने संग्रह की है।

मूल्य—१ किलोग्राम ३०.००

इन द्रव्यों के भाव कमीशनादि कम करके लिखे गये हैं अतएव इन भावों पर किसी को किसी प्रकार का कमीशन नहीं दिया जायगा।

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

Scanned with CamScanner

चार प्रकार की औषधि पेटिकायें

हमने तीन नये प्रकार की औषधि पेटी तैयार कराई हैं जिनका विवरण नीचे दिया है। ये सभी मजबूत लकड़ी की बनी है तथा उन पर मजबूत कपड़ा चढ़ाया गया है। आप जो साइज अपने लिए आवश्यक समझें अवश्य मंगायें। विवरण निम्न प्रकार हैं—

औषधि पेटी नं० १—इसमें २ ड्राम तथा १ ड्राम की लगभग ४६-४६ शीशियां हैं कुल ९२ शीशियां हैं। साथ में सिरिंज आदि रखने के लिये स्थान प्रथक बना है। यह लकड़ी की बनी है तथा ऊपर से मजबूत खूबसूरत कपड़ा मढ़ा है। वजन में हल्की है। मूल्य २५.००

औषधि पेटी नं० २—इस औषधि पेटी में ४८ शीशियां हैं। लकड़ी से बना है तथा ऊपर से मजबूत खूबसूरत कपड़ा मढ़ा है। इन्जेक्शन सिरिंज इत्यादि रखने का स्थान बना है तथा एक पाकिट लगी है। ताला लगा है। शीशी कार्कयुक्त मंजूषा का मूल्य १८.००

जेबी औषधि पेटी—यह औषधि पेटी इस दृष्टि से बनाई गई है कि इसमें चिकित्सक अपनी चुनी हुई औषधियां रखें तथा यकायक रोगी देखने का बुलावा आने पर तुरन्त अपने साथ जेब में रख ले जायें। इस औषधि पेटी में २ ड्राम की १५ शीशियां है। लकड़ी की बनी है तथा ऊपर से मजबूत कपड़ा चढ़ा है। प्रत्येक चिकित्सक को यह अवश्य रखनी चाहिए। मूल्य केवल ६.००

नवीन प्रकार की उपकरण एवं औषधि पेटी

नाप—(बाहर से) ५ इन्च × ८ इन्च × १२ इन्च।

शीशियां—२ ड्राम की २८, ४ ड्राम की २४, ८ ड्राम की १२–कुल ६४ शीशियां मय कार्क।

निम्न उपकरणों के रखने की भी व्यवस्था है—

स्टेथिस्कोप, चीमटी, कैंची, चाकू, गले तथा जबान देखने की जीबीसीधी, थर्मामीटर, घाव में डालने की सलाई।

स्टेथिस्कोप रखने के स्थान में अन्य आवश्यक सामान यथा सिरिंज आदि भी रख सकते हैं।

यह पेटिका सुन्दर, टिकाऊ तथा मजबूत निर्माण कराई गई हैं। पेटिका लकड़ी की बनी हैं जिस पर मजबूत एवं सुन्दर बाइडिङ्ग क्लाथ (आइल क्लाथ) चढ़ाया गया है। मूल्य शीशी एवं कार्क सहित ३०.०० उपकरणों सहित पेटिका का मूल्य ४५.००

नोट १—उपकरण एवं औषधि पेटिका में खाली शीशियां लगी हैं औषधियुक्त नहीं हैं। उपकरणों के लिये केवल स्थान बना है उपकरण साथ में नहीं हैं। अपने आर्डर में 'नवीन प्रकार की औषधि एवं उपकरण पेटी' अवश्य लिखें। यह रेल द्वारा ही भेजी जा सकेगी क्योंकि इसका वजन लगभग २ किलोग्राम है। पार्सल बनाने पर वजन लगभग ४ किलोग्राम होगा तथा डाक द्वारा मंगाने से लगभग ७.५० पोस्ट व्यय लगेगा। आर्डर के साथ एडवांस १०.०० अवश्य भेजें।

नोट २—४ ड्राम तथा २ ड्राम की शीशियां हमने प्लास्टिक की बनवाई हैं जो सुन्दर, हल्की तथा साधारण झटके से न टूटने वाली रहती हैं।

दाऊ मैडीकल स्टोर्स विजयगढ़ (अलीगढ़)

Scanned with CamScanner

यंत्र-शस्त्र परिचय

लेखक—डा० दाऊदयाल गर्ग ए., एम. बी. एस.

आधुनिक चिकित्सा प्रणाली पूर्णतः यंत्रशस्त्रों पर आधारित है तथा अब वैद्य भी यंत्रशस्त्रों का प्रयोग काफी मात्रा में करने लगे हैं। प्रत्येक चिकित्सक का यह परम कर्तव्य है कि उस प्रत्येक उपकरण के बारे में पूरी जानकारी रखे जिसका कि वह प्रयोग कर रहा है तथा उसकी सही व्यवहार विधि जानना अति आवश्यक है तभी वह चिकित्सा क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है। इस पुस्तक में चिकित्सक, शिक्षक एवं विद्यार्थी सभी चिकित्सोपयोगी यंत्रशस्त्रों के बारे में पूरी सही जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इस पुस्तक की विशेषतायें

- इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता चित्रों की भरमार है। ३२० पृष्ठ की पुस्तक में २३० चित्र दिये गये हैं। इन चित्रों की अधिकता के कारण ही प्रत्येक विषय स्पष्ट, सरल एवं सहज बुद्धिगम्य बन पड़ा है।
- भाषा सरल है। साधारण पठित वैद्य भी आसानी से समझ सकेंगे।
- विशिष्ट अंग्रेजी शब्दों का अनुवाद कठिन हिन्दी में न करके उन्हें ही ज्यों का त्यों देवनागरी लिपि में लिख दिया है। जिससे भाषा में क्लिष्टता नहीं आने पाई है।
- प्रथम खण्ड में निदान (Diagnosis) कार्य में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों का, द्वितीय खण्ड में चिकित्साकार्य में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों का यथा इंजेक्शन लगाना, दांत उखाड़ना, एनीमा लगाना, कैथीटर डालना आदि; तृतीय खण्ड में शल्यकर्म में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों का वर्णन दिया गया है यथा टांके लगाना, चीरा लगाना आदि।
- चतुर्थ खण्ड में सन्तति निरोध (Birth control) विषयक उपकरणों का सचित्र वर्णन एवं व्यवहार विधि दी है जिससे पुस्तक की उपयोगिता में चार चांद लग गये हैं।
- यह पुस्तक प्रत्येक चिकित्सक को उसके सहायक का काम देगी। किसी भी यंत्र की व्यवहार विधि में संदेह होने पर आप झट पुस्तक निकाल लीजिये और उसकी सही जानकारी ज्ञात कीजिये।
- विद्यार्थियों के लिये भी यह पुस्तक अत्युपयोगी और पठनीय है।
- यह पुस्तक अपने विषय की हिन्दी में सर्वोत्तम पुस्तक है।
- पुस्तक उत्तम कागज पर सुस्पष्ट छापी गई है तथा जिल्द मजबूत है।
- पुस्तक का मूल्य लागतमात्र ६ रुपये है। पोस्टादि व्यय पृथक्।

पता

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ [अलीगढ़]

Scanned with CamScanner

# धन्वन्तरि के उपयोग विशेषांक

बनौषधि विशेषांक

इसको वैद्य समाज तथा बनौषधि-ज्ञान के प्रेमी सज्जनों ने अत्यधिक पसन्द किया है। इसकी मांग दिनों दिन बढ़ रही है। प्रथम भाग तो वर्ष १९६२ में ही समाप्त हो गया था और उसका अब पुनर्मुद्रण भी हो गया है। इनमें प्रत्येक बनस्पति के विभिन्न भाषाओं के नाम, परिचय, विभिन्न अंगों पत्र, पुष्प, मूल तथा फल आदि का प्रथक-प्रथक वर्णन उनके रोगनाशक सरल सफल प्रयोगों का अत्युपयोगी संग्रह दिया है।

प्रथम भाग—पृष्ठ संख्या ५५२, चित्र संख्या ९२, वनस्पति संख्या १४७; 'अ' से 'औ' तक की संपूर्ण बनस्पतियों का विस्तृत सचित्र वर्णन दिया गया है। मूल्य १०.००

द्वितीय भाग—पृष्ठ संख्या ५२८, चित्र संख्या १७२, बनस्पति संख्या २३७, इसमें 'क' वर्ग की सम्पूर्ण बनस्पतियों का विस्तृत सचित्र विवरण दिया गया है। मूल्य ८.५०

तृतीय भाग—पृष्ठ संख्या ५४४ चित्र संख्या १५९ बनस्पति संख्या २१४ इसमें 'च' से 'ध' अक्षरों की सभी बनस्पतियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। मूल्य ८.५०

शिशु रोगांक

इस विशेषांक में शिशुओं को खास तौर से होने वाले प्रत्येक रोग का विस्तृत विवरण दिया गया है। इस विशेषांक के लेखन में ११३ विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ है, पृष्ठ संख्या ५५० है। १३९ चित्र दिये हैं। मूल्य ८.५०

यूनानी चिकित्सांक

इसका सम्पादन यूनानी तथा आयुर्वेद के उद्भट सुप्रसिद्ध विद्वान श्री दलजीतसिंह आयुर्वेद बृहस्पति ने किया है। इस विशेषांक के पूर्वार्द्ध में विभिन्न यूनानी चिकित्साओं द्वारा प्रतिपादित शरीर के मूलभूत तत्व महाभूत, प्रकृति, अखलात और शरीर के संगठनकारी घटक आदि का वर्णन और फिर साथ-साथ आयुर्वेदीय सिद्धान्तों से तुलना यह प्रकरण विशेष महत्वपूर्ण दिया गया है। इसके उपरांत उत्तरार्द्ध में यथाक्रम यूनानी मतानुसार रोगों के नाम सहित हेतु, लक्षण, सम्प्राप्ति, चिकित्सा एवं पथ्यापथ्य का विवेचन हिन्दी भाषी व्यक्तियों के लिये समझने योग्य सरल भाषा में वर्णित है। चित्र संख्या १६३, मूल्य ८.५०

काय चिकित्सांक

आयुर्वेद के ५२ गिने चुने मूर्धन्य विद्वानों द्वारा उच्चकोटि के लेखों से विभूषित विशेषांक १२७ चित्रों सहित ६०८ पृष्ठों का ठोस साहित्य है। इस विशेषांक के विशेष सम्पादक आचार्य आयुर्वेदाचार्य वाचस्पति श्री पं० रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी हैं। विषय को स्पष्ट करने के निमित्त अनेक चित्र दिए हैं। मूल्य ८.५०

कल्प एवं पंचकर्म चिकित्सांक

इसका सम्पादन आयुर्वेद के जाने माने विद्वान कविराज उपेन्द्रनाथदास जी ने बड़े परिश्रम से किया है। इस विशेषांक में अनुभवी व्यक्तियों द्वारा इन कल्प एवं पंचकर्म विधियों का ज्ञान कराया गया है। मूल्य ४.००

प्राकृतिक चिकित्सांक

इस विशेषांक के चार खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धांत एवं इतिहास, द्वितीय खंड में प्राकृतिक चिकित्सा के साधन, महत्तत्व चिकित्सा आकाश तत्व, वायु तत्व, अग्नि तत्व, जल तत्व एवं पृथ्वी तत्व चिकित्सा का विस्तृत वर्णन दिया गया है। इस प्रकार से इस खण्ड में सम्पूर्ण प्राकृतिक चिकित्सा का विशद वर्णन है। तृतीय खण्ड में सभी रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा करने की विधि सरल, रोचक भाषा में बतलाई गई है। चतुर्थ खंड में अन्य अधिकारी विद्वानों के लेख एवं प्रयोगादि दिए गए हैं। लगभग १५० चित्र भी इसमें प्रकाशित किए गए हैं। मूल्य ८.५०

धन्वन्तरि के लघु विशेषांक

पायरिया विशेषांक	१.००
शूल रोगांक	१.००
कास रोगांक	१.००
पंचकर्म विज्ञानांक	१.००
श्वास अंक (थीसिस)	१.५०
विधिविधानांक	२.००
आयुर्वेद शिक्षणांक	१.५०
इंजेक्शन विज्ञानांक (प्रथम भाग)	३.००

पोस्ट व्यय सभी विशेषांकों पर प्रथक लगेगा।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़) यू० पी०

Scanned with CamScanner

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा प्रकाशित

* आयुर्वेदिक पुस्तकें *

यन्त्र शस्त्र परिचय—लेखक डा० दाऊदयाल गर्ग ए० एम० बी० एस० । प्रत्येक चिकित्सक का यह परम कर्तव्य है कि उस प्रत्येक उपकरण के बारे में पूरी जानकारी रखे जिसका कि वह प्रयोग कर रहा है तथा उसकी सही व्यवहार विधि जानना अति आवश्यक है तभी वह चिकित्सा क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है । इस पुस्तक से चिकित्सक सभी यंत्र शस्त्रों के बारे में पूरी सही जानकारी प्राप्त कर सकेंगे । इस पुस्तक को चार खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड में उन यंत्रशस्त्रों का वर्णन किया गया है जिनका प्रयोग केवल निदान(Diagnosis)में किया जाता है यथा रक्तचापमापक यंत्र, थर्मामीटर, स्टेथिस्कोप, नाक व गले आदि की परीक्षार्थ डाइग्नोस्टिक सैट, गुदा परीक्षण यंत्र आदि । द्वितीय खण्ड में चिकित्सा कार्य में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों की प्रयोग विधि दी गई है यथा इंजेक्शन लगाना, ट्रोकार एण्ड कंनूला, कर्ण प्रक्षालन, दांत उखाड़ना, आमाशय प्रक्षालन, योनि प्रक्षालन, एनिमा, कैथीटर आदि । तृतीयखण्ड में शल्यकर्म (चीर फाड़) में काम आने वाले उपकरणों का वर्णन दिया गया है । इसी खण्ड में टांके किस प्रकार लगाये जाते हैं तथा शल्य के विषय में सभी बातें दी हैं । चतुर्थ खण्ड में सन्तति निरोध (Birth Control) में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों के विषय में आवश्यक जानकारी दी गई है ।

इस पुस्तक की सबसे बडी विशेषता चित्रों कीभरमार है । ३२० पृष्ठों की पुस्तक में २३० चित्र हैं ।चित्रों की अधिकता के कारण ही प्रत्येक विषय स्पष्ट, सरल एवं सहज बुद्धिगम्य बन पड़ा है । भाषा अत्यन्त सरल है ।

उत्तम ग्लेज कागज पर छपी, २०×३० सोलह पेजी साईज में ३२० पृष्ठ, उत्तम छपाई सुपुष्ट जिल्द, आकर्षक दोरंगा टाईटिल । मूल्य लागत मात्र ६.००

चिकित्सा रहस्य—लेखक श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य, इस पुस्तक में विषय प्रवेश के पश्चात् आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त 'दोष धातु मल मूलं हि शरीरं, के अनुसार चिकित्सा के उपयुक्त शरीर, मन और आत्मा की स्वस्थ दशा की सुस्थिति एवं रोग प्रतिकार की दृष्टि से आवश्यक स्वस्थवृत्त सम्बन्धी कुछ बातें प्रथम अध्याय से दशम अध्याय तक संक्षेप में वर्णित है । तत्पश्चात् रोग प्रतिकार एवं चिकित्सा सारल्य की दृष्टि से आयुर्वेदीय प्रमुख सूत्रों का विवेचन ११ वें अध्याय में किया गया है । तदुपरांत चार अध्यायों में तीनों दोषों का विशद विवेचन एवं तत्सम्बन्धी चिकित्सा दर्शायी गई है । इस पुस्तक में उन्हीं बातों का उल्लेख किया गया है जिनकी जानकारी चिकित्सा कर्म के पूर्व ही उसकी सफलता के लिये अत्यावश्यक हैं आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति का अन्य चिकित्सा पद्धतियों के साथ तुलनात्मक विचार भी किया गया है । बीच बीच में आधुनिक विज्ञान द्वारा समन्वय करने का प्रयत्न किया गया है । लेखन शैली इतनी सरल और रोचक है कि बहुत शीघ्र ही गूढ़ विषय भी समझ में आ जाता है । आयुर्वेद छात्रों तथा आयुर्वेदानुरागियों के लिये यह ग्रन्थ बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा । उत्तम ग्लेज कागज पर छपी १०×३० सोलह पेजी साइज में ३७५ पृष्ठ, सुपुष्ट जिल्द मूल्य ४.५०

वृ. पाक संग्रह—लेखक श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य । इस पुस्तक में ४०० से अधिक पाकों का संग्रह प्रकाशित है । हर पाक की निर्माण विधि, मात्रा सेवन विधि आदि दीगई हैं । प्रायः सभी रोगों पर २-४ प्रयोग इस पुस्तक में आपको मिलेंगे । पुस्तक हर प्रकार से उपयोगी है । मूल्य सजिल्द ३.५० अजिल्द ३.००

सूर्यरश्मि चिकित्सा (नवीन संस्करण)—सूर्यरश्मि चिकित्सा को अंग्रेजी में क्रोमोपैथी (Chromopathy) कहते हैं । इस पुस्तक में सूर्य की किरणों से ही समस्त रोग दूर करने का विधान है । इसको पढ़कर पाठक देखेंगे कि सूर्य कितना शक्तिशाली है । उसकी किरण शरीर को कितनी लाभदायक हैं और उनके द्वारा रोग किस प्रकार बात की बात में दूर किये जा सकते हैं। अनेक रंगीन चित्र हैं । मूल्य ०.७५

उपदंश विज्ञान (द्वितीय संस्करण)—लेखक श्री

Scanned with CamScanner

कविराज पं० बालकराम जी शुक्ल आयुर्वेदाचार्य । इस पुस्तक में गरमी (चांदी) रोग के वैज्ञानिक कारण, निदान, लक्षण तथा चिकित्सा का वर्णन किया गया है। पुस्तक के कुछ शीर्षक ये हैं—उपदंश परिचय, प्राच्य-पाश्चात्य का साम्यवाद, संक्रमण निदान, सिफलिस के भेद, उपदंश, प्राथमिक कील, सिगार्दी, औपसर्गिक सकल रोग, उपदंश विकृतियां, मस्तिष्क विकार, फिरंग-चिकित्सा में पारद-प्रयोग, पथ्यापथ्य आदि उपदंश सम्बन्धी सभी विषय वर्णित हैं। मूल्य १.००

प्रयोग-पुष्पावली—ये प्रयोग बहुत समय से परीक्षित हैं और सफल प्रमाणित हो चुके हैं। अनेक उद्योग धंधों का संकेत इसमें मिलेगा जिससे पाठक बहुत लाभ उठा सकते हैं। समष्टि रूप में पुस्तक बेकार मनुष्यों को व्यवसाय की ओर झुकाने वाली है। पहिले दो संस्करण शीघ्र समाप्त हो जाना इसकी उत्तमता का प्रमाण है। पृष्ठ संख्या ११२ मूल्य १.२५

कुचिमार तंत्र (भाषाटीका) यह श्रीमद् कुचिमार मुनि प्रणीत है। इसमें इन्द्रिय वृद्धि, स्थूलीकरण, कामोद्दीपनलेप वाजीकरण, द्रावण, स्तम्भन, संकोचन व केशपात, गर्भाधान सहज प्रसव आदि पर अनेक योग भलीभांति बताये गये हैं। इस नवीन संस्करण में प्रमेह, नपुंसकता, मधुमेह आदि रोगों पर स्वानुभूत प्रयोगों का एक छोटा सा संग्रह भी दिया है। मूल्य ०.५०

दशमूल (सचित्र)-ले० लाला रूपलाल जी वैद्य, बूटी विशेषज्ञ । इस पुस्तक में दशमूल की दसों औषधियों का सचित्र वर्णन है। साथ ही उनके पर्याय नाम, गुण और प्रयोग भी बतलाये गये हैं तथा दशमूल पञ्चमूल से बनने वाले अनेक योगों की विधियां दी गई हैं। मूल्य ०.५०

न्यूमोनियां प्रकाश (द्वितीय संस्करण)—आयुर्वेद मनीषी स्वर्गीय पंडित देवकरण जी बाजपेयी की यह वही उत्तम रचना है जिस पर धन्वन्तरि-पदक मिला था। और जो निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन से सम्मान और पदक प्राप्त कर चुकी है। न्यूमोनिया की शास्त्रीय व्युत्पत्ति कारण, निदान, परिणाम, चिकित्सा आदि सभी बातें भलीभांति वर्णित हैं। मूल्य ०.३७

प्राकृतिक ज्वर—लेखक स्वर्गीय लाला-राधावल्लभ जी वैद्यराज। मलेरिया (फसली बुखार) का पूर्ण विवेचन है। आयुर्वेदीय मत से मलेरिया कैसा होता है ? उसके दूर करने के लिये आयुर्वेदीय प्रयोग, विज्ञान से हानि आदि विषयों पर पूर्ण प्रकाश डाला है। मूल्य ०.२५

वेदों में वैद्यक ज्ञान—लेखक स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्यराज। वेद के मन्त्र जिनमें आयुर्वेदीय विषयों का वर्णन है तथा जिनसे आयुर्वेद की प्राचीनता प्रमाणित होती है, शब्दार्थ सहित दिये हैं। मूल्य ०.२०

कूपीपक्व रसायन—लेखक वैद्य देवीशरण जी गर्ग, प्रधान सम्पादक "धन्वन्तरि"। धन्वन्तरि कार्यालय में निर्माण होने वाले कूपीपक्व रसायनों के गुण, मात्रा, अनुपान, सेवन विधि आदि विस्तृत वर्णित हैं। मूल्य ०.०६

चन्द्रोदय मकरध्वज (तृतीय संस्करण)—लेखक स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्यराज। इस पुस्तक में पारद-शुद्धि, गंधक शुद्धि, पारद के संस्कार, मकरध्वज बनाने की विधि, भ्राष्टी बनाने की विधि, मकरध्वज के गुण तथा भिन्न भिन्न रोगों में अनुभव सभी बातें स्वानुभव के आधार पर वर्णित हैं। मूल्य ०.२५

भस्म पर्पटी—लेखक देवीशरण जी गर्ग प्र० सम्पादक—धन्वन्तरि इसमें धन्वन्तरि कार्यालय में निर्माण होने वाली भस्मों और पर्पटियों का विस्तृत रूप से वर्णन है। रोग लक्षणानुसार औषधियों को किस प्रकार सफलता के साथ व्यवहार किया जा सकता है यह आप इस पुस्तक से जान सकेंगे। मूल्य ०.०६

रस रसायन गुटिका गूगल—धन्वन्तरि के प्रधान सम्पादक एवं अनुभवी चिकित्सक वैद्य देवीशरण जी गर्ग ने इस पुस्तक में धन्वन्तरि कार्यालय में निर्मित रस-रसायन गुटिका गुगल के गुण, मात्रा, अनुपान, व्यवहार विधि बड़े ही उपयोगी ढङ्ग से लिखी है। मूल्य ०.५०

रक्त (Blood)—श्री वैद्यराज राधावल्लभ जी ने रक्त की बनावट, उपयोगिता एवं रक्त सम्बन्धी सभी मोटी-मोटी बातें आयुर्वेद एवं एलोपैथी उभय पद्धतियों से सरल हिन्दी भाषा में समझाकर लिखी हैं। नवीन संस्करण मूल्य २५ पैसा।

इन्फ्लुएन्जा (फ्लु)—लेखक श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य। इसमें इन्फ्लुएन्जा रोग का विस्तृत विवेचन तथा सफल चिकित्सा-विधि वर्णित है। फ्लु और इसके सभी उपद्रवों की आयुर्वेदीय-चिकित्सा है। मूल्य ५० पैसा।

Scanned with CamScanner

अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें

आयुर्वेदीय ग्रन्थ-रत्न

अष्टांगहृदय (सम्पूर्ण)—विद्योतनी भाषा टीका, वक्तव्य, परिशिष्ट एवं विस्तृत भूमिका सहित। टीकाकार श्री अत्रिदेव, मूल्य १५.००, कृष्णलाल भारतीय २०.००।

अष्टांग संग्रह [सूत्र स्थान]—हिन्दी टीका, व्याख्याकार गोवर्धन शर्मा छांगाणी। मूल्य ८.००

काश्यप संहिता—टीकाकार श्री सत्यपाल भिषगाचार्य. विद्योतनी भाषा टीका विस्तृत संस्कृत हिन्दी उपोद्घात सहित। ग्रन्थ का मुख्य विषय 'कौमारभृत्य' अष्टांगायुर्वेद का अपरिहार्य अङ्ग है। यह विषय पूर्ण विस्तृत और प्रमाणिक रूप से वर्णित है। मूल्य १३.००

कौमारभृत्य (नव्य बाल रोग सहित)-बाल रोगों पर प्राच्य एवं पाश्चात्य चिकित्सा—विज्ञान के आधार पर श्री पं. रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी A. M. S. द्वारा लिखित विशाल ग्रन्थ। मूल्य ८.००

गंगयति निदान—लेखक जैन यति गंगाराम जी, अनुवादक आयुर्वेदाचार्य श्री नरेन्द्रनाथ शास्त्री। मू. ६.००

चरक संहिता (संपूर्ण)-श्री जयदेव विद्यालंकार द्वारा सरल सुविस्तृत भाषा टीका युक्त दो जिल्दों में (छठा संस्करण) मूल्य ३०.००

चरक संहिता-हिन्दी व्याख्या 'विमर्श' परिशिष्ट सहित दो भागों में। अत्युपयोगी नवीन विस्तृत टीका। मूल्य ३६.००

चरक संहिता (सम्पूर्ण)—तीनों भागों में टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्त। मूल्य २८.००

चक्रदत्त—भावार्थ संदीपनी विस्तृत भाषा टीका तथा विशद टिप्पणी सहित। परिशिष्ट में पंचलक्ष्मी निदान, डाक्टरी मूत्र परीक्षा, पथ्यापथ्य सहित। मूल्य १०.००

द्रव्य गुण विज्ञान (पूर्वार्ध)—छात्रोपयोगी संस्करण। लेखक आयुर्वेद मार्तण्ड वैद्य यादव जी त्रिकम जी आचार्य द्रव गुण, रसवीर्य, विपाक, प्रभाव, कर्म का विज्ञानात्मक विवेचन। मूल्य ५.००, प्रियव्रत शर्मा लिखित प्रथम भाग ५.५० द्वितीय, तृतीय भाग १२.५०

भावप्रकाश (सम्पूर्ण)—भाषा टीका सहित। दो जिल्दों में शारीरिक भाग पर प्राच्य पाश्चात्य मतों का समन्वयात्मक वर्णन निघण्टु भाग पर विशिष्ट विवरण तथा चिकित्सा-प्रकरण में प्रत्येक रोग पर प्राच्य पाश्चात्य मतों का (समन्वयात्मक) वर्णन विशेष टिप्पणी से सुशोभित है मूल्य २६.००, श्री लालचन्द्रकृत २०.००, कान्तिनारायण मिश्र २०.००

भावप्रकाश निघण्टु—भाषा टीका एवं वृहद परिशिष्ट सहित। लेखक पंडित गंगासहाय मू. ६.०० हरीतक्यादिवर्ग लेखक विश्वनाथ द्विवेदी ८.००

माधव निदान (भाषा टीकायुक्त)—पूर्वार्द्ध मधुकोष संस्कृत टीका विद्योतनी भाषा टीका तथा वैज्ञानिक विमर्श टिप्पणीयुक्त। यह माधव निदान बड़ा उपयोगी बन गया है। दो भाग मूल्य १४.००

माधव निदान—मूलपाठ, मूलपाठ की सरल हिन्दी व्याख्या, मधुकोष संस्कृत व्याख्या और उसका सरल अनुवाद। वक्तव्य एवं टिप्पणीयुक्त। यह ग्रन्थ विद्यार्थियों तथा चिकित्सकों के लिए अवश्य पठनीय है। पं. पूर्णानन्द शास्त्रीकृत टीका पृष्ठ १०१८, दो भागों में मू. १२.००,

माधव निदान—सर्वांग सुन्दरी भाषा टीका ४.५०

माधव निदान-टीकाकार ब्रह्मशंकर शास्त्री, मधुकोष, संस्कृत व्याख्या तथा मनोरम हिन्दी टीका सहित। पृष्ठ संख्या ४.१२ मूल्य ६.००

रसायनसार—श्री पं० श्यामसुन्दराचार्य के बीसियों वर्षों के परिश्रम से प्राप्त प्रत्युक्षानुभव के आधार पर लिखित अपूर्व रसग्रन्थ। मूल्य ८.००

रसेन्द्रसार संग्रह—वैज्ञानिक रस चन्द्रिका भाषा टीका परिशिष्ट में नवीन रोगों पर रसों का प्रभाव, मान, परिभाषा, मूषा, पुटप्रकरण, अनुपान-विधि तथा औषधि बनाने के नियमादि। मूल्य ६.००

रसेन्द्रसार संग्रह (तीन भागों में)—आयुर्वेद वृहस्पति पं. घनानन्द जी पन्त द्वारा संस्कृत टीका और हिन्दी भाषा सहित वैद्यों, विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है। पृष्ठसंख्या ११५० मूल्य ११.००

रसरत्न समुच्चय—नवीन सुरत्नोज्वला विस्तृत भाषा टीका एवं परिशिष्ट सहित मूल्य १०.०० श्री पं. धर्मानन्द

Scanned with CamScanner

कृत तत्व बोधिनी हिन्दी टीका १०.००

रसतरङ्गिणी चतुर्थ संस्करण—भाषाटीका सहित रस निर्माण, धातु उपधातुओं के शोधन मारण युक्त यह अनुपम ग्रन्थ है। मूल्य १०.००

रसराज महोदधि (पांच भाग)—वस्तुतः यह आयुर्वेदीय रसों का सागर ही है। प्राचीन तथा सरल भाषा में लिखा उपयोगी रस ग्रन्थ है, नवीन सजिल्दसंस्करण मू. १०.००

योगरत्नाकर–कायचिकित्सा विषयक उपलब्ध ग्रन्थों में यह सर्वोत्कृष्ट रचना है। चिकित्सकों के लिए ज्ञातव्य सभी आवश्यक विषयों का संग्रह किया गया है। माधवोक्त-क्रम से सभी रोगों के निदान व चिकित्सा का वर्णन है। मू.१८.००

सौश्रुती–लेखक रमानाथ द्विवेदी। अष्टांग आयुर्वेद के शल्यतन्त्र पर लिखित प्राच्यपाश्चात्य समन्वय से युक्त। मू० ८.५०

शारङ्गधर संहिता—वैज्ञानिक विमर्शोपित सुबोधिनी हिन्दी टीका, लक्ष्मी नामक टिप्पणी, पथ्यापथ्य एवं विविध परिशिष्ट सहित मू.६.०० राधाकृष्ण पाराशर टीका ५.७५

सुश्रुत संहिता सम्पूर्ण–सरल हिन्दी टीका सहित टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्त। विद्यार्थियों के लिए पठनीय है। पक्के कपड़े की जिल्द मू. १५.००, कविराज अम्बिकादत्त कृत सम्पूर्ण २४.००

हारीत संहिता–ऋषि प्रणीत प्राचीन संहिता। भाषा टीका सहित, टीकाकार शिवसहाय जी सूद, पृष्ठ ५१५ मूल्य ८.५०

हरिहर संहिता—वैद्यराज हरिनाथ सांख्याचार्य नवीन औषधियों का भी समावेश है। सरल भाषा टीका सहित मूल्य ८.००

चिकित्सा रत्न–ले. रामरतन गंगेले। एक चिकित्सक के लिए सब प्रकार की संक्षिप्त उपयोगी सामग्री से युक्त सजिल्द मूल्य ६.००

चिकित्सातत्व प्रदीप–एक चिकित्सक के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ। प्रथम ९.००, सजिल्द ११.०० द्वितीय भाग १०.०० सजिल्द १२.००

वनौषधि चन्द्रोदय (१० भाग)—प्रत्येक वनस्पति के पर्याय, परिचय, गुणकर्मादि-विवेचन युक्त श्री चन्द्रराज भंडारी कृत मूल्य ४०.००, प्रत्येक भाग ५.००

चिकित्सा चन्द्रोदय (सात भाग)

हिन्दी संसार में अपूर्व और पहला ग्रंथ बिना गुरु के वैद्यक सिखाने वाला, जो संस्कृत जरा भी नहीं जानते वे भी इस ग्रन्थ को बिना गुरु के पढ़कर वैद्य बन सकते हैं। जिन्हें शक हो वे केवल चौथा भाग मंगा कर दिल का वहम मिटा लें।

चिकित्सा चन्द्रोदय	१ ला भाग	४.५०
" "	२ रा भाग	८.००
" "	३ रा भाग	६.००
" "	४ था भाग	८.५०
" "	५ वां भाग	८.००
" "	६ वां भाग	५.००
" "	७ वां भाग	१३.००
		५३.००

नोट–एक साथ ७ भाग खरीदने वाले को किताबें रेल पार्सल से मंगानी चाहिए। एक पूरा सैट लेने वालों को कमीशन कम करके ४८.०० रु० देने पड़ते हैं।

स्वास्थ्य रक्षा—गृहस्थों के घर की यह रामायण है। हर घर में इसका रहना जरूरी है। इसका नाम ही स्वास्थ्य रक्षा उर्फ तन्दुरुस्ती का बीमा है। तन्दुरुस्ती नहीं तो दुनियां में रहा ही क्या ? मू० ६.००

काय चिकित्सा (प्रथम भाग)–श्री रामरक्ष पाठकजी की किसी भी पुस्तक को जिसने पढ़ा है वह भली प्रकार इस पुस्तक की उपयोगिता जान सकता है। इस पुस्तक में आयुर्वेद सिद्धांतों का विशद रूप में विवेचन किया गया है। पुस्तक विद्यार्थियों एवं अध्यापकों सभी के लिये अत्यपयोगी है। लगभग ५५० पृष्ठ, क्राउन साइज छपाई सुन्दर, कपड़े की जिल्द मूल्य १२.५०

भैषज्य सार संग्रह—लेखक कविराज हरस्वरूप शर्मा, इसमें सभी प्रचलित आयुर्वेदिक औषधियों की निर्माण विधि, मात्रा, अनुपान, गुण एवं विशेष विवेचन दिया गया है। उत्तम कागज पर सुन्दर सजिल्द ८८६ पृष्ठ की पुस्तक चिकित्सकों, औषधि-निर्माताओं के लिए अत्यपयोगी है। मूल्य १५.००

बृ० रसराज सुन्दर—श्रीदत्तरामचौबे द्वारा संकलित अत्युपयोगी रसग्रन्थ भाषा टीका सहित। मूल्य १०.००

शार्ङ्गधर संहिता—भाषाटीका सहित टीकाकार पं० केशवदेव शास्त्री साहित्याचार्य। सजिल्द ८.००

श्री पं० रामेश्वरभट्ट कृत टीका ८.००

निदान चिकित्सा हस्तामलक—लेखक वैद्य रणजीत-

Scanned with CamScanner

...देसाई, विद्वान चिकित्सकों के लिए पठनीय उत्तम
...सजिल्द लगभग ७०० पृष्ठ ६.००

...व्याधि मूल विज्ञान—(पूर्वार्ध) ले० स्वामी हरिशर-
...वैद्य पुस्तक अपने ढङ्ग की उत्तम तथा पठनीय
। १०.००

औषधि गुण-धर्म विवेचन—कालेड़ा बोगला से प्रका-
...अपने विषय की उत्तम पुस्तक मूल्य ३.०० मात्र

भिषक्कर्म सिद्धि-आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान श्री
...नाथ द्विवेदी द्वारा लिखित यह अनुपम ग्रन्थ है।
...त्सक के लिये जानने योग्य सभी विषयों का इसमें
...किया गया है। ग्रन्थ के ५ खण्ड किये गये हैं—
...खण्ड में निदान पंचक, द्वितीय खण्ड में पंचकर्म,
...में चिकित्सा के आधारभूत सिद्धांत, चतुर्थ खण्ड
...अध्यायों में रोगानुसार आयुर्वेदीय सफल-चिकित्सा
अन्त में पंचम खण्ड में परिशिष्टाध्याय में आवश्यक
...कारी दी गयी है। पुस्तक चिकित्सकों, अध्यापकों एवं
...र्थियों के लिये अद्वितीय है। सुन्दर छपाई पक्के
...की जिल्द ७१५ पृष्ठ मूल्य २०.००

...काय चिकित्सा—गंगासहाय पाण्डेय—इस पुस्तक में
...त्सा के सैद्धांतिक पक्ष का स्पष्टीकरण एवं चिकित्सा
...भिन्न उपक्रमों का व्यवहारिक स्वरूप देने के अति-
...व्याधि की विभिन्न अवस्थाओं के उपचार-क्रम का
...द विवेचन किया गया है। प्राच्य एवं पाश्चात्य
...त्सा का समान्वयात्मक निर्देश भी किया गया है।
...में विशिष्टसंक्रामक व्याधियों का विस्तृत परिचर्यादि
...चिकित्सा-क्रम है। लगभग १००० पृष्ठ, सुन्दर छपाई,
...द मूल्य २५.००

...न्द्र निदान—इसमें संस्कृत माधव-निदान की अनेक
...के शब्दों में बड़ी सरल और सरल हिन्दी भाषा में
...की गई है तथा आधुनिक रोगों का परिशिष्ट में
...कर दिया है। इसके टीकाकार श्री इन्द्रमणि जैन
...हैं। सुन्दर पक्की बढ़िया जिल्द ३०० पृष्ठ।
...केवल ६.००

...त्स्यायन कामसूत्र—कविराज डा० रामसुशील सिंह
...एम० ए०, ए० एम० एस०, इसमें कामशास्त्र
...ङ्गोपाङ्ग नातिसंक्षेप विस्तरेण वर्णन किया गया
...के अतिरिक्त इसमें पुरुष तथा स्त्री जननेन्द्रियों के
...तथा क्रिया-विज्ञान का संक्षिप्त परिचय, तथा
वीर्य संबन्धी प्रायशः होने वाले प्रमुख रोगों पर भी प्रकाश
डाला गया है। चित्र भी दिये हैं। मूल्य ५.५०

चिकित्सादर्शः—आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान श्री
राजेश्वरदत्त जी शास्त्री द्वारा लिखित यह अपूर्व ग्रन्थ
चिकित्सा-सूत्रों का पृथक संग्रह है। नुस्खा नवीसी की यो
यह अपूर्व पुस्तक है। द्वितीय एवं तृतीय भाग में रोगों का
विशिष्ट वर्णन दिया है। मूल्य प्रथम भाग ३.५०, द्वितीय
भाग ७.००, तृतीय भाग ७.००

आयुर्वेद मलेरिया चिकित्सा—मलेरिया के विषय में
सम्पूर्ण जानकारी देने वाली पुस्तक है। लेखक श्री डा०
परमानन्द तिवारी एवं कवि डा० राधाकृष्णपाराशर हैं।
मूल्य २.००

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की १९६५ की
उपवैद्य, वैद्य-विशारद, आयुर्वेदरत्न, तथा समस्तरीय
परीक्षाओं के लिये विशेष उपयोगी गाइडें—

अशोक उपवैद्य गाइड—(शिवकुमार व्यास) सम्पूर्ण
छः पत्रों की परीक्षोपयोगी सामग्री प्रश्नोत्तर रूप में गत
परीक्षाओं के प्रश्न पत्र के आधार पर दी है। ५.००

अशोक वैद्य विशारद गाइड—(प्रथम खण्ड) लेखक-
आचार्य ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, द्वितीय संस्करण ६.००

अशोक वैद्य विशारद गाइड—(द्वितीय खण्ड) लेखक-
आचार्य ज्ञानेन्द्र पाण्डेय द्वितीय संस्करण ८.००

अशोक आयुर्वेदरत्न गाइड—(प्रथम खण्ड) लेखक—
शिवकुमार व्यास आयुर्वेदाचार्य (B. I. M. S,) १५.००

अशोक आयुर्वेदरत्न गाइड—(द्वितीय खण्ड) लेखक-
शिवकुमार व्यास आयुर्वेदाचार्य (B, I. M. S.) १५.००

इन गाइडों में निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार
परीक्षोपयोगी शैली में मैटर दिया गया है।

पदार्थ विज्ञानम्—लेखक श्री पं० वागीश्वर शुक्ल
वैद्य। इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धान्तों का
प्रतिपादन सरल भाषा में किया गया है। मूल्य ८ रु०।

शुद्ध आयुर्वेद चिकित्सा मार्ग दर्शिका (आयुर्वेदिक
गाइड) इसके लेखक हैं आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान श्री
अत्रिदेव विद्यालंकार—इस पुस्तक के तीन भाग हैं—प्रथम
भाग में रोगानुसार चिकित्सा, द्वितीय भाग में विशिष्ट
ज्ञातव्य तथा तृतीय भाग में रोगानुसार सिद्ध योगों का
संग्रह है। सजिल्द मूल्य ५ रु०।

अष्टांग हृदयम्—सर्वाङ्ग सुन्दरी व्याख्या विभूषित।

Scanned with CamScanner

टीकाकार श्री पं० लालचन्द्र वैद्य। व्याख्या बहुत सुन्दर एवं सरल भाषा में की गई है। लगभग ८५० पृष्ठ, बड़ा साइज कपड़े की सुपुष्ट जिल्द। मूल्य केवल १५ रु०

आयुर्वेद प्रकाश—टीकाकार श्री गुलराज शर्मा मिश्र आयुर्वेदाचार्य। लगभग ५०० पृष्ठीय रसशास्त्र के इस उत्कृष्ट ग्रन्थ में लेखक के वचनानुसार केवल उन्हीं विषयों का समावेश किया गया है जिनकी कि उसने स्वयं परीक्षा कर ली है। मूल्य १२.५०

भेल संहिता—संस्कर्त्ता आचार्य गिरजादयालु शुक्ल, संस्कृत भाषा में श्लोकों का अभूतपूर्व संग्रह. अत्युत्तम छपाई। मूल्य १० रु०

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान—लेखक श्री शिवकुमार व्यास। प्रारम्भ में द्रव्य गुण कर्म वीर्य विपाक व प्रभाव का विवेचन देकर बाद में लगभग ३५० द्रव्यों का विवरण, उनके गुण आदि दिये गए हैं। सजिल्द १० रु०

स्वास्थ्य विवेचन—लेखक श्री शिवकुमार वैद्यशास्त्री, इसमें क्षय रोग के सम्बन्ध में सभी ज्ञातव्य बातें, एवं चिकित्सा दी है। कपड़े की जिल्द ५ रु०

स्वास्थ्य शिक्षा पाठावलि—श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर एवं वासुदेव भास्कर घाणेकर। आयुर्वेदीय स्वास्थ्य-ज्ञान सम्बन्धी उत्कृष्ट संग्रह। साथ ही सरल हिन्दी भाषा में टीका दी है। मूल्य ३.५०

दिक व सिल गाइड (रुदन्ती चिकित्सा)—लेखक अमरदास भाटिया—इसमें क्षय रोग का नवीन उपचार रुदन्ती द्वारा अनेक एक्सरे फोटो देकर समझाया गया है। मूल्य ३ रु०

एलोपैथिक पुस्तकें हिन्दी में

आधुनिक चिकित्साशास्त्र—श्री धर्मदत्त जी–एलोपैथिक पद्धति से चिकित्सा का ज्ञान कराने के लिये आये दिन ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं किन्तु वे सभी ग्रन्थ प्रायः एकाङ्गी ही होते हैं। क्योंकि इस चिकित्सा का क्षेत्र इतना विशाल हो गया है कि किसी एक ग्रन्थ में सभी विषयों का समावेश कठिन है। साथ ही इस प्रणाली में प्रतिदिन नये-नये तरीकों का आविष्कार होता रहता है। अनुभवी लेखक ने आज तक के सारे आविष्कारों को इस पुस्तक में गागर में सागर की भांति भर दिया है। हर तरीके से इलाज इसमें दिया गया है। सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय भी छूटने नहीं पाया है। आधुनिक से आधुनिक तरीके भी इसमें आ गये हैं, आप स्वयं देखकर आश्चर्य करेंगे कि इससे बड़ा ग्रन्थ एलोपैथिक में आज तक प्रकाशित नहीं हुआ। इस संस्करण के हाथों हाथ बिक जाने की सम्भावना है। मूल्य ३६.००

अभिनव शवच्छेद विज्ञान—लेखक हरिस्वरूप कुलश्रेष्ठ। नवीन मतानुसार शवच्छेदन (Dissection) विषयक विशाल ग्रन्थ है। विषय का स्पष्ट ज्ञान करने के लिये अनेक चित्र साथ में दिये गये हैं। मूल्य १५.००

अभिनव विकृति विज्ञान—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी A. M. S.—विकृति विज्ञान (Pathology) विषय का हिन्दी भाषा में विशाल ग्रन्थ। अनेक चित्र साथ में दिये गये हैं। प्रत्येक रोग का विकास किस प्रकार होता है? एवं उस समय शरीर के किस अंग में क्या क्या परिवर्तन होते हैं स्पष्ट रूप से समझाया गया है। अन्त में हिन्दी एवं इंगलिश शब्दों की विशाल सूची दी गई है। विद्यार्थियों के लिए उपादेय है। मूल्य २२.००

एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा—लेखक डा० अयोध्या नाथ पाण्डेय। अकारादि क्रमानुसार प्रत्येक रोग पर प्रयोग की आने वाली पेटेन्ट औषधियां दी हैं तथा वे पेटेण्ट औषधि किस-किस रोगों पर प्रयुक्त हो सकती हैं यह भी दिया गया है। मूल्य २.००

अभिनव नेत्र चिकित्सा विज्ञान—लेखक पं० विश्वनाथ द्विवेदी शास्त्री B. A. आयुर्वेदाचार्य। प्राच्य एवं पाश्चात्य दोनों का समन्वय करते हुए नेत्र-चिकित्सा पर हिन्दी में विशाल ग्रन्थ। मूल्य १०.००

शल्य प्रदीपका—लेखक डा०मुकन्दस्वरूप वर्मा। शल्य (सर्जरी) विषयक हिन्दी में लिखी हुई उत्कृष्ट पुस्तक है। प्रत्येक प्रकार के शल्य कर्म को विस्तार से लिखा है। अनेक चित्र दिये हैं। मूल्य १२.५०

बाल रोग चिकित्सा—लेखक डा० रमानाथ द्विवेदी एम. ए., ए. एम. एस. प्राच्य एवं पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का विस्तार से समन्वय करते हुए विशुद्ध वर्णन युक्त। मू० ५.००

Scanned with CamScanner

अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान—लेखक प्रियव्रत शर्मा। यह पुस्तक हिन्दी में अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। मू० १०.००

धात्री विज्ञान—डा० शिवदयाल गुप्ता A. M. S. प्रारम्भ में नारी जननेन्द्रिय रचना एवं क्रिया शरीर, गर्भिणी परिचर्या, नवजात शिशु-परिचर्या एवं बाल्यकालीन रोगों का संक्षेप में वर्णन किया है। अनेक सम्बन्धित चित्र भी दिये हैं। मू० २.५०

गर्भस्थ शिशु की कहानी—लेखक डा० लक्ष्मीशङ्कर गुरु। प्रसूति विषयक हिन्दी में उत्तम एवं संक्षिप्त पुस्तक। सम्बन्धित चित्र भी हैं। मू० २.००

जन्म निरोध—लेखक ए० ए० खां M. Sc.। पुस्तक में जन्मनिरोध के लिए अनेक प्रकार की भौतिक, रासायनिक, यान्त्रिक एवं शस्त्रकर्मीय विधियां दी गई हैं। पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। मू० ६.००

सामान्य शल्य विज्ञान [सचित्र]—लेखक डाक्टर शिवदयाल गुप्त A. M. S. शल्य [सर्जरी] विषयक हिन्दी भाषा में विशाल ग्रन्थ। प्रत्येक विषय को आवश्यकीय चित्रों द्वारा समझाया गया है। पुस्तक अध्यापकों, विद्यार्थियों एवं चिकित्सकों सभी के लिए अत्यन्त उपादेय है। मू० १२.००

आदर्श एलोपैथी मेटेरिया मेडिका-विज्ञान के अनुसार प्रत्येक औषधि की प्रकृति, गुणधर्म, उपयोग, मात्रा, रोग, निदान के अनुसार वर्णित हैं। मू० ११.००

हिन्दी मार्डन मैडिकल ट्रीटमेंट—[आधुनिक चिकित्सा] लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री एम० एल० गुजराल M. B. M. R. C. P. [लन्दन] द्वारा लिखित एलोपैथिक चिकित्सा का सर्वोत्तम प्रमाणिक ग्रन्थ है। चिकित्सकों के लिए अत्युपयोगी है। मू० २०.००

पेटेन्ट प्रैस्क्राइबर या पेटेन्ट चिकित्सा—प्रत्येक रोग पर व्यवहार होने वाली एलोपैथिक पेटेन्ट औषधियों का तथा इंजेक्शनों का विवरण सुन्दर ढंग से दिया है। मूल्य द्वितीय संस्करण ८.००

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान [दो भाग]—श्री डा० बालानन्द पंचरत्न M. B. B. S. आयुर्वेदाचार्य। यह चिकित्सा-विज्ञान की सुन्दर रचना है। इसमें १६ अध्यायों में रोगों का वर्णन तथा उनकी सफल एलोपैथिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा बड़ी खूबी के साथ दी है। इनकी वर्णन-शैली तुलनात्मक दृष्टि से ही महत्व की नहीं वरन् सफल चिकित्सा की दृष्टि से भी यह ग्रंथ चिकित्सकों को उपादेय है। कपड़े की जिल्द मू० दोनों भाग २०.००

आयुर्वेद एण्ड एलोपैथिक गाइड—लेखक आयुर्वेदाचार्य पं० रामकुमार द्विवेदी। हिन्दी में प्राच्य-पाश्चात्य विज्ञान का विस्तृत ज्ञान देने वाली बेजोड़ पुस्तक है। मू० १२.००

वर्मा एलोपैथिक निघण्टु—डा० वर्मा जी की कृति। इसमें १००० से अधिक पेटेन्ट तथा साधारण औषधियों के वर्णन के अतिरिक्त सैकड़ों नुस्खे तथा अन्य उपयोगी बातें दी हैं। मू० १२.००

एलोपैथिक गाइड—लेखक डा० रामनाथ वर्मा एलोपैथी की ज्ञातव्य बातें सरल हिन्दी में बताने वाली सुप्रसिद्ध पुस्तक, छठा संस्करण। मूल्य १३.००

एलोपैथिक योगरत्नाकर—श्री वर्मा जी की उपयोगी पुस्तक। एलोपैथिक मिक्चर तथा प्रयोगों का विशाल संग्रह। पृष्ठ ७४१ मू० १३.००

एलोपैथिक- चिकित्सा [चौथा संस्करण]—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा। इसमें प्रायः सभी रोगों के लक्षण, निदान आदि संक्षेप में वर्णन करके उन रोगों की चिकित्सा विस्तृत रूप से दी है। योग आधुनिकतम अनुसन्धानों को मथकर और अनुभव सिद्ध लिखे गये हैं। ८२५ पृष्ठ विशाल सजिल्द ग्रन्थ का मू० १२.००

एलोपैथिक पाकेट गाइड—एलोपैथिक चिकित्सा का सूक्ष्म रूप यह पाकेट गाइड है। इसे आप जेब में रखकर चिकित्सार्थ जा सकते हैं जो आपका हर समय साथी का काम देती है। मू० ३.००

एलोपैथिक पेटेन्ट मेडीसन—लेखक डा. अयोध्यानाथ पांडेय। कौन पेटेन्ट औषधि किस कम्पनी की तथा किन-किन द्रव्यों से निर्मित हुई है किस रोग में प्रयुक्त होती है? लिखा गया है। दूसरे अध्याय में रोगानुसार औषधि का चुनाव किया है। मू० ५.००

एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—[पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान] लेखक कविराज राममुनीलसिंह शास्त्री A. M. S.। यह पुस्तक अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। लेखक ने विषय को आयुर्वेद चिकित्सकों तथा विद्यालयों के लिए विशेष उपयोगी ढङ्ग से प्रस्तुत किया है। मू० प्रथम भाग समाप्त, द्वितीय भाग ३०.००

Scanned with CamScanner

एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—लेखक डाक्टर शिवदयाल जी गुप्ता ए. एन. एस.। इस पुस्तक में अब तक की सम्पूर्ण औषधियां जो एलोपैथी में समाविष्ट हो चुकी हैं सभी दी हैं। सरल, सुबोध भाषा, वैज्ञानिक-क्रम से विषय का स्पष्टीकरण, औषधियों के सम्बन्ध में आधुनिक सूचना, भिन्न-भिन्न औषधियों से सम्बन्धित तथा चिकित्सा में प्रयुक्त योगों का निर्देश पुस्तक की विशेषता है। हिन्दी में सबसे महान और विशाल अद्वितीय पुस्तक जिसमें १२०० पृष्ठ हैं। मू० १२.००

एलोपैथिक सफल औषधियां—एलोपैथी की नवीनतम प्रसिद्ध खास-खास औषधियों का गुणधर्म विवेचन जो आजकल बाजार में वरदान सिद्ध हो रही हैं। सभी सल्फा-ग्रुप आदि औषधियों के वर्णन सहित मू० ३.५०

सचित्र नेत्र विज्ञान—लेखक डा० शिवदयाल गुप्त, पृष्ठ संख्या ५६४, चित्र संख्या १३, मू० ८.००

मल-मूत्र-रक्तादि परीक्षा—ले० डा० शिवदयाल गुप्त, अपने विषय की सर्वांगपूर्ण, सचित्र और वैद्यों के बड़े काम की पुस्तक है। मू० ३.००

मिक्सचर (छठा संस्करण)—प्रथम २६ पृष्ठों में मिक्सचर बनाने के नियम, औषधियों की तोल-नाप, व्यवस्था पत्रों में लिखे जाने वाले संकेतों की व्याख्या आदि ज्ञातव्य बातें दी हैं। बाद में उपयोगी इंजेक्शनों का भी संकेत किया है। अन्त में देशी दवाओं के अंग्रेजी नाम दिए हैं। २१७ पृष्ठ की यह पुस्तक चिकित्सकों के लिए अत्युपयोगी है। मू. २.५०

सफल कम्पाउण्डर कैसे बनें? डा० रामचन्द सक्सैना। हिन्दी में अब तक ऐसी पुस्तक की कमी थी जिससे कम्पाउण्डर बनने की प्रारम्भिक आवश्यकताओं का शिक्षण, छोटे-मोटे नुस्खे, नर्सिंग शिक्षा, फर्स्टएड आदि का ज्ञान हो सके। प्रस्तुत पुस्तक से यह कमी दूर होती है। सुन्दर छपाई, सजिल्द मू० ३.००

नव्य चिकित्सा-विज्ञान [संक्रामक रोग] भाग १ डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा—व्यस्त चिकित्सकों के लिए आधुनिक चिकित्सा विषयक अति उत्तम पुस्तक है। मू. प्रथम भाग ८.००, द्वितीय भाग ८.००

बीसवीं शताब्दी की औषधियां—इसमें नवाविष्कृत सभी औषधियों के गुणधर्म आदि नातिसंक्षेपविस्तरेण दिये गए हैं। हिन्दी भाषा में अपने विषय की उत्तम कृति है। मू० ८.००

रोग निवारण—प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक-चिकित्सा पद्धति के अनुसार रोगों की चिकित्सा के विस्तारपूर्वक वर्णन के साथ-साथ संक्षेप में आयुर्वेदिक-चिकित्सा का भी वर्णन किया है। इसके लेखक प्रसिद्धि प्राप्त डा० शिवनाथ खन्ना हैं। ८४८ पृष्ठ, १८४ पृष्ठ की परिशिष्ट मू० १४.००

गर्भरक्षा तथा शिशु परिपालन—श्री डा. मुकुन्दस्वरूप वर्मा द्वारा लिखित अपने विषय की सरल हिन्दी में उत्कृष्ट पुस्तक है। यथास्थान चित्र भी दिए गए हैं। मू० ४.५० मात्र

शालाक्य तंत्र [निमि तंत्र]—अष्टांग आयुर्वेद के महत्वपूर्ण अङ्ग शालाक्य पर यह एक उत्तम ग्रन्थ है। आधुनिक एवं प्राच्य दोनों दृष्टिकोण से पूर्ण विवेचन किया गया है। इसके रचयिता आयुर्वेद-बृहस्पति श्री रमानाथ जी द्विवेदी ए. एम. एस. हैं। मू० ६.००

संकटकालीन प्राथमिक चिकित्सा—डा० प्रियकुमार चौबे द्वारा लिखी गई हिन्दी में अपने विषय की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। विषय को स्पष्टतः समझाने के लिये पुस्तक में ८२ चित्र दिए गए हैं। मूल्य केवल ४.७५

नासा, गला एवं कर्ण रोग चिकित्सा—डा० प्रियकुमार चौबे द्वारा लिखी गई इस पुस्तक में समस्त रोगों का विषद रूप से परिचय कराया गया है। आजकल के पेटेण्ट औषधियों का भी उत्तम रूप से परिचय है। यथास्थान चित्र भी दिये हैं। मूल्य केवल ३.५०

जीवतिक्ति विमर्श या विटामिन तत्व—लेखक डा० पद्मदेव नारायणसिंह। विटामिन विषयक अत्युपयोगी सचित्र पुस्तक ५.००

प्रसूति तन्त्र—लेखक डा० रामदयाल कपूर। पुस्तक में श्रोणि रचना, काम-विज्ञान, गर्भ-विज्ञान, गर्भावस्था और उसकी चर्या, प्रसव-विधि, प्रसवोत्तर कर्म, गर्भावस्था के विकार, प्रसव के विकार, प्रसूतिकालिक विकार, नवजात शिशु के विकार, प्रसूतिका शल्य-कर्म आदि सभी विषय अच्छी तरह समझाकर लिखे गये हैं। मूल्य ५.७५

एलोपैथिक संग्रह—भाग प्रथम—मैटीरिया मेडिका ऐलोपैथिक तथा डिस्पेंसिंग गाइड—जिसमें सभी ऐलोपैथिक औषधियों का ब्यौरा विस्तारपूर्वक दिया गया है सभी औषधियों के देशी प्रचलित नाम, मात्रा एवं लाभ सभी नवीन औषधियां कई एक फार्माकोपिया की सभी औष-

Scanned with CamScanner

विधां इसमें सम्मिलित हैं । मूल्य १२.००

ऐलोपैथिक संग्रह—भाग पांचवां–नर्सिंग, मिडवाइफरी तथा स्त्री रोग चिकित्सा मूल्य ७.५०

ऐलोपैथिक संग्रह—भाग छठा–यह सर्जीकल तथा मकैनीकल दन्दानसाजी पर पहली सम्पूर्ण हिन्दी पुस्तक है जिसमें सर्जीकल दन्त चिकित्सा, दांतों के सैट बनाने का पूर्ण कोर्स है। दर्जनों फोटो हैं। मूल्य १५.००

बाल रोग चिकित्सा—इसमें बालकों के समस्त रोगों का ब्योरा दिया गया है । मूल्य २.५०

दिक सिल तथा रुदन्ती-इस पुस्तक में दिक रोग का नवीन उपचार रुदन्ती द्वारा, कई ऐक्सरे फोटो देकर समझाया गया है । मूल्य ३.००

एक्सपर्ट फार्मासिस्ट तथा कम्पाउण्डरी शिक्षा—अमरनाथ भाटिया–२.५०

डिस्पेन्सर गाइड तथा डाक्टरी नुस्खे–इस पुस्तक में वह समस्त जानकारी दी गई है जो एक डिस्पैंसर तथा फार्मासिस्ट के लिए आवश्यक है । मूल्य २.५०

एलोपैथिक पाकेट प्रेस्काइबर—श्री डा० शिवनाथ खन्ना–प्रत्येक रोग पर सफल पेटेण्ट औषधियां तथा मिक्चर आपको इस पुस्तक में मिलेंगे। पृष्ठ ३१२ सजिल्द ५.००

सफल आधुनिक औषधियां—श्री डा० पद्मदेव नारायणसिंह एम० बी० बी० एस० – इसमें नवीन आविष्कृत एवं चमत्कारिक अचूक औषधियों का वर्णन है । विटामिन्स, टानिक्स, सल्फा ग्रुप की तथा एण्टीबायोटिक्स की समस्त औषधियों के साथ-साथ टी० बी०, डायबिटीज, गठिया, कृमि, कुष्ठ, हाईब्लडप्रेशर आदि का विशेष विवेचन दिया है । पृष्ठ ३६२, सजिल्द ४.५०

एलोपैथिक पाकेट प्रेस्काइबर—शिवनाथ खन्ना–यह बहुत उपयोगी पुस्तक है। तमाम पुस्तक में अंग्रेजी दवाओं के उपयोगी नुस्खे दिए गए हैं। अवश्य मंगायें। मूल्य ५.०० रुपया

एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा नवनीत–डा० हरनारायण कोकचा–यह पुस्तक ५०० के लगभग चार्टों तथा तालिकाओं से सुसज्जित है । इसमें एलोपैथिक की लगभग दस हजार पेटेण्ट औषधियों और इञ्जैक्शनों को चार्टों में खोल कर खुलासा समझाया गया है। सैकड़ों रोगों के सफल इलाज का विस्तृत वर्णन चार्टों के रूप में दिया गया है । पुस्तक अत्युपयोगी है । मू० ८ रु० मात्र

कम्पाउन्डरी शिक्षा, रोगी परिचर्या, बिषविज्ञान तथा चिकित्सा प्रवेश–डा० आर० सी० भट्टाचार्य इस पुस्तक में औषधि निर्माण, विष चिकित्सा, रोगी परिचर्या, सामान्य चिकित्सा आदि समाविष्ट हैं । मू० ६ रुपया

एलोपैथिक नुस्खा—डा० एम० एल० शर्मा–इसमें बीमारियों के नाम, सर्वसाधारण के रोज काम में आने वाले इंजैक्शन तथा पेटेण्ट दवाओं का वर्णन है। मू० २.००

इञ्जैक्शन विषयक पुस्तकें

इंजेक्शन–लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा अपने विषय की हिन्दी में सचित्र सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है । थोड़े समय में ही ६ संस्करण हो जाना ही इसकी उत्कृष्टता का प्रमाण है। इसके आरम्भ में सिरिंज के प्रकार, इंजेक्शन लगाने के प्रकार तथा उनके लगाने की विधि रंगीन एवं सादे चित्रों सहित पूरी तरह समझाई गई है । बाद में प्रत्येक इंजेक्शन का वर्णन, उसकी मात्रा, उसके गुण, प्रयोग करने में क्या सावधानी वर्तनी चाहिए आदि सभी बातें विस्तार से लिखी गई हैं । अंत में अकारादि क्रम से समस्त इंजेक्शनों की सूची तथा पृष्ठ संख्या दी गई है। चिकित्सकों के लिये पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है । सजिल्द मू० १०.००

सचित्र इंजेक्शन–डा० शिवनाथ खन्ना–प्रस्तुत पुस्तक इंजेक्शन अर्थात् सूचीवेधन नामक विषय पर विस्तार पूर्वक, सरल, जनप्रचलित भाषा में समझाकर लिखी गई है । चार खण्ड हैं जिनमें प्रथम खण्ड में इंजेक्शन की विधियां तथा इंजेक्शन के भेद, द्वितीय खण्ड में विभिन्न इंजेक्शनों के गुण, कर्मादि, तृतीय खण्ड में प्रधान रोगों के लक्षण तथा उनमें दिये जाने वाले इंजेक्शन और चतुर्थ खण्ड में अन्य आवश्यक जानकारी दी है । पुस्तक अपने विषय की सर्वोत्तम हैं । मू० ११.००

इंजेक्शन तत्व प्रदीप—लेखक डा० गणपतिसिंह वर्मा । सभी इंजेक्शनों का वर्णन है तथा उनके भेद और उनके लगाने की विधि सरलतया दी है । मू. ५.००

सूचीवेध विज्ञान—लेखक डा. रमेशचन्द्र वर्मा डी.

Scanned with CamScanner

आई. एम. एस.। यह पुस्तक भी एलोपैथी इंजेक्शनों की उपयोगी विस्तृत सामग्री से पूर्ण है। पैनसिलीन, विटामिन आदि का भी विस्तृत वर्णन है। पक्की जिल्द मू. ७.५०

सूचीवेध विज्ञान—लेखक श्री राजकुमार द्विवेदी। इस छोटी पुस्तिका में आपको बहुत कुछ सामग्री मिलेगी। गागर में सागर भर दिया है। मू. २.५०

होमियो इंजेक्शन चिकित्सा–आरम्भ में इंजेक्शनों के भेद तथा उनके लगाने की विधि आदि का सचित्र वर्णन दिया है। तत्पश्चात् होमियोपैथिक औषधियों के गुणादि का वर्णन दिया है। मू. १.७५

आयुर्वेदिक सफल सूचीवेध (इंजेक्शन)—लेखक वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन। इस पुस्तक में आयुर्वेदिक द्रव्यों एवं जड़ी बूटियों के इंजेक्शनों का विस्तृत वर्णन किया गया है। स्वानुभव के आधार पर लिखी अत्यन्त उपयोगी पुस्तक का मू. ५.००

इन्जेक्शन गाइड—श्री महेन्द्रप्रताप शर्मा एवं प्रमोद बिहारी सक्सेना–इस पुस्तक में एलोपैथिक प्रणाली की विशद विवेचना के साथ-साथ होमियोपैथी एवं आयुर्वेदिक प्रणाली द्वारा इन्जेक्शन क्रिया का यथेष्ट वर्णन किया गया है। सजिल्द मू. ६.००

होमियोपैथिक इन्जेक्शन गाइड—डा० जगदीश्वर सहाय भार्गव–होमियो इन्जेक्शनों का सारगर्भित वर्णन किया है। मू, १.५०

यूनानी पुस्तकें

जर्राही प्रकाश (चारों भाग)–इसमें घाव और व्रण से सम्बन्धित जर्राही के लिये उर्दू, संस्कृत व डाक्टरी आदि अनेक ग्रन्थों का सार संग्रह किया गया है। पृष्ठ संख्या २१८ मू. ३.५०

यूनानी चिकित्साविधि—इससे लेखक श्री मंसाराम जी शुक्ल हकीम वाइस प्रिन्सिपल यूनानी तिब्बिया कालेज दिल्ली हैं। इसमें दिल्ली के प्रसिद्ध यूनानी खानदानी हकीमों के अनुभूत प्रयोगों का निचोड़ है जिसके कारण, यूनानी हकीमों की चिकित्सा दिल्ली में खूब चमकी और आज तक नाम है। कपड़े की पक्की जिल्द मू० ५.००

यूनानी चिकित्सा सागर—श्री मंसाराम जी शुक्ल द्वारा लिखा हुआ हिन्दी भाषा में यूनानी का विशाल ग्रन्थ है जो 'रसतन्त्रसार' के ढङ्ग पर लिखा गया है। इसमें पुराने व आधुनिक सभी हकीमों के १००० अनुभूत प्रयोग हैं। औषधियों के नाम हिन्दी में अनुवाद कर दिये गये हैं। जिनके नाम नहीं मिले हैं ऐसी २५० औषधियों का वर्णन परिशिष्ट में दिया है। ५१६पृष्ठ। मू० १०.००

यूनानी चिकित्सा विज्ञान—यूनानी चिकित्सा-विज्ञान का हिन्दी में अनुपम ग्रन्थ। इस पुस्तक के दो भाग किये गये हैं। प्रस्तुत भाग में यूनानी चिकित्सा और निदान के मूलभूत सिद्धान्तों का विशद विवेचन है। इसमें रोग के लक्षण, निदान, भेद तथा परीक्षा की सामान्य विधियां हैं। ६९६ पृष्ठों के इस ग्रन्थ का मू० ८.५०

यूनानी सिद्ध योग संग्रह—यह यूनानी सिद्ध योगों का संग्रह है। सभी योग सफल, परीक्षित और सहज में बनने वाले हैं, हरेक वैद्य के काम की चीज है। इसके संग्रहकार हैं वैद्यराज दलजीतसिंह जी आयु. वृहस्पति। मू० २.५०

यूनानी वैद्यक के आधारभूत सिद्धांत—(कुल्लियात) श्री बाबू दलजीतसिंह जी व उनके भाई रामसुशीलसिंह जी ने इस छोटे से ग्रन्थ में इस बात को दिखाने का प्रयत्न किया है कि आयुर्वेद और यूनानी-चिकित्सा-पद्धतियों में कितना सादृश्य तथा कितना असादृश्य है। इसका निर्माण दोनों का समन्वय हो सकता है इस आधार पर किया गया है। मू० १.२५

मखजनउल मुफरदात (निघण्टु विज्ञान)–लेखक पं० जगन्नाथ शर्मा। मू. २.००

करावादीन सिफाई–यूनानी प्रयोग संग्रह लेखक पं० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा मू. २.००

कराबादीन कादरी—लेखक जगन्नाथ प्रसाद–हैड मुदर्रिस। चार भाग मू. ८.००

यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान—हकीम डा. दलजीतसिंह ने पूर्वार्ध में द्रव्य गुण कर्म आदि का विवेचन किया है। उत्तरार्ध में ५३० यूनानी द्रव्यों के पर्याय, उत्पत्तिस्थान, वर्णन, रासायनिक संगठन, प्रकृति और गुण का पूर्ण विवेचन दिया गया है। मू. २२.००

यूनानी शब्दकोष–यूनानी दवाओं के हिन्दी पर्याय इसमें मिलेंगे। इससे दवा लेने में बड़ी सहूलियत होगी। मू. ०.३७

Scanned with CamScanner

सरल सिद्ध प्रयोगों की पुस्तकें

अनुभूत योग प्रकाश-ले. डा० गणपतिसिंह वर्मा। प्रायः सभी रोगों पर आपको सरल सफल प्रयोग इस पुस्तक में मिलेंगे। मू. ६.२५

अनुभूति—ले. डाक्टर नरेन्द्रसिंह नेगी—इसमें भिन्न-भिन्न रोगों पर अनुभूत योगों का वर्णन है। मू. २.२५

पैसे पैसे के चुटकुले—सस्ते तथा सफल प्रयोगों का संग्रह मू. १.००

महात्मा जी के १२५१ नुस्खे—इस पुस्तक में जनता के लाभार्थ महात्मा जी ने अपने स्वानुभूत प्रयोगों द्वारा गागर में सागर भर दिया है। सजिल्द मू० ३.००

सिद्ध मृत्युञ्जय योग—इस पुस्तक में ५३ सफल प्रयोगों का वर्णन है। प्रयोग मात्रा, सेवन-विधि, गुण आदि देकर यह स्पष्ट लिख दिया है कि प्रयोग किस प्रकार प्राप्त हुआ तथा कहां सफलता के साथ व्यवहृत हुआ है। मू० १.००

औषध स्वावलम्बन—कवि० विद्यानारायण शास्त्री—तुलसी, पान, आर्द्रक आदि सुगमता से प्राप्य औषधियों का प्रारम्भ में संक्षिप्त वर्णन देते हुए बाद में यह समझाया गया है कि वह औषधि किन-किन रोगों पर किस प्रकार कार्य कर सकती है। मू. २.००

सिद्ध योग (दो भाग)-पं. विश्वेश्वर दयाल वैद्यराज। इस पुस्तक में अनेक सिद्ध योगों का रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए संग्रह किया है। मूल्य प्रथम भाग १.००, द्वितीय भाग ०.५०

वैद्य जीवनम्—श्री लोलम्बराज कृत संस्कृत में प्रयोगों का संग्रह है। सरल हिन्दी टीका की गई है। टीकाकार पं० किशोरीदत्त शास्त्री मूल्य ०.७५, पं कालीचरण पांडेय एम. ए. कृत १.२५, केशवदास जी १.००

वैद्य बाबा का बस्ता—जैसा कि नाम से प्रगट है, श्री बंसरीलाल जी साहनी द्वारा रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए लगभग ६५० प्रयोगों का संग्रह है। पुस्तक का आकार डायरी के समान है। सजिल्द १.२५

नित्योपयोगी चूर्ण संग्रह—नित्य उपयोग में आने वाले १११ चूर्णों का संग्रह विभिन्न ग्रन्थों से किया गया है। उनके बनाने की विधि, मात्रा, अनुपान एवं गुणों का वर्णन किया है। मू. १.२५

नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह—क्वाथ चिकित्सा, आयुर्वेद की प्राचीन, अल्प व्यय साध्य एवं आशुफलप्रद चिकित्सा है। इस पुस्तक में १६ क्वाथों का संग्रह प्रकाशित किया गया है। मू. १.२५

नित्योपयोगी गुटिका संग्रह—३२३ बूटियों (गुटिकाओं) का उपयोगी संग्रह। मू० २.००

अनुभूतयोग चिन्तामणि—डाक्टर गणपतिसिंह वर्मा राजवैद्य। वर्गानुसार रोगों का वर्णन कर तत्पश्चात् उपयोगी नुस्खे दिये गये हैं जो कि सस्ते, सरल एवं आशुफलप्रद हैं। अल्प काल में पांच संस्करण हो जाना ही इसकी उत्तमता का प्रमाण है। मू. प्रथम भाग ४.२५, द्वितीय भाग ४.००

सिद्ध भैषज्य संग्रह—चूर्ण, वटी, तैल, अवलेह आदि वर्गानुसार अनेक सिद्ध औषधियों का विवेचन किया गया है। अन्त में ज्वर, अतिसार आदि रोगों पर प्रयुक्त की जाने वाली औषधियों की सूची विस्तृत रूप से दी गई है। सजिल्द मू. ८.००

देहाती अनुभूत योग संग्रह—(दो भाग) अनुवादक अमोलक चन्द शुक्ल-देहाती वस्तुओं से उत्तमोत्तम प्रयोगों को बनाने की विधियां वर्णन की गई हैं। दोनों भागों को मिलाकर लगभग ६५० प्रयोग दिये हैं। सजिल्द मू० प्रथम भाग ६.००, द्वितीय भाग ७.००

डाक्टरी नुस्खे—डाक्टर राधावल्लभ पाठक-अनेक अचूक डाक्टरी नुस्खों का संग्रह सजिल्द मू० ५.००।

अनुभूत योग चर्चा—लेखक बंसरीलाल साहनी-प्रथम भाग में २०७ प्रयोगों तथा द्वितीय भाग में ४३३ प्रयोगों का संग्रह है। इस पुस्तक में अति सरल प्रयोग वर्णित हैं। मूल्य प्रथम भाग २.५०, द्वितीय भाग ३.५०

अनुभूत योग—दो भाग में लगभग १५० प्रयोगों की निर्माण विधि, मात्रा, अनुपान एवं उनके गुणों का विस्तृत विवेचन किया है। मूल्य प्रत्येक भाग का १.००

सिद्धयोग संग्रह—आयुर्वेद मार्तण्ड श्री यादव जी त्रिक्रम जी आचार्य के द्वारा अनुभूत सफल प्रयोगों का संग्रह। हर चिकित्सक के लिये उपयोगी पुस्तक है। इसके प्रयोग पूर्ण परीक्षित और सद्यः लाभदायक हैं। मू. २.७५

रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह—संशोधित अष्टम

Scanned with CamScanner

संस्करण। इस ग्रन्थ में रस-रसायन, गुटिका, आसव, अरिष्ट, पाक, अवलेह, तेल तैल, मलहम, अंजनादि सभी प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियों के सहस्रशः अनुभूत एवं शास्त्रीय प्रयोग तथा निर्माण पूर्णतया विवेचित है। प्रथम भाग ६.०० सजिल्द १५.००, द्वितीय भाग ६.०० सजिल्द ७.५०

होमियो बायोकैमिक पुस्तकें

आर्गेनन—यह होमियोपैथी की मूल पुस्तक है जिसमें इस पैथी के मूल प्रवर्तक महात्मा सैमुएल हैनिमैन के २९१ सूत्र हैं। इस पुस्तक में इन्हीं पर डा० सुरेशप्रसाद शर्मा ने व्याख्या इतनी सुन्दर और सरल की है कि हिन्दी जानने वाले इन सूत्रों का मन्तव्य भलीभांति समझ सकते हैं। बिना इस पुस्तक के होम्योपैथी जानना दुराशा मात्र है ३८८ पृष्ठ सजिल्द मू. ४.००

ज्वर चिकित्सा—उत्तर प्रदेशीय सरकार से पुरस्कार प्राप्त इसमें सभी प्रकार के ज्वरों की ऐलोपैथिक, आयुर्वेदिक एवं यूनानी मत से चिकित्सा वर्णित है। मू. २.००

पशु चिकित्सा होमियो—यह आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथिक दोनों से सम्बन्धित पशु चिकित्सा पर बहुत उपयोगी साहित्य है मूल्य २.१२

प्रिंस मेटेरिया मैडिका (कम्परेटिव)–डा० सुरेशप्रसाद शर्मा प्रिंस होम्योपैथिक कालेज के प्रिंसिपिल द्वारा प्रणीत यह होम्योपैथिक मेटेरिया मेडिका है। औरों से इसमें बहुत कुछ विशेषता है। थेराप्युटिक ही नहीं इसमें फार्मोकोपिया भी सम्मिलित की गई है। प्रत्येक औषधियों के मूलद्रव्य, प्रस्तुत विधि, वृद्धि, उपशय, प्रमुख एवं साधारण लक्षणों आदि सभी विषयों का वर्णन किया गया है। १३७२ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल ९.००

किंगहोमियो मिक्श्चर्स—श्री शंकरलाल गुप्ता। यह पुस्तक होमियोपैथिक डाक्टरों के दैनिक व्यवहार के लिए अत्युपयोगी है। मूल्य २.५०

किंगहोमियो मिक्श्चर्स एवं पेटेन्ट मेडीसन गाइड—श्री डा० शंकरलाल गुप्ता। इसमें होमियोपैथिक दृष्टि से रोग का परिचय, कारण, लक्षण, रोग की चिकित्सा आदि पर उत्तम प्रकाश डाला गया है। मू० ७.५०

होमियो मेटेरिया मैडिका (रेपर्टरी सहित)—डा० विलयम बोरिक-अब तक यह पुस्तक अंग्रेजी भाषा में थी जिसका यह सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद है। मेटेरिया मैडिका अध्याय के बाद रेपर्टरी अध्याय लिखा गया है। लगभग १८०० पृष्ठ मूल्य १५.००

होमियोपैथिक निजी डाक्टर (छठा संस्करण)—इस पुस्तक में सभी रोगों की सरल होमियोपैथिक चिकित्सा दी गई है। पांच संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो जाना इस पुस्तक की उपादेयता का द्योतक है। मूल्य १.६२

होमियोपैथिक नुस्खा—डा० श्यामसुन्दर शर्मा-इस पुस्तक में अनेक उपयोगी होमियोपैथी नुस्खे दिये हैं। मू. १.२५

भैषज्यसार—होम्योपैथी की पाकेट गुटिका। सभी रोगों में दवाओं के प्रयोग व मात्रायें दी हैं। मू० २.००

भारतीय औषधावली तथा होमियो पेटेन्ट मैडिसिन-डा० सुरेशप्रसाद ने इस पुस्तक में उन औषधियों को लिया है जो भारतीय औषधियों से तैयार होती हैं। साथ ही बाद में कुछ होम्योपैथिक पेटेन्ट औषधियों को वह किस रोग में दी जाती हैं, दिया है। मूल्य १.५०

रिलेशन शिप—नित्य व्यावहारिक औषधियों का सहायक अनुसरणीय प्रतिषेधक तथा विपरीत औषधियोंका संग्रह किया गया है। मू० २.००

सरल होमियो चिकित्सा—इसमें सभी स्त्री पुरुषों के स्वास्थ्य नियमों को बताया है तथा उनसे विपरीत होने वाले सभी रोगों की होमियोपैथी चिकित्सा दी गई है। रोग वर्णन तथा चिकित्सा दोनों ही अत्यन्त सरल और समझाकर लिखे गये हैं। मू० ४.५०

रोग निदान चिकित्सा—इस छोटी पुस्तक में १०० पृष्ठों में रोगी की परीक्षा विधि व ५० पृष्ठों में होमियोपैथी एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा है। मूल्य २.००

स्त्री रोग चिकित्सा—डा० सुरेशप्रसाद शर्मा लिखित स्त्री-जननेन्द्रिय के समस्त रोग, गर्भाधान, प्रसव के रोग तथा स्त्रियों को होने वाले अन्य सभी रोगों का निदान व चिकित्सा दी है। मू० ४.५०

होमियोपैथिक मेटेरिया मैडिका–जिन्हें मोटे-मोटे ग्रंथ पढ़ने का समय नहीं है उनके लिये यह मेटेरिया मैडिका बहुत उपयुक्त है। सजिल्द ४०० पृष्ठ मूल्य ३.७५

होमियो मेटेरिया मैडिका—डा० दयासहाय भार्गव द्वारा रचित ' सभी आवश्यक विषय हैं कोई छूटने नहीं

Scanned with CamScanner

पाया है। ५६१ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मू० ५.००

होमियो चिकित्सा विज्ञान–(Practice of medicines)-ले० डा० श्यामसुन्दर शर्मा। प्रत्येक रोग का खण्ड खण्ड रूप में परिचय, कारण, शारीरिक विकृति, उपद्रव परिणाम और आनुषङ्गिक चिकित्सा के साथ आरोग्य चिकित्सा का वर्णन है। सजिल्द मूल्य ३.५०

बारह तन्तु औषधियां—इसमें प्रारम्भ में १२ मूल औषधियों के विषय में लगभग १८० पृष्ठों में पर्याप्त जानकारी प्रदान करने के पश्चात् रोगानुसार बायोकैमिक चिकित्सा विस्तार से दी है। छठा संस्करण मू० ७.००

होमियो पैथिक संग्रह—प्रथम भाग-इसमें पूर्ण होमियोपैथिक विधान (Organon) मैटेरिया मैडिका, रेपर्टरी तथा नुस्खे दिये गये हैं। मू० १०.००

होमियोपैथिक संग्रह दूसरा भाग—इसमें मैटेरिया मैडिका का होम्यो विस्तार पूर्वक दिया गया है। औषधियों के प्रचलित नाम, मदर टिंक्चर तथा डाइलूशन बनाने की विधि, औषधि चिन्ह,कच्चे रूप में इसका प्रयोग,होम्योपैथिक प्रूविङ्ग तथा औषधियों के सम्बन्ध दिये हैं। मू० १५.००

कालरा या हैजा—इस महाव्याधि पर सुन्दर सामग्री प्रस्तुत है।प्रत्येक अवस्था पर औषधियों का संग्रह मू० ३.००

बायोकैमिक चिकित्सा–बायोकैमिक चिकित्सासिद्धांत के सम्बन्ध में आवश्यक बातें तथा बारहों औषधियों के वृहद् मुख्य लक्षण और किन किन रोगों में उनका व्यवहार होता है, सरल ढंग से समझाया है। पृष्ठ ४२६ मू. ४.००

बायोकैमिक रहस्य–(नवम् संस्करण) बायोकैमिक क्या है? इस विषय पर पुस्तक सभी आवश्यक अङ्गों की जानकारी देती है तथा बारहों दवाओं का भिन्न भिन्न रोगों पर सफल वर्णन किया गया है। सजिल्द मू. ३.००, कैलाशभूषण लिखित १.५०

बायोकैमिक मिक्स्चर—बारहों क्षारों का विभिन्न रोगों में मिक्स्चर रूप से व्यवहार करना यह पुस्तक बताती है। मूल्य ०.७५

होमियो पारिवारिक चिकित्सा—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा प्रत्येक रोग के लक्षण एवं उनकी होमियोपैथिक चिकित्सा विस्तृत रूप से दी गई है। आधुनिक वैज्ञानिक विवेचन भी साथ में दिया गया है। पृष्ठ लगभग १६००। मूल्य ६.००

होमियोपैथिक नुस्खा	डा. श्याम सुन्दर शर्मा	१.२५
घाव की चिकित्सा	श्यामसुन्दर शर्मा	१.००
निमोनियां चिकित्सा	डा. बी. एन. टंडन	०.७५
" "	डा. सुरेशप्रसाद	०.७५
होमियो थाइसिस चिकित्सा	"	०.७५
होमियोटाइफाइड चिकित्सा	डा. सुरेशप्रसाद	०.७५
होमियो पाकेट गाइड	" "	१.००
ग्रह चिकित्सा	" "	२.२५
"	डा. बी. एन टंडन	१.५०
सरल होमियो पारिवारिक चिकित्सा	डा. श्योसहाय भार्गव	५.००
होमियो फार्माकोपिया	डा. बी. एन. टंडन	२.००

प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकें

रोगों की सरल चिकित्सा (तीसरा परिवर्तित संस्करण) लेखक श्री विट्ठलदास मोदी। १०,००० से अधिक रोगियों पर किये गये अनुभव के आधार पर लिखी गई हिन्दी की यह प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी श्रेष्ठ पुस्तक है, अब तक इसकी पन्द्रह हजार प्रतियां बिक चुकी हैं। पृष्ठ संख्या ३५०, बढ़िया पक्की जिल्द मू. ४.००

बच्चों का स्वास्थ्य और उनके रोग–बच्चों के पालन पोषण की विधि के साथ साथ उनके रोगी होने पर उन्हें रोगमुक्त करने की विधि इस पुस्तक में विस्तार से दी गई है। मू. केवल ३.००

रोगों की नई चिकित्सा—लेखक लूईकूने। यद्यपि प्राकृतिक चिकित्सा का बहुत पहले आविर्भाव हो चुका था पर हिंदुस्थान में प्राकृतिक चिकित्सा कूने की पुस्तक न्यू साइन्स आफ हीलिंग के साथ ही आई। कूने की इस पुस्तक का ही रोगों की नई चिकित्सा भावात्मक अनुवाद है पृष्ठ २६०, बढ़िया छपाई मू. २.००

प्राकृतिक जीवन की ओर–मिट्टी, पानी, धूप, हवा, और भोजन की सहायता से नये पुराने सब रोगों को दूर करने वाली दवा स्वास्थ्य बढ़िया बनाने की विधि सिखाने वाली जर्मन पुस्तिका का अनुवाद मू. २.५०

जीने की कला—यह पुस्तक आपका मानसिक बल बढ़ायेगी, चिन्ताओं से मुक्त करेगी तथा आपके सामने वे सारे रहस्य खोलकर रख देगी जिसके कारण मनुष्य स्वस्थ बनता है। मू. १.२५

Scanned with CamScanner

स्वास्थ्य कैसे पाया ?–इस पुस्तक में स्वास्थ्य को उन्नत बनाने और लोगों की रोगों से मुक्ति पाने की आत्म कथायें पढ़ स्वस्थ रहने का सही तरीका जानें। मू. १.५०

उपवास के लाभ–उपवास की महिमा उपवास करने की विधि और रोगों के निवारण में उपवास का स्थान बताने वाली पुस्तक मू. १.५०

उठो ?–इस पुस्तक को पढ़ें और दुख, परेशानी और मुसीबतों से छुटकारा पाकर जीवन सरल बनायें मू १.००

आदर्श आहार–भोजन से स्वास्थ्य का क्या सम्बन्ध है और भोजन द्वारा रोग का निवारण कैसे किया जा सकता है। बताने वाला एक ज्ञानकोष मू. १.००

आहार चिकित्सा–आहार द्वारा रोग निवारण की शास्त्रीय विधि इस पुस्तक में सरल भाषा में समझाई है। इसके लेखक श्री विट्ठलदास मोदी हैं। मू. १.५०

सर्दी जुकाम खांसी-इन रोगों के कारण, उनको दूर करने की सरल घरेलू विधि, उनसे बचने का रास्ता बताने वाली एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक। मू. ०.७५

योगासन—लेखक आत्मानन्द। योगासन हिन्दुस्तान के ऋषियों द्वारा संपादित प्राचीनतम प्रणाली है। योगासन की विधियां और योगासनों द्वारा रोग-निवारण की कला की जानकारी प्राप्त कीजिये। मू० केवल २.००

दुग्धकल्प—दूध में क्या गुण हैं ? इससे इलाज किस प्रकार किया जाता है ? दूध से बनी विभिन्न वस्तुओं का हमारे स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है आदि वर्णन इस पुस्तक में पढ़िये। मू. १.००

स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियां (चतुर्थ संस्करण)—शाक तरकारियां जो हम रोजाना खाते हैं इनका मनुष्य के स्वास्थ्य और सौन्दर्य से क्या सम्बन्ध है, कौन-कौन सी शाक तरकारियां कब और कैसे खानी चाहिए आदि सभी बातें इस छोटी सी पुस्तक में हैं। मू. २.००

स्वास्थ्य और जल चिकित्सा (छठा संस्करण)—लेखक केदारनाथ गुप्ता एम. ए.। इसमें जल चिकित्सा के सारे सिद्धान्तों का बड़ी सरल भाषा में प्रतिपादन किया गया है। पानी के द्वारा समस्त रोगों की चिकित्सा कैसे करें ? यह इस पुस्तक में पढ़िये। मू. २.००

दैनन्दिनी रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा—लेखक कुलरंजन मुकर्जी। इस पुस्तक में ज्वर, प्रतिश्याय, अतिसार, प्रवाहिका, फोड़ा, फुंसी, घाव, सिर दर्द, हैजा, पेचिश आदि रोगों का प्राकृतिक चिकित्सा दी गई है। मू. ४.०० मात्र

पुराने रोगों की गृह-चिकित्सा—लेखक डा० कुल-रंजन मुकर्जी। इस पुस्तक में अजीर्ण, संग्रहणी, श्वास, यक्ष्मा, कैंसर, मधुमेह, दाद, उन्माद, रक्तचाप, अश्मरी, नपुंसकता, अन्त्रवृद्धि आदि सभी जीर्ण रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा दी गई है। ४.००

प्राकृतिक शिशु चिकित्सा—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा। शिशुओं के विभिन्न रोग किस कारण से होते हैं? तथा उनका नाम मात्र व्यय में किस प्रकार उपचार किया जाय ? बच्चों को निरोग रखने के उपाय एवं विविध प्रकार के स्नान इस पुस्तक में हैं। मू. २.००

देहाती प्राकृतिक चिकित्सा—इस पुस्तक में नेत्र, कर्ण, नासिका, दन्तरोग, मुख तथा कंठ रोग, श्वास, कास अजीर्ण, विशूचिका, प्रवाहिका, अतिसार, संग्रहणी, वृक्क-शूल, मूत्रावरोध, दाद, श्वित्र, नपुंसकता आदि रोगों के उपयोगी प्रयोग दिये गये हैं। मू. सजिल्द ५.००

आकृति निदान—आकृति निदान का मूल रूप जर्मनी भाषा की एक पुस्तक है जिसका कि अनुवाद किया गया है। अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। अन्त में १२ फोटो चित्रों द्वारा विभिन्न आकृतियों का ज्ञान कराया गया है। बादीपन का इलाज बहुत विस्तृत रूप से दिया गया है। सजिल्द मू. २.५०

जल चिकित्सा–श्री राखालचन्द्र जी चट्टोपाध्याय बी. एल.। अनुवादक पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा। इस पुस्तक के तीन भाग हैं। तृतीय भाग में सब तरह के स्त्री रोगों का ज्ञान दिया गया है। मू. प्रथम भाग व द्वितीय भाग समाप्त, तृतीय भाग १.५०

तन्दुरुस्त कैसे रहें ?–बर्नर मैकफंडन–इसमें अनेकों चित्र देते हुए व्यायामों का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है। मू. ३.००

स्वास्थ्य-साधन श्री रामदास गौड़ सजिल्द ४.००
दमा-श्वासखांसी का इलाज डा.युगलकिशोरचौधरी ०.५०
नवीन चिकित्सा पद्धति " " १.२५
सूर्योदय " " १.००
व्यायाम काया कल्प " " २.००
चिकित्सा सागर " " ०.७०
मैं निरोग हूं या रोगी " " ०.६२
कपड़ा और तन्दुरुस्ती " " ०.५६

Scanned with CamScanner

१—निदान नवनीत चार्टस तथा निदान विश्वकोष

यह "निदान विश्वकोष" कई सौ चार्टों और चित्रों से भरपूर है जिनकी सहायता से रोग तुरन्त समझ में आ जाता है। इसमें हर रोग का सही निदान, रोग का परिचय, रोग के कारण, रोग के लक्षण, रोग की पहिचान, रोग के परिणाम, आजकल की निदान करने की नई-नई विधियां तथा निदान सम्बन्धी अब तक के हुए नये से नये आविष्कारों और खोजों का खुलासा तथा सचित्र वर्णन किया गया है। प्राचीन ऋषियों, हकीमों तथा डाक्टरों के विचारों का अलग वर्णन बिल्कुल सरल हिन्दी में नये ढंग से दिया है। इस पुस्तक की सहायता से आप गुप्त रोगों, बालकों के रोग, स्त्री रोगों, नेत्र रोगों, चर्म रोगों, उदर रोगों का निदान सही तौर पर करके उनका सफल इलाज सरलतापूर्वक कर सकते हैं। मूल्य ८.०० पोस्ट व्यय प्रथक्

२—एलोपैथिक पेटेन्ट चिकित्सानवनीत(चार्ट्स)

१९६९ का नया संस्करण

'एलोपैथिक विश्वकोष' के नाम से भी प्रसिद्ध इस पुस्तक को आसान हिन्दी, बिल्कुल नई शैली से चार्टों के रूप में लिखा गया है जिससे कि यह जल्दी समझ में आ जाता है। हजारों पेटेण्ट औषधियों एवं नवीनतम इंजेक्शनों को लगभग ८०० चार्टों में दिल खोलकर समझाया गया है। इन चार्टों की सहायता से सब प्रकार के रोगों का सफल इलाज किया जा सकता है।

इसके १९६९ के नये संस्करण में आठ सौ के लगभग चार्ट और चित्र हैं अनेकों एलोपैथिक तिला एवं परिवार नियोजन करने की पेटेण्ट दवाओं का पूरा हाल दिया है। यह पुस्तक प्रत्येक वैद्य, हकीम डाक्टर के लिए प्रतिदिन काम में आने वाली वस्तुओं में से एक है।

मूल्य ८.०० मात्र पोस्ट व्यय प्रथक्

३—अनुभव के मोती (डाक्टरों के अनुभव तथा अनुभव विश्वकोष)

इस "अनुभव विश्वकोष" में सैकड़ों सुप्रसिद्ध डाक्टरों के जीवन भर के कई हजार अनुभवी प्रयोग दिये गये हैं। पहले प्रत्येक रोग का परिचय, कारण और लक्षण आदि चार्टों के रूप में देकर तत्पश्चात् अनुभवी डाक्टरों से सरल से सरल योग दिये गये हैं। मरहम पट्टी करने के कुछ आवश्यक और अत्युपयोगी लो..न, पाउडर मरहमें, आँख नाक, कान के ड्राप्स तथा लोशन, लेप, कान, दाँतों की पेटेंट औषधियों के गुप्त योगों का पूरा-पूरा हाल बनाने की विधि, सेवन विधि तथा उपयोग खूब समझाकर लिखे गए हैं। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। कई सौ चार्टों तथा चित्रों से सजी अनमोल पुस्तक का मूल्य—केवल ६.०० रु०, पोस्ट व्यय प्रथक्

मिलने का पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़), उत्तर प्रदेश

Scanned with CamScanner

शारीरिक चित्र

ये चित्र अनेक रंगों में आफसैट प्रेस से बहुत ही आकर्षक तैयार कराये गये हैं। इन चित्रों का साइज एक
समान, २० इन्च चौड़ाई तथा ३० इन्च लम्बाई है। ऊपर नीचे लकड़ी लगी है, कपड़े पर मढ़े हैं तथा
चिकित्सालय में टांगने पर उसकी शोभा बढ़ाने वाले हैं। सभी विवरण हिन्दी में लिखा गया है।
नं० १–अस्थिपिंजर—इस चित्र में सिर से लेकर पैर तक की सभी अस्थियों को बड़े सुन्दर ढंग से दर्शाया
गया है। हाथ की, अंगुलियों की, पैर, रीढ़ की, छाती की, सभी अस्थियां स्पष्ट समझ सकते हैं। मू० ५.०० रु.
नं० २–रक्तपरिभ्रमण—इसमें शुद्ध अशुद्ध रक्त की धमनी एवं शिरायें अपने प्राकृतिक रंगों में दर्शाई गई हैं।
भ्रूण में रक्तपरिभ्रमण का पृथक् चित्रण किया गया है एक हाथ और एक पैर में शिरायें दर्शाई गई हैं। मू० ५.०० रु०
नं० ३–वात नाड़ी संस्थान—इस चित्र में सम्पूर्ण वात-नाड़ी मण्डल (Nervous System) का सुन्दर व स्पष्ट
चित्रण किया गया है। ऊर्ध्वाङ्ग वातनाड़ी तथा सुषुम्ना और मस्तिष्क सम्बन्ध का चित्रण प्रथक् किया गया है।
चित्र अपने ढंग का निराला है। मू० ५.०० रु०
नं० ४–नेत्र रचना एवं दृष्टि विकृति—इस चित्र में प्रथक्-प्रथक् ६ चित्र हैं। १—दक्षिण चक्षु—इसमें चक्षु
के बाह्य अवयव दर्शाये गये हैं। २—पटलों और कोष्ठों को दिखाने के लिए चक्षु का क्षितिज काट। ३—चक्षु से
सम्बन्धित नाड़ी। ४—नेत्र चालिनी पेशियां। ५—दृष्टिभेद (दर्शनसामर्थ्य)। ६—साधारण स्वस्थ नेत्र एवं दृष्टि
विकृति। इन चित्रों से नेत्र विषयक सम्पूर्ण विवरण समझ में आयेगा। मू० ५.०० रु०

चारों चित्र एक साथ मंगाने पर केवल १६.०० रु०

नोट—सादा बिना कपड़ा लकड़ी लगे चित्र शीशा में मढ़ने के लिये १ चित्र ४.००। चारों चित्र मंगाने पर १२.०० रु०

वैद्यों के लिये आवश्यक

रोगी रजिस्टर—हर वैद्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने रोगियों का विवरण नियमित रूप से लिखे। यह चिकित्सक को अपनी सुविधा तथा कानूनी दृष्टि दोनों प्रकार से आवश्यक है। २००, ४००, ६०० पृष्ठों के ग्लेज कागज के सजिल्द 'रोगी रजिस्टर' हमने तैयार किये हैं जिनमें आवश्यक कालम दिए हैं। मूल्य २०० पृष्ठों का ३.५०, ४०० पृष्ठों का ६.५०, ६०० पृष्ठों का ६.५०

रोगी प्रमाणपत्रपुस्तिका—रोगियों को अवकाश प्राप्ति के लिए प्रमाणपत्र देने के फार्म ग्लेज कागज पर दो रंगों में तैयार किए हैं। ५० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.०० मात्र। अंग्रेजी अथवा हिन्दी में बढ़िया कागज पर बड़े साइज में दो रंगों में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.२५

स्वास्थ्य प्रमाणपत्र पुस्तिका—सरकारी कर्मचारी बीमार होने के कारण अवकाश लेते हैं। स्वस्थ होने पर अपने कार्य पर पहुंचने पर उन्हें 'वे स्वस्थ हैं' इस विषय का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना होता है। वैद्य इस पुस्तिका को मंगाकर स्वस्थ प्रमाणपत्र आसानी से दे सकेंगे। ५० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.००। अंग्रेजी अथवा हिन्दी में बढ़िया कागज पर बड़े साइज में दो रंगों में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १ २५।

रोगी-व्यवस्थापत्र—रोगी के लक्षण, तारीख, औषधि आदि इन फार्मों पर लिखकर रोगी को दे दीजिये। वे रोगी रोजाना या जब औषधि लेने आवेंगे तो आपको यह फार्म दिखा देंगे। इससे, उसका पहला पूरा हाल आपके सामने आ जायेगा। बड़े काम के फार्म हैं। साइज २०×३०=३२ पेजी ३७ पैसा के १००

आघात-प्रमाणपत्र—चोट लग जाने पर चिकित्सक को प्रमाणपत्र देना होता है। इस फार्म पर आप यह प्रमाणपत्र सुगमता से दे सकेंगे। फुलस्केप साइज के २५ प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.००।

तापमापक तालिका (टेम्परेचर चार्ट)—इससे रोगियों का तापमान अंकित करने में बड़ी सुविधा रहती है। इस चार्ट पर दिन में चार समय का तापमान १२ दिन तक अंकित किया जा सकेगा। अन्य निदान विषयक आंकड़े भी लिखे जा सकते हैं। मूल्य २५ चार्ट का १.०० मात्र।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

Scanned with CamScanner

बिजली की मशीन, शारीरिक चित्रावली, पत्थर के खरल
चिकित्सकोपयोगी उपकरणों आदि के लिए

दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़

की सेवायें स्वीकार करें।

विवरण एवं मूल्यादि यहां देखें

चिकित्सोपयोगी नवीन उपकरण

एक सफल चिकित्सक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह रोगी का सही निदान करे तथा उसकी चिकित्सा में औषधि-प्रयोग के साथ आधुनिकतम यन्त्र-शस्त्रों का प्रयोग भी आवश्यकतानुसार करे। इन आधुनिक यन्त्र शस्त्रों के प्रयोग से आपको तो अपनी चिकित्सा में सफलता मिलती ही है साथ ही रोगी पर भी आपके प्रति बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ता है। हमने अपने स्टोर्स में नवीन-नवीन यंत्रशस्त्रों का बिक्रयार्थ विशाल संग्रह किया है। चिकित्सकों को चाहिए कि वे आवश्यकतानुसार इन वस्तुओं को मंगाकर रखें तथा अपने चिकित्सा-कार्य में सफलता एवं यश प्राप्त करें।

डाइग्नोस्टिक सैट—इस सैट द्वारा नाक, कान तथा गले को अन्दर से देखते हैं। इसमें एक टार्च होती है जिसमें २ सैल डाले जाते हैं। उस टार्च के ऊपर कान देखने का आला, नासिका प्रेक्षण यन्त्र तथा गले व जबान देखने की जीभी तीनों में से कोई सा एक फिट हो जाता है। इसमें प्रकाश की व्यवस्था होने से बहुत सुविधा रहती है। साथ ही रोगी पर प्रभाव भी पड़ता है। इसका प्रत्येक चिकित्सक के पास होना अत्यन्त आवश्यक है। सैल सहित पूरे सैट का मूल्य ४०.००

चिपकने वाली पट्टी (Adhesive Plaster)—पीठ, पेट, छाती या किसी अन्य ऐसे स्थान पर घाव हो जहां पर पट्टी बांधने में असुविधा हो तो आप इसका प्रयोग करें। यह उसी स्थान पर काटकर चिपका दी जाती है। मूल्य (१ इञ्च × ५ गज) २.००

आमाशय प्रक्षालिनी नलिका (Stomach wash-tube)—यह प्रत्येक चिकित्सक के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। किसी विष के खा लेने पर तुरन्त ही आमाशय प्रक्षालन की आवश्यकता होती है जो कि इसी नलिका की सहायता से किया जाता है। मूल्य-७.००

नमक का पानी चढ़ाने का यन्त्र (Saline Appatus)—हैजा में नमक का पानी चढ़ाना चिकित्सक के लिए अत्यन्त आवश्यक है जो कि इसी यन्त्र की सहायता से चढ़ाया जाता है। मूल्य १२.००

आंख धोने का ग्लास—किसी वस्तु का कण या उड़ता हुआ कोई छोटा सा कीड़ा आंख में पड़ जाने पर निकलना कठिन हो जाता है और वह बड़ा कष्ट देता है। इस ग्लास में जल भरकर आंख में लगा देने पर आसानी से निकल जाता है। मू १.००

शर्करामापक यन्त्र—मधुमेह रोग में चिकित्सक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे मूत्र में जाने वाली शर्करा की प्रतिशत मात्रा ज्ञात हो। बिना प्रतिशत मात्रा ज्ञात हुए अनुमान द्वारा Insuline का प्रयोग कभी कभी रोगी को घातक सिद्ध होता है। रोगी स्वास्थ्यलाभ कर रहा है या नहीं यह भी आप इसी यन्त्र द्वारा निश्चयपूर्वक कह सकते हैं। मूल्य केवल ५.००

रक्तचापमापक यन्त्र—अनेक रोगों में रोगी का रक्तचाप (Blood pressure) जानना आवश्यक है। शल्य कर्म के पश्चात् तो इसका प्रयोग रोगी की स्थिति ज्ञात रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार के आधुनिक यन्त्रों का प्रभाव भी रोगी पर बहुत अच्छा

Scanned with CamScanner

होता है तथा इससे चिकित्सकों को अपनी चिकित्सा में सुविधा भी रहती है। प्रत्येक वैद्य को यह यन्त्र अवश्य मंगाकर रखना चाहिये। मूल्य १२५.००

स्टेथिस्कोप (वक्ष परीक्षा) यन्त्र—इस यन्त्र से सुविधा रहती है। साथ ही आजकल के जमाने में चिकित्सक का सम्मान भी इसी में है कि वे इस प्रकार के यन्त्रों को व्यवहार में लाते हुये रोगियों पर अपनी धाक जमावें। मूल्य भारतीय उत्तम १०.००, एक चैस्ट पीस वाला जापानी बढ़िया सर्वोत्तम ४०.००, केवल चैस्ट पीस (भारतीय) ४.००

स्टेथिस्कोप रखने का थैला—स्टेथिस्कोप की रबड़ (नली) नमी आदि से गल जाती हैं। हमने बढ़िया चमड़ के स्टेथिस्कोप रखने के बहुत सुन्दर बेग बनवाये हैं। इसमें एक ओर आप स्टेस्कोप रख सकते हैं तथा बाहर नाम का कार्ड लगाने का स्थान है, हाथ में लटकाया जा सकता है। दो जेबों का मूल्य ७.००

जिप (जंजीर) लगा एक जेब का चमड़े का साधारण (इसमें नाम का कार्ड नहीं लगाया जा सकता है, एक जेब है) मूल्य ५.५०

मोतीझला देखने का शीशा—मोतीझला (Typhold) के दाने बहुत सूक्ष्म होने के कारण देखने में नहीं आते इस लिये कभी-कभी निदान करने में बड़ी भूल होजाती है। इस शीशा के द्वारा वे दाने बड़े-बड़े दीख पड़ते हैं तथा आसानी से पहिचान सकते हैं। प्लास्टिक का हैंडिलछोटा मूल्य २.५०, बढ़िया बड़ा ३.००; धातु का हैंडिल सर्वोत्तम ४.२५, बड़ा ५.५०

मलहम मिलाने की छुरी—स्पेचुला (Spetula) लकड़ी का हैंडिल मूल्य १.२५, धातु का हैंडिल १.७५

मलहम मिलाने की प्लेट (चीनी की)—साइज४×४ इंच मूल्य १.००,६×६ इंच १.२५, ८×८ इंच ३.५०

संतति निरोध (Birth Control) के लिये—पुरुषों को फ्रेंच लैंदर साधारण ०.५० (१ दर्जन ५.००) बढ़िया ०.७५ (१ दर्जन ७.५०), क्रोकोडायल फैंचलैंदर सर्वोत्तम एक ओर चिकना तथा दूसरी ओर खुरदरा १.०० (१ दर्जन १०.००)

स्त्रियों को—चैकपैसरी जापानी ०.८७ (१ दर्जन ८.५०), डाइफ्राम (डच) पैसरी बढ़िया २.५० (१ दर्जन २५.००)

नोट—उपर्युक्त कोई भी सामान एक दर्जन से कम मंगाने पर एक नग का जो मूल्य लिखा है वह ही लगाया जायगा, दर्जन वाला मूल्य नहीं। डाइफ्राम (डच) पैसरी ६ नग मंगाने पर १२.५० लगाये जायेंगे।

रिंगपैसरी रबड़ की—१ पैसरी का मूल्य ०.७५

होज पैसरी (Hodge Passery)-मूल्य ०.८७

किडनी ट्रे (kidney tray)—कान धोने के समय लगाने के लिये ६ इंची २.२५, ८ इञ्ची २.७५, १० इंची ३.२५, ८ इंची नाइलोन की (न टूटने वाली सुन्दर) ३.२५

सस्पैन्सरी बेन्डेज—यह बढ़े हुये अण्डकोषों को संभालने के काम आती है। यह पेटी (Belt) की भांति कमर में कस जाती है तथा एक जाली का बना थैला इस प्रकार लगा रहता है कि अण्डकोष उसमें रख जाते हैं। लंगोट बांधने से अण्डकोष लटके नहीं रहते लेकिन उन पर कसाव पड़ता है जो कि आवांछनीय है लेकिन इस बेन्डेज में ऐसा नहीं होता है। मूल्य १.५०

हीमोग्लोबिन स्केलबुक (Haemoglobin scale-book)—बिना किसी यन्त्र की सहायता के हीमोग्लोबिन की प्रतिशत मात्रा ज्ञात करें। मूल्य केवल २.००

पैन टार्च—यह टार्च जेब में पेन की तरह लगाई जाती है। इसमें बहुत पतले सैल पड़ते हैं। चिकित्सकों के लिये गले, नाक आदि की परीक्षा करने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह टार्च मोटे पैन के बराबर बड़ी होती है मूल्य सैल सहित केवल १०.००

इसी टार्च पर गले, जबान देखने, कान तथा नाक देखने की कांच की ठोस नली फिट हो जाती है जिनसे इन अंगों को आसानी से देखा जा सकता है। कपड़ा मढ़े एक बक्स में रखे हुये पूरे सैट का मूल्य केवल २५.००

थर्मामीटर जापानी—२.७५, भारतीय १.७५

थर्मामीटर केस—धातु के निकिल किये क्लिप सहित २.००

आटोमाइजर (Automizer)—गले में, नाक, कान के अन्दर तक कोई दवा पहुंचानी है तो वह दवा इस यन्त्र में भरकर पहुंचायी जाती है। बहुत से चिकित्सक कागज की बत्ती बनाकर उसमें औषधि को रखकर फूंक

Scanned with CamScanner

मारकर यह कार्य करते हैं। लेकिन इस प्रकार से ठीक प्रकार से औषधि नहीं पहुंचती मूल्य ८.५०

धमनी संदंश [Artery Forceps]—शल्य कर्म करते समय रक्तस्राव करती हुई धमनी को इससे पकड़कर रक्त स्राव रोका जाता है। मूल्य ५ इंची ४.००, ६ इंची ५.०० स्टेनलैस स्टील की ५ इन्ची ६.२५, ६ इन्ची ७.००

सूचिका संदंश [Needle Holder]—शल्य कर्म में मांस तन्तु आदि एवं त्वचा को सीते समय सुई को इसी से पकड़ा जाता है। मूल्य ८.००, कैंची की तरह का ४.५०

सूचिका [Needles]—सींवन कर्म के लिये ६ सुई का पैकिट [इंग्लैंड की] ४.००

शीशे पर लिखने की पेन्सिल—इस पैंसिल से आप शीशा, प्लास्टिक तथा धातु के बर्तन आदि पर लिख सकते हैं। इसका उपयोग स्लाइड पर लिखने के, या अन्य कार्यों में भी किया जाता है। साधारण पैंसिल पेन से आप शीशे आदि पर नहीं लिख सकते। मूल्य ०.७५

मसूढ़े चीरने का चाकू–सीधा १.३७, फोल्डिंग २.२५

इञ्जेक्शन सिरिंज

सम्पूर्ण कांच का–२ सी.सी. की २.७५, ५ सी.सी.की ४.००, १० सी. सी. की ६.००, २० सी.सी. की १०.००, ३० सी. सी. की १२.००, ५० सी. सी. की २८.००

ल्यूर लाक—२ सी. सी. की ६.००, ५ सी. सी. की ६.००, १० सी. सी. की १२.००।

ल्यूर लाक जापानी–२ सी. सी. की १०.००, ५ सी. सी. की १२.००, १० सी. सी. की १५.००, २० सी. सी. की २०.००, ३० सी. सी. की २८.००, ५० सी.सी. की ३२.००।

रिकार्ड सिरिंज—२ सी. सी. की ११.००, ५ सी. सी. की १५.००।

नाइलौन की—२ सी. सी. की २.७५, ५ सी. सी.की ४.००, १० सी. सी. की ५.५०

इंजेक्शन की सुई [नीडिल]—१ नग ०.७५

सिरिंज केस निकिल के—सिरिंज सुरक्षित रखने के लिए १ केस २ सी. सी. की सिरिंज के लिए २.७५, ५ सी. सी. की सिरिंज के लिए ३.५०, १० सी. सी. की सिरिंज के लिए ५.५०, २० सी. सी. की सिरिंज के लिए ११.०० तथा ३० एवं ५० सी. सी. की सिरिंज के लिए १६.५०

परवाल उखाड़ने की चीमटी (Cilia Forceps)—परवाल [Cilia] साधारण चीमटी की पकड़ में यह बाल नहीं आते। उपरोक्त चीमटी विशेषतः परवाल उखाड़ने को ही बनाई है। मूल्य २.५०

एनीमा सिरिंज [बस्ति यंत्र]—इस यंत्र से जल या औषधि-द्रव्य गुदा में आसानी से चढ़ाया जा सकता है। मूल्य रबड़ का भारतीय उत्तम ५.००

घाव में डालने की सलाई [Probe]–घाव की गहराई, उसकी दिशा जानने तथा किसी नाड़ी व्रण में अन्दर गौज भरने के लिये इसका पास में होना अत्यन्त आवश्यक है। मूल्य ०.३५

दवा नापने का ग्लास (Meassuring Glass)–मूल्य २ ड्राम का (बून्द नापने के काम आता है) ०.७०, १ औंस का ०.९०, २ औंस का १.००, ४ औंस का १.२५

गरम पानी की थैली—ज्वर, पीड़ा, शोथ या अन्य आवश्यक स्थानों पर इस थैली में गरम पानी भरकर सुगमता से सिकाई की जा सकती है। मूल्य ५.००

बरफ की थैली–तेज बुखार, प्रलापावस्था, शिर की पीड़ा या अन्य व्याधियों में चिकित्सक सिरपर बरफ रखवाते हैं। इस थैली में बरफ भरकर रखने से सुविधा रहती है, रोगी को इसकी ठंडक पहुंचती है किन्तु उससे वह भीगता नहीं है। मूल्य २.५०

गले व जबान देखने की जीभी-(Tongue Depressure)–गला देखने के लिए जब रोगी मुंह खोलता है तब जीभ (जिह्वा) का उठाव गले को ढंक लेता है और गले में क्या बाधा है चिकित्सक नहीं देख पाता। इस यन्त्र से जीभ दबाकर देखने से गला तथा अन्दर की जीभ स्पष्ट दीखती है। मूल्य साधारण सीधी १.२५, फोल्डिङ्ग २.००

कान धोने की पिचकारी–धातु की १ औंस ६.५०, २ औंस की ७.५०, ४ औंस १०.००

विश्चूरी–इसका फलक पतला तथा तिरछा होता है। इसके द्वारा भेदन कार्य किया जाता है। सीधी का मूल्य १.२५, फोल्डिङ्ग २.२५

चीमटी—चीमटी ४ इन्ची ०.८७, ५ इन्ची १.००

दांतों में दवा लगाने की चीमटी—२.००

चाकू—चाकू सीधा ५इन्ची १.२५, फोल्डिङ्ग २.२५

Scanned with CamScanner

आपरेशन करने का चाकू–इसमें हैंडिल प्रथक होता है तथा काटने वाला ब्लेड प्रथक होता है जो कि खराब होने पर बदला जा सकता है । मूल्य १ ब्लेड सहित ३.५०, ६ ब्लेडों सहित ५.५०

दांत उखाड़ने का जमूड़ा (Tooth forceps universal)–इससे दांत मजबूती से पकड़कर उखाड़ा जा सकता है । मूल्व ६.५०

आंख में दवा डालने की पिचकारी–१ दर्जन ०.४०

ग्लेसरीन की पिचकारी (प्लास्टिक की)–गुदा में ग्लेसरीन चढ़ाने के लिए प्लास्टिक की उत्तम क्वालिटी की पिचकारी । मूल्य १ औंस २.५०, २ औंस ४.००

कान से दाना निकालने का यन्त्र—कान में यदि कोई अनाज का दाना आदि पड़ गया हो तो उसे किसी साधारण चीमटी से निकालने का प्रयत्न कदापि न करें नहीं तो वह आगे सरक जायगा। यह यन्त्र दाने आदि को सुगमता के खींचकर लाता है । मूल्य २.००

आमाशय में दूध चढ़ाने की नली–जब रोगी की अवस्था इस प्रकार की हो कि वह मुंह द्वारा अपना आहार ग्रहण न कर सके यथा बेहोशी में, पक्षाघात में, किसी दौरे आदि में तो आप इस नली द्वारा दूध या अन्य पोष्य द्रव्य पदार्थ आमाशय में पहुंचा सकते हैं । ३.००

तीन मार्ग वाला यन्त्र (Three way Canula)—किसी रोगी को द्रव पदार्थ अधिक मात्रा में चढ़ाना है तथा आपके पास सिरिंज उससे छोटी है तो आप इसका प्रयोग करें । मू० ८.००

कान देखने का आला—कान में फुन्सी है, सूजन है या किसी अनाज का दाना पड़ गया है और वह फूलकर कष्ट दे रहा है तो उसे देखना कठिन हो जाता है । इस यन्त्र (आले) से कान के अन्दर का दृश्य स्पष्ट दीख पड़ता है । कपड़े से मढ़े एक सुन्दर लकड़ी के डिब्बे में रखा दो अतिरिक्त ईअरपीस सहित । मू.१३.००

स्तनों से दूध निकालने का यन्त्र–स्त्री के स्तन में पकाव या फोड़ा होजाने पर अथवा नवजात शिशु की मृत्यु हो जाने पर स्तनों में भरा हुआ दूध बड़ा परेशान करता है । इस यन्त्र द्वारा आसानी से दूध निकाला जाता है । मूल्य २.२५

टूर्नीकिट—नस का इंजेक्शन लगाने के लिए आवश्यक मूल्य ०.७५

गुदा परीक्षण यन्त्र (Proctoscope)—गुदा के अन्दर की परीक्षा करने के लिए यह एक आवश्यक यन्त्र है । अर्श अथवा अन्य गुद-रोगों के शल्य कर्म, क्षार कर्म, अग्निकर्म में इसका होना अत्यन्त आवश्यक है । इससे गुदा के अन्दर की स्थिति देखी जाती है । मू. १२.५०

टार्च के हैंडिल पर लगे प्रकाश की बहुत उत्तम व्यवस्थायुक्त सैल सहित सुन्दर बक्से में रखा मू. ७५.००

मूत्र करने की नली (कैथीटर)–मूल्य रबड़ का ०.७५, स्त्रियों के लिए धातु का १.२५, पुरुषों के लिये धातु का २.७५

जलोदर में उदर से पानी निकालने का यंत्र–जलोदर रोग में उदर गह्वर से एवं अंडवृद्धि में अंडकोषों से पानी निकालने के लिये इस यन्त्र का प्रयोग होता है । मू० ३.७५

आंख टैस्ट करने का चार्ट–साधारण तौर से आप इन चार्टों को रोगी से पढ़वा कर दृष्टि-परीक्षा कर सकते हैं । मूल्य १.०० प्रति चार्ट

मलहम लगाने का यन्त्र (Ointment Introducer)–अर्श रोगी को गुदा में मलहम लगाने के लिए उपयोगी । मूल्य २.५०

आपेक्षिक घनत्वमापक यन्त्र (Urinometer)–मूत्र अथवा अन्य द्रव का आपेक्षिक घनत्व इस यन्त्र द्वारा मालूम किया जाता है । मू. १.५०, बड़ा (१००० से २००० तक चिह्न वाला) २.००

रबड़ के दस्ताने—चीड़-फाड़ करते समय संक्रमण से रोगी को और अपने को बचाने के लिए चिकित्सक इन दस्तानों को हाथ में पहनते हैं । मूल्य १ जोड़ी ३.५०

कैंची—५इंची साधारण २.००, मुड़ी हुई ४ इन्ची २.१२,५ इन्ची २.२५ कैंची, एक ओर को मुड़ी हुई ४ इन्ची २.५,५ इन्ची ३.००, कैंची सीधी ४ इन्ची बढ़िया २.००

कांटे (Scales)–अंग्रेजी बैलैंस की तरह के कीमती दवाओं को सही व आसानी से तौलने के लिये व्यवहार में लाने चाहिए । निकिल पालिश, लकड़ी के बक्स के अन्दर रखे हैं मूल्य बांटों सहित पीतल का निकिल किया १५.००

डूस–इससे फोड़ा आदि धोने में बड़ी सुविधा रहती है । इससे एनीमा लगाया जाता है । मू० रबड़ की टोंटनी

Scanned with CamScanner

आदि से पूर्ण २ पिंट का सुन्दर पात्र रबड़ टोंटनी सहित ७.५०

स्प्रिट लैम्प—थोड़ी दवा गरम करनी हो अथवा सूखी दवा से इन्जेक्शन के लिये दवा तैयार करनी हो तब इस लैम्प की सहायता लेनी पड़ती है। मूल्य धातु का दो औंस का ४.०० ४ औंस का ४.५०
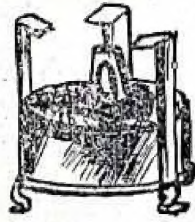
मुख विस्फारक (Mouth gag)—मुख के अन्दर परीक्षा करते समय या कोई दवा लगाते समय या कोई शल्य कर्म करते समय, किसी विष के खा लेने पर आमाशय प्रक्षालनी-नलिका के प्रयोग में रोगी का मुख इस से ही खुला रखा जाता है। मूल्य १०.००

दन्त उन्नामक (Dental Elivetor)–दांत यदि कम हिलता है तथा किसी रोग के कारण उखाड़ा जाना आवश्यक है तो इस यन्त्र की सहायता से दांत को उकसाया जाता है। वैसे तो बाजार में अलग-अलग दांतों के लिये प्रथक्-प्रथक् उन्नामक आते हैं लेकिन हमने इस प्रकार का उन्नामक तैयार करवाया है जो कि प्रत्येक दांत के लिये एक यही काम करेगा। मूल्य ६.००

नासिका प्रेक्षण यन्त्र—नाक में सूजन है, फुन्सी है या किसी और कारण से कष्ट है तो उसे ठीक प्रकार से देखा नहीं जा सकता। यह यन्त्र नाक में डालकर चौड़ा दिया जाता है और फिर आप नाक के अन्दर के सभी अवयव स्पष्टत: देख सकते हैं। मू. ५.००

अंगुली के रबड़ के दस्ताने (Finger stalls)–यह अंगुली पर चढ़ा लिया जाता है तथा फिर योनि, गुदा आदि अंगों की परीक्षा की जाती है। यह सस्ते रहते हैं। मू. ३० न/पै., १ दर्जन ३.००

मूत्र पात्र (Urinal pot)–जब रोगी की स्थिति इस प्रकार की होती है कि वह बिस्तर से न उठ सके तो उसे पेशाब विस्तर पर इसी पात्र में करना पड़ता है। तामचीनी का मूल्य ६.२५, नाइलोन का बढ़िया ७.५०

कपिंग ग्लास—उदरशूल तथा अन्य अनेक रोगों में इन ग्लासों का प्रयोग किया जाता है। तीन ग्लासों के १ सैट का मूल्य ४.००

सुरमा लगाने की सलाई—(कांच की) १ दर्जन २० न. पै., १ ग्रोस २.५०

डाक्टर्स इमर्जेंसी वैग—इसमें आवश्यकता के समय चिकित्सकर अपना आवश्यक सामान रखकर रोगी के परीक्षार्थ जा सकता है। मूल्य १० इंची सम्पूर्ण चमड़े का जिप (जंजीर) लगा सुन्दर १६.००

थूकने का पात्र —तामचीनी (इनामिल) का पात्र ४.००, प्लास्टिक का सुन्दर ५.००

आई शैड (Eye shade) —एक आंख पर बांधने वाले का मू. ०.३७, दोनों आंखों पर बांधने वाले का मू. ०.५०

असली मोती चूरा

मोती बींधते समय जो चूरा निकलता है उसे हमने संग्रह कर मंगाया है। मोती की पिष्टी, भस्म बनाने में इससे व्यवहार में लें। आपको किफायत रहेगी। मूल्य १० ग्राम १२.५०

मोती छिलका

सीप के अन्दर मोती के ऊपर एक आवरण रहता है जिसको हटाकर मोती निकाला जाता है। इस आवरण की भस्म पिष्टी बनाकर हमने प्रयोग की है और हमने पाया कि यह मुक्ता भस्म तथा मुक्तापिष्टी से गुणों में किसी प्रकार भी कम नहीं। कतिपय हमारे ग्राहकों ने भी मोती छिलकों का प्रयोग किया है उनकी भी यही राय है अस्तु आप भी इन्हें मंगाकर अवश्य प्रयोग करें।

मूल्य–१० ग्राम—१२.००

असली मोती

इसके साथ ही हमने बिक्रियार्थ मोती भी संग्रह किये हैं। मूल्य १० ग्राम १००.००, बेडौल १० ग्राम ४५.००

–मंगाने का पता–

दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

Scanned with CamScanner

आयुर्वेद की किसी भी औषधि के निर्माण के लि खरलों की आवश्यकता पड़ती है । यह देखा गया कि यदि मुलायम पत्थर वाले खरल में कोई दवा बना जाय तो पत्थर घिसकर औषधि में मिल जाता है जिस कि बुरा प्रभाव होना अवश्यम्भावी है । इस सम्बन्ध में हमारे चिकित्सक बन्धुओं को बड़ी कठिनाई थी । अब हम यह कठिनाई देखते हुये खरल स्वयं बनवाकर बिक्रियार्थ रखने का प्रबन्ध किया है । खरल मुलायम तथा कठिन दो प्रकार के पत्थरों के रखे गये हैं । साधारण मुलायम औषधियां घोंटने के लिये कसौटी पत्थर के खरल उत्तम त सस्ते रहते हैं । मोतिया पत्थर के खरल कड़े तथा साधारण दवा घोटने के लिये उपयोगी हैं । मोतिया से अ कड़ा तथा कम घिसने वाला पत्थर तामड़ा होता है । विविध पिष्टी आदि घोंटने के लिए इनका प्रयोग करें । ताम पत्थर से भी अधिक उत्तम व न घिसने वाला हंसराज पत्थर सर्वोत्तम है ।

हंसराज पत्थर के खरल छः पहलू में दवा अधिक अच्छी तरह तथा अधिक मात्रा में घोंटी जा सकती

मूल्य तथा साइज का विवरण

	हंसराज छःपहलू	हंसराज किश्तीनुमा	तामड़ा	मोतिया	कसौटी
३ इञ्ची	×	×	×	२.५०	१.३०
४ इञ्ची	×	१२.५०	८.२५	३.५०	२.००
५ इञ्ची	×	१४.५०	९.२५	४.००	२.७५
६ इञ्ची	२७.००	१९.५०	१२.००	५.००	४.२५
७ इञ्ची	३५.००	२३.७५	१४.५०	६.००	५.५०
८ इञ्ची	४३.५०	३०.००	१७.५०	८.००	७.२५
९ इञ्ची	४९.५०	३४.००	२०.६२	१०.००	९.००
१० इञ्ची	५७.००	३९.२५	२४.७५	१२.५०	११.५०
११ इञ्ची	६६.००	४५.५०	२८.७५	१६.५०	१५.५०
१२ इञ्ची	७५.००	५१.५०	३३.००	२०.५०	२०.००
१३ इञ्ची	×	५८.००	३७.२५	२६.५०	२८.००
१४ इञ्ची	९६.००	६६.००	४३.५०	३०.५०	३५.००
१५ इञ्ची	×	७८.५०	५१.००	३७.५०	×
१६ इञ्ची	×	९३.००	६०.००	४३.००	×
१७ इञ्ची	×	११३.५०	७०.००	५२.००	×
१८ इञ्ची	×	१३४.००	८२.५०	६२.५०	×
१९ इञ्ची	×	१५७.००	९५.००	७५.००	×
२० इञ्ची	×	१८२.५०	११५.००	९०.००	×

स्टेनलेस स्टील के खरल ३$\frac{3}{4}$ किश्तीनुमा—१२.००, गोल २॥ इञ्ची—१२.००

किस्तीनुमा ७॥ इञ्च लम्बाई ४॥ चौड़ाई तथा ३॥। इञ्च ऊंचाई मूल्य—८०.००

खरलों का आर्डर देते समय अपने पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखें तथा चौथाई रकम म आर्डर से पेशगी अवश्य भेजें । इन भावों पर सैलटैक्स एवं अन्य खर्च प्रथक लगेगा ।

१५ इञ्ची तक के खरल तैयार रहते हैं । इससे बड़े किसी पत्थर के खरल का आर्डर २ मास बाद सप्ला किया जायगा । १५ इञ्ची से बड़े खरल का आर्डर आधा एडवांस मिलने पर ही बनवाया जायगा । पार्सल मालगा या सवारी गाड़ी किससे भेजी जाय अवश्य लिखें ।

दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

Scanned with CamScanner
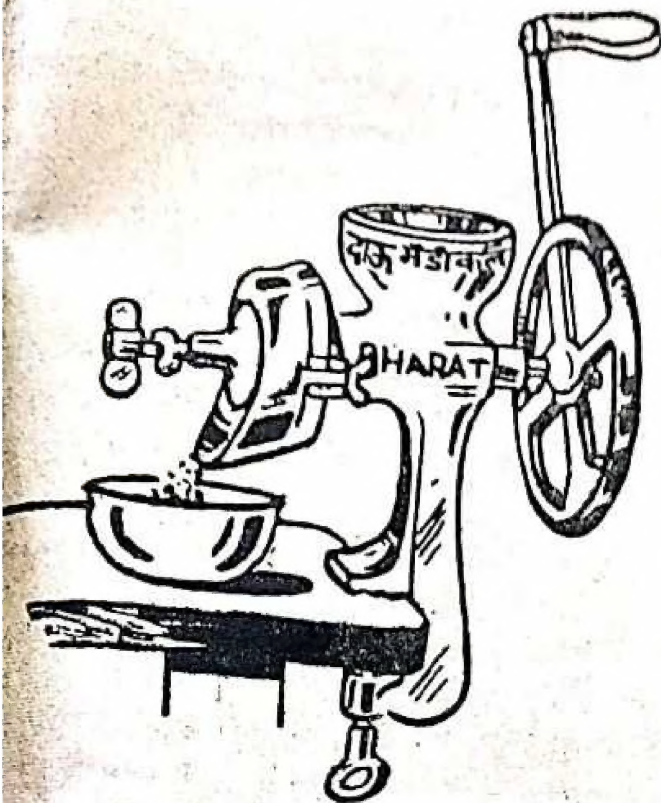
चूर्ण करने की मशीन

यह मशीन छोटे पैमाने पर कार्य करने वाले औषधि निर्माताओं को चूर्ण करने के लिये बहुत उपयोगी है, मूल्य कम है तथा हाथ से चलाई जा सकती है। इस मशीन द्वारा एक ओर से चूर्ण करने वाली दवा डाली जाती है तथा मशीन चलाई जाती है और दूसरी ओर से उसका चूर्ण होकर निकलता है। चलने में हल्की है। इच्छानुसार चूर्ण को बारीक या मोटा कर सकते हैं। एडजस्टिंग स्क्रू को ढीला कर दीजिये चूर्ण मोटा होने लगेगा तथा स्क्रू को कस दीजिये—चूर्ण महीन होने लगेगा। इसके अलावा घर के सभी मसाले, दालों की पीठी, गेहूं आदि का दलिया बहुत अच्छी तरह पीस सकते हैं।

मशीन पर सुन्दर रंग किया हुआ है। यह मशीन प्रत्येक वैद्य जो अपनी औषधि स्वयं निर्मित करता है, के पास होना अत्यन्त आवश्यक है।

इतनी उपयोगी मशीन का मूल्य प्रचार की दृष्टि से अभी लागत मात्र केवल ३६ रुपये रखा गया है। यह मशीन केवल रेल पार्सल द्वारा भेजी जा सकती है अतः अपने पास के रेलवे-स्टेशन का नाम स्पष्ट लिखें तथा ५.०० आर्डर के साथ एडवांस अवश्य भेजें। सेलटैक्स, पैकिंग-व्यय, रेल किराया तथा विल्टी का वी० पी० व्यय ग्राहक ही को देना होगा।

अर्क निकालने की मशीन

इस मशीन द्वारा आप पत्तों का तथा फलों का अर्क बहुत आसानी से निकाल सकते हैं। प्रथम उस औषधि द्रव्य के काट कर इतने बड़े टुकड़े कर लिये जाते हैं कि मशीन के मुख में जो कि लगभग १ इंच बड़ा गोल होता है, आसानी से प्रविष्ट हो सकें, फिर एक ओर आप वह औषधि द्रव्य मशीन में डालते चलिये तथा मशीन चलाइये। उसका अर्क दूसरी ओर निकलता चलेगा। अर्क निकलने के पश्चात् फोक (औषधि का अर्क निचुड़ने के पश्चात् रहा द्रव्य) भी स्वयं निकलता रहेगा। यह मशीन भी स्वयं औषधि निर्माण करने वाले वैद्यों के लिये आवश्यक वस्तु है। मशीन दो साइजों में है छोटी मशीन का मूल्य २७.००, बड़ी मशीन का मूल्य ३८.००।

यह मशीन भी रेल द्वारा ही भेजी जा सकेगी अतः अपने आर्डर में अपने पास का रेलवे-स्टेशन अवश्य लिखें। सेलटैक्स, रेल किराया, बिल्टी का वी० पी० खर्च, पैकिंग व्यय ग्राहक को देना होगा।

नोट—दोनों मशीन एक साथ मंगाने पर पैकिंग व्यय तथा मालगाड़ी का पूरा किराया या सवारी गाड़ी का आधा किराया हम देंगे। एडवांस ५.०० अवश्य भेजें।

दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

Scanned with CamScanner

शीघ्र लाभ करने वाली

बिजली की मशीन

(Medico-electric Machine)

इस मशीन की विशेषतायें

- मशीन के व्यवहार में किसी प्रकार की परेशानी नहीं, हर कोई बड़ी सफलता से व्यवहार कर सकता है।
- इसमें खर्चा नहीं के बरावर होता है तथा लाभ बहुत अधिक अर्थात् "कम खर्च वाली मशीन"
- अनेक रोगों में तुरन्त लाभ होने के कारण—
- रोगियों को आकर्षित करने का उत्तम साधन है।
- मशीन टिकाऊ है, सुन्दर है, प्रभावशाली है, बहुत दिनों तक निर्बाध काम देने वाली है।
- टार्च में पड़ने वाले गोल सैल इसमें पड़ते हैं जो सर्वत्र मिल जाते हैं।
- गांव-शहर हर स्थान पर इसे काम में लिया जा सकता है।

मूल्य—३५.०० मात्र (सैल नहीं) । पैकिंग-पोस्ट व्यय लगभग ५.०० एवं सेलटैक्स पृथक् । बिजली की मशीन डाइनुमायुक्त (इसमें सैलों का कोई खर्चा नहीं होता) का मूल्य ६०.०० पोस्ट पैकिंग व्यय ६.५० एवं सेलटैक्स प्रथक् । मशीन के साथ व्यवहार विधि मुफ्त भेजी जाती है। आर्डर के साथ ५.०० एडवांस अवश्य भेजें

बिजली की मशीन नई डिजायन में

इसमें उपरोक्त सभी विशेषताओं के अतिरिक्त निम्न और विशेषतायें हैं—

- मशीन को एक छोटे रेडियो (Transister) के रूप में तैयार किया गया है, जिससे उसकी सुन्दरता में चार चांद लग गये हैं।
- इस मशीन में रैगूलेटर लगाया है जिसके घुमाने से मशीन के करण्ट में कमीवेशी होती है।
- पोल के तार की लम्बाई बढ़ाकर दस फीट करदी-गई है।
- मशीन स्टार्ट करने को प्लग के स्थान पर घुमाने वाला बटन लगा है।

इस मशीन का मूल्य ४५.०० नैट है। सभी खर्च प्रथक्।

बिजली तथा सैल दोनों से चलने वाली

- इसे आप आवश्यकतानुसार बिजली या सैल से चला सकते हैं।
- बिजली से चलाने में खर्चा बहुत कम आता है तथा लाभ उसी प्रकार करती है।
- बिजली द्वारा हलका, मध्यम या तीव्र करण्ट इच्छानुसार ले सकते हैं।

इस मशीन का मूल्य ५०.०० नैट है। केवल बिजली से ही चलने वाली मशीन का मूल्य ४२.००

नोट—मशीन के साथ सैल मंगाने पर सैलों का मूल्य प्रथक् लगेगा।

—पता—

दाऊ मेडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

Scanned with CamScanner